CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय, वाराणसी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भारत
के
संत-महात्मा

भारत के ११४ संत-महात्माओं के जीवन की रूपरेखा

लेखक
रामलाल

भूमिका
श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार
संपादक : कल्याण

शुभवचन
माननीय श्री संपूर्णानंदजी
मुख्यमंत्री. उ. प्र.

मुमुक्षु भवन वेद वेदांग विद्यालय
ग्रन्थालय
आगत क्रमांक.....
दिनांक.....

वोरा एण्ड कम्पनी पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड
३, राउन्ड बिल्डिंग, कालबादेवी रास्ता, बम्बई २

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समर्पण

अपने अध्यात्मजीवन के चिन्मय

आलोक - स्तम्भ

कलिन्दनन्दिनीतटस्थवृन्दावनचन्द्र

नवघनश्यामशरीर-आनन्दकन्द

नन्दनन्दन श्रीराधारमण

के

चरणदेश में

सादर

—रामलाल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

● प्रथम संस्करण,
● नवेम्बर, १९५७
● मूल्य [redacted] 22/=
Rs 22 P 00

0152,1NRA1:9
J-7
● [illegible] वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय ●
[illegible] ।
आगत क्रमांक ...2662.....
दिनांक .....

प्रकाशक
मनहरलाल के. वोरा,
वोरा एण्ड कम्पनी पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड,
३, राउन्ड बिल्डिंग,
बम्बई २

मुद्रक
पी. एच. रामन
अेसोसिएटेड अॅडव्हर्टायझर्स अॅन्ड प्रिंटर्स,
५०५, आर्थर रोड, ताड़देव, बम्बई ७.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समर्पण

अपने अध्यात्मजीवन के चिन्मय

आलोक - स्तम्भ

कलिन्दनन्दिनीतटस्थवृन्दावनचन्द्र

नवघनश्यामशरीर-आनन्दकन्द

नन्दनन्दन श्रीराधारमण

के

चरणदेश में

सादर

—रामलाल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शुभवचन

देश के कोने-कोने से अच्छे लोगों के चरित्रों को एक जगह संग्रह करना छोटा काम नहीं है। इसके लिये मैं श्री रामलाल को बधाई देता हूँ। पुस्तक में केवल जीवनियां ही नहीं हैं प्रत्युत उपदेशों का भी संक्षिप्त संग्रह है। निश्चय ही पुस्तक उपयोगी होगी। ये महात्मा हमारे देश के चिरस्मरणीय विभूति रहे हैं। हमारी संस्कृति के निर्माण में इनका प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से बहुत बड़ा हाथ रहा है। भारत के किसी कोने में कोई जाय, ऐसे महात्मा मिलते हैं, जिनके सामने आदर से सिर झुकता है। ब्रह्म, ईश्वर, जीव तथा परलोक आदि के सम्बन्ध में सिद्धान्तों में भले ही मतभेद हों पर उन सब भेदों के भीतर भारत की अमर आत्मा प्रतिध्वनित होती है। नानात्व है, वैषम्य है पर उस नानात्व और वैषम्य के भीतर एकता और समता, वैराग्य और परोपकार का सन्देश है। यह सन्देश किसी के मुख से किन्हीं शब्दों में हमारे सामने आया हो, हमको उसका स्वागत करना ही है। ...जहाँ तक इन चरित्रनायकों का सम्बन्ध है, मैं यही कह सकता हूँ :

यत्र तत्र समये यथातथा,
योऽसि सोऽस्यभिधया यया तया।
वीतरागकलुषश्च चेद्भवान्,
एक एव भगवन् नमोऽस्तु ते॥

बुकहिल हाउस,
नैनीताल
आषाढ़ कृष्ण १४, २०१४ वि०

सम्पूर्णानन्द,
(मुख्यमन्त्री)
उत्तर प्रदेश

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दो शब्द

बंदउँ संत समान चित, हित अनहित नहिं कोइ।
अंजलिगत सुभ सुमन जिमि, सम सुगंध कर दोइ॥

संत और भगवान् में कोई अन्तर नहीं। भगवान् ही अपने विविध स्वरूपों को संतों के जीवन और वाणी के रूप में प्रकट करते रहते हैं। संत सभी युगों में, सभी देशो में, सभी मत-मतान्तरों में, सदा से होते आये हैं और अब भी हैं और भविष्य में भी होते रहेंगे। संत जाति-पांति, देश-विदेश आदि से सदा ऊपर उठे हुए होते हैं। जगत् के अनन्त विविध-संताप-संतप्त प्राणियों को विमल-सुख-शांति-सुधाका पान कराकर उन्हें आत्यान्तिक सुखमय सफल जीवन-प्रदान करनेवाले ये संत ही हैं। भारतवर्ष तो ऐसे संत-रत्नोंका अमित आकर ही है। अनादिकालसे अबतक यहाँ अनंत संतोंने अपने प्रचण्ड, प्रखर, परन्तु निर्मल-शांत-शीतल-सुधावर्षी प्रकाशसे जगत्के असंख्य प्राणियोंको आप्यायित किया है तथा भगवान्की मंगलमयी प्रेरणा और अपने सहज सुहृद भावसे वे ऐसी अमर अमृतवाणी छोड़ गये हैं जो अनंतकालतक सदा-सर्वदा सबको परम कल्याणके पथपर चढ़ाकर उन्हें सुगमताके साथ प्रभुके पावन धाममें पहुँचाती रहेगी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीरामलालजी धन्य हैं, जिनको भगवत्कृपासे ऐसे महान् संतोंके विमल-चरित-सुधा-सागरमें डुबकी लगानेका सौभाग्य प्राप्त हुआ, और जगतके प्राणियोंपर, खास करके भारतीय हिन्दी-भाषा भाषियोंपर उनका असीम उपकार है जो इस संत-चरित-सुधा-सागरसे उन्होंने अत्यन्त सुन्दर और बहुमूल्य विविध रत्नोंको बड़ी चतुराईसे निकालकर और उन्हें इस ग्रन्थके रूपमें प्रस्तुत करके उनका पवित्र वितरण किया है। मुझे आशा है कि भारतीय नर-नारी इस ग्रन्थ-रत्नसे विशेष लाभ उठाकर अपने जीवनको सफल बनायेंगे।

श्रीरामलालजी अपने हैं। अतः उनके किसी सत्कार्यकी प्रशंसा करना अपनी ही प्रशंसा करनेके समान है। अतएव विशेष कुछ न कहकर मैं इस महान् पुण्यकार्य के लिये उनका अभिनंदन करते हुए अपनेको गौरवान्वित मानता हूँ। भगवान् कृपापूर्वक सबको ऐसी बुद्धि दें, जिससे सभी लोग संत-चरित-सुधा सागरमें अवगाहन करके परम-पुण्य-जीवन प्राप्त करें।

सीता-नवमी
२०१४ वि०

हनुमानप्रसाद पोद्दार
सम्पादक,
कल्याण, गोरखपुर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भारत की चिरन्तन चेतना

समस्त युगों में सन्त-महात्मा की परम्परा ही भारत देश की अमूल्य निधि रही है। उदात्त सन्त-महात्माओं की जीवन-कथायें तथा उनकी उपदेशावलियाँ ही सबसे अधिक कीमती सम्पत्ति के रूप में भारतीय जन-समाज को अपने पूर्वजों से प्राप्त हुई हैं। आज तक भारत के लम्बे इतिहास के प्रत्येक युग में वेद, उपनिषद, महाकाव्य, पुराण, काव्य, रूपक, संगीत, स्थापत्य, चित्रकला, तथा लोक-गीत आदि अनेक रूप में ऋषि, मुनि, योगी, भक्त, ज्ञानी और निष्काम कर्मी के ही तेजोमय जीवन तथा आध्यात्मिक अनुभूति से भारतीय संस्कृति के आत्माभिव्यञ्जन को प्रेरणा मिलती आयी है। भारत के सच्चे निर्माता वे ही हैं। भारत की चिरन्तन चेतना उनके ही जीवन में साकार और सजीव हुई है। निस्सन्देह भारतवर्ष ने विभिन्न युगों में बड़े-बड़े योद्धा, शासक, साम्राज्य-स्थापक और राजनीतिज्ञों को जन्म दिया है, उन्होंने अपने समय के भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण कार्य सम्पादित किये हैं पर भारतीय स्मृतिपटल पर उन्हें गौण स्थान प्राप्त है और उनमें भी केवल उन्हीं का जीवन स्थायी स्मृति का विषय बन सका जिन्होंने व्यवहार में सन्तत्व प्राप्त कर लिया और अपने साथियों की नैतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के लिये अपनी सम्पत्ति और ज्ञान का सर्वोत्तम सदुपयोग किया। भूत की तरह भविष्य में भी सन्त-महात्माओं के जीवन तथा उपदेश भारत की समस्त जनता के लिये सदा ही ज्ञान, शक्ति, आशा और शान्ति के स्रोत बने रहेंगे।

लगभग सहस्र पृष्ठ के इस एक ही ग्रन्थ में प्राचीन, मध्यकालीन और अर्वाचीन सौ से अधिक संत-महात्माओं का संक्षिप्त जीवन-परिचय सरल और रोचक हिंदी में प्रस्तुत कर वर्तमान काल के सत्यान्वेषियों की रामलाल जी ने बहुमूल्य सेवा की है। इस पवित्र भूमि के सभी धार्मिक सम्प्रदाय और दार्शनिक परम्पराओं के उदात्त सिद्ध महापुरुष और धर्माचार्यों के समूह में से उन्होंने जो नाम चुने हैं उनमें ज्ञानप्राप्त शैव, वैष्णव, शाक्त, बौद्ध, जैन, मुसलमान योगी, ज्ञानी, भक्त कर्मी, वैदिक, तांत्रिक, द्वैतवादी, अद्वैतवादी और विशिष्टा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

द्वैतवादी—सभी हैं। उनकी जीवनकथाओं तथा प्रमुख उपदेशों का जो निरूपण लेखक ने किया है उसमें किसी विशेष दृष्टिकोण, किसी विशेष आध्यात्मिक साधन-प्रणाली अथवा किसी प्रान्त विशेष के प्रति पक्षपात का लेश भी नहीं है। किसी भी प्रकार के पक्षपात, प्राग्धारणा, दृष्टि, संकोच तथा हठधर्मी से उनका मस्तिष्क स्तुत्यरूप से निर्मुक्त है। पृथक्-पृथक् काल तथा पृथक्-पृथक् प्रान्तों के और बाहर से भिन्न दीखने वाले धार्मिक सम्प्रदायों के प्रतिनिधि सन्तों के इन संक्षिप्त परिचयों के विवेकपूर्ण अध्ययन से, जिसे दीक्षा नहीं मिली है ऐसे व्यक्ति को भी, यदि वह सत्यान्वेषी है, यह विदित हो जायेगा कि उन संतों के नैतिक और आध्यात्मिक जीवन तथा प्रमुख उपदेश और आदर्शों का जिनको उन्होंने उपस्थित किया है समान रूप से सार्वभौम और स्थायी मूल्य-महत्व है; उन सन्तों की आध्यात्मिक साधना की प्रणाली तथा बाह्य व्यवहार में कहीं कहीं अंतर भले ही हों पर सब सन्तों की चरम अनुभूति एक ही है। व्यक्तिगत रूप से सन्तों की जाति, राष्ट्रीयता और सम्प्रदाय अलग-अलग भले ही हों पर जब उनकी अन्तरात्मा दिव्य आलोक से प्रकाशित हो उठती है तब वे सार्वभौम पुरुष बन जाते हैं।

लेखक ने सरस्वती की साधना में संलग्न अपने अध्ययन पूर्ण जीवन के अधिकांश वर्षों का भारतीय सन्त महात्माओं से सम्बन्धित संस्कृत, हिंदी, प्रान्तीय भाषाओं और अंग्रेजी में प्राप्त विशाल साहित्य के मनोयोगपूर्ण अध्ययन में सदुपयोग किया है। भारतीय संस्कृति की आध्यात्मिक आधार शिला तथा इस संस्कृति और सभ्यता को सदा विकासोन्मुख और अक्षुण्ण बनाये रखने में विभिन्न काल और प्रान्त के सन्त-महात्माओं के सहयोगदान को उन्होंने गहरी दृष्टि से परखा है। इन पृष्ठों में लेखक के अध्ययन की विशालता और आन्तरिक दृष्टि की गहनता का प्रचुर प्रमाण मिलता है। लेखक की यथार्थ धारणा है कि आध्यात्मिक नवजागरण से ही सम्भवतः वर्तमान युग को उस ध्वंसलीला से मुक्ति मिल सकती है जिसकी ओर वह बढ़ता चला जा रहा है।

यह ऐसा युग है जिसमें वैज्ञानिक अन्वेषणों और आविष्कारों ने उपकार-अपकार दोनों में ही समर्थ अपार शक्तियाँ मानव के हाथों में सौंप दी हैं; उनसे मनुष्य जाति का कल्याण भी हो सकता है तथा सम्पूर्ण संहार भी हो सकता है। जन-समाज के भाग्य से खिलवाड़ करने वाले सुपटु राजनीतिज्ञों और अर्थ-शास्त्रियों के हाथ में ये शक्तियाँ पहुँच गयी हैं। आध्यात्मिक ज्योति से विहीन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वे प्रायः धन और शक्ति के मद से अन्धे हो रहे हैं, वे इन्हीं दोनों को मानवजाति का सर्वस्व मान रहे हैं। विज्ञान की सफलताओं और प्रभावशाली व्यक्तियों के जड़वादी दृष्टिकोण ने जिन जटिल समस्याओं का सृजन कर रखा है उनसे वर्तमान समय के बड़े-बड़े प्रमुखतम नेता किंकर्तव्यविमूढ़ और हतबुद्धि हो रहे हैं। यदि मानव-जाति पर दैवी ज्योति का अवतरण नहीं होता है तो मानवता का विनाश अवश्यम्भावी है। दिव्य ज्योति-अवतरण के माध्यम सन्त-महात्मा हैं जिनका अन्तःकरण आध्यात्मिक साधना तथा भगवत्कृपा से पवित्र और परिष्कृत बन जाता है। इस उथल-पुथल के युग में रामलाल जी की रचना के समान ग्रन्थों का अपरिमित महत्व है। जन-समाज के दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन तथा उसके लिये परमावश्यक मानव की नैतिक और आध्यात्मिक प्रकृति के प्रति प्रबल आग्रह में ही वर्तमान युग के उद्धार की आशा स्थित है। पर सद्प्रेरणा केवल सन्त-महात्माओं के आलोकमय जीवन तथा उनके अमर उपदेशों के पथ से ही आ सकती है। सौभाग्य से आधुनिक संसार में भी भगवत्संदेशवाहकों का अभाव नहीं है। भगवान करें, विज्ञान की सफलताओं तथा जड़वादी स्वार्थों के संघर्ष से भ्रान्त जनसमाज का ध्यान मानवता के इन प्रबुद्ध शिक्षकों द्वारा अवतरित होने वाली भागवत–दिव्य ज्योति की ओर जाय।

नागपञ्चमी,
सं. २०१४ वि.

अक्षय कुमार बनरजी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्तोऽनपेक्षा मच्चिताः प्रशान्ताः समदर्शिनः।
निर्ममा निरहङ्कारा निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः॥
(११।२६।२७)

× × ×

यथोपश्रयमाणस्य भगवन्तं विभावसुम्।
शीतं भयं तमोऽप्येति साधून् संसेवतस्तथा॥
(११।२६।३१)

× × ×

निमज्जोन्मज्जतां घोरे भवाब्धौ परमायनम्।
सन्तो ब्रह्मविदः शान्ता नौर्दृढेवाप्सु मज्जताम्॥
(११।२६।३२)

× × ×

अन्नं हि प्राणिनां प्राण आर्तानां शरणं त्वहम्
धर्मो वित्तं नृणां प्रेत्य सन्तोऽर्वाग् बिभ्यतोऽरणम्॥
(११।२६।३३)

× × ×

सन्तो दिशन्ति चक्षूंषि बहिरर्कः समुत्थितः।
देवता बान्धवा सन्तः सन्त आत्माहमेव च॥
(११।२६।३४)

श्रीमद्भागवत

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुक्रम

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ
	अपनी बात ..	३
	संत-असंत के लक्षण ..	५
१.	देवर्षि नारद	९
२.	महात्मा जड़भरत. ..	१८
३.	परम भागवत शुकदेव ..	२५
४.	महात्मा बुद्ध	३३
५.	संत तिरुवल्लुवर.. ..	४७
६.	महावीर स्वामी	५२
७.	आचार्य शंकर	६०
८.	आचार्य निम्बार्क ..	६८
९.	आण्डाल रंगनायकी ..	७२
१०.	यामुनाचार्य	७७
११.	आचार्य रामानुज ..	८१
१२.	महायोगी गोरखनाथ ..	८७
१३.	योगी भर्तृहरि	९७
१४.	सन्त बसवेश्वर	१०३
१५.	सन्त फरीद	११०
१६.	आचार्य मध्व	११४
१७.	रसिक सन्त जयदेव ..	११९
१८.	स्वामी विद्यारण्य ..	१३०
१९.	महात्मा रामानन्द स्वामी	१३६
२०.	सन्त नामदेव	१४२
२१.	सन्त ज्ञानेश्वर	१५१
२२.	योगिनी लल्लेश्वरी ..	१५९
२३.	रसिक सन्त विल्वमंगल ..	१६५
२४.	सन्त रैदास	१७५
२५.	सन्त कबीर	१८३
२६.	सन्त पीपा	१९२
२७.	सन्त सेन	१९९
२८.	सन्त धेमना	२०५
२९.	परम वैष्णव नरसी मेहता	२१३
३०.	सन्त धरमदास	२२५
३१.	रसिक वैष्णव चण्डीदास..	२३१
३२.	महात्मा शंकर देव ..	२४४
३३.	सन्त नानक	२५६
३४.	महाप्रभु वल्लभाचार्य ..	२६६
३५.	रसिक सन्त हरिदास ..	२७८
३६.	महाप्रभु चैतन्य देव ..	२८६
३७.	महात्मा सनातन गोस्वामी	३०६
३८.	महात्मा रूप गोस्वामी ..	३२०
३९.	महात्मा कुम्भनदास ..	३३०
४०.	सन्त सूरदास	३३८
४१.	महात्मा श्रीचन्द्र ..	३४९
४२.	गोस्वामी तुलसीदास ..	३५५
४३.	महात्मा मधुसूदन सरस्वती	३७०
४४.	रसिक सम्राट् हितहरिवंश	३७९
४५.	सन्त मीराबाई	३८८
४६.	महात्मा व्यासदास ..	४०१
४७.	संत परमानंददास ..	४१०
४८.	संत कृष्णदास	४२०
४९.	गोस्वामी विट्ठलनाथ ..	४२९
५०.	संत गोविन्ददास ..	४३८
५१.	रसिक सन्त नन्ददास ..	४४८
५२.	छीतस्वामी	४६०
५३.	महात्मा चतुर्भुजदास ..	४६८
५४.	संत सिंगा जी	४७७

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ
५५.	महात्मा जीव गोस्वामी ..	४८५
५६.	सन्त गदाधर भट्ट ..	४९४
५७.	महात्मा नाभादास ..	५०३
५८.	महात्मा एकनाथ ..	५०९
५९.	संत दादू..	५२२
६०.	संत रज्जब	५३२
६१.	महात्मा सुंदरदास ..	५४०
६२.	संत मलूकदास	५४९
६३.	रसिक सन्त हरिराय ..	५५६
६४.	सन्त अरवा	५६९
६५.	समर्थ रामदास	५७५
६६.	सन्त तुकाराम	५८७
६७.	महात्मा तैलंग स्वामी ..	६००
६८.	सन्त दरिया साहब ..	६०७
६९.	महात्मा धरनीदास ..	६१३
७०.	संत जगजीवनसाहब ..	६२१
७१.	सन्त दूलनदास	६२८
७२.	महात्मा चरणदास ..	६३३
७३.	परम भक्त मोरोपन्त ..	६४१
७४.	सन्त सोहिरोबा नाथ ..	६५०
७५.	सन्त सहजोबाई	६५७
७६.	सन्त गुलाल साहब ..	६६२
७७.	सन्त भीखा साहब ..	६६७
७८.	रसिक सन्त नागरीदास ..	६७२
७९.	सन्त महीपति	६७९
८०.	सन्त गरीबदास ..	६८४
८१.	सन्त नागा निरंकारी ..	६८९
८२.	सन्त रामप्रसाद	७०४
८३.	सन्त रवि साहब ..	७१३
८४.	सन्त नजीर	७१९

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ
८५.	सन्त काठियाबाबा ..	७२६
८६.	सन्त पलटूदास	७३२
८७.	सन्त त्यागराज	७४०
८८.	महात्मा वनखण्डी ..	७४८
८९.	बाबा कीनाराम	७५४
९०.	संत प्रीतमदास	७६२
९१.	महात्मा रामसखा ..	७६७
९२.	संत दयारामभाई ..	७७७
९३.	महात्मा रामचरण ..	७९१
९४.	महात्मा सरयूदास ..	७९८
९५.	योगिराज गंभीरनाथ ..	८०४
९६.	महात्मा रामलिंगम ..	८१८
९७.	स्वामी दयानंद सरस्वती	८२४
९८.	रामकृष्ण परमहंस ..	८३४
९९.	संत वामाक्षेपा	८४०
१००.	महात्मा रूपकला ..	८५०
१०१.	महात्मा विजयकृष्ण गोस्वामी	८५८
१०२.	संत ललित किशोरी ..	८६८
१०३.	संत साईं बाबा	८७४
१०४.	पागल हरनाथ	८८१
१०५.	संत वारिस अलीशाह ..	८९२
१०६.	स्वामी विवेकानंद ..	८९७
१०७.	महात्मा गांधी	९१२
१०८.	महायोगी अरविंद ..	९२९
१०९.	स्वामी रामतीर्थ ..	९३९
११०.	संत उड़िया बाबा ..	९४५
१११.	महर्षि रमण ..	९५५
११२.	संत सच्चल	९६९
११३.	हरिहर बाबा	९७७
११४.	महात्मा चन्द्रशेखर भारती	९८१
११५.	सहायक पुस्तक सूची ..	९८७
११६.	आवश्यक अनुक्रमणिका ..	९९१

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपनी बात

सन्त अन्तरात्मा के प्राणधन हैं। उनकी चरण-धूलि के एक कण की कृपा से अनन्त कोटि लोकनायक परमात्मा की चिन्मय ज्योति-मन्दाकिनी में स्नान करने पर जीवन धन्य और सफल हो जाता है। वेद आदि समस्त भागवत साहित्य में सन्त की महिमा का अमित बरवान मिलता है। सन्त सनातन, अविनश्वर और अनादि आत्मा के अविकल प्रतीक हैं। सन्त निरन्तर राम में ही रमणशील रहते हैं। सन्त के शरणागत होने पर भवसागर का भय मिट जाता है। परमात्मा के अस्तित्व में सन्त की अमिट आस्था रहती है परमात्मा और आत्मा—जीवात्मा की स्वरूपगत एकता में सन्त अविचल विश्वास करते हैं और आत्मा की नित्यता —सनातनता में सन्त की मति स्थिर होती है। सन्त संसार के मरुस्थल में मरूद्यान हैं। वास्तव में सन्त के जीवन, आचरण और दिव्य महिमा के बरवान का सौभाग्य, परमात्मा की कृपा से मिलता है। 'भारत के सन्त-महात्मा' पुस्तक के प्रणयन की मूलभूमि में भागवती कृपा और सन्त की प्रसन्नता का ही हाथ है। जन्म-जन्म के पुण्य के उदयस्वरूप ही मैं ऐसे पवित्र काम में अपने समय का थोड़ा-बहुत सदुपयोग कर सका।

सन्त-पंदरज में बचपन से ही मेरी सहज रुचि रहती आयी है। सन्त के प्रति श्रद्धा मेरे लिये वंशपरम्परागत है। मेरे कुल में आध्यात्मिकता के प्रति सदा अनुराग रहता आया है। अभी दो सौ साल पहले की बात है, मेरे पूर्वज स्वनामधन्य मेहरबान सिंह ने राम के प्रति अपनी प्रगाढ़ निष्ठा दिखायी थी। उनका एक पद है :

'काहे एती देर लगइलो। गज की करुन पुकार सुनत ही नंगे पाँयन आपु सिधइलो।
द्रुपद-सुता की लाज राखि के तैंसइ तुरतहि चीर बढ़इलो।
'मेहरबान' पगु ध्यान राम के हमरी बेर कहा सुति गइलो।'

इसी तरह मेरे परदादा पूज्य लालबिहारीजी उच्च कोटि के शैव थे और वृन्दावन-चन्द्र भगवान नन्दनन्दन में उनका अप्रतिम आत्मसमर्पण था। उनके जीवन-काल में मुझे सन्त-चरण के प्रति बड़ी श्रद्धा-भक्ति मिली और अपनी वैष्णवहृदया मा की छत्रच्छाया में यह निरन्तर बढ़ती ही गयी। मेरा विनम्र विश्वास है कि यदि मैं ऐसे वैष्णव कुल में जन्म न लेता तो मेरी लेखनी 'भारत के सन्त महात्मा' ऐसे सन्त-साहित्य के निर्माण में सफल न होती। भगवान की कृपा से मुझे सन्त-महात्मा और आध्यात्मिक जगत के महापुरुषों के सम्पर्क में रहने का अवसर मिलता गया और उनके चरणदेश में स्थित और स्वस्थ रह कर मैंने समय-समय पर आध्यात्मिक जीवन का थोड़ा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बहुत रसास्वादन किया है। इधर 'कल्याण' आध्यात्मिक पत्र के सम्पादन-विभाग में बारह-तेरह साल से काम करने से आध्यात्मिकता के वातावरणमें मेरा विश्वास थोड़ा-बहुत बढ़ता जा रहा है, यह भी मेरे पारलौकिक जीवन में किसी न किसी रूप में लाभ की ही बात कही जा सकती है। सन्त समर्थ पलकनिधि जी पथिक महाराज के आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शन में मेरा जीवन परम सौभाग्यशाली ही है। यदि ऐसे वातावरण में न रहता तो सन्त के चरण में मेरा अनुराग ही नहीं बढ़ता और न मैं 'भारत के सन्त-महात्मा' पुस्तक लिखने का साहस ही करता।

'भारत के सन्त-महात्मा' पुस्तक लिखने की प्रेरणा मुझे वोरा और कम्पनी-प्रकाशन-संस्था बम्बई के संचालक से मिली। ऐसी पवित्र सन्तनिष्ठा और सहज तथा निष्काम लोकहित-कामना ने ही मुझे इस सत्प्रयत्न में कृतार्थ किया। इस पुस्तक में सम्पूर्ण भारत देश के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध प्रतिनिधि सन्तों का जीवन-चरित्र अंकित है। उनके जीवन की वास्तविक घटनाओं का रोचक ढंग से उल्लेख है तथा उनके सिद्धान्त, साधना-पद्धति और निष्पक्ष वाणी का मर्यादापूर्वक समावेश किया जा सका है। 'भारत के सन्त-महात्मा' पुस्तक देन है समग्र भारतीय सन्त-साहित्य की। उन लेखकों और महात्माओं का मुझ पर अमित आभार है जिनकी कृतियों और वाणी से इस पुस्तक की समलंकृति में थोड़ी-बहुत सहायता ली गयी है। ऐसे लोगों की चरण-धूलि का वन्दन ही मेरी कृतज्ञता का ज्ञापन है। 'कल्याण' के भक्तचरितांक में अपने द्वारा लिखे 'सन्त-जीवन-चरित' में से भी कहीं-कहीं मैंने थोड़ी-बहुत सहायता ली है। इस सदुपयोग के नाते मैं 'कल्याण' के सम्पादक के प्रति आभार प्रकट करता हूँ।

जिस सीमा तक इस पवित्र कृति की प्रस्तावना का सम्बन्ध है, उसमें मेरी बड़ी इच्छा थी कि भारत के आध्यात्मिक प्राण सन्त विनोबा भावे तथा 'कल्याण' के यशस्वी सम्पादक हनुमान प्रसादजी पोद्दार के आशीर्वचन मिलें। परमात्मा की महती कृपा से यह सम्भव हो सका। इस ग्रन्थ को अपनी पुण्यसम्मति से सम्पन्न करने के नाते मैं दर्शन-जगत के विद्वान सन्त अक्षयकुमार बारजी तथा श्री सम्पूर्णानन्दजी को धन्यवाद देता हूँ।

सन्त-चरण-देश में मेरा मस्तक सदा विनत रहे, यही मेरी निष्काम कामना है।

आनन्दसदन
गोरखपुर।

श्रीकृष्णः शरणं मम.
रामलाल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संत-असंत लक्षण

बंदउँ संत समान चित हित अनहित नहिं कोइ।
अंजलि गत सुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोइ॥

× × × ×

बंदउँ संत असज्जन चरना। दुखप्रद उभय बीच कछु बरना॥
बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं। मिलत एक दुख दारुन देहीं॥
उपजहिं एक संग जग माहीं। जलज जोंक जिमि गुन बिलगाहीं॥
सुधा सुरा सम साधु असाधू। जनक एक जग जलधि अगाधू॥
भल अनभल निज निज करतूती। लहत सुजस अपलोक विभूती॥
सुधा सुधाकर सुरसरि साधू। गरल अनल कलिमल सरि व्याधू॥
गुन अवगुन जानत सब कोई। जो जेहि भाव नीक तेहि सोई॥

भलो भलाइहि पै लहइ लहइ निचाइहि नीचु।
सुधा सराहिअ अमरताँ गरल सराहिअ मीचु॥

खल अघ अगुन साधु गुन गाहा। उभय अपार उदधि अवगाहा॥
तेहिं तें कछु गुन दोष बरवाने। संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने॥
भलेउ पोच सब बिधि उपजाए। गनि गुन दोष बेद बिलगाए॥
कहहिं बेद इतिहास पुराना। बिधि प्रपंच गुन अवगुन साना॥
दुख सुख पाप पुण्य दिन राती। साधु असाधु सुजाति कुजाती॥

× × × ×

पुनि सादर बोले मुनि नारद। सुनहु राम बिग्यान बिसारद॥
संतन्ह के लच्छन रघुबीरा। कहहु नाथ भव भंजन भीरा॥
सुनु मुनि संतन्ह के गुन कहऊँ। जिन्ह ते मैं उन्ह के बस रहऊँ॥
षट बिकार जित अनघ अकामा। अचल अकिञ्चन सुचि सुखधामा।
अमितबोध अनीह मितभोगी। सत्यसार कबि कोबिद जोगी॥
सावधान मानद मद हीना। धीर धरम गति परम प्रबीना॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गुनागार संसार दुख रहित बिगत संदेह।
तजि मम चरन सरोज प्रिय तिन्ह कहुँ देह न गेह॥

निज गुन श्रवन सुनत सकुचाहीं। पर गुन सुनत अधिक हरषाहीं॥
सम सीतल नहिं त्यागहिं नीती। सरल सुभाउ सबहि सन प्रीती॥
जप तप व्रत दम संजम नेमा। गुरु गोविंद बिप्र पद प्रेमा॥
श्रद्धा छमा मयत्री दाया मुदिता मम पद प्रीति अमाया॥
बिरति बिवेक विनय बिग्याना। बोध जथारथ बेद पुराना॥
दंभ मानमद करहिं न काऊ। भूलि न देहिं कुमारग पाऊ॥
गावहिं सुनहिं सदा मम लीला। हेतु रहित परहित रत सीला॥
मुनि सुनु साधुन्ह के गुन जेते। कहि न सकहिं सारद श्रुति तेते॥
कहि सक न सारद सेष नारद सुनत पद पंकज गहे।
अस दीनवंधु कृपाल अपने भगत गुन निज मुख कहे॥
सिरु नाइ बारहिं बार चरनन्हि ब्रह्मपुर नारद गये।
ते धन्य तुलसीदास आस बिहाइ जे हरि रंग रँए॥

× × × ×

जोरि पानि कह तब हनुमंता। सुनहु दीनदयाल भगवंता॥
नाथ भरत कछु पूंछन चहहीं। प्रस्न करत मन सकुचत अहहीं॥
तुम जानहु कपि मोर सुभाऊ। भरतहि मोहि कछु अंतर काऊ॥
सुनि प्रभु बचन भरत गहे चरना। सुनहु नाथ प्रनतारति हरना॥
संत असंत भेद बिलगाई। प्रनतपाल मोहि कहहु बुझाई॥
संतन्ह के लच्छन सुनु भ्राता। अगनित श्रुति पुरान बिख्याता॥
संत असंतन्हि कै असि करनी। जिमि कुठार चंदन आचरनी॥
काटइ परसु मलय सुनु भाई। निज गुन देइ सुगंध बसाई॥

ताते सुर सीसन्ह चढ़त जग बल्लभ श्रीखंड।
अनल दाहि पीटत घनहिं परसु बदन यह दंड॥

बिषय अलंपट सील गुनाकर। पर दुख दुख सुख सुख देखे पर॥
सम अभूत रिपु बिमद बिरागी। लोभामरष हरष भय त्यागी॥
कोमलचित दीनन्ह पर दाया। मन बच क्रम मम भगति अमाया॥
सबहि मानप्रद आपु अमानी। भरत प्रान सम मम ते प्रानी॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बिगत काम मम नाम परायन। सांति बिरति बिनती मुदितायन॥
सीतलता सरलता मयत्री। द्विज पद प्रीति धर्म जनयत्री॥
ए सब लच्छन बसहिं जासु उर। जानेहु तात संत संतत फुर॥
सम दम नियम नीति नाहिं डोलहिं। परुष बचन कबहूँ नहिं बोलहिं॥

निंदा अस्तुति उभय सम ममता मम पद कंज।
ते सज्जन मम प्रान प्रिय गुन मंदिर सुख पुंज॥

सुनहु असंतन्ह केर सुभाऊ। भूलेहुँ संगति करिअ न काऊ॥
तिन्ह कर संग सदा दुखदायी। जिमि कपिलहि घालइ हरहाई॥
खलन्ह हृदयँ अति ताप बिसेषी। जरहिं सदा पर संपति देखी॥
जहँ कहुँ निंदा सुनहिं पराई। हरषहिं मनहुँ परी निधि पाई॥
काम क्रोध मद लोभ परायन। निर्दय कपटी कुटिल मलायन॥
बयरु अकारन सब काहू सों। जो कर हित अनहित ताहू सों॥
झूठइ लेना झूठइ देना। झूठइ भोजन झूठ चबेना॥
बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा। खाइ महा अहि हृदय कठोरा॥

पर द्रोही पर दार रत पर धन पर अपवाद।
ते नर पाँवर पापमय देह धरें मनुजाद॥

लोभइ ओढ़न लोभइ डासन। सिस्नोदर पर जमपुर त्रास न॥
काहू की जौं सुनहिं बड़ाई। स्वास लेहिं जनु जूड़ी आई॥
जब काहू कै देखहिं बिपती। सुखी भए मानहुँ जग नृपती॥
स्वारथरत परिवार बिरोधी। लंपट काम लोभ अति क्रोधी॥
मातु पिता गुर बिप्र न मानहिं। आपु गए अरु घालहिं आनहिं॥
करहिं मोहबस द्रोह परावा। संत संग हरि कथा न भावा॥
अवगुन सिंधु मंदमति कामी। बेद बिदूषक परधन स्वामी॥
बिप्र द्रोह पर द्रोह बिसेषा। दंभ कपट जियँ धरें सुबेषा॥

ऐसे अधम मनुज खल कृतजुग त्रेताँ नाहिं।
द्वापर कछुक बृंद बहु होइहहिं कलिजुग माहिं॥

× × × ×

नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं। संत मिलन सम सुख जग नाहीं॥
पर उपकार बचन मन काया। संत सहज सुभाउ खग राया॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संत सहहिं दुख पर हित लागी। पर दुख हेतु असंत अभागी॥
भूर्ज तरू सम संत कृपाला। पर हित निति सह बिपति बिसाला॥
सन इव खल पर बंधन करई। खाल कढ़ाइ बिपति सहि मरई॥
खल बिनु स्वारथ पर अपकारी। अहि मूषक इव सुनु उरगारी॥
पर संपदा बिनासि नसाहीं। जिमि ससि हति हिम उपल बिलाही॥
दुष्ट उदय जग आरति हेतू। जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू॥
संत उदय संतत सुखकारी। बिस्व सुखद जिमि इंदु तमारी॥

× × × ×

संत बिटप सरिता गिरि धरनी। पर हित हेतु सबन्ह कै करनी॥
संत हृदय नवनीत समाना। कहा कबिन्ह परि कहै न जाना॥
निज परिताप द्रवइ नवनीता। पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता॥

गिरजा संत समागम सम न लाभ कछु आन।
बिनु हरि कृपा न होइ सो गावहिं बेद पुरान॥

—रामचरितमानस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देवर्षि नारद

'अहो! देवर्षि नारद धन्य हैं जो वीणा बजाते, हरिगुण गाते और मस्त होते हुए आतुर जगत को आनन्दित करते रहते हैं।'

—श्रीमद् भागवत

देवर्षि नारद श्रीभगवान के नित्य पार्षद हैं, भगवान का स्मरण करते रहना ही उनका शाश्वत जीवन है, उनके नाम के स्मरण मात्र से हृदय में भगवान की भक्ति का सरस और गम्भीर सागर उमड़ने लगता है। भारतीय अध्यात्मवाङ्मय में उनके दिव्य और परम भगवदीय चरित्र का अमित विशेषता से चिन्तन किया गया है, श्रीभगवान से उनका नित्य सम्बन्ध है। निगम, आगम, पुराण दर्शन—समस्त शास्त्रों में उनकी वीणा का सरस रमण दीख पड़ता है। नारद श्रीभगवान के मानस-अवतार हैं। नवद्या भक्ति के आचार्य हैं, लोकलोकान्तर में वीणा बजाकर घूमते रहते हैं। वे वैदिक ऋषियों में परिगणित हैं; विवाद उपस्थित होने पर मन्त्रों के अर्थ करने वाले ऋषि कहलाते हैं। ऋग्वेद के आठवें मण्डल के तेरहवें सूक्त के ऋषि नारद हैं।

नारद का स्वभाव देवकार्य के संरक्षण और आसुरी शक्ति के विनाश के लिये कलहकारी है। पुराणों में इस तथ्य की अभिव्यक्ति सर्वत्र स्पष्ट दीख पड़ती है। नारद का प्रधान कार्य श्री भगवान की भक्ति का प्रचार है। वे अपनी वीणा की झंकार से प्राणियों में, लोक-लोकान्तर में भक्ति की चेतना भरते रहते हैं। जब वे वीणा बजाकर भगवान का स्तवन करते हैं तब श्रीपति बिना बुलाये की तरह उनके सामने प्रकट होकर उन्हें धन्य कर देते हैं। सम्पूर्ण पृथ्वी घर, घर-घर में, जन-जन में भक्ति की स्थापना ही उनके जीवन का अक्षय ध्येय है। उनकी गणना भागवत-धर्म के बारह प्रधान आचार्यों में है, वे महाभागवत हैं, कीर्तन के आचार्य हैं। समस्त जगत के कल्याण में वे नित्य-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निरन्तर लगे रहते हैं। देव-दैत्य समान रूप से उनके अभय दान में विश्वास रखते हैं। निस्सन्देह नारद का व्यक्तित्व परम दिव्य, अमित विचित्र और असाधारण है।

नारद की जीवन-कथा किसी युगविशेष की सम्पत्ति नहीं है। वह तो सब युगों की दिव्य देन है। वे ब्रह्मा के प्राणेन्द्रिय से प्रकट हुए हैं इसलिये देवयोनि से परे हैं, भगवान के मानस-अवतार हैं। उनका वर्ण ब्राह्मण कहा जा सकता है और उनके जीवन का सम्बन्ध ब्रह्मचर्य और संन्यास—दोनों आश्रमों से निरूपित किया जा सकता है। ब्रह्मा ने पहले मरीचि, अत्रि, सनक, सनन्दन, सनत्कुमार तथा नारद की सृष्टि की, नारद इस रूप में ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं।

प्राचीन काल की बात है। नारद ने भगवान का नित्य सम्बन्ध अपने पूर्व जन्म के एक कर्म के फल रूप में प्राप्त किया था। वे पहले जन्म में उपबर्हण नामक गन्धर्व थे। संगीत में उनकी बड़ी रुचि थी। वे देखने में हृष्ट-पुष्ट और सुन्दर थे। एक बार ब्रह्मा की सभा में भगवान का गुणगान करने के लिये बड़े-बड़े गन्धर्व, किन्नर आदि उपस्थित हुए। उस सभा में नारद भी थे। नारद अपने साथ स्त्रियों को ले गये थे। हरि गुणगान के समय नारद की दृष्टि उन रमणियों के चपल हाव-भाव और श्रृंगार में उलझ गयी, वे अपने कर्तव्य का उचित पालन नहीं कर सके। ब्रह्मा ने उन्हें शूद्रयोनि में जन्म लेने का शाप दिया। ब्रह्मा का शाप उनके लिये वरदान सिद्ध हुआ। वे संयमी, सदाचारी, ब्रह्मनिष्ठ, वेदपाठी और शास्त्रज्ञ ब्राह्मणों की सेवा करनेवाली एक शूद्र दासी के गर्भ से उत्पन्न हुए। ब्रह्मा की कृपा से उनमें सभी सद्गुण विद्यमान थे। माता का उन्हें असीम स्नेह प्राप्त था। माता के तपस्यापूर्ण, धर्मपरायण और सात्विक जीवन का उन पर विशेष प्रभाव पड़ा। माता की देखा-देखी वे भी साधु-सन्तों की सेवा में लगे रहते थे। एक बार कुछ सन्तों ने चातुर्मास्य-व्रत किया, अपनी माता के कहने से वे उन सन्तों की सेवा में लग गये। सन्तों की उन पर सदा कृपा-दृष्टि रहती थी। नारद की अवस्था उस समय केवल पाँच साल की थी, सन्तों के सम्पर्क से उनका हृदय परम शुद्ध हो गया। सन्तों के मुख से वे नित्य भगवान की चर्चा सुनते थे। चातुर्मास्य समाप्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होने पर सन्तों ने नारद को भगवान के ध्यान का आदेश दिया और उनके परम पावन नाम के जप की विधि बतायी। उनके चले जाने पर नारद भक्ति-साधना में लग गये। कुछ समय के बाद रात को गाय दुहते समय उनकी माता की साँप के काटने से मृत्यु हो गयी। मृत्यु नारद की दृष्टि में भगवान की परम कृपा थी। अभी तक वे माता के स्नेह-बन्धन में आबद्ध थे पर माता के मरने के बाद वे तप करने के लिये निकल पड़े। कुछ दूर जाने पर वे थक गये। रास्ते में एक सरोवर में जल पीकर पीपल के वृक्ष के नीचे बैठ गये। सन्तों की बतायी हुई विधि के अनुसार भगवान का ध्यान करने लगे। क्षण-क्षण में उनकी आकुलता बढ़ने लगी। अचानक उनके हृदय में थोड़ी देर के लिये नारायणी ज्योति प्रकट हुई और अदृश्य हो गयी। वे बार-बार चेष्टा करने पर भी दूसरी बार उस ज्योति का दर्शन न कर सके। आकाशवाणी हुई कि जिनका हृदय परम निर्मल है वे ही ज्योति-दर्शन के सत्पात्र हैं। इस घटना के बाद वे नारायण के ही स्मरण-चिन्तन में लग गये तथा शरीरान्त होने के बाद वे कल्पान्तर में ब्रह्मा के मानस पुत्र हुए। श्री भगवान के पार्षद रूप में वे नित्य उनका गुण गान करते हुए तथा वीणा बजाते हुए घूमते रहते हैं। उनका आवास-स्थल हिमालय है, दक्ष प्रजापति के शाप से वे बालक-वृद्ध और युवा-अवस्था से सदा परे रहते हैं।

चारों युगों से उनकी जीवन-घटनाओं का सम्बन्ध है। प्रह्लाद की माता को नारद ने उपदेश दिया था, उनके उपदेश से गर्भस्थ शिशु प्रह्लाद भगवद्भक्ति के संस्कारों से सम्पन्न हुए थे। इसी प्रकार नारायण की खोज में निकले हुए बालक ध्रुव का भी उन्होंने कृपा पूर्वक पथ-प्रदर्शन किया था।

एक समय की बात है कि भगवान विष्णु की सभा में नारद और तुम्बरू उपस्थित थे। तुम्बरू गान-विद्या के आचार्य थे। नारद संगीत-ज्ञान में उनसे आगे बढ़ जाना चाहते थे। भगवान विष्णु ने उनको उलूकेश्वर गन्धर्व से गान-विद्या सीखने का आदेश दिया। नारद ने उलूकेश्वर से संगीत-विद्या सीखी, तुम्बरू को पराजित करने गये। उन्होंने स्त्री-पुरुष के रूप में तुम्बरू के घर के निकट ही राग-रागिनियों को देखा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राग-रागिनियों ने नारद से कहा कि अनिपुण गायकों के गान से हमारे अंग-भंग हो जाते हैं, तुम्बरू प्रवीण गायक हैं, उनके संगीत से हमारे विकृत रूप ठीक हो जाते हैं। नारद को अपनी अधूरी जानकारी पर बड़ी लज्जा आयी और वे भगवान विष्णु के पास गये। नारायण ने उन्हें आश्वासन दिया कि जब व्रज में मेरा कृष्ण-अवतार होगा तब मैं तुम्हें गान-विद्या सिखाऊँगा। ऐसी कथा है कि द्वापर में नारद ने द्वारकाधीश कृष्ण से तथा सत्यभामा, जाम्बवती, रूक्मिणी आदि पट-रानियों से संगीत-विद्या सीखी थी। उनके लिये संगीत विद्या भागवती कृपा की प्रतीक है। उनको कृष्ण से संगीत सीखने में चार साल लगे थे।

वाल्मीकि रामायण की रचना की मूलभूमि में नारद की ही प्रेरणा का दर्शन होता है। त्रेता युग में वाल्मीकि को रामायण की रचना करने और भगवान राम के ऐश्वर्य का वर्णन करने का प्रोत्साहन देवर्षि नारद से ही मिला था। मूलरामायण नारद की आत्मा की स्वर-लहरी है। मूलरामायण में वर्णित रामचरित्र का विस्तार ब्रह्मा की प्रेरणा और आदेश से वाल्मीकि ने अपने रामायण महाकाव्य में किया है। वाल्मीकि के आश्रम पर एक वार नारद का आगमन हुआ, देवर्षि ने उनको संक्षेप में रामचरित्र सुनाया। वाल्मीकि ने शिष्यों सहित उनका पूजन किया, वे आकाशमार्ग से चले गये। उनके देवलोक जाने के थोड़ी ही देर बाद तमसा तट पर विचरते हुए वाल्मीकि का क्रौंच-वध से उत्पन्न शोक श्लोक में रूपान्तरित हो गया। आश्रम में आने पर ब्रह्मा ने उन्हें नारद के रामचरित्र के आधार वाल्मीकि-रामायण लिखने के लिये प्रेरणा दी।

रामायण की तरह भागवत की रचना के लिये व्यास को प्रेरणा देने का श्रेय नारद को ही है। नारद द्वारा कथित मूलभागवत के आधार पर महर्षि व्यास ने द्वादश स्कन्धों में श्री भागवत ऐसे अक्षर-वाङ्मय का विस्तार किया था। वेदों के विभाजन, ब्रह्मसूत्र-रचना, महाभारत तथा पुराणों की समाप्ति पर भी व्यास को वास्तविक शान्ति न मिली। उनका मन बहुत खिन्न था। वे सरस्वती नदी के तट पर बैठ कर इन्हीं बातों का चिन्तन कर रहे थे कि नारद जी आ पहुँचे। व्यास ने उनका विधिपूर्वक पूजन किया, उसके बाद नारद से आत्मशान्ति का मार्ग पूछा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नारद ने कहा कि आप ने भगवान वासुदेव के निर्मल यश का पूर्ण वर्णन नहीं किया है इसी से आपका चित्र अशान्त है। वह कविता व्यर्थ है जिसमें भगवान की लीला का चिन्तन न किया गया हो, वह वाणी वंध्या और निष्फल है जो रस-कल्पतरु नन्दनन्दन का यश नहीं गाती है। भगवान का चरित्र ही गेय है। नारद ने व्यास को भागवत रचना के लिये प्रेरणा दी। भागवत भाव और भागवत रति अथवा परम शुद्ध भक्ति का दान कर नारद चले गये। उन्हीं की प्रेरणा का फल भागवत पुराण अथवा शुक-शास्त्र है। पूर्वजन्म में भगवान विष्णु ने उन्हें जो गुह्यतम ज्ञान दिया था उसका वर्णन नारद ने व्यास से किया और भक्ति की महिमा बढ़ायी। युधिष्ठिर आदि राजाओं को भी वे समय-समय पर सचेत करते रहते थे। नारद ने शुकदेव को ज्ञानोपदेश दिया था। जिस समय व्यास को वात्सल्य के सागर में सराबोर कर शुकदेव तपोवन में गये उस समय नारद ने उनको आत्मकल्याण का पथ दिखलाया था। नारद ने कहा था कि विद्या सर्वोत्तम प्रकाश है, सत्य-पालन परम तप है, त्याग में शान्ति और सुख है, राग दुख का मूल है। अपने वर्णाश्रम के अनुकूल सदाचार में लगे रहना ही धर्म है। आत्मविजय ही परम ज्ञान है, परमात्मा सर्वदा और सर्वथा सत्स्वरूप हैं।

नारद गृहस्थों के कल्याण की चिन्ता में सदा तत्पर रहते हैं। भागवत धर्म का प्रचार ही उनके जीवन का प्रमुख कार्य है। प्राणियों को भगवान की भक्ति में लगाना ही उनकी आत्मशान्ति का स्वरूप है। नारद के पांचरात्र का भागवत धर्म के उपासकों में बड़ा समादर है। मन्त्र-सिद्धान्त, आगम-सिद्धान्त, तत्व-सिद्धान्त और तन्त्र-सिद्धान्त में यह विभाजित है। इसी के अन्तर्गत सात्वत संहिता है जिसको मलय पर्वत पर नारद ने महर्षियों को सुनाया था। इसको नारद पांचरात्र अथवा महोपनिषद भी कहा जाता है।

शिवपुराण में उनके स्वयम्वर का वर्णन है। राजा शीलनिधि की कन्या श्रीमती से विवाह करने की बात आती है। नारद ने हिमालय की गुफा में गंगा तट पर एक परम दिव्य आश्रम में घोर तप करना आरम्भ किया। यद्यपि तप भगवान को प्रसन्न करने के लिये था तो भी इन्द्र बहुत संतप्त हुए। इन्द्र ने तप में विघ्न डालने के लिये कामदेव को भेजा पर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भगवान शंकर की कृपा से कामदेव पराजित हो गया। नारद को अभिमान हो गया कि मैंने शिव की तरह काम को जीत लिया, उन्होंने शिव और ब्रह्मा से काम-विजय की बात कही। विष्णुलोक में भगवान विष्णु से भी निवेदन किया। वे विष्णुलोक से लौट रहे थे कि विष्णु ने मार्ग में एक माया नगर का निर्माण किया। वह रमणीय था, उसमें भोग विलास की सामग्री की अधिकता थी, नर-नारी विहार कर रहे थे। उस नगर के राजा शीलनिधि की कन्या का स्वयम्वर होने वाला था, देश-देश के नरेश उपस्थित थे। कन्या श्रीमती परम लावण्यमयी थी। उसने नारद को प्रणाम किया। नारद उसको देखते ही कामविह्वल हो गये। स्वयम्वर में सम्मिलित होने के लिये वे नारायण के पास उन्हीं का रूप माँगने गये।....नारायण ने उनका मुँह वन्दर की आकृति का बना दिया। . . . स्वयम्वर में आते ही श्रीमती उनका रूप देख कर क्रुद्ध हो गयी। . . . . उसने भगवान विष्णु के गले में जयमाला डाल दी। नारद ने दर्पण और जल में अपना रूप देखा, उन्होंने विष्णु को शाप दिया कि तुम्हें स्त्री का वियोग सहना पड़ेगा और मेरी ही मुखाकृति वाले बानर (हरि) तुम्हारी सहायता करेंगे। नारायण ने अपनी माया दूर हटा ली, नारद को अपनी करनी पर बड़ी लज्जा हुई, उन्होंने क्षमा मांगी उनके चरणों में गिर पड़े।

नारद का शाप परम पुण्यदायक होता है। श्रीमद् भागवत के दशम स्कन्ध में कुबेर के पुत्र मणिग्रीव और नलकूवर के शाप की बात का उल्लेख है। एक बार वे दोनों मन्दाकिनी के तट पर कैलास के रमणीय उपवन में वारुणी मदिरा पीकर मदोन्मत्त थे, पुष्पों से लदे थे। स्त्रियों के साथ जल में प्रवेश कर क्रीड़ा कर रहे थे। वे मदान्ध हो गये थे।। सहसा उसी ओर देवर्षि नारद का आगमन हुआ। वस्त्रहीन अप्सराओं ने शाप के भय से वस्त्र पहन लिये पर यक्षों ने कपड़े नहीं पहने। उन पर अनुग्रह करने के लिये देवर्षि नारद ने उनको वृक्षयोनि में जाने का शाप दिया और कहा कि देवों के सौ वर्ष बीतने के बाद द्वापर में व्रज में श्री कृष्ण का अवतार होने पर उन दोनों का उद्धार होगा तथा भगवान के साक्षात् दर्शन से वे अपना जीवन सफल करेंगे। नारद के शाप के फल स्वरूप ही भगवान कृष्ण ने अपनी ऊखल-बन्धन-लीला में यमलार्जुन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

का उद्धार किया था।

देवर्षि नारद परम भागवत हैं, नित्यजीवी हैं, भगवान के परम प्रियपात्र हैं।

रचना

नारद पांचरात्र, भक्ति सूत्र, मूल रामायण, मूल भागवत आदि उनकी कृति हैं। ज्योतिष आदि शास्त्रों में उनके ग्रन्थ उपलब्ध हैं।

वाणी

जो परसे भी परे परम प्रकाशस्वरूप परमात्मा सम्पूर्ण कार्यकारण रूप जगत में अन्तर्यामी रूप से निवास करते हैं तथा जो सगुण और निर्गुण रूप हैं उनको नमस्कार है। जो माया से रहित हैं, परमात्मा जिनका नाम है, माया जिनकी शक्ति है, सम्पूर्ण विश्व जिनका स्वरूप है, योगियों के ईश्वर, योगरूप तथा योगगम्य हैं, उन सर्वव्यापी भगवान विष्णु को नमस्कार है।

जो ब्रह्मा जी का रूप धारण कर संसार की सृष्टि और विष्णु रूप से जगत का पालन करते है तथा कल्प का अन्त होने पर जो रुद्र रूप धारण कर संहार में प्रवृत होते हैं और एकार्णव के जल में अक्षयवट के पत्र पर शिशुरूप से अपने चरणारविंद का रसपान करते हुए शयन करते हैं उन अजन्मा परमेश्वर का भजन करता हूँ।

जो आकाश आदि तत्वों से विभूषित, परमात्मा नाम से प्रसिद्ध, निरंजन, नित्य, अमेय तत्व तथा कर्मरहित हैं उन विश्वविधाता पुराण पुरुष परमात्मा को मैं नमस्कार करता हूँ।

भक्ति ईश्वर के प्रति परम प्रेमरूप है। अमृतस्वरूपिणी है, इसको पाकर मनुष्य सिद्ध हो जाता है, तृप्त हो जाता है, न किसी वस्तु की इच्छा करता है, न शोक करता है, न द्वेष करता है, न किसी वस्तु में आसक्त होता है। भक्ति को जान कर मनुष्य उन्मत्त हो जाता है, स्तब्ध और आत्माराम हो जाता है।

प्रेमभक्ति कामनायुक्त नहीं है, वह निरोध-स्वरूप है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपने प्रियतम भगवान को छोड़ कर दूसरे आश्रयों के त्याग का नाम ही अनन्यता है।

सब कर्म भगवान के अर्पण करना चाहिये और भगवान का थोड़ा-सा भी विस्मरण होने पर व्रजगोपियों की तरह परम व्याकुल होना चाहिये।

प्रेमरूप भक्ति, कर्म, ज्ञान योग से श्रेष्ठ है, वह फल रूप है; संसार के बन्धन से मुक्त होने की इच्छा रखनेवाले को भक्ति ग्रहण करनी चाहिये। भगवान की कृपा से ही महापुरुषों का संग मिलता है जो दुर्लभ, अगम्य और अमोघ है। भगवान और भक्त में भेद का अभाव है।

प्रेम का स्वरूप अनिर्वचनीय है. . . . किसी विरले योग्य पात्र में ऐसा प्रेम प्रकट होता है। यह प्रेम गुण रहित, कामना रहित, प्रतिक्षण बढ़ता हुआ, विच्छेद रहित, सूक्ष्मातिसूक्ष्म और अनुभवरूप है। . . . इस प्रेम को पाकर प्रेमी प्रेम को ही देखता है, प्रेम को ही सुनता है, प्रेम का ही वर्णन करता है और प्रेम का ही चिंतन करता है।

भक्ति सुलभ है, शान्तिरूप और परम आनन्दरूप है। . . . . भक्ति के साधक को अहिंसा, सत्य, शौच, दया, आस्तिकता आदि सदाचारों का पालन करना चाहिये।

सब समय सर्वभाव से निश्चिन्त होकर भगवान का ही भजन करना चाहिये।

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥

मनुष्यों का स्वत्व केवल उतने ही धन पर है जितने से उनका पेट भर जाय। इससे अधिक सम्पत्ति को अपनी मानने वाला चोर है, उसे दण्ड मिलना चाहिये। श्रीमद्भा. ७-१४-८

नैष्कर्म्यमप्यच्युत भाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम्।
कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे न चार्पितं कर्म यदप्यकारणम्॥

वह निर्मल ज्ञान भी, जो मोक्ष की प्राप्ति का साक्षात् साधन है, यदि भगवान की भक्ति से रहित हो तो उसकी उतनी शोभा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नहीं होती; फिर जो साधन और सिद्धि दोनों ही दशाओं में सदा अमंगलरूप है वह काम्य कर्म और भगवान को असमर्पित निष्काम कर्म किस प्रकार शोभित हो सकता है। श्रीमद्भा. १-५-१२

अथातो भक्ति व्याख्यास्याम: सा त्वस्मिन् परम प्रेमरूपा।
अमृतस्वरूपा च।

यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति, अमृतो भवति, तृप्तो भवति।

अब हम भक्ति की व्याख्या करेंगे। वह ईश्वर के प्रति परम प्रेम-रूपा है। अमृतस्वरूपा भी है। उसको प्राप्त कर मनुष्य सिद्ध, अमर और तृप्त हो जाता है। नारदभक्तिसूत्र १-४

महत्सङ्गस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च। लभ्यतेऽपि तत्कृपयैव।
तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्। तदेव साध्यतां तदेव साध्यताम्।

महापुरुषों का संग दुर्लभ, अगम्य और अमोघ है। भगवान की कृपा से ही उनका संग मिलता है। भगवान और उनके भक्त में भेद नहीं है। इसलिये महत्संग की ही साधना करो।

नारदभक्तिसूत्र ३९-४२

अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्। मूकास्वादनवत्।
प्रकाशते क्वापि पात्रे।

गुणरहितं, कामनारहितं, प्रतिक्षण वर्धमानमविच्छिन्नं सूक्ष्मतरमनुभवरूपम्।

तत्प्राप्य तदेवावलोकयति तदेव
शृणोति तदेव भाषयति तदेव चिन्तयति।

प्रेम का स्वरूप अनिर्वचनीय है। यह गूंगे के स्वाद की तरह (अकथनीय) है। किसी विरले पात्र में ही ऐसा प्रेम प्रकट होता है। यह प्रेम गुणरहित है, कामनारहित है, प्रतिक्षण बढ़ता रहता है, विच्छेदरहित है, सूक्ष्मातिसूक्ष्म और अनुभवरूप है। इसे पाकर प्रेमी इसी को देखता है, सुनता और वर्णन करता है; इसी का चिंतन करता है।

नारदभक्तिसूत्र ५१-५५

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महात्मा जड़भरत

'देवता, पुण्यक्षेत्र और तीर्थ आदि तो धीरे-धीरे बहुत दिनों में पवित्र करते हैं, पर महात्मा अपनी दृष्टि से ही पवित्र कर देते हैं।'

—श्रीमद् भागवत

आत्मराज्य में रहने वाले परम शान्त, सुखी और स्वस्थ होते हैं। आत्मानन्द स्वाश्रित है, अक्षय और देश काल से परे है। देह में रह कर जो प्राणी देह से परे होकर आत्मा का चिंतन करते हैं वे धन्य हैं, सफल मनोरथ और परम भाग्यशाली हैं। आत्मोपासना का सौभाग्य असंख्य पुण्यों के उदयस्वरूप मिलता है। महात्मा जड़भरत आत्मोपासक, परमहंस और असाधारण अवधूत थे। वे महायोगी थे, आत्मा के योग-माध्यम से अपने सत्स्वरूप का अनुसंधान करते रहना ही उनके जीवन का उद्देश्य था।

महात्मा जड़भरत पूर्व जन्म में राजर्षि भरत थे। राजर्षि भरत के नाम से हमारा देश 'भारतवर्ष' या 'भरतखण्ड' नाम से प्रसिद्ध है। राजर्षि भरत भगवान के परम भक्त थे, वे भक्तियोगी थे, तपोनिष्ठ और विरक्त थे। अगणित वर्षों तक राज्य-सुख भोगने और प्रजा का यथोचित पालन करने के बाद उन्होंने वैराग्य ले लिया और पुलह ऋषि के आश्रम हरिक्षेत्र में आकर रहने लगे। गण्डकी नदी के तट पर इस पवित्र आश्रम में रहकर वे श्रीभगवान की आराधना करने लगे। एक दिन वे गण्डकी के तट पर बैठ कर नित्य-नैमित्तिक कर्म समाप्त कर प्रणव का जप कर रहे थे। उन्होंने एक हरिणी को नदी के तट पर जल पीते देखा, वह अपनी टोली से बिछुड़ कर उस स्थान पर आ गयी थी। सिंह के दहाड़ने से भयभीत होकर एक ही छलांग के सहारे वह उस पार जाने की चेष्टा कर रही थी कि उसके गर्भ का बच्चा गिर पड़ा, नदी के प्रवाह में आ गया, हरिणी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ने एक गुफा में जाकर प्राण त्याग दिया। राजर्षि भरत का हृदय इन दृश्यों से द्रवित हो गया। उन्होंने मृग के बच्चे को गोद में उठा लिया और आश्रम में लाकर बड़े स्नेह से उसका पालन-पोषण किया। मृग-शावक में उनकी इतनी आसक्ति बढ़ गयी कि वे रात-दिन उसी के सुख की बात सोचते थे। एक दिन वह मृगछौना अदृश्य हो गया। मृग की भावना मन में विशेष रूप से परिपुष्ट होने पर राजर्षि भरत दूसरे जन्म में मृगयोनि में प्रकट हुए। उन्हें पूर्व जन्म की घटनाओं का स्मरण था इसलिये मृग-आसक्ति की बात से उनके मन में वैराग्य का उदय हुआ। शालग्राम-क्षेत्र में ही आकर निवास किया, मृत्यु-काल उपस्थित होने पर गण्डकी में स्नान कर उन्होंने मृगशरीर छोड़ दिया और अगले जन्म में जड़भरत के रूप में एक पवित्र ब्राह्मण कुल में शरीर धारण किया। उनका जन्म आंगिरस गोत्र में हुआ। उनके पिता उन्हें बहुत मानते थे। जड़-भरत जन्मजात विरक्त थे। स्वजनों के संग से वे अपने आपको बहुत दूर रखते थे। उन्हें पूर्वजन्म की आसक्ति का स्मरण था इसलिये दूसरों की दृष्टि में अपने आपको पागल सिद्ध करने में तथा उन्मत्त की तरह रहने में ही उन्होंने आत्मकल्याण समझा। असंगता को उन्होंने अपने जीवन का अलंकार बना लिया। उनके पिता उनमें आत्मा की तरह अनुराग करते थे। वे शम, दम, तप, संतोष, क्षमा, धर्माचरण आदि में रत थे, उन्होंने अपने पुत्र का यज्ञो-पवीत-संस्कार सम्पन्न करने का निश्चय किया। यथासमय जड़भरत का उपनयन-संस्कार विधिपूर्वक सम्पन्न हुआ पर वे आत्मनिष्ठ थे इसलिये जान-बूझकर पिता की शिक्षा के विपरीत आचरण किया करते थे। ब्राह्मण ने अपने पुत्र को वेदाध्ययन कराना चाहा पर जड़भरत दीर्घकाल तक स्वर सहित गायत्री मन्त्र का उच्चारण तक न कर सके। कुछ समय के बाद जड़भरत के पिता का देहान्त हो गया और उसके बाद ही जड़भरत तथा उनकी बहिन को सौतेली माता को सौंप कर उनकी माता ने स्वर्ग की यात्रा की।

माता-पिता के परलोक-गमन के बाद जड़भरत को अपना आत्म-ज्ञान परिपक्व करने का सुन्दर अवसर मिल सका। वे पूर्ण रूप से

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शारीरिक सम्बन्ध से निर्बन्ध हो गये, सदा आत्मचिंतन और स्व के परिशीलन में ही लगे रहते थे। संसार का नश्वर और मायिक रूप उन्हें अपनी ओर आकृष्ट न कर सका। वे सदा मौन रहते थे। यदि कोई व्यक्ति उनसे कुछ पूछता था तो गंवारों की तरह उत्तर दे दिया करते थे। वे अपने शरीर को जान-बूझकर साज-शृंगार से बहुत दूर रखते थे। सदा मैले-कुचैले वस्त्र पहना करते थे इससे लोग उन्हें अपने पास तक बैठाने में संकोच करते थे। वे सम्मान को विष और अपमान को अमृत मानते थे। उनकी दृढ़ धारणा थी कि ऐसा करने से वे निर्विघ्न योगसाधना और आत्मोपासना कर सकेंगे। वे जन-साधारण में अपने आपको उन्मत्त और जड़-सा प्रकट करते थे। भीगे हुए चने, उड़द, साग, जंगली फल और सामयिक अन्न के दाने से अपनी भूख शान्त कर लिया करते थे। माता-पिता की मृत्यु के बाद उनके भाइयों तथा अन्य परिवारवालों ने उनसे खेती-बारी का काम कराना आरम्भ किया और उनके दिये हुए सड़े-गले अन्न से वे अपने शरीर का पोषण करते थे। वे डट कर मोटे बैल की तरह खेती का काम किया करते थे, भोजन मात्र ही उनका वेतन था। लोग थोड़ी ही मजदूरी में उनसे अपना काम निकलवा लिया करते थे। लोगों के काम तुरन्त कर दिया करते थे। वे आत्मानन्द में ही सदा मग्न रहते थे, किसी की निन्दा, स्तुति और गाली-प्रशंसा की तनिक भी चिंता नहीं करते थे। प्रकृति से उत्पन्न किसी भी वस्तु में उनका राग अथवा द्वेष नहीं था। भूमि पर सोते थे, कई दिनों के बाद कभी-कभी स्नान कर लिया करते थे, देह पर मैल जमे रहने की ओर उनका ध्यान नहीं था, एक मैला वस्त्र पहनते थे, मैला यज्ञोपवीत धारण करते थे। सिर और दाढ़ी के बाल सदा बढ़े रहते थे, पागल और उन्मत्त की तरह उनके समस्त आचरण थे। उनके भाइयों ने उन्हें खेत की क्यारी ठीक करने के काम पर लगा दिया। वे अपनी स्थिति में संतुष्ट रहते थे। आत्मचिंतन ही उनका परम धन था।

एक दिन दस्युओं और लुटेरों के सरदार ने सन्तान की कामना से भद्रकाली को नरबलि देने का संकल्प किया। जो मनुष्य इस कार्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के लिये पकड़ा गया था वह भाग गया। लुटेरे उस आदमी को बड़ी तत्परता से खोज रहे थे कि उन्होंने अंधेरी रात में खेत की रखवाली करते हुए जड़भरत को देखा। वे हृष्ट-पुष्ट और बलि के सर्वथा योग्य थे, एक पैर पर खड़े होकर हरिन, सूअर आदि जानवरों से खेत की रखवाली कर रहे थे। लुटेरों ने जड़भरत से 'चलो' कहा, उन्मत्त अवधूत ने 'चलो' उन्हों की बात दोहरायी। वे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने निश्चित स्थान पर जड़भरत को ले जाकर स्नान कराया, धूप-दीप-गन्ध से उनकी पूजा की, पुष्पों की माला पहनायी, मस्तक में तिलक-रचना की। अनेक प्रकार के मृदंग आदि बाजे बजाते हुए उन्होंने जड़भरत को भद्रकाली के सामने बिठा दिया। पुरोहित ने उनकी रक्तरूपी वारुणी से देवी को तृप्त करने के लिए नंगी तलवार खींच ली। बलि का समय उपस्थित ही था कि देह की आसक्ति से परे जड़भरत के आत्मतेज के रूप में भद्रकाली मूर्ति में साकार हो उठीं, उन्होंने भयंकर शब्दों में गरज कर पुरोहित के हाथ से तलवार छीन ली, क्षणमात्र में दुष्टों का संहार कर भद्रकाली ने परमहंस जड़भरत के प्राणों की रक्षा की। जड़भरत को तो ऐसा लगा कि कुछ हुआ ही नहीं। वे पहले की तरह अपने काम में लग गये, आत्मोपासक को देह-बल से किसी भी स्थिति में पराजित नहीं किया जा सकता है। आत्मबल की ही सदा विजय होती है, आत्मा में सत्य का अधिवास रहता है, सत्यसम्वलित आत्मा का पतन नितान्त असम्भव है।

सिन्धु सौवीर नरेश रहूगण आत्मज्ञान की पिपासा शान्त करने के लिये एक बार कपिल मुनि के आश्रम में जा रहे थे। वे बड़े शान्त और उदार प्रकृति के पुरुष थे। पालकी में चढ़ कर जा रहे थे कि इक्षुमती नदी के तट पर पहुँचते-पहुँचते पालकी ढोने के लिये एक नये कहार की आवश्यकता पड़ गयी। अवधूत जड़भरत दैवयोग से आ पहुँचे। कहारों ने उनको स्वस्थ और मोटा-ताजा देख कर पालकी ढोने में लगा दिया। जड़भरत आत्मज्ञानी महात्मा थे, उन्होंने सोचा कि किसी प्रारब्ध के भोग के लिये मुझे पालकी में लगाया गया है। वे बड़ी प्रसन्नता से पालकी ढोने लगे। वे छोटे-छोटे जीवों की, चींटी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आदि की प्राणरक्षा की बात सोच कर सावधानी से चार हाथ आगे की भूमि देखते हुए कन्धे पर पालकी रख कर चल रहे थे, उनकी चाल धीमी थी। दूसरे कहार तेज चल रहे थे। पालकी का संतुलन बिगड़ गया। राजा रहूगण के कारण पूछने पर कहारों ने जड़-भरत की ओर संकेत कर दिया। राजा ने जड़भरत से कहा कि इतने मोटे-ताजे होकर भी इस प्रकार धीरे-धीरे चलने की बात समझ में नहीं आती है। जड़भरत ने बड़ी शान्ति से उत्तर दिया कि न मैं मोटा हूँ और न मैंने आपकी पालकी ढोयी है। न मैं थका हूँ, न मैंने कोई परिश्रम किया है। पालकी ढोने वाला दूसरा ही है। राजा रहूगण आत्मज्ञान की सच्ची जिज्ञासा लेकर जा रहे थे। सहसा उन्हें नये कहार की बात पर बड़ा विस्मय हुआ। राजा ने कहा कि पालकी कन्धे पर है, मोटापा प्रत्यक्ष है, ढोने में श्रम होता ही है।

जड़भरत ने कहा कि सबसे नीचे पृथ्वी है, पृथ्वी पर दो पैर हैं। दो पैर के सहारे सारा शरीर स्थित है, शरीर में स्थित कन्धे पर पालकी है, ऐसी दशा में मुझ पर उसका भार ही नहीं है। पालकी में आपका शरीर है, उसमें आत्मा है जो शुद्ध, अक्षर, शान्त, निर्गुण और प्रकृति से परे है। आत्मा ही समस्त जीवों में व्याप्त है, इसमें मोटापा या दुबलापन नहीं होता है। मोटापा शरीर का धर्म है। जड़भरत पालकी ढोते चल रहे थे।

राजा पालकी से नीचे उतर पड़े। वे आत्मज्ञान के अधिकारी तो थे ही। उन्होंने जड़भरत से परिचय पूछा, कहा कि कहीं आप कपिल मुनि ही तो नहीं हैं जो कृपापूर्वक तत्वज्ञान का उपदेश देने के लिये प्रकट हो गये। आपके दर्शन से मैं धन्य हो गया, मुझे आत्मज्ञान दीजिये। रहूगण ने जड़भरत के दोनों चरण पकड़ लिये।

जड़भरत ने कहा कि मैं कौन हूँ यह बात बतायी नहीं जा सकती। सम्पूर्ण शरीर में आत्मा व्याप्त है। यह आत्मतत्व नाम-रूप कर्म—सबसे परे है; राजा, कहार, पालकी—ये तो केवल शब्द मात्र हैं, इनका आत्मा से तनिक भी सम्बन्ध नहीं है।

राजा रहूगण ने कहा कि मैं परमार्थ जानने के लिये कपिल मुनि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के पास जा रहा था कि रास्ते में आप मिल गये। महर्षि कपिल सर्वभूतस्वरूप भगवान विष्णु के अंश हैं, संसार के मोह का नाश ही उनका कर्म है। मुझे लगता है कि मेरे हित की कामना के लिये वे आपके रूप में प्रकट हुए हैं, मेरे मोह का नाश करने के लिये जो परम श्रेय है उसका मुझे ज्ञान दीजिये।

जड़भरत ने कहा कि श्रेय की बात बहुत विलक्षण है। जो मनुष्य देवता की आराधना कर धन-सम्पत्ति चाहता है, पुत्र तथा राज्य की अभिलाषा करता है उसके लिये ये वस्तु ही श्रेय हैं पर विवेकी और आत्मज्ञानी पुरुष के लिये परमात्मा की प्राप्ति ही श्रेय है। सदा परमात्मा का चिंतन करना चाहिये, उनका संयोगरूप ही श्रेय है। आत्मा व्यापक, सम, शुद्ध, निर्गुण और प्रकृति से परे है, उसमें जन्म, वृद्धि और मृत्यु आदि विकार नहीं हैं। वह सर्वत्र तथा परम ज्ञान मय है। वह अपने और दूसरे के शरीर में रहते हुए भी एक ही है। यह आत्मज्ञान ही परमार्थ है।

राजा रहूगण ने जड़भरत से आत्मज्ञान प्राप्त कर भेद-बुद्धि त्याग दी। जड़भरत भी अपने इस अन्तिम जन्म में मुक्त हुए। आत्मज्ञान के इतिहास में महात्मा जड़भरत का नाम अमर है। मनुष्य शरीर पाकर उन्होंने आत्मा की प्राप्ति की, आत्मज्योति से सांसारिक मोहान्धकार का नाश कर लोक-कल्याण किया।

वाणी

यावन्मनो रजसा पुरुषस्य सत्त्वेन वा तमसा वानुरुद्धम्।
चेतोभिराकूति भिरातनोति निरंकुशं कुशलं चेतरं वा॥

जब तक मनुष्य का मन सत्व, रज अथवा तमो-गुण के वशीभूत रहता है तब तक वह बिना किसी अंकुश के उसकी कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय से शुभाशुभ कर्म कराता रहता है।

श्रीमद्भा. ५-११-४

दुःखं सुखं व्यतिरिक्तं च तीव्रं कालोपपन्नं फलमाव्यनक्ति।
आलिङ्गय माया रचितान्तरात्मा स्वदेहिनं संसृतिचक्रकूट:॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यह मायामय मन संसार-चक्र में छलने वाला है। यही अपनी देह के अभिमानी जीव से मिल कर उसे कालक्रम से प्राप्त हुए सुख-दुख और इनसे व्यतिरिक्त मोहरूप अवश्यम्भावी फलों की अभिव्यक्ति करता है।

श्रीमद्भा. ५-११-६

गुणानुरक्तं व्यसनाय जन्तोः क्षेमाय नैर्गुण्यमथो मनः स्यात्।
यथा प्रदीपो घृतवर्त्तिमश्नन् शिखाः सधूमा भजति ह्यन्यदा सदा॥

विषयासक्त मन जीव को संसार-संकट में डाल देता है, विषयहीन होने पर वही उसे शान्तिमय मोक्षपद प्राप्त कराता है। जिस प्रकार घी से भीगी बत्ती को खाने वाले दीपक से तो धूमवाली शिखा निकलती रहती है और जब घी समाप्त हो जाता है तब वह अपने कारण अग्नितत्व में लीन हो जाता है, इसी प्रकार विषय और कर्मों से आसक्त हुआ मन तरह-तरह की वृत्तियों का आश्रय लिये रहता है और इनसे मुक्त होने पर वह अपने तत्व में लीन हो जाता है।

श्रीमद्भा. ५-११-८

ज्ञानं विशुद्धं परमार्थमेक मनन्तरंत्वबहिर्ब्रह्म सत्यम्।
प्रत्यक् प्रशान्तं भगवच्छब्दसंज्ञं यद् वासुदेवं कवयो वदन्ति॥
रहूगणैतत्तपसा न याति न चेज्यया निर्वपणाद् गृहाद्वा।
न च्छन्दसानैव जलाग्निसूर्यैं विना महत्पादरजोऽभिषेकम्॥

विशुद्ध, परमार्थ रूप, अद्वितीय तथा भीतर-बाहर के भेद से रहित परिपूर्ण ज्ञान ही सत्य वस्तु है। वह सर्वान्तर्वर्ती और सर्वथा निर्विकार है। वही भगवान है, वासुदेव है।

महापुरुषों की चरण-धूलि से अपने को नहलाये बिना केवल तप, यज्ञादि वैदिक कर्म, अन्नादि के दान, अतिथि-सेवा, दीन-सेवा आदि गृहस्थोचित धर्मानुष्ठान, वेदाध्ययन अथवा जल, अग्नि, या सूर्य की उपासना या किसी भी साधना से यह परमात्मज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता।

श्रीमद्भा. ५-१२-११, १२

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परम भागवत शुकदेव

'जिन महापुरुषों के चित्त में उत्तमश्लोक हरि के पादपद्मों की छाया ने संसार के तुच्छ भोगों से विरक्ति उत्पन्न कर दी है, उनमें कुटुम्बी होने की स्पृहा नहीं होती।'

—श्रीमद् भागवत

परम भागवत शुकदेव का नाम भगवद्भक्ति के इतिहास में अमर है, वे उच्च कोटि के ज्ञानी भक्त थे, उन्होंने मृत्यु पर अमरता की विजयिनी भागवत पताका फहरायी, आत्मा का परमात्मा के भक्ति राज्य में प्रवेश कराने में ही उन्होंने अपनी आत्मशान्ति स्थिर की। द्वापर और कलियुग की सीमा पर उन्होंने भगवद्भक्ति की स्वर्णिम दीवार उठा कर मानवता की पाप और अज्ञान के तामस राज्य में जाने से रक्षा की। उन्होंने विश्व को भागवत साहित्य सुनाया, भागवती कथा का दान किया। भक्ति के बारह आचार्यों में उनकी गणना होती है। वे भक्त परमहंस थे। उन्होंने परम शुद्ध, अत्यन्त गोपनीय भागवत धर्म का मर्म समझा कर प्राणियों को भगवत्स्वरूप का ज्ञान कराया।

उनके प्राकट्य के कुछ समय पहले ही भगवान श्री कृष्णने महाभारत के युद्ध के फलस्वरूप दुर्योधन के प्रवृत्ति-राज्य को मिटा कर युधिष्ठिर की धर्ममूलक निवृत्ति-सत्ता की स्थापना करायी थी। महाभागवत शुकदेव ने भरतश्रेष्ठ परीक्षित् को गंगा के परम पवित्र तट पर श्रीभागवत की कथा सुनाकर तक्षक के दंशन-भय की ज्वाला शान्त कर उन्हें वैकुण्ठ में निश्चित जाने का साधन बताया था। उस समय पाप और पुण्य, असत्य और सत्य तथा अधर्म और धर्म में विकट संघर्ष हो रहा था। चारों ओर कलि का प्रभाव स्पष्ट दीख पड़ता था। द्वापर और कलियुग के सन्धिकाल में शुकदेव ने लोगों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

को भागवतधर्म समझाया। भागवत विधान की रक्षा कर वैदिक और शास्त्रीय मर्यादा अक्षुण्ण रखी। शुकदेव ने आत्मारमण को भगवदाकारता के अलंकार से समलंकृत किया। भगवद्भक्ति के असीम रससागर में वे मग्न हो गये। शुकदेव जी नितान्त भगवत्स्वरूप और भागवताचार्य थे।

शुकदेव के जन्म और कर्म दिव्य तथा असाधारण थे। श्रीमद् भागवत तथा अन्य पुराणों में कल्पभेद के अनुक्रम से उनके जन्म की कथायें विभिन्न रूप में मिलती हैं। वे भगवान के लीलाचिन्तकों में अत्यन्त मौलिक और महत्वशाली भागवत यन्त्र स्वीकार किये जाते हैं।

शुक का पृथ्वी पर प्राकट्य उनके पिता महर्षि व्यास के तप-स्वरूप शंकर जी की प्रसन्नता से हुआ था। ऐसा कहा जाता है कि व्रज में भगवान श्रीकृष्ण के लीलाविग्रह धारण करने पर गोलोक से लीलाशुक का अवतरण हुआ। कैलास पर शंकर पार्वती को भगवान की अमरत्वप्रदायिनी लीला सुना रहे थे। शुक उसी स्थान पर समासीन होकर भागवती कथा का रसास्वादन कर रहे थे। पार्वती कथा में आत्मविभोर हो गयी थीं और आशंका थी कि हुँकारी के अभाव में शंकर कथा वन्द कर देते इसलिये कथा के प्रवाह-क्रम को अक्षुण्ण रखने के लिये शुकदेव हुँकारी भरते गये। शंकर को जब यह ज्ञात हुआ कि कथा एक ऐसे पक्षी, देहधारी ने सुन ली है जो श्रवण-अधिकारी नहीं था, वे त्रिशूल लेकर मारने दौड़े। शुक उड़ते हुए व्यास के आश्रम में पहुँच गये और उनकी पत्नी के मुख से उदर में प्रवेश किया, लीलाशुक के जन्म-ग्रहण की यह दिव्य कथा है। ऐसा भी उल्लेख है कि महर्षि व्यास पुत्र के अभाव से दुखी थे। यद्यपि वे वीतरागी महात्मा थे तो भी सन्तान-प्राप्ति में उनकी स्वाभाविक रुचि थी। उन्होंने सौ वर्ष तक शंकर की प्रसन्नता से पुत्रप्राप्ति करने के लिये सुमेरु-शिखर पर तप किया। शंकर और पार्वती ने अपनी विहार-स्थली में प्रकट होकर उन्हें सन्तान-प्राप्ति का वरदान दिया। इसी प्रकार ऐसा भी कहा जाता है कि एक बार व्यास अरणिमन्थन कर रहे थे। महाभारत में ऐसी कथा है कि अरणिमन्थन के समय उनकी दृष्टि घृताची अप्सरा पर पड़ गयी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उसके सौन्दर्य ने व्यास का मन मुग्ध कर लिया। अरणी के काष्ठ पर उनका वीर्य स्खलित हुआ। पर मन्थन का क्रम चलता रहा। इस वीर्यस्खलन के रूप में शुकदेव का जन्म हुआ।

शुकदेव बारह साल तक गर्भस्थ रहे। उनका दृढ़ विश्वास था कि जब तक जीव गर्भस्थ रहता है तब तक ज्ञान प्रकाशित रहता है और गर्भ से बाहर आते ही उसे माया-मोह आदि घेर लेते हैं। वह सत्य भलकर असत्य के भ्रम में पड़ जाता है। उसके लिये संसार में आते ही सगे-सम्बन्धी आत्मविस्मरण का पथ प्रशस्त कर देते हैं। देवर्षि नारद के द्वारा भगवान श्रीकृष्ण से आश्वस्त होकर शुकदेव गर्भ से बाहर आये। उनका शरीर दिव्य वर्ण का था। गंगा ने प्रकट होकर उनका अभिषेक किया। तुम्बरू और नारद आदि उनकी स्तुति करने लगे। वायुदेवता ने पुष्प-वृष्टि की। शुकदेव तत्काल संन्यास-ग्रहण के लिये वन की ओर चल पड़े। परम कोमल सुकुमार सन्तान को वन की ओर जाते देख कर महर्षि व्यास विरह से व्याकुल हो उठे। वे शुकदेव के पीछे-पीछे 'पुत्र-पुत्र' पुकारते चल पड़े। उन्होंने विह्वल होकर कहा कि यह तो बालक्रीड़ा का समय है, संन्यास का समय तो बहुत दिनों के बाद आता है। शुकदेव आत्ममय थे, वृक्षों ने उनकी ओर से व्यास के वचनों का उत्तर दिया।

व्यास शुकदेव के पीछे चले जा रहे थे कि एक विलक्षण घटना से वे आश्चर्य चकित हो गये। वन में एकान्त सरोवर में कुछ देवाङ्गनायें स्नान कर रही थीं। व्यास जी को आते देख कर उन्होंने शीघ्रता से वस्त्र पहन लिये। व्यास जी ने कहा कि मेरा पुत्र युवक है, दिगम्बर है, इसी मार्ग से अभी-अभी गया है। तुम लोगों ने जलक्रीड़ा का क्रम प्रचलित रखा पर मुझ वृद्ध के प्रति इस प्रकार का लज्जाभाव मुझे उत्तरोत्तर विस्मित कर रहा है।

देवाङ्गनाओं ने कहा कि महर्षि, आप में अभी स्त्री-पुरुष का भेद है पर आपके आत्मज्ञानी पुत्र शुकदेव की दृष्टि में स्त्री-पुरुष का भाव नहीं है, वे सर्वात्मबोधस्वरूप हैं। उनके सम्मुख वस्त्र का पहिनना या न पहिनना दोनों समान हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्यास लौट आये। वे आत्मज्ञानी और परमदार्शनिक तथा भगवत्तत्व के ज्ञाता थे इसलिये उनके मन को पिता-पुत्र का सम्बन्ध विक्षुब्ध न कर सका। व्यास जी की बड़ी अभिलाषा थी कि वे शुकदेव को शास्त्रीय ज्ञान दें। यद्यपि शुकदेव आत्माराम-ब्रह्मनिष्ठ थे तो भी व्यास उनको श्रोत्रिय बनाना चाहते थे। एक बार वन में व्यास के शिष्य भगवान की लीला का एक श्लोक गा रहे थे। आत्माराम शुक को यह श्लोक बहुत अच्छा लगा। श्लोक तो व्यास ने शुक को अपने पास बुलाने के लिये ही रचा था, शुक ने उनके पास आव भगवल्लीला का ज्ञान प्राप्त किया।

व्यास के रमणीय आश्रम में रह कर जातविरक्त शुकदेव ने अध्ययन आरम्भ किया, स्वाध्याय के रसास्वादन में आत्मोपासना करने लगे। थोड़े ही समय में उन्होंने मोक्ष के मार्ग की जानकारी प्राप्त कर ली। शुकदेव को आत्मशान्ति की परमावश्यकता थी। आत्मशान्ति की खोज में वे अपने पिता महर्षि व्यास के आदेश से मिथिलानरेश जनक से मोक्ष का स्वरूप समझने गये। जनक आत्मदर्शन के बहुत बड़े ज्ञाता और परम योगनिष्ठ थे। शुकदेव आत्मा के राज्य में विचरण करने वाले विषय-सुख, मानापमान से परे उच्च कोटि के महात्मा थे। उन्होंने मिथिला में प्रवेश किया। नगर में प्रवेश करते ही उनकी परीक्षा आरम्भ हुई। पहले राजद्वार पर पहुँचते ही द्वारपालों ने उन्हें भीतर जाने से रोक दिया। शुकदेव के मन में इससे कोई आत्मग्लानि नहीं हुई। महायोगी शुक भूख-प्यास से रहित होकर धूप में बैठ गये और ध्यानावस्थित हो गये। थोड़े समय में दूसरे द्वारपाल ने सम्मानपूर्वक राजमहल के दूसरे कक्ष में उनका प्रवेश कराया। अन्तःपुर से सम्बन्धित चैत्ररथ वन के समान एक रमणीय उपवन में एक सुन्दर आसन पर बैठ गये। राजा जनक ने आगमन की सूचना पाकर उनके हार्दिक भाव को समझने के लिये अनेक रमणियों को सेवाकार्य में नियुक्त किया, शुकदेव कामिनी-कंचन से अतीत थे। उनके वेश परम रमणीय और मनोहर थे, वे पूर्ण तरुणी थीं। उनके वस्त्र लाल रंग के थे, मनोहर और चित्ताकर्षक थे। उनके शरीर पर सोने के आभूषण चमक रहे थे, उनकी कान्ति प्रतिक्षण बढ़ती जा रही थी। उन्होंने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शुकदेव के लिये पाद्य और अर्घ्य आदि प्रस्तुत किये। भोजन आदि से तृप्त् किया। एक युवती ने उनको अपने साथ ले जाकर अन्तः-पुर का वन दिखलाया। शुकदेव परम वैराग्यसम्पन्न थे, इन सब बातों का उनके मन पर तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा। दूसरे दिन राजा जनक मन्त्रियों सहित शुकदेव का स्वागत करने आये, उन्होंने अमित विनम्रता, श्रद्धा और सहृदयता से अवधूत का स्वागत किया। उनकी यथोचित पूजा कर बैठने के लिये रत्नसिंहासन प्रदान किया। शुभा-गमन का कारण पूछा। शुकदेव ने कहा कि मैं अपने पिता की आज्ञा से आप से मोक्षतत्व समझने आया हूँ। मुझे कर्तव्य का प्रकाश दीजिये। राजा जनक ने कहा कि ज्ञान-विज्ञान के बिना मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है। गुरु संसार सागर से अपनी ज्ञान-नौका द्वारा पार उतार देते हैं। सत्कर्मों का अनुष्ठान करते हुए शुभाशुभ अकर्मों की आसक्ति का त्याग हो जाने पर मोक्ष मिलता है। आत्मज्योति का प्रकाश भीतर ही है। यह सम्पूर्ण प्राणियों के भीतर समान रूप से स्थित है, समाधिस्थ होने पर उसका दर्शन होता है। जिनसे दूसरा कोई प्राणी नहीं डरता है, जो स्वयं किसी दूसरे प्राणी से भयभीत नहीं होते हैं तथा इच्छा-द्वेष से रहित हो गये हैं वे ब्रह्मभावापन्न हैं। जो प्राणी, मन, वाणी और क्रिया से किसी की भी बुराई नहीं करते हैं वे ब्रह्मरूप हैं। मोह में डालने वाले काम, ईर्ष्या और लोभ का त्याग कर जो तप में लग जाते हैं वे ब्रह्मानन्द का अनुभव करते हैं। जिस प्रकार अन्धकार से व्याप्त घर दीपक के प्रकाश से प्रकाशित होता है उसी प्रकार बुद्धिरूपी दीपक की सहायता से आत्मा का दर्शन होता है। जनक ने शुकदेव से कहा कि आप की स्थिति मोक्ष में है, आप ज्ञान-विज्ञान के ऐश्वर्य से पूर्ण सम्पन्न हैं। शुकदेव बुद्धि-द्वारा आत्मसाक्षात्कार कर ब्रह्मानन्द में मग्न हो गये। उन्हें परम शान्ति और परम आनन्द का अनुभव हुआ। जनक से अध्यात्म-विद्या का उपदेश पाकर वे अपने पिता के आश्रम को लक्ष्य कर हिमालय की ओर चल पड़े। उन्होंने पिता को आदरपूर्वक प्रणाम किया। व्यास ने उनका प्रेमालिंगन किया। शुकदेव ने लम्बे समय तक अपने पिता के पास रह कर वेदों का अध्ययन किया। उन्होंने दिव्यदृष्टि प्राप्त की। व्यास ने शुकदेव को परम रसमय भागवत-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शास्त्र पढ़ाया। वे भागवतरस के समुद्र में मग्न हो उठे। आत्म-ज्ञान की गंगा में व्यास की सरस्वती ने प्रेम की कालिन्दी उत्पन्न कर शुकदेव को भगवद्भक्ति प्रदान की।

शुकदेव ने गंगा के तट पर मृत्युशापग्रस्त परीक्षित् को भागवत सप्ताह सुनाकर अमरता का सन्देश दिया था। परीक्षित् अर्जुन के पौत्र थे। पाण्डवों के महाप्रस्थान के बाद वे पृथ्वी का शासन करने लगे। उन्होंने कलियुग का दमन किया। एक बार वन में मृगया खेलते समय उन्हें प्यास लगी। उन्होंने शमीक ऋषि के आश्रम में पहुँच कर पानी मांगा, ऋषि ने मौनव्रत लिया था इसलिये राजा ने अज्ञानपूर्वक उनके गले में एक मृतक साँप लटका दिया। राजधानी में लौट आये। शमीक के पुत्र ने राजा को सातवें दिन तक्षक द्वारा डसे जाने का शाप दे दिया। राजा परीक्षित् शाप की सूचना पाते ही राज्य जन्मेजय को सौंप कर गंगातट पर चले गये। उन्होंने आमरण अनशनव्रत लेकर श्रीकृष्ण में ध्यान लगाया। बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि उनकी मृत्यु-लीला देखने के लिये उपस्थित थे। अत्रि, वशिष्ठ, च्यवन, अंगिरा, पराशर, गौतम आदि का आगमन वातावरण में पवित्रता और दिव्यता का संचार कर रहा था। उसी समय गंगातट पर परमभागवत शुकदेव का आगमन हुआ। शुकदेव ने परम वैष्णव परीक्षित् पर बड़ी कृपा की। शुकदेव वर्णाश्रम के बाह्य चिह्नों से रहित थे, आत्मानुभूति में संतुष्ट थे, सोलह साल की अवस्था थी, शरीर की श्याम कान्ति बड़ी मादक और दिव्य थी। लोगों ने उन्हें यथेष्ट सम्मान दिखाया, परीक्षित् ने प्रणाम किया, उनके सुकुमार अंग की मृदुता और घुँघराले बालों की श्यामता से लोग विमुग्ध थे। परम आत्मतेज में वे रमणशील थे। परीक्षित् ने उनसे पूछा कि जो मरणासन्न है उसे क्या करना चाहिये। ब्रह्मस्वरूप शुकदेव ने परीक्षित् के प्रश्नों का उचित उत्तर दिया, उनकी शंकाओं का आत्मज्ञान और भागवत रस के प्रकाश में समाधान किया। अमरता का सन्देश सुनाया। सात दिनों में सम्पूर्ण भागवत पुराण सुनाकर उन्हें मृत्यु से अभय कर भगवान की भक्ति से सचेत और सावधान कर दिया। यद्यपि शुकदेव जी किसी गृहस्थ के घर उतनी देर से अधिक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नहीं ठहरते थे जितनी देर में गाय दुही जाती है तो भी उन्होंने परीक्षित् पर सात दिनों तक अहैतुकी कृपा की। निस्सन्देह गंगातट पर सुनाये गये भागवत के श्लोक मृत्यु पर विजय पाने के ब्रह्मास्त्र हैं, अमोघ साधन हैं। श्रीभागवत पुराण अमरता का साहित्य है, परमयोगी शुकदेव की साधनाकल्पलता का अमर फल है।

उन्होंने भागवत शास्त्र का प्रचार किया। निस्सन्देह भागवत वेदरूपी कल्पवृक्ष का सरस फल है। शुकदेव रूपी शुक के मुखसम्बन्ध से यह परमानन्दमयी सुधा से परिपूर्ण मूर्तिमान् रस है। परम भागवत शुकदेव की यह बहुत बड़ी देन है।

व्यास के आकाशगंगा के तट पर चले जाने पर एक बार शुकदेव ने नारद से कल्याण का मार्ग पूछा; उन्होंने कहा कि ऐसा उपाय बताइये कि संसार में न आना पड़े। नारद ने समाधान किया।... शुकदेव कैलास पर्वत पर गये। पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठ गये। सूर्योदय काल था, वे सूर्य मण्डल में लीन हो गये, उन्होंने परम गति प्राप्त की। व्यास इस दृश्य से विह्वल हो गये। भगवान शंकर की कृपा से उन्होंने शुकदेव का छाया-दर्शन किया। शंकर ने साक्षात् प्रकट होकर व्यास को आश्वासन दिया कि जब तक जगत में समुद्र और पर्वत की सत्ता है, तब तक उनकी कीर्ति अमर रहेगी। शुकदेव के प्राकट्य और परमगति-प्राप्ति—दोनों-के-दोनों दिव्य और रहस्य पूर्ण हैं।

वाणी

एतावान् सांख्ययोगाभ्यां स्वधर्मपरिनिष्ठया।
जन्मलाभः परः पुंसामन्ते नारायणस्मृतिः॥

मनुष्य के जन्म का यही, इतना ही लाभ है कि चाहे जैसे हो, ज्ञान से, भक्ति से अथवा अपने धर्म की निष्ठा से जीवन को ऐसा बना लिया जाय कि मृत्यु के समय भगवान की स्मृति अवश्य बनी रहे।

श्रीमद्भा. २-१-६

अन्तकाले तु पुरुषः आगते गतसाध्वसः।
छिन्द्यादसङ्गशस्त्रेण स्पृहां देहेऽनु ये च तम्॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मृत्यु का समय आने पर मनुष्य घबड़ाये नहीं। उसे चाहिये कि वैराग्य के शस्त्र से शरीर और उससे सम्बन्ध रखने वालों के प्रति ममता को काट दे—आसक्ति मिटा दे। श्रीमद्भा. २-१-१५

न ह्यतोऽन्यः शिवः पन्था विशतः संसृताविह।
वासुदेवे भगवति भक्तियोगो यतो भवेत्॥

संसार-चक्र में पड़े हुए मनुष्य के लिये, जिस साधन के द्वारा उसे भगवान श्रीकृष्ण की अनन्य प्रेममयी भक्ति प्राप्त हो जाय, उसके अतिरिक्त और कोई भी कल्याणकारी मार्ग नहीं है। श्रीमद्भा. २-२-३३

पिबन्ति ये भगवत आत्मनः सतां कथामृतं श्रवणपुटेषु सम्भृतम्।
पुनन्ति ते विषयविदूषिताशयं व्रजन्ति तच्चरणसरोरुहान्तिकम्॥

सन्त पुरुष आत्मस्वरूप भगवान की कथा का मधुर अमृत बाँटते ही रहते हैं। जो अपने कान के दोनों में भर कर उसका पान करते हैं, उनके हृदय से विषयों का विषैला प्रभाव जाता रहता है, शुद्ध हो जाता है; वे भगवान के चरणकमलों की संनिधि प्राप्त कर लेते हैं। श्रीमद्भा. २-२-३७

श्रुतः संकीर्तितो ध्यातः पूजितश्चादृतोऽपि वा।
नृणां धुनोति भगवान् हृत्स्थो जन्मायुताशुभम्॥

भगवान के रूप, गुण, लीला, धाम और नाम के श्रवण, संकीर्तन, ध्यान, पूजन और आदर से वे मनुष्य के हृदय में आकर विराजमान हो जाते हैं। असंख्य जन्म के पाप के ढेर-के-ढेर भी क्षण भर में भस्म कर देते हैं। श्रीमद्भा. १२-३-४६

संसारसिन्धुमतिदुस्तर मुत्तितीर्षो
र्नान्यः प्लवो भगवतः पुरुषोत्तमस्य।
लीलाकथारसनिषेवणमन्तरेण
पुंसो भवेद् विविधदुःखदवार्दितस्य॥

जो लोग अत्यन्त दुस्तर संसार-सागर से पार जाना चाहते हैं अथवा जो लोग अनेक प्रकार के दुखदावानल से दग्ध हो रहे हैं, उनके लिये पुरुषोत्तम भगवान के लीलाकथारूपरस के सेवन के अतिरिक्त और कोई साधन-नौका नहीं है। केवल लीलारसायन के सेवन से ही अपना मनोरथ सिद्ध कर सकते हैं। श्रीमद्भा. १२-४-४०

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महात्मा बुद्ध

'धर्म-दान सब दानों से श्रेष्ठ है, धर्म-रस सर्वोत्तम रस है। धर्म-रति परम रति है। तृष्णा-क्षय समस्त दुखों पर विजयी होता है।'

—धम्मपद

महात्मा और सन्त सदा सत्य और आत्मा का चिन्तन करते हैं, वे नश्वर संसार में रहते हैं पर संसार को अपने मन में नहीं भरते हैं। वे आत्मदान को ही परम शान्ति और लोक-कल्याण का महान साधन मानते हैं। वे प्रत्यक्ष—संसार के स्वरूप को जानते हैं और अप्रत्यक्ष—आत्मा अथवा परमात्मा से सम्बन्ध जोड़ कर विश्वासपूर्वक सच्चिदानन्द में रमण करते हैं। लगभग ढाई हजार साल पहले की बात है कि हिमालय की तलहटी में कपिलवस्तु में महात्मा गौतम बुद्ध का अवतरण हुआ। उन्होंने अपने आत्मज्ञान अथवा संबोधि से केवल कोशल, मगध और काशी के जनसमूह का ही कल्याण नहीं किया, समस्त विश्व को संसार की नश्वरता और परम शान्ति की आवश्यकता का पाठ पढ़ाया। उनका आत्मसन्देश सनातन, चिरन्तन और अमिट है। उनके जीवन-काल में बड़े-बड़े सम्राटों और शासकों ने, बड़े-बड़े ज्ञानमहारथी और दार्शनिकों ने तथा बड़े-बड़े महात्माओं और सन्तों ने उनके सत्य-धर्म का वरण किया। विलक्षणता तो यह है कि उनके महानिर्वाण से लेकर आज तक धरती उनके आत्मज्ञान से हरीभरी है। चीन, जापान, ब्रह्मदेश, सीरिया तथा अन्य भूभागों में बौद्ध धर्म फूलता-फलता आ रहा है; अशोक ऐसे शक्तिशाली सम्राट ने, हर्ष ऐसे महाराजाधिराज ने, समुद्रगुप्त ऐसे दिग्विजयी महाशासक ने इसके प्रति पूर्ण रुचि, सहानुभूति और उदारता दिखायी; अश्वघोष ऐसे महाकवि ने, वसुबन्धु, असंग, नागार्जुन ऐसे महादार्शनिकों ने इसका चिन्तन किया। फाहियान, ह्वेनसांग तथा इत्सिंग ऐसे धर्म-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रेमी विदेशी यात्रियों ने बौद्ध धर्म के महासागर के सारनाथ, कुसीनगर, लुम्बिनी, नालन्दा आदि तटों पर अपने जीवन के जहाज़ स्थित किये। विचित्रता तो यह है कि वैराग्यरागरसिक परम सन्त व्यास ने अपने भागवत पुराण में महात्मा बुद्ध को भगवान का अवतार स्वीकार किया। बारहवीं शती में रसिक सन्त कवि जयदेव ने अपने गीतगोविन्द काव्य में भगवान बुद्ध का भागवत अवतार के रूप में स्तवन किया। पृथ्वी से अविद्या-अन्धकार का अन्त करने के लिये तथा प्राणियों में सत्य, शान्ति और कल्याण की प्रतिष्ठा करने के लिये ही महात्मा बुद्ध ने जन्म लिया था।

महात्मा बुद्ध का जन्म कपिलवस्तु राज्य के लुम्बिनीउपवन में विक्रमीय सम्वत से ५०० साल पहले महारानी मायावती के गर्भ से हुआ था। उस समय महारानी अपने नैहर जा रही थीं। मार्ग केले के स्तम्भ, बन्दनवार, जलपूर्ण कलश और गगन चूमने वाली ध्वजा-पताकाओं से शोभित था। महारानी रत्नजटित सोने की पालकी में थीं, लुम्बिनीउपवन में प्रवेश करते ही शालतरु के नीचे उनके गर्भ से बुद्ध प्रकट हुए। वे सर्वथा शुद्ध और चिन्मय थे। महाब्रह्मा ने सोने के जाल में उन्हें ग्रहण किया, कोमल मृगचर्म में रखा, रेशमी वस्त्र में लपेट कर मनुष्य के हाथ में दिया। शिशुरूप में बुद्ध पृथ्वी पर खड़े हो गये, उत्तर दिशा की ओर सात वार गमन कर उन्होंने कहा:

मैं संसार में अग्रणी हूँ।
मैं संसार में श्रेष्ठ हूँ।
मैं संसार में अतुल हूँ।
मैं संसार के लोगों को बोधिज्ञान दूँगा।
मैं संसार के लोगों को मुक्त करूँगा।
मैं संसार के लोगों का उद्धार करूँगा।
मैं अपना उद्धार करूँगा।

उनके पिता महाराजा शुद्धोदन ने असंख्य द्रव्य-दान किया, बड़े-बड़े उत्सव किये। बुद्ध के उत्पन्न होते ही दिशायें दिव्य हो उठीं, चारों ओर मंगल का साम्राज्य छा गया। उनके जन्म के पहले ही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ज्योतिषियों ने घोषणा की थी कि गर्भस्थ कुमार बड़े तेजस्वी और प्रतापी होंगे, बड़े-बड़े चक्रवर्ती सम्राट और धर्म-गुरु उनके चरणों में विनत होंगे और समस्त संसार उनका आदर करेगा। सात दिन के बाद कुमार की माता का परलोकवास हो गया। उनके लालन-पालन और भरण-पोषण का भार सौतेली माता प्रजावती ने सम्हाला। कुमार का नाम सिद्धार्थ रखा गया।

सिद्धार्थ शुक्ल पक्ष की चन्द्रमा के समान धीरे-धीरे बढ़ने लगे पर वे साधारण बालकों की तरह क्रीड़ासक्त नहीं थे। उनका मन खेल आदि में नहीं लगता था। उनके खेलने के लिये बहुमूल्य चन्दन और औषधि से भरे रत्नहार, मृगयुक्त छोटे-छोटे स्वर्णरथ, स्वर्ण के हाथी, छोटे-छोटे घोड़े और स्वर्ण पुतली तथा अन्य सामान थे पर उनका मन इनमें लगता ही नहीं था। पांच साल की ही अवस्था से उन्हें अक्षरज्ञान का अभ्यास कराया जाने लगा। युद्धविद्या, बाणविद्या और घोड़े की सवारी की कला में उन्होंने अल्प वयस में ही निपुणता प्राप्त कर ली थी। उनमें बचपन से ही दैवी गुणों का पोषण आरम्भ हो गया। जीवों के प्रति दया का भाव दृढ़ हो गया। उनके बचपन का साथी देवदत्त उनसे जलता था। एक बार खेल-ही-खेल में देव-दत्त के बाण से घायल होकर एक हंस पृथ्वी पर गिर पड़ा। सिद्धार्थ का हृदय उसकी पीड़ा से द्रवित हो उठा, उन्होंने हंस को गोद में रख कर बड़े प्यार से बाण निकाल कर बाहर किया। लहू पोंछ कर उसका शरीर अपनी कोमल अंगुलियों से सहलाया। देवदत्त द्वारा हंस मांगने पर उन्होंने निर्भयतापूर्वक कहा कि यह हंस हमारा हो गया, मैंने इसकी रक्षा की है। जीव मारने वाले की अपेक्षा जीव की रक्षा करने वाले का अधिकार जीव पर अधिक होता है।

कुमार को राग-रंग में अनासक्त होते देखकर महाराज शुद्धोदन की चिन्ता बढ़ने लगी। उन्होंने कुमार का विवाह करने का निश्चय कर लिया, उन्हें भय था कि कहीं ऐसा न हो कि सिद्धार्थ संन्यास ले लें। देवदह की राजकुमारी यशोधरा से उनका विवाह कर दिया। राग-रंग और भोग-विलास में जीवन बीतते देखकर उन्होंने सोचा कि मैं संसार में किसी असाधारण कार्य के लिये आया हूँ। विनश्वर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वस्तु से सम्बन्ध होना तो राग है—अविद्या है। कभी-कभी वे एकान्त में बैठ कर गम्भीर चिन्तन किया करते थे कि मेरे ही समान संसार के दूसरे लोग सुखी और भोगी तथा विलासी नहीं हैं। मेरा कर्तव्य है कि मैं सबको सुखी और आनन्दित करूँ।

एक दिन कुमार ने नगर-उद्यान देखने का विचार किया। शुद्धोदन ने प्रयत्न किया कि नगर में कोई भी भूखा न दीख पड़े, कोई बूढ़ा कुमार के सामने न आये और न कोई दुखद घटना ही घटे जिससे कुमार के मन में वैराग्य का उदय हो। कुमार ने सारथी को रथ लाने का आदेश दिया। उत्तम स्वर्ण रथ अलंकारों से सजाया गया, श्वेत कमलपत्र के समान चार मंगल-सिन्धुदेशीय घोड़े जोते गये। कुमार रथ पर आरूढ़ होकर चल पड़े। मार्ग पर श्वेत पुष्प बिखरे थे, वन्दनवार और चंचल पताकायें पथ की शोभा बढ़ा रहे थे। स्त्रियां प्रकोष्ठों में स्थित होकर उनके दिव्य सौन्दर्य से अपने नेत्र शीतल कर रही थीं। कुमार के संबोधि-लाभ में ये राग-रंग बहुत बाधक थे। देव-प्रेरणा से उन्हें इस विहार-काल में विचित्र शकुन दीख पड़े।

कुमार ने मार्ग में जरा से आक्रान्त पुरुष देखा, उसके दाँत टूटे हुए थे, केश श्वेत थे, हाथ में लकड़ी थी, शरीर अवनत था। सिर काँप रहा था। कुमार ने ऐसा पुरुष पहले नहीं देखा था। सारथी ने कुमार का समाधान किया। वे सोचने लगे कि जन्म लेने वाले को धिक्कार है जिसे ऐसी बुढ़ापा सताती है। वे चिंतित होकर लौट आये। दूसरे दिन उद्यान-विहार के लिये जाते समय कुमार ने रोगी पुरुष देखा। तीसरे दिन मृत व्यक्ति को देखा। मन ग्लानि और शोक से संविग्न हो उठा। चौथे दिन चीवरयुक्त एक प्रव्रजित संन्यासी को देखा। उनकी प्रव्रज्या में रुचि बढ़ गयी। संन्यास के प्रति मन में अनुराग उत्पन्न हुआ। उनके अभिनिष्क्रमण का समय निकट था। उद्यान-विहार में राग-रंग के सब सामान थे पर वे उन्हें बन्धन के समान दीख पड़े। कुमार नगर से राजप्रासाद में प्रवेश ही कर रहे थे कि कृशा गौतमी ने उनको पुत्र-जन्म का सन्देश दिया। परम शांत स्थिति का निरूपण किया। 'पुत्र राहु है, बन्धन है',—कुमार की अनासक्ति बढ़ती गयी। उन्होंने सोचा कि परमशांत पिता-माता-नारी-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पति की स्थिति का सन्देश मेरे लिये मंगलमय है। रागरूपी अग्नि के शांत होने से दोष-अग्नि शांत होती है। दोषाग्नि के शांत होने पर मोह शांत होता है, मोह के शांत होने पर अभिमान मिटता है, अभिमान मिटने पर परमशांति मिलती है। उन्होंने एक कीमती हार कृशा गौतमी को उपहार दिया।

उनका मन खिन्न था। उन्होंने पिता से संन्यास लेने की बात कही कि यदि आप मुझे विश्वास दें कि मैं कभी मरूँ नहीं, बूढ़ा न होऊँ, रोगी और दरिद्र न होऊँ तो गृहत्याग का संकल्प छोड़ सकता हूँ। शुद्धोदन निरुत्तर थे। कुमार ने कहा कि मैं उस बोधि-ज्ञान को प्राप्त करूँगा जिससे जरा-मत्यु-व्याधि से ग्रस्त दुःखित जीवों का उद्धार कर सकूं।

कुमार अपने शयनकक्ष में जाकर पलंग पर लेट गये। यौवन-मद से मत्त युवतियां अनेक राग-रंग से उनका मन बहलाने के लिये उपस्थित थीं। कुमार सो गये। स्त्रियों ने सोचा कि जिनका मनोरञ्जन हमारा कर्तव्य है वे सो गये। वे भी सो गयीं। कुमार सचेत हो उठे। उन्होंने युवतियों के नश्वर रूप का निरीक्षण किया। किन्हीं के मुख से कफ निकल रहा था, किन्हीं के शरीर लार से प्लावित थे। कुमार की विरक्ति और भी दृढ़ हो गयी।

कुमार ने छन्दक को घोड़ा लाने का आदेश दिया और कहा कि मैं महाभिनिष्क्रमण करूँगा। राजप्रासाद के नश्वर शृंगार, वैभव और मद काँप उठे। कुमार ने यशोधरा के शयन-कक्ष में प्रवेश किया, अनासक्ति और वैराग्य उनके साथी थे। प्रिय वस्तु से वियोग की घड़ी आ गयी। दीप जल रहे थे। राजरानी यशोधरा बेली-चमेली की शय्या पर सो रही थीं। सात दिन के नवजात राहुल के मस्तक पर रानी के हाथ थे। कुमार ने सोचा कि यदि राहुल को अंकस्थ कर प्यार दूँगा तो रानी जाग जायेंगी, इसलिये प्रव्रज्या के बाद ही नवजात का मुख देखूँगा। वे चौखट पर ही थे। नीचे उतर आये, छन्दक कन्थक घोड़े को सजा कर प्रतीक्षा कर रहा था।

'तात कन्थक, मैं तेरी सहायता से बुद्ध होकर देवता समेत समस्त लोकों को तारूँगा।' वे घोड़े की पीठ पर सवार हो गये। वह अठारह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हाथ लम्बा था, उसका रंग श्वेत शंख के समान था। वे महाद्वार पर पहुँच गये। दैवी कृपा से बन्द द्वार अपने आप खुल गया। चक्रवर्ती पद, राजवैभव और भोग उनकी योग-साधना का मार्ग अवरुद्ध न कर सके। देवता उनकी दाहिनी-बायीं ओर तथा पीछे साठ हजार मसाल लेकर चल रहे थे। धूप-दीप और दिव्य गन्ध से उनकी पूजा कर रहे थे। आषाढ़ की पूर्णिमा की आधीरात में कुमार अपने राज्य की सीमा पार कर रामग्राम से होते हुए भगवती अनोमा के पवित्र तट पर पहुँच गये। कपिलवस्तु की ओर देखकर उन्होंने सिंहनाद किया कि जन्म–मृत्यु को पार देखे बिना कपिल नाम के नगर में प्रवेश नहीं करूँगा।

कुमार ने कहा कि मेरी प्रव्रज्या अनोमा होगी। नदी का पाट सोलह हाथ चौड़ा था, कन्थक कूद कर पार हो गया। बालुकामय तट रूपहले रेशम-जैसा था, कुमार ने अपनी तलवार से काले-काले केश काट डाले, काशी का रेशमी परिधान उतार दिया, आभूषण निकाल दिये। मौरसहित जूड़े को काट कर आसमान की ओर उछाल दिया, वह धरती पर नहीं गिर पाया, देवराज ने उसे लेकर चड़ामणि चैत्य की स्थापना की। इस प्रकार सिद्धार्थ ने प्रव्रज्या ली। छन्दक भी प्रव्रजित होना चाहता था पर कुमार ने अस्वीकार कर दिया। कन्थक समेत उसे लौटा दिया और पिता के पास आरोग्य-निवेदन कराया। राग ने त्याग का पथ अपनाया, भोग योग में रूपा-न्तरित हो गया, सिद्धार्थ गौतम ने वैराग्य लिया। प्रव्रज्या के बाद सिद्धार्थ ने ऐसे गुरु की खोज की जिनसे उन्हें परम सत्य और शान्ति का ज्ञान होता पर इस दिशा में वे निराश ही रहे। सात दिन तक अनूपिया में निवास कर वे राजगृह गये, नगरनिवासी तरुण प्रव्रजित पुरुष-राजकुमार को देख कर क्षुब्ध हो गये। उन्होंने विकाररहित होकर भिक्षा ली। परम तत्व की प्राप्ति के लिये वे उरुवेला वन में गये, उस रमणीय प्रान्त में उन्होंने कठोरतम तप किया, पांच शिष्यों के साथ वे ज्ञानप्राप्ति में लग गये, तिल-तण्डुल से कालक्षेप करने लगे। बाद में आहार भी छोड़ दिया, शरीर में ओज भर गया, निरा-हार से निर्बल होने पर कनककान्ति वाला शरीर काला पड़ गया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उनके घूम-घूम कर भिक्षाटन करने पर पंचवर्गीय शिष्यों ने उनका संग छोड़ दिया और सोचा कि छः साल की कड़ी तपस्या के बाद भी वे बुद्ध नहीं हो सके। शिष्य ऋषिपत्तन—सारनाथ चले गये।

उरुवेला के सोनानी नामक उपनगर की एक किसान कन्या सुजाता ने वरगद से प्रार्थना की थी कि यदि समान जाति-कुल में जाकर पहले ही गर्भ से पुत्र उत्पन्न करूँगी तो प्रतिवर्ष पूजा करूँगी। छठवें वर्ष आशा पूरी होने पर उसने हजार गायों को यष्टि मधु के वन में चरवा कर उनका दूध पाँच सौ गायों को पिलवाया, क्षीर-परिवर्तन किया। वैशाख पूर्णिमा को प्रातःकाल उठ कर खीर बनाई। उसने अपनी दासी पूर्णा को देवस्थान साफ करने का आदेश दिया। वरगद के नीचे सिद्धार्थ बैठे थे, उनका दृढ़ निश्चय था कि आज मैं बुद्ध हूँगा। पूर्णा ने सोचा कि देवता खीर ग्रहण करने के लिये वृक्ष के नीचे आ गये हैं। सुजाता सोने की थाली में खीर लेकर गयी। सिद्धार्थ ने खीर को ग्रहण किया। सुजाता के जाने पर उन्होंने भगवती नेरञ्जना के पवित्र तट पर खीर का भोग लगाया, सोने की थाली नदी में फेंक दी। वे पुष्पित नदीतटीय शालवंन में विहार कर बोधि-वृक्ष के नीचे गये, व्रत किया कि चाहे अस्थि चर्म आदि सूख जायँ, शरीर-मांस रक्त सब समाप्त हो जायँ पर सम्यक् सम्बोधि प्राप्त किये बिना इस आसन को नहीं छोड़ूँगा। वे अपराजित आसन से बैठ गये। सूर्यास्त हो रहा था, नेरञ्जना शान्त गति से बह रही थी। सिद्धार्थ ने सम्बोधि प्राप्त की। एक आसन से सात दिन तक बैठे रह कर सम्बोधि-प्रकाश में आत्मचिंतन करते रहे। वे सोचने लगे कि अविद्या से संस्कार होता है, संस्कार से विज्ञान, विज्ञान से नामरूप, नामरूप से छः आयतन, छः आयतन से स्पर्श, स्पर्श से वेदना, वेदना से तृष्णा, तृष्णा से उपादान, उपादान से भव, भव से जाति, जाति से जरा, मरण, शोक, दुख, चित्तविकार और खेद की उत्पत्ति होती है। अविद्या-नाश से वैराग्य होता है। उन्होंने विचार किया कि समस्त दुखों का मल वासना है, वासना के तल पर अन्धकार होता है, संसार के पदार्थ अनित्य हैं, अशुभ कर्म भोगने पर तथा वासना-क्षय होने पर निर्वाण मिलता है। जब तक संसार है तब तक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्लेश है। दुख का मूल कारण सांसारिक पदार्थों में आसक्ति है। मोक्ष-प्राप्ति का उपाय आत्मसंयम और इन्द्रिय-निरोध है। निर्वाण-प्राप्ति के लिये सत्य-व्यवहार, मृदु-भाषण, उच्च उद्देश्य, सत्य-विश्वास, सत्य-सेवा, सत्कर्म में दृढ़ता, बुद्धि का सदुपयोग, सत्य-ध्यान ही उपाय अथवा साधन हैं। उरुवेला से चारिका के लिये वे वाराणसी की ओर चल पड़े।

महात्मा बुद्ध ने ऋषिपत्तन में अपने प्रथम पांच शिष्यों को सत्य-ज्ञान का उपदेश दिया। काशी में संघ स्थापित किया। उन्होंने शिष्यों को आदेश दिया कि हे भिक्षुओं, संसार के हित और प्राणियों के दुखमोचन के लिये तुम लोग आदि, मध्य और अन्त में कल्याण करने वाले मेरे अश्रुतपूर्व निर्वाण धर्म का चारों ओर प्रचार करो। उनके पांच शिष्यों ने बड़े आदर से स्वागत किया। उनके पांच शिष्य कौण्डिन्य, महानाम, वाष्प, अश्वजित और भद्रजित थे। बुद्ध ने सारनाथ में धर्मचक्र-प्रवर्तन किया। उन्होंने धर्म की दुन्दुभी बजायी। उन्होंने घोषणा की कि मेरा गुरु कोई नहीं है।...मैंने निर्वाण प्राप्त किया है। ...मैंने धर्म को पूरा-पूरा समझ लिया है। मैं बुद्ध हूँ। मैं शान्तिमय और शोकमुक्त हूँ। तप और भोग को छोड़ कर मैंने मध्यम मार्ग पाया है। दुख की पहिचान करनी चाहिये। कारण का त्याग, निरोध का अनुभव और मार्ग की भावना करनी चाहिये। उन्होंने भिक्षुसंघ को समझाया कि शील से परिशोभित समाधि, समाधि से परिशोभित प्रज्ञा, प्रज्ञा से परिशोभित चित्त में दुखों से मुक्ति का महाफल—महालाभ होता है। उन्होंने गृहस्थों से लोकभाषा में कहा कि सुशील गृहस्थ जीवित दशा में ही महासुख का भोग करते हैं, उनका सुयश चारों ओर फैलता है, प्रसन्नता से समाज में रहते हैं, मरने के समय चित्त उद्विग्न नहीं रहता है, मृत्यु के बाद स्वर्ग अथवा मोक्ष प्राप्त कर दिव्य सुख भोगते हैं। वे शिष्यों के साथ सत्य-ज्ञान के प्रचार में लग गये।

उन्होंने कोशल और मगध का भ्रमण किया। गयशीर्ष पर्वत होते हुए बुद्ध ने राजगृह में प्रवेश किया। महाराज बिम्बसार उनके शिष्य हो गये। राजगृह में ही बुद्ध ने सारिपुत्र और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मौद्गलायन को दीक्षा दी। कुछ दिन तक वेणुवन में विहार कर वे कपिलवस्तु आये। बुद्ध ने पीत चीवर धारण कर शिष्यों और भिक्षुओं सहित अपने पिता की राजधानी में भिक्षा मांगना आरम्भ किया। महाराजा शुद्धोदन के नयन अश्रुपूर्ण हो उठे, नगर-निवासियों के शरीर रोमाञ्चित हो उठे, वैभव और विलास के महा-नगर ने वैराग्य लिया। शुद्धोदन ने कहा कि भिक्षा मांगना क्षत्रिय का धर्म नहीं है। बुद्ध ने कहा कि हमारे बुद्ध-कुल में भिक्षा की रीति सनातन है। उन्होंने कहा कि निर्वाण-सुख ही परम सुख है, आन्तरिक अध्यात्म-आनन्द ही परमानन्द है। यह जगत विनश्वर है, जन्म-मृत्यु-दुख और श्रम से परे शाश्वत पद की खोज ही प्राणी का कर्तव्य है। सद्धर्म का आचरण ही सर्वश्रेष्ठ है। महाराज शुद्धो-दन ने महात्मा बुद्ध का भिक्षापात्र अपने हाथ में लेकर राजप्रासाद में प्रवेश कराया। बुद्ध ने शिष्यों के ससेत भोजन करने के बाद धर्मामृत का दान किया। सारिपुत्र और मौद्गलायन के साथ उन्होंने राजरानी यशोधरा के महल में प्रवेश किया। रानी ने पति की चरणधूलि मस्तक पर चढ़ायी, वे वैराग्य के हिमालय की तरह अडिग थे।...एक बार राजप्रासाद में फिर आने पर राजरानी ने राहुल को सम्बोधन कर कहा कि दिव्य तेजस्वी भिक्षुराजराजेश्वर से पैतृक सत्व मांगो। बुद्ध ने राहुल को दीक्षा दी। कपिलवस्तु से बुद्ध ने कोशल राज्य में विहार किया। प्रसेनजित की राजधानी और कोशल मल्लिका को अपनी पवित्र उपस्थिति से धन्य किया। उन्होंने जन-भाषा में लोगों को सत्य के धार्मिक स्वरूप का परिज्ञान करा कर आध्यात्मिक क्रान्ति की। समस्त देश में उनके संबोधि-ज्ञान का स्वागत हुआ। धर्म-प्रचार-काल में उनके जीवन में विशेष घटनायें घटी थीं। देवदत्त उनका जन्मजात शत्रु था। एक बार महाराजा अजातशत्रु से कुमंत्रणा कर उसने बुद्ध के ऊपर नौ मन मदिरा पिला कर नीलागिरि नामक हाथी छुड़वा दिया। बुद्ध भिक्षा माँगने निकले थे। हाथी बड़े वेग से दौड़ रहा था, लोग भयभीत थे। उन्होंने रास्ते से हटने की प्रार्थना की पर बुद्ध ने कहा कि हाथी तो हमारा मित्र है, डरने की बात ही नहीं है। हाथी अपनी सूँड़ से उनकी चरणधूलि लेकर सिर पर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चढ़ाने लगा। बुद्ध ने उसके दाहिने गण्ड स्थल का स्पर्श किया, अभय दान दिया। वह लौट गया।

इसी प्रकार डाकू अंगुलिमाल की कथा है। महाराज प्रसेनजित की राजधानी डाकू अंगुलिमाल के आतंक से भयभीत थी। वह यात्रियों को मार कर उनकी अंगुलियों की माला पहनता था। एक बार आवस्ती में भोजन कर बुद्ध वन के रास्ते से जा रहे थे। लोगों ने उधर जाने से रोका। डाकू ने उनको आते देखा, वे आगे बढ़ते जा रहे थे, डाकू अपनी उपेक्षा से चिढ़ कर उनको मारने के लिये दौड़ पड़ा पर वह बुद्ध तक न पहुँच सका। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने ठहरने का संकेत किया।

बुद्ध ने चलते-चलते कहा 'मैं स्थित हूँ।' डाकू ने ठहर कर कहा कि मैं अस्थित किस तरह हूँ?

बुद्ध ने कहा कि समस्त प्राणियों के प्रति दण्ड-भाव का त्याग करने से मैं स्थित हूँ। डाकू को ज्ञान हो गया। वह सुगत के चरणों पर गिर पड़ा। प्रव्रज्या ली। बुद्ध जेतवन में विहार कर रहे थे कि प्रसेन जित दर्शन करने गये। हो-हल्ला हो रहा था। कारण पूछने पर राजा ने कहा कि मैं डाकू अंगुलिमाल को दण्ड देने जा रहा हूँ, लोग उत्पीड़ित हैं। तथागत ने डाकू को संन्यासी रूप में दिखलाया। राजा आश्चर्यचकित हो गये। डाकू नगर में भिक्षा मांगने जाता था, लोगों का भय जाता रहा।

एक बार श्रावस्ती में भिक्षा मांगते समय नगर में एक कुएं पर आनन्द ने एक तरुणी से पीने के लिये जल मांगा। चाण्डाल-कन्या प्रकृति ने विवशता प्रकट की। गौतम बुद्ध के प्रमुख शिष्य आनन्द ने कहा कि मैं जाति नहीं पूँछता हूँ, पानी मांगता हूँ। उसने पानी पिला दिया। बुद्ध ने उसे प्रव्रज्या दी, संघ में सम्मिलित कर ली गयी। श्रावस्ती के उच्च वर्ग को यह बात सहन न हो सकी। लोगों ने राजा प्रसेनजित को उत्तेजित किया। राजा से बुद्ध ने कहा कि उच्च वर्ग आसमान से नहीं आता है और न नीच वर्ग की विशेष जाति है। प्राणी समान हैं। राजा को ज्ञान हो गया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एक वार बुद्ध भिक्षाटन कर रहे थे कि उन्हें दूर से एक स्त्री के रोने की आवाज़ सुनायी पड़ी। वह स्त्री किसा गौतमी थी। साँप काटने से उसका एकलौता लड़का मर गया था। वह उसका शव अंचल में रख कर संजीवनी खोज रही थी, वह बुद्ध के चरण पर गिर कर पुत्र का जीवन मांगने लगी। तथागत ने कहा कि मैं तेरे पुत्र को जिला दूँगा यदि तू एक मुठ्ठी सरसों उस घर से ला दे जिसमें कभी किसी की मृत्यु न हुई हो। वह असफल रही। उसे जीवन की क्षणभंगुरता का पता चल गया। मृत पुत्र का शव-दाह कर वह तथागत के पास लौट आयी। उसे ज्ञान हो गया कि एक-न-एक दिन सब मरेंगे। महात्मा बुद्ध ने उसको भिक्षुणी-संघ में स्वीकार कर लिया।

एक वार महात्मा बुद्ध वैशाली में अपने शिष्यों सहित अम्बपाली उपवन में विहार कर रहे थे। वैशाली की प्रसिद्ध गणिका अम्बपाली यह सुनकर कि तथागत मेरे उपवन को धन्य कर रहे हैं, आनन्द विभोर हो उठी। वह सुगत के दर्शन के लिये श्वेत परिधान धारण कर तथा रथारूढ़ होकर गयी। उसने उनको शिष्यों समेत भोजन पर आमन्त्रित किया। बुद्ध ने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। तथागत ने उसे धर्ममार्ग में समुत्तेजित कर कहा कि तुम्हारा चित्त आन्तरिक शुद्धि द्वारा स्थिर है पर रूपवती तरुणी में धर्मपिपासा दुर्लभ है। धर्म सर्वोत्तम मार्ग है। अम्बपाली को वैराग्य हो गया। उसने अपना रम्य अम्बपाली–उपवन तथागत के चरणों में समर्पित कर दिया। सुगत बुद्ध ने उसके वैराग्य की बड़ी प्रशंसा की।

तथागत ने अपने परिनिर्वाण का समय सन्निकट जान कर आनन्द से कुशी नगर चलने की इच्छा प्रकट की। आनन्द ने कहा कि देव कुशीनगर छोटा स्थान है, आपको राजगृह, श्रावस्ती, काशी ऐसे प्रसिद्ध महानगर में परिनिर्वाण प्राप्त करना चाहिये। तथागत ने समाधान किया कि कुशीनगर प्राचीन काल से ही एक बड़ा नगर परिगणित होता आ रहा है, इसका पहला नाम कुशावती है, मेरे निर्वाण के लिये सर्वोत्तम स्थान कुशीनगर ही है। आनन्द परि-निर्वाण की बात सुनकर दुखी हुए। बुद्ध ने आनन्द को समझाया कि अस्सी साल की मेरी आयु हो गयी है, तुम आत्मदीप, आत्मशरण,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनन्यशरण, धर्मदीप–धर्मशरण होकर विहार करो। वैशाली में कुछ दिन रह कर वे कुशीनगर के लिये चल पड़े। मार्ग में पावा पहुँचने पर उन्होंने चुन्द कर्मकार–सुनार के आम्रवन में विहार किया। चुन्द ने तथागत को शिष्यों सहित दूसरे दिन भोजन पर आमन्त्रित किया, तथागत ने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। तथागत ने चुन्द के घर भोजन पाया, यह उनका अन्तिम भोजन था। चुन्द ने तथागत के लिये शकर मार्दव–एक प्रकार के नर्म चावल का मीठा खीर विशेष रूप से प्रस्तुत किया, भोजन उनके अनुकूल न पड़ा। खून गिरने का रोग आरम्भ हो गया। वे सूर्यास्त होते-होते पावा से कुशीनगर पहुँच गये। उन्होंने आनन्द से कहा कि कुशीनगर के उपवत्तन शालवन के जोड़े शाल वृक्ष के नीचे महानिर्वाण करूँगा। उन्होंने भगवती हिरण्यवती नदी के तट पर शालवन में अन्तिम शय्या अपनायी। उन्होंने आनन्द को सत्पदार्थ के लिये प्रयत्न करने का आदेश दिया और चक्रवर्ती सम्राट की तरह अपने शवदाह का विधान बताया। उन्होंने भिक्षुओं से कहा कि प्रिय वस्तु का वियोग निश्चित है। उन्होंने मल्लों को सूचित करने के लिये कि रात के पिछले प्रहर तथागत का परिनिर्वाण होगा आनन्द को भेजा।...तथागत सिंहासन से शय्या पर लेटे हुए थे, चारों ओर शान्ति का साम्राज्य था। वृक्षों से विवर्ण पीले पत्ते गिर रहे थे। मल्ल उपस्थित थे। तथागत शान्त थे, चन्द्रमा रात के पिछले पहर में अपनी शीतल किरण बिखेर रहा था। सर्वज्ञ बुद्ध ने अन्तिम सान्त्वना दी कि मोक्ष ही मूल पदार्थ है, शील का सार है। क्षमा सबसे बड़ा तप है। इच्छा दुख का मूल है, संतोष से सच्चा सुख मिलता है। संतोष परम धर्म है, आसक्ति दुख का वृक्ष है। दुख का कारण दुख है, उसके निरोध से मुक्ति मिलती है। चराचर विनाशशील हैं। संयोग-वियोग से प्राप्त वस्तुओं का नाश होकर ही रहता है।

परिनिर्वाण होने पर पृथ्वी कांप उठी। आकाश से भीषण उल्का-पात हुआ। चन्द्रमा का प्रकाश क्षीण हो गया। नदी का जल शोक से संतप्त हो उठा। शाल वृक्ष नत हो गये। सातवें दिन उनके शिष्य महाकाश्यप के पधारने पर दाह-संस्कार विधिपूर्वक सम्पन्न हुआ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तथागत ने विक्रमीय सम्वत् से ४२० साल पहले वैशाख पूर्णिमा को रात के पिछले पहर परिनिर्वाण प्राप्त किया। मगध के अजात शत्रु, वैशाली के लिच्छवि, कपिलवस्तु के शाक्य, रामग्राम के कोलिय, पावा के मल्ल, कुशीनगर के मल्ल और पिप्पलीवन के मौर्य आदि ने स्तूप वनवाये।

जन्मरूपी दुख के नाश के लिये ही बुद्ध का पृथ्वी पर अवतरण हुआ था। शान्ति के लिये संसार ने उनकी शरण ली। उन्होंने लोगों को श्रेय का मार्ग वताया। उन्होंने आत्मा के सत्य की खोज की और उसको पाया।

उन्होंने धर्म के तीन सिद्धान्तों—सव अनित्य है, सव अनात्म है, निर्वाण शान्त है—की खोज की। उन्होंने कहा कि जगत परिणामशाली है, जगत सत्ताशून्य है, परिणाम ही सत्ता है। महात्मा वुद्ध ने पाप-नाश, पुण्य संचय और चित्त-शुद्धि पर विशेष प्रकाश डाला। वे निस्सन्देह महात्मा थे।

संकलन

महात्मा बुद्ध के उपदेशों का संकलन तिपिटक है। सूत्त, विनय और अभिधम्म तीन भागों में इसका विभाजन है। सूत्त दीघनिकाय, भज्झिम, संयुत, अंगुत्तर और खुद्दक निकाय में विभाजित है।

विनय पटिक के सूत्तविभंग, खन्धक और परिवार तीन भाग हैं।

अभिधम्म में धम्म संगनी, विभंग, धातुकथा, पुग्गलपञ्ञाति, कथावत्थु, यमक, पठ्ठान सात ग्रन्थ हैं।

वाणी

न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचनं।
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनंतनो॥

कभी शत्रुता से शत्रुता पर विजय नहीं होती है, वह तो मित्रता से जीती जाती है, यही सनातन धर्म (नियम) है। धम्मपद १।५।

गामे वा यदि वारञ्ञे निन्ने वा यदि वा थले।
यत्थारहन्तो विहरन्ति तं भूमिं रमणेय्यकम्॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चाहे ग्राम हो, चाहे वन हो, चाहे जलमय या सूखा स्थल हो, वह स्थान आनन्दमय है जिसमें सन्त निवास करते हैं। धम्मपद ७।९.

न अन्तलिक्खे न समुद्दमज्झे न पब्बतानं विवरं पविस्स।
न विज्जती सो जगतिप्यदेसो यत्द्वितं नप्पसहेय्य मच्चू॥

आकाश, समुद्र, गिरिकन्दरा—कहीं भी, पृथ्वी पर ऐसा कोई स्थान नहीं है जिस में अवस्थित होने पर मनुष्य मृत्यु से मुक्त हो सके। धम्मपद ९।१३.

किच्छो मनुस्सपटि लाभो किच्छं मच्चानं जीवितं।
किच्छं सद्धम्म सवणं किच्छो बुद्धानमुप्पादो॥

मनुष्य योनि का लाभ कठिन है, मनुष्य का जीवन दुर्लभ है, सद्धर्म-श्रवण कठिन है, बुद्धों का जन्म कठिन है। धम्मपद १४।४.

नत्थि राग समो अग्गि नत्थि दोससमो कली।
नत्थि खन्धादिसा दुक्खा नत्थि सन्ति परं सुखम्॥

राग ही आग है, दोष-घृणा ही पाप है, अहंकार-भौतिक अस्तित्व ही दुःख है, शान्ति ही परम सुख है। धम्मपद १५।६.

अक्कोधेन जिने कोधं असाधुं साधुना जिने।
जिने कदरियं दानेन सच्चेन अलिकवादिनं॥

अक्रोध से क्रोध, साधु से असाधु, दान से कृपण, सत्य से असत्य पर विजय प्राप्त करनी चाहिये। धम्मपद १७।३.

एकासनं एकसेय्यं एको चरमतन्दितो।
एको दमयमत्तानं वनन्ते रमितो सिया॥

एक ही आसन रखने वाला, एक शय्या रखने वाला, अकेला विचरने वाला, आलस्यरहित हो अपने को दमन कर अकेला ही वनान्त में रमण करे। धम्मपद २१।१६.

हत्थसंयतो पादसंयतो वाचाय संयतो संयतुत्तमो।
अज्झ तरतो समाहितो एको संतुसितो तमाहु भिक्खू॥

वह भिक्खू—भिक्षु है जो अपने हाथ-पैर और वचन संयत रखता है, जो स्वयं संयत है, अपने आप में ही सुखी और सावधान है तथा एकाकी और संतुष्ट है। धम्मपद २५।३.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संत तिरुवल्लुवर

'प्रभो! आपने मेरे कर्म की बेड़ियों को काट दिया और मुझे अपना जन बना लिया। आप के दर्शन से मेरा जन्म सफल हो गया।'

—तिरुप्पन्नालवार

संत तिरुवल्लुवर का नाम तमिल साहित्य के इतिहास में अमर है; तमिल साहित्य माधुर्य का पर्याय स्वीकार किया जाता है। सन्त तिरुवल्लुवर ने अपनी मधुर वाणी से तमिल वेद 'कुरल' की रचना की। वे संत कवीर के आदि संस्करण थे। उनकी भारती ने जड़-चेतन व्यष्टि और समष्टि तथा पापी और पुण्यात्मा में समान रूप से भागवती चेतना की परिव्याप्ति की अनुभूति की। संत तिरुवल्लुवर की रचना में उच्चाति-उच्च तमिल संस्कृति का परिचय मिलता है। कम-से-कम तीन हजार साल पहले से ही विश्व के लोगों को तमिल संस्कृति, समाज और साहित्य की जानकारी थी। उस समय तमिल चोल और पाण्डच राज्यों का विश्व के बड़े-बड़े देशों से व्यापार-सम्बन्ध था और विशेषता तो यह है कि संत तिरुवल्लुवर के सम्पर्क से बाहर से आने वाले व्यापारी, राजदूत तथा विदेशी नागरिक आदि सांस्कृतिक और साहित्यिक लाभ उठाते थे। तमिल सांस्कृतिक समृद्धि का विवरण सम्राट अशोक के शिलालेखों में मिलता है.... तमिल महादेश बौद्ध विचार-धारा से प्रभावित था। संत तिरुवल्लुवर ने इन समस्त आदिकालीन सांस्कृतिक, आध्यात्मिक और साहित्यिक चेतनाओं का अपनी अमर रचना-कुरल के माध्यम से प्रतिनिधित्व किया, यह उनके चरित्र की बहुत बड़ी मौलिकता है। संत तिरुवल्लुवर के कुरल ने घोषणा की कि जन्म से सब लोग समान हैं पर कर्म की योग्यता के विचार से वे असमान हैं; कर्म के प्रभाव से मानव का स्तर दिव्य, दिव्यतर और दिव्यतम बन सकता है। संत तिरुवल्लुवर अथवा वल्लुवर ने मानवता के दिव्यीकरण पर विशेष जोर दिया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तिरुवल्लुवर सन्त कवि थे। वे मानवता के दिव्य काव्यकार थे। उनकी प्रसिद्धि अमर है। सन्त तिरुवल्लुवर ने मद्रास-मैलापुर में जन्म लिया था। वे हीन जाति में पैदा हुए थे पर कर्म बड़े दिव्य थे। ऐसा कहा जाता है कि उनके पिता ब्राह्मण थे, माता अछूत थीं। ऐसी भी मान्यता है कि जन्म तो उनका मदुरा में हुआ था पर वे मैलापुर-मद्रास में आकर बस गये थे। मैलापुर में एक रमणीय उद्यान में उनका समाधिमन्दिर है, जिसमें दिव्य गुरु के रूप में संत वल्लुवर की पूजा होती है।

संत वल्लुवर गृहस्थ सन्त थे। उन्होंने एक वल्लालमहिला वासुकि से विवाह किया था। उनकी पत्नी बड़ी सती-साध्वी और भगवद्-भक्त थीं। उन्होंने सन्त वल्लुवर के आध्यात्मिक जीवन की समृद्धि-वृद्धि में महान योग दिया। थोड़े ही समय के बाद पत्नी का देहान्त हो गया। सन्त वल्लुवर अपनी पत्नी के सद्गुणों पर बड़े मुग्ध रहते थे। वे उनकी प्रेममधुरता, आज्ञाकारिता, शिष्टता और सेवा-भावना से बड़े प्रसन्न थे। पत्नी के देहावसान के बाद उनके वैराग्य और भगवद्प्रेम बढ़ गये। वे आत्मान्वेषण और भगवान के चिंतन में लग गये। मदुरा के पाण्ड्य नरेश उनकी आध्यात्मिकता और भगवद्-भक्ति को बड़ी आदर-दृष्टि से देखते थे। समग्र राज्य सन्त वल्लुवर का भक्त था।

सन्त तिरुवल्लुवर की साधना उच्च कोटि की थी। सहनशीलता उनके तपोमय जीवन की संजीवनी थी। उन्होंने अपने समग्र जीवन को तपस्या की आग में तपा कर स्वर्ण के सदृश परम पवित्र बना लिया था। उन्होंने दुख सहे, कभी किसी प्राणी को भूल कर भी दुख नहीं दिये। उनकी एक स्थल पर उक्ति है कि जिस प्रकार आग में तपाये जाने पर सोना निखर उठता है, उसी प्रकार बड़े-से-बड़ा दुख आने पर सन्त के सन्तत्व की पहिचान होती है।

सन्त तिरुवल्लुवर ने जीवन में सत्य को बड़ा महत्व दिया। उन्होंने कहा कि सन्त का प्राण सत्य है। असत्य और अन्याय से कमाये गये धन का, चाहे उससे बड़े-से-बड़ा लाभ क्यों न प्राप्त होता हो, त्याग

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कर देना चाहिये–ऐसी उनकी शिक्षा है। धर्मसंहत अर्थ और काम में उन्होंने मानव जीवन का श्रेय स्थिर किया। दूसरों पर कृपा करना ही परम धन है; भौतिक धन तो पापी और अन्यायी तथा व्यभिचारी के पास भी होता है, मनुष्य में परहित की भावना रहनी चाहिये –सन्त वल्लुवर की ऐसी दृढ़ मान्यता थी। उन्होंने अपने जीवन में उदारता, परहित, सहनशीलता तथा सदाचार के भाव परिपुष्ट किये।

संत तिरुवल्लुवर का दृढ़ सिद्धान्त था कि आत्मनियन्त्रण–संयम से मानव स्वर्ग प्राप्त करता है; इसका अभाव उसे नरक में झोंक देता है। वे भगवत्प्रेम में सदा निमग्न रहते थें। प्रेम को वे परम पवित्र और दिव्य भाव मानते थे। उनकी कुरल में एक स्थल पर उक्ति है कि प्रेम कुसुम से भी मृदु होता है, उसके पूर्णतम आनन्द का रसास्वादन विरले ही कर पाते हैं। भगवच्चिंतन के सम्बन्ध में उनकी उक्ति है कि जिस प्रकार अक्षरों में 'अ' है उसी प्रकार जगत में भगवान हैं। वे भगवत्कृपा के पूर्ण पात्र थे। उन्होंने भगवान के चरणारविंद पर मस्तक नत करने को ही विद्या का सदुपयोग वतलाया। वे निष्काम भाव से भगवच्चिन्तन करते थे। सुख और दुख से अतीत होकर भगवान् के आनन्दराज्य में विचरण किया करते थे। वे पाप-पुण्य से परे होकर भगवान का मधुर नाम-कीर्तन किया करते थे। भगवान की कृपा में डूबे रहते थे। मानसिक चिंता उन्हें तनिक भी नहीं सताती थी। उनकी भगवत्प्रेम के सम्बन्ध में विलक्षण उक्ति है कि कल्याण स्वरूप करुणा-सागर भगवान की कृपा के विना अपार संसार-सागर को पार करना कठिन है; जो सिर परमेश्वर के सम्मुख विनत नहीं होता है वह चेतनाशून्य इन्द्रिय की तरह व्यर्थ है; जो लोग हमारे स्वामी परमेश्वर की कृपा-ज्योति नहीं प्राप्त करते हैं, वे जन्म-मरण के सागर के पार नहीं जा सकते हैं। संत तिरुवल्लुवर की वाणी भगवद्रस से सम्प्लावित है। उनके श्वास-श्वास में भगवान के दिव्य प्रेम का निवास था। निस्सन्देह महात्मा वल्लुवर परम भागवत थे। उनके समस्त कर्म भगवान के चरण में समर्पित थे।

साहित्य जगत में–विशेष रूप से सन्त-साहित्य में तिरुवल्लुवर की अमर कृति कुरल को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इसकी रचना लगभग

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वाइस सौ साल पहले हुई थी पर यह नित्य नवीन और सब समय के लिये उपादेय है। 'कुरल' तमिल भाषा का वेद स्वीकार किया जाता है। दक्षिण भारत में ऐसी मान्यता है कि तिरुवल्लुवर के रूप में ब्रह्मा ने ही अवतार लेकर धर्म, अर्थ, काम पर कुरल में विचार किया। तिरुवल्लुवर हीन जाति के थे। उन्होंने अपनी रचना—कुरल विद्वानों की सभा-संगम में रखी पर पण्डितों ने मान्यता नहीं दी। मदुरा के पेण्डितों की मनःस्थिति से वे तनिक भी विचलित न हुए। उन्होंने पण्डितों को कुरल-श्रवण के लिये आमन्त्रित किया। मन्दिर के रमणीय तड़ाग में एक छोटी-सी नौका पर पुस्तक रख दी गयी, दूसरी ओर मदुरा की पण्डित मण्डली बैठी हुई थी। इसी समय एक आश्चर्यमयी घटना हुई। नाव-बेड़े का वह भाग जिस पर पण्डित बैठे थे पानी में डूबने लगा और जिस भाग पर कुरल रखा गया था, जल उसका स्पर्श तक नहीं कर सका। पण्डितों ने ग्रन्थ का महत्व समझ लिया। वे संत तिरुवल्लुवर की विद्वत्ता के चरणों पर नत हो गये। उन्हें विश्वास हो गया कि ऊँच-नीच समस्त वर्ग को भगवच्चिंतन का समान अधिकार प्राप्त है। प्रत्येक पण्डित ने कुरल और उसके रचयिता तिरुवल्लुवर का एक-एक पद से स्तवन किया। इन पदों की तिरुवल्लुवर-मालिका-नाम से प्रसिद्धि है। कुरल में संत तिरुवल्लुवर ने ज्ञान का सागर भर दिया है, एक विंदु में भगवद्ज्ञान का सप्तसिंधु समा गया है। कुरल मानवता का सफल वाङ्मय है।

तिरुवल्लुवर ने जनता की भाषा में जनता के लाभ की बात बतायी। आत्मविश्वास और भगवद् भक्ति की सीख दी। वे सरल जीवन पसन्द करते थे। उनके हृदय में प्राणीमात्र के प्रति दया थी, वे अहिंसा-व्रत का आचरण करते थे। वे एकमात्र परमेश्वर की सत्ता में ही रमण करते थे, उन्होंने आत्माराम की उपासना की। वे निर्गुण, निराकार परमात्मा के उपासक थे। परमेश्वर जड़-चेतन, लोक-लोकान्तर में परिव्याप्त हैं—ऐसा उन्होंने अनुभव किया। वे किसी सम्प्रदाय में आबद्ध नहीं थे, सर्वथा निरपेक्ष और सब के थे। छल, प्रपंच से दूर रहने वाले सात्विक भावापन्न सन्त थे। उन्होंने परमात्मा से भक्ति मांगी मुक्ति की कामना नहीं की। मैलापुर—मद्रास में उनका समाधि-मन्दिर अवस्थित है। सन्त—साहित्य में उनका नाम अमर है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय
वाराणसी।
आगत क्रमांक ... २६६२
दिनांक ...

रचना

तिरुवल्लुवर ने तमिल वेद 'कुरल' की रचना की।

वाणी

सदाचार ही वास्तविक महत्ता है। जीवन से भी अधिक मूल्यवान है। अपने चरित्र का ध्यान रखना चाहिये, इससे अच्छा सहायक दूसरा कुछ भी नहीं है। महात्मा सदाचार में कभी नहीं चूकते हैं, वे अच्छी तरह जानते हैं कि सदाचार की विफलता का कितना बड़ा दुष्परिणाम होता है। सदाचार अच्छाई का बीज है; कुत्सित जीवन अनन्त बुराइयों का सृजन करता है। जो यह नहीं जानते हैं कि किस प्रकार सदाचारपूर्ण जीवन बिताया जाय, वे, भले ही उनकी शिक्षा उच्च कोटि की है, अज्ञानी हैं।

0152,ANRA,1,8 J7

यह सोचना कि अमुक वस्तु सदा बनी रहेगी सबसे बड़ा अज्ञान है। पक्षी अपना घोंसला छोड़कर उड़ जाता है, इसी प्रकार देह और आत्मा का सम्बन्ध विनश्वर है, आत्मा देह को छोड़कर चला जाता है। मृत्यु नींद है और जन्म नींद के पश्चात् जागने का नाम है।

मन की दीनता ही परम दीनता है। ज्ञानी धन की कमी को दीनता नहीं मानते हैं। मूर्खता—अरे यह क्या है! यह अहंकार—अभिमान 'हम लोग ही ज्ञानी हैं' परम मूर्खता है।

दुख आने पर मुसकराना चाहिये। दुख पर विजय पाने का इससे बढ़ कर कोई दूसरा उपाय नहीं है। ज्ञानी की दृष्टि में दुख का स्वरूप-ज्ञान होने पर दुख की बाढ़ समाप्त हो जाती है। जो दुख में अ-दुखी रहते हैं, वे दुख के लिये दुखस्वरूप हो जाते हैं। यद्यपि दुख अचानक ही आ जाय तो भी ज्ञानी और भयरहित जीवात्मा के लिये दुख स्वयं दुखी हो उठता है। जो प्राणी सुख में सुख की खोज नहीं करता है, वही दुख में दुखी नहीं होता है।

तमिल वेद—कुरल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महावीर स्वामी

'किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करनी चाहिये—यही ज्ञानियों के ज्ञान का सार है। अहिंसा—समता—जीवों के प्रति आत्मभाव ही शाश्वत धर्म है।'

—सूत्र कृतांगसूत्र

महात्मा बुद्ध और महावीर स्वामी विक्रमीय सम्वत से पांच सौ साल पहले के भारत की बहुत बड़ी ऐतिहासिक आवश्यकता थे। उन्होंने सुख-दुख के बन्धन में जकड़े जीव के लिये शाश्वत दिव्य शान्ति और परम मोक्ष का विधान किया। सांसारिक परिताप से उत्पीड़ित मानवता ने उनकी वाणी की कल्पलता की शीतल छाया में आश्वासन का श्वास लिया। महावीर स्वामी जैन धर्म के चौबीसवें तीर्थंकर थे। जैन धर्म की स्थापना ऋषभदेव ने की थी, महावीर तीर्थंकर ने उसके विकास में महान योग दिया। उन्होंने जैन धर्म को पूर्ण तपोमय बना दिया।

वैशाली राज्य की सीमा पर भगवती गण्डकी नदी के तट पर क्षत्रियकुण्डनपुर नगर के राजा सिद्धार्थ थे। उनकी रानी का नाम त्रिशला था। वह विदेह प्रान्त के अन्तर्गत वैशाली नरेश चेटक की पुत्री थीं। महावीर ने उन्हीं दोनों को अपने पिता-माता के रूप में धन्य किया था। उनके प्राकट्य से पहले माता ने चौदह विचित्र स्वप्न देखे थे। रानी ने राजसभा में पधार कर सिद्धार्थ से एकान्त में स्वप्न-निरूपण किया। उन्होंने कहा कि मैंने स्वप्न में श्वेत हाथी देखा है, उसके चार दाँत थे। एक हृष्ट-पुष्ट सांड़ और सिंह भी दीख पड़े थे। मैंने कमल के फूल पर आसनस्थ लक्ष्मी देखी। उन्होंने कहा कि मन्दार पुष्प के हार, पूर्णिमा के चन्द्र, प्रकाशित सूर्य, मछली के जोड़े, जलपूर्ण स्वर्ण कलश, जलाशय, कमल के फूल, अथाह सागर,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजसिंहासन, दिव्य रथ, नागलोक, रत्नराशि और निर्धूम अग्नि का दर्शन हुआ था। राजा सिद्धार्थ ने रानी के स्वप्न की अमित सराहना की। उन्होंने कहा कि यह शुभ स्वप्न है, अमित ऐश्वर्यशाली पुत्र के जन्म का परिचायक है। एक महान आत्मा के आगमन की शुभ सूचना है जो तीर्थंकर हैं, संसार के प्राणियों का उद्धार करेंगे। धर्म का प्रचार करेंगे। ऐश्वर्य, शक्ति और दिव्यता से युक्त होंगे, अज्ञान-अन्धकार का नाश कर तथा अनन्त सुख का भोग कर धर्म रूपी साम्राज्य में कर्म के अशुभ परिणाम का नाश कर अपनी उपदेश-ज्योत्सना से प्राणिमात्र के परम मोक्ष-निर्वाण का विधान करेंगे। स्वप्न के अनुरूप ही विक्रमीय सम्वत से पाँच सौ बयालिस साल पहले चैत मास की शुक्ला त्रयोदशी को सोमवार को उषाकाल में महावीर स्वामी ने शिशु वर्द्धमान अथवा वीर के नामरूप में जन्म लिया। शिशु का रंग तपे सोने के समान था, शान्ति और कान्ति से शरीर शोभित और गठित था। ऐसा उल्लेख है कि उनका जन्म होते ही इन्द्र ने उन्हें सुमेरु पहाड़ पर ले जाकर पाण्डूक नामक स्वर्गीय उपवन में शिला पर रख कर क्षीरसागर के पवित्र जल से स्नान कराया। देवों ने उन्हें दिव्य आभूषण पहनाये, मंगल गीत गाये, इस प्रकार उनके दिव्य संस्कार सम्पन्न कर इन्द्र उन्हें राजप्रासाद में रख गये। यह उनके जन्म लेने की सात्विक विचित्रता है। धीरे-धीरे वे बड़े होने लगे। माता-पिता ने बड़ी सावधानी से उनका पालन-पोषण किया, रानी त्रिशला अत्यन्त गुणवती और सुन्दरी थीं। सिद्धार्थ और त्रिशला —दोनों जैन धर्म के अनुयायी थे, उनके पवित्र संस्कारों का वर्द्धमान के विकास पर अमित प्रभाव पड़ा। वर्द्धमान बड़े सौम्य, तेजस्वी और सुलक्षण थे। उनकी बाल्यावस्था वैभव और विलास से परिपूर्ण थी। बचपन से ही उनमें वैराग्य तप, अनासक्ति और धर्म के भाव बढ़ने लगे, उनका मन सांसारिक अनित्य पदार्थों और विषय-सुखों में तनिक भी रस नहीं लेता था। उनमें नित्य प्रति दिव्य गुणों की वृद्धि होने लगी।

कुमार वर्द्धमान आठ साल की अवस्था में आमल की क्रीड़ा किया करते थे। नगर के बाहर अपने साथियों के साथ जाकर आम के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वृक्ष पर जल्दी-जल्दी चढ़ा-उतरा करते थे। जो लड़का जल्दी से वृक्ष पर चढ़ कर नीचे उतरता था वह विजयस्वरूप दूसरे लड़कों की पीठ पर बैठा करता था। एक वार वे आमल की क्रीड़ा में लग्न थे कि सुधर्म देवलोक में इन्द्र-धर्मेन्द्र ने उनके ओज और वल की बड़ी प्रशंसा की। वर्द्धमान की परीक्षा के लिये संगम नामक देव इन्द्र की वात सुनकर आमल की क्रीड़ा में सम्मिलित हुआ। पहले नाग का विषैला रूप धारण किया। उसके काले रंग से वनप्रान्त स्तब्ध और काला हो उठा, उसका फन वहुत वड़ा था, आँखें लाल-लाल थीं, आकृति भीषण और विकराल थी पर वात-की-वात में वर्द्धमान ने उसे फेंक दिया। उसने तत्क्षण वालक का रूप धारण कर लिया, वह लड़कों से मिलकर आमल की खेल खेलने लगा। धीरे-धीरे प्रेत की तरह उसका रूप विकराल हो उठा, वह भयानक दैत्य की तरह दीख पड़ने लगा। उसकी भौंहें भूरी और लाल थीं, उसकी आँखें मारवाड़ देश के कुएँ के समान थी, गाल पहाड़ की गुफा के समान गहरे थे, राज-प्रासाद प्रकम्पित हो उठा, सूर्य का रथ उसकी विकरालता से अवरूद्ध हो गया, उसके कन्धे पर सांप का यज्ञोपवित था, शरीर में खून के दाग थे। वर्द्धमान ने उसे धक्का दिया, वह शिशु की तरह कुराहने लगा, उनके चरण पर नत हो गया। संगम ने उनको अलौकिक पुरुष स्वीकार किया, सोने के घड़े में पवित्र जल लाकर स्नान करा उनका नाम महावीर रखा।

एक दिन नगर में संजय और विजय नाम के दो संन्यासी आये, राजकुमार को देखते ही उनकी शंकाओं का समाधान हो गया। उन्होंने राजकुमार वर्द्धमान का नाम सन्मति रखा और लौट गये। महावीर को वचपन से ही वैराग्य का वातावरण मिलता गया। माता, पिता के धर्माचरण पूर्ण जीवन ने तो सोने में सुगन्ध का काम किया। वचपन से ही वे श्रुति-ज्ञान, अवधि-ज्ञान में निपुण थे। उनकी अन्तरात्मा में यह आवाज़ उठने लगी कि आत्यन्तिक सुख की प्राप्ति त्याग से ही सम्भव है, जीवन में तप और संयम की वड़ी आवश्यकता है। कुमारावस्था में ही उन्होंने वैराग्य ले लिया।

माता के विशेष आग्रह पर उन्होंने वसन्तपुर राज्य के राजा समर-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वीर और उनकी रानी पद्मावती की कन्या यशोदा से विवाह कर, गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया। कुछ दिनों के बाद सन्तान भी हुई, कन्या का नाम प्रियदर्शना था। महावीर गृहस्थाश्रम में रहकर भी सहज वैरागी थे, विषय-भोग में वे पूर्ण अनासक्त ही रहे।

गृहस्थाश्रम में ही एक दिन उनके मन में वैराग्य की लहर बड़े जोर से उमड़ पड़ी। उन्होंने सोचा कि जीवन के अठ्ठाइस वसन्त निकल गये पर मैंने कैवल्यज्ञान पूर्ण ज्ञान नहीं प्राप्त किया, सिर पर मृत्य नाच रही है पर मैंने अमर जीवन का अमृत-पान नहीं किया। संसार और उसके सभी पदार्थ अनित्य हैं, आत्मा को छोड़ कर, आत्मा की सहायता संसार का कोई और पदार्थ नहीं कर सकता। उन्होंने वैराग्य की बात माँ से कही पर त्रिशला यह कदापि नहीं सह सकती थीं कि उनके पुत्र को वन-वन में संन्यासी होकर भटकना पड़े। कालान्तर में माता-पिता का देहान्त हो जाने पर उन्होंने गृहत्याग का दृढ़ संकल्प कर लिया पर अपने भाई युवराज नन्दीवर्धन के बहुत अनुनय-विनय करने पर वे दो साल घर पर और ठहर गये। वैराग्य की घड़ी आ पहुँची, उन्होंने तप और साधना के जीवन में प्रवेश किया। वैराग्य की दीक्षा लेने के पहले अपने जीवन के उन्तीसवें साल में उन्होंने अपनी समस्त सम्पत्ति का दान कर दिया। तीसवें वर्ष में वे राजप्रासाद से बाहर निकल पड़े। ममता, आसक्ति, मोह के बन्धन टूट चुके थे, केवल दीक्षा शेष थी। उनकी दीक्षा राजधानी कुण्डनपुर के ज्ञातृखण्ड उद्यान में हुई। वे सहस्रवाहिनी चन्द्रप्रभा शिविका में बैठ कर उद्यान में गये, अपने हाथ से काले-काले केशों की अन्तिम क्रिया की, शरीर पर केवल आवश्यक परिधान रख छोड़ा। उन्होंने सिद्ध भगवान को नमस्कार कर कहा कि आज से मैं कोई पाप नहीं करूँगा। मैं समस्त प्राणी की हित-भावना से हिंसा का त्याग करता हूँ। मैं आज से असत्य भाषण नहीं करूँगा, अदत्त वस्तु का त्याग करता हूँ, परिग्रह और मैथुन का त्याग करता हूँ। आज से बारह साल तक प्रत्येक दैवी और मानवीय संकट सहूँगा। उन्होंने कठोर तप और महान संयम का जीवन अपनाया। वे बाँहु फैलाये रहते थे, शीत के भय से उनको कभी नहीं सिकोड़ा। रात में भोजन नहीं करते थे। अहिंसा व्रत का पूर्ण पालन करते थे। उन्होंने स्वात्म अनुभव से

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संसार की अनित्यता का परिज्ञान कर मन, वचन और काया पर अधिकार रखा। वे समभाव से रहते थे। संसार को आधि-व्याधि और जन्म-मरण से जलते देख कर उसके उद्धार का रास्ता सोचा, शान्ति की खोज की। तपोमय जीवन के तेरहवें वर्ष में जंमिय ग्राम नगर के बाहर भगवती ऋजुबालिका के उत्तरी तट पर वैशाख शुक्ल दशमी को शाल वृक्ष के नीचे महावीर ने कैवल्य पद—आत्मज्ञान प्राप्त किया, संसार को तारने की शक्ति पायी, वे तीर्थंकर हो उठे। उनका तप सफल और सिद्ध हुआ। केवली अथवा कैवल्य पद की प्राप्ति में काया सूख गयी, वे क्षीण हो गये पर दिव्य तेज उनके रोम-रोम में परिव्याप्त हो उठा। वे जंमिय ग्राम से रात-ही-रात बारह योजन पैदल चलकर पावा आये, पावा में यज्ञ चल रहा था। सोमिल ब्राह्मण के यज्ञ मण्डप में बड़े-बड़े शास्त्रज्ञ और विद्वान यज्ञ-सम्पादन कर रहे थे। महावीर का आगमन सुनकर असंख्य लोग उनके उपदेश सुनने जा रहे थे। यज्ञ के होता पण्डित इन्द्रभूति, अग्निभति, वायुभूति आदि ग्यारह विद्वान जिनेश्वर महावीर का प्रवचन सुनने गये। बड़ी-बड़ी शंकाओं का समुचित समाधान पाकर उनके प्रख्यात शिष्य हो गये। महावीर स्वामी ने उनसे कहा कि संसार शून्य नहीं है, वास्तविक है, जो प्रत्यक्ष चैतन्य ज्ञान से जानी जाती है वह आत्मा है। जड़ कर्म चेतन आत्मा से भिन्न हैं, आत्मा के परिणामों से युक्त होकर फल देते हैं। परलोक में आत्मा का प्रवेश स्वाभाविक और सहज सिद्ध है। पुण्य और पाप शुभ-अशुभ कर्मों के सुख-दुख के परिणाम हैं। महावीर स्वामी ने प्रथम धर्मोपदेशक दिया, पण्डितों ने प्रव्रज्या ली, संघ की स्थापना हुई। उन्होंने आठ तत्त्वों को संघ-विनिमय के मूल आधार स्थिर किये। वे तत्व आत्म-जय, अहिंसा, व्रत, विनय, शील, मैत्री, समभाव और प्रमोद हैं। उन्होंने पूर्ण व्रती अनुयायियों को श्रमण और स्थूल व्रती लोगों को श्रावक या उपासक घोषित किया। वे ग्राम-ग्राम में पैदल घम कर अपने कैवल्य ज्ञान का प्रचार करने लगे। शिष्यों की संख्या बढ़ने लगी। श्रेणिक, चेटक, वारिसेन, जीवनधर, अभयकुमार आदि बड़े-बड़े राजा-महाराजा उनके शिष्य हो गये। उन्होंने उज्जयिनी, कौशाम्बी आदि महानगरों का भ्रमण किया। एक बार भ्रमण करते-करते वे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उज्जयिनी के महाभयंकर श्मशान में आधी रात को पहुँच गये। वे बड़े कष्टसहिष्णु थे। एक बार चण्ड कौशिक नाग के काटने पर उन्हें अमित वेदना हुई पर वे उसे सह गये और नाग को अपने आपको समझने का उपदेश दिया। नाग का मोह दूर हो गया, उसे आत्मज्ञान हो गया।

एक बार महावीर कौशाम्बी में विहार कर रहे थे। असंख्य जनता उनके दर्शन और उपदेश के लिये एकत्र हो गयी। कुमार उदयन, उनकी माता मृगावती और बुआ जयन्ती भी दर्शन के लिये उपस्थित थे। सबके चले जाने पर जयन्ती ने प्रश्न किया कि सब जीव मोक्ष के अधिकारी हैं या नहीं। महावीर स्वामी ने समाधान की भाषा में कहा कि मोक्ष-सुख के अधिकारी समस्त जीव हैं। जयन्ती ने दीक्षा ली और श्राविका हो गयी। कौशाम्बी में ही महावीर स्वामी ने एक दिन धनवान सेठ के आँगन को पवित्र किया। उस परिवार की एक सदस्या चन्दना ने निवेदन किया कि तीन दिन के उपवास के पारण के लिये उड़द के बाकुले रख छोड़े हैं, मेरा परम भाग्य होगा यदि उनमें से आप कुछ ग्रहण कर लें। महावीर स्वामी विशेष व्रत का पालन कर रहे थे, उन्होंने असमर्थता प्रकट की, चन्दना रोने लगी। उनका हृदय दया से द्रवित हो उठा, उसके हित और शान्ति के लिये महावीर स्वामी ने कुछ बाकुले ले लिये, चन्दना ने उनकी कृपा से परम मोक्ष का सुख पाया।

इसी प्रकार अपनी जन्मभूमि में विहार करते समय उन्होंने गृहपति आनन्द को जो भोग-विलास में आपादमस्तक निमग्न था उपदेश देकर मोक्ष-सुख का अधिकारी बनाया। महावीर स्वामी गण्डकी के तट पर वाणिज्यग्राम के द्विपलास्य मन्दिर में विहार कर रहे थे। आनन्द गृहपति ने श्रावक होने की इच्छा प्रकट की। महावीर स्वामी ने उसे विषय-भोग की अनित्यता और जीवन की क्षणभंगुरता का ज्ञान करा कर कैवल्यज्ञान का संदेश दिया।

महावीर स्वामी ने क्षमा, विनयशीलता, सत्य, संतोष, इन्द्रियदमन, तप, आत्मज्ञान और संसार के प्रति अनासक्ति को अपने धर्म का प्रमुख स्तम्भ घोषित किया। सम्यक् ज्ञान, सम्यक् विश्वास और सम्यक् आचार उनके धर्म के प्राण हैं। उन्होंने अहिंसा—प्राणिमात्र के हित को सर्वश्रेष्ठ धर्म स्वीकार किया। उन्होंने आत्मधर्म को कैवल्यज्ञान, कैवल्य दर्शन, अनन्त वीर्य, सम्यकत्व, अव्याबाधता, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और अगुरुलघुत्व में प्रतिष्ठित किया। उन्होंने कहा कि जीव शरीर नहीं है, यह आत्मा है, आत्मजीवन है। सुख और दुख हेतु से होते हैं। चेतना आत्मधर्म है, यह नितान्त आन्तरिक और सूक्ष्माति-सूक्ष्म है। जन्म की प्राप्ति व्यक्ति के कर्म का परिणाम है, हिंसा से अशुभ कर्म और अहिंसा से शुभ कर्म की उत्पत्ति होती है। जीव का नाश नहीं होता है, उसका रूपान्तर होता है, आत्मा अपने सदाचरण से परमात्मा हो जाता है, यही आत्मसिद्धि है। महावीर ने लोकभाषा में दीक्षा दी।

महावीर स्वामी बहत्तर साल की आयु तक जीवित रहे। एक बार श्रावस्ती नगरी के मेढ़िय ग्राम में वे निवास कर रहे थे, रक्तस्राव आरम्भ हो गया, उनका शरीर निर्बल और क्षीण होने लगा। वे अन्तिम चातुर्मास्य मध्यम पावा में बिता रहे थे। कार्तिक की अमावास्या को आधीरात को महावीर परमगति को प्राप्त हुए, सिद्ध पद पाया। विक्रमीय सम्वत् से चार सौ सत्तर साल पहले उन्होंने देहत्याग किया। अपने प्रमुख शिष्य गौतम के प्रति उनके अन्तिम वाक्य थे कि आत्मा के प्रति मोह अथवा ममता का व्यच्छेद ही आत्मज्ञान है, रागभाव से दूर रह कर प्रबुद्ध होकर संयम और तप के मार्ग पर चलना ही श्रेय है, मेरा उपदिष्ट मार्ग ही पथ-प्रदर्शक होगा, शान्ति और अहिंसा का मार्ग ही धर्म-मार्ग है। महावीर स्वामी ने धर्म को जीवन का वास्तविक अंग सिद्ध किया। जनता को उन्होंने आत्मधर्म का पवित्रतम सन्देश दिया।

संकलन

आचारांग, उत्तराध्ययन, उववाइय, दसवैकालिक, दसवैकालिक चूलिका दसाश्रुत स्कन्धसूत्र, सूत्रकृतांग, ज्ञात धर्मकथा सूत्र में महावीर के प्रवचन मिलते हैं। शिष्यों ने उनके उपदेश अंग, उपांग, प्रकीर्ण, सूत्र और मूल सूत्र में विभाजित किये हैं। आवश्यक दसवैकालिक, उत्तराध्ययन, पिण्ड, निर्युक्ति मूल सूत्र के अंग हैं। सामायिक, चौवीसथ्थो, वन्दनाका, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और प्रत्यख्यान आवश्यक सूत्र के छः अंग हैं।

वाणी

दुमपत्तए पंडुयए जहा, निवडइ राइगणाण अच्चए।
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम मा पमायए॥

जिस प्रकार वृक्ष के पत्ते पीले पड़ते हुए समय आने पर पृथ्वी पर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

झड़ जाते हैं, उसी प्रकार मनुष्य-जीवन भी आयु शेष होने पर समाप्त हो जाता है। हे जीव, क्षण भर के लिये भी प्रमाद न करो।

—उत्तराध्ययन सूत्र १०-१

अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पा हु खलु दुद्दमो।
अप्पा दन्तो सुही होइ, अस्सि लोए परत्थ य॥

अपने आपको जीतो। अपने आपको जीतना ही वास्तव में दुर्जय है। अपनी आत्मा को दमन करने वाला इस लोक तथा परलोक में सुखी होता है।

—उत्तराध्ययन सूत्र १-१५

पुरिसा! तुममेव तुमं—मित्तं, किं वहिया
मित्तमिच्छसी? पुरिसा! अत्ताणमेव
अभिनिगज्झ एवं दुक्खा पमोक्खसि।

हे पुरुष, तू ही अपना मित्र है, मित्र बाहर क्यों खोजता है? हे पुरुष, अपनी आत्मा को ही वश में करो। ऐसा करने से तू सब दुखों से मुक्त होगा। —आचारांग सूत्र ३-३:११७-८

सव्वे पाणा पियाउया, सुहसाया, दुक्खपडिकूल।
अप्पियवहा पियजीवणो, जीविउ कामा सव्वेसिं जीवियं पियं।

सभी प्राणियों को अपनी-अपनी आयु प्रिय है। सुख अनुकूल है, दुख प्रतिकल है, वध अप्रिय है। जीना प्रिय है। सब जीव दीर्घायु चाहते हैं। सबको जीवन प्रिय है। —आचारांग सूत्र १,२-३:७

आउक्खयं चेव अबुज्झमाणे, ममाइ से साहसकारिमंदे।
अहो यराओ परितप्पमाणे, अट्टे सु मूढ़े अजरामरे व्व॥

आयु पल-पल क्षीण हो रहा है, यह न समझ कर मूर्ख मनुष्य बिना विचारे ममता करता रहता है। धन में आसक्त होकर अजर-अमर पुरुष की तरह रात-दिन उसके लिये परिताप करता है। यह कितना बड़ा दुस्साहस है। —सूत्र कृतांगसूत्र १,१०:१८

गुणेहि साहू अगुणेहिऽसाहू, गिण्हाहिसाहू गुणमुञ्चऽसाहू।
वियाणिया अप्पगमप्पएणं, जो रागदोसेहिं समो स पुज्जो॥

गुणों से मनुष्य साधु होता है, अगुणों से असाधु होता है। सद्गुणों को ग्रहण करो, दुर्गुणों को छोड़ो। जो अपनी हीं आत्मा द्वारा अपनी आत्मा को जानकर राग और द्वेष में समभाव रखता है वह पूज्य है।

—दसवैकालिक सूत्र ९-३:११

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और अगुरुलघुत्व में प्रतिष्ठित किया। उन्होंने कहा कि जीव शरीर नहीं है, यह आत्मा है, आत्मजीवन है। सुख और दुख हेतु से होते हैं। चेतना आत्मधर्म है, यह नितान्त आन्तरिक और सूक्ष्माति-सूक्ष्म है। जन्म की प्राप्ति व्यक्ति के कर्म का परिणाम है, हिंसा से अशुभ कर्म और अहिंसा से शुभ कर्म की उत्पत्ति होती है। जीव का नाश नहीं होता है, उसका रूपान्तर होता है, आत्मा अपने सदाचरण से परमात्मा हो जाता है, यही आत्मसिद्धि है। महावीर ने लोकभाषा में दीक्षा दी।

महावीर स्वामी बहत्तर साल की आयु तक जीवित रहे। एक बार श्रावस्ती नगरी के मेढ़िय ग्राम में वे निवास कर रहे थे, रक्तस्राव आरम्भ हो गया, उनका शरीर निर्बल और क्षीण होने लगा। वे अन्तिम चातुर्मास्य मध्यम पावा में बिता रहे थे। कार्तिक की अमावास्या को आधीरात को महावीर परमगति को प्राप्त हुए, सिद्ध पद पाया। विक्रमीय सम्वत् से चार सौ सत्तर साल पहले उन्होंने देहत्याग किया। अपने प्रमुख शिष्य गौतम के प्रति उनके अन्तिम वाक्य थे कि आत्मा के प्रति मोह अथवा ममता का व्यच्छेद ही आत्मज्ञान है, रागभाव से दूर रह कर प्रबुद्ध होकर संयम और तप के मार्ग पर चलना ही श्रेय है, मेरा उपदिष्ट मार्ग ही पथ-प्रदर्शक होगा, शान्ति और अहिंसा का मार्ग ही धर्म-मार्ग है। महावीर स्वामी ने धर्म को जीवन का वास्तविक अंग सिद्ध किया। जनता को उन्होंने आत्मधर्म का पवित्रतम सन्देश दिया।

संकलन

आचारांग, उत्तराध्ययन, उववाइय, दसवैकालिक, दसवैकालिक चूलिका दसाश्रुत स्कन्धसूत्र, सूत्रकृतांग, ज्ञात धर्मकथा सूत्र में महावीर के प्रवचन मिलते हैं। शिष्यों ने उनके उपदेश अंग, उपांग, प्रकीर्ण, सूत्र और मूल सूत्र में विभाजित किये हैं। आवश्यक दसवैकालिक, उत्तराध्ययन, पिण्ड, निर्युक्ति मूल सूत्र के अंग हैं। सामायिक, चौबीसथ्थो, वन्दनाका, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और प्रत्यख्यान आवश्यक सूत्र के छः अंग हैं।

वाणी

दुमपत्तए पंडुयए जहा, निवडइ राइगणाण अच्चए।
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम मा पमायए॥

जिस प्रकार वृक्ष के पत्ते पीले पड़ते हुए समय आने पर पृथ्वी पर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

झड़ जाते हैं, उसी प्रकार मनुष्य-जीवन भी आयु शेष होने पर समाप्त हो जाता है। हे जीव, क्षण भर के लिये भी प्रमाद न करो।

—उत्तराध्ययन सूत्र १०-१

अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पा हु खलु दुद्दमो।
अप्पा दन्तो सुही होइ, अस्सि लोए परत्थ य॥

अपने आपको जीतो। अपने आपको जीतना ही वास्तव में दुर्जय है। अपनी आत्मा को दमन करने वाला इस लोक तथा परलोक में सुखी होता है।

—उत्तराध्ययन सूत्र १-१५

पुरिसा! तुममेव तुमं—मित्तं, किं वहिया
मित्तमिच्छसी? पुरिसा! अत्ताणमेव
अभिनिगज्झ एवं दुक्खा पमोक्खसि।

हे पुरुष, तू ही अपना मित्र है, मित्र बाहर क्यों खोजता है? हे पुरुष, अपनी आत्मा को ही वश में करो। ऐसा करने से तू सब दुखों से मुक्त होगा। —आचारांग सूत्र ३-३:११७-८

सव्वे पाणा पियाउया, सुहसाया, दुक्खपडिकूल।
अप्पियवहा पियजीवणो, जीविउ कामा सव्वेसिं जीवियं पियं।

सभी प्राणियों को अपनी-अपनी आयु प्रिय है। सुख अनुकूल है, दुख प्रतिकल है, वध अप्रिय है। जीना प्रिय है। सब जीव दीर्घायु चाहते हैं। सबको जीवन प्रिय है। —आचारांग सूत्र १,२-३:७

आउक्खयं चेव अबुज्झमाणे, ममाइ से साहसकारिमंदे।
अहो यराओ परितप्पमाणे, अट्टे सु मूढ़े अजरामरे व्व॥

आयु पल-पल क्षीण हो रहा है, यह न समझ कर मूर्ख मनुष्य बिना विचारे ममता करता रहता है। धन में आसक्त होकर अजर-अमर पुरुष की तरह रात-दिन उसके लिये परिताप करता है। यह कितना बड़ा दुस्साहस है। —सूत्र कृतांगसूत्र १,१०:१८

गुणेहि साहू अगुणेहिऽसाहू, गिण्हाहिसाहू गुणमुञ्चऽसाहू।
वियाणिया अप्पगमप्पएणं, जो रागदोसेहिं समो स पुज्जो॥

गुणों से मनुष्य साधु होता है, अगुणों से असाधु होता है। सद्गुणों को ग्रहण करो, दुर्गुणों को छोड़ो। जो अपनी ही आत्मा द्वारा अपनी आत्मा को जानकर राग और द्वेष में समभाव रखता है वह पूज्य है।

—दसवैकालिक सूत्र ९-३:११

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आचार्य शंकर

'महात्माओं का यह स्वभाव ही है कि वे स्वतः दूसरों का श्रम दूर करने में लगे रहते हैं। सूर्य के प्रचंड तेज से सन्तप्त पृथ्वीतल को चन्द्रमा स्वयं ही शान्त कर देते हैं।'

—विवेकचूड़ामणि

आचार्य शंकर आत्मज्ञान के महापण्डित, वैराग्य के परम रसिक, संन्यास के महासिद्ध और ब्रह्मानन्द के परम भक्त थे। निस्सन्देह वे मन्त्रदृष्टा वैदिक ऋषि, महाकाव्यकार वाल्मीकि और व्यास, औपनिषद और दार्शनिक रहस्यवेत्ता तथा स्मृतिकारों के सरस समन्वय थे। भारतीय ज्ञान-क्षेत्र के अलौकिक पुरुष थे। उन्होंने अपनी उपस्थिति से केवल विक्रमीय आठवीं शताब्दी को ही नहीं गौरवान्वित किया, आने वाले समय की अविच्छिन्न ज्ञानपरम्परा को भी सफल कर दिया। वे महात्मा थे। उन्होंने बौद्ध अनात्मवाद का खण्डन कर भारतीय धर्मशास्त्र के आधार पर शुद्ध आत्मवाद की प्राण-प्रतिष्ठा की। वे तत्वचिन्तक ही नहीं, धर्माचार्य और राष्ट्र-निर्माता भी थे। उन्होंने वैदिक धर्म और औपनिषद आत्मदर्शन का पुनरुत्थान किया। वे 'दार्शनिक सार्वभौम थे।' वे ज्ञानी भक्त और भक्त संन्यासी थे।

आचार्य शंकर के प्रमुख शिष्य पद्मपाद ने अपने 'विजयडिण्डिम' ग्रन्थ में उनका चरित्र वर्णन किया था पर वह ग्रन्थ अप्राप्य है। आचार्य शंकर के जीवन-चरित्र का अधिकांश आनन्दगिरि के शंकर दिग्विजय, चिद्विलासयति के शंकरविजय, माधवाचार्य के संक्षेप शंकरविजय तथा लघुशंकरविजय, तिरुमल्ल दीक्षित के शंकराभ्युदय और पुरुषोत्तम भारती कृत शंकरविजय में मिलता है।

केरल प्रदेश के पूर्णानदी के तट पर कालटी—कलान्दी अथवा कलादी ग्राम में विक्रमीय ८४५ सम्वत् के लगभग शंकर आचार्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

का जन्म वैशाख शुक्ल पंचमी को हुआ था। उनके माता-पिता आर्याम्मा –विशिष्टा अथवा सुभद्रा और शिवगुरु भगवान शंकर के बड़े भक्त थे। भगवान शंकर के कृपास्वरूप पुत्र होने पर उन्होंने शंकर नाम रखा। शंकर बचपन से ही अलौकिक प्रतिभासम्पन्न थे। तीन वर्ष की ही अवस्था में उन्होंने मातृभाषा मलयालम् सीख ली, माता की कृपा से और पिता की धर्मनिष्ठा से अल्प आयु में ही उन्होंने पुराणादि के विशिष्ट आख्यान कंठस्थ कर लिये। उनके जन्म के तीन वर्ष बाद ही शिवगुरु का देहान्त हो गया।

पांच वर्ष की अवस्था में यज्ञोपवीत संस्कार हो जाने के बाद उन्हें विद्याध्ययन के लिये पाठशाला भेज दिया गया और सात साल के होते-होते वे समस्त शास्त्रों में पारंगत हो गये। वेद-वेदान्त और वेदाङ्गों का उन्होंने पूर्ण रूप से अध्ययन किया। अध्ययन-काल में ही एक विचित्र घटना से उनके आचार्य आदि आश्चर्यचकित हो गये। ब्रह्मचारी शंकर के हाथ पर एक दरिद्र ब्राह्मण ने एक आँवला रख कर अपनी दरिद्रता का परिचय दिया। शंकर का हृदय दया से द्रवित हो गया। उन्होंने माता लक्ष्मी की स्तुति की और दूसरे दिन ब्राह्मण के घर में सोने के आँवले-ही-आँवले दीखने लगे। .....शिक्षा समाप्त कर शंकर घर गये, उनके मन में वैराग्य और संन्यास की तरंगें उमड़ रही थीं। ओठों पर आत्मज्ञान की पिपासा रमणशील थी।

शिक्षा समाप्त कर घर लौटने पर उन्होंने संन्यास लेने का संकल्प किया। ...एक दिन विलक्षण बात हुई। शंकर बड़े मातृभक्त थे। वे अपनी माता को सदा प्रसन्न रखने की चेष्टा करते थे। .....उनकी माता पूर्णानदी में स्नान करने गयी थीं। वे लौटते समय थकावट और श्रम से मूर्छित होकर रास्ते में ही रह गयी थीं कि शंकर की चिन्ता बढ़ गयी, उन्हें विलम्ब खटकने लगा। वे माता को लेने चल पड़े और उनकी थकावट देख कर उन्होंने सोचा कि ऐसा भी तो हो सकता है कि नदी हमारे घर के निकट बहने लगे। उन्होंने भगवान से भक्तिपूर्वक प्रार्थना की और नदी उनके घर के निकट बहने लगी, माता को आने-जाने के श्रम से अवकाश मिल गया, वे अपनी सुविधा से स्नान कर नित्य देवपूजन कर लिया करती थीं। उनकी मातृभक्ति ने ईश्वरभक्ति की सिद्धि में सहायता दी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शंकर ने माता से संन्यास-संकल्प की बात कही पर माता ने अपने प्राणप्रिय पुत्र को बहुत दिनों तक अनुमति न दी। शंकर का समय घर पर शास्त्रचर्चा और आध्यात्मिक परिशीलन में बीतने लगा। उन्हें इस प्रकार के जीवन से संतोष न मिल सका, एक आन्तरिक शक्ति ने उन्हें क्षण-क्षण वैराग्य की प्रेरणा दी। उनको इस बात का आभास मिलने लगा कि उनको अपने क्षणभंगुर जीवन में बहुत बड़ा कार्य करना है, दैवयोग से उन्हें भगवान की कृपा ने शुभ अवसर प्रदान किया। एक दिन माता के साथ नदी में स्नान करने गये। माता तट पर खड़ी थीं, शंकर अपने कन्धे तक पानी में खड़े थे। उनका पैर मगर ने पकड़ लिया। उन्होंने माता से कहा कि जब तक संन्यास लेने की अनुमति तुम से न मिलेगी, मगर मेरा पैर नहीं छोड़ेगा। बहुत-से लोग नदी तट पर एकत्र हो गये। वात्सल्यमयी माता की ममता जाग उठी। उन्होंने कलेजा कड़ा कर पुत्र को संन्यास की अनुमति दी। शंकर नदी के बाहर आ गये। आठ वर्ष के बालक ने मातृ-बन्धन से मुक्त होकर वैराग्य के राज्य में प्रवेश किया। चलते समय उन्होंने माता को आश्वासन दिया कि तुम्हारे अन्तिम समय में मैं अवश्य आऊँगा। वे गुरु की खोज में निकल पड़े।... उन्होंने गेरुआ वस्त्र धारण कर लिया। ओंकारनाथ में नर्मदा तट पर शंकर ने गोविन्द भगवत्पाद से संन्यास की दीक्षा ली। थोड़े ही दिनों में वे एक सिद्ध योगी हो गये। गोविन्द भगवत्पाद ने उन्हें ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखने की प्रेरणा देकर काशी जाने का आदेश दिया। वे काशी गये। काशी में पद्माचार्य उनके शिष्य हो गये। शंकर विद्यार्थियों को पढ़ाने के साथ-ही-साथ नित्य ग्रन्थ-रचना भी किया करते थे।

काशी-निवास काल में एक दिन दोपहर को शंकर ने एक चाण्डाल देखा, वह चार कुत्तों से घिरा हुआ था। वह शंकर का रास्ता रोक कर खड़ा हो गया। आचार्य ने दूर हटने का आदेश दिया।

चाण्डाल ने बड़ी विनम्रता से कहा कि महाराज, आप अद्वैत तत्व के ज्ञाता हैं। समस्त जगत में शुद्ध सच्चिदानन्द भगवान व्याप्त हैं, आश्चर्य है कि आप ऐसे वेदान्तज्ञानी स्पर्शास्पर्श का विचार करते हैं। शंकर ने चाण्डाल की उक्ति की बड़ी सराहना की। उन्होंने कहा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कि छोटे-बड़े सभी जीव में, चराचर में आत्मस्वरूप की अभिव्यक्ति का ज्ञान रखने वाला चाण्डाल भी मेरा गुरु है। उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उन्होंने चाण्डाल के स्थान पर साक्षात् भगवान विश्वनाथ का दर्शन किया। भगवान शिव ने अपना दिव्य शरीर प्रकट किया। आचार्य शंकर को ब्रह्मसूत्र-भाष्य में अद्वैत ब्रह्मतत्व के प्रतिपादन का आदेश दिया और कहा कि वैदिक धर्म का प्रचार कर मानव जाति को अनात्मवाद के वन्धन से मुक्त करो। वे अन्तर्धान हो गये।

उन्होंने दिग्विजय का समारंभ किया। अनन्तशयन, अयोध्या, इन्द्रप्रस्थपुर, उज्जयिनी, कर्नाटक, कांची, चिदम्वर, वदरी, प्रयाग आदि तीर्थक्षेत्रों और महानगरों में आत्मज्ञान और धर्म का प्रचार किया। प्रयाग में कुमारिल भट्ट से भी उनकी भेंट हुई थी। उस समय कुमारिल अपने हाथ से चिता बना कर देह अग्नि को समर्पित कर रहे थे, शंकर ने कुमारिल की स्तुति की, उन्होंने शंकर को माहिष्मती नगरी में जाकर मण्डन मिश्र से शास्त्रार्थ करने का आदेश दिया-शंकर माहिष्मती गये। मण्डन मिश्र की पत्नी भारती ने शास्त्रार्थ में मध्यस्थ का कार्य किया, मण्डन की पराजय हो गयी। वे शंकर के शिष्य हो गये। उनकी पत्नी भारती महाविदुषी थी, उसने शंकर को कामशास्त्र पर शास्त्रार्थ करने के लिये ललकारा, वे वाल-ब्रह्मचारी थे, अमरु नामक मृत राजा की काया में प्रवेश कर उन्होंने काम, शास्त्र का अध्ययन किया और उसके वाद भारती से शास्त्रार्थ करने के योग्य हो सके। मण्डन ने शंकराचार्य का शिष्यत्व ग्रहण करने के वाद अपना नाम सुरेश्वराचार्य रखा। शंकर ने औपनिषद शिक्षा-दीक्षा का प्रचार आरम्भ किया। भारतीय धर्मशास्त्र के हिमालय से शंकर के ज्ञान की गंगा ने प्रकट होकर चारों ओर ईश्वर-भक्ति के पुण्य की खेती हरी-भरी कर दी। उन्होंने प्रचार किया कि ब्रह्म सत्य है। जगत मिथ्या है, इस सिद्धान्त का नाम केवलाद्वैतवाद है। उन्होंने जीव और ब्रह्म की अभिन्नता दिखायी। उनका ब्रह्म चिन्मात्र होने पर भी पूर्ण और सत्य ज्ञानानन्दस्वरूप है। विभु है। शंकर के मत से ब्रह्म निर्गुण और निष्क्रिय है, निर्विशेष है, सविशेष-सगुण ब्रह्म

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

को भी उन्होंने अस्वीकार नहीं किया है। उन्होंने सगुण ब्रह्म को मायिक बताया, सगुण ब्रह्म में ही उन्होंने शक्ति और गुण का अस्तित्व स्वीकार किया। उन्होंने घोषणा की कि आत्मा ज्ञानस्वरूप और अनन्त है, जीव को यह ज्ञान नहीं रहता है, जीव का ज्ञान देह में सीमाबद्ध रहता है, जीव कृतकर्म के फल से सुकृति-दुष्कृति कमाता है इसीलिये जीव को सुख-दुख का भोग करना पड़ता है; जन्म-मरण की यातना सहता है। 'तत्वमसि' के अनुष्ठान से जीव और ब्रह्म का भिन्न ज्ञान तिरोहित होने पर जीव मुक्ति-लाभ कर स्वरूपस्थ होता है। आचार्य ने अन्तःकरण की शुद्धि को विशेष महत्व दिया। अन्तःकरण शुद्ध होने पर ही वास्तविकता का बोध होता है, सच्चा ज्ञान पाना ही परम कल्याण है। भक्ति को ज्ञान-प्राप्ति का साधन माना है पर वे स्वयं भक्त थे। भगवान श्रीकृष्ण की लीला में वे विशेष अनुरक्त थे। उन्होंने कल्पवृक्ष के पुष्पों की गन्ध से युक्त वायु से सेवित परमानन्द स्वरूप का ध्यान किया है जिनके चरणों से गंगा बहती है। उन्होंने यमुना तट पर विहार करने वाले श्यामसुन्दर की लीला का अपने प्रबोधसुधाकर ग्रन्थ में बड़ी भक्ति से स्मरण किया है।

शंकराचार्य ने शास्त्र-ग्रन्थों का उद्धार किया, उन्होंने कई एक मौलिक रचनायें लिखीं तथा उपनिषद आदि पर टीकायें प्रस्तुत कीं। उन्होंने बारह वर्ष से सोलह वर्ष तक की अवस्था में अपने सारे ग्रन्थ लिख डाले। महाराष्ट्र के शैव और कापालिकों को परास्त किया, काश्मीर के पण्डितों पर विजय की स्थापना की। काश्मीर से रामेश्वर तक की विद्वन्मण्डली ने उनकी विद्वत्ताका लोहा मान लिया। उन्होंने दक्षिण में शृंगेरी, जगन्नाथपुरी में गोवर्धन, द्वारका में शारदा और बदरिकाश्रम में ज्योतिर्मठ की स्थापना की, अपनी स्थापना के समय से ही ये मठ शांकर सिद्धान्तों के प्रधान गढ़ होते चले आ रहे हैं। आचार्य ने धर्म-प्रचार की दृष्टि से नासिक, उज्जैन, प्रयाग और हरिद्वार में बारह साल के क्रम से कुम्भ का आयोजन किया, कुम्भमेला की परंपरा आज तक जीवित है, भारतीय संस्कृति को यह कुम्भ-योजना आचार्य की बहुत बड़ी देन है।

आचार्य शंकर की शास्त्रों के प्रति बड़ी मान्यता थी, वे ब्रह्म-जीव

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के सम्बन्ध की ज्ञान-प्राप्ति की मूल-भूमि धर्मशास्त्रों को ही स्वीकार करते थे। उन्होंने ज्ञान को मोक्ष का सबसे बड़ा साधन माना है। उनके सिद्धान्त से मोक्ष तपस्याप्रधान नहीं है, अनुभूतिगम्य है। उन्होंने समस्त जगत को ब्रह्ममय स्वीकार किया, ब्रह्म और जगत की अभिन्नता में विश्वास प्रकट किया। आचार्य शंकर ने भारत के धार्मिक जीवन में युगान्तर उपस्थित किया। बौद्ध अनात्मवाद के अन्धकार से भ्रमित भारत को उन्होंने ब्रह्म, जीव और जगत की वास्तविकता समझायी कि निर्विकल्प, निरुपाधि और निर्विकार सत्ता का नाम ब्रह्म है; उपासना के लिये निर्विशेष ब्रह्म सविशेष ईश्वर का रूप धारण करता है। ईश्वर उपकारक है, जीव उपकार्य है, शरीर और इन्द्रिय पर शासन करने वाला तथा कर्म-फल भोगने वाला जीव है। जगत की उत्पत्ति ब्रह्म से होती है पर जगत मिथ्या है, ब्रह्म सत्य है।

मठों की स्थापना, दिग्विजय और धर्म-प्रचार का शुभ कार्य पूरा कर वे अपनी माता का दर्शन करने के लिये केरल गये। उनकी माता रोगशय्या पर थीं। पुत्र को देख लेने पर माता ने देहत्याग किया, संन्यासी शंकर को दाह-संस्कार के लिये प्रस्तुत देख कर ब्राह्मणों ने बहिष्कार किया। आचार्य शंकर ने अपनेआप माता का अन्तिम संस्कार किया।

आचार्य शंकर पृथ्वी पर केवल बत्तीस साल तक रहे। केदार क्षेत्र की ओर जाते हुए कैलाश के निकट उन्होंने ब्रह्मलोक प्राप्त किया। सम्वत् ८७७ वि. में उन्होंने महाप्रयाण किया।

रचना

भाष्य ग्रन्थों में—ब्रह्मसूत्र भाष्य; ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरिय छान्दोग्य, बृहदारण्यक, नृसिंहपूर्वतापनी, श्वेताश्वतर, आदि के भाष्य तथा गीता-भाष्य, विष्णु सहस्त्रनाम भाष्य, सनत्सुजातीय भाष्य, हस्तामलक भाष्य, ललितात्रिशती भाष्य आदि प्रसिद्ध हैं।

इसी प्रकार विवेकचूड़ामणि, प्रबोधसुधाकर, उपदेशसाहस्त्री, अपरोक्षानुभूति, शतश्लोकी, दशश्लोकी, सर्ववेदान्त सिद्धान्त सार संग्रह, वाक्य सुधा, पञ्चीकरण, प्रपञ्चसार, आत्मबोध, मनीषापञ्चक, आनन्द-लहरी तथा विविध स्तोत्र आदि आचार्य शंकर के प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वाणी

न हि प्रिपञ्चो न हि भूतजातं न चेन्द्रियं प्राणगणो न देह :।
न बुद्धिचित्तं न मनो न कर्ता ब्रह्मैव सत्यं परमात्मरूपम् ॥

यह जगत (सत्य) नहीं है, प्राणिसमूह नहीं है, इन्द्रिय नहीं है, देह नहीं है, बुद्धि-चित्त नहीं है, मन नहीं है, अहंकार नहीं है, परमात्मरूप ब्रह्म ही सत्य है।

—स्वात्मप्रकाशिका १७

कन्दर्पकोटिसुभगं वाञ्छितफलदं दयार्णवं कृष्णम्।
त्यक्त्वा कमन्यविषयं नेत्रयुगं द्रष्टुमुत्सहते ॥
पुण्यतमामतिसुरसां मनोऽभिरामां हरेः कथां त्यक्त्वा।
श्रोतुं श्रवणद्वन्द्वं ग्राम्यं कथमादरं वहति ॥
दौर्भाग्यमिन्द्रियाणां कृष्णे विषये हि शाश्वतिके।
क्षणिकेषु पापकरणेष्वपि सज्जन्ते यदन्यविषयेषु ॥

जो करोडों कामदेवों से भी सुन्दर हैं, वांछित फल देते हैं, उन दयासागर श्रीकृष्ण को छोड़कर ये युगल नेत्र और किस विषय का दर्शन करने को उत्सुक हैं? अति पवित्र, अति सुन्दर, और सरस हरिकथा को छोड़कर ये कर्ण युगल सांसारिक विषयों की चर्चा सुनने को क्यों श्रद्धा प्रकट करते हैं? सदा विद्यमान श्रीकृष्णरूपी विषय के रहते हुए भी पाप के साधन अन्य क्षणिक विषयों में जो इन्द्रियां आसक्त होती हैं, वह इनका दुर्भाग्य ही है।

—प्रबोधसुधाकर १९१-९३

चेतश्चञ्चलतां विहाय पुरतः संधाय कोटिद्वयं
तत्रैकत्र निधेहि सर्वविषयानन्यत्र च श्रीपतिम्।
विश्रान्तिर्हितमप्यहो क्व नु तयोर्मध्ये तदालोच्यतां
युक्त्या वानुभवेन यत्र परमानन्दश्च तत्सेव्यताम् ॥

अरे चित्त, चञ्चलता को छोड़कर सामने तराजू के दोनों पलड़ों में से एक में सब विषयों को और दूसरे में भगवान श्रीपति को रख और उसका विचार कर कि दोनों के बीच में विश्राम और हित किस में है? फिर युक्ति और अनुभव से जहां परमानन्द मिले, उसी का सेवन कर।

—प्रबोधसुधाकर २४८

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नित्यमात्मस्वरूपं हि दृश्यं तद्विपरीतगम्।
एवं यो निश्चयः सम्यग्विवेको वस्तुनः स वै।

आत्मा का स्वरूप नित्य है और दृश्य उसके विपरीत अनित्य है —ऐसा दृढ़ निश्चय ही आत्मवस्तु का विवेक है।

—अपरोक्षानुभूति ५

ब्रह्मणः सर्वभूतानि जायन्ते परमात्मनः।
तस्मादेतानि ब्रह्मैव भवन्तीत्यवधारयेत्॥

सम्पूर्ण भूत परमात्मा ब्रह्म से ही उत्पन्न होते हैं, अतएव ये सब ब्रह्म ही हैं;—ऐसा निश्चय कहना चाहिये।

—अपरोक्षानुभूति ४९

वदन्तु शास्त्राणि यजन्तु देवान् कुर्वन्तु कर्माणि भजन्तु देवताः।
आत्मैक्यबोधेन विना विमुक्ति र्न सिध्यति ब्रह्मशतान्तरेऽपि॥

भले ही कोई शास्त्रों की व्याख्या करें, देवताओं का यजन करें, अनेक शुभ कर्म करें, देवताओं का भजन करें, जब तक ब्रह्म और आत्मा की एकता का बोध नहीं होता तब तक सौ ब्रह्माओं के बीत जाने पर भी मुक्ति नहीं हो सकती।

—विवेकचूड़ामणि ६

वाचं नियच्छात्मनि तं नियच्छ बुद्धौ धियं यच्छ च बुद्धिसाक्षिणी।
तं चापि पूर्णात्मनि निर्विकल्पे विलाप्य शान्तिं परमां भजस्व॥

वाणी को मन में लय करो, मन को बुद्धि में, बुद्धि को बुद्धि के साक्षी आत्मा में तथा बुद्धि-साक्षी को निर्विकल्प पूर्ण ब्रह्म में लय कर परम शान्ति का अनुभव करो।

—विवेकचूड़ामणि ३७०

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आचार्य निम्बार्क

'हे देव, यदि नर मनुष्य-जन्म पाकर आपके पदपंकज की भक्ति नहीं करता है तो उसके जन्म, कुल और यौवन को धिक्कार है।'

—कृष्णस्तवराज

आचार्य निम्बार्क परम वैष्णव थे, उन्होंने कृष्ण के सौन्दर्य-रस में शुद्ध सच्चिदानन्द-ब्रह्म-तत्व का सफल अन्वेषण किया। उनका आविर्भाव दक्षिण भारत की भक्तिमयी पवित्र भूमि में हुआ था। उन्हें भगवान के सुदर्शन चक्र का अवतार माना जाता है, उनको चक्रराज और सुदर्शन नाम से विभूषित किया जाता है, उनका एक नाम आरुणि भी है। उन्होंने द्वैताद्वैत मत का प्रचार किया।

निम्बार्क का समय निश्चित करना कठिन है। ऐसी मान्यता है कि वे त्रेता के अन्त और द्वापर युग के पहले चरण में प्रकट हुए थे। उनके पाँचवीं शताब्दी में प्रकट होने का मत भी प्रचलित है। ऐसा समझा जाता है कि वे विक्रम की ग्यारहवीं अथवा बारहवीं शती में दक्षिण भारत के बिलारी जिले के निम्बापुर ग्राम में पैदा हुए थे। मान्यता यह है कि उनका जन्म दक्षिण काशी-वैदूर्यपत्तन में हुआ था। उनके पिता का नाम अरुणिमुनि था और माता का नाम जयन्ती था। माता-पिता के पवित्र आध्यात्मिक जीवन का उनके विकास पर अमित प्रभाव पड़ा था, शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था भी आध्यात्मिक रूचि के ही अनुकूल थी। उनका बचपन का नाम नियमानन्द था। उनके उपनयन-संस्कार के समय स्वयं नारद जी ने प्रकट होकर उनको गोपाल-मन्त्र की दीक्षा दी थी। वे अलौकिक थे। नारद ने उनको श्रीकृष्ण की उपासना का उपदेश किया था।

उन्होंने व्रजक्षेत्र में गोवर्धन के निकट ध्रुवक्षेत्र में तपस्या और साधना की। भगवान की भक्ति तो उनके लिये सहज सिद्ध थी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धीरे-धीरे उनकी ख्याति चारों ओर फैलने लगी। एक दिन विचित्र घटना हुई। उनके आश्रम में एक दण्डी संन्यासी उनसे सत्संग करने लगे, शास्त्रचर्चा में शाम हो गयी। सूर्यास्त के बाद संन्यासी भिक्षा नहीं ग्रहण करते थे। आचार्य ने अद्भुत चमत्कार दिखाया, वे इस बात को नहीं सह सकते थे कि उनके आश्रम में संन्यासी उपवास करें इसलिये उन्होंने अपने आश्रम के निकट ही नीम के वृक्ष पर सूर्य को अवस्थित कर दिव्य प्रभा प्रकट कर दी, संन्यासी के भिक्षा ग्रहण करने पर सूर्य-मण्डल अदृश्य हो गया। उसी दिन से आचार्य निम्बार्क नाम से प्रसिद्ध हुए।

वे भगवद्भक्ति के प्रचार में तत्पर हो गये, राधाकृष्ण की उपासना पर विशेष जोर दिया और श्रीमद्भागवत ग्रन्थ को पूर्ण मान्यता दी। उनका मत था कि भगवान की कृपा से उनकी शरण मिलने पर भक्त भक्तिरस का आस्वादन करता है। नवधा भक्ति के अभ्यास से भगवान् की रति मिलती है, उनका प्रेम प्राप्त होता है। उन्होंने शान्त दास्य, सख्य, वात्सल्य और उज्ज्वल भावों से समवेत प्रेम-भक्ति का प्रचार किया।

आचार्य निम्बार्क ने नैमिषारण्य, गोवर्धन और बदरिकाश्रम को अपनी उपस्थिति से धन्य किया था। इन तीर्थों में उन्होंने विशेष रूप से अपने भक्ति-सिद्धान्त का उपदेश दिया। आचार्य निम्बार्क का मत था कि ब्रह्म, जीव और जड़—(चेतन-अचेतन से)—अत्यन्त पृथक और अपृथक हैं। जीव और जगत दोनों ब्रह्म के परिणाम हैं। जीव ब्रह्म से अत्यन्त भिन्न और अभिन्न है। जगत भी उसी प्रकार भिन्न और अभिन्न है। कर्म-मीमांसा के बाद भक्ति का उदय होने पर ब्रह्म-मीमांसा का अधिकार प्राप्त होता है। शास्त्र द्वारा ब्रह्मज्ञान होता है, भगवान की प्रसन्नता और दर्शन से दुख-निवृत्ति होती है। ब्रह्म का सगुण भाव ही मुख्य है, जगतरूप में परिणत होने पर भी वह निर्विकार है। जगत से अतीत रूप में वह निर्गुण है। जीव अंश है, ब्रह्म अंशी है। दोनों भिन्न और अभिन्न हैं। जीव अल्पज्ञ है, मुक्तावस्था में भी वह अणु ही है, विभु नहीं है। मुक्तावस्था में जीव अपने आपको और जगत को ब्रह्मरूप में देखता है। भक्ति-उपासना से

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ब्रह्म की प्राप्ति होती है। जीव की मुक्ति का साधन भक्ति ही है। निम्बार्क ने कृष्ण को ही परब्रह्म स्वीकार किया। कृष्ण की शक्ति अचिंत्य और अनन्त है। वे ऐश्वर्य-माधुर्य के परमाश्रय हैं। उन्होंने राधाकृष्ण की युगल-उपासना को ही महत्व दिया।

रचना

वेदान्तपारिजात-सौरभ, कृष्णस्तवराज, वेदान्ततत्वबोध, गुरुपरम्परा, राधाष्टक आदि निम्बार्क के ग्रन्थ हैं।

वाणी

ज्ञानस्वरूपं च हरेरधीनं शरीरसंयोगवियोगयोग्यम्।
अणुं हि जीवं प्रतिदेहभिन्नं ज्ञातृत्ववन्तं यमनन्तमाहुः॥

जीव ज्ञानस्वरूप है, वह भगवान श्रीहरि के अधीन है। उसमें एक शरीर को छोड़ कर दूसरे नूतन शरीर को ग्रहण करने की योग्यता है। वह प्रत्येक शरीर में भिन्न, अणु, ज्ञानयुक्त और अनन्त बताया गया है।

अंगे तु वामे वृषभानुजां मुदा विराजमानामनुरूपसौभगाम्।
सखीसहस्त्रैः परिसेवितां सदा स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम्॥

जो उन्हीं श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण के वामांग में प्रसन्नतापूर्वक विराजमान हो रही हैं, जिनका रूप-शील-सौभाग्य अपने प्रियतम के सर्वथा अनुरूप है, सहस्त्रों सखियां सदा जिनकी सेवा के लिये उद्यत रहती हैं, उन सम्पूर्ण अभीष्ट कामनाओं को देनेवाली देवी वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा का हम सदा स्मरण करें।

नान्या गतिः कृष्णपदारविन्दात् संदृश्यते ब्रह्मशिवादिवन्दितात्।
भक्तेच्छयोपात्तसुचिन्त्यविग्रहादचिन्त्य शक्तेरविचिन्त्यसाशयात्॥

ब्रह्मा और शिव आदि देवेश्वर भी जिनकी वन्दना करते हैं, जो भक्तों की इच्छा के अनुसार परम सुंदर और चिंतन करने योग्य लीला-शरीर धारण करते हैं, जिनकी शक्ति अचिन्त्य है तथा जिनके अभिप्राय को उनकी कृपा के बिना कोई नहीं जान सकता, उन श्रीकृष्ण चरणारविन्दों के सिवा जीव की कोई दूसरी गति नहीं दीखती।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

त्वत्समो यदि ह नास्ति चेतनः कस्तदाऽधिक गुणाकरः प्रभुः।
त्वां प्रयामि शरणं शरण्यकं पुण्डरीकनयनं सुधानिधिम्॥

हे हरि! शास्त्र तथा लोक में यदि चेतन जीव ही आपके सदृश नहीं है, तव आपसे अधिक गुणवाला समर्थ अन्य कौन हो ही सकता है। सुधानिधि कमलनयन मैं आपकी शरण में हूँ।

त्वामखण्डरसमात्मवल्लभं वेदवाक्यमत एव बोधयत्।
पर्य्यवस्यति परेऽखिलात्मनि त्वय्यनन्त! सुखरूप! शोधयत्॥

हे अनन्त सुखरूप परमेश्वर आप अपरिच्छिन्न ज्ञानानन्दस्वरूप और जीवों के अमित प्रिय हैं। इसलिये आपको अतिशय साम्यरहित ज्ञापन करते तथा पुरुषोत्तमत्व प्रकट करते समस्त वेद वाक्य का पर्यवसान चराचर के आत्मा आपमें होता है।

—कृष्णस्तवराज

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आण्डाल रंगनायकी

'मैं पूर्ण यौवनमयी हूँ, श्रीकृष्ण ही एक मात्र मेरे स्वामी हैं, उनके अतिरिक्त मैं किसी और को पति नहीं बना सकती।'

—तिरुप्पावै

विक्रम की आठवीं शती में आण्डाल का प्रादुर्भाव हुआ। आण्डाल रंगनायकी निस्सन्देह गिरिधर गोपाल की प्रेमांगना राजरानी मीरा की पूर्वस्मृति-प्रतीक थीं। गोपी-प्रेम की मध्यकालीन रास-नायिका थीं। उन्होंने प्रेम के योगरूप में भगवान और उनकी आह्लादिनी महाभाव-रूपिणी चिन्मय शक्ति की प्रसन्नता में आत्मा के सौन्दर्य को संगीत और काव्य के स्तर पर प्रतिष्ठित कर यह सिद्ध कर दिया कि प्रेम साक्षात् भगवान का मधुरतम-सुन्दरतम रूप है, सत्य है, शिव है। आण्डाल रंगनायकी ने भगवान श्रीरंग की प्राणप्रियतमा के रूप में प्रेम की दिव्य ज्योति से चिरन्तन वस्तुतत्व की अनुभूति की। वे प्रेमसाधिका थीं; भगवान की आराधिका थीं। प्रेमलक्षणा भक्ति की देन थीं। उनकी प्रेमभक्ति-परम्परा दक्षिण भारत के वैष्णव आलवार सन्तों की उपासना की अभिव्यक्ति थी। आलवारों ने विष्णु को पूर्ण प्रेममय स्वीकार किया, वे नारायण से ही प्रेम करते थे। आण्डाल को नारायण और जगत में प्रेम की ही सत्ता परिव्याप्त दीख पड़ी। उन्होंने भगवान रंगनाथ के चरणों में सर्वस्व समर्पित कर दिया था। श्रीमद्भागवत में वर्णित गोपीप्रेम ही उनकी उपासना का प्राण है। उन्होंने गोपीभाव को ही भागवत प्रेम का सर्वोत्तम रूप स्वीकार किया।

आलवारों की परम्परा में विष्णुचित्त का नाम सबसे पहले लिया जाता है, उन्हें पेरि आलवार भी कहा जाता है। पुण्यसलिला भगवती कावेरी के परम पवित्र तट पर एक रमणीय गांव में रह कर वे श्री भगवान की भक्ति किया करते थे। एक दिन प्रातःकाल वे उपवन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

में तुलसी के विरवे को जल दे रहे थे कि उन्होंने एक नवजात दिव्य कन्या देखी। उन्होंने बालिका को बड़े स्नेह और वात्सल्य से गोद में उठा लिया, नारायण के चरणकमलों में समर्पित कर कहा कि प्रभु, यह आपकी सम्पत्ति है, स्वीकार करें। श्रीभगवान की कृपा के अवतरणस्वरूप बालिका का आण्डाल नाम 'कोदई' प्रसिद्ध हो गया। नारायण की मूर्ति ने विष्णुचित्त को स्पष्ट आदेश दिया कि बालिका को अपनी पुत्री के रूप में ग्रहण कर पालन-पोषण करो। कोदई का अर्थ 'फूलों के हार के समान कमनीय' है। आण्डाल ने धीरे-धीरे अपने पवित्र हृदय-देश में भगवान विष्णु के प्रेम-विग्रह की स्थापना कर भक्ति का वरण कर लिया, वे एकमात्र उन्हीं की हो गयीं, उन्हीं के पूजा-शृंगार के लिये कुसुम-चयन करना, दिव्य दर्शन करना उनका दैनिक कार्यक्रम हो चला; वे रात-दिन अपने प्राणेश्वर श्रीरंग के चिन्तनसागर-अमृत में सराबोर रहने लगीं, उनके मुख से सदा विष्णु के ही पवित्र नाम का उच्चारण होने लगा। आण्डाल ने अपना 'कोदई'—फूलों का हार—नाम विष्णु के गले की माला बनकर चरितार्थ कर दिया। अवस्था में कुछ बड़ी होने पर उन्होंने विष्णु को रिझाने के लिये प्रेमगीतों का गान आरम्भ किया। उनके गीतों में प्रेम मूर्तिमान भक्ति-विग्रह होकर प्रकट हो गया। भगवान श्रीरंग के प्रेम में अपने आपको इस तरह खो देती थीं कि उनके लिये परिश्रम से गूंथे गये पुष्पहार को स्वयं पहन कर मन्दिर में भेजती थीं। भगवान की उन्होंने पति के रूप में उपासना की। दो-चार बार पुजारी को सन्देह हुआ और उसने पेरि आलवार से शिकायत की कि हार पहले से किसी और के गले का अलंकार हो जाता है। विष्णुचित्त को अपनी कन्या की भगवद्भक्ति और हृदय की पवित्रता पर पूरा भरोसा था, वे सपने में भी नहीं सोच सकते थे कि प्रेमदीवानी रंगनायकी उन हारों को पहन लिया करती हैं। यद्यपि आण्डाल पर सन्देह नहीं किया जा सकता था तो भी विष्णुचित्त ने माला मुरझाने का कारण समझने में—रहस्योद्घाटन करने में कुछ भी उठा न रखा।

आण्डाल अपने हाथ से गूंथे हुए हार को पहन कर दर्पण में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सौन्दर्य देख कर मन-ही मन सोचा करती थीं कि क्या यह सौन्दर्य मेरे प्राणेश्वर श्रीरंग के चरणदेश में समर्पित होने योग्य है। एक दिन पुजारी ने माला यह कह कर लौटा दी कि उस में किसी के सिर का बाल लगा हुआ है, आण्डाल के पिता बड़े दुखी हुए पर ताजे चुने पुष्पों की माला दी। पुजारी ने मुरझायी हुई कह कर उसको भी लौटा दिया। विष्णुचित्त को रहस्य का पता चल गया, उन्होंने देखा कि आण्डाल परदे में खड़ी है, गले में माला पहन ली है, मन-ही-मन अपने प्राणप्रियतम श्रीरंग से बातें कर रही हैं। उन्होंने भविष्य में आण्डाल को ऐसा करने से रोका। श्रीरंग पर दूसरी नयी माला चढ़ायी गयी पर प्रेम-देवता ने उसको स्वीकार ही नहीं किया। भगवान ने विष्णुचित्त को स्वप्न में आदेश दिया कि मुझे आण्डाल की पहनी माला ही प्रिय है—रुचिकर है। रीझ ही तो है, भगवान जिनके हो जाते हैं उनके सौभाग्य का वर्णन नहीं किया जा सकता है। इस घटना के बाद तो आण्डाल के लिये श्रीरंग का एक क्षण का विस्मरण कोटि-कोटि मरण के तुल्य हो गया। वे रात-दिन उन्हीं के ध्यान और चिन्तन में अपने जीवन का अमूल्य समय बिताने लगीं। रहती तो थीं वे विष्णुचित्त के आश्रम और उपवन में पर उनका हृदय कालिन्दी के रमणीय तट पर स्थित वृन्दावन के मधुमय निकुञ्जों की सरस झांकी में सराबोर रहता था। उनके नयनों में सदा वसन्त शृंगार का आलिंगन कर कृष्ण के प्रेम-माधुर्य का आलोड़न भरता रहता था। वे कोयल के मधुर स्वर में अपने रंगनाथ का प्रेम-सन्देश पाती थीं। मतवाली कोयल से उनका पता पूंछा करती थीं।

आण्डाल प्रेमराज्य में विदेह हो उठीं। एक बार वे इतनी विरह-कातर हो चलीं कि भगवान रंगनाथ ने पुजारियों को स्वप्न दिया कि मेरी प्राणेश्वरी आण्डाल को मेरे पास यथाशीघ्र लाओ, मैं उनका पाणिग्रहण करूँगा। उन्होंने उसी समय आण्डाल के धर्मपिता विष्णुचित्त पेरि आलवार को भी मन्दिर में आण्डाल को सजा कर लाने का आदेश दिया और प्रेममयी आण्डाल को स्वप्न में दीख पड़ा कि श्रीरंगनाथ के साथ धूमधाम से उनका परिणय सम्पन्न हो रहा है। दूसरे दिन अरुणोदयकाल में ही मन्दिर से पालकी लेकर भक्त लोग विष्णुचित्त के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आश्रम पर श्री भगवान की वधू को ले जाने के लिये उपस्थित हुए। बाजे बजने लगे, शंखध्वनि से वातावरण के कण-कण में आनन्द और उल्लास मूर्तिमान हो उठे, वेदऋचाओं की मीठी-मीठी उच्चारण-ध्वनि से भक्ति-रूपिणी आण्डाल का स्वागत किया गया। उन्होंने मन्दिर में प्रवेश किया, चारों ओर दिव्य प्रकाश छा गया, रंगनाथकी शेषशय्या पर चढ़ गयीं, प्रेमी और प्रेमिका एक हो गये, भगवान श्रीरंग ने उनकी दिव्य ज्योति का आलिंगन किया, आत्मा का परमात्मा से विवाह हो गया, आण्डाल अपने भौतिक शरीर से बाहर होकर प्रियतम के अंक में सो गयीं।

आण्डाल के विवाहोत्सव की जयन्ती दक्षिण भारत के मन्दिरों में प्रत्येक वर्ष साज-शृंगार से मनायी जाती है। आण्डाल ने विषय-सुख और जागतिक भोग को तिलाञ्जलि देकर प्रेमयोग का वरण किया। राधा-कृष्ण की लीला का रसास्वादन करोड़ों जन्मों के पुण्योदयस्वरूप मिलता है तो मिल जाता है। आण्डाल ने उनकी लीला-माधुरी के गान और आचरण से अपने आप को धन्य कर लिया।

आण्डाल भूदेवी का अवतार मानी जाती हैं। वे मधुर भाव की चरम सीमा पर पहुँच गयीं, उनके लिये विरह और प्रेम—सब के सब श्रीरंगमय हो गये थे। आण्डाल की प्रेम-उपासना ने कावेरी सरिता के दक्षिण तट—श्रीरंगनाथ की लीलाभूमि की दिव्यता बढ़ा दी।

भारतीय इतिहास के मध्यकाल का पहला चरण पेरिआलवार और मधुर रस की उपासिका आण्डाल रंगनायकी की उपस्थिति से धन्य हो गया। भक्तिमती आण्डाल के गीतों के रूप में दक्षिण भारत ने कृष्ण-प्रेम की काव्यभूमिका प्रस्तुत की, आण्डाल की कृष्ण भक्ति की ऐतिहासिक प्रगति में यह बहुत बड़ी देन थी। श्रीरंग से अपने दिव्य सम्बन्ध की रक्षा में उनके कोकिलकंठ से मधुर प्रेम-वाणी प्रस्फुटित हो उठी। आण्डाल की प्रेम-साधना श्रीरंग के शाश्वत, सनातन दिव्य सम्बन्ध से धन्य हो उठी। उनके चरित्र की विचित्रता और अलौकिकता का विवरण-दान लेखनी के वश की बात ही नहीं है। विजयनगर के महामहिम शासक महाराज कृष्णदेवराय ने उनके सम्बन्ध में एक सरस नाटक 'आमुक्तमाल्यदम्' की रचना की थी। श्रीरंगक्षेत्र आण्डाल की उप-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्थिति से परम पवित्र हो गया, पुण्यसलिला कावेरी के तट पर रासेश्वर नन्दनन्दन का वृन्दावन उतर आया। आण्डाल गोपीप्रेम की पूर्णतम अभिव्यक्ति थीं।

रचना

आण्डाल ने तीन विन्यासों में 'तिरुप्पावै' नामक दिव्य प्रेम-काव्य की रचना की। उस को भगवत्प्राप्ति के साधन का रूप प्रदान किया। इस काव्य का मूल विषय यह है कि आत्मा जब तक परमात्मा को प्रेम से वशीभूत नहीं कर लेता है, वह स्थायी शान्ति नहीं पा सकता है।

वाणी

जब प्रेम के दिव्य राज्य में अगणित कंठों से सामध्वनि फूट पड़ती है, अमृत्तसिक्त अधरों पर स्वर प्रेम-केलि में लीन हो जाते हैं, फूलों की पवित्र माला पूजा में चढ़ने के लिये लालायित हो जाती है, उस समय व्रज में सौभाग्यवती कालिन्दी के तट पर श्री भगवान का दिव्य रूप उतर आता है।

अरी कोयल! मेरे प्राणवल्लभ, मेरे सामने क्यों नहीं आते हैं! वे मेरे हृदय में प्रवेश कर अपने विरह से मुझे दुखी करते हैं, मैं तो उनके लिये तड़प रही हूँ और वे इसे खिलवाड़ समझते हैं।

गोविन्द! आपका सौन्दर्य कितना अद्भुत और रमणीय है! मृदंग बजा-बजा कर आप की लीला का सरस संगीत गाने पर कितना दिव्य आनन्द मिलता है! अनेक राग-रंग, विषय-सुख, अलंकार-परिधान से शोभित रहने पर जो सुख मिलता है उससे अगणित बार उत्तम दिव्य आनन्द की अनुभूति आप के संग में होती है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यामुनाचार्य

'प्रभो, आप के दास्यभाव में ही सुखका अनुभव करने वाले सज्जनों के घर में मुझे कीड़े की भी योनि मिले पर दूसरों के घर में ब्रह्मा की भी योनि न मिले।' —आलवन्दारस्तोत्र

निस्सन्देह भक्ति की आदिभूमि दक्षिण भारत है, यह शास्त्रसम्मत तथ्य है। बड़े-बड़े दार्शनिकों, आचार्यों, ज्ञानियों और भक्तों ने दक्षिण भारत में ही आत्मा और परमात्मा का योगानुभव प्राप्त किया। यामुनाचार्य ने दक्षिण भारत को ही धन्य किया था, वे विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के सफल प्रचारक थे, भगवान के बहुत बड़े भक्त थे।

यामुनाचार्य का जन्म सम्वत् १०१० विक्रमीय में मदुरा में हुआ था। श्रीवैष्णवसम्प्रदाय के आचार्य नाथमुनि के पुत्र ईश्वर मुनि उनके पिता थे। पवित्र भागवत वातावरण में उनका पालन-पोषण हुआ तथा बचपन में ही उनके मन में यह बात समा गयी कि भगवान की भक्ति ही नित्य वस्तु है, जीव उसी की प्राप्ति के लिये देवदुर्लभ मनुष्य-योनि में आता है। —जब वे केवल दस साल के थे, उनके पिता का देहावसान हो गया। पालन-पोषण का भार उनकी दादी और माता ने सम्हाला क्योंकि पितामह नाथमुनि ने संन्यास ले लिया था। भाष्याचार्य उनके शिक्षागुरु थे। स्वाध्यायकाल में लोगों को उनकी अद्भुत प्रतिभा, अलौकिक विचार-धारा और प्रगाढ़ विद्वत्ता का पता चल गया। उनके स्वभाव में उदारता और मृदुता, कोमलता और विनम्रता तथा आत्मनिर्भरता और सहृदयता का सरस समन्वय था।

पाण्ड्यराज्य में एक बड़े पण्डित कोलाहल थे। वे अपनी विद्वत्ता के लिये बहुत प्रसिद्ध थे। यामुनाचार्य ने उनको शास्त्रार्थ में हराकर रानी की प्रसन्नता प्राप्त की। रानी ने उनके विजयी होने पर अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार आधा राज्य दे दिया और साथ ही-साथ 'आलवन्दार' की उपाधि दी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यामुनाचार्य जब पैंतीस साल के हुए तब उनके पितामह नाथमुनि का देहावसान हो गया। नाथमुनि ने मरते समय अपने शिष्य से कहा था कि ऐसा न हो कि यामुनाचार्य की सारी आयु राज्यभोग और विषय-सुख में ही बीत जाय और वे आत्मलाभ और भगवान की भक्ति से वंचित रहें।

नाथमुनि के शिष्य राममिश्र यामुन को उनकी सम्पत्ति का अधिकार सौंपने के लिये ले जा रहे थे। रास्ते में श्रीरंग का मन्दिर था, मन्दिर को देखते ही उनका हृदय भगवान रंग के दर्शन के लिये तड़प उठा, उन्होंने सोचा कि परमानन्द और शान्ति तो रंग भगवान से मिल सकती है, संसार के अनित्य पदार्थों में अधिकार मानना मन का मोह है। उन्हें आत्मज्ञान हो गया। भगवान का दर्शन करते ही उनके हृदय में भक्ति का स्रोत फूट पड़ा, अखण्ड और पूर्ण वैराग्य का उदय हुआ, माया और राज्यभोग की वासना का नाश हो गया। उन्होंने भगवान श्रीरंग की स्तुति की — 'परम पुरुष, मुझ अपवित्र, उद्दण्ड, निष्ठुर और निर्लज्ज को धिक्कार है जो स्वेच्छाचारी होकर भी आपका पार्षद होने की इच्छा करता है। आपके पार्षद भाव बड़े-बड़े योगीश्वरों के अग्रगण्य तथा ब्रह्मा, शिव और सनकादि भी — पाना तो दूर रहा — मन में सोच नहीं सकते हैं।' राजमद का पूर्ण परित्याग कर वे श्रीरंग के भक्त हो गये।

उन्होंने विशिष्टाद्वैत का प्रचार किया। उन्होंने भगवान को पूर्ण पुरुषोत्तम माना। जीव को अंश और ईश्वर को अंशी सिद्ध किया। उन्होंने कहा कि जगत ब्रह्म का परिणाम है, ब्रह्म ही जगत के रूप में परिणत है। जगत ब्रह्म का शरीर है, ब्रह्म जगत का आत्मा है। आत्मा और शरीर अभिन्न हैं इसलिये जगत ब्रह्मात्मक है। उन्होंने सिद्ध किया कि ब्रह्म सविशेष सगुण अशेष, कल्याण गुणगणसागर सर्व नियन्ता है। जीव स्वभाव से उसका दास है, भक्त है, भक्ति जीव का स्वधर्म है। उन्होंने कहा कि विशिष्ट का अभिप्राय है चेतन और अचेतन विशिष्ट ब्रह्म और अद्वैत का आशय है अभेदता अथवा एकता। चेतना-चेतन विशिष्ट ब्रह्म के अभेदत्व या एकत्व का निरूपण करने वाला सिद्धान्त विशिष्टाद्वैत है। उन्होंने ज्ञान को आत्मा का धर्म स्वीकार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किया। उन्होंने तीन मौलिक पदार्थ चित् (जीव), अचित् (जगत) और पुरुषोत्तम (ब्रह्म) की स्थिति मानी। भगवान को उन्होंने जीव के लिये परमाश्रय स्थिर किया।

यामुनाचार्य ने आजीवन भगवान से भक्ति का ही वरदान मांगा। वे अपने समय के महान दार्शनिक, अनन्य भक्त और विचारक थे।

आचार्य रामानुज उनके शिष्य थे। यामुनाचार्य के तिरोधान-काल में एक विचित्र बात हुई। उन्होंने अन्तिम समय में रामानुज का स्मरण किया पर उनके पहुँचने के पहले ही वे ब्रह्मलीन हो गये। उनकी तीन अंगुलियाँ उठी रह गयीं, वे ही उनकी तीन कामनायें थीं। रामानुज के आते ही और प्रणाम करते ही तीनों अंगुलियाँ सीधीं हो गयीं। रामानुज ने गुरु आलवन्दार यामुनाचार्य की कामना-पूर्ति के रूप में कहा कि मैं, ब्रह्मसूत्र, विष्णु सहस्रनाम और 'दिव्य प्रवन्धम्' की टीका अवश्य लिखूंगा और लिखवाऊँगा। आलवन्दार की आत्मा ने शान्ति पायी।

रचना

स्तोत्ररत्न, सिद्धित्रय, आगमप्रामाण्य, गीतार्थसंग्रह उनके ग्रन्थ हैं। आलवन्दारस्तोत्र अमित मधुर और दिव्य रचना है।

वाणी

किञ्चैष शक्त्यतिशयेन न तेऽनुकम्प्यः स्तोतापि तु स्तुतिकृतेन परिश्रमेण।
तत्र श्रमस्तु सुलभो मम मन्दबुद्धे रित्युद्यमोऽयमुचितो मम चाब्जनेत्र॥

हे कमलनयन! कोई भी स्तुति करनेवाला अपनी शक्ति की अधिकता से आपकी दया का पात्र नहीं होता, स्तुति करते-करते जब थक जाता है तब उसकी थकावट के कारण आप उस पर दया करते हैं। ऐसी दशा में ब्रह्मादि तो अधिक शक्ति सम्पन्न होने के कारण शीघ्र ही नहीं थक सकते; पर मैं तो मन्दबुद्धि हूँ, मेरा शीघ्र ही थकना सम्भव है, इसलिये ब्रह्मादि से पहले ही मैं आपका कृपापात्र बनूँगा।

वशी वदान्यो गुणवानृजुः शुचि र्मृदुर्दयालुर्मधुरः स्थिरः समः।
कृती कृतज्ञस्त्वमसि स्वभावतः समस्तकल्याणगुणामृतोदधिः॥

हे प्रभो! आप सब को वश में रखनेवाले, उदार, गुणनिधि, सरल, पवित्र, मृदुल स्वभाव वाले, दयालु, मधुर, अविचल, समदर्शी,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कृतकृत्य, और कृतज्ञ हैं, इस प्रकार स्वभाव से ही आप कल्याणमय गुणरूप अमृत के सागर हैं।

न मृषा परमार्थमेव मे शृणु विज्ञापनमेकमग्रतः।
यदि मे न दयिष्यसे ततो दयनीयस्तव नाथ दुर्लभः॥

हे प्रभो, नाथ! मेरे इस विज्ञापन को पहले सुन लीजिये, यह झूठी बात नहीं है, सत्य ही है—यदि आप मुझ पर दया नहीं करेंगे तो फिर आपको दयापात्र मिलना कठिन ही है।

सकृत्त्वदाकारविलोकनाशया तृणीकृतानुत्तमभुक्तिमुक्तिभिः।
महात्मभिर्मामवलोक्यतां नय क्षणोऽपि ते यद्विरहोऽतिदुस्सहः॥

जिन्होंने आप के स्वरूप को एक बार देखने की इच्छा से उत्तमोत्तम भोग और मुक्ति को भी तृण के समान त्याग दिया है तथा जिनका क्षण भर का भी वियोग आप को अत्यन्त असह्य है, ऐसे महात्माओं के दृष्टिपथ में मुझे डाल दीजिये।

न देहं न प्राणान्न च सुखमशेषाभिलषितं
न चात्मानं नान्यत्किमपि तवशेषत्वविभवात्।
बहिर्भूतं नाथ क्षणमपि सहे यातु शतधा
विनाशं तत्सत्यं मधुमथन विज्ञापनमिदम्॥

हे नाथ! आप की दासता के वैभव से रहित होने वाले देह प्राण, सुख, सर्वकामनायें, आत्मा तथा अन्य सब कुछ भी क्षण भर नहीं सह सकता हूँ, चाहे ये सैकड़ों प्रकार से नष्ट हो जायँ,; हे मधुसूदन, यह मेरा विज्ञापन सत्य है।

ननु प्रपन्नः सकृदेव नाथ तवाहमस्तीति च याचमानः।
तवानुकम्प्यः स्मरतः प्रतिज्ञां मदेकवर्जं किमिदं व्रतं ते॥

हे नाथ! एक बार भी जो आप की शरण में आकर 'मैं तुम्हारा हूँ' ऐसा कह कर याचना करता है वह अपनी प्रतिज्ञा को सदा स्मरण रखनेवाले आपका कृपापात्र बन जाता है, पर क्या आपकी यह प्रतिज्ञा एक मात्र मुझ को ही छोड़ कर प्रवृत्त होती है। —आलवन्दारस्तोत्र

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आचार्य रामानुज

'हे श्रीरंग, मुझे अपनी वह दासता प्रदान कीजिये जिसका हेतु आप के स्वरूपज्ञान से उत्पन्न हुई प्रीति के अतिरिक्त और कुछ न हो। आप के दास्य के अतिरिक्त मैं किसी और गति को नहीं जानता हूँ। हे कमलनयन, आप मुझे ऐसा बना दें कि मेरी आप में ही अनन्य प्रीति रहे और सभी अवस्थाओं में आप ही मेरे एकमात्र सेव्य बने रहें।'

—श्रीरंगगद्य

आचार्य रामानुज ने विशिष्टाद्वैतमत का प्रचार किया। वे भक्ति के महान आचार्य थे, परम भागवत महात्मा थे। उनके सत्प्रयत्न से भारतभूमि में भक्ति का सागर उमड़ पड़ा। उन्होंने राजनैतिक अशान्ति से पीड़ित देश में धार्मिक एकता स्थापित कर परमात्मा के प्रति जीव की सहज भक्ति सिद्ध की। वे आलवन्दार के प्रधान शिष्यों में से एक थे।

आचार्य रामानुज का जन्म सम्वत् १०९४ वि. में दक्षिण भारत के तिरुकुदूर क्षेत्र में हुआ था। उनके पिता का नाम केशवभट्ट सोमयाजी था और माता का नाम कान्तिमती था। जब वे छोटे थे तभी उनके पिता का देहान्त हो गया। रामानुज ने कांची में यादव प्रकाश गुरु से वेदाध्ययन आरम्भ किया। उनकी प्रतिभा इतनी दिव्य और प्रखर थी कि गुरु की व्याख्या में दोष निकाल दिया करते थे। यादव प्रकाश उनसे चिढ़ गये और इतने ईर्ष्यालु हो गये कि उनके प्राण लेने का षड़यन्त्र कर बैठे। उन्होंने रामानुज के सहपाठी और चचेरे भाई को उकसाया कि काशी-यात्रा के बहाने ले जाकर किसी घने वन में उनका प्राण ले लेना चाहिये। गोविन्द ने ऐसा ही किया। रामानुज को दैव कृपा से इस बात का पता लग गया, उन्होंने वरदराज का स्तवन किया, वरदराज ने लक्ष्मी के साथ प्रकट होकर उनको दर्शन दिया, रात का समय था। उन्हें कांची तक पहुँचा आये। वरदराज में उनकी निष्ठा बढ़ गयी। हृदय में भक्ति प्रबल हो उठी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वेदाध्ययन के बाद रामानुज ने गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया। वैवाहिक जीवन सुखद नहीं था, उनके मन में वैराग्य का भाव जाग चुका था। वे संन्यास लेकर नित्यवस्तु से अपना सम्बन्ध जोड़ना चाहते थे इसी बीच में एक विचित्र घटना ने उनका जीवन भगवान के सम्मुख कर दिया। आलवन्दार यामुनाचार्य का अन्तिम समय उपस्थित था, आचार्य ने रामानुज का स्मरण किया पर उनके श्रीरंगम् पहुँचने के पहले ही आचार्य यामुन ब्रह्मलीन हो चुके थे, आश्चर्य की बात तो यह थी कि यामुनाचार्य की तीन अंगुलियां मुड़ी हुई थीं। रामानुज ने समझ लिया कि उनकी तीन कामनायें अधूरी रह गयी हैं, मृत शरीर के सम्मुख विनत होकर रामानुज ने प्रतिज्ञा की कि मैं ब्रह्मसूत्र, विष्णुसहस्रनाम और दिव्य प्रबन्धम् की टीका लिखूंगा और लिखवाऊँगा। अंगुलियाँ सीधी हो गयीं। रामानुज ने आलवन्दार के प्रधान शिष्य पेरियनीम्ब से विधिपूर्वक वैष्णव-दीक्षा लेकर भक्ति मार्ग, अपनाया। गृहस्थाश्रम में उनका मन अधिक दिनों तक नहीं लगा। उन्होंने गृहस्थाश्रम का त्याग कर श्रीरंगम् के यतिराज संन्यासी से संन्यास की दीक्षा ली।

उनके गुरुने अष्टाक्षर मन्त्र 'ॐ नमो नारायणाय' को बहुत गुप्त रखने का आदेश दिया था। उनको पता लग गया कि इस मन्त्र के श्रवणमात्र से जीव मुक्त हो जाते हैं। वे तो करुणा के समुद्र थे। उन्होंने मन्दिर के शिखर पर खड़े होकर सब वर्णवालों को अष्टाक्षर मन्त्र सुना दिया। मन में सद्भावना थी कि इस शुभ कार्य से असंख्य प्राणी भवसिन्धु से तर जायेंगे पर गुरु ने उनसे कहा कि इस अपराध के लिये नरक भोगना पड़ेगा, यम-यातना सहनी पड़ेगी। रामानुज ने असाधारण विनम्रता से कहा कि यदि मेरे उच्चारण-मात्र से असंख्य प्राणी भगवान के भक्त होकर संसारसागर से तर जायेंगे तो कोटि-कोटि नरक-भोग और जन्म-जन्म की यम-यातना सहने के लिये मैं प्रस्तुत हूँ। गुरु ने रामानुज की आत्मा की आवाज जान ली, वे उनकी उदारता पर मुग्ध हो गये। गुरु ने उनको गले लगा कर आशीर्वाद दिया।

श्रीरामानुज का यश दिन-दूना, रात-चौगुना बढ़ने लगा। उनकी प्रसिद्धि से बहुत लोग जल उठे। एक बार श्रीरंगम् के मन्दिर के पुजारी ने ही उनको विष देकर समाप्त कर डालना चाहा था पर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उसकी पत्नी ने षड़यन्त्र प्रकट कर दिया और पुजारी की योजना विफल रही। श्रीरामानुज ने आलवन्दार के मृत शरीर के सम्मुख की गयी प्रतिज्ञा पूरी की। उन्होंन ब्रह्मसूत्र पर 'श्रीभाष्य' लिखा। अपने प्रधान शिष्य कूरेश के दो पुत्रों—पराशर और पिल्लन् द्वारा विष्णु सहस्र-नाम और 'दिव्य प्रवन्धम्' की टीका लिखवायी। उन्होंने भक्ति के प्रचार के लिये समस्त भारत की यात्रा की। उन्होंने अपने 'श्रीसम्प्रदाय' के सिद्धान्तों का बड़ी निष्ठा से प्रचार किया।

श्रीरंगम् क्षेत्र पर चोल नरेश कुलोत्तुंग का अधिकार था। वे कट्टर शैव थे, श्रीरंग मन्दिर पर एक ध्वजा टँगवा दी थी कि शिव से वढ़ कर कोई दूसरा नहीं है। उनके प्रकोप से वैष्णवों को वड़ा कष्ट था। रामानुज मैसूर राज्य के शालग्राम नामक स्थान में रहने लगे। मैसूर नरेश परम वैष्णव भिट्टि देव उनका वड़ा सम्मान करते थे। रामानुज ने उस राज्य में वारह साल तक वैष्णव धर्म का प्रचार किया। नम्मले नामक स्थान के एक मन्दिर का उद्धार किया और राजा भिट्टि देव की सहायता से पुनर्निर्माण कराया। मन्दिर के रामविग्रह को दिल्ली-पति की कन्या बहुत चाहती थी। रामानुज ने अपने योगबल से मूर्ति प्राप्त कर मन्दिर में स्थापित की। राजा कुलोत्तुंग का देहान्त हो जाने पर रामानुज श्रीरंगम् में रहने लगे। उन्होंने श्रीरंगम् क्षेत्र में एक मन्दिर बनवाया, उसमें प्रसिद्ध आलवार सन्तों की प्रतिमायें स्थापित करायीं। तिरुपति के मन्दिर में गोविन्दराज पेरुमल की स्थापना करायी।

वैष्णव धर्म के प्रचार के लिये उन्होंने समस्त देश का भ्रमण किया। उनके सिद्धान्त के अनुसार भगवान ही पुरुषोत्तम हैं, वे प्रत्येक शरीर में साक्षी-रूप में विद्यमान हैं। उन्होंने सिद्ध किया कि भगवान जगत के नियन्ता, शेषी और स्वामी हैं तथा जीव उनका नियम्य, शेष और सेवक है। भगवान की शरणागति ही जीव का परम पुरुषार्थ है। भगवान नारायण सत् हैं, लक्ष्मी चित् हैं और जगत उनके आनन्द का विलास है। उन्होंने घोषणा की कि ज्ञान, सत्य और सविशेष विषयक है। नित्य और अपौरुषेय वेद-वाक्य ही प्रमाण हैं, उपासना द्वारा ब्रह्म का साक्षात्कार होने पर जीव का अज्ञान मिट जाता है। जीव और जगत ब्रह्म के शरीर हैं। उन्होंने भगवान के अवतार का हेतु इच्छा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

को माना, इस सम्बन्ध में कर्म-प्रयोजन को महत्व नहीं दिया। ब्रह्म को ईश्वर और जीव तथा मुक्त जीव दोनों को ही ईश्वर का दास स्वीकार किया। जीव कार्य है, ईश्वर कारण हैं पर दोनों चेतन, स्वयं-प्रकाश, ज्ञानाश्रय और आत्मस्वरूप हैं– रामानुज की ऐसी मान्यता थी। उन्होंने भगवान के दास्य को ही मुक्ति-लाभ माना। उन्होंने कहा कि भगवान के साथ जीव अभिन्न नहीं हो सकता है, जीव अणु है, अणु कभी विभु नहीं हो सकता है। भगवान में आत्मसमर्पण ही उनके मत से पूर्ण प्रपत्ति है। रामानुज ने एक सौ बीस साल की अवस्था में देहत्याग किया।

रचना

उन्होंने वेदान्त सूत्र पर 'श्रीभाष्य' लिखा। गीता-भाष्य भी किया। श्रीरंगगद्य, शरणागति गद्य और वैकुण्ठ गद्य आदि प्रकीर्ण रचना हैं। वेदार्थ-संग्रह और वेदान्तदीप का भी उन्होंने निर्माण किया।

वाणी

सत्यकाम सत्यसंकल्प परब्रह्मभूत पुरुषोत्तम महाविभूते श्रीनारायण वैकुण्ठनाथ अपारकारुण्य सौशील्य वात्सल्यौदार्येश्वर्यसौन्दर्यमहोदधे, अनालोचित विशेषाविशेषलोकशरण्य प्रणतार्तिहर आश्रित वात्सल्यैकजलधे, अनवरतविदितनिखिलभूतजातयाथात्म्य अशेषचराचरभूत निखिल नियमाशेष चिद्वस्तुशेषीभूत निखिल जगदाधाराखिल जगत्स्वामिन् अस्मत्स्वामिन् सत्यकाम सत्यसंकल्प सकलेतरविलक्षण अर्थिकल्पक आपत्सख श्रीमन्नारायण, अशरणशरण्य, अनन्यशरणस्त्वत्पादारविन्दयुगलंशरणमहं प्रपद्ये।

हे पूर्णकाम, सत्यसंकल्प, परब्रह्मस्वरूप पुरुषोत्तम, हे महान ऐश्वर्य से युक्त श्रीमन्नारायण! हे वैकुण्ठनाथ, आप अपार करुणा, सुशीलता, वत्सलता, उदारता, ऐश्वर्य और सौन्दर्य आदि गुणों के महासागर हैं, छोटे-बड़े का विचार न कर सामान्यरूप से सभी लोगों को आप शरण देते हैं, प्रणत जनों की पीड़ा हर लेते हैं। शरणागतों के लिये तो आप वत्सलता के समुद्र ही हैं। आप सदा ही समस्त भूतों की यथार्थता का ज्ञान रखते हैं। सम्पूर्ण चराचर भूतों के सारे नियमों और समस्त जड़-चेतन वस्तुओं के आप अवयवी हैं। आप समस्त संसार के आधार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हैं, अखिल जगत तथा हम सभी लोगों के स्वामी हैं। आप पूर्ण काम और सत्यसंकल्प हैं। समस्त प्रपंच से भिन्न और विलक्षण हैं। याचकों के लिये आप कल्पवृक्ष हैं, विपित्ति में पड़े हुए लोगों के सहायक हैं। ऐसी महिमा वाले तथा आश्रयहीनों को आश्रय देनेवाले हे श्रीमन्नारायण, मैं आपके चरणारविन्द युगल की शरण में हूँ, उनके सिवा मेरे लिये कहीं भी शरण नहीं है।

—शरणागति गद्य

पितरं मातरं दारान्पुत्रान्बन्धून्सखीन्गुरून।
रत्नानि धनधान्यानि क्षेत्राणि च गृहाणि च॥
सर्वधर्मांश्च संत्यज्य सर्वकामांश्च साक्षरान्।
लोकविक्रान्तचरणौ शरणं तेऽव्रजं विभो॥

प्रभो, पिता, माता, स्त्री, पुत्र, भाई, मित्र, गुरु, रत्न, धन, धान्य, क्षेत्र, गृह, सम्पूर्ण धर्म, समस्त कामनाओं और अक्षरतत्व को भी छोड़कर मैं सम्पूर्ण जगत को लांघने वाले आपके युगल चरणों की शरण में आया हूँ।

—शरणागति गद्य

तवानुभूतिसम्भूतप्रीतिकारितदासताम्।
देहि मे कृपया नाथ न जाने गतिमन्यथा॥
सर्वावस्थोचिताशेषशेषतैकरतिस्तव।
भवेयं पुण्डरीकाक्ष त्वमेवैवं कुरुष्व माम्॥

नाथ, आपके स्वरूप के अनुभव से प्रकट हुई प्रीति द्वारा उत्पादित दास्यभाव मुझे कृपापूर्वक प्रदान करें। इसके सिवा दूसरी कोई गति मैं नहीं जानता। कमलनयन! मैं सभी अवस्थाओं में उचित आपके प्रति सम्पूर्ण दास्यभाव विषयक अनन्य अनुराग से युक्त होऊँ। आप मुझे ऐसा ही दास बना दीजिये।

—श्रीरंगगद्य

ततश्चानुभूयमानभावविशेषो निरतिशयप्रीत्यान्यत् किञ्चित्कर्तुंद्रष्टुं स्मर्तुमशक्तः पुनरपि शेषभावमेव याचमानो भगवन्तमेवाविच्छिन्नस्रोतोरूपेणावलोकपन्नासीत ततो भगवता स्वयमेवात्मसंजीवनेनावलोकनेनावलोक्य सस्मि-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तमाहूय समस्तक्लेशापहं निरतिशय सुखावहमात्मीयं श्रीमत्पादारविन्दयुगलं शिरसि कृतं ध्यात्वामृतसागरान्तर्निमग्न सर्वावयवः सुखमासीत ॥

तब भावविशेष का अनुभव होने पर सर्वाधिक प्रीति प्राप्त होती है। साधक दूसरा कुछ भी करने, देखने और चिन्तन करने में असमर्थ हो जाता है। ऐसी अवस्था में वह पुनः दासभाव की ही याचना करते हुए निरन्तर अविच्छिन्न प्रवाह रूप से भगवान की ही ओर देखता रहे। उसके बाद भगवान स्वयं ही भक्त को जीवनदान करनेवाली कृपा-दृष्टि से देखकर मंद मुसकान के साथ बुलाकर समस्त क्लेश दूर करने वाले निरतिसय सुख देने वाले युगल चरणारविन्दों को मेरे मस्तक पर रख रहे है, ऐसा ध्यान कर आनन्दामृतमहासागर में सम्पूर्ण रूप से निमग्न हो जाय।

—वैकुण्ठ गद्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महायोगी गोरखनाथ

'बिनु गुरु पन्थ न पाइअ भूलै सो जो मेट।
जोगी सिद्ध होइ तब, जब गोरख सो भेंट॥'

—पद्मावत

गोरखनाथ महायोगी थे, उन्होंने आत्मा में शिवैक्य सिद्ध किया। जिस प्रकार दर्शन के क्षेत्र में व्यास के बाद आचार्य शंकर ने वेदान्त का रहस्य समझाया उसी प्रकार योग के क्षेत्र में पतंजलि के बाद गोरखनाथ ने हठयोग और सत्य के शिवरूप का बोध सिद्ध किया। निस्सन्देह गोरखनाथ बहुत बड़े योगानुभवी और सिद्ध महात्मा थे, शंकराचार्य के बाद भारत भूमि पर उतरने वाले महात्माओं में गोरखनाथ बड़े सिद्ध पुरुष और आत्मज्ञानी स्वीकार किये जा सकते हैं। गोरखनाथ शिवयोगी थे। नैपाल से सिंहल और कामरूप से पंजाब तक के विशाल भूमिखण्ड को उन्होंने अपनी अपूर्व योग-साधना से प्रभावित किया। उन्होंने शिव प्रवर्तित योगमार्ग का अनुसरण किया। चौरासी सिद्धों में उनकी गणना है। वे नाथपन्थ के प्रवर्तक थे, उन पर बौद्ध धर्म के योगमार्ग-सिद्धान्तों का भी विशेष प्रभाव था, उन्होंने अधिकांश बौद्ध योग-सिद्धान्तों को शैव रूप प्रदान किया, यह उनकी साधना-पद्धति की मौलिकता है। गोरखनाथ ने अपने योगसिद्धान्तों से भारतीय संस्कृति और साहित्य के विकास में अमित सहयोग दिया। गोरखनाथ के आविर्भाव के समय भारतीय राजनीति, धर्म और समाज तथा संस्कृति में एक विचित्र उथल-पुथल का आभास-सा दीख पड़ा। उनके समय का निश्चय करना कठिन काम है, ऐसा विश्वास किया जाता है कि गोरखनाथ आदि पुरुष शिव के अभिव्यक्त रूप थे और विक्रम की पहली शती में उपस्थित थे। ऐतिहासिक छान-बीन करने पर उनका समय नववीं से ग्यारहवीं शती ठहरता है। उस समय बौद्धों में अनेक सम्प्रदाय उठ खड़े हुए तथा यवनों का प्रवेश आरंभ हो गया था,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हिन्दू धर्म की स्थिति में परिवर्तन उपस्थित था। ऐसे समय में गोरखनाथ ने देश का नेतृत्व कर आध्यात्मिक चेतना और सांस्कृतिक एकता, सामाजिक अविच्छिन्नता और धार्मिकता की रक्षा की। ऐसा सम्भव है कि वे विक्रमीय ग्यारहवीं शताब्दी में उपस्थित थे। सन्त ज्ञानेश्वर के गुरु-परम्परा-वर्णन में गोरखनाथ का नाम आता है, ज्ञानेश्वर के पहले निवृत्तिनाथ, निवृत्तिनाथ के पहले गैनीनाथ और गैनीनाथ के पहले गोरखनाथ थे। इस क्रम से ज्ञानेश्वर और गोरखनाथ के बीच में ढाई सौ साल का अन्तर पड़ता है, सन्त ज्ञानेश्वर का समय विक्रमीय सम्वत् तेरह सौ बावन है इसलिये यह मत समीचीन-सा ही है कि गोरखनाथ ग्यारहवीं शताब्दी में रहे होंगे। उनके जन्म-स्थान के सम्बन्ध में भी अनेक मत हैं। ऐसा कहा जाता है कि गोदावरी-गंगा के प्रदेश में चन्द्रगिरि नामक स्थान में उनका जन्म हुआ था, योगि-सम्प्रदायाविष्कृति ग्रन्थ में ऐसा उल्लेख भी है। इस सम्बन्ध में विशेष खोज करने पर अयोध्या के निकट भगवती सरयू के पवित्र तट से थोड़ी दूर पर जयश्री या जायस नामक स्थान में उनका जन्म लेना अधिकाधिक संगत दीख पड़ता है। यह साहित्य-सिद्ध तथ्य है कि जायस नगर धर्मस्थान था, महाकवि जायसी ने अपने पद्मावत में ऐसा स्वीकार किया है।

गोरखनाथ का जन्म परम योगी श्री मत्स्येन्द्रनाथ की कृपा से हुआ। वे ही उनके योग-गुरु हुए और उन्हीं की कृपा से गोरखनाथ ने अमरपद प्राप्त किया। जनश्रुति है कि अवधक्षेत्र में अलख जगाते तथा भिक्षाटन करते हुए मत्स्येन्द्र ने जायस नगर में प्रवेश किया। एक निस्सन्तान ब्राह्मणी को उन्होंने झोली की भभूति दी और कहा कि तुम्हें पुत्र होगा। लोकलज्जा के भय से ब्राह्मणी ने भभूति सूखे गोवर के ढेर में (भिटउर) छोड़ दी। बारह साल के बाद मत्स्येन्द्रनाथ फिर जायस आये, ब्राह्मणी ने उनसे सही-सही बात बता दी, वे ढेर के निकट गये, उनकी अभिमन्त्रित भभूति ने बारह साल के तेजपूर्ण बालक का आकार धारण कर लिया था। वे बालक को अपने साथ ले गये, गोरखनाथ नाम रखा, शिष्यरूप में स्वीकार किया। गोरखनाथ के प्राकट्य अथवा जन्म की यह दिव्यता है, योगसिद्ध रहस्य है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गुरु से योग-दीक्षा प्राप्त कर गोरख ने साधना में प्रवेश किया, उन्होंने कठिन-से-कठिन तप का पवित्र आचरण अपनाया। मत्स्येन्द्र ने कहा कि अपने आपको देखना चाहिये और अनन्त ऐश्वर्य-माधुर्य-सौन्दर्य से सम्पन्न चिन्मय शिवतत्व का विचार करना चाहिये। ज्ञान-प्राप्ति से ही चेतन का रहस्य जाना जाता है। परम ज्योति में ही जीव सदा निवास करता है। शिव और शक्ति की कृपा-प्राप्ति ही योगी की पूर्ण सिद्धि है। गोरखनाथ ने मत्स्येन्द्रनाथ के उपदेशों और योगसिद्धान्तों के अनुरूप ही अपना जीवन परिष्कृत किया। गोरखनाथ ने माया पर विजय पायी, घर-बार छोड़ दिया, अखण्ड ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन किया। आशा, तृष्णा और इच्छा का परित्याग कर दिया। देवलोक की अप्सराओं, मृत्युलोक की नवरमणियों और पाताल की नागकन्याओं का उन्होंने विस्मरण कर दिया। वे पहाड़ी गुफाओं और सघन वनों तथा हिमालय की शीतल कन्दराओं में तप करने लगे। उन्होंने उस जीवात्मा की गहरी खोज की जो जगत में शरीर के साथ आता है पर अकेले जाता है। गोरख ने प्राण-पुरुष का अन्वेषण कर जगत में जन्म-मरण के बन्धन से छूटने का रास्ता समझ लिया। उनकी वाणी है कि ज्ञान ही सबसे बड़ा गुरु है, चित्त ही सबसे बड़ा चेला है, इसलिये ज्ञान और चित्त का योग सिद्ध कर जीव को जगत में अकेला रहना चाहिये, यही श्रेय अथवा आत्मकल्याण का पथ है। उन्हें एकान्त जीवन परम प्रिय था। उन्होंने घट-घट में अपने आप को ही व्याप्त पाया; मत्स्येन्द्रनाथ के प्रसाद से उन्हें कैवल्यपद की प्राप्ति हुई। वे निन्दा-स्तुति से ऊपर उठ गये। उनकी समस्त वृत्तियाँ अन्तर्मुखी हो गयीं। उन्होंने आत्मसाक्षात्कार की भाषा में कहा कि मैंने पिंड में ब्रह्माण्ड को ढूंढ़ कर सारी सिद्धियाँ प्राप्त कर ली हैं। देव, देवालय, तीर्थ, आदि इसी शरीर में हैं। मैंने शरीर के भीतर अविनाशी परमात्मा—अलखनिरञ्जन की अनुभूति की है। कायागढ़ को जीतना किसी वीर का ही काम है। उनकी उक्ति है कि मैं अपने गुरु मत्स्येन्द्रनाथ की कृपा से इडा-पिंगला—गंगा, यमुना के मध्य—सुषुम्ना में समाधिस्थ होकर ब्रह्मज्ञान में रमणशील रहता हूँ। गोरखनाथ ने ईश्वर-प्राप्ति का सहारा लेकर योग-मार्ग का प्रचार किया, पतंजलि के सिद्धान्तों का अनुसरण किया। शिव के साथ जीवन-संधि का योग ही गोरखद्वारा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रचारित साधन-पथ है। उन्होंने धौति, बस्ति, नेति, नौलि, त्राटक और कपालभाति–हठयोग के छः अंगों पर विशेष जोर दिया। उन्होंने हठयोग की साधना को सुगम बना दिया। उन्होंने नाथ, जीव, गुरु, शिव–सबके सम्बन्ध पर प्रकाश डाला। समस्त श्रेयों का मूल उन्होंने गुरु को ही ठहराया। 'नाथ-रूप की प्राप्ति ही मोक्ष है, अद्वैत अवस्था सदानन्द देती है। शक्ति सृष्टि करती है, शिव पालन करते हैं, काल संहार करता है और नाथ मुक्ति देते हैं। नाथ ही एकमात्र शुद्ध आत्मा हैं, शेष बद्ध जीव हैं, नाथ सगुण-निर्गुण से अतीत और परात्पर हैं, ज्योतिस्वरूप सच्चिदानन्दमूर्ति हैं।'–गोरख का मत था। गोरखनाथ ने कारणरहित अमृतमय स्वप्रकाश ब्रह्म का दर्शन किया। साधनाकाल में ब्रह्मसाक्षात्कार ही गोरखनाथ का सबसे बड़ा परमार्थ था, इसी के लिये गोरखने योगपथ का प्रश्रय लिया। उन्होंने शिव से एकता पायी, आत्मा को परतत्व शिव स्वीकार किया। गोरखनाथ ने बताया कि आत्मा ही परम पूज्य है, शिव है। उन्होंने कहा कि शरीर के नवों द्वारों में नवनाथ हैं, त्रिवेणी में जगन्नाथ सोपाधिक ईश्वर हैं और दशवें द्वार ब्रह्मरन्ध्र में केदारनाथ शिव स्वयं पर-ब्रह्म हैं, योग की सारमयी युक्ति ही संसार-मुक्ति है; शून्य का साक्षात्कार होते ही विरल कैवल्यपद में समाकर मेरा द्वैत भाव नष्ट हो गया, मुझे शून्य अथवा ब्रह्म के साथ तादात्म्य का अनुभव हो गया। माया को उन्होंने अविद्या–बन्धनकारिणी और विद्या मुक्तिदायिनी का रूप माना है। गोरखनाथ ने आत्मबोध प्राप्त किया कि शिव ही जीव के रूप में परिणत होते हैं, जीव से जगत की सृष्टि होती है–शिव जीव, और जगत में अभिन्न हो जाना ही शिवैक्य है।

गोरखनाथ अद्वितीय हठयोगी थे। उन्होंने हठयोग का प्रचार किया और उसके अनुसार अपने जीवन में निष्कल-सकल तत्व से परे शुद्ध चिन्मय परम शिव की अनुभूति की। उन्होंने अपने मन को समझाया कि तुम परब्रह्म होकर निर्द्वन्द्व हो जाओ, मूलाधारचक्र में रहनेवाले सूर्य को सहस्रार में चन्द्रमा से युक्त कर लो; त्रिकुटी में अनाहत-भ्रमर गूंज रहा है, ब्रह्मरन्ध्र का कपाट खोल कर महारस–अमृत का पान कर लो। जीवात्मा का मैल छुड़ा कर तथा सदोष नाड़ियों से

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वायु को शुद्ध कर बंक नालि सुषुम्ना में वायु भर कर मुक्त हो जाओ; महारस-पान से मत्त होने पर ही योगीन्द्र-पद मिलता है। गोरख के सिद्धान्तानुसार इड़ा और पिंगला-सूर्य और चन्द्रमा को रोक कर सुषुम्ना से प्राणवायु संचारित करना ही हठयोग है, इससे सिद्धि मिल जाती है। हठयोग से जड़ता अथवा अविद्या का नाश होता है, आत्मा और परमात्मा की एकता सिद्ध होती है। कुण्डलिनी शक्ति को शिव से समरस करना ही सिद्धि है। वायु, मन और विन्दु में से किसी एक को वश में करने पर सिद्धि मिलने लगती है। गोरखनाथ के हठयोग ने ज्ञान, कर्म और भक्ति, यज्ञ तप और जप के समन्वय से भारतीय अध्यात्मजीवन को समृद्ध किया। गोरखनाथ मत्स्येन्द्रनाथ के बड़े भक्त और पट्ट शिष्य थे। वे गुरु-परम्परा में बड़ा विश्वास रखते थे। योग-सिद्धि के लिये मत्स्येन्द्रनाथ ने सिंहल की यात्रा की, सिंहल में पद्मिनी रमणी पर विजय पाना योगसिद्धि का लक्षण है। नैपाली अनुश्रुति के अनुसार मत्स्येन्द्र अवलोकितेश्वर के अवतार थे। वे कौल थे। वे ब्राह्मण थे। मीनपाद, मच्छेन्द्रपाद, मच्छिन्द्रनाथ आदि उनके नाम थे। ऐसा कहा जाता है कि उन्हें साक्षात् शिव ने कामरूप नामक महापीठ में योग सिखाया था। उन्होंने कामरूप में साधना की थी। वे बंगाल प्रान्त के वारणा ग्राम के ब्राह्मण थे। नववीं से ग्यारहवीं सदी को प्रभावित करने वालों में, अध्यात्मक्षेत्र में, जालन्धरपाद, कृष्णपाद, मत्स्येन्द्रनाथ और गोरखनाथ के नाम बहुत प्रसिद्ध हैं। एक बार मत्स्येन्द्रनाथ सिंहल देश की महारानी मंगला और कमला के रमणी-राज्य में पहुँच गये और शिवपार्वती के शापस्वरूप पूर्व ज्ञान को भूल कर विहार करने लगे। गोरखनाथ ने कदली वन में जाकर उनको स्त्री-राज्य से मुक्त कर पूर्व आत्मज्ञान का स्मरण दिलाया। ऐसा कहा जाता है कि एक बार गोरखनाथ बकुल वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ थे; आकाश-मार्ग से सिद्ध कृष्णपाद कहीं जा रहे थे, गोरखनाथ ने खड़ाऊँ फेंक कर योगबल से उन्हें नीचे गिरा दिया। कृष्णपाद ने कहा कि तुम्हारे गुरु कदली वन में सोलह सौ सेविकाओं द्वारा सेवित महारानी मंगला और कमला के साथ महाज्ञान भूलकर कामभोग में व्यस्त हैं, आयु के केवल तीन दिन शेष हैं। गोरखनाथ ने कहा कि तुम्हारे गुरु को गौड़ बंगाल के अधीश्वर गोपीचन्द ने मिट्टी में गड़वा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दिया है। दोनों अपने गुरु को मुक्त करने के लिये चल पड़े। गोरखनाथ ने लंग और महालंग नामक दो शिष्यों को लेकर ब्राह्मणवेष में कदली बन में प्रवेश किया। लोगों ने ब्राह्मणवेष वाले गोरखनाथ से आशीष माँगे, सिद्ध की वाणी थी, फलवती होने लगी। उन्होंने योगी का वेष धारण किया, कदली वन के एक सरोवर के किनारे बैठी एक नवरमणी उनके दिव्य सौन्दर्य से मुग्ध हो गयी, उसने उन्हें मत्स्येन्द्र का पता बताकर कहा कि मंगला और कमला के राज्य में योगी का प्रवेश निषिद्ध है, केवल नर्तकी जा सकती है। गोरख ने नर्तकी का वेष धारण किया और राजद्वार पर जाकर मर्दल-ध्वनि की, मर्दल से शब्द उठने लगे कि हे गुरुदेव, ऐसा कर्म न करो, इससे महारस अमृत क्षीण होता है। स्त्री के साथ रहने वाले पुरुष की अवस्था नदी तट के वृक्ष के समान होती है, उसके जीवन की कम आशा रहती है। माया नारी मन मोहती है, शुक्रस्खलन से अमृत का सरोवर सूख जाता है। मन में काम विकार होते ही सुषुम्ना के ऊर्ध्व मुख ब्रह्मरन्ध्र से अमृत नीचे गिर पड़ता है, शरीर क्षीण होता है, मन का घोर मन्थन करनेवाली माया बाघिनी जब महारस को सोख लेती है तब पैर डगमगाने लगते हैं, पेट ढीला हो जाता है और सिर के बाल बगुले के पंखों की तरह श्वेत हो जाते हैं। रूप और कुरूप दोनों में माया-नारी बाघिनी विद्यमान रहती है। जिस माता ने संसार दिखाया, जन्म दिया उसी को गोद में चिपका कर सोना भयंकर पतन है। मुक्त होकर भी बन्धन में पड़ गये। हे मत्स्येन्द्र, तुम आदिनाथ शिव के शिष्य हो, बिन्दु की रक्षा करने वाला ही सच्चा अवधूत है। मत्स्येन्द्रनाथ को महाज्ञान का स्मरण हो आया, वे कदली वन से बाहर आ गये, इस प्रकार गोरखनाथ ने अपनी गुरुनिष्ठा चरितार्थ की।

नैपाल में गोरखनाथ शिव के अवतार स्वीकार किये जाते हैं, गोरखा-राज्य उनके प्रति प्रगाढ़ भक्ति का प्रतीक है। एक बार नव नागों को समेट कर वे बैठ गये, नैपाल के राजा ने मत्स्येन्द्र के अनुयायियों पर अत्याचार किया था, गोरखनाथ ने बारह साल का अकाल उत्पन्न किया, नैपाल नरेश ने मत्स्येन्द्र-यात्रा-उत्सव किया, मत्स्येन्द्र की कृपा से गोरखनाथ ने नैपाल को अकाल से मुक्त किया। नैपाली जनश्रुति-परम्परा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

में वे बौद्ध साधक अनंगवज्र अथवा रमणवज्र भी स्वीकार किये गये हैं पर यह बात नितान्त निश्चित हो गयी है कि वे शैव योगी थे।

एक बार गोरख हिमालय के चरण देश–सिंहल में भ्रमण कर रहे थे। उज्जैन नरेश चन्द्रसेन के पुत्र महाराजा भर्तृहरि उस देश में अपनी रानी पिंगला के साथ विहार कर रहे थे। उनमें वैराग्य की वृत्ति पहले से ही जागृत थी। महाराजा भर्तृहरि मृग मार कर लौट रहे थे, मृगी करुण विलाप कर रही थी। राजा के कोमल हृदय से उसका विलाप सहा न गया। महायोगी गोरखनाथ ने अपने योगबल से मृग को प्राण-दान दिया, महाराजा भर्तृहरि उनके शिष्य हो गये।

गौड़ बंगाल के शासक गोपीचन्द की माता मयनामती भर्तृहरि की बहिन थीं। गोपीचन्द्र के योग-ग्रहण-काल में गोरखनाथ उनके राज-प्रासाद में उपस्थित थे। वे फूल के रथ पर आरूढ़ होकर आये थे, गोपीचन्द को उन्होंने आशीर्वाद दिया था।

स्यालकोट के राजा पूरण गोरखनाथ के शिष्य थे। उनकी राजधानी गजवनी या गजपुर थी। वे सालिवाहन के पुत्र थे। उनकी विमाता, जो नवयुवती थी, उनपर मोहित होकर काम-प्रस्ताव कर बैठी, पूरण ने अस्वीकार कर दिया, उनके हाथ–पैर काट कर उन्हें कुएँ में डाल दिया गया। पूरण की सगी माता रोते-रोते अन्धी हो गयी, गोरखनाथ ने पूरण का उद्धार किया, योग-दीक्षा दी, वे चौरंगी नाथ के नाम से प्रसिद्ध योगी हुए।

पंजाबी प्रेम-कथा में हीर और रांझा के नाम अमर हैं। भगवती झेलम के पवित्र तट पर गोरख-टीला रांझा की योग-साधना का प्रतीक है। रांझा को गोरखनाथ ने स्वयं योग-दीक्षा दी थी। रांझा और हीर दोनों एक-दूसरे से प्रेम करते थे, हीर का विवाह दूसरे से हो गया, रांझा ने वैराग्य ले लिया। गोरखनाथ ने रांझा से कहा कि तुम को आजीवन भिक्षा माँगना पड़ेगा, गुरु का चिंतन करना पड़ेगा। संसार को सपना समझना पड़ेगा, नवयुवतियों को बहिन और बूढ़ी स्त्रियों को माता कहना होगा। रांझा अपनी परीक्षा में खरे उतरे। वे योगीवेष में नदी के दूसरे किनारे रहा करते थे। हीर और रांझा दोनों एक-दूसरे से मिला करते थे। एक रात को संयोग से नदी की मध्य धारा में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पहुँचते-पहुँचते हीर डूब गयी, रांझा ने उसको बचाना चाहा पर वे भी मध्य धारा में अदृश्य हो गये।

मेवाड़ राज्य के संस्थापक बापा रावल की भी गोरखनाथ से भेंट हुई थी। गोरखनाथ ने उन्हें तलवार दी थी और उसी तलवार के बल से बापा रावल ने चित्तौड़ राज्य अथवा मेवाड़ राज्य की स्थापना की।

गोरखनाथ ने अपनी योग-साधना से शिवैक्य लाभ किया। भारत के विभिन्न प्रान्तों में उनके सिद्ध पीठ हैं। गोरखपुर जनपद में राप्ती के तट पर गोरखपुर नगर में उनका एक प्राचीन मन्दिर है। मन्दिर के सन्निकट ही वन-प्रदेश में उन्होंने मानसरोवर स्थान पर तप भी किया था, ऐसा कहा जाता है।

गोरखनाथ अमर हैं। यदुनाथप्रणीत वल्लभदिग्विजय ग्रन्थ में गोरखनाथ की महिमा का पता लगता है। गिरिनार पर्वत के गोरख्य शिखर पर गोरखनाथ के सहसा प्रकट होने की कथा इस ग्रन्थ में मिलती है। गोरखनाथ ने शास्त्र-सम्मत वैदिक योग-पद्धति के ज्ञान से जनता को जागृत कर सत्य और शिव का महाज्ञान दिया। वे महायोगी थे, महासिद्ध और महात्मा थे।

रचना

गोरखनाथ केवल महायोगी ही नहीं थे, वे उच्च कोटि के विद्वान और कवि थे। उन्होंने संस्कृत और भाषा दोनों में ग्रन्थ-रचना की। उनकी वाणी का निम्नलिखित रचनाओं में अच्छा संकलन मिलता है; वे रचनायें गोरक्ष-कल्प, गोरक्षसंहिता, गोरक्ष सहस्रनाम, गोरक्ष शतक, गोरक्ष पिष्टिका, गोरक्षगीता, विवेकमार्तण्ड, गोरक्षशास्त्र, ज्ञानप्रकाश शतक, ज्ञानशतक, ज्ञानामृत योग, नाड़ीज्ञान प्रदीपिका, महार्थमञ्जरी, योगचिन्तामणि, योग-मार्तण्ड, योगबीज, योगशास्त्र, योगसिद्धासनपद्धति, श्रीनाथसूत्र, सिद्धसिद्धान्त पद्धति, हठयोग, हठसंहिता तथा सिष्यादर्शन, प्राणसंकली, नृपतिबोध, आत्मबोध, पन्द्रह तिथि, मच्छिन्द्र-गोरख-बोध, ज्ञानतिलक, पंचमात्रा, गोरख-गणेश गोष्ठी, ज्ञानदीपबोध और दयाबोध तथा अनेक पद आदि हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वाणी

धन जोवन की करैन आस, चित्त न राखै कामिनि पास।
नाद-विंद जाके घट जरै ताकी सेवा पारवती करै॥
अहनिसि मन लै उन्मन रहै, गम की छांड़ि अगम की कहै।
छाड़ै आसा रहै निरास, कहै ब्रह्मा हूँ ताका दास॥
मन में रहिणा भेद न कहिणा, बोलिबा अमृत वाणी।
आगिला अगनी होइबा अवधू, तौ आपण होइवा पाणी॥
पवन ही जोग पवन ही भोग, पवनइ हरै छतीसो रोग।
या पवन कोइ जाणे भेव, सो आपै करता आपै देव॥
ग्यान सरीखा गुरु न मिलिया, चित्त सरीखा चेला।
मन सरीखा मेलू न मिलिया, ताथैं गोरख फिरे अकेला॥
सबद हमारा खरतर खांड़ा, रहनि हमारी सांची।
लेखै लिखी न कागद माड़ी, सो पत्री हम बांची॥

आवै संगैं जाइ अकेला, ताथैं गोरख राम रमेला॥
काया हंस संगिह्वै आवा, जाता जोगी किनहूँ न पावा।
जीवन जग में मूआ मसाणं। प्राण पुरिस कत कीया पयाणं।
जामणमरणा बहुरि वियोगी, ताथैं गोरख भैला जोगी॥

नाथ निरञ्जन आरती साजै, गुरु के सबदूँ झालरि बाजै।
अनहद नाद गगन में गाजै, परम जोति तहाँ आप बिराजै।
दीपक जोति अखण्डित बाती, परम जोति जागै दिन-राती।
सकल भवन उजियारा होई, देव निरञ्जन और न कोई।
अनत कला जाके पार न पावै, संख मृदंग धुनि वेनु बजावै।
स्वाति बूंद लै कलश बंदाऊँ, निरति सुरति ले पुहप चढ़ाऊँ।
निज तत नाव अमूरति मूरति, सब देवा सिर उदबुदि सूरति।
आदिनाथ-नाती, मछेन्द्रनाथ-पूता, आरती करै गोरख अवधूता॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुंनि ज माई सुंनि ज बाप, सुंनि निरंजन आपै आप।
सुंनि के परचै माया सथीर, निहचल जोगी गहर गभीर॥

आऊँ नहीं जाऊँ निरञ्जन नाथ की दुहाई।
प्यण्ड ब्रह्मण्डै खोजता, अम्हे सब सिधि पाई॥
कायागढ़ भीतर नव लख खाई। दसवें द्वारि अवधू ताली लाई॥
कायागढ़ भीतर देव देहुरा कासी। सहज सुभाइ मिले अविनासी॥
वदन्त गोरखनाथ सुणौ नर लोइ। काया गढ़ जीतेगा विरला कोई॥

मन रे! राजाराम होंइले निरदंद। भूलै कमलै साजि लै रविचन्द॥
अनहद भोरौ भवें त्रिवेणी के घाट। पीयलै महारस फाटिलै कपाट॥
चन्दा करिले षूटा, सूरज करिलै पाट। नित उठि धोबी धोवै त्रिवेणी के घाट।
भरिले नाड़ी षोड़ी, पूरिलै बंक नालि। वदन्त गोरखनाथ अवधू इमि उतरिबो पारि।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

योगी भर्तृहरि

'विषय-भोग में रोग, कुल में च्युति, धन में राजा, मौन में दैन्य, बल में शत्रु, रूप में बुढ़ापा, शास्त्र में वाद, गुण में खल, शरीर में मृत्यु का भय है, समस्त वस्तु भय उत्पन्न करने वाली हैं, केवल वैराग्य ही अभय है।'

—वैराग्यशतक

योगी भर्तृहरि वैराग्य के मूर्त रूप थे। उनके नाम का स्मरण होते ही मन में संसार के प्रति अनासक्ति का भाव पैदा होता है। उन्होंने स्वर्गीय भोगों पर लात मार कर शिव के चरणदेश में अपने आपको समर्पित कर दिया, योग और वैराग्य के माध्यम से अमर पद प्राप्त किया। उन्हें राजप्रासाद के वैभव, पिंगला ऐसी परम रूपमयी के सौन्दर्य और नित्य नवीन यौवन, चक्रवर्ती सम्राट के अधिकार अपनी ओर आकृष्ट न कर सके। उन्होंने आत्मसाक्षात्कार कर पूर्ण परमानन्द, पद प्राप्त कर लिया। योगिराज भर्तृहरि का पवित्र नाम वैराग्य का ज्वलन्त प्रतीक है, वे त्याग, वैराग्य और तप के प्रतिनिधि थे। हिमालय से कन्या अन्तरीप तक के भूमिभाग में उनकी पद्यबद्ध जीवन-गाथा भिन्न-भिन्न भाषाओं में योगियों और वैरागियों द्वारा एक अनिश्चित काल से गायी जा रही है और भविष्य में भी यही क्रम बहुत दिनों तक चलता रहेगा। उन्होंने विषय-सुख का पूर्ण भोग करने के बाद वैराग्य के असीम राज्य में प्रवेश किया था। उनकी कथनी-करनी समान थी, उन्होंने अनुभव की बातें कही हैं। भर्तृहरि ने गोरखद्वारा प्रवर्तित वैराग्य-पथ के विकास में बड़ा योग दिया। भर्तृहरि विक्रमीय सम्वत् की दसवीं या ग्यारहवीं शती में विद्यमान थे। भर्तृहरि नाम से कई एक महा-पुरुष हो गये हैं, उनमें से एक विक्रमीय सम्वत् से सौ साल के पहले के भी हो सकते हैं, दूसरे सातवीं या आठवीं शताब्दी के हो सकते हैं पर उज्जयिनीपति योगी भर्तृहरि दसवीं या ग्यारहवीं शताब्दी में थे, वे गोरखनाथ के योगसम्प्रदाय में उन्हीं के द्वारा दीक्षित थे। मालव प्रदेश

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

में भगवती शिप्रा के अंचल में, कविता-कला-संगीत की पवित्र दिव्यभूमि-उज्जयिनी में महाराजा भर्तृहरि ने जन्म ग्रहण किया था। उनके पिता गन्धर्वसेन अथवा चन्द्रसेन थे, उन्होंने दो विवाह किये थे, पहली पत्नी से भर्तृहरि और दूसरी से महाराजा विक्रमादित्य थे। महाराजा भर्तृहरि चक्रवर्ती नरेश थे, एक सौ आठ राजा और अधिराजा उनके चरण में नतमस्तक थे। छोटे भाई विक्रम से राजकार्य-संचालन में उन्हें बड़ी सहायता मिलती थी। विक्रम के सबल कन्धों पर शासन का भार रख कर वे निश्चिन्त हो कर भोगविलास में निमग्न थे। वे अपनी पटरानी सिंहल देश की रमणी परम रूपमयी सामदेवी अथवा पिंगला के सौन्दर्य पर रीझ कर पूर्ण विलासी हो गये थे। राज्य पर शत्रुओं के आक्रमण का भय उत्पन्न होने पर भी वे अपनी विलास-प्रियता से क्षणमात्र के लिये भी विमुख न हो सके। वे पिंगला को प्राणों से भी अधिक चाहते थे।

उनके छोटे भाई विक्रमादित्य कभी नहीं चाहते थे कि पिंगला के वश में रह कर भर्तृहरि राज्यकार्य से उदासीन रहें। उन्होंने मनाने का प्रयत्न किया पर भर्तृहरि ने उनकी बात अनसुनी कर दी। विक्रम ने उनकी विलासी मनोवृत्ति के प्रति विद्रोह किया। इसी बीच में एक विचित्र घटना का उन्हें पता लगा कि पिंगला अश्वशाला के अध्यक्ष में आसक्त हैं, उन्होंने भर्तृहरि को सचेत करना चाहा पर पिंगला के कहने पर उन्होंने विक्रम को राज्य के बाहर कर दिया।

नित्य प्रति भर्तृहरि की आसक्ति पिंगला में बढ़ती ही गयी, यौवन के वसन्त का विहार चलता ही गया। महाराजा भर्तृहरि की शृंगार-पिपासा में किसी प्रकार का अभाव नहीं था पर कभी-कभी उनका मन चिंतित हो उठता था कि संसार नश्वर है, अनित्य है, दुखालय है, इसके समस्त पदार्थ बन्धनकारी हैं, निस्सन्देह संसार और उसके पदार्थों से परे भी किसी की सत्ता है जो शाश्वत शान्ति और परमानन्द की निधि है, जीव का परम ध्येय वही है।

भर्तृहरि के जीवन पर अमरफलवाली घटना का असाधारण प्रभाव पड़ा। एक बार घोर तप के परिणामस्वरूप एक योगी ने दैवकृपा से अमरफल की प्राप्ति की; उस फल को खाने पर शरीर में यौवन का

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कभी क्षय नहीं होता और शरीर अमर हो जाता। योगी ने सोचा कि इस फल के एक मात्र अधिकारी महाराजा भर्तृहरि हैं, उनके अमर जीवन से प्रजा शाश्वत-शान्तिपूर्ण राज्य-सुरक्षा का अनुभव करेगी।... योगी ने राजप्रासाद में प्रवेश किया, उसके हाथ में अमरफल था, शृंगार और भोग, विलास तथा वैभव के वातावरण में वैराग्य, तप और त्याग के मूर्त रूप योगी को देख कर राजा विस्मित हो उठे, उनका विवेक जाग उठा, योगी ने अमरफल दिया। योगी के जाने पर राजा ने सोचा कि पिंगला तो मेरे लिये प्राण से भी प्रिय हैं इसलिये इस फल के पात्र वे ही हैं। रानी ने अमरफल लेने पर मन में विचार किया कि अश्व-शाला का अध्यक्ष मुझे बहुत चाहता है, उसके अमर होने पर मुझे विशेष सुख और शान्ति की प्राप्ति होगी। अश्वशाला के अध्यक्ष को पिंगला ने छिपे रूप से अमर फल दे दिया। अश्वशाला का अध्यक्ष एक वेश्या में आसक्त था, उसने वेश्या को अमर फल दे दिया। वेश्या ने विचार किया कि मेरा शरीर वैषयिक सुख में आबद्ध है, मैंने आज तक पाप-ही पाप किये हैं, दूसरों की कामवासना की शान्ति में मैं आज तक सहायक बनी रही, मेरे अमर फल खा लेने से असंख्य जीव पतित होंगे, अगणित जन पाप के भागी होंगे। महाराजा भर्तृहरि प्रजापालक हैं, उनके राज्य में सुख और शान्ति है, अमर फल खाने के अधिकारी वे ही हैं। वह राजप्रासाद की ओर चल पड़ी। राजसभा में उपस्थित होते ही स्तब्धता छा गयी।

'महाराज, यह अमर फल है।' वेश्या ने स्वाभाविक ढंग से निवेदन किया।

राजा ने अमर फल पहचान लिया। उन्होंने वस्तुस्थिति का पता लगाया। पिंगला रूपी नागिन का भीषण रूप उनके नयनों में नाच उठा। राजप्रासाद के वैभव उन्हें काटने लगे। शरीर के रोम-रोम में भयानक वेदना होने लगी। आँखों के सामने अन्धकार छा गया। पिंगला के प्रति अनासक्ति हो गयी। उन्होंने कहा कि वास्तविक शान्ति का पथ वैराग्य है। मैंने आज तक नश्वर सुखों और वस्तुओं में अपना जीवन खो दिया, जिसके लिये वह कार्य नहीं किया जिसके लिये संसार में जन्म लिया था। मैं सर्वदा पिंगला को अपने प्राणों से भी प्रिय समझा पर वे मुझसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनासक्त होकर दूसरे के प्रेम पाश में आबद्ध हो गयीं। विचित्र तो यह है कि वह दूसरा किसी और में आसक्त था। पिंगला को धिक्कार है, मुझे धिक्कार है, उस दूसरे पुरुष को धिक्कार है, काम को धिक्कार है। उन्होंने वैराग्य लेने का निश्चय कर लिया। राजप्रासाद में हाहाकार मच गया। बड़े-बड़े विद्वानों और राजनीतिज्ञों ने वैराग्य की ओर से उनका मन फेरने का यत्न किया पर भर्तृहरि अपने संकल्प में ध्रुव थे।

"प्राणनाथ, मैं आपके बिना जीवित नहीं रह सकती।" पिंगला लज्जा और विषाद से काँप रही थी।

"माता, तू मेरी माता है, मेरे वैराग्य में सहायक होना तेरा धर्म है, पुनीत कर्तव्य है, शुभ कार्य में बाधा नहीं उपस्थित करनी चाहिये।" भर्तृहरि ने समझाया। राजा इस निष्कर्ष पर पहुँच गये कि स्त्री सबसे बड़ा बन्धन है योग और वैराग्य के पथ में।

वे स्वर्णिम राजप्रासाद से बाहर निकल पड़े। राजा ने योग-मार्ग पर यात्रा की। उन्होंने महाकाल का स्तवन किया, भगवती शिप्रा के तट पर 'शिव-शिव' करते हुए वे अपने राज्य की सीमा से बाहर हो गये। उन्होंने महायोगी सिद्ध गोरखनाथ से दीक्षा ली। शिवयोगी हो गये। स्वर्ण अलंकारों से परिशोभित होने वाले शरीर ने जटा, भस्म, मेखला, शृंगी, रुद्राक्ष, कन्था और कुण्डल से अपना शृंगार किया। वे पवित्र क्षेत्रों, गिरिकन्दराओं और सघन वनों में रमने लगे, उनकी रसना शिव के पवित्र नाम-उच्चारण से धन्य हो गयी। अधरों पर शिवनामा मृत-तरंगिणी का नृत्य होने लगा। उन्होंने अपनी आत्मा में परमात्मा की व्याप्ति पायी। ब्रह्मानुभूति की, वेदान्त के सत्य का वरण किया। उन्होंने अपने आपको धिक्कारा कि विषयों को हमने नहीं भोगा है, उन्होंने हमें ही भोग डाला है; हमने तप नहीं किया है तपों ने ही हमें तपा डाला है, काल का अन्त नहीं हुआ, उसी ने हमारा अन्त कर डाला है। हम जीर्ण हो चले पर तृष्णा का अभाव नहीं हुआ। उन्होंने शिवतत्व की प्राप्ति की। ज्ञानोदय ने शिव के रूप में उन्हें शान्ति का अधिकारी बनाया। संसार के आघात-प्रतिघात से दूर रहे कर उन्होंने ब्रह्म के शिवरूप की साधना की, वैराग्य का अद्भुत शिखर उढ़ेल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कर आध्यात्मिक चेतना को नया जीवन दिया। उन्होंने दसों दिशाओं और तीनों कालों में परिपूर्ण, अनन्त, चैतन्यस्वरूप, अनुभवगम्य, शान्त और तेजोमय ब्रह्म की उपासना की। विरक्ति उनकी संगिनी हो चली। महादेव ही उनके एकमात्र देव थे। वे आशा की कर्मनासा से पार होकर भक्ति की भागीरथी में गोते लगाने लगे। वे शब्द-विद्या के भी आचार्य थे। शिवभक्त होने के साथ-ही-साथ शब्द-भक्त भी थे। वे शब्द-ब्रह्म के योगी थे। उनका वैराग्य-दर्शन परमात्मा के साक्षात्कार का पर्याय है।

उनकी समाधि अलवर राज्य के एक सघन वन में अब भी विद्यमान है। उसके सातवें दरवाजे पर एक अखण्ड दीपक जलता रहता है। उसे 'भर्तृहरि' की ज्योति स्वीकार किया जाता है। वे महान शिव-भक्त और सिद्ध योगी थे। ऐसी मान्यता है कि वे अमर हैं।

रचना

भर्तृहरि ने शृंगारशतक, नीतिशतक और वैराग्यशतक की रचना की। सम्भवतः व्याकरण शास्त्र का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'वाक्यपदीय' भी उन्हीं की रचना है। निस्सन्देह वे महायोगी होने के साथ-ही-साथ बहुत बड़े साहित्यमर्मज्ञ भी थे।

वाणी

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता
स्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः।
कालो न यातो वयमेव याता
स्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः।

हमने भोगों को नहीं भोगा, भोगों ने ही हमें भोग लिया: हमने तप नहीं किया, स्वयं तप्त हो गये; काल व्यतीत नहीं हुआ, हम ही व्यतीत हो गये; तृष्णा नहीं जीर्ण हुई, हम ही जीर्ण हो गये।

—वैराग्यशतक

भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्तेनृपालाद्भयं
मौने दैन्य भयं बले रिपुभयं रूपे जराया भयम्।
शास्त्रे वादभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद्भयम्
सर्वं वस्तु भयावहं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम्॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भोगों में रोग का भय है, ऊँचे कुल में पतन का भय है, धन में राजा का, मौन में दीनता का, बल में शत्रु का, रूप में वृद्धावस्था का भय है। शास्त्र में वादविवाद का, गुण में दुष्ट जन का तथा शरीर में काल का भय है, इस प्रकार संसार में मनुष्यों के लिये सभी वस्तु भयपूर्ण हैं, भय से रहित तो केवल वैराग्य ही है। —वैराग्यशतक

आदित्यस्य गतागतै रहरहस्संक्षीयते जीवितं
व्यापारैर्बहुकार्यभारगुरुभिः कालो न विज्ञायते।
दृष्टवा जन्मजराविपत्तिमरणं त्रासश्च नोत्पद्यते
पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत्॥

सूर्य के उदय और अस्त से जीवन क्षीण हो रहा है, विविध कार्यों के भार से गुरुतर प्रतीत होनेवाले अनेक व्यापारों से समय जाता जान नहीं पड़ता, जन्म, जरा, मरण की विपत्ति को देख कर भी चित्त में भय नहीं होता। संसार मोहमयी प्रमाद-मदिरा पीकर उन्मत्त हो गया है। —वैराग्यशतक

रे कन्दर्प करं कदर्थयसि किं कोदण्डटंकारितैः
रे रे कोकिल कोमलैः कलरवैः किं त्वं वृथा जल्पसि।
बाले स्निग्धविदग्धमुग्धमधुरैर्लोलैः कटाक्षैरलं
चेतश्चुम्बित चन्द्रचूडचरणध्यानामृतं वर्त्तते॥

रे काम! अपने धनुष के टंकार से हाथों को क्यो थकाता है? अरी कोयल! अपने कोमल कलखों से वृथा बक-बक क्यों कर रही है? बाले, तुम्हारे इन अतिस्निग्ध, चातुर्यपूर्ण, भोलेभाले, मधुर और चंचल कटाक्षों से भी अब कुछ नहीं हो सकता। अब तो मेरा चित्त चन्द्रशेखर शंकर के चरणकमल के ध्यानरूप अमृत का आस्वादन कर चुका है। —शृंगारशतक

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं
मानोन्नतिं दिशति पापमपा करोति।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं
सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम्॥

सत्संगति क्या उपकार नहीं करती, बुद्धि की जड़ता हरती है, वाणी में सत्य का संचार करती है, सम्मान बढ़ाती है, पाप दूर करती है, चित्त को आनन्दित करती है और समस्त दिशाओं में कीर्ति का विस्तार करती है। —नीतिशतक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्त वसवेश्वर

'पुरुष, स्त्री या अन्यान्य जाति और आश्रम आदि भजन में कारण नहीं है, केवल भक्ति ही एक कारण है।' —अध्यात्म रामायण

सन्त वसवेश्वर बारहवीं शताब्दी के भारत देश की अमित दिव्य विभूति थे। उन्होंने वीरशैव धर्म के सिद्धान्तों का प्रचार कर मानवीय जीवन को समरस बनाने का पूरा-पूरा यत्न किया। वे महान शैव सन्त थे। दक्षिण भारत में जैन, वैष्णव और शैव धर्म का ही समय-समय पर विशेष प्रभाव रहता आया है। वसवेश्वर के पहले जैन धर्म का बोलबाला था, उसके बाद कहीं-कहीं वैष्णव आलवार सन्तों द्वारा प्रचारित तथा रामानुज आचार्य द्वारा समर्थित वैष्णव धर्म का प्रभाव था। सन्त वसवेश्वर ने शैवधर्म का अभ्युत्थान तो किया ही, साथ-ही-साथ उन्होंने उसका वैष्णव धर्म से समन्वय भी किया। समन्वय बाहर-ही-बाहर था, भीतर दोनों का सैद्धान्तिक मतभेद बना रहा और दोनों का संघर्ष बहुत दिनों तक चलता रहा।

कन्नड़ साहित्य तथा आन्ध्र साहित्य में सन्त वसवेश्वर का बड़ा नाम है। कन्नड़ में उन्हें वसवन्ना या वसव भी कहा जाता है। उनके प्रभाव से लोगों ने कर्ममार्ग को छोड़ कर भक्तिमार्ग अपना लिया, प्रत्येक प्राणी में शिवभक्ति की लहर उमड़ने लगी। वसवेश्वर ने साहित्य और धर्म के माध्यम से जीवन-क्रान्ति की, उन्होंने वीरशैव धर्म के सफल आन्दोलन से शिव को जनप्रिय अथवा लोकप्रिय बनाया, कन्नड़ भाषा-भाषियों के अधरों पर शिव के परम पावन नाम का विहार होने लगा। वीरशैव धर्म लोकधर्म हो गया, घर-घर में सन्त वसवेश्वर के वचनों का पाठ आरम्भ हो गया, जैन और बौद्ध धर्म को बड़ा धक्का लगा। कर्णाटक के महान सन्त वसवेश्वर जनता के बहुत बड़े शिक्षक थे। उन्होंने शिव की प्रसन्नता के लिये सर्वस्व स्वाहा कर दिया,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महामहिम शासक बिज्जल का प्रधान मन्त्रित्व उनकी साधना को खण्डित न कर सका, कल्याण नगर के विशाल राज्य का अधिकारमद उन्हें संसार के मायाजाल में न फँसा सका। उन्होंने मानव जीवन को नया प्रवाह दिया, नयी चेतना दी, आध्यात्मिक क्रान्ति की। आत्मा में स्थित सत्य को ही उन्होंने शिव स्वीकार किया। कामिनी और कंचन उन्हें अपने बन्धन में मुग्ध न कर सके। सन्त वसवेश्वर ने शिव की शरणागति को ही शाश्वत आत्मधर्म माना। संसार में रह कर भी वे कभी संसार की वस्तुओं में आसक्त न हो सके, जल में कमल के समान निष्पक्ष ही बनेरहे, यही उनकी विशेषता है।

लगभग आठ सौ साल पहले की बात है। कर्णाटक प्रान्त के श्री शैल के समीप इंगलेश्वर गाँव में एक समृद्ध ब्राह्मण परिवार था। उसी कुल में एक राजा मादिराजा थे। उनकी पत्नी का नाम मादलाम्बिका था। दोनो भगवान शिव के बड़े भक्त थे। वे वैभव और विलास में डूबे हुए थे पर वे निस्सन्तान थे। केवल इसी बात से वे चिंतित रहते थे। दोनों ने सन्तान-प्राप्ति के लिये शिव की श्रद्धापूर्वक भक्ति की, शिव प्रसन्न हुए। सम्वत् ११८९ वि. में वैशाख शुक्ल चौथ को श्री नन्दीश्वर की प्रसन्नता से उन्हें पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई, उन्होंने सन्तान का नाम वसवन्ना अथवा वसवेश्वर रखा। वसवेश्वर का पालन-पोषण सुंदर ढंग से हुआ, उन्हें अच्छी-से-अच्छी शिक्षा दी गयी। किसी भी प्रकार के अभाव का दुख उनको लेशमात्र भी नहीं था पर विचित्र बात यह थी कि अपने माता-पिता की देखा-देखी वे बड़ी रुचि और निष्ठा से शिव के नाम का अनवरत उच्चारण करते रहते थे, माता-पिता ने शिवभक्त सन्तान पाकर अपने सौभाग्य की सराहना की। शैव-सिद्धान्तों के अनुरूप संगमनाथ नामक संन्यासी ने उनके लिङ्गधारण आदि संस्कार सम्पन्न कराये। वसवेश्वर का मन खेलने में कम लगता था। वे जन्मजात शिवभक्त थे, अपने सहपाठियों और मित्रों से दूर भाग कर एकान्त में कुछ-न-कुछ सोचा करते थे। संसार की क्षणभंगुरता देख कर विचार करते थे कि जीव की स्वाभाविक गति शिवमुखी है, शिव का ध्यान करने से उन्हें बड़ी शान्ति मिलती थी। उनका स्वभाव मधुर और मृदुल था। दीन-हीन और असहायों को देख कर दया से द्रवित हो जाते थे। शिव की लीलाओं के चिंतन में अधिक समय लगाते थे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जब वसवेश्वर आठ साल के हुए तब माता-पिता ने उनके उपनयन-संस्कार की बात सोची। शुभ तिथि निश्चित की गयी। उत्सव-मण्डप में दूर-दूर से आये हुए सगे-सम्बन्धी उपस्थित थे। कल्याण के अधिराज बिज्जल के दण्डनायक बलदेव भी समारोह में सम्मिलित हुए। वे वसवेश्वर के मामा लगते थे। वे वसवेश्वर के मधुर स्वभाव और कोमल सौन्दर्य से विशेष आकृष्ट हुए। इसी बीच में वसवेश्वर की चित्त-वृत्ति बदल गयी। उन्होंने मन में सोचा कि सदाशिव की आराधना ही प्राणी का एक मात्र कर्तव्य-धर्म है, ऐसी स्थिति में उपनयन आदि बाह्य संस्कार तो निरे बन्धन हैं, उनका हृदय यह सोच कर कांप उठा कि सदाशिव की प्राप्ति के मार्ग में जीवन एक बन्धन स्वीकार कर रहा है। . . . बलदेव सोच रहे थे कि उपनयन-संस्कार सम्पन्न होने पर मैं वसवेश्वर को अपना जामाता बनाने का प्रस्ताव रखूंगा। वसवेश्वर ने उपनयन-संस्कार में विघ्न डाला, उन्होंने कहा कि वीर-माहेश्वर लोग मेरे पिता हैं, माता हैं, मुझे उनसे ही शान्ति मिलेगी, ये बाह्य संस्कार मुझे मान्य नहीं हैं। अन्तःकरण की शुद्धि ही उपवीत है। आचार्य गण विस्मित हुए। शास्त्रमहारथी स्तब्ध हो गये। माता-पिता ने पुत्र को समझाने का यत्न किया पर वसवेश्वर अपने निश्चय पर दृढ़ रहे। बलदेव की बात मन में ही रह गयी। इस प्रकार उप-नयन-संस्कार में विघ्न डाल कर वसवेश्वर अपनी बहिन नागलाम्बिका के साथ उसके घर कूडल संगमेश्वर क्षेत्र चले आये। एक तपस्वी शिवशरण शैव सन्त ने उनको शिवतत्व का रहस्य समझाया, वे संगमे-श्वर शिव की आराधना करने लगे। बलदेव ने अपनी कन्या नीला-म्बिका अथवा गांगाम्बिका के विवाह की बात वसवेश्वर से चलायी, शिवशरण तपस्वी को इस शुभ कार्य में उन्होंने मध्यस्थ बनाया। विवाह की बात पक्की हो गयी। धूमधाम से विवाह-संस्कार सम्पन्न हुआ, समस्त जगत को शिवरूप समझने वाले आत्मज्ञानी सन्त वसवेश्वर इस कार्य में तनिक भी आसक्त न थे, उन्होंने इसको शिव की कृपा समझ कर गृहस्थाश्रम स्वीकार कर लिया। विवाह के बाद वे अपनी पत्नी के साथ कल्याण से कूडल संगमेश्वर चले आये, शिवशरणों ने उनका स्वागत किया। वे अपने इष्ट देव संगमेश्वर की आराधना में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तत्पर हो गये। दूर-दूर तक उनकी शिवभक्ति की ख्याति फैलने लगी। बड़े-बड़े सन्त और महात्मा उनसे सत्संग करने के लिये आने लगे। वसवेश्वर ने संगमेश्वर शिव की कृपा-दृष्टि प्राप्त की। संसार में उन्हें शिव-ही-शिव दीखने लगे। वसवेश्वर के विवाह के कुछ ही दिनों बाद बलदेव का स्वर्गवास हो गया। कल्याण-नरेश बिज्जल ने वसवेश्वर को अपना प्रधान मन्त्री बनाने का प्रस्ताव रखा। उस समय वसवेश्वर लोकप्रिय थे, उन्होंने सोचा कि वीरशैव सिद्धान्त के प्रचार के लिये संगमेश्वर शिव ने अच्छा अवसर प्रदान किया है। इसका उपयोग कर लेना ही श्रेयस्कर है, उन्होंने प्रधान मन्त्री का पद स्वीकार कर लिया। कल्याण में ही निवास करने लगे। कल्याण शिवशरणों और शैव सन्त-महात्माओं के सत्संग का अखाड़ा हो गया। नित्य प्रति शिव की भक्ति समृद्ध होने लगी। शिवभक्त दूर-दूर से आकर वसवेश्वर से दीक्षा लेने लगे। प्रसिद्ध शिवोपासक अक्कमहादेवी, सिद्धरामेश्वर, सांकलेश मादरस आदि उनके परिचय से अपने-आपको धन्य मानने लगे। प्रसिद्ध शैव अल्लामा प्रभु उनसे मिलने कल्याण गये, वसवेश्वर ने उनकी बड़ी आवभगत की, अल्लामा प्रभु अपने समय के बहुत बड़े सिद्ध थे।

बिज्जल को वसवेश्वर की प्रसिद्धि से ईर्ष्या हो गयी। वे उनसे जलने लगे। उनको नीचे गिराने का उन्होंने प्रयत्न किया। एक बार उन्होंने मिट्टी और काठ की दो शिवशरण-प्रतिमायें बनवायीं। उन्होंने वसवेश्वर से कहा कि दो शिव के भक्त आपका दर्शन करना चाहते हैं। राजा बिज्जल की बुद्धि आश्चर्य में पड़ गयी, उन्होंने देखा कि प्रतिमायें वास्तव में प्राणमय शिवशरणों में रूपान्तरित हो गयीं। इस घटना ने आग में घी का काम किया, उनका रोष बढ़ गया, वे उनको बात-की-बात में अपमानित करने के लिये कटिबद्ध हो गये। सन्त वसवेश्वर के लिये तो वे शिव के रूप ही थे, सन्त मित्रता और शत्रुता से परे होकर समस्त चराचर में समान भाव रखता है। वसवेश्वर के लिये न तो कोई बड़ा था, न छोटा था; न तो कोई धनी था, न गरीब था; न तो कोई ब्राह्मण था, न शूद्र था। उनके लिये समस्त विश्व में, समस्त रूप में शिव ही अभिव्यक्त थे। ...सन्त वसवेश्वर ने मधुवय्या ब्राह्मणकन्या से नीच जाति के हरलय्या का विवाह करवाया। सन्त की लीला विचित्र

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होती है, उनका ध्येय या दृष्टिकोण साधारण मानव नहीं समझ सकते हैं। समाज के अनेक लोग सन्त वसवेश्वर के कट्टर शत्रु हो गये, बिज्जल की क्रोधाग्नि भड़क उठी। सन्त वसवेश्वर आत्मा की आवाज को सबसे बड़ा प्रमाण मानते थे। शिवशरणों और शैव सन्तों की कल्याण में जमघट देखकर बिज्जल ने सोचा कि वसवेश्वर षड़यन्त्र से राज्य हड़पना चाहते हैं। मधुवय्या और हरलय्या के विवाह से वे विशेष क्रुद्ध हो उठे, उन्होंने दोनों को समाज के प्रति दोषी और अपराधी ठहरा कर उनके परिवार वालों को असहनीय दण्ड दिया, वसवेश्वर ने बहुत कहा पर उनकी बात पर राजा ने ध्यान नहीं दिया। वसवेश्वर ने प्रधान-मन्त्री का पद त्याग दिया, कूडल संगमेश्वर में शिव की आराधना करने लगे।

वसवेश्वर ने शक्तिविशिष्टाद्वैत मत का प्रचार किया। वीरशैव धर्म के प्रचार में उन्होंने अपनी सारी शक्ति लगा दी। लिंगधारण वीरशैव धर्म का सबसे कड़ा नियम था, यह शिवभक्तों और शिवशरणों के लिये अनिवार्य था। उन्होंने जनता को शिवभक्ति और साधना का सीधा-सादा मार्ग बताया। उन्होंने 'सर्वम् शिवमयं जगत्' की घोषणा की। उन्होंने शिवतत्व को सजीवता दी, समाज से कहा कि स्त्रियों को आत्मविचार का पूरा-पूरा अधिकार है। अपने शिवभक्तिसम्बन्धी वचनों से उन्होंने एक ही साथ धार्मिक, सामाजिक और साहित्यिक क्रान्ति कर आत्माभ्युदय का प्रकाश दिखाया। शिव-साहित्य लोकभाषा का प्राण बन गया।

सन्त वसवेश्वर शिवधर्म की निन्दा कभी नहीं सह सकते थे।.... जगदेव नामक दण्ड-नायक द्वारा बिज्जल की हत्या होने पर बिज्जल के पुत्रों ने अपराध का उत्तरदायित्व सन्त वसवेश्वर पर रखा। राजपुत्रों ने सन्त वसवेश्वर के जीवन का अन्त करवा दिया। ऐसा कहा जाता है कि सांसारिक प्रपञ्चों से ऊब कर उन्होंने एक तालाब में डूब कर आत्महत्या कर ली। सं. १२२७ वि. में वे शिव में लीन हो गये, लिंगैकम हुआ। वसवेश्वर के समाधिस्थ होने के बाद उनके अनुयायियों ने उन्हें अनादि भक्त और शिव का अवतार माना। कूडल संगमेश्वर क्षेत्र में ही उनका लिंगैक्य हुआ था।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्त वसवेश्वर ने भोग के वातावरण में रह कर भी वैराग्य-रस का अनुभव किया। उन्होंने आत्मगत सत्य में शिव का सौन्दर्य उरेहा, वे शिव के बहुत बड़े भक्त थे। शैवधर्म के उत्कर्ष में – विशेषता से वीर शैवधर्म अथवा शिवाचार या लिंगायत-सम्प्रदाय के उत्कर्ष में उन्होंने अभूतपूर्व योग दिया, वे आत्मविजयी सन्त थे। उन्होंने आत्मा का शिव की भक्ति से विवाह कर शुद्ध सच्चिदानन्द रसघन ब्रह्म की चिन्मय ज्योति से मानवता का भव्य शृंगार किया।

रचना

उनकी रचना 'वसवेश्वर के वचन' के नाम से प्रसिद्ध है, उन्होंने कन्नड़ को वचन-साहित्य दिया।

वाणी

एक ईश्वर 'शिव' ही पूज्य हैं, अहिंसा ही धर्म है। अधर्म से प्राप्त वस्तु को अस्वीकार करना ही व्रत है। इच्छाओं को वश में रखना संयम है। शान्ति ही तप है। किसी से कपट न करना ही भक्ति है।

देवलोक और मर्त्यलोक कहीं अलग-अलग नहीं हैं। सच बोलना देवलोक है, झूठ बोलना मर्त्यलोक है। सदाचार स्वर्ग है, अनाचार नरक है।

जो मनुष्य यह कहता है कि ईश्वर ही मेरे आश्रय हैं उसके सब दिन एक समान हैं।

मनुष्य को अपनी आत्मा का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये, आत्मज्ञान ही गुरु है।

चकोर चन्द्रमा का प्रकाश खोजता है, कमल सूर्योदय की चिंता करता है। भौंरा गन्ध चाहता है। मुझे परमात्मा के नाम-स्मरण की चिंता है।

सच्चा भक्त वह है जो अपने से मिलने वाले सब भक्तों को प्रणाम करता है।

ब्रह्मा की पदवी मुझे नहीं चाहिये, विष्णु और शिव की पदवी की भी इच्छा नहीं है। मुझे यह पदवी चाहिये कि मैं शिवभक्तों की महानता जान सकूँ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धनवान ईश्वर का मन्दिर बनवाते हैं पर मैं तो गरीब हूँ। मेरी टाँगें ही स्तम्भ हैं, शरीर देवमन्दिर है, सिर सोने का कलश है। एक स्थान पर स्थापित मन्दिर को लोग अपवित्र कर सकते हैं पर चलता-फिरता मन्दिर सदा पवित्र रहता है।

न मुझसे अधिक कोई तुच्छ है और न शिवभक्त से अधिक कोई बड़ा है। हे शिव! आपके चरण इसके साक्षी हैं, मेरा मन ही इस तथ्य को जानता है।

हे शिव! आप स्वामी हो, नित्य हो।.....'महादेव' के अतिरिक्त दूसरा शब्द ही नहीं है। पशुपति! समस्त संसार के देव हो। स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल के आप ही स्वामी हो।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्त फरीद

'मेरे पीर पवित्रात्मा मौलाना फरीद हैं। परमेश्वर ने इस लोक में उनके समान किसी दूसरे की रचना नहीं की।'

—निजामुद्दीन औलिया

सन्त की चरण-धूलि ही परम वंदनीय है, सत्य ही आचरणीय है, भगवान ही उपास्य हैं। सन्त के लोकोत्तर और चमत्कारपूर्ण जीवन में असाधारण सत्य की ही अभिव्यक्ति होती रहती है। सन्त की महिमा का बखान पूरे रूप से नहीं किया जा सकता है, उनका जीवन लोककल्याण का परमाश्रय होता है। सन्त फरीद एक बड़े सिद्ध महात्मा थे, दरवेश के पथ पर चलने वाले असाधारण प्राणी थे। वे विक्रम की तेरहवीं शताब्दी के दूसरे चरण में उपस्थित थे। वे सूफी सन्त थे, उनकी रहनी और करनी बड़ी ऊँची थी। तत्कालीन बड़े-बड़े औलिया, सिद्ध, फकीर और सन्त उनके दर्शन प्राप्त कर अपना जीवन परम धन्य और सफल समझते थे।

शाह अथवा सन्त फरीद के पूर्वज काबुल के निवासी थे। आध्यात्मिक जीवन और उच्च विचार तथा चिन्तन के लिये उनके परिवार वाले बड़े प्रसिद्ध थे। सम्वत् ११८७ वि. की बात है। सन्त फरीद के पूर्वज काबुल से पञ्जाव चले आये, वे सैनिक जीवन बिताते थे। पञ्जाब में ही सदा के लिये बस गये। तत्कालीन राजनैतिक परिस्थिति बड़ी विचित्र थी। चारों ओर लूटपाट और अशान्ति का बोलबाला था, कुछ दिनों पहले किये गये आक्रमणों से भारतीय जनता भयभीत थी, विदेश के रहने वालों पर उसका विश्वास नहीं था, ऐसी स्थिति में ऐसे दरवेशों और महात्माओं की आवश्यकता थी जो विदेश और भारत में पारस्परिक विश्वास से जनता को शान्ति का अभय सन्देश सुनाते। सन्त फरीद उसी ऐतिहासिक आवश्यकता की एक बहुत बड़ी पूर्ति थे, उन्होंने शान्ति और प्रेम का संदेश दिया। सन्त फरीद दीपालपुर के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्निकट कोठीवाल में सम्वत् १२३० वि. में पैदा हुए थे। उनके माता-पिता दोनों बड़े ईश्वर-विश्वासी थे, वे सदाचार और संयम से रह कर गृहस्थी के सारे कार्य करते थे। सन्तों और महात्माओं का समय-समय पर दर्शन करते थे और घर पर भोजन के लिये आमन्त्रित करते थे। उनके ईश्वरविश्वासी पवित्र जीवन के संस्कारों ने सन्त फरीद के विकास और शिक्षा-दीक्षा पर बड़ा प्रभाव डाला था। एक बार फरीद जब बच्चे थे तो उन्होंने अपनी माता से पूंछा था कि ईश्वर की प्रार्थना करने से क्या मिलता है। माताने आश्चर्यचकित होकर बालक के मुख की ओर देखा। उन्होंने बड़े प्रेम से उनको गोद में बैठा कर कहा कि ईश्वर बड़े दयालु और सुन्दर हैं, उनमें बड़े मीठे-मीठे गुण हैं, जो उनका नाम लेता है वह संसार में किसी से भी नहीं डरता है। उन्हें प्यार करना चाहिये, उनकी पूजा करने से बड़ा सुख मिलता है। फरीद माता की बात बड़े ध्यान से सुन रहे थे। उन्होंने कहा कि मैं ईश्वर की प्रार्थना अवश्य करूँगा, मैं उनका नाम-स्मरण कर संसार के प्राणियों को अभय करूँगा। वे ही मेरे एक मात्र प्रियतम हैं, मैं केवल उन्हें ही प्यार करूँगा, मैं उनके मीठे-मीठे गुणों को पाने का यत्न करूँगा। इतना कहते-कहते वे प्रेमविभोर हो गये, उनके मुख पर दिव्यता चमकने लगी, रोमरोम में आनन्द छा गया। मा को बालक की अवस्था से विस्मय हुआ, वे परम भगवद्भक्त थीं, उन्होंने ईश्वर से प्रार्थना की कि फरीद के सब वचन सच हों। माता ने फरीद से कहा कि ईश्वर की प्रार्थना से शक्कर मिलता है। फरीद इस बात को सुनकर भगवान की प्रार्थना के लिये विशेष उत्सुक हो उठे। वे नित्य प्रति सच्चे भाव से, शुद्ध अन्तःकरण और श्रद्धा-भक्ति से भगवान के नाम का स्मरण करने लगे। लोग उन्हें शकर-गंज—शक्कर की निधि कह कर पुकारने लगे। उनका स्वभाव प्रेममय, मधुर, उदार और कोमल था।

प्रारम्भिक अवस्था में सन्त फरीद को कुरान की शिक्षा दी गयी, कुरान पढ़ने से उनके आध्यात्मिक भाव की परिपुष्टि हुई पर उनकी विचार-धारा कुरान में ही सीमित नहीं रह सकी, वह तो समस्त मानवों के कल्याण-चिन्तन की प्रतीक थी। सन्त फरीद ने अपने शिक्षा-गुरु के साथ मक्का और मदीना की यात्रा की। इस यात्रा ने उनकी ईश्वर-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भक्ति के बढ़ने और फलने-फूलने में बड़ी सहायता की। मक्का-मदीना से लौटने पर उनकी भेंट प्रसिद्ध सन्त कुतुबुद्दीन से हुई। वे उनके सत्संग और तप तथा आध्यात्मिक जीवन से बहुत प्रभावित हुए। फरीद कुतुबुद्दीन के शिष्य हो गये, उन्होंने प्रगाढ़ निष्ठा और गुरु-भक्ति का परिचय दिया। फरीद कुछ दिनों के लिये बुखारा चले गये। वापस आने पर सन्त कुतुबुद्दीन ने उन्हें सीख दी कि सोना कम चाहिये, बहुत ही कम खाना चाहिये, थोड़ा बोलना चाहिये और लोगों से कम मिलना चाहिये, अधिक परिचय बढ़ाने से ईश्वर की भक्ति पूरी-पूरी नहीं हो पाती है; आध्यात्मिक उन्नति एकान्तवास में ही होती है। सन्त फरीद ने इन्हीं सिद्धान्तों के अनुरूप अपना जीवन संयमित कर लिया। फरीद ने बारह साल तक जंगल में घोर तप किया, चारों ओर उनकी प्रसिद्धि बढ़ गयी। लोग दूर-दूर से उनका दर्शन करने के लिये आने लगे। वे प्रेममार्गी सूफी सन्त के रूप में प्रसिद्ध हो गये, उनके दर्शन और वचन में बड़ा आकर्षण था। सन्त फरीद ने अपने जीवन के कुछ दिन हाँसी में बिताये। उन्होंने दिल्ली की भी यात्रा की थी। तत्कालीन प्रसिद्ध सूफी साधक निजामुद्दीन औलिया से भी उनकी भेंट हुई थी। दोनों एक दूसरे के पवित्र और दिव्य प्रेमपूर्ण जीवन से अमित प्रभावित हुए थे। सन्त फरीद की सात्विकता से तत्कालीन बादशाह की कन्या विशेष आकृष्ट हुई थी। वह उनकी दिव्य ईश्वरीय प्रेम-साधना से उन्मत्त होकर उनके पीछे-पीछे फकीर की तरह घूमा करती थी। सन्त के राज्य में भौतिक वैभव और सुखने पराजित होकर आत्मसमर्पण कर दिया। निजामुद्दीन औलिया तो सन्त फरीद से इतने प्रभावित थे कि एक बार आत्मविभोर होकर उन्होंने कहा था कि मेरे पीर पवित्र आत्मा मौलाना फरीद हैं। उनके समान ईश्वरीय सृष्टि में कोई दूसरा नहीं है।

सन्त फरीद कहा करते थे कि जीवात्मा और परमात्मा का सम्बन्ध पत्नी और पति का है, जीवात्मा को ईश्वर के बिना कहीं वास्तविक आनन्द मिल ही नहीं सकता है इसलिये ईश्वर ही एक मात्र प्रेमास्पद हैं। सन्त फरीद निस्सन्देह सिद्ध फकीर थे, पूरे समदर्शी थे। उनकी कथनी और करनी समान थी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रचना

फरीद की वाणी का पञ्जाब में बड़ा सम्मान है। सन्त साहित्य में उनकी वाणी का महत्वपूर्ण स्थान है। गुरुग्रन्थ साहब में उनकी वाणी का अधिकांश संग्रहीत है।

वाणी

अल्लाह–भगवान से प्रीति जोड़ लो। यह शरीर तो खाक हो जायेगा। इसका घर निगोड़ी कब्र में बनेगा।

धर्म से सच बोलो, झूठ कभी नहीं बोलना चाहिये।

जो तुमको मुक्के से मारता है उसको बदले में मत मारो। उसके चरण की धूलि चूम कर शान्तिपूर्वक अपने घर चले जाओ।

जीवात्मा दुलहिन है, मृत्यु दूल्हा है। मृत्यु से उसका विवाह होता है और वह मृत्यु के घर चली जाती है।

मैं डरता हूँ कि मेरी पगड़ी मिट्टी से मैली न हो जाय। पर मेरा बावला जी यह नहीं जानता है कि पगड़ी ही नहीं, मेरे सिर को भी एक दिन मिट्टी सड़ा-गला कर खा जायेगी।

ऐसे विरले ही हैं जो दरवेश के रास्ते पर चलते हैं।

एक भी अप्रिय बात मत बोलो, सच्चे मालिक—परमेश्वर प्रत्येक प्राणी में विद्यमान हैं।

धूलि का भी अपमान न करो। इसके समान महत्वशील दूसरा कुछ भी नहीं है। जब तक शरीर में प्राण है तब तक तो यह धूलि चरण के नीचे रहती है, शरीर से प्राण निकलते ही धूलि शरीर के ऊपर आ जाती है।

जो नयन ईश्वर का स्वरूप नहीं देखते हैं वे फूट जायें, जो रसना ईश्वर के मधुर नाम का जप नहीं करती है वह गूंगी हो जाय, जो कान ईश्वर के गुणानुवाद नहीं सुनते हैं उनका बहरा हो जाना ही अच्छा है।

मेरा शरीर तन्दूर की तरह तप रहा है, मेरी हड्डी ईधन की लकड़ी की तरह जल रही हैं, पैर थक जाने पर भी अपने प्रियतम से मिलने के लिये सिर के बल चल कर जाऊँगा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आचार्य मध्व

'वही जन्म सफल जन्म है, वे ही कर्म ठीक कर्म हैं, वही आयु आयु है, वही मन मन है और वही वाणी वाणी है जिनके द्वारा मनुष्य सर्वसमर्थ विश्वात्मा हरि की सेवा करते हैं।'

—श्रीमद्भागवत

मध्व आचार्य ने द्वैत भक्ति का प्रचार किया, वे द्वैतवाद के महा-पण्डित, भगवान के परम भक्त और आत्मनिष्ठ महात्मा थे। उन्होंने घोषणा की कि दुख की निवृत्ति और आनन्द की प्राप्ति ही प्रयोजन है....वैकुण्ठ की प्राप्ति और वैकुण्ठ में जाकर नारायण की सेवा ही मुक्ति और आनन्द है। आचार्य मध्व ने शुद्ध द्वैत भक्ति के माध्यम से परम निगूढ़, चिन्मय और आनन्दमय भगवत्तत्व का रहस्य समझाया। उन्होंने सेवक-सेव्य-भाव का मर्म बताया। उन्होंने विष्णु भक्ति के प्रचार में बड़ा योग दिया। आचार्य शंकर के मायावाद और अद्वैत मत का खण्डन किया। वे भक्तिपथ के बहुत बड़े आचार्य थे।

लगभग आठ सौ साल पहले की बात है। दक्षिण भारत के मद्रास प्रान्त में मंगलूर जनपद के उड़ीपी क्षेत्र से दो-तीन मील दूर वेललि ग्राम में भार्गव गोत्रीय ब्राह्मणपरिवार रहता था। इस परिवार में सदाचार-सम्पन्न नारायण भट्ट बड़े ज्ञानी और विष्णु भक्त थे। उनकी पत्नी वेदवती ने सन्तान प्राप्ति के लिये बड़ी तपस्या की, दम्पति ने बड़े-बड़े अनुष्ठान किये, उन दोनों के तप और अनुष्ठान के फलस्वरूप सम्वत् १२९५ की माघ शुक्ला सप्तमी को आचार्य मध्व का जन्म हुआ।

यद्यपि माता-पिता ने बचपन में अपने प्राणप्रिय बालक को सुचारु रूप से शिक्षा देने का यत्न किया तो भी उनका मन पढ़ने-लिखने में कम लगता था, उनका समय खेल-कूद, कुश्ती आदि में ही बीतता था। वे समवयस्क लड़कों को साथ लेकर इधर-उधर ऊधम मचाते रहते थे। बचपन का नाम वासुदेव था पर उनमें इतनी अलौकिक शक्ति थी कि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लोग उन्हें भीम कह कर पुकारा करते थे। कुछ दिनों तक पाठशाला में विद्यार्जन करने के बाद वे घर पर ही शास्त्रों का विधिपूर्वक अध्ययन करने लगे। ज्यों-ज्यों वे शास्त्रों का अध्ययन करते जाते थे त्यों-त्यों उनका विवेक बढ़ता जाता था; उन्हें संसार के नश्वर स्वरूप का ज्ञान होने लगा। ग्यारह साल की अवस्था में उन्होंने शास्त्रों का अध्ययन समाप्त कर दिया। उनका मन घर से उचटने लगा। अनासक्ति और वैराग्य के भाव दिन-प्रति-दिन बढ़ने लगे। एक दिन उन्होंने अपने पिता-माता के सामने संन्यास लेने का प्रस्ताव रखा। नारायण दम्पति ने पुत्र के संन्यास-ग्रहण-मार्ग में बड़ी अड़चनें डालीं। उन्होंने माता-पिता को समझा-बुझा कर तथा कुछ आश्चर्य-घटनायें दिखा कर मार्ग के समस्त विघ्न नष्ट कर दिये। उन्होंने अद्वैत मत के संन्यासी अच्युतपक्षाचार्य से संन्यास की दीक्षा ली। गुरुदेव ने संन्यास का नाम पूर्णप्रज्ञ रखा। पूर्णप्रज्ञ ने गुरु के समीप रहकर वेदान्त का अध्ययन किया। कभी-कभी वे गुरु की व्याख्या का प्रतिवाद कर बैठते थे। धीरे-धीरे दक्षिण भारत में उनकी प्रसिद्धि बढ़ने लगी। वे आनन्दतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हो गये।

अच्युतपक्षाचार्य उन्हें प्राण से भी प्रिय समझते थे। एक दिन आनन्दतीर्थ ने गंगास्नान और दिग्विजय के लिये गुरु का आदेश मांगा। गुरु उनके वियोग की आशंका से चिंतित हो उठे। वे चाहते थे कि आनन्दतीर्थ सदा उनके सामने रहें। उनकी चिंता देखकर अनन्तेश्वर जी ने समाधान किया कि एक दिन के बाद गंगा जी सामनेवाले सरोवर में स्वयं प्रकट होंगी, इस प्राकट्य का फल यह होगा कि आनन्दतीर्थ की यात्रा रुक जायेगी। तीसरे दिन सरोवर का हरा जल श्वेत हो गया, आनन्दतीर्थ यात्रा न कर सके। अच्युतपक्षाचार्य इस घटना से परम संतुष्ट हुए।

आचार्य मध्व ने भागवत धर्म के प्रचार के लिये भारतवर्ष के प्रसिद्ध तीर्थों की यात्रा की। मार्ग में बड़े-बड़े शास्त्रज्ञों और विद्वानों को शास्त्रार्थ में पराजित कर अपने द्वैत मत का पूर्ण प्रचार किया। रामेश्वर, त्रिवेन्द्र, उड़ीपी आदि क्षेत्रों में अपनी विजय की विजयिनी पताका फहरायी। उन्होंने अपने यात्रा-काल में भक्ति का प्रचार किया, वेदों की प्रामाणिकता पुष्ट की, मायावाद का खण्डन किया। बदरीनारायण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

में आचार्य मध्व को व्यास का प्रत्यक्ष दर्शन हुआ था। उन्होंने महर्षि व्यास को अपना वेदान्त भाष्य दिखाया था। व्यास ने उनको शालग्राम की तीन मूर्तियाँ दी थीं जिनको आचार्य ने सुब्रह्मण्य, उड़ीपी और मध्यतल में पधराया था।

आचार्य मध्व योगसिद्ध महात्मा थे उनकी सिद्धियों से लोग आश्चर्यचकित हो गये। एक बार किसी व्यापारी का जहाज द्वारका से मालाबार जा रहा था। तुलुव के निकट वह डूब गया। उसमें गोपीचन्दन से ढकी श्रीकृष्ण की एक मूर्ति थी। आचार्य मध्व ने मूर्ति का उद्धार किया, उड़ीपी में उसकी स्थापना की। आचार्य मध्व भगवान के अनन्य भक्त थे। एक बार एक व्यापारी का जहाज डूब रहा था, आचार्य को उस पर दया आ गयी, उन्होंने जहाज को बचा लिया। व्यापारी ने अपनी आधी सम्पत्ति देकर आचार्य के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने की कामना की पर मध्व ने अस्वीकार कर दी उसकी सम्पत्ति; वे तो भगवान को ही अपना परम धन समझते थे। आचार्य मध्व की प्रसिद्धि से बहुत-से लोग जलने लगे। उनके ग्रन्थ चुरा लिये और बड़े-बड़े अनिष्ट करने चाहे। उनके पकड़े जाने पर आचार्य ने क्षमा-दान दिया। वे निरन्तर भगवान के स्मरण, ध्यान और चिंतन में लीन रहते थे। उनके समस्त कर्म भगवत्सम्बन्ध की पुष्टि के लिये थे। उन्होंने उड़ीपी में अनेक मन्दिरों की स्थापना कर उनमें सीताराम, द्विभुज कालियदमन, चतुर्भुज कालियदमन, विट्ठल आदि की प्रतिष्ठा की।

आचार्य ने यज्ञ में पशुहिंसा बन्द कर दी। पशु के स्थान पर चावल की बलिका प्रचलन हुआ, निस्सन्देह तत्कालीन समाज में यह एक बहुत बड़ा सुधार था।

आचार्य मध्व ने ब्रह्म को सगुण और सविशेष बताया। उन्होंने वेदों की अपौरुषेयता की घोषणा की। आचार्य मध्व ने कहा कि जीव अणु है, भगवान का दास है, भगवान के प्रति सदा सेव्यभाव अक्षुण्ण रखने में ही उसकी मुक्ति है। उन्होंने पूर्ण रूप से द्वैतवाद का ही प्रश्रय लेने पर जोर डाला, पाञ्चरात्र शास्त्र को आचार्य ने विशेष मान्यता प्रदान की। उन्होंने कहा कि जीव को ब्रह्म की समता कभी नहीं करनी चाहिये, उसे 'मैं ब्रह्म हूँ'—ऐसा कहने का अधिकार ही नहीं है, भगवान

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के प्रति ऐसा करना जीव का अक्षम्य अपराध है, इससे जीव को पतित होना पड़ता है।

आचार्य मध्व ने ज्ञान को सविकल्प माना। सत्य और दृश्य वस्तु में उन्होंने भेद नहीं स्वीकार किया। उन्होंने उनकी अभिन्नता-अभेदता सिद्ध की। आचार्य ने कहा कि सत्य का ज्ञान हुए बिना असत्य का ज्ञान नहीं होता है। असत्य तो ज्ञान का विषय ही नहीं है। वस्तु के साथ वस्तु का भेद है, वस्तु के साथ वस्तु का सम्बन्ध है। सम्बन्ध से ही परापर भेद है। इसी भेद पर आचार्य मध्व का द्वैत मत प्रतिष्ठित है। मध्व ने असीम सद्गुणसम्पन्न विष्णु को प्रतिपाद्य माना, विष्णु को स्वतन्त्र और जीव को परतन्त्र सिद्ध कर उन्होंने द्वैत भक्ति का शिलान्यास किया। आचार्य ने बतलाया कि जीव (भाव) चेतन है, जगत (अभाव) अचेतन है, दोनों-के-दोनों भगवान के अधीन हैं। आचार्य ने भक्ति को मुक्ति का साधन बतलाया। सत्य बोलना, हित के वाक्य कहना, प्रिय-भाषण, स्वाध्याय, सत्यपात्र को दान, विपन्न का उपकार, शरणागत की रक्षा, दया, स्पृहा, श्रद्धा आदि ही मध्व के द्वैत मत से भजन हैं। मध्व ने विहित, निषिद्ध और उदासीन तीन प्रकार के कर्म माने। भगवान के प्रति अखण्ड प्रेम को भक्ति की संज्ञा से अलंकृत किया। आचार्य ने सन्देश दिया कि भगवान के अनुग्रह तथा प्रेम से जीव दुखरूप संसार से मुक्त होकर परमात्मा के लोक में—अपने स्वरूप में पहुँचता है। जीव, जगत और ईश्वर के सम्बन्ध में उन्होंने मौलिक सिद्धान्त स्थिर किया कि जीव ईश्वर से तथा ईश्वर जीव से नित्य भिन्न हैं, जड़ ईश्वर से तथा ईश्वर जड़ से नित्य भिन्न हैं, जीव जड़ से तथा जड़ जीव से नित्य भिन्न है, एक जीव अपर जीव से भिन्न है, एक जड़ दूसरे जड़ से भिन्न है। मध्व ने कर्मक्षय, उत्क्रान्ति लय, अर्चिरादि मार्ग और भोग—(सालोक्य-सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य) चार प्रकार की मुक्ति मानी।

जीवन के अन्तिम दिन आचार्य मध्व ने सरिदन्तर नामक स्थान में बिताये। सरिदन्तर में ही उन्होंने महाप्रयाण किया। देहावसान-काल में उन्होंने पद्मनाभतीर्थ को श्रीराम की मूर्ति और व्यास प्रदत्त शालग्राम देकर अपने मत का प्रचार करने का आदेश दिया। सम्वत् १३७४ वि.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के लगभग सागर-स्नान के लिये जाते समय वे वैकुण्ठपति में लीन हो गये।

रचना

आचार्य मध्व ने गीता और वेदान्तसूत्र पर भाष्य लिखे। पूर्णप्रज्ञदर्शन, मायावाद खण्डन, उपाधिखण्डन, मध्वमन्त्ररत्नाकर, ऋग्भाष्य, काठकोपनिषद् भाष्य, ब्रह्मसूत्रानुव्याख्यान आदि रचनायें हैं।

वाणी

श्री भगवान का नित्य-निरन्तर स्मरण करते रहना चाहिये। अन्तकाल में इससे उनकी विस्मृति नहीं होगी। सैकड़ों बिच्छुओं के एक साथ डंक मारने से शरीर में जैसी पीड़ा होती है, मरणकाल में मनुष्य को वैसी ही पीड़ा होती है.....ऐसे समय में भगवान की स्मृति को बनाये रखना कठिन हो जाता है।

सुख-दुखों की स्थिति कर्मानुसार होने से उनका अनुभव सभी के लिये अनिवार्य है। सुख का अनुभव करते समय भी भगवान को न भूलो तथा दुखकाल में भी उनकी निन्दा न करो।.... कोई भी कर्म करते समय बड़े दीन भाव से भगवान का स्मरण करो। भगवान ही सबसे बड़े सबके गुरु तथा जगत के माता-पिता हैं, अपने सारे कर्म उन्हीं को अर्पण करने चाहिये।

सांसारिक प्रपंचों के चिन्तन में अमूल्य समय नष्ट नहीं करना चाहिये। भगवान को ही अपने अन्तःकरण में लीन करना चाहिये। भगवान के चरण-कमलों का स्मरण करने की चेष्टा मात्र से ही पापों का पर्वत-सा ढेर नष्ट हो जायेगा। स्मरण से तो मोक्ष होगा ही, स्पष्ट है। ऐसे स्मरण का परित्याग नहीं करना चाहिये।

मेरी वाणी सुनो। दोनों हाथ उठा कर शपथपूर्वक कहता हूँ कि भगवान की बराबरी करने वाला भी इस चराचर जगत में कोई नहीं है। उनसे श्रेष्ठ तो कोई हो ही नहीं सकता है। वे सर्वश्रेष्ठ हैं।

यदि भगवान सर्वश्रेष्ठ न होते तो समस्त संसार उनके अधीन किस प्रकार रहता। यदि समस्त संसार उनके अधीन न होता तो संसार के सभी प्राणियों को सदा-सर्वदा सुख की ही अनुभूति होनी चाहिये थी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रसिक सन्त जयदेव

'यदि हरि के स्मरण से मन को सरस और आनन्दमय करने की इच्छा हो और भगवान के दिव्य विलास की कलाओं का रसास्वादन करना हो तो महाकवि जयदेव की मधुरकोमल कान्त पदावली का श्रवण करना चाहिये।' —गीत गोविन्द

लगभग आठ सौ साल पहले की बात है, बारहवीं सदी के चौथे चरण में महाराजा गौड़ेश्वर लक्ष्मणसेन के शासनकाल में महाकवि, परम-कृष्णभक्त, रसिक सन्तशिरोमणि जयदेव ने भगवद्भक्ति की जो रस-मयी सरस्वती धरती पर उतारी वह नितान्त मौलिक, अभूतपूर्व और परम मंगलमयी स्वीकार की जाती है। जयदेव ने दिव्य रस के स्वरूप राधाकृष्ण की रमणलीला का स्तवन कर आत्मशान्ति की सिद्धि की, यही उनकी साधनागत विशिष्टता और ऐतिहासिकता है। उन्होंने पुराणगत वैदिक सच्चिदानन्द रस की लीला का साहित्यीकरण किया, प्रकट रूप से श्रीमद्भागवतकार व्यास के बाद राधाकृष्ण की अनुपम लीला की अभिव्यक्ति साहित्य में और विशेषतया उत्तर भारत के साहित्य में गीतगोविन्द के रचयिता रसिक सन्त जयदेव ने ही की। चैतन्य महाप्रभु के प्राकट्य के बहुत पहले जयदेव ने राधाकृष्ण के केलिगान से भक्तिरस–सरस वैष्णवता का प्रचार किया। जयदेव ने चैतन्य के शुभागमन से तीन सौ साल पहले आत्मचेतना को भक्ति के सरस सागर में सराबोर कर दिया। भक्तिविजय के रचयिता सन्त महीपति ने जयदेव को श्रीमद्भागवत की रचना करने वाले व्यास का अवतार माना है। सहजसम्प्रदाय ने उनको रस का आदिगुरु स्वीकार किया है। महाराजा लक्ष्मण सेन की सभा के वे राजकवि थे पर बाद में वैराग्य का पूर्ण उदय होने पर पुरी में ही रहने लगे।

जयदेव का गीतगोविन्द निस्सन्देह वैष्णव साधना के क्षेत्र में भक्ति-रस शास्त्र है। गीतगोविन्द ने तत्कालीन भक्तिपद्धति का पथ प्रशस्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किया। जयदेव भगवदीय लीलारस के साहित्य-आचार्य थे। उन्होंने शांकर सिद्धान्त से प्रेरित आत्मा और मायावाद में उलझे भारतीय मस्तिष्क को हृदय की भावुकता और सरसता से अभिमन्त्रित कर राधाकृष्ण की रसमयी लीला से वैष्णव भारत का चित्तानुरञ्जन किया। अलंकारशेखर ने उनको गौड़ाधिप लक्ष्मणसेन का सभाकवि न मान कर किसी उत्कलनरेश का सभाकवि माना है। वे वीरभूमि जिले के केन्दुली अथवा केन्दुबिल्वगाँव के निवासी थे।

जयदेव के पिता का नाम भोजदेव था और माता का नाम राधा देवी था। जब जयदेव बहुत छोटे थे तभी उन दोनों का देहान्त हो गया। जयदेव बचपन से ही विद्याव्यसनी थे इसलिये अपने पूर्वजन्म के संस्कारों और पुण्यों के फलस्वरूप भगवान श्रीकृष्ण के सहज-स्वाभाविक प्रेम में वे रात-दिन डूबे रहते थे। वे संसार के प्रति अनासक्त और उदासीन रहा करते थे।

पिता का देहान्त हो जाने के बाद उनके हृदय में राधाकृष्ण की प्रगाढ़ भक्ति का उदय शीघ्रता से होने लगा। केन्दुबिल्व गाँव के निवासी निरञ्जन नामक ब्राह्मण से उनके पिता ने ऋण लिया था जिसकी भरपायी वे न कर सके थे। एक दिन ब्राह्मण ने जयदेव जी से ऋण माँगा, जयदेव ने उसकी रुचि के अनुकूल ऋणपत्र पर हस्ताक्षर कर दिया, कहा कि मैं तो केवल राधाकृष्ण को जानता हूँ, वे ही मेरे सर्वस्व हैं, शेष धन तथा घर से अपना ऋण पूरा कर लो। ब्राह्मण निरञ्जन उनकी भक्ति से लाभ उठा कर मन-ही-मन प्रसन्न हो रहा था कि उसकी छोटी कन्या ने घर में आग लग जाने की सूचना दी। निरञ्जन को अपने घर की ओर दौड़ते देखकर राग-द्वेष से रहित निष्कपट जयदेव भी चल पड़े। जयदेव ने निरञ्जन के घर में प्रवेश ही किया था कि क्षणमात्र में आग ठन्डी हो गयी, घर जलने से बच गया, सारे सामान सुरक्षित थे। जयदेव के इस असाधारण और अद्भुत चमत्कार से ब्राह्मण के मन में बड़ी आत्मग्लानि हुई, उसने बनावटी ऋणपत्र फाड़ डाला और जयदेव के चरणों में गिर कर क्षमा माँगी, अपने पाप का प्रायश्चित किया। जयदेव के लिये तो यह सब कुछ सपना था; जयदेव का मन तो निरन्तर भगवान श्रीकृष्ण के चरणों में अनुरक्त था।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जगन्नाथपुरी वंग और उत्कल प्रदेश का वृन्दावन है। जयदेव के नयन जगन्नाथ के दर्शन के लिये बहुत प्यासे थे। वे अपने गाँव से पराशर नामक ब्राह्मण को साथ लेकर पुरुषोत्तम क्षेत्र के लिये चल पड़े। वे भगवान का कीर्तन करते हुए जा रहे थे। एक दिन मार्ग में उन्हें बड़ी प्यास लगी, बहुत दूर तक जाने पर भी उन्हें जल न मिल सका, अधरों पर भगवद्रस का समुद्र लहरा उठा, करुणासागर भगवान ने साक्षात् प्रकट होकर जयदेव और उनके साथी को जल पिलाया। मार्ग में ही थे कि उनके मानस क्षेत्र में भाव-वृन्दावन उतर आया, उन्होंने अपनी चारों ओर नीली पर्वतश्रेणी देखी, कदम्ब-विचुम्बित कलिन्दनन्दिनी का कलकल जल-प्रवाह देखा, उन्होंने अपने प्रसिद्ध काव्य गीतगोविन्द की रचना का चित्र नयनों में उतार लिया, भगवान ने इस प्रकार उनको गीतगोविन्द की भूमिका दी। गीतगोविन्द का समारम्भ जयदेव ने इसी मानस-चित्र की दिव्यता के आधार पर किया।....पुरुषोत्तम क्षेत्र में पहुँच कर उन्होंने जगन्नाथ का दर्शन किया। एक विरक्त संन्यासी की तरह वृक्ष के नीचे रह कर अपने समय का भगवान के स्तवन-कीर्तन में उपयोग करने लगे। भिक्षा माँग कर जीवन-निर्वाह करते थे और निश्चिंत होकर भगवान का भजन करते थे। भगवान के सौन्दर्य-रस के सामने समस्त जागतिक विषय-भोग और सुख नीरस हो उठे। पुरी-यात्रा के समय उन्हें विष्णु के दस अवतारों का दर्शन भी हुआ था।

उनके वैराग्य और भगवद्भक्ति की प्रसिद्धि पुरी में अनवरत बढ़ने लगी। बड़े-बड़े रसिक महात्मा और सन्त जन उनके सरस सत्संग और कीर्तन से अपने आपको धन्य मानने लगे।

पुरी में एक सुदेव नामक ब्राह्मण रहते थे। उनकी कन्या पद्मावती सौन्दर्य में दूसरी लक्ष्मी थी। वे निस्पृह और भगवान के भक्त थे। उन्होंने अपनी कन्या का सौन्दर्य जगन्नाथदेव के चरणों में समर्पित करना चाहा, उनका विश्वास था कि पद्मावती का दिव्य सौन्दर्य केवल भगवान का भोग्य है। भगवान ने ब्राह्मण को दर्शन दिया और जयदेव के साथ पद्मावती का विवाह करने का आदेश दिया। पहले तो जयदेव ने यह सम्बन्ध अस्वीकार कर दिया पर बाद में जगन्नाथ की प्रसन्नता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के लिये उन्होंने पद्मावती को अपनी जीवनसंगिनी के रूप में स्वीकार किया। जयदेवदम्पति की भगवान के चरणारविंद में प्रीति बढ़ती गयी, जगन्नाथक्षेत्र में रह कर वे आनन्दपूर्वक भजन करते रहे।

कुछ दिनों तक पुरुषोत्तमक्षेत्र में निवास कर वे अपनी जन्मभूमि—केन्दुबिल्व चले आये। घर पर वे अपनी पत्नी के साथ भगवान की उपासना में लग गये। श्रीराधाकृष्ण की विग्रह-स्थापना कर वे आनन्द-पूर्वक भजन करने लगे।

जयदेव ने अपने एक अत्यन्त श्रद्धालु शिष्य के आग्रह पर उसके गाँव की यात्रा की। शिष्य अत्यन्त समृद्ध और उदार था। उसने सन्त जयदेव की बड़ी आवभगत की। वह जानता था कि विदा के अवसर पर चलते समय जयदेव धन नहीं स्वीकार करेंगे, उनके परम धन तो भगवान नन्दनन्दन हैं। उसने आग्रह किया कि वे अपनी पत्नी की सेवा के लिये कुछ स्वीकार कर लें। सन्त जयदेव ने शिष्य की बात मान ली। गाड़ी पर बहुत-सा धन रख दिया गया, जयदेव जी आनन्द-मग्न होकर कीर्तन करते और राधाकृष्ण की निराली झांकी का स्मरण करते चले जा रहे थे। शिष्य ने उनके साथ दो रक्षक भेजे थे, वे घर लौट गये। जयदेव सहसा एक सघन और भीषण वन में पहुँच गये। चोरों ने उनका पीछा किया, उन्होंने धन लूट लिया, और जयदेव के हाथ-पैर काट कर एक कुएँ में डाल दिया। भक्त जयदेव इस घटना को भगवान का परम मंगलमय विधान समझकर भगवन्नाम-कीर्तन से वनप्रान्त को पवित्र करने लगे। उनकी स्वरमयी सरस कंठध्वनि की मन्दाकिनी में स्नान कर वन के कण-कण भगवदीय चेतना में आनन्दमग्न हो उठे। गौड़ेश्वर महाराज लक्ष्मणसेन का उसी मार्ग से आगमन हो रहा था। उन्होंने कुएँ में बैठे जयदेव का राधाकृष्ण-नामोच्चारण सुना, वे विस्मित हुए। उन्होंने विनम्रतापूर्वक जयदेव का परिचय जानना चाहा, स्वाभाविक रूप से जयदेव ने कहा कि मुझे भगवान ने ऐसा ही बनाया है, इसी में मेरी प्रसन्नता है, मैं शरीर से नितान्त भिन्न हूँ। महाराजा लक्ष्मणसेन उनकी बात से आकृष्ट हुए, उन्हें लेकर वे अपनी राजधानी में लौट आये, उचित चिकित्सा होने पर जयदेव के घाव सूख गये। लक्ष्मणसेन उनकी कृष्णभक्ति से प्रभावित हुए, उन्होंने जयदेव

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

को अपना गुरु स्वीकार किया और अपनी कवि-सभा के अध्यक्ष-पद से उनके प्रति सम्मान दिखाया। जयदेव लक्ष्मणसेन की राजधानी में निवास कर राधाकृष्ण की भक्ति का प्रचार करने लगे।. . . . लक्ष्मण-सेन के राजप्रासाद में नित्य सन्तों और भक्तों की भीड़ बढ़ने लगी। महाराजा उन्हें यथोचित सम्मान देकर विदा किया करते थे, जयदेव को प्रसन्न रखने के लिये महाराजा लक्ष्मणसेन साधुसन्तों की सेवा में किसी प्रकार की त्रुटि नहीं होने देते थे। एक दिन राजप्रासाद में साधुओं का सहभोज था, दूर-दूर से सन्तों की मण्डली कीर्तन करती चली आ रही थी। उत्सव के अध्यक्ष जयदेव थे। उन्हीं साधुओं में वे दोनों चोर भी साधुवेष में थे जिन्होंने जयदेव के हाथ-पैर काट कर कुएँ में डाल दिया था और धन छीन लिया था। जयदेव की दृष्टि में साधु-असाधु सब परमात्मा के रूप थे। वैर और द्वेष से वे बहुत ऊपर उठे हुए थे। उन्होंने अपने अपराधियों को पहिचान लिया और उनके प्रति पर्याप्त आदर दिखाया, राजा ने उनके संकेत पर उन दोनों साधुवेषधारी चोरों को बहुत-सा धन देकर विदा किया। जयदेव ने उनकी रक्षा के लिये चार कर्मचारी साथ कर दिये। रास्ते में उन कर्मचारियों ने उन साधुवेष वाले ठगों से जयदेव के सम्बन्ध में बात की और यह जानना चाहा कि जयदेव ने उनके प्रति इतना आदर क्यों दिखाया। सन्त तो दूसरे के उपकार में रातदिन दत्तचित्त रहते हैं पर दुष्ट अपनी दुष्टता का ही परिचय देते हैं। ठगों ने कहा कि जयदेव कुछ दिन पहले एक राजा के मन्त्री थे। राजा ने जयदेव के एक बड़े अपराध से चिढ़ कर प्राण-दण्ड दिया पर हम लोगों ने केवल हाथ-पैर काट कर कुएँ में डाल दिया, इस तरह उनके प्राण बच गये, जयदेव हमारे आभारी हैं इस-लिये उन्होंने विदा के समय हम दोनों को पुष्कल धनराशि दी। ठगों ने इतना कहा ही था कि पृथ्वी फट गयी और वे उसमें समा गये। कर्मचारियों ने महाराजा लक्ष्मणसेन को जब इस घटना का विवरण दिया तो जयदेव ने सही-सही बात बता दी। उन्होंने निष्कपट होकर कहा कि मैं कितना अपराधी हूँ कि मेरे कारण उन विचारों के प्राण चले गये, उन्होंने पश्चाताप किया कि अपने समृद्ध शिष्य का थोड़ा-सा धन स्वीकार करने का इतना बड़ा दुष्परिणाम हुआ। राजा लक्ष्मणसेन जयदेव के दयापूर्ण चरित्र से अमित प्रभावित हुए, जयदेव ने उनसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कहा कि इस मायामोहपूर्ण संसार में केवल कृष्ण-प्रेम ही सारतत्व है, वे निस्सन्देह परम अभागे हैं जो अखिल सौन्दर्यसारसर्वस्व वृन्दावनचन्द्र श्रीकृष्ण से प्रेम नहीं करते हैं।.... जयदेव के हाथ-पैर ठीक हो गये, भगवत्सेवा ही उनके जीवन की अक्षय निधि हो गयी।

जयदेव ने राजा लक्ष्मण सेन के विशेष आग्रह पर अपनी पत्नी पद्मावती को राजधानी में ही बुला लिया। वे उच्च कोटि के गृहस्थ सन्त थे। उनकी पत्नी साध्वी, सती और सुशीला थी। राजप्रासाद से राजपरिवार की स्त्रियाँ और राजरानियाँ पद्मावती से सत्संग करने आया करती थीं। एक बार सत्संग में सतीत्व की चर्चा छिड़ने पर पद्मावती ने कहा कि सती वह नहीं है जो पति का परलोकगमन सुनकर चिता बना कर सती हो जाती है, सती तो वह है जो पति के स्वर्गवास का समाचार सुनते ही प्राण-त्याग देती है।... राजरानी ने पद्मावती को जयदेव की मृत्यु का झूठा समाचार सुनाया, सती पद्मावती ने देहत्याग दिया, जयदेव ने राजपरिवार को आश्वासन दिया और भगवान का कीर्तन करने लगे तथा अपनी रचना 'राधाविनोद' का पाठ किया। पद्मावती के प्राण लौट आये, जयदेवदम्पति की भगवन्निष्ठा विलक्षण थी। दोनों-के-दोनों राधामाधव के प्रेमामृतसागर में डूबे रहते थे।... कुछ दिनों तक श्रद्धालु लक्ष्मणसेन के आतिथ्य में रह कर वे राधामाधव के विग्रह को लेकर केन्दुविल्व ग्राम में चले आये और अनन्य भाव से सपत्नीक वे भजनानन्द के महासागर में निमग्न हो उठे, उनका जीवन वैराग्यपूर्ण, परम सात्विक और अनन्य प्रेममय हो उठा। दूर-दूर तक उनका यश फैल गया, केन्दुविल्व में असंख्य सन्तों का समागम होने लगा। केन्दुबिल्व-निवास-काल में उनके जीवन में बड़े-बड़े चमत्कारों का दर्शन हुआ। एक दिन वे छप्पर छा रहे थे, श्रम करते-करते शरीर शिथिल हो गया, थकावट का अनुभव कर रहे थे। राधामाधव ने फूस और खर उठा-उठा कर देना आरम्भ किया। जयदेव तो भगवद्भक्ति में मग्न थे, वे बाह्य ज्ञान से शून्य होकर छप्पर छाने में लगे हुए थे, उन्होंने समझा कि इस काम में उनकी पत्नी ने सहायता की है। काम समाप्त होने पर जब वे राधामाधव के श्री-विग्रह की सेवा करने गये तो सारा शरीर रोमाञ्चित हो उठा, वे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रभु की ओर एकटक निहारने लगे, प्रभु ने उनके लिये श्रम किया था, हाथ में कालिख लगी थी; जयदेव के नयनों से अश्रु की धारा प्रवाहित हो उठी, भगवान को उनके लिये कष्ट करना पड़ा, उनका भक्तहृदय मार्मिक वेदना से घायल हो गया, वे दयामय कृष्ण के नाम का कीर्तन करने लगे।

जयदेव भगवती गंगा के भी बड़े भक्त थे। गंगा उनके गाँव से दूर थीं। वे नित्यप्रति पैदल चल कर स्नान करने जाया करते थे एक दिन वे गंगा-स्नान के लिये न जा सके, उनका मन पुण्यसलिला भगवती भागीरथी के दर्शन के लिये आकुल हो उठा, वे सोचने लगे कि मैं कितना अभागा हूँ कि गंगा माता की शीतल गोद में बैठकर भगवद्भक्ति का अमृत न पी सका। वे रह-रह कर पछिताने लगे। गंगा तो साक्षात् करुणामय भगवान की चरणामृत-प्रतीक हैं, भक्त की भावना से वे प्रसन्न हो गयीं और जयदेव के ग्राम केन्दुबिल्व के सन्निकट वहने लगीं।

भक्ति-जगत के लिये गीतगोविन्द उनकी बहुत बड़ी देन है। वह नितान्त अपार्थिव तथा दिव्य पदार्थ है। वे वेद, पुराण, दर्शन तथा अन्य शास्त्रों के पूर्ण मर्मज्ञ थे, उन्होंने अपनी विद्वत्ता को भगवान की भक्ति से समलंकृत किया।

जयदेव ने राधाकृष्ण की शृंगारजा भक्ति का प्रचार किया। वे नन्दनन्दन और उनकी प्राणप्रियतमा के प्रति माधुर्य-रसासक्त थे। उन्होने अपने उपास्य के प्रेम और विरह की लीला का जो चित्रण किया है उसके आधार श्रीमद्भागवत, पद्मपुराण और ब्रह्मवैवर्त पुराण तथा हरिवंश और गर्गसंहिता विशेष रूप से हैं। जयदेव के राधाकृष्ण सर्वदा और सर्वथा अपार्थिव ही हैं, वे शाश्वत चैतन्य-सौन्दर्य की सत्य-अभिव्यक्ति हैं। जयदेव ने राधाकृष्ण की प्रकट और अप्रकट दोनों लीलाओं से अपनी वाणी की दिव्यता समृद्ध की है। निस्सन्देह वे परम रसज्ञ थे, रसिक महात्मा अथवा सन्त थे। जयदेव के गीतगोविन्द में उद्दीपनगत प्रकृति नितान्त दिव्य और चिन्मय है। राधाकृष्ण के आलम्बन के पूर्ण स्पर्श की अधिकारिणी जयदेव के काव्य की उद्दीपनगत दिव्य प्रकृति है। जयदेव ने गीतगोविन्द में भागवत शृंगार का वर्णन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किया है। गीतगोविन्द की रचना के सम्बन्ध में उल्लेख मिलता है कि साक्षात् कृष्ण ने इसकी पूर्णता में सहायता दी थी। एक बार जयदेव गीतगोविन्द की एक पदपूर्ति में व्यस्त थे, अन्तिम चरण पूरा होने के पहले ही स्नान का समय हो गया। पद्मावती के कहने पर वे गंगा-स्नान के लिये चल पड़े। कुछ देर के बाद स्वयं भगवान जयदेव के वेष में आ पहुँचे और उन्होंने पद में 'देहि मे पदपल्लवमुदारम्' लिख कर अन्तिम चरण पूरा कर दिया तथा पद्मावती के हाथ से पानी माँगा कर स्नान किया, भोजन कर पलंग पर लेट गये। इधर पद्मावती ने भोजन करना आरम्भ किया ही था, कि गंगा-स्नान कर जयदेव आ गये, उन्होंने आश्चर्यपूर्वक पद्मावती को उलाहना दी। पद्मावती के मुख से सारी घटना सुनकर वे कृष्ण-प्रेम में विह्वल हो उठे। उन्होंने पद्मावती से गीतगोविन्द मंगा कर भगवान की चरण-पूर्ति देखी, आनन्दपूर्वक कहा कि यही भाव इन्हीं शब्दों में मेरे मन में भी था। वे गला फाड़-फाड़ कर भगवान कृष्ण को पुकारने लगे, उनके नयनों की विकलता का विवरण-दान लेखनी के वश की बात नहीं है। गीतगोविन्द के चिन्मय और भगवदीय स्वरूप का यह विलक्षण इतिहास है। ऐसा कहा जाता है कि जगन्नाथपुरी में एक सात्विक नाम का राजा था। उसने गीत-गोविन्द के ढंग पर ही एक काव्य की रचना की और उसके पाठ के लिये आदेश प्रसारित किये, ब्राह्मणों ने सात्विक की रचना का पाठ करना अस्वीकार कर दिया। यह निश्चय हुआ कि दोनों ग्रन्थ भगवान जगन्नाथ के सामने रखे जायँ, वे जिसे स्वीकार कर लें वही सर्वमान्य है। श्री जगन्नाथ ने जयदेव के गीतगोविन्द को स्वीकार किया। सात्विक की विशेष प्रार्थना पर जयदेव ने उसकी रचना के केवल पचीस पद गीतगोविन्द में सम्मिलित कर लिये। गीतगोविन्द के माहात्म्य के सम्बन्ध में एक विचित्र उल्लेख है कि एक बार एक मालिनी उपवन में आनन्दमग्न होकर गीतगोविन्द अमित मधुर कण्ठ से गा रही थी, पुरुषोत्तम क्षेत्र के अधिपति भगवान जगन्नाथ स्वयं सुनने गये, लौट कर आने पर उनके शृंगार-वस्त्र में कांटे चुभे देखे गये, जगन्नाथ की प्रसन्नता के लिये मन्दिर में नित्य-प्रति तत्कालीन राजा के आदेश से गीतगोविन्द के गान की व्यवस्था कर दी गयी। गीत-गोविन्द के प्रत्येक पद में श्रीभगवान के नित्यनवीन-निरन्तर बर्द्धमान

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सौन्दर्य का दर्शन होता है, जयदेव की साधना कृष्णभक्ति के रूप में गीतगोविन्द में साकार हो उठी। गीतगोविन्द वासुदेव-रति-केलि-कथा का दिव्य वाङ्मय है, अक्षर-साहित्य है। जयदेव ने कलियुग के प्रकोप से बचने के लिये गीतगोविन्द के रूप में श्रीकृष्ण के परम पवित्र चरित्र का आश्रय ग्रहण किया। उन्होंने कृष्ण के वियोग-वर्णन में अत्यधिक प्रेमानन्द की अनुभूति की, श्रीकृष्ण का साक्षात्कार ही उनके जीवन का परम मंगलमय ध्येय था। जयदेव ने गीतगोविन्द की समाप्ति पर गर्वोक्ति की है कि जब तक यह सरस रचना जगत में रहेगी; मधु की मधुरता शक्कर मिश्री, द्राक्ष, क्षीर, रसाल और रमणी के अधरामृत आदि नीरस ही रहेंगे। उनका गीतगोविन्द श्रीकृष्ण का गीतरूप है।

जयदेव मस्त होकर गीतगोविन्द को गाते फिरते थे। ऐसा कहा जाता है कि अन्त समय उपस्थित होने पर वे राधाकृष्ण के प्रेम में उन्मत्त होकर वृन्दावन चले आये, उनके साथ उनकी पत्नी तथा निरञ्जन ब्राह्मण और पराशर थे। वृन्दावन में उन्होंने जीवन के शेष दिन बिताये, जयदेवदम्पति ने वृन्दावन में ही श्रीनित्यधाम की प्राप्ति की। ऐसा भी मत है कि वे जीवन के अन्तिम दिनों में केन्दुबिल्व ग्राम में ही थे, उन्होंने केन्दुबिल्व में ही शरीर का त्याग किया। जयदेव परम विरागी, अलौकिक महात्मा और रसिक सन्त थे। उन्होंने राधाकृष्ण के परम निगूढ़ लीला-गान से साहित्य में भगवद्भक्ति का शृंगाररस-साम्राज्य स्थापित किया। वे मध्यकालीन भारत में श्रीकृष्णभक्ति के आदिगायक थे।

रचना

'गीतगोविन्द' और 'राधाविनोद' जयदेव की प्रसिद्ध रचनायें हैं।

वाणी

श्रितकमलाकुचमण्डल धृतकुण्डल ए। कलितललितवनमाल जय जय देव हरे॥
दिनमणिमण्डलमण्डन भवखण्डन ए। मुनिजनमानसहंस जय जय देव हरे॥
कालियविषधरगंजन जनरञ्जन ए। यदुकुलनलिनदिनेश जय जय देव हरे॥
मधुमुरनरकविनाशन गरुडासन ए। सुरकुलकेलिनिदान जय जय देव हरे॥
अमलकमलदललोचन भवमोचन ए। त्रिभुवनभवननिधानजय जय देव हरे॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जनकसुताकृतभूषण जितदूषण ए। समरशमित दसकंठ जय जय देव हरे॥
अभिनवजलधरसुन्दर धृतमन्दर ए। श्रीमुखचन्द्रचकोर जय जय देव हरे॥
तव चरणे प्रणता वयमिति भावय ए। कुरुकुशलं प्रणतेषु जय जय देव हरे॥
श्रीजयदेवकवेरुदितमिदं कुरुते मुदम्। मंगलमंजुलगीतं जयजय देव हरे॥

लक्ष्मी जी के कुचकुम्भों का आश्रय करने वाले कुण्डलधारी और अति मनोहर वनमालाधारी, हे देव, हरे, आपकी जय हो। सूर्यमण्डल को सुशोभित करने वाले, भवभय के नाशक और मुनियों के मनरूप सरोवर के हंस, हे देव, आपकी जय हो। कालियनाग का दमन करने वाले, भक्तों को आनन्दित करने वाले और यदुकुल कमल दिवाकर, आपकी जय हो। मधुमुर और नरकासुर के संहारक, गरुडवाहन, देवक्रीड़ा के आश्रय, हे देव, आपकी जय हो। निर्मल कमलदल लोचन वाले, भवबन्धन को छुड़ाने वाले और त्रिभुवन के आश्रयभूत, हे देव, आपकी जय हो। सीता के साथ शोभित, दूषण दैत्य को जीतने वाले और युद्ध में रावण को मारने वाले, हे देव! आपकी जय हो। नवीन मेघ के समान श्यामसुंदर, मन्दराचल धारण करने वाले, लक्ष्मी के मुखचन्द्रचकोर, हे देव, आपकी जय हो। आपके चरणों की हम शरण लेते हैं, आप दयादृष्टि कीजिये, कल्याण कीजिये। हे देव, हे हरे, आपकी जय हो, जय हो। इस प्रकार जयदेव कविरचित यह मंगलगीत आनन्द प्रदान करे। हे देव, आपकी जय हो, जय हो।

—गीतगोविन्द

सान्द्रानन्दपुरन्दरादिदिविषद्वृन्दैरमन्दादरा
दानम्रैर्मुकुटेन्द्रनीलमणिभिः सन्दर्शितेन्दीवरम्।
स्वच्छन्दं मकरन्दसुंदरगलन्मन्दाकिनीमेदुरं
श्री गोविन्दपदारविन्दमशुभस्यन्दाय वन्दामहे।

अत्यन्त आदर से साष्टांग प्रणाम करते हुए, घनआनन्द में निमग्न इन्द्रादि देवगणों के द्वारा उनके मुकुट के नीलम की प्रभा से जो नील-कमल के समान दीखते हैं, तथा मकरन्द समान गंगा से भींगें रहते हैं उन गोविन्द के चरणारविन्दों को अपने अशुभ के नाश के लिये हम स्वेच्छा से प्रणाम करते हैं।

—गीतगोविन्द

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राधामुग्धमुखारविन्दमधुपस्त्रैलोक्यमौलिस्थली नेपथ्योचिननीलरत्न
मवनीभारावतारक्षमः।
स्वच्छंदंव्रजसुन्दरीजनमनस्तोषप्रदोषश्चिरंकंसध्वंसनधूमकेतुरवतु त्वां
देवकीनन्दनः॥

जो तीनों लोकों के मस्तक की आभूषणोचित नीलमणि, भूमिभार को हटाने में समर्थ, स्वच्छन्द व्रजबालाओं के मन को संतोष देनेवाले प्रदोषरूप और कंस का नाश करने में अग्नि रूप हैं वे देवकीनन्दन रक्षा करें। —गीतगोविन्द

वृष्टिव्याकुलगोकुलावनरसादुद्धृत्य गोवर्धनं-बिभ्रद-
वल्लववल्लभाभिरधिकानन्दाच्चिरंचुम्बितः।
दर्पेणैव तदर्पिताधरतटीसिन्दूर मुद्रांकितो-बाहुर्गोप-
तनोस्तनोतु भवतां श्रेयांसि कंसद्विषः॥

देवेन्द्र की कोपरूपी मूसलाधार वृष्टि से व्याकुल गोकुलवासियों की रक्षा के आवेश में गोवर्धन पर्वत उठाकर कंसनिषूदन नन्दनन्दन का बाहुदण्ड उसे धारण कर स्थित था, आनंन्दोन्माद से गोपाङ्गनायें उसे चिरकाल तक चूमती रहीं, उनके अधररागरूपी सिन्दूर से लांछित होकर वह ऐसा दीख पड़ा मानों गोवर्धन धारण के दर्प से उसमें स्वाभाविक लालिमा आ गयी हो, ऐसा बाहुदण्ड कल्याण करे। —गीतगोविन्द

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वामी विद्यारण्य

'ब्रह्मवित् परमाप्नोति, शोकं तरति चात्मवित्।
रसो ब्रह्मरसं लब्ध्वानन्दी भवति नान्यथा॥'

ब्रह्मज्ञानी परको पा लेता है, आत्मज्ञानी शोक को तर जाता है। रस ब्रह्म ही है। रस को पाकर ही आनन्द का अनुभव करता है; दूसरी तरह आनन्द की उपलब्धि नहीं होती है।

—पंचदशी

छः सौ साल पहले की बात है। विक्रम की चौदहवीं शती में दक्षिण भारत ने महामुनि स्वामी विद्यारण्य और वेदभाष्यकार सायण आचार्य के रूप में अपने राष्ट्र-संरक्षक का दर्शन किया, दोनों सहोदर भाई थे, स्वधर्म, स्वदेश और स्वराज्य के संस्थापक ही नहीं, अध्यात्म-जगत के महान आचार्य थे। दोनों ने यावनीय संस्कृति के प्रवाह को दक्षिण की ओर बढ़ने से रोकने में असाधारण साहस दिखाया। माधवाचार्य—विद्यारण्य ने हरिहर और बुक्का के द्वारा तुंगभद्रा के विशाल तटदेश में विजयनगर राज्य की स्थापना का कार्य सम्पादन कर सनातम धर्म—वैदिक संस्कृति की मर्यादा अक्षुण्ण रखी। हरिहर ने अपने एक लेख में माधवाचार्य का 'परमज्योति' के रूप में स्मरण किया है। सायण ने माधवाचार्य विद्यारण्य का एक स्थल पर स्तवन किया है।

'अनन्तभोगसंसक्तो द्विजपुङ्गवसेवितः।
सचिवः सर्वलोकानां भ्राता जयति माधवः॥'

विद्यारण्य स्वामी ने विजयनगर राज्य के मन्त्रित्व-पद का त्याग करने के बाद पूर्ण वैराग्य के राज्य में प्रवेश किया। वे शांकर संन्यासी-सम्प्रदाय के ग्यारहवें गुरु थे। वे महान शास्त्रज्ञ परम आत्मज्ञानी और विलक्षण संन्यासी थे।

पुण्यसलिला तुंगभद्रा नदी के तट पर अवस्थित हाम्पी नगर के निकट एक स्थान में एक गरीब ब्राह्मण—परिवार रहता था। बौधायन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सूत्र, यजुर्वेदीय शाखा तथा भारद्वाज कुल वाले उस ब्राह्मण–परिवार में मायण नाम के एक व्यक्ति थे। उनकी पत्नी का नाम श्रीमती था। घर में धन का अभाव था पर ब्राह्मणदम्पति बड़ी प्रसन्नता और संतोष से कालयापन करता था। सम्वत् १३२४ वि. में ब्राह्मण दम्पति ने एक पुत्ररत्न को जन्म दिया जिनकी माधव नाम से प्रसिद्धि हुई। माधव के दो भाई सायण और भोगनाथ थे। तीनों ने बड़े परिश्रम से विद्यार्जन किया, थोड़े ही समय में शास्त्रों में उनका अच्छा प्रवेश हो गया। सायण वेदभाष्यकार के रूप में प्रसिद्ध हुए, भोगनाथ ने संन्यास ले लिया। माधव अपनी गरीबी को रात-दिन कोसते रहते थे। उन्होंने स्वदेश और स्वधर्म को विदेशियों के आक्रमण से बचाने के लिये धन-प्राप्ति की ओर विशेष ध्यान दिया, उन्होंने इसके लिये दैवी शक्ति का आश्रय लिया। उनकी रुचि तो अध्यात्म-परक थी ही, इसलिये दैवी शक्ति की प्रसन्नता को ही अपनी ध्येयपूर्ति का प्रतीक स्वीकार किया। उनका आध्यात्मिक बल उत्तरोत्तर बढ़ता गया। वेद-वेदाङ्गों के अध्ययन के बाद उन्होंने ग्रन्थ-प्रणयन में मन लगाया, अनेक ग्रन्थों की रचना की। धन का अभाव सदा खटकता रहता था।

दीक्षा लेने के बाद माधवाचार्य नित्य तुंगभद्रा में स्नान कर तथा आह्निक समाप्त कर हाम्पी के प्रसिद्ध देवी मन्दिर में भुवनेश्वरी का दर्शन करने जाया करते थे। धीरे-धीरे उनकी भक्ति भुवनेश्वरी देवी के चरणों में बढ़ने लगी। वे नितान्त कातर होकर माता के चरणों में निवेदन किया करते थे कि हे जगदीश्वरी, मुझे सम्पत्ति चाहिये, मैं ऐश्वर्य प्राप्त कर लोक-कल्याण में लगना चाहता हूँ। एक दिन देवी ने मन्दिर में उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया। वे मा के चरणों से लिपट गये। देवी ने कहा कि मैं तुम्हारी श्रद्धा और भक्ति से बहुत प्रसन्न हूँ पर इस जन्म में तुम्हें धन की प्राप्ति न होगी। यह तो दूसरे जन्म में ही सम्भव है। विद्यारण्य को अपने दर्शन से ही भुवनेश्वरी ने धन्य कर दिया। धन-याचना का प्रस्ताव समाप्त हो गया। उन्होंने अपने आपको बहुत धिक्कारा कि तुच्छ पदार्थ के लिये मा को व्यर्थ कष्ट दिया। उनके मन में जगत के प्रति वैराग्य भर उठा। उन्होंने देवी को नमस्कार किया और संन्यास–ग्रहण के लिये शृंगेरी मठ की ओर चल पड़े।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सम्वत् १३८८ वि. में उन्होंने शृंगेरी मठ के तत्कालीन अध्यक्ष विद्या-शंकर तीर्थ से संन्यास-दीक्षा ली, शिष्यरूप में स्वीकृति होने पर उन्होंने बड़ी प्रसन्नता का अनुभव किया। विद्यारण्य कठोर तप में प्रवृत होकर आत्मचिंतन करने लगे। वे रात-दिन ब्रह्मानन्द के सागर में मग्न रहने लगे। गुरु में उनकी बड़ी निष्ठा थी। उन्होंने पंचदशी के तत्व-विवेक प्रकरण में अपने गुरु का स्मरण किया है :

'नमः श्रीशंकरानन्दगुरुपादाम्बुजन्मने।
सविलास महामोहग्राहग्रासैक कर्मणे॥'

विलास सहित जो महामोह रूपी, महादुखदायी ग्राह है उसको ग्रस लेना ही जिस का काम है, गुरु शंकरानन्द के उस चरण-कमल को नमस्कार है। गुरु चरणकी श्रद्धा-ज्योति में महात्मा विद्यारण्य ने आत्म-दर्शन किया, परम ज्ञान का बोध प्राप्त किया।

संन्यास-धर्म में दीक्षित होने के बाद माधवाचार्य विद्यारण्य तुंगभद्रा के तट पर एक गुफा में निवास कर तप करने लगे। वे नित्य भुवने-श्वरी देवी का दर्शन करने के लिये जाया करते थे। इन दिनों दक्षिण-भारत पर मुसलमानों के नये-नये आक्रमण हो रहे थे। दिल्लीश्वर मुहम्मद तुगलक ने सम्वत् १३९१ वि. में अनगुण्डी पर आक्रमण किया, अनगुण्डी-नरेश जम्बुकेश्वर मारे गये। सचिव देवराय अनगुण्डी के शासक नियुक्त हुए। यावनीय आक्रमग से पीड़ित देश की दुर्दशा से विद्यारण्य बहुत खिन्न थे। एक दिन तुंगभद्रातट पर आखेट खेलते समय देवराय को विद्यारण्य का दर्शन हुआ। संन्यासी के आदेश से देवराय ने विद्यानगर राज्य की स्थापना की।....इधर भुवनेश्वरी के मन्दिर में एक विचित्र घटना ने विद्यारण्य को नया जीवन प्रदान किया। देवी ने साक्षात् दर्शन देकर विद्यारण्य से कहा कि संन्यासग्रहण के बाद तुम्हारा दूसरा जन्म हो गया। मैंने तुम्हें धनप्राप्ति का आशीर्वाद दिया। तुम्हें अपार धन की प्राप्ति होगी। देवी की कृपा से स्वर्ण-वृष्टि हुई। महात्मा विद्यारण्य के प्रसिद्ध शिष्य हरिहर और बुक्कराय थे। दोनों वारंगल नरेश प्रतापरुद्र देव के कोषाध्यक्ष थे। महात्मा विद्यारण्य के ही पास वे शृंगेरी मठ में निवास कर ज्ञानार्जन कर रहे थे। विद्यारण्य ने उनकी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सहायता तथा महती स्वर्णराशि से विद्यानगर–विजयनगर राज्य को समृद्ध कर स्वधर्म और स्वदेश का संरक्षण किया। हरिहर और बुक्क दोनों भाई विद्यारण्य के परामर्श से राजकार्य-सम्पादन करते थे। इस प्रकार विषय-सुख से सर्वथा निर्लिप्त रहकर विद्यारण्य ने राजनीति का अध्यात्मीकरण किया, आत्मज्ञान का प्रकाश फैलाया।

शृंगेरी मठ के अध्यक्ष भारती कृष्णतीर्थ सम्वत् १४३७ वि. में ब्रह्मलीन हो गये। उनके उत्तराधिकारी रूप में स्वामी विद्यारण्य शंकराचार्य-पद पर प्रतिष्ठित हुए। कभी-कभी परामर्श देने के लिये वे विजयनगर आया करते थे।

स्वामी विद्यारण्य उत्तर मीमांसा-दर्शन के बहुत बड़े पण्डित थे। आचार्य आद्य शंकर के बाद अद्वैत ब्रह्मचिंतन के विशेषज्ञों में उनका नाम अमित गौरवान्वित स्वीकार किया जाता है। उन्होंने अपनी पंचदशी पुस्तक में श्रीमद्भगवद्गीता आदि से पुष्ट प्रमाण देकर ब्रह्म, जीव और जगत का समीचीन विश्लेषण कर ब्रह्म की सत्यता और जगत के मिथ्यात्व का प्रतिपादन किया है। उन्होंने पंचदशी के चित्रदीप प्रकरण में स्वीकार किया है:

'अचिन्त्याः खुल ये भावाः न तांस्तर्केण योजयेत्।
अचिन्त्य रचनारूपं मनसापि जगत् खलु॥'

जो भाव अचिन्त्य हैं, उन्हें तर्क की कसौटी पर कभी नहीं कसना चाहिये। इस जगत की रचना तो ऐसी है कि मन से भी उसका चिंतन नहीं हो सकता है। आशय यह है कि वेदान्त प्रतिपाद्य, ब्रह्म और जीव तो न जाने, कितने अचिंत्य हैं। उनकी उक्ति है; पंचदशी साक्षी है:

'इयमात्मा परानन्दः परप्रेमास्पदं यतः।
मा न भूवं हि भूयासमिति प्रेमात्मनीक्ष्यते॥'

यह ज्ञान ही आत्मा है और यह परमानन्द स्वरूप भी है, यह परम प्रेम का स्थान है। मैं न रहूँ ऐसा कभी न हो, मैं सदा बना रहूँ,–ऐसा प्रेम आत्मा से सभी करते हैं। उन्होंने भगवच्चिंतन के माध्यम से स्वीकार किया कि सब भूतों में एक ही भूतात्मा व्यवस्थित है। वह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ज्ञानी को एक रूप में और अज्ञानी को जल के चन्द्रमा की तरह अनेक रूप में दीख पड़ता है। विद्यारण्य स्वामी की साधना का उत्कृष्ट स्वरूप वैराग्य था। पंचदशी में उनकी स्वीकृति है :

'ब्रह्मलोक तृणीकारो वैराग्यस्यावधिर्मत :।
देहात्मवत् परात्मत्वदाढ्यें बोधः समाप्यते ।।'

ब्रह्मलोक की प्राप्ति तृण समझकर छोड़ देना वैराग्य की अन्तिम दशा है। अज्ञानी लोग जिस प्रकार देह को आत्मा मान लेते हैं उसी प्रकार यदि उतनी दृढ़ता से ही परतत्व को आत्मा समझ लिया जाय तो बोध समाप्त हो जाता है। यह बोध की अन्तिम अवस्था है। उन्होंने बताया कि मन से ही बन्धन और मन से ही मनुष्यों को मोक्ष मिलता है। विषयासक्त मन बन्धन देता है और विषयातीत मन मुक्ति का दान करता है।

मध्यकालीन दार्शनिक सन्तों में विद्यारण्य स्वामी को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है, उनका आत्मदर्शन वेदान्तप्रतिपाद्य निर्मल ब्रह्मज्ञान–बोध का प्रतीक कहा जा सकता है। उन्होंने वेद, वेदाङ्ग, उपनिषद, स्मृति आदि शास्त्र का मंथन कर आत्मज्ञानामृत का रसास्वादन किया था।

शृंगेरी मठ के शंकराचार्य-पद को उन्होंने अपने जीवन के अन्तिम दिनों में सुशोभित किया, अन्तिम क्षण तक आचार्यपाद के सिद्धान्तों का अनुसरण कर वे अत्यन्त परिपक्वास्था में सम्भवतः १४४३ वि. सम्वत् में ब्रह्मलीन हुए। स्वामी विद्यारण्य उच्च कोटि के अद्वैतवादी तथा परम ज्ञानी महात्मा थे।

रचना

ऋग्वेद भाष्य, यजुर्वेद भाष्य, सामवेद भाष्य, अथर्ववेद भाष्य, दशोपनिषद्दीपिका, जैमिनीय न्यायमाला विस्तर, पंचदशी, अनुभूतिप्रकाश, ब्रह्मगीता, पाराशरस्मृति, शंकरदिग्विजय आदि स्वामी विद्यारण्य की प्रमुख रचनाये हैं।

वाणी

सङ्गी हि बध्यते लोके निःसङ्गः सुखमश्नुते।
तेन सङ्गः परित्याज्यः सर्वदा सुखमिच्छता ।।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लोक में सङ्ग करने वाला ही बन्धन में रहता है। निःसङ्गी आनन्द करता है। इसलिये जो नित्य सुख में रमण करना चाहता है उसे संग का परित्याग कर देना चाहिये। **पंचदशी चित्रदीप प्रकरण २७४.**

विचारयन्नामरणं नैवात्मानं लभेत चेत्।
जन्मान्तरे लभेतैव प्रतिबन्धक्षये सति॥

मरण पर्यन्त विचार करते रहने पर यदि किसी को आत्मा का साक्षात्कार नहीं होता है तो प्रतिबन्धों का क्षय होने पर दूसरे जन्म में साक्षात्कार हो ही जायेगा। **पंचदशी ध्यानदीप प्रकरण ३३.**

समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो
निवेशितस्यात्मनि यत् सुखं भवेत्।
न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा
स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते।

जिस चित्त को आत्मा में लगा दिया जाता है, जिस चित्त के रजतम रूपी मल समाधिरूपी जल से धो दिये जाते हैं, उस चित्त को समाधि में जो आनन्द आता है उसका वर्णन वाणी से तो किया ही नहीं जा सकता है—वह अलौकिक सुख है, वह तो मौन की अलौकिक भाषा में ही समझा और कहा जा सकता है, वह स्वरूपभूत सुख तो केवल अन्तःकरण से ही गृहीत होता है।

पंचदशी ब्रह्मानन्द योगानन्द प्रकरण ११८.

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।
बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयम् स्मृतम्॥

मन से ही बन्धन और मन से ही मनुष्यों को मोक्ष मिलता है। विषयासक्त मन बन्धन देता है और निर्विषय मन मुक्ति का दान करता है।

पंचदशी योगानन्द प्रकरण ११७.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महात्मा रामानन्द स्वामी

बहुत काल वपु धारि के प्रनत जनन को पार दियो।
श्रीरामानन्द रघुनाथ ज्यों दुतिय सेतु जगतरन कियो॥'

—भक्तमाल

मध्यकालीन भारत के आध्यात्मिक इतिहास की महात्मा रामानन्द बहुत बड़ी आवश्यकता थे; वे अपने समय के महान सन्त और अद्भुत शिक्षक तथा धार्मिक जन-आन्दोलन के अद्वितीय नेता थे। वे क्रान्तदर्शी महात्मा थे, उन्होंने तत्कालीन भारतीय समाज में आध्यात्मिक क्रान्ति उपस्थित कर जनता को घट-घट-व्यापी राम की भक्ति का उपदेश दिया। वे निर्गुण और सगुण भक्ति के समन्वय के सूत्रधार थे, उन्होंने ज्ञान और भक्ति का सरस समन्वय कर भगवान को जनसाधारण का उपास्य बना दिया, विदेशी सत्ता से उत्पीड़ित भारत ने उनकी भक्तिमयी शिक्षा और दीक्षापद्धति में आत्मशान्ति की ज्योति देखी।

उनके प्राकट्य ने सन्तयुग का अवतरण सम्भव किया, रैदास, कबीर, पीपा, अनन्तानन्द, सेन से लेकर सन्त तुलसीदास आदि की भक्ति-परम्परा उनके सिद्धान्तों से प्रभावित हुई। रामानंद ने यवन शासक गयासुद्दीन तुगलक आदि की धार्मिक कट्टरता से भारतवर्ष की सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक और भक्तिमूलक आध्यात्मिक मर्यादा की रक्षा की। उनके समकालीन भारत ने तैमूर के आक्रमण का भी भयानक दृश्य देखा था पर उनके सत्तमत के संरक्षण में वह नितान्त अभय रहा।

रामानन्द का जन्म प्रयाग में सम्वत् १३५६ वि. में हुआ था। उनके पिता पुण्यसदन कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे, वे बड़े आचारनिष्ठ और धार्मिक पुरुष थे। रामानन्द की माता का नाम सुशीला था। उन्होंने बचपन में बड़े-बड़े चमत्कार दिखाये; चमत्कार सन्तों के जीवन के दिव्य अलंकार होते हैं।.....कुलपुरोहित वाराणसी अवस्थी ने शिशु रामानन्द को

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तीन साल तक घर से बाहर निकालने का निषेध किया था, साथ-ही-साथ यह भी आदेश दिया था कि न तो उन्हें दर्पण दिखाया जाय और न दूध के सिवा कुछ अन्य पदार्थ खाने के लिये दिया जाय। माता-पिता ने पुरोहित की आज्ञा का बड़ी सावधानी से पालन किया।

रामानन्द चार साल से अधिक के हो गये थे। एक दिन उनके पिता जो वेद, पुराण तथा अन्य शास्त्रों में परम मर्मज्ञ थे रामायण पाठ का अनुष्ठान कर रहे थे। रामानन्द उन्हीं के पास बैठे थे, उन्होंने पाठ कंठस्थ कर लिया और उसको सस्वर गाने लगे। लोग इस घटना से आश्चर्यचकित हो गये, उन्हें विश्वास हो गया कि रामानन्द के रूप में किसी असाधारण महात्मा ने पुण्यसदन और सुशीला के सौभाग्य को धन्य किया है। आठ साल के होते-होते उन्होंने अनेक शास्त्र कंठस्थ कर लिये।

उपनयन-संस्कार के बाद रामानंद विद्या पढ़ने के लिये काशी गये, घर और परिवार के प्रति इतने अनासक्त हो गये कि आचार्य तथा अन्य सगे-सम्बन्धियों के कहने पर भी वे काशी से न लौट सके, माता-पिता उनकी देख-रेख के लिये स्वयं काशी गये। वे अपने माता-पिता के साथ ओंकारेश्वर के यहाँ काशी में विद्याध्ययन करने लगे। बारह वर्ष की अवस्था में वे समस्त शास्त्रों में पारंगत हो गये।

विवाह का प्रस्ताव उपस्थित होने पर उन्होंने उसे अस्वीकार किया, वे जन्मजात तपस्वी थे, अखण्ड ब्रह्मचर्य का संवरण कर वे ब्रह्मानन्द-शुद्ध सच्चिदानन्द की खोज में लग गये। वे एक त्रिदण्डी संन्यासी के सम्पर्क में आये, संन्यासी वेदान्ती थे, शांकर मायावादी दर्शन से प्रभावित थे, रामानन्द ने उनके साथ में रह कर आत्मज्ञान की प्यास बढ़ायी।

काशी में राघवानन्द नाम के एक परम वैष्णव संन्यासी रहते थे, वे रामानुज आचार्य की गद्दी के चौथे उत्तराधिकारी थे, काशी में ही नहीं, दूर-दूर के तीर्थ-क्षेत्रों और नगरों में उनकी भक्ति की प्रसिद्धि थी, वे रसिक महात्मा थे, राम के उपासक थे। एक दिन अचानक उनकी भेंट रामानन्द से हो गयी, उन्होंने रामानन्द पर कृपा-दृष्टि की, कहा कि तुम्हारी आयु के तीन दिन शेष रह गये हैं, तुमने अभी तक पूर्णरूप से

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हरि की शरण नहीं ली। सन्त के शब्द थे, हृदय में तीर की तरह लग गये, उनके हृदय में भागवती चेतना का स्पन्दन जाग उठा, उन्होंने त्रिदण्डी संन्यासी से राघवानंद के मिलने की बात बतायी और संन्यासी के आदेश से वे राघवानंद से गुरु-दीक्षा की भिक्षा माँगने चले आये। उन्होंने राघवानन्द के श्रीचरणों में बड़ी विनम्रता से आत्मनिवेदन किया और उन्होंने रामानंद को अपना शिष्य स्वीकार कर लिया। वे राघवानन्द से दीक्षित होकर पंचगंगा घाट पर एक झोपड़ी में तप करने लगे। लोग दूर-दूर से उनके दर्शन के लिये एकत्र होने लगे। अनेक ऊँचे-ऊँचे सन्तों और महात्माओं ने महात्मा रामानन्द के चरण में बैठ कर आत्म-ज्ञान की जिज्ञासा-निवृति से परम शान्ति की आत्मानुभूति की। उनके पास सारे धर्मों और सिद्धान्तों के लोग आकर अपनी शंकाओं का समाधान करते थे।

एक समय की बात है। काशी में उनके सत्संग में देश के कोने-कोने से श्रद्धालु और जिज्ञासु भक्त तथा प्रेमी एकत्र हुए। उन लोगों ने स्वामी रामानन्द से धर्म का संरक्षण करने की प्रार्थना की। उनको बताया गया कि इस्लामेतर धर्म के अनुयायियों पर अनेक प्रकार के अत्याचार किये जाते हैं, उनसे धार्मिक कर लिया जाता है, मन्दिर आदि बनाने पर प्रतिबन्ध लगाया जाता है, शंख बजाने का निषेध किया जाता है। रामानन्द ने लोगों को समझाया कि ईश्वर में आस्था रखने वालों पर संसार का कोई भी प्राणी अत्याचार नहीं कर सकता है, भगवान के भक्त का कभी नाश नहीं होता है, भगवान की कृपा भक्तों की रक्षा में सदा तत्पर रहती है।

उनकी तपस्या के प्रभाव से जनता ने इन अत्याचारों से मुक्ति की सांस ली। रामानन्द स्वामी से तत्कालीन दिल्लीश्वर गयासुद्दीन तुगलक बहुत प्रभावित था। उसने प्रान्तीय शासकों को आदेश दिया कि प्रजा पर और विशेषतया हिन्दुओं पर किसी भी प्रकार की धर्मान्धता का वर्ताव न किया जाय। रामानन्द ने समझाया कि हिन्दू-मुसलमान दोनों के ईश्वर एक हैं, नितान्त अभिन्न हैं। ऐसी स्थिति में बुद्धिमानी और सावधानी से भक्तिपूर्वक हरि का भजन करने वाला निस्सन्देह हरि के ही अच्युत गोत्र का हो जाता है। रामानन्दकालीन भारत में इस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तरह की सीख बहुत बड़ी आध्यात्मिक क्रान्ति की आधारशिला थी। अयोध्या के तत्कालीन शासक महाराजा गजसिंह मोहम्मद तुगलक के भय से तराई के वन में भगवद्भजन करने चले गये, अवधक्षेत्र की प्रजा विशेष पीड़ित थी, उनके भाई हरिसिंह देवजी के निवेदन पर स्वामी रामानन्द ने अयोध्या जाकर लोगों को अभयदान दिया। जनता ने अपने महान रक्षक के रूप में उनका स्वागत किया।

श्रीराम की परम विमल भक्ति के प्रचार के लिये स्वामी रामानन्द ने यात्रा आरम्भ की। वे जगन्नाथक्षेत्र गये, उसके बाद वे विजयनगर गये। विजयनगर में उस समय गोब्राह्मण प्रतिपालक, वैदिक धर्म के महान रक्षक श्री बुक्काराय राज करते थे। विजयनगर-राज्य तत्कालीन भारत का सांस्कृतिक, साहित्यिक और धार्मिक दृष्टि से महान संरक्षक था। वे नव दिनों तक विजयनगर में राजा और प्रजा को धर्माचरण और सदाचार तथा भगवद्भक्ति का उपदेश देते रहे। उन्होंने एक लोकरक्षक की तरह बुक्काराय को समझाया कि प्रजा का पालन ही राजा का सनातन धर्म है, राजा ईश्वर का अंश होता है, यदि वह भोगविलास में लग कर अपना राजधर्म भूल जाता है तो उसका राज्य यथाशीघ्र नष्ट हो जाता है। उन्होंने महाराजा बुक्काराय को रामराज्य के पुनीत आदर्श के अनुसार राज करने की सीख दी। बुक्काराय ने स्वामी रामानन्द की आवभगत में धरती-पाताल एक कर दिया, ऐसा लगता था कि विजय नगर आध्यात्मिक उन्नति का नन्दनवन है। विजयनगर से स्वामी रामानन्द रामेश्वर गये, कांची, श्रीरंगक्षेत्र, जनार्दन, द्वारका, मथुरा, वृन्दावन, मायापुरी, चित्रकूट, प्रयाग आदि तीर्थों को धन्य कर वे काशी लौट आये। इस प्रकार स्वामी रामानन्द ने समग्र भारत में रामभक्ति की विजयदुन्दुभी बजायी, लोककल्याण की साधना की।

स्वामी रामानन्द ने भव-अन्धकार में उलझे प्राणियों को ज्ञान-प्रकाश दिया, उन्होंने जीवमात्र को बिना किसी भेद-भाव के राम की उपासना और भक्ति का अधिकारी घोषित किया। उन्होंने भक्ति की प्रगति के इतिहास में एक विशेष युग का प्रवर्तन किया।

यात्रा के पश्चात कुछ विशेष दृष्टिकोण के कारण राघवानन्द के आदेश से उन्हें श्रीसम्प्रदाय छोड़ना पड़ा, श्रीसम्प्रदाय में भगवान विष्णु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और लक्ष्मी की उपासना होती है। रामानन्द ने रामावत या रामात सम्प्रदाय चलाया, उन्होंने विष्णु और लक्ष्मी के स्थान पर राम और सीता की उपासना को मान्यता दी। रामावत सम्प्रदाय रामानन्दी सम्प्रदाय भी कहलाता है। सीता, राम, लक्ष्मण और हनुमान चारों उपास्य हैं। पर इष्ट श्रीरामचन्द्र ही हैं। रामानन्द ने रामानुजीय विशिष्टाद्वैत के अनेक बन्धन शिथिल कर जनता को लोकभाषा में राम की भक्ति की पद्धति समझायी। उन्होंने आध्यात्मिक साधना में विनम्रता की सीख दी, बिना विनम्र हुए, लघु हुए जीव परमात्मा के दास्य का अधिकारी ही नहीं हो सकता है। ईश्वर के प्रति प्रगाढ़ अनुरक्ति अथवा प्रीति ही भक्ति है, हरि के भजने वाले सब समान हैं, अच्युत गोत्रीय हैं—ऐसा उनका सिद्धान्त था। उन्होंने अपने अनुयायियों को अवधूत कहा क्योंकि जातिगत, सम्प्रदायगत या उपासनागत भेद-भाव से वे ऊपर उठ कर हरि के शरणागत थे। रामायण के चरित्र-नायक राम के प्रति पूर्णरूप से समर्पण कर जीव संसार-सागर से पार हो जाता है—यह उनका अभयदान अथवा महामन्त्र था। निस्सन्देह वे श्रीराम के सिद्ध भक्त थे। रामानन्द स्वामी ने ब्राह्मण तथा ब्राह्मणेतर सभी लोगों को तारकमन्त्र की दीक्षा दी। उन्होंने जनसाधारण के लिये अध्यात्म का पट खोल दिया। ईश्वर की दृष्टि में उन्होंने जीवमात्र की समता स्वीकार की। उन्होंने कहा कि प्रेम करने की वस्तु केवल परमात्मा ही हैं। वे चराचर के पिता हैं, पालक हैं, उनके दास्य में जीव परमानन्द की अनुभूति करता है।

रामानन्द योगी थे। वैष्णवों के सर्वमान्य आचार्य थे। परमात्मतत्व के पूर्ण ज्ञाता थे। उनके असंख्य शिष्य थे। उनमें बारह शिष्य अनन्तानन्द, सुखानन्द, सुरसुरानन्द, नरहरियानन्द, योगानन्द, पीपा, रैदास, कबीर, सेन, धन्ना, पद्मावती, सुरसरि प्रधान थे। उन्होंने स्त्री और पुरुष सबको दीक्षा दी।

वे लगभग एक सौ अड़तालीस साल तक पृथ्वी पर विद्यमान थे। माघ कृष्ण सप्तमी को वे प्रकट हुए थे और रामनवमी की शुभ तिथि को अपनी कुटी में काशी में ही वे सम्वत् १५०५ विक्रमीय में अन्तर्धान हुए थे। चैत शुक्ल अष्टमी को ही उन्होंने अपने शिष्यों को

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एकत्र कर बता दिया था कि कल रामनवमी है, मैं अकेला अयोध्या जाऊँगा और भविष्य में मेरा दर्शन न हो सकेगा। अपने पूर्वकथन के अनुसार ही उन्होंने साकेत धाम की महायात्रा की। स्वामी रामानन्द परम आत्मदर्शी रामभक्त महात्मा थे।

रचना

उन्होंने देववाणी और हिंदी में समान रूप से उपदेश दिये, उनकी वाणी का संकलन शिष्यों ने उनके सिद्धान्त सम्बन्धी ग्रन्थों में किया है। गुरुग्रन्थ साहब में भी उनका पद मिलता है।

पद

कतजाइये रे घर लागो रंगु। मेरा चित न चले, मन भयो पंगु।
एक दिवस मन भयी उमंग; घसि चन्दन-चोवा-बहु सुगन्ध,
पूजन चाले ब्रह्म मठाहि। सो ब्रह्म बतायो गुर मनहि माहि।
जहाँ जाइये तहाँ जल-परवान, तत पूरि रह्यो है सब समान।
वेद-पुरान सब देखे जोय, उहाँ त जाइये, जहाँ न होय।
सतगुर मैं बलिहारी तोर, जिन सकल विकल भ्रम काटे मोर।
'रामानन्द स्वामी' रमत ब्रह्म, गुर का सबद काटै कोटि करम।

हरि बिन जन्म बृथा खोयो रे।
कहा भयो अति मान बड़ाई, धनमद अंध मति सोयो रे।
अति उत्तंग तरु देखि सुहायो, सैवल कुसुम सूवा सेयो रे।
सोई फल पुत्र-कलत्र विषै-सुख, अंति सीस धुनि-धुनि रोयो रे।
सुमिरन-भजन-साधु की संगति, अंतरि मन मैल न धोयो रे।
'रामानन्द' रतन जम त्रासै, श्रीपति पद काहे न जोयो रे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्त नामदेव

'प्यारे हरि के दास उदास नामदेव ! हृषीकेश से तुम्हारी बड़ी प्रीति है। हरि के दासों में तुम निराले कहलाओगे, तुम प्रेम की प्रतिमा हो। विट्ठल भगवान के लाड़ले हो, हम लोगों पर तुम्हारी बड़ी कृपा है।'

—सन्त ज्ञानेश्वर

सन्त नामदेव उच्च कोटि के सन्त थे, भगवान् के बहुत बड़े भक्त और अनन्य प्रेमी थे, वे सिद्ध महात्मा थे। उनका सम्पूर्ण जीवन विट्ठल भगवान के चरणों में समर्पित था।

नामदेव का समय सं. १३२७ वि. से सं. १४०७ वि. है, इस पवित्र अवधि में उन्होंने दक्षिण और उत्तर भारत में सन्तमत की जिस प्रगाढ़ भगवद्भक्ति से परिपुष्टि की उसकी मौलिकता और अपूर्वता में तनिक भी सन्देह नहीं किया जा सकता है। सिखों के 'आदि ग्रन्थ' में उनकी अगणित रचनाओं का संकलन नामदेव की महत्ता और परम साधुता का परिचायक है। उनके इष्ट विट्ठल थे। महाराष्ट्र के पांच प्रमुख सन्तों में उनकी गणना होती है, ज्ञानदेव, एकनाथ, रामदास और सन्त तुकाराम की श्रेणी में वे परिगणित हैं। वे केवल महाराष्ट्र ही नहीं, समस्त भारत देश के तत्कालीन सन्तों के एक विशिष्ट प्रतीक अथवा आदर्श थे। यवनों की राजसत्ता से उत्पीड़ित भारत में उन्होंने शान्ति की निर्झरिणी बहायी। उन्होंने जनता को सरस भगवद्भक्ति का दान दिया, सन्तमत के संरक्षण में उसे अभय किया।

सन्त नामदेव का जन्म परम वैष्णव कुल में हुआ था, उनके पूर्वज भगवान की भक्ति में बड़े दृढ़निष्ठ थे। उनके एक पूर्वज यदुसेठ विट्ठल के अनन्य भक्त थे। वे हैदराबाद में सतारा जिले के कन्हाड़ के निकट नरसी ब्राह्मणी गाँव में रहते थे। उनका कुल भगवद्भक्ति आचार-निष्ठा और सन्तसेवा से परम पवित्र हो गया। इसी भागवत परिवार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

में सं. १३२७ वि. में कार्तिक शुक्ल एकादशी अथवा प्रतिपदा को सन्त नामदेव ने जन्म लिया। उनके माता-पिता गोणाई और दामासेठ भी बड़े भगवदीय थे, शिशुनामदेव में अलौकिक तेज और दिव्य गुण देख कर उन्होंने अपने आपको परम धन्य समझा। नामदेव का लालन-पालन उन्होंने उचित ढंग से किया और इस बात को दोनों ने सदा ध्यान में रखा कि वे भगवान के भक्त बनें तथा उन्हें सदा सन्तों और ज्ञानियों का संग मिलता रहे।

गाँव के बाहर केशिराज शिव का एक मन्दिर था। दामासेठ नित्य शिव की पूजा करने आया करते थे, वे प्रति वर्ष विट्ठल भगवान के दर्शन के लिये पण्ढरपुर आया करते थे और भगवान के प्रति आसक्ति बढ़ने पर वे पण्ढरपुर में ही बस गये। पिता के आचरण का नामदेव के विकास पर बड़ा प्रभाव पड़ा।

नामदेव के शैशव-काल में एक दिन एक विचित्र घटना हुई। उनके घर में श्री विट्ठल का विग्रह था, नामदेव के पिता विधिपूर्वक नित्य-प्रति उनकी उपासना और पूजा करते थे। एक बार दामासेठ को किसी विशेष आवश्यक कार्य से बाहर जाना पड़ा, वे विट्ठल को नित्य दूध समर्पित किया करते थे, उन्होंने अपने भागवत पुत्र नामदेव को दूध अर्पण करने का भार सौंपा था, नामदेव विट्ठल का नाम सुनते ही आनन्द से 'जय विट्ठल' कहते-कहते विट्ठलमय हो जाया करते थे; जब पिता ने उनसे भगवान को दूध अर्पित करने की बात कही, वे बहुत प्रसन्न हुए। पिता की अनुपस्थिति में वे कटोरे में दूध लेकर विट्ठल के विग्रह के सामने बैठ गये, नयन बन्द कर धीरे से कहा 'दूध पीलो' मन में उत्सुकता बढ़ रही थी कि विट्ठल ने दूध पीया होगा। बालक नामदेव ने नयन खोले, वे सहम गये, भगवान ने दूध नहीं पीया। नामदेव ने सोचा कि मेरी सेवा में कोई अपवित्रता आ गयी इसलिये करुणामय ने कटोरे की ओर देखा तक नहीं। उन्होंने कहा, "विट्ठल, पिता तो बड़ी पवित्रता से दूध पिलाते हैं, मैं तो अभी बच्चा हूँ, मुझसे अवश्य सेवा में भूल हो गयी है, इसलिये दूध पड़ा रह गया, ठीक है, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ यदि दूध पड़ा रहेगा तो मैं भी दूध नहीं पीऊँगा। वे विट्ठल की ओर व्यग्र होकर देखने लगे। उनके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मन में बड़ा दुख था कि विट्ठल ने दूध नहीं पीया। भगवान को भाव चाहिये, वे दयामय नामदेव के सामने प्रगट हो गये, दूध पीने लगे। वातावरण धन्य हो गया। इसी प्रकार जब तक दामासेठ नहीं आ गये, नामदेव सदा दूध पिलाते रहे। पिता ने लौट कर जब वास्तविकता का पता लगाया तब उनका शरीर रोमाञ्चित हो उठा, उन्होंने नामदेव को गले लगा लिया, कहा कि तुमने मेरा घर ही नहीं पवित्र किया, समस्त पण्ढरपुर की धरती और भरतखण्ड के कण-कण तुम्हारी भक्ति से धन्य हो गये। नामदेव की विट्ठल में भक्ति बढ़ने लगी। आठ साल की अवस्था में गोविन्द सेठ की कन्या राजाई के साथ नामदेव का विवाह कर दिया गया। कुछ दिनों में पिता का देहान्त हो गया। घर-गृहस्थी संभालने का भार नामदेव के कन्धों पर आ पड़ा। उनकी माता और स्त्री की बड़ी इच्छा थी कि नामदेव व्यापार में लगें, घर की उन्नति करें पर विट्ठल के राज्य का प्रवेशपत्र तो उन्हें परिवार वालों के ऐसा सोचने के पहले मिल गया था। नामदेव तो विट्ठल के कीर्तन, भजन और चिन्तन में मग्न थे, उनके लिये तो चन्द्रभागा में स्नान, पुण्डलीक के दर्शन और पण्ढरीनाथ के स्मरण से बढ़ कर संसार में कोई दूसरा व्यापार था ही नहीं, संसार उन्हें फीका लगता था, वे पण्ढरपुर में ही रह कर दिन-रात श्री विट्ठल के नामामृत का रसास्वादन करने लगे। वे सरस अभंगों की रचना कर रुक्मिणी और विट्ठल को रिझाने लगे। पण्ढरपुर में उन दिनों गोरा कुम्हार और सँवता माली ऐसे सन्तों का समागम नामदेव महाराज के लिये परम सुगम और सुलभ था। वे उनके सत्संग से अपने जीवन को पूर्ण रूप से विट्ठलमय बनाने में सफल हुए।

नामदेव की भक्ति श्रीविट्ठल में इतनी बढ़ गयी कि दयामय प्रभु उनसे एक क्षण के लिये भी अलग नहीं रह सकते थे, वे नामदेव के सामने प्रकट रूप से माया-मनुष्य हरि के रूप में प्रत्येक आचरण करते थे, अपने भक्त की प्रत्येक कामना की पूर्ति में लगे रहते थे, इधर नामदेव भी बिना प्रभु के दर्शन के एक क्षण भी सुखपूर्वक नहीं रह पाते थे। प्रीति का पथ निराला होता है, विट्ठल और नामदेव दोनों-के-दोनों की एक-दूसरे में प्रगाढ़ अनुरक्ति थी, कितने सौभाग्यशाली

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

थे सन्त नामदेव। नामदेव के समकालीन सन्तों में महात्मा ज्ञानदेव—सन्त ज्ञानेश्वर की बड़ी प्रसिद्धि थी। वे नामदेव से मिलने पण्ढरपुर आये थे। उनके मन की बड़ी इच्छा थी कि नामदेव तीर्थयात्रा में उनके साथ रहें। दोनों एक-दूसरे के सत्संग और पारस्परिक सम्पर्क से प्रभावित थे। ज्ञानदेव ने नामदेव से तीर्थयात्रा में साथ देने की बात कही। नामदेव ने बड़ी सरलता और कोमलता से उत्तर दिया कि मैं श्री पाण्डुरंग भगवान को देखे बिना एक क्षण भी नहीं जीवित रह सकता पर आप सन्त हैं, उन्हीं के साक्षात् स्वरूप हैं, यदि वे प्रभु आप के साथ जाने की आज्ञा प्रदान कर दें तो मुझे आपत्ति नहीं हो सकती है। यह तो मेरा परम सौभाग्य है कि आप सरीखे उच्च सन्त मुझे अपने सम्पर्क से धन्य करने की बात सोच रहे हैं; नामदेव के रोम-रोम में आनन्द छा गया। भक्त की बात थी, ज्ञानदेव ऐसे महात्मा की वकालत थी, पाण्डुरंग का न्यायालय था। ज्ञानेश्वर ने प्रभु के सामने नामदेव के मन की बात रखी। पाण्डुरंग ने सन्त ज्ञानेश्वर से कहा कि नामदेव मेरे परम प्रिय हैं। मैं उन्हें अपने पास से क्षण भर के लिये भी दूर नहीं करना चाहता हूँ। यदि ले ही जाने की इच्छा है तो रास्ते में उनके विषय में पूरा ध्यान रखना चाहिये। नामदेव का जीवन धन्य हो गया, करुणामय पण्ढरीनाथ की उन पर इस रूप में कृपा थी, कितनी सफल और पुण्यमय रहनी थी सन्त नामदेव की।

सन्त नामदेव विट्ठल भगवान के आदेश से महात्मा ज्ञानदेव के साथ तीर्थयात्रा के लिये निकल पड़े। ज्ञानेश्वर ने उन्हें परमात्मा के सर्व-व्यापक होने का ज्ञान समझाया पर उनका मन तो सगुण भक्ति में सराबोर था। उन्होंने ज्ञानेश्वर से कहा कि विट्ठल प्रभु ही पूजनीय हैं, प्राणी को उन्हीं के भजन, चिन्तन और स्मरण में लगे रहना चाहिये, श्रीकृष्ण का प्रेम ही जीवन का श्रेय है, पाण्डुरंग ही मेरे प्राणधन हैं। सन्त ज्ञानेश्वर का निर्गुण ज्ञान उनके लिये सर्वथा नीरस था, वे तो अनवरत विट्ठल का सरस नाम स्मरण करते हुए चले जा रहे थे। प्रभास, द्वारका आदि तीर्थों से लौटते समय बीकानेर के निकट मार्ग में एक विचित्र घटना हुई। नामदेव और ज्ञानेश्वर दोनों-के-दोनों बड़े प्यासे थे, कौलावत गाँव में एक कुआँ दीख पड़ा। ज्ञानेश्वर सिद्धयोगी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

थे, लघिमासिद्धि के प्रयोग से वे कुएँ में पहुँच गये, पानी पीकर नामदेव के लिये जल लेकर बाहर आ गये। सन्त नामदेव भक्त थे उन्हों जल पीना अस्वीकार कर दिया और विनम्रतापूर्वक निवेदन किया कि विट्ठल को मेरे जलग्रहण की चिन्ता अवश्य होगी। उनका इतना कहना था कि पानी कुएँ के ऊपर आ गया और उन्होंने पीकर प्यास शान्त की। भक्त के लिये भगवान की सेवा का रूप ही यही है, वे अशरणशरण अपने प्रेमियों को रिझाने के लिये लघुत्तम से भी लघुत्तम काम के लिये कटिबद्ध रहते हैं। काशी से पण्ढरपुर लौटते समय यात्रा-मण्डली विश्राम के लिये गृहस्थ सन्त गोराकुम्हार के घर पर तेरढोकी स्थान में ठहर गयी। गोराकुम्हार उच्च कोटि के ज्ञानी सन्त थे, ज्ञानेश्वर, उनकी बहिन मुक्ताबाई, आदि के हृदय में उनके लिये उच्च-कोटि की श्रद्धा थी। इस यात्रा में ज्ञानेश्वर के साथ मुक्ताबाई भी थीं। गोरा कुम्हार की प्रसिद्धि 'चाचा' नाम से थी। गोरा कुम्हार के घर पर सत्संग हो रहा था, थोड़ी दूर पर एक थापी दीख पड़ी। मुक्तावाई ने विनोद के स्वर में कहा कि चाचा जी, यह क्या है। गोरा ने कहा कि यह थापी है, इससे घड़े के कच्चे और पक्के होने की बात जानी जाती है। मुक्ताबाई ने कहा कि हम लोग भी तो मिट्टी के घड़े के ही समान हैं। गोरा ने कहा कि ठीक है और उन्होंने थापी से एक-एक के सिर पर थापना आरम्भ किया। सन्त नामदेव को यह बात अच्छी न लगी। गोरा ने उनके सिर पर थापी रख कर कहा कि नामदेव अभी तुम कच्चे घड़े हो, तुमने अभी तक गुरु नहीं किया। नामदेव को बड़ा दुख हुआ। पण्ढरपुर लौटने पर उन्होंने विट्ठल के समक्ष बात रखी। भगवान ने गोरा की बात का समर्थन किया, नामदेव से कहा कि यद्यपि तुम मेरे परम भक्त हो तथापि जब तक गुरु की शरण में जाकर उनके चरणों पर अपना अहंकार नहीं चढ़ाओगे तब तक कच्चे रहोगे। भगवान के आदेश से सन्त नामदेव ने विसोबा खेचर को अपना गुरु बनाया। विसोवा खेचर पहुँचे हुए महात्मा थे, नामदेव ने उनसे पूर्ण तत्वज्ञान का बोध प्राप्त किया। उनके गुरुमुख होने के सम्बन्ध में एक विचित्र घटना का उल्लेख मिलता है। विट्ठल ने स्वप्न में उन्हें आदेश दिया था विसोबा खेचर को गुरु बनाने का।... नामदेव उनकी खोज में चल पड़े, एक शिवमन्दिर में उनका पता लग

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गया, नामदेव ने एक बूढ़े व्यक्ति को शिवलिंग पर पैर फैलाये देखा। व्यक्ति ने कहा कि मेरे पैर ऐसे स्थान पर रख दो जहाँ शिवलिंग न हो। नामदेव ने पैर हटाये ही थे कि दूसरे स्थान पर भी शिवलिंग प्रगट हो गया। नामदेव ने समझ लिया कि वे ही बिसोवा खेचर हैं उन्होंने उनसे दीक्षा ली। अपने अभंगों में नामदेव महाराज ने अपने गुरु की बड़ी महिमा गायी है। उन्होंने एक अभंग में कहा है कि मेरा मन सूई है, तन धागा है, मैंने खेचर जी का चरण पकड़ लिया है। गुरु ने मेरा जन्म सफल कर दिया, मैं दुख भूल गया, मेरा अन्तरदेश आनन्दमय हो उठा। गुरु ने मेरे नयनों में ज्ञान का अंजन लगाया, बिना रामनाम के मेरा जीवन मणिहीन था। मैंने गुरु की कृपा से भगवान का स्मरण किया, और भगवद्मय हो गया। नामदेव की गुरुनिष्ठा परम सराहनीय है। इस प्रकार नामदेव की सन्त ज्ञानेश्वर के साथ तीर्थयात्रा सफल हुई, वे पण्ढरपुर लौट कर पाण्डुरंग के प्रेमरंग में रंग गये। सन्त नामदेव ने कुछ दिनों तक पंजाब प्रान्त में भी रह कर कृष्णभक्ति का प्रचार किया था। गुरुदासपुर जिले के धोमनगांव में उन्होंने असंख्य जीवों का अपने सत्संग और पाण्डुरंग की भक्ति से कल्याण किया। उन्होंने धोमनगांव के निवासकाल में अनेक पद हिंदी भाषा में बनाये जिनमें से अधिकांश गुरुग्रन्थ साहब में संग्रहीत हैं। उनके जीवन के पूर्वार्ध का अधिकांश पण्ढरपुर में बीता और उत्तरार्ध के अधिकांश का सदुपयोग उन्होंने उत्तर भारत में किया, नामदेव वारकरी सम्प्रदाय के आदि सन्तों में से एक थे, महाराष्ट्र में उन्होंने विष्णुभक्ति और सन्त-मत का संगम उतार लिया। उन्होंने सर्वत्र भगवान का विट्ठल रूप में दर्शन किया। वे सन्त थे, पूर्ण निरपेक्ष और निष्पक्ष थे, सम्प्रदाय और जाति के भेदभाव से ऊपर उठे हुए थे। वे समदर्शी महात्मा थे। उन्होंने उस परम तत्व को प्रणाम किया जिसका विवेचन उन्होंने अपने सद्गुरु से प्राप्त किया था। उनके गुरु ने उन्हें परम तत्व का दर्शन कराया था, उनकी उक्ति है कि मैं उस परमतत्व को प्रणाम करता हूँ जिसको मुझे गुरु ने दिखाया था। नामदेव ने अत्यन्त दीन और विनम्र भाव से भगवान की शरणागति-याचना की। उन्होंने अपने एक पद में कहा है कि राम मेरे स्वामी हैं, मैं उन्हीं का शृंगार करता हूँ। संसार मेरी निंदा भले करे पर मेरे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तन-मन तो राम के ही योग्य हैं। मैं किसी से विवाद नहीं करता हूँ। मेरी रसना निरन्तर रामरसायन पीती रहती है! मैं तो स्तुति-निंदा से परे हो कर श्रीरंग विट्ठल को भेंटना चाहता हूँ। मैं उनसे डंके की चोट मिलना चाहता हूँ। वे ही मेरे प्राणधन हैं–सर्वस्व हैं।

सन्त नामदेव के जीवन में विलक्षण और अद्भुत घटनाओं का समावेश पाया जाता है। एक बार सन्त नामदेव आलावती स्थान पर गये, भगवान के प्रेम में आत्मविभोर होकर वे मन्दिर के सामने बैठ कर कीर्तन करने लगे। पण्डों ने शूद्र जानकर उन्हें उस स्थान से उठा दिया, वे मन्दिर के पीछे जाकर कीर्तन करने लगे। मन्दिर का दरवाजा पूर्व से पश्चिम हो गया, भगवान अपने भक्तों का अपमान नहीं सह सकते हैं, वे प्रत्येक स्थिति में उनका सम्मान सुरक्षित रखते हैं। प्रभु नें नामदेव की प्रसन्नता के लिये मन्दिर का दरवाजा ही घुमा दिया।

एक बार सन्त नामदेव की कुटिया में आग लग गयी, एक ओर की वस्तुएँ जलती देख कर उन्होंने दूसरी ओर की वस्तुओं को आग में फेंकना आरम्भ किया। लाल-लाल लपटों में उन्हें अग्निवेष में विट्ठल का दर्शन हुआ, उन्होंने कहा कि प्रभु इस अग्नियज्ञ में मैं अपनी वस्तुओं की आहुति दे रहा हूँ, अज्ञान से मैंने इनको अपना मान रखा था, अब इनको स्वीकार कर मुझे कृतार्थ करें। आग ने भयंकर रूप धारण कर लिया, सारी कुटी जल गयी। नामदेव को इसकी तनिक भी चिंता नहीं थी। प्रभु ने मजदूर के वेष में प्रकट होकर उनकी छान-कुटी छा दी।

अपनी भावना के अनुरूप ही भगवान का दर्शन होता है। एक बार सन्त नामदेव एक गाँव के सूने मकान में ठहरने लगे। गाँव वालों ने कहा कि इस मकान में ठहरने से प्राण संकट में पड़ जायेगा, इसमें एक ब्रह्म राक्षस रहता है। नामदेव ने कहा कि प्रत्येक स्थान में विट्ठल ही हैं, वे भूत के रूप में भी रह सकते हैं, आधी रात को भूत प्रकट हो गया, उसका शरीर लम्बा था, वह देखने में विकराल और भयंकर था। नामदेव ने भूत के रूप में विट्ठल की स्तुति की, उन्होंने कहा कि मेरे लम्बकनाथ, आज तो आपका रूप कुछ विचित्र ही है। आपका सिर स्वर्ग तक है और पैर धरती पर हैं, अनेक साज में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आप के इस विचित्र रूप का पार शिव-सनकादि भी नहीं पा सकते हैं। आप मेरे स्वामी हैं, प्रभु मुझे सफलमनोरथ करें। नामदेव ने देखा कि उनके नयनों के सामने शंख-चक्र-गदा-पद्म धारण करने वाले साक्षात् पाण्डुरंग ही खड़े हैं। प्रभु की मन्द-मन्द मुसकान ने नामदेव का मन मोहित कर लिया।

एक बार नामदेव ने एक जंगल में पेड़ के नीचे कुछ रोटियाँ बनायीं, वे लघुशंका करने जा रहे थे कि एक कुत्ते ने रोटियाँ लेकर भागना आरम्भ किया, नामदेव घी की कटोरी हाथ में लेकर उसके पीछे दौड़ पड़े। उन्होंने बड़ी व्यग्रता से कहा कि प्रभु, मुझे पहले रोटियों में घी लगा देने दीजिये, रूखी रोटियाँ आप के योग्य नहीं हैं। भगवान तो भाव के भूखे हैं, कुत्ते में पाण्डुरंग अभिव्यक्त हो उठे, नामदेव ने चतुर्भुज रूप में विट्ठल का दर्शन किया, वे प्रभु के चरणों पर गिर पड़े, भगवान ने उनको गले लगाया।

सन्त नामदेव ने असी साल की अवस्था में देह-त्याग किया। सम्वत् १४०७ वि. में श्रावण कृष्ण द्वादशी को विट्ठल मन्दिर के महाद्वार पर पाण्डुरंग के सामने ही प्राण ने शरीर छोड़ कर भगवदीय ज्योति में प्रवेश किया। उनकी अवसान-तिथि आश्विन कृष्ण त्रयोदशी भी मानी जाती है। सन्त नामदेव की समाधि पण्ढरपुर में है। नामदेव का जीवन परम धन्य हो गया, भगवान ने उन्हें अनेक बार दर्शन देकर कृतार्थ कर दिया, नामदेव ने अपनी रसमयी वाणी से भक्तिपति विट्ठल का गुणानुवाद कर इहलोक-परलोक ही नहीं बनाये, असंख्य प्राणियों को संसार-सागर से पार होने का महामन्त्र बताया।

रचना

सन्त नामदेव ने मराठी और हिंदी में समान गति से अभंग और पद लिखे। उनके पद 'गुरुग्रन्थसाहब' में संकलित हैं। इनकी रचना 'तीर्थावली' बहुत प्रसिद्ध है।

पद

हमरो करता राम सनेही।
काहे रे नर गरब करत है, बिनसि जाइ झूठी देही।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मेरी कौरव करते दुरजोधन सौ भाई।
बारह जोजन छत्र चलै था, देही गिरझन खाई।
सब सोने की लंका होती, रावन से अधिकाई।
कहा भयो दर बांधे हाथी, रवन महि भई पराई।
दुरबासा सु करत ठगौरी, जादव वे फल पाये।
किरपा करी जन अपने ऊपर, नामा हरिगुन गाये।
भाई रे इन नैननि हरि देखौ।
हरि कीं भगति साध की संगति, सोई दिन धनि लेखौ।
चरन सोइ जे नचत प्रेम सूं, कर सोई जे पूजा।
सीस सोइ जो नवै साध कूं, रसना अवर न दूजा।
यह संसार हाट का लेखा, सब कोई बनिजहिं आया।
जिन जस लादा तिन तस पाया, मूरख मूल गँवाया।
आतमराम देह धरि आया, तामे हरि कूं देखौ।
कहत 'नामदेव' बलि-बलि जैहौं, हरि भजि और न लेखों।
बदहु किन होड़ माधव, मोसूं।
ठाकुर ते जन जन ते ठाकुर ख्याल पर्‌यो है तोसूं।
आपन देव, देहुरा आपन, आप लगावै पूजा।
जल ते तरंग तरंग ते है जल, कहन-सुनन को दूजा।
आपहि गावै आपहि नाचै, आप बजावै तूरा।
कहत 'नामदेव' तू मेरो ठाकुर, जन ऊरा तू पूरा॥
मैं बौरी मेरा राम भतार।
रचि-रचि ताकों करौं सिंगार।
भले निन्दो, भले निन्दो, भले निन्दो लोग।
तन-मन मेरा राम प्यारे जोग।
वादविवाद काहू सूं न कीजै,
रसना राम रसायन पीजै।
अब जिय जानि ऐसी बनि आई।
मिलौं गुपाल नीसान बजाई।
अस्तुति-निन्दा करै न कोई।
'नामा' श्रीरंग भेंटल सोई।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

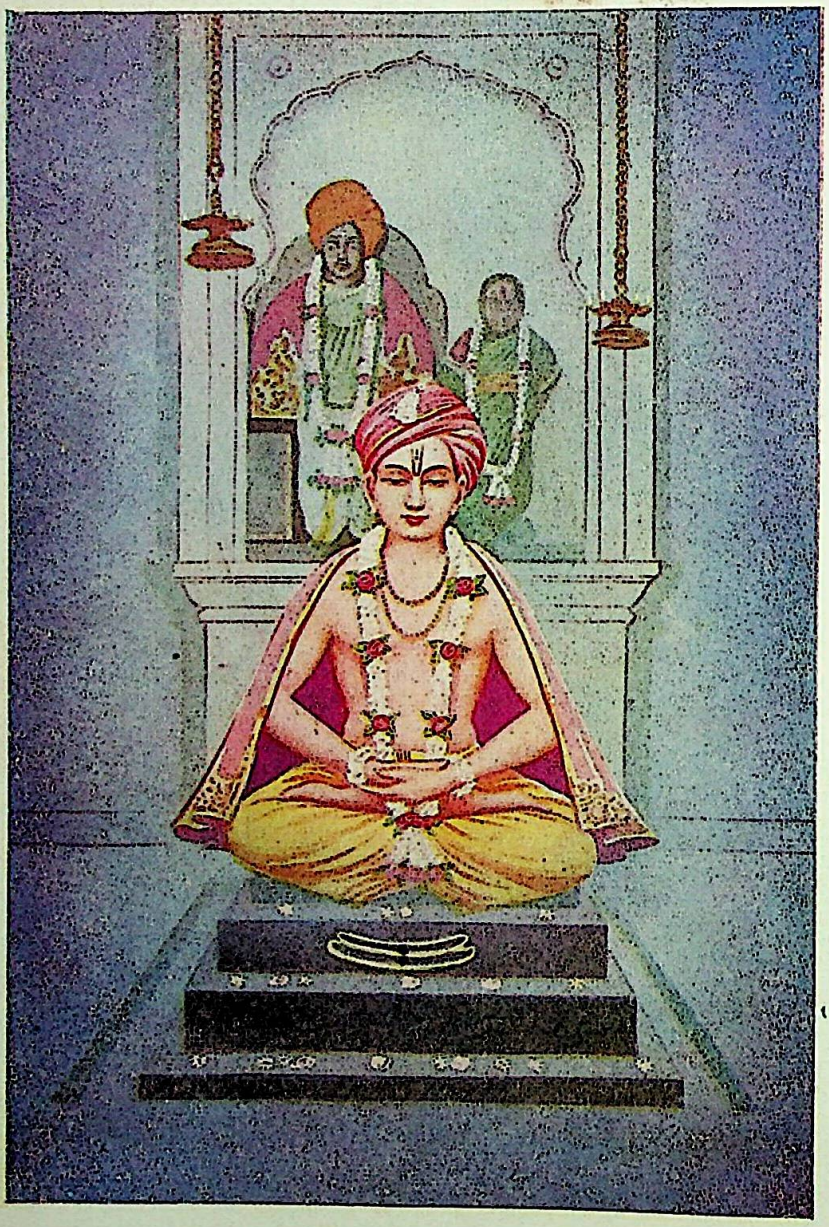

श्री ज्ञानेश्वर महाराज

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्त ज्ञानेश्वर

'हे ज्ञानियों के गुरु, राजाओं के महाराजा! आप ज्ञानदेव कहलाते हैं, इस महत्ता को मैं पामर क्या समझूं। पैरों की जूती का पैरों में ही रहना ठीक है। ब्रह्मा आदि भी जब आप पर बलि जाते हैं तब दूसरे आप की तुलना में कितना ठहरेंगे? ....मैं योग का घर नहीं जानता हूँ, इसलिये चरणों पर मस्तक रखता हूँ।' —तुकाराम

ज्ञानदेव मराठी सन्त-साहित्य क्षेत्र के सम्राट स्वीकार किये जा सकते हैं। वे ज्ञान के सन्तरूप थे। उन्होंने मध्यकालीन भारत के द्वितीय चरण में ज्ञान और भक्ति की एकता-सिद्धि से भागवतधर्म की उपासना की। उनकी ज्ञानेश्वरी भागवतधर्म की अनुपम व्याख्या-निधि है। उनके रूप में भगवान ने महाराष्ट्र की परम-पवित्र भूमि में ज्ञान-अवतार लिया, वे उच्च कोटि के महात्मा, परम ज्ञानयोगी और सिद्ध सन्त थे। यावनीय सत्ता से आक्रान्त भरतखण्ड में सन्त ज्ञानेश्वर ने आत्मज्ञान का अस्त्र सम्हाला। महाराष्ट्र के हृदय-देश देवगिरि में रामदेव का शासन था। दिल्ली की केन्द्रीय शासन सत्ता अराजकता, अशान्ति और अनीति के दृश्य उपस्थित कर रही थी। ऐसे समय में सन्त ज्ञानेश्वर ने विक्रम की चौदहवीं शती के दूसरे चरण में जन्म लिया। वे महान ऐतिहासिक विभूति थे। देश और काल को उनकी उपस्थिति की बड़ी आवश्यकता थी। असार संसार-सिन्धु से असंख्य जीवों को तारने के लिये उन्होंने श्रीभगवद्गीता की ज्ञानेश्वरी-व्याख्या प्रदान की, निस्सन्देह उनकी ज्ञानेश्वरी ज्ञान-नौका है, साक्षात् मुक्ति है। वे धर्मसंरक्षक थे, ईश्वर के अपूर्व भक्त और दिव्य लेखक थे। उन्होंने तत्वज्ञान की खोज से आत्मशान्ति की प्राप्ति की। सन्त ज्ञानेश्वर की जीवन-कथा असाधारण, अद्भुत और अनुपम है। विलक्षण घटना-चक्र में उनका जन्म हुआ, विचित्र परिस्थिति में उनका पालन हुआ और आश्चर्यजनक रूप से उन्होंने आत्मयात्रा का पथ प्रशस्त किया। सन्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ज्ञानेश्वर के पूर्वज पैठण से चार कोस की दूरी पर भगवती गोदावरी के पवित्र तट पर—आपेगाँव में रहते थे। वे कुलकर्णी अथवा पटवारी का काम करते थे। उनका कुल परम भागवत था, ज्ञानेश्वर के पितामह गोविन्द पन्त अपने समय के एक प्रभावशाली व्यक्ति थे। उनके पुत्र विट्ठल पन्त बड़े शास्त्रज्ञ थे, उन्होंने वेदोंका विस्तार से अध्ययन किया था, वे ज्ञानी, विरक्त और ईश्वरभक्त थे। एक बार वे तीर्थयात्रा करते-करते पूना के निकट आलन्दीगाँव में पहुँच गये। उन्होंने भगवान के आदेश से, सिद्धेश्वर महादेव की कृपा से आलन्दी निवासी सिंधो पन्त की कन्या रुक्मिणी से विवाह कर लिया, भगवान ने स्वप्न में प्रकट होकर विट्ठल पन्त से कहा था कि रुक्मिणी के गर्भ से एक महान अवतारी पुरुष प्रकट होंगे। विट्ठल पन्त ने कुछ दिनों तक आलन्दी में निवास किया, उसके बाद वे सासु-ससुर और पत्नी को साथ लेकर पण्ढरपुर होते हुए आपेगाँव आये। इसी बीच में उनके माता-पिता का देहान्त हो गया। वे पत्नी से अनुमति लेकर काशी चले आये। उन्होंने स्वामी रामानन्द से दीक्षा ली, वे चैतन्याश्रम के नाम से विख्यात हुए। इधर सती-साध्वी रुक्मिणी ने पति के संन्यास लेने से अपना जीवन पूर्ण तपोमय और व्रतनिष्ठ बना लिया। बारह साल के बाद स्वामी रामानन्द आलन्दी होते हुए रामेश्वर जा रहे थे। आलन्दी के मारुति-मन्दिर में ठहरे हुए थे। रुक्मिणी हनुमान के दर्शन के लिये आया करती थीं। रामानन्द स्वामी ने उन्हें पुत्रवती होने का आशीर्वाद दिया, रुक्मिणी को हँसी आ गयी, उन्होंने रामानन्द से अपने पति के संन्यास-ग्रहण की बात बतायी, वे साध्वी रुक्मिणी को साथ लेकर काशी लौट आये। उन्होंने चैतन्याश्रम को गृहस्थधर्म अपनाने का आदेश दिया। वे पत्नी सहित आलन्दी चले आये। समाज संन्यासी के गृहस्थाश्रम-प्रवेश से तिलमिला उठा। समाज ने उनका वहिष्कार कर दिया। वे बड़े शान्त, गम्भीर और सहनशील थे, उन्होंने अनेक कष्ट सहकर जीवन बिताना आरम्भ किया। उन्होंने तीन पुत्र और एक कन्या को जन्म दिया। उनके पुत्र निवृत्तिनाथ, ज्ञानेश्वर और सोपानदेव थे, पुत्री मुक्ताबाई थीं। ज्ञानेश्वर का जन्म सं. १३३२ वि. भाद्र-कृष्णाष्टमी की मध्य रात में हुआ था, वे विट्ठल पन्त के दूसरे पुत्र थे। उन्होंने संन्यासी पिता को धन्य किया, कितनी असाधारण बात है। विट्ठल पन्त ने ज्ञानेश्वर तथा अन्य सन्तानों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

का पालन भिक्षा माँग कर किया, कभी-कभी तो उन्हें भिक्षा भी नहीं मिलती थी, उन्होंने पुत्रों को संतोषजनक शिक्षा दिलाने का यत्न किया। समाज का विरोध देख कर वे त्र्यम्बकेश्वर में आकर अनुष्ठान करने लगे। रात में कुशावती में स्नान कर ब्रह्मगिरि की सपरिवार परिक्रमा करते थे। ज्ञानदेव के चरित्र पर पिता और माता तथा भाइयों और बहिन के तपस्यापूर्ण पवित्र आचरण का बड़ा प्रभाव पड़ा। निवृत्तिनाथ ने इसी स्थान पर योगी गहिनीनाथ से 'रामकृष्ण' मन्त्र की दीक्षा लेकर कृष्णभक्ति के प्रचार का संकल्प किया। . . . कुछ दिनों के बाद विट्ठल पन्त आपेगाँव चले आये। ब्राह्मणों ने उनके पुत्रों के उपनयन-संस्कार की स्वीकृति न दी। जिस समय ज्ञानेश्वर पांच साल के थे, उनके माता-पिता उन्हें तथा अन्य सन्तानों को छोड़ कर प्रयाग आ गये और त्रिवेणी संगम पर शरीर छोड़ कर स्वर्ग चले गये।

ज्ञानेश्वर तथा उनके भाई और बहिन सब-के-सब अनाथ और असहाय हो गये। वे इधर-उधर भटकते हुए भिक्षा माँग कर जीवन बिताने लगे। ज्ञानेश्वर के मन में वैराग्य और संसार के प्रति अनासक्ति के भाव निरन्तर परिपुष्ट होने लगे। गाँव के लोगों ने ज्ञानेश्वर को भाइयों के साथ उपनयन की स्वीकृति के लिये पैठण जाने की सम्मति दी। पैठण के ब्राह्मणों ने उपनयन की स्वीकृति नहीं दी पर शुद्धि का उपाय बताया कि वे चारों लोकलज्जा का परित्याग कर कुत्ते, चाण्डाल और गौ समेत सबको भूमिपर लेट कर प्रणाम करें तथा ईश्वर की अनन्य भक्ति करें। . . . ज्ञानेश्वर आदि ने इस निर्णय को मान लिया। जिस समय पैठण की ब्राह्मण-मण्डली प्रायश्चित और शुद्धि के उपाय पर विचार कर रही थी, ज्ञानेश्वर के बड़े भाई निवृत्तिनाथ ने कहा कि मैं तो निवृत्त हूँ, प्रवृत्ति में मेरी तनिक भी आसक्ति नहीं है। छोटे भाई सोपानदेव ने कहा कि लोगों को भजन के मार्ग में लगाना तो मेरा कर्तव्य है, मुक्ताबाई ने कहा कि मैं तो सर्वथा मुक्त ही हूँ और सबके लिये मुक्ति का द्वार खोलती हूँ। ज्ञानेश्वर ने कहा कि मैं तो समस्त शास्त्रों का ज्ञाता हूँ। लोग उन चारों की बात सुन कर हँस पड़े। शुद्धि-निर्णय की समाप्ति पर कुछ दुष्टों ने सन्त ज्ञानदेव-ज्ञानेश्वर को छेड़ा, एक भैंस को निकट देख कर उन्होंने कहा कि इस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भैंसे का नाम भी ज्ञानदेव है, दिन-रात ज्ञान का बोझा ढोता रहता है। ज्ञानदेव ने कहा कि निस्सन्देह यह तो मेरा ही आत्मा है। इसमें और मुझमें तनिक भी भेद नहीं है। ज्ञानेश्वर का इतना कहना था कि किसी ने भैंसे की पीठ पर दो-तीन साटे मारे, लोगों ने व्यङ्ग किया कि ज्ञानेश्वर को अवश्य चोट आयी होगी। ज्ञानदेव ने अपनी पीठ खोल कर दिखा दी। लोग पीठ पर साटों के चिह्न देख कर आश्चर्य-चकित हो गये। उनमें से एक ने व्यङ्ग कसा कि यदि भैंसे और तुममें कुछ भेद नहीं है तो अपनी ही तरह इससे भी ज्ञान कहला सकते हो। ज्ञानेश्वर ने भैंसे की पीठ पर हाथ रखा, उसने ऊँ का उच्चारण किया और उसके मुख से वेदमन्त्रों का पाठ सुन कर पैठण की विद्वन्मण्डली आश्चर्यचकित हो गयी। ज्ञानदेव के महात्मापन में लोगों का विश्वास बढ़ गया, वे उनके चरणों पर नत होकर आत्मज्ञान और भगवद्भक्ति का उपदेश लेने लगे। ज्ञानेश्वर अपने भाइयों और बहिन के साथ अपने पिता के मामा कृष्णपन्त देवकुले के घर पर ठहरे हुए थे। उन्होंने पैठणनिवास-काल में शास्त्रों और आर्षग्रन्थों का अच्छी तरह अध्ययन किया। एक दिन पैठण निवास-काल में ही लोग उनके चमत्कार से स्तम्भित हो गये। एक ब्राह्मण ने पितरों के श्राद्ध में ज्ञानेश्वर को निमन्त्रित किया। उन्होंने उसके पितरों का आह्वाहन किया, वे सशरीर आसन पर आकर श्राद्ध का अन्न ग्रहण करने लगे। लोग उनकी ज्ञान-निष्ठा और सिद्धि से मुग्ध हो गये और उनके मुख से भगवान के नाम का कीर्तन सुनकर तथा भागवत कथामृत का रसास्वादन कर अपने आपको धन्य करने लगे। पैठण-निवासियों का जीवन उनके पुनीत सत्संग से सफल हो गया। पैठण से ज्ञानेश्वर ने आले नामक स्थान पर होते हुए नेवासे की यात्रा की। आले में ही उन्होंने वेदपाठी भैंसे को समाधि दी। नेवासे प्रवरा नदी के तट पर एक परम पुनीत स्थान है। नेवासे में पहुँचते ही उन्होंने एक स्त्री को अपने पति का मृत शरीर गोद में लेकर विलाप करते देखा। उन्होंने पति का नाम पूछा, लोगों ने मृत का नाम सच्चिदानन्द बताया, ज्ञानेश्वर ने कहा कि सत्-चित्-आनन्द तो मृत्यु से परे है, उन्होंने सच्चिदानन्द के शरीर पर हाथ फेरा, प्राण लौट आया, लोगों ने सन्त ज्ञानेश्वर का जयनाद किया, सच्चिदानन्द ने ही ज्ञानेश्वरी लिपिबद्ध की थी। कुछ दिनों के बाद

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ज्ञानेश्वर आलन्दी चले आये, लोगों ने उनका अच्छी तरह स्वागत किया। आलन्दी से नेवासे वापस आने पर ज्ञानेश्वर ने पन्द्रह वर्ष की आयु में सं. १३४७ वि. में 'ज्ञानेश्वरी' ग्रन्थ पूरा किया।

सन्त ज्ञानेश्वर ने तीर्थ-यात्रा आरम्भ की। उनके साथ निवृत्तिनाथ, सोपानदेव, मुक्ताबाई, नरहरिसोनार, चोखामेला आदि तत्कालीन प्रसिद्ध सन्त थे। वे पण्ढरपुर गये। उन्होंने विट्ठल के आदेश से सन्त नामदेव को अपने साथ लिया। विट्ठल ने स्वयं नामदेव का हाथ उन्हें पकड़ा कर कहा था कि ये हमारे परम प्रिय हैं, इनको सम्हाल कर अपने पास रखियेगा। उन्होंने सन्त मण्डली के साथ उज्जैन, प्रयाग, काशी, अयोध्या, गया, गोकुल, वृन्दावन, गिरनार आदि तीर्थक्षेत्रों की यात्रा की। लोगों को अपने सत्संग से सचेत कर जागरण-सन्देश दिया, भवसागर से पार उतरने का सुगम और सुलभ मार्ग बताया, स्थान-स्थान पर हरिभक्ति सुधा का वितरण किया। सन्त ज्ञानेश्वर के जीवन में इस ऐतिहासिक यात्रा का बड़ा महत्व था। समस्त भारत देश में सन्त ज्ञानेश्वर और उनके साथियों की ख्याति दूर-दूर तक फैल गयी। वे मारवाड़ और पंजाब की ओर भी गये थे। तीर्थयात्रा से लौटने पर पण्ढरपुर में सन्त नामदेव ने इस यज्ञ की पूर्ति के रूप में एक विशाल उत्सव का आयोजन किया था। पण्ढरपुर के उत्सव में सम्मिलित होकर सन्त ज्ञानेश्वर आलन्दी चले आये। विदा होते समय नामदेव उनके चरण पर गिर पड़े, सन्त ज्ञानदेव ने उनको अंक में भर कर कहा कि तुम भक्तकुलशिरोमणि हो, तुमने समस्त भरत-खण्ड को अपनी उपस्थिति से धन्य कर दिया।

सन्त ज्ञानेश्वर ने अपने बड़े भाई निवृत्तिनाथ को अपना पथ-प्रदर्शक बनाया, वे उनके सद्गुरु थे। ज्ञानेश्वर की गुरुभक्ति उच्च कोटि की थी। उन्होंने एक स्थल पर कहा है कि इस शरीर की मिट्टी में उस भूमि में मिला दूँगा जिस पर मेरे गुरुदेव के श्रीचरण अंकित होंगे। मेरे स्वामी जिस जल का आनन्दपूर्वक स्पर्श करेंगे उसमें मैं अपने शरीर का रस मिला दूँगा। निवृत्तिनाथ गोरखनाथ की योगपरम्परा में दीक्षित थे इसलिये ज्ञानेश्वर की साधना योगपद्धति और विशेषता से नाथसम्प्रदाय के सिद्धान्तों द्वारा प्रभावित थी, उन्होंने अपनी तीर्थयात्रा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के समय अनेक यौगिक चमत्कार भी दिखलाये थे, वे जन्मजात योगी थे। सन्त ज्ञानेश्वर ने एक बार विचित्र यौगिक चमत्कार दिखाया। खानदेश में तापी नदी के तट पर चांगदेव नाम के एक प्रसिद्ध योगी थे। वे चर्मचक्षुओं को बन्द कर शंकर की उपासना कर रहे थे। उन्होंने किसी से भैंसे द्वारा वेदमन्त्र पढ़ने की बात सुनकर ज्ञानेश्वर से मिलने की उत्सुकता प्रकट की। पत्र भेजा, ज्ञानेश्वर ने प्रेमपूर्ण उत्तर दिया। वे सायंकाल योगबल से सिंह पर सवार होकर और हाथ में साँप का चाबुक लेकर ज्ञानेश्वर से मिलने आये। सन्त ज्ञानदेव अपने घर की दीवार पर बैठ कर निवृत्तिनाथ से बातें कर रहे थे। चांगदेव का आगमन सुनकर वे भीत पर बैठे-बैठे ही मिलने चल पड़े, दीवार उनकी आज्ञा से चलने लगी। चार सौ साल के तपस्वी योगी बालयोगी ज्ञानेश्वर के यौगिक चमत्कार से चकित हो गये, उनका मद-ज्वर उतर गया। ज्ञानेश्वर ने उनसे प्रेमपूर्वक बात की।

नारायणी भक्ति—विष्णु-उपासना का निर्गुण ज्ञानधारा के माध्यम से प्रचार करना ही सन्त ज्ञानेश्वर के जीवन का सबसे उत्तम कार्य था। उन्होंने कहा है कि शास्त्र का प्रमाण है, श्रुति का वचन है कि नारायण ही जपों के सार हैं, वस्तुतत्व हैं। ज्ञानेश्वर ने नारायण के नामस्मरण का राजमार्ग दिखाया। भागवत धर्म के प्रचार के साथ-ही-साथ योग मार्ग की परम्परा का भी उन्होंने संरक्षण किया। वे समस्त भूतसृष्टि को एक स्वरूप मानते थे। उन्होंने प्राणीमात्र को समान रूप से बिना किसी भेदभाव के मोक्ष-प्राप्ति का अधिकारी घोषित किया। उन्होंने भूत मात्र में पारस्परिक मैत्रीभाव उत्पन्न करने के लिये लोगों को अनुप्रेरणा दी। उन्होंने पापरूपी अन्धकार का नाश कर निर्मल ज्ञान-प्रकाश में प्राणियों को आत्मदर्शन कराया।

ज्ञानेश्वर ने इकीस साल, तीन मास, पाँच दिन तक पृथ्वी पर रह कर मार्गशीर्ष कृष्ण त्रयोदशी को सम्वत् १३५३ वि. में जीवित समाधि ली। समाधि का दृश्य विलक्षण था। उनकी समाधि लेने के बाद एक साल के भीतर ही सोपानदेव, मुक्तावाई और निवृत्तिनाथ ने भी महाप्रयाण किया। सन्त ज्ञानेश्वर ने दोपहर को उक्ततिथि पर आलन्दी में समाधि ली। नामदेव उनकी समाधि के अवसर पर उपस्थित थे। उन्होंने समाधि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

का आँखों देखा वर्णन ढाई सौ अभंगों में किया है, उन अभंगों पर किसी भी स्थिति में अविश्वास नहीं किया जा सकता है, सन्त की वाणी है, सन्त की वाणी में तनिक भी सन्देह करना महापाप है। समाधि लेने के पहले एकादशी को सन्त ज्ञानेश्वर पण्ढरपुर गये। निवृत्तिनाथ, मुक्तावाई, सोपानदेव आदि साथ थे। नामदेव का कथन है कि सन्त ज्ञानेश्वर ने चन्द्रभागा में स्नान किया, भक्त पुण्डलीक का दर्शन कर वे विट्ठल मन्दिर में आये, उन्होंने सन्त-मण्डली के समक्ष समाधि की वात कही। नामदेव समाधि की वात सुन कर सिहर उठे, सन्तों का मन उदास हो गया। विट्ठल ने प्रकट होकर ज्ञानेश्वर को दर्शन दिया, भगवान ने कहा कि तुम ज्ञान की मूर्ति हो। विट्ठल ने उनको गले लगाया।. . . . सन्तमण्डली ज्ञानेश्वर के साथ आलन्दी आ गयी, पण्ढरीनाथ उनके साथ आये, समाधि का शुभकार्य विट्ठल ने अपने हाथ से सम्पन्न किया। सन्तों और भक्तों ने इन्द्रायणी में स्नान कर विट्ठल का पूजन किया। कीर्तन होने लगा। चारों ओर भगवान् के नाम की रसमयी ध्वनि छा गयी। भगवान प्रत्यक्ष रूप से भक्तों और सन्तों को साथ लेकर सिद्धेश्वर शंकर के मन्दिर में आये। सोपान-देव पाण्डुरंग के चरणों से लिपट गये। निवृत्तिनाथ उन्मनी अवस्था में थे, ज्ञानेश्वर गुरु निवृत्तिनाथ के चरण पकड़ कर आत्मचिंतन में निमग्न थे। नामदेव और सन्त जन ज्ञानदेव के वियोग की आशंका से सन्तप्त थे। नामदेव का शरीर विलाप करते-करते सुन्न हो गया था। निवृत्ति-नाथ की थोड़ी देर के लिये समाधि भंग हुई। उन्होंने सन्त ज्ञानेश्वर के मुख पर हाथ फेरा, मंगलमय प्रयाण का आशीर्वाद दिया। उनका बड़े स्नेह और अपूर्व आत्मीयता से आलिंगन किया। विट्ठलभगवान ने ज्ञानेश्वर के ललाट पर केशरयुक्त चन्दन लगाया, गले में माला पहनायी, सिद्धेश्वर मन्दिर की बायीं ओर अजान वृक्ष की छाया में गुफा में ले गये। ज्ञानेश्वर का एक हाथ निवृत्तिनाथ ने पकड़ा था और दूसरा साक्षात् पण्ढरी-नाथ पकड़ कर चल रहे थे। करुण और परम दिव्य दृश्य था। गुफा से पाण्डुरंग और निवृत्तिनाथ बाहर आ गये, द्वार शिलाखण्ड से बन्द कर दिया गया।

सन्त ज्ञानेश्वर ने ज्ञान, भक्ति और तप-कर्म का पवित्र समन्वय किया, वे आत्मज्ञानी, दिव्य योगी और सन्त भक्त थे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रचना

सन्त ज्ञानेश्वर की प्रसिद्ध रचनायें भावार्थदीपिका–ज्ञानेश्वरी, अमृतानुभव, हरिपाठ के अभंग, चांगदेव पासठी प्रसिद्ध हैं। उन्होंने योगवासिष्ठ पर अभंगात्मक टीका लिखी थी।

वाणी

जिस प्रकार एक ही पहाड़ के भीतर देवता, देवालय और भक्त-परिवार का निर्माण खोद कर किया जा सकता है उसी प्रकार भक्ति का व्यवहार एकत्र रहते हुए सर्वथा सम्भव है।

चारों वेद, छः शास्त्र और अठारह पुराण हरि के ही गीत गाते हैं।

निस्सन्देह गीता वाग्विलास-शास्त्र नहीं है, संसार-विजय का शस्त्र है। इसके अक्षर वे मन्त्र हैं जिनसे आत्मा का अवतार होता है।

हरि के नाम का उच्चारण करने से अनन्त पापसमूह पलभर में भस्म हो जाते हैं।

भक्ति के बिना तीर्थ, व्रत, नियम, और अनेक सिद्धि लोगों के लिये व्यर्थ की उपाधि हैं।

राम-कृष्ण का नाम अनन्त राशितप है, पाप उसके सामने भाग जाते हैं।

हरि के बिना यह संसार व्यर्थ है। झूठा व्यवहार है। आना-जाना व्यर्थ है।

निरन्तर हरि का ध्यान करने से सब कर्मों के बन्धन कट जाते हैं। राम-कृष्ण के नाम के उच्चारण से समस्त दोष दिगन्त में भाग जाते हैं।

सोने का सारा पृथ्वीतल ढाला जा सकता है, चिन्तामणियों का मेरु के समान पहाड़ बनाया जा सकता है। सातों समुद्र अमृतरस से लबालब भरे जा सकते हैं, छोटे-छोटे नक्षत्र चन्द्रमा बन सकते हैं, कल्पवृक्ष लगाये जा सकते हैं पर गीता का रहस्य सहज में स्पष्ट नहीं किया जा सकता है।

परमेश्वर मेरे ज्ञानेश्वरी यज्ञ से संतुष्ठ होकर मुझे केवल इतना ही प्रसाद दें कि दुष्टों की कुदृष्टि सीधी हो जाय, उनके हृदय में सत्कर्मों के प्रति प्रेम उत्पन्न हो। भूतमात्र में मैत्री हो। पाप का अन्धकार नष्ट हो, आत्मज्ञान के प्रकाश से विश्व उज्ज्वल हो, प्रत्येक प्राणी इच्छित वस्तु पाये।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

योगिनी लल्लेश्वरी

'जो मुझको जैसे भजते हैं, मैं भी उनको वैसे ही भजता हूँ।'

—भगवद्गीता

काश्मीरी शैव-साहित्य में योगिनी लल्लेश्वरी का नाम अमर है, उन्होंने शिव की प्रियतम-भाव से उपासना की और आत्मा को शिव के सौन्दर्य से समलंकृत किया। वे अवधूत थीं, परमहंस थीं। नृत्य-गान और भ्रमण उनके उपासना-मार्ग के साधन थे, वे नाच-नाच और गा-गा कर अपने प्रियतम शिव की महिमा का प्रचार करती थीं। काश्मीर के प्रत्येक व्यक्ति के अधरों पर उनके सरस गीतों और रचनाओं का रमण अनवरत होता रहता है। उन्होंने काश्मीरी भक्ति-साधना में एकता को जन्म दिया, शिव-भक्ति का प्रेमद्वार ऊँच-नीच, पुण्यात्मा और पापी, ब्राह्मण और चाण्डाल सबके लिये समान रूप से खोल दिया। लल्लेश्वरी प्रसिद्ध सूफी सन्त सैय्यदअली हमदानी की समकालीन थीं, वे काश्मीर में इस्लामी प्रेमधारा का प्रचार करने के लिये सम्वत् १४३७ वि. में आये थे, वे छः साल तक अपने सिद्धान्तों का प्रचार करते रहे, इसी अवधि में उनकी योगिनी लल्लेश्वरी से भेंट हुई थी, दोनों एक-दूसरे की साधना और शिक्षा से अमित प्रभावित और आकृष्ट थे। जिस समय मध्यभारत में नामदेव पण्ढरीनाथ के सामीप्य—सुख का रसास्वादन कर रहे थे और कबीर उत्तर भारत में निर्गुण ज्ञान-धारा के अतल सिन्धु में गोते लगा रहे थे, लल्लेश्वरी ने काश्मीर में कैलासपति महादेव की आत्मा के रंगमंच पर प्राणप्रतिष्ठा की।

लल्लेश्वरी सत्य के शिव की माधुर्य-गायिका थीं। उन्होंने आत्मगत शिव की मधुर उपासना से केवल उत्तरी भारत को ही नहीं—अरब, फारस आदि देशों को भी प्रभावित किया, उनकी वाणी में दिव्य ओज और स्निग्ध माधुर्य का समन्वय था। उन्होंने दिव्य प्रेमतत्व का विवेचन करते रहने में ही अपने समस्त जीवन का सदुपयोग किया। उन्होंने सच्चिदानन्द का शिव-दर्शन किया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लल्लेश्वरी का जन्म एक परम पवित्र ब्राह्मण कुल में काश्मीर के पामपुर ग्राम में सम्वत् १४०० वि. के लगभग हुआ था। इस समय काश्मीर और उत्तर भारत में राजनैतिक षड़यन्त्रों और अराजकता तथा अशान्ति का बोलबाला था। .... लल्लेश्वरी के बचपन का जीवन चमत्कारपूर्ण था, उन्हें प्रेम का आवेश हो आया करता था, वे रह-रह कर किसी दिव्यतम चिन्मय पदार्थ के वियोग में तड़प उठती थीं, उन्होंने अपने जीवन में किसी प्रकार का आडम्बर नहीं आने दिया। उनका जीवन सरल और सात्विक था। बारह साल की अवस्था में उनका विवाह कर दिया गया। ससुराल का जीवन उनके लिये अमित कष्टप्रद था, सासु ने उनके गृह-प्रवेश के बाद ही अनेक यातनायें देना आरम्भ कर दिया पर लल्लेश्वरी ने उनका तनिक भी विरोध नहीं किया, उन्होंने सहनशीलता की वृत्ति अपनायी, कण्टक उनके लिये फूल हो गये, दुख ने सुख का रूप ग्रहण कर लिया। उन्होंने घर में किसी भी प्रकार की अपवित्र स्थिति नहीं पैदा होने दी। सासु उन्हें कम भोजन देती थी, एक बड़े कटोरे में गोल पत्थर रख कर भात (चावल) परोसती थी, लल्लेश्वरी ने कभी आपत्ति नहीं की, जो कुछ भी उन्हें खाने के लिये मिल जाता था उसी में सन्तोष करती थीं। उनका मन धीरे-धीरे घर के प्रति अनासक्त होने लगा। कभी-कभी घर त्याग की बात सोचने पर उनके रोम-रोम सिहर उठते थे। एक बार लल्लेश्वरी नदी के तट पर बर्तन साफ़ कर रही थीं, एक पड़ोसिन-सहेली ने कहा कि आज तो पाँचों अंगुली घी में हैं। घर में किसी विशेष उत्सव के उपलक्ष्य में बढ़िया भोजन बन रहा था। उन्होंने कहा कि 'बकरा मरे या भेड़, मुझे तो गोल पत्थर पर रखे चावल से ही संतोष करना है।' लल्लेश्वरी ने पड़ोसिन से सारी बातें बता दीं। उनका ससुर पास में ही खड़ा था, उसने सारी बातें सुनीं, अपनी पत्नी को कुल-वधू के साथ बुरा बर्ताव कभी न करने के लिये सावधान किया। इस फटकार का परिणाम यह हुआ कि लल्लेश्वरी का घर में रहना कठिन हो गया, सासु ने अपने बेटे को भी उभाड़ा, लल्लेश्वरी का पति भी विरोधी हो गया। घरवालों ने मिथ्या प्रचार किया कि लल्लेश्वरी जादूगरनी और डाकिनी हैं, वे आधी रात को सिंह की पीठ पर सवार होकर नरमांस खाने जाती हैं। लल्लेश्वरी के कोमल हृदय पर इन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रचारों से विषम आघात हुआ, उन्होंने शिव की शरणागति को ही जीवन का सम्बल समझकर घर-त्याग का निश्चय कर लिया।

उन्होंने घर त्याग दिया। वे वनों में, नगरों के राजपथों पर और उपनगरों की गलियों में तथा गाँवों में शिवभक्ति से मदोन्मत्त होकर आत्मसंगीत छेड़ने लगीं, हजारों की भीड़ उनकी मधुर पदावली में शिवतत्व का विवेचन सुनने के लिये पीछे-पीछे दौड़ने लगी, उनके दिव्य सम्पर्क और आत्मा की प्रेममयी शिव-ज्योति से विमुग्ध होकर लोग उनके अनुयायी बनने लगे, वे परमहंस-वृत्ति से अवधूत की तरह रहने लगीं। वे आधे शरीर से नंगी होकर शिव के गीत नाच-नाच कर गाने लगीं, कोई पत्थर मारता, कोई पगली कह कर पुकारता, कोई गाली देता, कोई यातना देता, पर उनके लिये तो सबके भीतर--निन्दकों और प्रशंसकों में शिव ही विद्यमान थे, उन्होंने सबको अपने आराध्य रूप में शिव-रूप में देखा, दिव्य दृष्टि और लोककल्याणमयी चेतना की मल भूमि पर उन्होंने शिव की साधना की। उनका द्वैत भाव मिट गया, उन्होंने शिव की अद्वैत-अनुभूति की, लल्लेश्वरी ने समस्त सृष्टि में शिव को अभिव्यक्त देखा। उन्होंने एक प्रसिद्ध शैवसन्त से दीक्षा ली। एक पद में उन्होंने अपनी गुरुनिष्ठा का परिचय देते हुए कहा है कि मेरे गुरु ने मुझे केवल एक ही उपदेश दिया है कि बाहर की अपेक्षा अन्तर्मुखी होने में ही श्रेय की सहज प्राप्ति होती है। यह उपदेश मेरे साधना-जीवन का मूलाधार हो गया, अब मैं नंगी होकर नाचती-गाती हूँ, अपने अन्तरस्थ शिव प्रियतम को रिझाती रहती हूँ।

लल्लेश्वरी का प्रसिद्ध, सूफीसन्त शाह हमदानी से भी कुछ दिनों तक सम्पर्क रहा, वे काश्मीर में इस्लामी प्रेम-साधना का प्रचार करने आये थे। योगिनी लल्लेश्वरी की दृष्टि में कोई पुरुष नहीं था, वे सबको शिव की उपासिका के रूप में देखती थीं। एक दिन उन्होंने प्रसिद्ध संत शाह हमदानी को देखा, वे 'पुरुष' कह कर चौंक उठीं। वे दौड़ कर एक धधकते तंदूर में कूद पड़ीं। सन्त हमदानी ने उनका पीछा किया। उन्होंने तंदूर वाले से पूछा पर कुछ पता न चल सका। तन्दूर वाले की दृष्टि में तो वे जलकर राख हो गयी थीं। सन्त हमदानी ने खोज बन्द नहीं की। थोड़ी देर में वे दिव्य स्वर्गीय हरे रंग के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परिधान पहन कर सन्त हमदानी के आवाहन पर बाहर आ गयीं। दोनों ने एक दूसरे को देखा। सन्त हमदानी और योगिनी लल्लेश्वरी –दोनों की साधना-पद्धति पर एक-दूसरे का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है, दोनों ने उच्च कोटि की दिव्य प्रेम-साधना की अनुभूति में आत्मा का दर्शन किया।

लल्लेश्वरी ने शिव की प्रसन्नता के लिये निष्काम भाव से अगणित गीत गाये। उन्होंने काश्मीरी शैवयोग का अपने गीतों में अच्छा दिग्दर्शन कराया है। एक गीत में उनकी उक्ति है कि यह ठीक है कि मैंने अनेक बार सिन्ध नदी का जल पीया है, मैंने रम्य काश्मीर में अनेक जन्म बिताये हैं, अनेक मानवीय शरीर पाये हैं पर मैं लल्लेश्वरी की लल्लेश्वरी ही रह गयी। मेरे लिये तो अनेक जन्म पाने का परिणाम कुछ भी न हुआ। लल्लेश्वरी ने शिव की निष्काम भक्ति का प्रचार किया, शिव के प्रति आत्मसमर्पण को ही उन्होंने उपासना के क्षेत्र में महत्व दिया। शिव के नामस्मरण से ही उनकी कृपा सहज-सुलभ होती है– ऐसा उनका दृढ़ मत था। अपने एक गीत में उनकी स्वीकृति है कि सदा शिव का नाम-उच्चारण करते रहने से, मन में क्षीर-नीर-विवेकवाली हंसवृत्ति रखने से, चाहे दिन भर कार्य में भले ही व्यस्त रहना पड़े– निष्काम भाव से अद्वैत-अनुभूति प्राप्त करने पर शिव कृपा करते हैं। योगिनी लल्लेश्वरी निर्गुण शिवतत्व में पूर्ण अनुरक्त थीं। वे मधुररस की उपासिका थीं। वे सदाशिव से यही कहा करती थीं कि आप शिव, केशव, ब्रह्म–जो कुछ भी हों–मेरे जन्म-मरण का अन्त कर दीजिये। मैं आपको अपने भीतर पाकर आनन्दमग्न हो गयी। शिव-ज्ञान की प्राप्ति गुरु-कृपा पर ही उन्होंने निर्भर की। उन्होंने सीख दी है कि शिव तो सर्वत्र हैं, उनकी–किसी स्थल विशेष में–खोज असम्भव है। उन्होंने कुञ्ज-कुञ्ज में जाल बिछा कर आत्मा को उलझा रखा है; वे तो अपने भीतर ही विद्यमान हैं। वे माता के रूप में दूध पिलाते हैं, भार्या के रूप में विलास की अनुभूति कराते हैं, माया-रूप में जीव को मुग्ध करते हैं, मायावी शिव का ज्ञान गुरु ही करा सकते हैं। उनकी दृढ़ मान्यता थी, अटल विश्वास था कि शिव की भक्ति ही शाश्वत शान्ति की निधि है, पवित्रतम श्रद्धा है। योगिनी लल्लेश्वरी ने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

काश्मीरी शैवसाधना को शिवतत्व की मौलिक व्याख्या प्रदान की। वे केवल आत्मज्ञानी ही नहीं, भक्त भी थीं। काश्मीरी भक्ति-इतिहास में उनका नाम अमर है। वे शिव की उपासना करते-करते शिवमयी हो गयीं। उन्होंने आत्मनिवेदन की भाषा में एक गीत में कहा है कि मैंने अपने भीतर शिव की प्राप्ति की, शिवभक्ति के अमृतसरोवर में मैंने अपने को सराबोर कर दिया। मैं प्रेमाग्नि में उसी तरह पिघल गयी जिस तरह सूर्य में पाला समा जाता है। प्राणों की धौंकनी से मेरे अन्तरदेश का दीपक प्रज्वलित हो उठा। अन्धकार का नाश हो गया, मैंने आत्मप्रकाश में शिव का दर्शन किया। उन्होंने मन को गदहा कहा है, गदहा जिस तरह केशर की क्यारी नष्ट कर देता है उसी तरह मन आत्मज्ञान की प्राप्ति में बाधा डालता है। उन्होंने शिव के विश्वरूप की झाँकी की। उनकी विज्ञप्ति है कि शीत से जल जमकर बर्फ हो जाता है और वही फिर हिम के रूप में दीख पड़ता है, एक ही वस्तु का दर्शन तीन रूपों में होता है; उनमें तनिक भी भेद नहीं है; परम चेतना के सूर्य-प्रकाश में तीनों एक रूप हो जाते हैं। इसी प्रकार जीव और जड़—समस्त चराचर में एक शिवतत्व की ही परिव्याप्ति है।

ऐसा कहा जाता है कि उनकी निष्पक्ष निर्गुण शैव साधना से कबीर भी प्रभावित थे। विक्रम की चौदहवीं और पन्द्रहवीं शती में निर्गुण सन्तों और ज्ञानी भक्तों का समाज, धर्म और संस्कृति के क्षेत्र में बड़ा प्रभाव था। लल्लेश्वरी के आराध्य देव निर्गुण शिव थे, घट-घट में व्याप्त रहने वाले आत्मदेव परमात्मा थे। लल्लेश्वरी ने पूर्ण वृद्धावस्था में शरीर छोड़ा था। वे आजीवन शिव की होकर रहीं। काश्मीर के प्रकृति प्रदत्त रमणीय सौन्दर्य-क्षेत्र में उनके प्रेम-संगीत काश्मीरियों के अधरों पर बड़ी सरसता से छः सौ सालों से आलोड़ित होते आ रहे हैं। लल्लेश्वरी शिवयोगिनी, निष्काम उपासिका और प्रेमसाधिका थीं। उनके गीतों में—वाक्यों में जो कोमल माधुर्य है, दिव्य भावराज्य है, पवित्र आत्मसौन्दर्य है उनसे उनकी उपासना-पद्धति की मौलिकता पर प्रकाश पड़ता है।

रचना

उनके वाक्यों और सरस गीतों का संग्रह काश्मीरी भाषा में 'लल्ल वाक्यानि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के नाम से प्रसिद्ध है। राजानक भास्कर ने अधिकांश का संस्कृत में रूपान्तर किया है।

वाणी

साधक तीर्थों में ईश्वर को खोजते-फिरते हैं पर वे नहीं जानते हैं कि वे वे ही हैं। ....हे आत्मा, परमात्मा तुम्ही हो, परमात्मा अपने ही भीतर व्याप्त हैं। इस कथन पर कभी भी अविश्वास नहीं किया जा सकता है। तुम अपने आप से जितना ही आगे होते जाओगे उतनी ही हरी घास दीख पड़ेगी।

मैंने जो कुछ भी कर्म किया वह पूजा है, मैंने जो कुछ भी कहा वह मन्त्र है। मैं पूजा और मन्त्र की प्रतीक हो गयी। शास्त्र का यही सारतत्व है।

मैं जो कुछ भी कार्य कर सकती हूँ उसकी पूर्ति का उत्तरदायित्व मेरे कन्धों पर है। पर अर्जन और फल तो दूसरे के हाथ में हैं। यदि मैं निष्काम भाव से कर्मों को परमात्मा-महादेव के चरणों पर समर्पित कर दूँ तो मैं जहाँ भी जाऊँगी वहाँ वे मेरे लिये प्रत्येक स्थिति में ठीक ही रहेंगे।

मुझे कोई हजार गाली भले ही दे पर यदि मेरे हृदय में परम शिव की निर्मल भक्ति है तो मेरे चित्त में अशान्ति कभी नहीं आ सकती। कहीं श्वास के मल से दर्पण की स्वच्छता नष्ट थोड़े ही हो जाती है।

आत्मज्ञान ही सर्वश्रेष्ठ प्रकाश है। आत्मा में लीन रहना ही परम पवित्र तीर्थ है। परमात्मा ही सर्वोत्तम वन्धु हैं। ईश्वरमय होना ही परम सुख है।

समुद्र में मैं कच्चे धागे से नाव खींच रही हूँ। कहीं मेरे परम प्रियतम प्रभु सुन लेंगे तो पार लगा देंगे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रसिक सन्त विल्वमंगल

'करुनामृत सुकबित्त जुक्ति अनुचिष्ट उचारी।
रसिक जनन जीवन जु हृदय हारावलि धारी॥
हरि पकरायो हाथ बहुरि तहँ लियो छुटाई।
कहा भयो कर छुटैं बदौं जो हिय तें जाई॥
चिंतामनि संग पाय कें ब्रजवधू केलि बरनी अनूप।
कृष्न कृपा को पर प्रगट, विल्वमंगल मंगलस्वरूप॥'

—भक्तमाल

सन्त विल्वमंगल रसस्वरूप भगवान श्रीकृष्ण और उनकी प्राणेश्वरी श्रीराधा की केलि और लीला के परम मर्मज्ञ थे। उन्होंने संसार के विषय-भोग की पूर्ण आसक्ति के प्रति वैराग्य लेकर परम पावन, अलौकिक और दिव्य भागवतरस का आस्वादन किया था। उनका प्राकट्य जयदेव के बाद और चैतन्य महाप्रभु के पहले दक्षिण भारत में कृष्णवीणा नदी के तट पर एक प्रसिद्ध उपनगर में हुआ था। वे महान कृष्णभक्त और रसिक महात्मा थे। उनकी वाणी में रस की दिव्य अनुभूति है।

सन्त विल्वमंगल का जीवन-काल विक्रम की चौदहवीं शताब्दी के लगभग पड़ सकता है, यह भी सम्भव है कि वे विक्रमीय पन्द्रहवीं शती के पूर्वार्ध में भी विद्यमान रहे हों। दक्षिण भारत में इस समय यवनों का प्रवेश धीरे-धीरे हो रहा था, विंध्यगिरि के नीचे नर्मदा, ताप्ती, कृष्णा और कावेरी के तटों पर भारतीय संस्कृति की विजयिनी पताका लहरा रही थी। ऐसे समय में सन्त विल्वमंगल ने कृष्णभक्तिरस का पारावार उमड़ा कर असंख्य प्राणियों को भागवत जीवन प्रदान किया। उनके जीवन पर चिन्तामणि वेश्या का भी बड़ा प्रभाव था, जीवन के पूर्वार्ध में चिन्तामणि के सम्पर्क में उन्होंने वैषयिक भोग की आसक्ति पायी और उतरार्ध में उसकी झिड़की और चेतावनी से उनके नयनों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ने संसार से वैराग्य लेकर कृष्ण का दर्शन किया। विल्वमंगल के पिता का नाम दामोदर और माता का नाम नीवी था। उनके पिता का नाम रामदास भी बताया जाता है। उनकी जन्मभूमि के सम्बन्ध में भी अनेक मत हैं, केलिकट, केरल, काशी, उत्कल आदि का इस सम्बन्ध में उल्लेख मिलता है पर स्वीकार यही किया जाता है कि वे कृष्ण-वीणा नदी के तट पर ही पैदा हुए थे। उनके पिता धर्मनिष्ठ ब्राह्मण थे। माता सती-साध्वी थीं। उन दोनों ने विल्वमंगल की शिक्षा-दीक्षा और पालन-पोषण की अच्छी-से-अच्छी व्यवस्था की। पिता-माता के सात्विक जीवन का उन पर विशेष प्रभाव भी पड़ा था। उनके देहान्त के बाद विल्वमंगल सम्पत्ति के एक मात्र अधिकारी हुए, कुसंग, यौवन और धन के मद से उन्मत्त होकर उन्होंने पतन का मार्ग अपनाया, भोग-विलास और विषय-सुख में ही वे आवद्ध हो गये। कृष्णवीणा नदी के उस पार चिन्तामणि नाम की वेश्या का घर था, वह परम रूपवती और सुन्दरी थी। गानविद्या और वीणावादन में वह अमित निपुण थी। एक दिन विल्वमंगल के ग्राम में वह नाचने-गाने आयी थी। विल्वमंगल उसके सुरीले कंठ की संगीत-लहरी से आकृष्ट होकर चले आये। दोनों रूप-लावण्य में एक-दूसरे से वढ़चढ़ कर थे, देखते ही दोनों एक-दूसरे के हो गये, विल्वमंगल ने अपने आपको चिन्तामणि के सौन्दर्य-चरण पर समर्पित कर दिया।....वे उसी के घर रात-दिन रहने लगे। चिंतामणि का वियोग उनके लिये असह्य था, वे क्षणमात्र के लिये भी उसकी मनमोहिनी रूपसुधा से अलग नहीं होना चाहते थे, वे समग्र रूप से उसके नूपुरों की मधुरिम ध्वनि पर बिक गये। एक दिन उनके जीवन में विचित्र घटना का प्रभाव देखा गया। पिता का श्राद्ध था। उन्होंने सारे कृत्य शीघ्रतापूर्वक समाप्त कर दिये। शाम होने ही वाली थी। उनका मन चिन्तामणि के लिये आकुल हो उठा। वे जाने के लिये घर से बाहर हो ही रहे थे कि हितैषियों ने रोका कि आज पिता की श्राद्धतिथि है, वेश्या के घर जाना किसी भी स्थिति में उचित नहीं है। विल्वमंगल का मन तो वेश्या के घर पहुँच चुका था, शरीर पर कहने का तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा। यद्यपि आकाश में काले-काले घन उमड़ रहे थे, भीषण झंझावात और तूफान की आशंका थी, चारों ओर भयानक दृश्य और निर्जनता का राज्य था तो भी वेश्या

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के मोह से उन्मत्त विल्वमंगल ने नदी पार कर चिन्तामणि से मिलना ही उचित समझा, उनकी अशांति प्रतिपल बढ़ती जा रही थी। उन्होंने केवटों से नाव पर बैठ कर उस पार ले चलने का आग्रह किया पर वे साहस नहीं कर सके। बिजली चमक रही थी, कड़-कड़ की आवाज हो रही थी। विल्वमंगल नदी में कूद पड़े, एक बहते शव को काठ समझ कर उसी के सहारे उन्होंने नदी पार की, जंगली जीव-जन्तु जंगलों में भयानक गर्जन उत्पन्न कर रहे थे, चारों ओर साँय-साँय की आवाज हो रही थी। चिन्तामणि ने समझा था कि पिता की श्राद्ध-तिथि है, विल्वमंगल आयेंगे नहीं, वह दरवाजे और खिड़की आदि बन्द कर सो गयी। विल्वमंगल ने उसके घर पर पहुँच कर बाहर से आवाज लगायी पर दरवाजे नहीं खुल सके। विल्वमंगल ने रस्सी लटकते देखी, वह अजगर था, पर मोहमदिरा से पागल की भावुकता ने रस्सी और अजगर के विवेचन का अवकाश ही नहीं पाया। वे अजगर रूपी रस्सी को पकड़ कर आंगन में कूद पड़े। चिन्तामणि जाग पड़ी, उसने विल्व-मंगल को ऐसी स्थिति में देखकर आश्चर्य किया, विल्वमंगल ने आने का क्रम समझाया, चिन्तामणि को विश्वास न हुआ, वह दीपक लेकर विल्व-मंगल के साथ बाहर आयी, पवन की गति तेज थी, तूफान का दृश्य भयंकर था, चारों ओर अन्धकार का राज्य था, बिजली चमक रही थी बादल कड़क रहे थे, उसने अजगर देखा, सहम गयी; नदी के तीर पर शव देखा, बदन का खून सूख गया; विल्वमंगल का भी मद उतर चुका था, उन्हें काठ और रस्सी का वास्तविक स्वरूप समझने में देर न लगी। दोनों एक-दूसरे की ओर देखने लगे, अधर निस्पन्द थे, नयन लज्जित थे।.....वे पश्चाताप की आग में जलने लगे। चिन्तामणि ने कहा कि विल्वमंगल यदि आपकी इतनी प्रगाढ़ आसक्ति व्रजराज नन्दनन्दन में होती तो आपके तथा आपके परम पवित्र कुल के लिये यह कितने गौरव और सौभाग्य की बात होती। आज आपके पिता की पवित्र श्राद्ध-तिथि थी पर आप मेरे हाड़-मांस के शरीर पर मुग्ध होकर इस स्थिति में मेरे घर चले आये, निस्सन्देह उनकी आत्मा कितनी अशान्ति का अनुभव करती होगी। विप्रवर, भगवान श्रीकृष्ण की लीला में और नामस्मरण में शान्ति और माधुर्य का जो राज्य है वह अन्यत्र दुर्लभ है। आप श्रीकृष्ण से प्रेम कीजिये, इसमें मेरे और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आपके हित की बात है। विल्वमंगल की आँखें खुल गयीं, कृष्ण प्रेम का महासागर उनके हृदय में उमड़ उठा। उन्होंने चिन्तामणि के चरण की धूलि सिर पर चढ़ा ली, कहा कि आज मैंने तुम्हारे रूप में अपने गुरु का दर्शन किया है, तुम मेरी वैराग्य-गुरु हो, तुमने मेरे जीवन-पट के दृश्य बदल दिये। तुम धन्य हो, तुम्हारे सम्पर्क से मैं पवित्र हो गया, मेरा भगवद्भक्त कुल धन्य हो गया। उन्होंने चिन्तामणि को प्रणाम किया। चिन्तामणि ने वीणा बजा कर वृन्दावन के रासेश्वर की लीला का गान आरम्भ किया, कालिन्दी, वंशीवट, राधा और कृष्ण के विहार आदि विल्वमंगल के नयनों में सजीव हो उठे। वे अपने जीवन-नाटक की पहली यवनिका गिराकर कृष्ण के अलौकिक रसराज्य में प्रवेश करने के लिये चल पड़े, चिन्तामणि ने कृष्णभक्ति दी। वे चिन्तामणि की जय बोलते-बोलते उसके घर से निकल पड़े। चिन्तामणि उनके लिये मन्त्रराज हो गयी। वे वैराग्य-अनासक्ति में सराबोर हो उठे।

उनके गांव के समीप ही सोमगिरि नाम के एक महात्मा रहते थे, वे भगवान के परम भक्त थे। विल्वमंगल प्रभु के प्रेम में इधर-उधर घूमने लगे, श्रीकृष्ण के सरस रूप की प्यास उनके नयनों में झूल रही थी। उन्होंने सोमगिरि से दीक्षा ली, अपने वैराग्य-जीवन का गुरु स्वीकार किया। सोमगिरि ने विल्वमंगल का नाम लीलाशुक रखा, उन्हें भगवान के लीलास्तवन का आदेश दिया। सन्त विल्वमंगल के दार्शनिक और काव्यपूर्ण हृदय में नन्दनन्दन की लीला का स्फुरण होने लगा, वे रसिक भक्त हो उठे। वे भगवान कृष्ण के दिव्य और सरस प्रेमराज्य के नागरिक हो गये। सोमगिरि के समीप रहते हुए उन्हें लगभग एक साल हो गया पर उनकी लौकिक मोहमाया न गयी, वे संसार के विषय-भोगों और नश्वर हाड़-मांस के रूप के बन्धन से मुक्त न हो सके। उनके मन और हृदय—दोनों आपस में लड़ रहे थे, चंचल मन विषयासक्ति की ओर ले जाता था, भावुक हृदय कृष्ण के रसराज्य की ओर खींचता था, इतना होने पर भी उनका प्रेम कृष्ण के प्रति अधिकाधिक बढ़ता गया। वे पागल की तरह वनप्रान्त में, सरिता के तट पर, रमणीय प्राकृतिक दृश्यों में, जीवमात्र के रूप-सौन्दर्य में अपने शोभाधाम कृष्ण की झांकी खोजने लगे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एक दिन वे श्रीकृष्ण का नाम-उच्चारण करते हुए चले जा रहे थे। वे परम उन्मत्त हो रहे थे, उनका मन परम सुन्दर नन्दकुमार को देखने के लिये समुत्सुक था। रास्ते में उन्होंने एक सुन्दरी रमणी देखी, वह युवती थी, उसके काले-काले केश कटिदेश में लहरा रहे थे, अंग-अंग में दिव्य कान्ति थी, उसने अभी-अभी स्नान किया था, विल्वमंगल उसके रूप पर मुग्ध हो गये, उनके नयन उसकी रूपमाधुरी का पान करने के लिये चंचल हो उठे, रमणी सन्तवेषधारी की दशा देखकर लज्जित हो उठी, उसने शील-संयम से काम लिया, शीघ्रता से घर में चली गयी। विल्वमंगल उसके फिर बाहर निकलने की आशा में दरवाजे पर बैठ गये। रमणी का पति परम भागवत था, उसने विल्वमंगल से सारी परिस्थिति समझ ली, विल्वमंगल ने असत्य नहीं कहा था—यह सोच कर वह मुग्ध हो गया। उसने सोचा कि ये केवल मेरी पत्नी को देखना ही तो चाहते हैं, यदि उसे देखने मात्र से उनकी प्यास बुझती है तो उसके बाहर आने में तनिक भी आपत्ति नहीं है। उसने पत्नी को सज कर बाहर आने का आदेश दिया। इधर विल्वमंगल के मन की दशा कुछ और थी। उन्होंने निकट ही बेल का पेड़ देखा, दो कांटे तोड़ लिये। गृहस्थ की पत्नी बाहर आयी, विल्वमंगल ने उसके मादक रूप को अच्छी तरह देखा, अपने आपको मन की चंचलता पर धिक्कार नेत्रों को दण्ड देना चाहा, उनकी दृष्टि में उनके नेत्र पापी थे, उन्होंने नेत्रों में कांटे चुभा लिये, खून की धारा बहने लगी, वे बहुत प्रसन्न थे, भगवान की भक्ति के मार्ग में बाधा उपस्थित करने वाले नेत्रों के लिये यही दण्ड उचित था। वे 'श्रीकृष्ण', 'श्रीकृष्ण' कह कर अपने आप को धन्य मानने लगे। उन्होंने गृहस्थ दम्पति का समाधान किया। वे भगवान की खोज में निकल पड़े। दृष्टि बदल गयी, जीवन में दिव्यता उतर आयी। संसार अन्धकारमय हो चला। उन्हें वृन्दावन की याद आयी और अन्धे—सूर विल्वमंगल आनन्दविभोर होकर वृन्दावन की ओर चलने लगे।

विल्वमंगल बिना भूख-प्यास की चिन्ता किये श्रीकृष्ण के लीलाधाम की ओर चले जा रहे थे। वे श्रीकृष्ण के चरणारविंद से नाता जोड़ने के लिये विकल थे। उनके मन की सबसे बड़ी चाह यह थी कि प्राणा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धार, किशोरमूर्ति श्रीकृष्ण अपने प्रेममूर्ण, नित्यसुन्दर, प्रतिक्षण उत्फुल्ल नेत्र कमलों से मेरे हृदय को वश में कर लें। वे यही सोचते वृन्दावन की ओर बढ़ रहे थे कि परम कारुणिक नन्दनन्दन अपने लीलायुक्त विशाल, प्रेमरस से शीतल, कुछ-कुछ लाल, अद्भुत विलासमय कमल-नेत्रों से मुझे कब देखेंगे? एक दिन चलते-चलते शाम हो गयी, सन्त विल्वमंगल एक जंगल में थे, चारों ओर भयानक नीरवता थी, भख और प्यास से शरीर क्षीण हो रहा था पर उनका कृष्णप्रेम बढ़ता जा रहा था। उन्होंने एक गोपबालक की आवाज सुनी, वह निकट आ गया, उसने विल्वमंगल को वृक्ष के नीचे बैठा दिया। भोजन कराया, कहा कि मैं इसी प्रकार नित्य भोजन खिलाता रहूँगा।

बालक उन्हें नित्य प्रति भोजन कराता रहा। एक दिन सन्त विल्वमंगल ने सोचा कि, जिनके लिये मैंने नेत्र फोड़कर संसार से वैराग्य लिया वे मुझे मिल न सके और आश्चर्य की बात तो यह है कि मेरा मन गोपबालक में आसक्त होता जा रहा है, मैं कितना अधम, पतित और नीच हूँ कि वृन्दावन न पहुँच सका और न मुझे अब तक उज्ज्वल नीलमणि श्यामसुन्दर का दर्शन ही हुआ। वे इस प्रकार चिंतित हो रहे थे कि गोपबालक आ पहुँचा। उसने कहा कि सूरदास क्या वृन्दावन चलने की इच्छा है? विल्वमंगल को चिरवांछित वस्तु मिल गयी। गोपबालक ने लाठी पकड़ा दी। विल्वमंगल के मन में दृढ़ विश्वास था कि त्रिभुवन के पति सदा सरस, दिव्य आभूषणधारी, चिन्मय लीलाओं से पूर्ण भगवान कृष्ण वंशी बजाते हुए मुझे अवश्य दर्शन देने आ रहे हैं। थोड़ी देर में गोपबालक ने कहा कि बाबा, वृन्दावन आ गया। कालिन्दी धीरे-धीरे बह रही थी, शीतल समीर का संचरण हो रहा था। गोपबालक ने कहा कि मैं जा रहा हूँ, सन्त विल्वमंगल ने गोपबालक का हाथ कस कर पकड़ लिया, स्पर्श होते ही उन्हें दिव्य दृष्टि मिल गयी, उन्होंने गोपबालक के रूप में अपने उपास्य श्रीकृष्ण को देखा। विल्वमंगल ने कहा कि अब मैं आपको नहीं छोड़ सकता। उनकी आँखों से अश्रुपात होने लगा, उन्होंने अपने आराध्य को प्रणाम किया; कहा कि जिनकी वेषरचना के लिये मोरपंख ही पर्याप्त है, जिनका मुख दांतों की विशेष कान्तिमयी झिलमिलाहट

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

से सुशोभित अधरों से अलंकृत है, अल्प बुद्धि से समझ में न आने वाले वैभव भरे चरित्रों से सम्पन्न श्रीकृष्ण का शृंगारभंगीमय तेज कितना अद्भुत है! वे प्रभु को देखने लगे तो देखते ही रह गये। प्रभु ने कहा कि सूरदास अब तो जाने दीजिये। विल्वमंगल ने कहा कि असम्भव है। प्रभु हाथ छुड़ा कर चलने लगे तो दैन्य के मूर्तरूप विल्वमंगल ने कहा कि हाथ छुड़ा कर जाते हैं तो जाइये, यदि हृदय से जाइये तो जानूंगा कि कुछ शक्ति है। भगवान ने उनका बड़े प्रेम से आलिंगन किया, नेत्र खुल गये, भक्त ने भगवान को जी भर देखा, विल्वमंगल धन्य हो गये। श्रीकृष्ण के लीलारस-माधुर्य में पूर्ण रूप से अवगाहन कर वे पदरचना करने लगे। उन्होंने अपने रसग्रन्थ कृष्ण कर्णामृत में दिव्य माधुर्य भर दिया।

कृष्ण की भक्ति ही उनके जीवन की परम सम्पत्ति थी। मोरपंख-धारी शृंगाररस सर्वस्व, नराकार श्रीकृष्ण के सरस गान में ही सन्त विल्वमंगल ने अपने शेष जीवन का सदुपयोग किया। उन्होंने भगवान शिखिपच्छिमौलि का माधुर्य-उत्कर्ष गाया। आजीवन मधुर रस की उपासना की। श्रीकृष्ण को असीम मनोहरता के रूप में उन्होंने देखा। उन्होंने गोपीभाव की सरस अनुभूति के राज्य की प्रजा होने में आत्म-गौरव समझा। उन्होंने प्रेमभक्ति की साधना की। उन्होंने श्रीकृष्ण की शृंगारजा भक्ति में ही अपनी साधना अथवा उपासना की प्राण-प्रतिष्ठा की। उन्होंने गोपी वल्लभ कृष्ण का भजन किया। उनकी उक्ति है कि जिनका मुखचन्द्र विकसित कमल के समान है, जिनको मोरमुकुट अतिप्रिय है, जिन्होंने वक्षस्थल पर श्रीवत्सचिह्न और कौस्तुभमणि को धारण किया है, जो पीताम्बरधारी और सुन्दर हैं, गोपाङ्गनाओं के नयनकमलों से जिनका शरीर सम्पूजित है, गो और गोपी के समूह से आवृत्त हैं उन मधुर वेणु बजाते हुए दिव्य भूषण से शोभित गोविंद का भजन करता हूँ। सन्त विल्वमंगल कृष्ण के प्रेमसमुद्र में डूब गये। उन्होंने चिन्तामणि की कृपा-दृष्टि से, सोमगिरि की प्रपन्नता से और श्रीकृष्ण के दिव्य दर्शन से रस-पद्धति का भक्तिमूलक रहस्य समझा। उन्होंने राधा-कृष्ण का चिंतन किया। वे पूर्ण रूप से राधा-कृष्णमय हो उठे। लीलाशुक—सन्त विल्वमंगल का कथन है कि राधा के नयनों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

से लालित श्रीकृष्ण के लीलामय कटाक्ष तथा गाढ़ालिंगन और संग में अत्यन्त प्रेमासक्ति होने के कारण जो रीतियुक्त क्रीड़ा केलि से सोभित वंशी की अमृतध्वनि से युक्त है उस मनोहर-मुसकान पूर्ण माधुर्य से सम्पन्न चन्द्रमुख-कमल में मेरा मन मग्न हो गया है। श्रीकृष्ण की अनन्य भक्ति की विवेचना में ही वे तत्पर रहते थे। वे विरह-रसिक सन्त थे। अन्तिम समय में वृन्दान में उनकी चिंतामणि वेश्या और गृहस्थ-पत्नी से भी भेंट हुई थी। उस समय उनके लिये सब कुछ श्रीकृष्ण का ही रूप था। उन्होंने कन्धे तक लटकते हुए सुन्दर कुण्डल धारण करनेवाले, कोमल अंगुलियों को फिराते हुए धीरे-धीरे वंशी बजाने वाले त्रिभंगललित जगन्मोहन श्याम सुन्दर का ही निरन्तर ध्यान किया। वे प्रभु से यही आत्मनिवेदन करते थे कि हे देव, जब तक किसी निमित्त को लेकर मनुष्य की दशवीं दशा-मृत्यु आकर मेरे नेत्रों के सम्मुख समस्त पदार्थों का लोप न कर दे, उसके पहले ही आप अपने मुखचन्द्र का मुझे दर्शन दीजिये। जब तक मैं शब्द सुनने तथा स्पर्श अनुभव करने की शक्ति से रहित न हो जाऊँ, उसके पहले ही अत्यन्त मधुर वंशी बजाते हुए आप मुझे दर्शन दीजिये।

सन्त विल्वमंगल ने सरस भोगानुभूति-सुख का दिव्यीकरण किया, उनके जीनव की यह अमित मौलिकता है कि वैषयिक सुख चिन्मय सरस आनन्द में रूपान्तरित हो गया। उन्होंने अपने जीवन में नन्द-नन्दन के स्वरूप भूत रस का साक्षात्कार किया। लीलाशुक विल्वमंगल भगवदीय रस के महान काव्यकार थे, सौन्दर्य ब्रह्म श्रीकृष्ण की दिव्य लीलाके गायक थे।

रचना

सन्त विल्वमंगल की प्रसिद्ध रचनायें —कृष्णकर्णामृत, गोविन्ददामोदर स्तोत्र आदि हैं।

वाणी

हस्तमुत्क्षिप्य यातोऽसि बलात् कृष्ण किमद्भुतम्।
हृदयाद्यदि निर्यासि पौरुषं गणयामि ते।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हे कृष्ण, वलपूर्वक हाथ झिटक कर चले गये, इसमें क्या वड़ी वात हुई, आपका पौरुष तो मैं तव समझूँगा जब आप हृदय में से चले जायेंगे।

प्रणयपरिणताभ्यां प्रामवालम्वनाभ्यां
प्रतिपदललिताभ्यां प्रत्यहं नूतनाभ्याम्।
प्रतिमुहुरधिकाभ्यां प्रस्नुवल्लोचनाभ्यां
प्रभवतु हृदये नः प्राणनाथः किशोरः॥

प्राणाधार किशोर मूर्ति श्रीकृष्ण अपने प्रेमपूर्ण, आश्रयदाता, सदा सुंदर नित्यनूतन, क्षण-क्षण खिलते हुए आनन्दवर्षी नेत्रों से हमारा हृदय वशीभूत कर लें।

वर्हं नाम विभूषणं वहु मतं वेषाय शेषैरलं
वक्त्रं दन्तविशेषकान्तिलहरीविन्यासधन्याधरम्।
शीलैरल्पधियामगम्यविभवैः शृंगारभंगीमयं
चित्रं चित्रमहो विचित्रमहहो चित्रंविचित्रं महः॥

जिनकी वेषरचना के लिये मोरपंख ही पर्याप्त हैं, जिनका मुख दातों की विशेष कान्तिमयी झिलमिलाहट से सुशोभित ओठोंवाला है, अल्पबुद्धिद्वारा समझ में न आनेवाले वैभवभरे चरित्रों से युक्त उन भगवान का शृंगारभंगीमय तेज क्या ही अद्भुत है।

लीलाटोपकटाक्षनिर्भरपरिष्वङ्गप्रसङ्गाधिक
प्रीते रीतिविभङ्ग सङ्गरलसद्वेणुप्रणादामृते।
राधालोचनलालितस्य ललितस्मेरे मुरारेर्मुदा
माधुर्यैकरसे मुखेन्दुकमले मग्नं मदीयं मनः॥

राधा के नयनों से ललित मुरारी के लीलामय कटाक्ष तथा गाढ़ालिङ्गन और संग में अत्यन्त प्रेमासक्ति हो जाने के कारण जो रीतियुक्त क्रीडाकेलिसे शोभित वंशी की अमृतध्वनि से युक्त है उस मनोहर मुसकानपूर्ण माधुर्यरस से भरे हुए चन्द्रमुखकमल में मेरा मन मग्न हो गया है।

फुल्लेन्दीवरकान्तिमिन्दुवदनं बर्हावतंसप्रियं
श्रीवत्साङ्कमुदारकौस्तुभधरं पीताम्बरं सुन्दरम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गोपीनां नयनोत्पलार्चिततनुं गोगोपसंघावृत्तं
गोविन्दं कलवेणुवादनपरं दिव्याङ्गभूषं भजे ॥

जिनका मुखचन्द्र विकसित कमल के समान है, जिनको मोर मुकुट अतिप्रिय है, जिन्होंने वक्षस्थल पर श्रीवत्सचिह्न और सुंदर कौस्तुभ-मणि धारण किये हैं, जो पीताम्बरधारी और सुंदर हैं, गोपाङ्गनाओं के नयनकमलों से जिनका सुंदर शरीर सम्पूजित है, गो और गोपी के समूह से आवृत हैं उन मधुर वेणु बजाते हुए दिव्य भषणभूषित गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

परमिममुपदेशमाद्रियध्वं
निगमवनेषु नितान्तचारखिन्नाः।
विचिनुत भवनेषु वल्लवीना
मुपनिषदर्थमुलूखले निबद्धम् ॥

उपनिषदों के बीहड़ जंगलों में घूमते-घूमते नितान्त श्रान्त हुए लोगो! मेरे इस सर्वश्रेष्ठ उपदेश को आदरपूर्वक सुनो। उपनिषदों के सारतत्व-वेदान्त प्रतिपाद्य ब्रह्म की यदि खोज हो तो उसे व्रजाङ्गनाओं के घरों में ऊखल से बंधा देख लो।

यावन्न मे नरदशा दशमी दृशोऽपि
रन्ध्रादुदेति तिमिरीकृत सर्वभावा।
लावण्यकेलिभवनं तव तावदेतु
लक्ष्म्या समुत्क्वणितवेणुमुखेन्दुबिम्बम् ॥

प्रभो! इसके पूर्व ही कि मेरी अन्यान्य इन्द्रियों के साथ नयनरन्ध्रों से भी मनुष्य-शरीर की अन्तिम दशा—मरणावस्था प्रकट हो जाय—जिस अवस्था में सारी वस्तु अन्धकारमय—अदृश्य हो जाती है—ऐसी कृपा होनी चाहिये कि आपका गोल-गोल चाँद-सा मुखड़ा, जो लावण्य का क्रीड़ास्थल है, और जिसके अधरों से लगी हुई बाँसुरी ऊँचे स्वर से बजती रहती है, अपनी समग्र शोभा के साथ उन नेत्ररन्ध्रों के सामने उपस्थित हो जाय।

—कृष्णकर्णामृत

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्त रैदास

सदाचार श्रुति सास्त्र वचन अविरुद्ध उचार्‌यो।
नीर–खीर बिबरन्न परम हंसनि उर धार्‌यो॥
भगवत कृपा प्रसाद परम गति इहि तन पाई।
राजसिंहासन बैठि ग्याति परतीति दिखाई॥
वरनाश्रम अभिमान तजि पदरज बंदहिं जास की।
संदेह ग्रंथि खण्डन निपुन बानि बिमल रैदास की॥

—भक्तमाल

भगवान को अपना सर्वस्व मानने और जानने वाले व्यक्ति के सौभाग्य का वर्णन नहीं हो सकता है। भगवान के भक्त अच्युत गोत्रीय होते हैं, उनकी चरण-रज-वन्दना के लिये ऋद्धि-सिद्धि प्रतीक्षा किया करती हैं। सन्त रैदास भंगवान के परम भक्त थे, उनकी वाणी ने भागवती मर्यादा का संरक्षण कर मानवता में आध्यात्मिक समता-एकता की भावना स्थापित की। वे सन्त कबीर के अग्रज थे, भगवान की कृपा ने उन्हें उच्च-से-उच्च पद प्रदान किया। रैदास को प्रभु की भक्ति ने नीच से ऊँच कर दिया। आचार्य रामानन्द के बारह प्रधान शिष्यों में उनकी गणना होती है। सन्त रैदास ने शंकर के नीरस मायावाद से प्रभावित, बौद्धों के अनात्मवाद से वंचित और यवन-आक्रमण से त्रस्त भारतीय चेतना को सामाजिक क्रान्ति से समुत्तेजित कर सन्त मत की प्राण-प्रतिष्ठा की। भक्तिप्रधान हृदय में निर्गुण ज्ञानराशि की अलौकिक दीपशिखा प्रज्वलित कर, अज्ञान-अन्धकार का नाश कर रामानन्द स्वामी के प्रधान शिष्य रैदास और कबीर ने ज्ञान और भक्ति के समन्वय को अपने सन्तमत का मूलाधार स्वीकार किया।

सन्त रैदास मध्यकालीन भारत की बहुत बड़ी ऐतिहासिक आवश्यकता थे। विदेशी शासक की धर्मान्धता से उन्होंने भारतीय संस्कृति की

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आध्यात्मिक धारा का संरक्षण किया। विक्रम की चौदहवीं और पन्द्रहवीं शती के अधिकांश भाग को उन्होंने अपनी साधना से धन्य किया था। उन्होंने राजनैतिक निराशा में ईश्वर-विश्वास की परिपुष्टि की। परमात्मा की भक्ति से जन-कल्याण की साधना की। 'सन्तन में रैदास सन्त हैं'—कबीर की वाणी नितान्त सच है।

सन्त रैदास का जन्म काशी में हुआ था। वे चमार कुल में उत्पन्न हुए थे। उनके पिता का नाम रघ्घू था और माता का नाम घुरबिनिया था। दोनों के संस्कार बड़े शुभ थे। वे परम भगवद्भक्त थे, इसलिये रैदास को उत्पन्न करने का श्रेय उन्हीं दोनों को मिल सका।... शिशु रैदास ने जन्म लेते ही माता का दूध पीना बन्द कर दिया। लोग आश्चर्य में पड़ गये। स्वामी रामानन्द रघ्घू के घर आये। उन्होंने बालक को देखा, दूध पीने का आदेश दिया। ऐसा कहा जाता है कि पहले जन्म में भी रैदास रामानन्द के शिष्य थे, ब्राह्मण थे, गुरु की सेवा में कुछ भूल हो जाने से उन्हें शूद्र योनि में जन्म लेना पड़ा। रामानन्द स्वामी ने भागवत पुत्र उत्पन्न होने के कारण रघ्घू दम्पति की सराहना की, उनके पवित्र सौभाग्य का वरदान किया, अपने मठ में चले आये।

रैदास का पालन-पोषण बड़ी सावधानी से होने लगा। उनमें दैवी गुण अपने आप विकसित होने लगे। बाल्यकाल से ही वे साधु-सन्तों के प्रति आकृष्ट होने लगे, किसी सन्त के आगमन की बात सुनकर वे आनन्द से नाच उठते थे। सन्तों की सेवा को परम सौभाग्य मानते थे। माता-पिता के आज्ञा-पालन और प्रसन्नता-वर्द्धन में वे किसी प्रकार की कमी नहीं आने देते थे। उनकी रुचि देखकर माता-पिता को चिन्ता होने लगी कि कहीं रैदास बाल्यावस्था में घर त्याग कर संन्यास न ले लें। उन्होंने रैदास को विवाह-बन्धन में जकड़ने का निश्चय कर लिया।

रैदास का काम जूते सीना और भजन करना था। वे जूता सीते जाते थे और मस्ती से गाते रहते थे कि हे जीवात्मा यदि तुम गोपाल का गुण नहीं गाओगे तो तुम को वास्तविक सुख कभी नहीं मिलेगा। ...हरि की शरण आनेपर सत्यज्ञान का बोध होगा। जो राम के रंग में रंग जाता है उसे दूसरा रंग अच्छा ही नहीं लगता है। वे जो कुछ भी जूते सी कर कमाते थे उसमें से अधिकांश साधु-सन्तों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

की सेवा में लगा देते थे। सन्त रैदास को यह विश्वास हो गया था कि हरि को छोड़ कर जो दूसरे की आशा करता है वह निस्सन्देह यम के राज्य में जाता है। रात-दिन ईश्वर की कृपा की अनुभूति करना ही उनका जीवन बन गया था। वे अपने चंचल मन को भगवान के अचल चरण में बाँध कर अभय हो गये थे। यौवन के प्रथम कक्ष में प्रवेश करते ही रैदास का विवाह कर दिया गया। उनकी स्त्री परम सती और साध्वी थी, पति की प्रत्येक रुचि की पूर्ति में ही उसे अपने दाम्पत्य की पूरी तृप्ति का अनुभव होता था। भगवान के भजन में लगे पति की प्रत्येक सुविधा का ध्यान रखना ही उसका पवित्र नित्य कर्म बन गया था; इसका परिणाम यह हुआ कि भगवद्भक्ति के मार्ग में विवाह सहायक सिद्ध हुआ, गृहस्थाश्रम रैदास दम्पति के लिये बन्धन न बन सका। दोनों अपने कर्तव्य-पालन में सावधान थे। रैदास के माता-पिता बहुत प्रसन्न थे। घर में सुख-सम्पत्ति की कमी नहीं थी पर सन्तों की सेवा में अधिक धन रैदास द्वारा व्यय होते देखकर उनके माता-पिता चिढ़ गये। यद्यपि रैदास गृहस्थी में अनासक्त थे, जल में कमल की तरह रहते थे तो भी उनके माता-पिता को यह बात अच्छी नहीं लगी कि वे मेहनत से पैसा पैदा करें और रैदास उसे घर बैठे साधु-सन्त की सेवा में उड़ा दिया करें। उन्होंने रैदास दम्पति को घर से बाहर निकाल दिया, अलग कर दिया। रैदास अपने घर के पीछे ही एक वृक्ष के नीचे झोपड़ी डाल कर अपनी पत्नी के साथ रहने लगे। उन्होंने पिता और माता का तनिक भी विरोध नहीं किया। हरि-भजन में लग गये।

धीरे-धीरे उनकी ख्याति दूर-दूर तक संत-मण्डली में बढ़ने लगी। वे पतित पावन हरि की भक्ति करने लगे। वे एकान्त में बैठ कर अपनी रसना को सम्बोधित कर कहा करते थे कि हे रसना, तुम राम-नाम का जप करो, इससे यम के बन्धन से निस्सन्देह मुक्ति मिलेगी। वे रुपये-पैसे के अभाव की तनिक भी चिन्ता नहीं करते थे। सन्त रैदास परमात्मा के पूर्ण शरणागत हो गये। उन्होंने प्रभु के पादपद्मों से चिर-सम्बन्ध जोड़ लिया। उनके निवासस्थान पर संतो का समागम होने लगा। कबीर आदि उनके बड़े प्रशंसक थे। रामानन्द के शिष्यों में उनके लिये विशेष आदर का भाव था, श्रद्धा और भक्ति थी। सन्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रैदास की साधना पर सन्त गनी मामूर की वाणी का भी प्रभाव था। वे ऐसे नगर के अधिवासी हो गये जिसमें चिन्ता का नाम ही नहीं था। उनकी उक्ति है :

बेगमपुर शहर का नाम, फिकर अंदेस नाहिं तेहिं ग्राम।
कह 'रैदास' खलास चमारा, जो उस शहर सो मीत हमारा॥

वे निश्चिंत होकर संतो के संग में रहने को धन्य जीवन समझते थे। यथाशक्ति अपने आराध्य निर्गुण राम की पूजा में व्यस्त रहते थे, कहा करते थे कि प्रभु, आपकी पूजा किस प्रकार करूँ, अनूप फल-फूल नहीं मिलते हैं, गाय के बछड़े ने दूध जूठा कर दिया है, ऐसी स्थिति में मन ही आपकी पूजा के लिये धूप-दीप है। वे सदा रामरस की मादकता में मत्त रहते थे। उनका विश्वास था कि उनके राम उन्हें भवसागर से अवश्य पार उतार देंगे।

रैदास को माता-पिता से एक कौड़ी भी नहीं मिलती थी। जो कुछ दिन भर में कमा लेते थे उसी से संतोष करते थे। वैष्णवों और सन्तों को विना मूल्य लिये ही जूते पहना दिया करते थे। कभी-कभी रात में फांका करना पड़ता था। एक छोटी-सी झोपड़ी ही उनकी सम्पत्ति थी, उसमें भगवान की प्रतिमा प्रतिष्ठित थी, अपने आप तो वे पेड़ के नीचे पत्नी के साथ रहते थे।

एक दिन वे पेड़ के नीचे बैठ कर जूते सिल रहे थे। सत्संग हो रहा था। बहुत से सन्त एकत्र थे। सन्त रैदास ने साधुवेष में अपरिचित व्यक्ति को आते देखा, उन्होंने अतिथि की चरणधूलि मस्तक पर चढ़ा ली, भोजन कराया, यथाशक्ति सेवा की। अतिथि ने चलते समय उन्हें पारसमणि देना चाहा पर सन्त रैदास ने उसके प्रति तनिक भी उत्सुकता न दिखायी, लोहे को सोना वना कर प्रभावित करना चाहा पर रैदास का परम धन तो राम-नाम था। वे पारस रखना नहीं चाहते थे, अतिथि ने पारस झोपड़ी में खोंस दिया, कहा कि यदि आवश्यकता हो तो इसका उपयोग कर लीजियेगा। जन्म-मरण के बन्धन से मुक्ति चाहने वाले रैदास का मन पारस में नहीं उलझ सका। उनके नयन तो सदा प्रभु को ही निहारा करते थे, भयानक दुख आने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पर वे हरिनाम का स्मरण करते थे, पारस का उन्हें सपने में भी ध्यान न रहा। कुछ दिनों के बाद साधुवेष वाले अतिथि ने आकर उनसे पारस के सम्बन्ध में बात की। रैदास ने कहा कि मुझे तो इतना भी ध्यान न था कि झोपड़ी में पारस है, अच्छा हुआ, आप आ गये। उसे ले जाइये। अतिथि ने पारस लेकर बात-की-बात में अपनी राह पकड़ी, रैदास को विस्मय हुआ कि वह कहाँ चला गया। उन्हें क्या पता था कि स्वयं मायापति भगवान ही उनकी परख करने चल पड़े थे पर लाभ की बात यह थी कि उनकी माया पराजित हो गयी और सन्त रैदास ने अपने उपास्य देव का दर्शन कर लिया।

परमात्मा की लीला विचित्र है, वे अपने भक्तों और सेवकों की रक्षा में विशेष तत्पर रहते हैं, उन्हें इस तत्परता में आनन्द मिलता है। नित्य प्रातः काल पूजा की पिटारी में उन्हें पाँच स्वर्ण मुद्रायें मिलने लगीं। रैदास ने आत्मनिवेदन की भाषा में कहा कि प्रभु अपनी माया से मेरी रक्षा कीजिये, मैं तो केवल आपके नाम का बनजारा हूँ, मुझे कुछ नहीं चाहिये। भगवान ने स्वप्न में आदेश दिया कि मैं तुम्हारे निर्मल हृदय की बात जानता हूँ, मुझे ज्ञात है कि तुम्हें कुछ नहीं चाहिये पर मेरी रीझ और प्रसन्नता इसी में है। सन्त रैदास ने प्रभु से प्राप्त धन का सदुपयोग मन्दिर-निर्माण में किया, मन्दिर में भगवान की पूजा के लिये एक पुजारी नियुक्त किया गया। सन्त रैदास मन्दिर के शिखर और ध्वजा का दर्शन पाकर नित्य प्रति अपने आपको धन्य मानने लगे।

एक बार एक धनी व्यक्ति उनके सत्संग में आये। सत्संग समाप्त होने पर सन्तों ने भगवान का चरणामृतपान किया। धनी व्यक्ति ने चरणामृत की उपेक्षा कर दी। चरणामृत उन्होंने हाथ में लिया अवश्य पर चमार के घर का जल न पीना पड़े—इस दृष्टि से लोगों की आँख बचाकर चरणामृत फेंक दिया, उसकी कुछ बूंदें कपड़ों पर पड़ी। घर आकर धनी व्यक्ति ने स्नान किया, नये कपड़े पहने और जिन कपड़ों पर चरणामृत पड़ा था उनको भंगी को सौंप दिया। भंगी ने कपड़े पहने, उसका शरीर नित्यप्रति दिव्य होने लगा और धनी व्यक्ति कोढ़ का शिकार हुआ। वे रैदास के निवासस्थान पर कोढ़ ठीक करने की चिन्ता में चरणामृत लेने आये, मन में श्रद्धा और आदर की कमी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

थी। सन्त रैदास ने कहा कि अब जो चरणामृत मिलेगा वह तो निरा-पानी होगा। धनी व्यक्ति को अपनी करनी पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ और क्षमा माँगी। सन्त रैदास की कृपा से तथा सत्संग की महिमा से कोढ़ ठीक हो गया।

रैदास की वाणी का प्रभाव राज़रानी मीराबाई पर विशेष रूप से पड़ा था। मीरा ने उनको अपना गुरु स्वीकार किया है, उनके पदों में सन्त रैदास की महिमा का वर्णन मिलता है। राणा सांगा के राजमहल को अपनी उपस्थिति से रैदास ने ही पवित्र किया था। रैदास की आयु बड़ी लम्बी थी, उनके सामने कबीर की इहलीला समाप्त हुई थी। यह निश्चित बात है कि राणा सांगा की पुत्रवधू मीरा को उन्होंने शिष्य के रूप में स्वीकार किया था। चित्तौड़ की झाली रानी भी उनसे प्रभावित थी। काशी यात्रा के समय झाली रानी ने उनको चित्तौड़ आने का निमन्त्रण दिया था। वे चित्तौड़ आये थे। चित्तौड़ में रैदास ने अनेक चमत्कार दिखाये थे। मीरा ने अपने एक पद में 'गुरु रैदास मिले मोहि पूरे' कह कर उनके प्रति सम्मान प्रकट किया है।

रैदास ने कठवत के जल में गंगा का दर्शन किया। एक ब्राह्मण किसी की ओर से गंगा जी की पूजा करने नित्य जाया करता था। एक दिन रैदास ने उसे बिना मूल्य लिये जूते पहना दिये और निवेदन किया कि भगवती भागीरथी को मेरी ओर से एक सुपारी अर्पित कीजियेगा। उन्होंने सुपारी दी। . . . .ब्राह्मण ने गंगा की यथाविधि पूजा की और चलते समय उपेक्षापूर्वक उसने रैदास की सुपारी दूर ही से गंगा जल में फेंक दी पर वह यह देखकर आश्चर्यचकित हो गया कि गंगाजी ने हाथ बढ़ाकर सुपारी ली। वह संत रैदास की सराहना करने लगा कि उनकी कृपा से गंगा का दर्शन हुआ। इस बात की प्रसिद्धि समस्त काशी में हो गयी। पर गंगा जी ने रैदास पर साक्षात् कृपा की। सत्संग हो रहा था, रैदास को घेर कर सन्त मण्डली बैठी हुई थी, सामने कठवत में जल रखा हुआ था। रैदास और अन्य सन्तों ने देखा कि स्वयं गंगा जी कठवत के जल में प्रकट होकर कंकण दे रही हैं। रैदास ने गंगाजी को प्रणाम किया और उनकी कृपा के प्रतीकरूप में दिव्य कंकण स्वीकार कर लिया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रैदास केवल उच्च कोटि के सन्त ही नहीं महान कवि भी थे। उन्होंने भगवान के निरञ्जन, अलख और निर्गुण तत्व का वर्णन किया। उनकी सन्त-वाणी ने आध्यात्मिक और बौद्धिक क्रान्ति के साथ-ही-साथ सामाजिक क्रान्ति भी की। उन्होंने अन्तरस्थ राम को ही परम ज्योति के रूप में स्वीकार किया। उन्होंने कहा है कि मैं तो सर्वथा अपूज्य था, हरि की कृपा से मेरे ऐसे अधम भी पूज्य हो गये। उन्होंने निर्गुण वस्तु-तत्व का अमित मौलिक निरूपण किया है। उनका सिद्धान्त था कि अच्छी करनी से भगवान की भक्ति मिलती है और भक्ति से मनुष्य भवसागर से पार उतर जाता है। सन्त रैदास रसिक कवि और राजयोगी थे। उनकी उक्ति है :

'नरपति एक सेज सुख सूता सपने भयो भिखारी।
आछत राज बहुत दुख पायो—सो गति भयी हमारी।'

वे संस्कारी सन्त थे। लगभग सवा सौ साल की आयु में वे परम पद में लीन हुए।

रचना

इनकी वाणी का संकलन—'सन्त रैदास की वाणी' है।

वाणी

दरसन दीजै राम, दरसन दीजै। दरसन दीजै, विलम्ब न कीजै॥
दरसन तोरा जीवन मोरा। बिन दरसन क्यों जीवै चकोरा॥
माधव सतगुरु सब जग चेला। अब के बिछुरे मिलन दुहेला॥
धन-जोबन की झूठी आसा। सत-सत भाखै जन 'रैदासा'॥
जो तुम तोरो राम, मैं नहिं तोरों। तुम से तोरि कवन से जोरों॥
तीरथ-बरत न करों अंदेसा। तुम्हरे चरन-कमल का भरोसा॥
जहँ-जहँ जाओं तुम्हरी पूजा। तुम-सा देव और नहिं दूजा॥
मैं अपना मन हरि सों जोर्‌यों। हरि से जोरि सबन से तोर्‌यों॥
सब ही पहर तुम्हारी आसा। मन-करम-बचन कहै 'रैदासा'॥
नरहरि चंचल है मति मोरी। कैसें भगति करूँ मैं तोरी॥
तू मोहि देखै, हौं तोहि देखूं। प्रीति परस्पर होई॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तू मोहि देखै तोहि न देखूँ। यह मति सब बुधि खोई॥
सब घट अन्तर रमसि निरन्तर। मैं देखन नहिं जाना॥
गुन सब तोर, मोर सब अवगुन। कृत उपकार न माना॥
मैं तैं तोरि मोरि असमझ सौं। कैसे करि निस्तारा॥
कह 'रैदास' कृस्न करुनामय। जय जय जगत अधारा॥

प्रभुजी संगति सरन तिहारी। जगजीवन राम मुरारी॥
गली-गली को जल वहि आयो। सुरसरि जाइ समायो॥
संगति के परताप महातम। नाम गंगोदक पायो॥
स्वाति बूंद बरसे फनि ऊपर। सीस बिषै होइ जाई॥
ओही बूंद की मोती निपजै। संगति की अधिकाई॥
तुम चन्दन हम रेडु बापुरे। निकट तुम्हारे आसा॥
संगति के परताप महातम। आवै बास सुबासा॥
जाति भी ओछी करम भी ओछा। ओछा किसब हमारा॥
नीचे से प्रभु ऊँच कियो है। कह 'रैदास' चमारा॥

अब कैसे छुटै नाम रट लागी॥

प्रभु जी, तुम चन्दन हम पानी। जाकी अंग अंग बास समानी॥
प्रभु जी, तुम घन वन, हम मोरा। जैसे चितवत चन्द चकोरा॥
प्रभु जी, तुम दीपक, हम बाती। जाकी जोति बरै दिन-राती॥
प्रभु जी, तुम मोती, हम धागा। जैसे सोनहिं मिलत सुहागा॥
प्रभु जी, तुम स्वामी हम दासा। ऐसी भगति करै 'रैदासा'॥

राम मैं पूजा कहाँ चढ़ाऊँ। फल अरु फूल अनूप न पाऊँ॥
थनहर दूध जो बछरू जुठारी। पुहुप भंवर, जल मीन बिगारी॥
मलयागिरि बेधियो भुअंगा। विष अमरित दोउ एकै संगा॥
मन ही पूजा, मन ही धूप। मन ही सेऊँ सहज सरूप॥
पूजा-अरचा न जानूं तेरी। कह 'रैदास' कवन गति मेरी॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

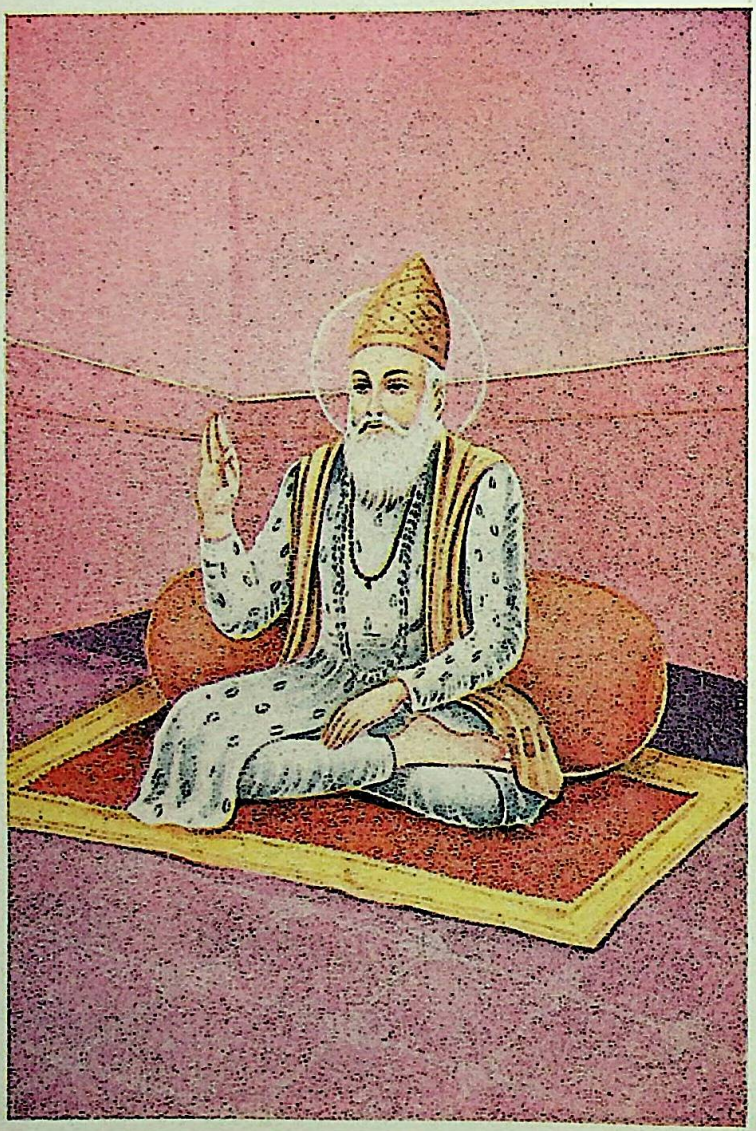

संत कबीर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्त कबीर

'मोरे पिया मिले सत ग्यानी।
ऐसन पिय हम कबहूँ न देखा,
देखत सुरत लुभानी।
आपन रूप जब चीन्हा बिरहिन,
तब पिय के मन मानी।
जब हंसा चले मानसरोवर,
मुकति भरे जहँ पानी।
करम जलाइ के काजल कीन्हा
पढ़े प्रेमकी बानी।
'धरमदास' कबीर पिय पाये,
मिट गयी आवा-जानी।'

—धरमदास

सन्त कबीर मध्यकालीन सन्तमत के प्रवर्तकों में एक स्वीकार किये जा सकते हैं। उन्होंने परमात्मा को—राम को घट-घट में व्यापी बता कर लोक-कल्याण की साधना की, वे परम निरपेक्ष और निर्मल मति से सम्पन्न सन्त थे। कबीर ने समस्त चराचर को राम से परिपूर्ण देखा, आत्मरूप अथवा चेतनस्वरूप पाया। वे सन्त थे। सन्त वे होते हैं जिनके जीवन में सदा सत्य रहता है। उन्हें पहाड़ से नीचे गिराया जाता है, समुद्र में छोड़ दिया जाता है, हाथी के पैर के तले डाल दिया जाता है, विषपान कराया जाता है पर वे सत्य के लिये हँसते-हँसते प्राण पर खेल जाते हैं। सन्त पाप का नाश करते हैं, पुण्य बढ़ाते हैं। पाँच-छः सौ साल पहले इसी तरह सन्त कबीर ने लोगों को सत्य का रास्ता बताया था। उस समय दिल्ली के राजसिंहासन पर बादशाह सिकन्दर लोदी आरूढ़ थे। चारों ओर अशान्ति और अराजकता की बढ़ती हो रही थी, देश पर विदेशी आक्रमण की आशंका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नित्य प्रति चढ़ती रहती थी। ऐसी स्थिति में सन्त कबीर ने सन्देश दिया कि यह नितान्त सच है कि राम को जपने से ही लोक का भला होगा। जब तक शरीर में श्वास है तब तक राम का भजन करते रहना चाहिये। उन्होंने लोगों के हृदय में ईश्वर और सत्य के प्रति विश्वास प्रकट किया। ईश्वर-भक्ति में लोगों की आस्था स्थित की। असंख्य जीवों को भवसागर से पार उतारने के लिये और परमार्थ के विकास के लिये गगन-मण्डल से कबीर के रूप में सत्य-ज्योति का पृथ्वी पर अवतरण हुआ।

कबीर के जन्म के सम्बन्ध में अनेक दन्तकथायें प्रचलित हैं। कुछ लोग भक्त प्रह्लाद के रूप में देवाङ्गना प्रतीचि से उनका प्राकट्य मानते हैं। सन्त कबीर काशी में प्रकट हुए थे। उस समय काशी में ही नहीं, समस्त भारतदेश में स्वामी रामानन्द के नाम की धूम मची हुई थी। वे बहुत बड़े महात्मा थे। काशी में ही रहते थे। ऐसा कहा जाता है कि एक समय अनजान में उन्होंने अपने एक ब्राह्मण शिष्य की विधवा कन्या को पुत्रवती होने का आशीर्वाद दिया। महात्मा का वचन सफल हुआ। सम्वत् १४५५ वि. की जेठ पूर्णिमा को उस कन्या ने एक बालक को जन्म दिया। लोकलज्जा और समाज के भय से उसने नवजात शिशु को काशी के लहरतारा तालाब में फेंक दिया। नवजात कमल के पत्ते पर खेलने लगा। आसमान में काले-काले बादल उमड़ रहे थे, बिजली चमक रही थी। लहर तारा तालाब के निकट से ही नीरू और नीमा जा रहे थे। नीमा को प्यास लगी थी। वह पानी पीने के लिये तालाब में उतर पड़ी। असहाय शिशु को देखते ही उसके मन में माता की ममता जाग उठी। उसने बच्चे को गोद में उठा लिया। नीरू जुलाहे ने कहा कि बच्चे को इस तरह घर ले जाने पर लोग हँसी उड़ायेंगे, समाज में निन्दा होगी। नीमा के सामने नीरू की एक न चली। दोनों ने बालक को घर लाकर पाल-पोष कर बड़ा किया, कबीर नाम रखा।

कबीर होनहार बालक थे। बचपन में लोगों ने उनमें अलौकिक और विलक्षण प्रतिभा देखी। सब लोग उन्हें प्यार करते थे। नीरू-नीमा अपने सौभाग्य पर फूले नहीं समाते थे। कबीर उन्हें कपड़े बुनने और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ताना-बाना ठीक करने में सहायता देने लगे। घर के कामकाज में हाथ बटाने लगे। साधु-सन्तों की सेवा करने में उनका मन बहुत लगता था। वे कभी-कभी कपड़े बेचने के लिये अड़ोस-पड़ोस के बाजार में भी जाया करते थे। एक दिन एक वैष्णव ने एक थान कपड़ा माँगा। कबीर ने बिना दाम लिये ही दे दिया। घर में भोजन के लिये एक पैसे का भी ठिकाना न था। माता-पिता कबीर की ही राह देख रहे थे। कबीर ने सच बात कह दी, फटकारे जाने पर रामनाम जपने लगे। दस साल की ही अवस्था में लोग उनमें सन्त का स्वभाव देखकर आश्चर्य में पड़ गये। कबीर घर के छोटे-मोटे काम भी करते थे और लोगों को राह चलते ईश्वर-भजन का उपदेश भी देते थे। लोग 'निगुरा' कह कर उनको टाल देते थे। कबीर को भी यह बात खटकती थी कि बिना गुरु के सच्चा ज्ञान नहीं मिलता। वे स्वामी रामानन्द को अपना गुरु बनाना चाहते थे। कबीर ने स्वयं कहा है :

'गुरु बिन चेला ज्ञान न लहै।
गुरु बिन यह जग कौन भरोसा, काके संग ह्वै रहिये।'

स्वामी रामानन्द ब्राह्मणों को छोड़कर निम्न वर्ग के लोगों को शिष्य ही नहीं बनाते थे। कबीर को एक उपाय सूझ गया। स्वामी रामानन्द नित्य तड़के ही गंगा-स्नान के लिये जाया करते थे। कबीर पंचगंगा घाट की सीढ़ियों पर मृतक की तरह पड़ गये। रामानन्द की खड़ाऊँ उनके सिर से टकरा गयी। स्वामी जी के मुख से सहसा 'राम' शब्द निकल पड़ा। कबीर ने रामनाम को ही गुरु-मन्त्र मान लिया। घर आकर कबीर ने माला और तिलक धारण कर लिये, अपने आपको रामानन्द का शिष्य प्रसिद्ध करना आरम्भ किया। नीमा ने स्वामी रामानंद से जाकर शिकायत की पर उन्हें किसी भी बात का पता नहीं था। कबीर ने रामानन्द से सारी बातें कह दीं। स्वामी रामानन्द उनकी श्रद्धा और भक्ति से बहुत प्रसन्न हुए। राम-नाम में कबीर की निष्ठा देखकर उनको गले लगा लिया, अपने शिष्य के रूप में स्वीकार किया।..... कबीर का मन घर के कामकाज में कम लगा करता था। वे गुरु के पास अधिक समय तक रह कर ज्ञान और भक्ति का उपदेश सुनने लगे। परम पवित्र काशी नगरी में दूर-दूर से लोग आते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

थे। वे अपने-अपने नगरों में जाकर सन्त कबीर की महिमा का बखान करने लगे। भारत के कोने-कोने से लोग उनके दर्शन के लिये आने लगे। शिष्यों की संख्या बढ़ने लगी। सन्त-मिलन कबीर के लिये परम धन था। उनके निवास पर उच्च कोटि के सन्तों का समय-समय पर सम्मिलन होता रहता था। कबीर और लोई का आजीवन सम्बन्ध रहा। ऐसा कहा जाता है कि वह कबीर की शिष्या थी और उसने आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन किया। उसके सम्बन्ध में विचित्र कथा है कि एक समय कबीर गंगा के उस पार गये। वे कुछ सन्तों के साथ एक जंगल से निकल रहे थे। कि उन्हें एक कुटी दीख पड़ी। उसमें एक स्त्री रहती थी। वह जब बालिका थी तब घरवालों ने कपड़े में लपेट कर उसको गंगा में पौढ़ा दिया था। साधु ने उसका पालन-पोषण किया और लोई नाम रखा। साधु के शरीरान्त के बाद भी वह उसी कुटी में रहती थी। उसने अभ्यागत सन्तों के लिये दूध से भरे सात प्याले लाये। कबीर ने एक प्याला रख लिया और कहा कि एक साधु और आ रहे हैं। लोई ने साधु के आने पर नाम पूछा, कबीर ने उत्तर दिया कि साधु का नाम कबीर है। लोई ने जाति पूछी, कबीर का उत्तर था,—'कबीर'। स्त्री आश्चर्य में पड़ गयी। उसे स्वर्गीय साधु की बात याद आ गयी कि तुम्हें इस कुटी में अपने गुरु का दर्शन होगा। उसने कबीर को अपना गुरु मान लिया और उनके साथ हो गयी। कबीर और लोई दोनों के जीवन की शोभा सादगी थी। कबीर की मनोवृत्ति पूर्ण सात्विक थी। उन्हें आडम्बर और पाखण्ड से बड़ी चिढ़ थी।

सन्त कबीर की कीर्ति-गाथा बादशाह सिकन्दर लोदी के दरबार में भी गायी जाने लगी। बादशाह जलन-रोग से पीड़ित थे। किसी ने उन्हें बताया कि सन्त कबीर के दर्शन से रोग चला जायेगा। वे काशी आये। ऐसा कहा जाता है कि कबीर का दर्शन करते ही उनके शरीर में शीतलता की लहर दौड़ गयी। उन्हें ऐसा लगा मानों किसी ने सारे शरीर में चन्दन पोत दिया हो। रोग चला गया। बादशाह दिल्ली लौट आये।

कबीर ने लोगों का ध्यान सामाजिक कुरीतियों और दोषों की ओर खींचा। काजी और मुल्लाओं ने बादशाह सिकन्दर लोदी का कान भर दिया कि कबीर इस्लाम के सिद्धान्तों का खण्डन कर रहे हैं। बादशाह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धर्मान्ध और कट्टर मुसलमान थे। ऐसा कहा जाता है कि प्रसिद्ध सूफी शेख तकी ने भी उनको कबीर के विरुद्ध उकसाया। कबीर को कड़ी-से-कड़ी यातना देने की बात सोची गयी। उन पर मिथ्या आरोप लगाया गया कि इस्लाम को छोड़कर देवी-देवताओं की पूजा करने के साथ-ही-साथ वेश्याओं को साथ लेकर घूमते रहते हैं। बादशाह ने कबीर को दरबार में उपस्थित होने का आदेश दिया। कबीर दरबार में आये पर उन्होंने बादशाह का अभिवादन नहीं किया और पूछने पर कहा कि मैं केवल ईश्वर के सामने सिर झुकाता हूँ। बादशाह ने उनको हथकड़ी-बेड़ी पहना कर नदी में डाल देने का आदेश दिया पर उनका बाल बांका न हुआ। कबीर ने कहा है :

'गंगा गुसाइन गहिर गभीर, जंजीर बांधि कर खरे कबीर।
गंगा की लहर मेरी टूटी जंजीर, मृगछाला पर बैठे कबीर।'

बादशाह कविहृदय के भावुक पुरुष थे। उन्होंने सन्त कबीर से क्षमा मांगी। कबीर के अलौकिक चरित्र से सिकन्दर लोदी बहुत प्रभावित हुए। शेख तकी कबीर को नीचा दिखाना चाहते थे। . . . नदी की मध्य धारा में एक बालक का शव बहता जा रहा था। तकी ने बादशाह से कहा कि यदि कबीर इसे जीवित कर दें तो सच्चे महात्मा हैं। कबीर के कहने से बालक जी उठा। बादशाह के मुख से निकल पड़ा 'कमाल' और आगे चलकर वही बालक 'कमाल' के नाम से कबीर का पक्का शिष्य हो गया। इसी प्रकार शेख तकी की मृतक कन्या को भी कबीर ने जीवन-दान दिया था। वह कमाली के नाम से विख्यात हुई।

कबीर को विरोधियों के कारण काशी छोड़ देना पड़ा। उन्होंने मगहर को अपनी तपोभूमि चुना। वे मगहर चले आये और भजन करने लगे। मगहर उत्तर प्रदेश में गोरखपुर और बस्ती जनपद की सीमा पर आमी नदी के तट पर रमणीय उपनगर है। कबीर ने उसे धन्य कर दिया।

सन्त कबीर ने समाज के दोषों को दूर करने का यत्न किया। उन्होंने उन आचार-विचारों का विरोध किया जो भगवान की भक्ति में बाधक थे। भगवान का अखण्ड रूप से भजन ही उनके मत से सबसे बड़ा मानवधर्म था। उन्होंने प्राणीमात्र के हृदय में एक ईश्वरीय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सत्ता का दर्शन किया। वे भगवान के भजन को मुक्ति-प्राप्ति का सबसे बड़ा साधन मानते थे। वे कहा करते थे कि भजन के लिये ही भगवान मनुष्य का शरीर दिया करते हैं, साहब अथवा परमात्मा की दृष्टि में सब समान हैं। राम का नाम जपना ही पवित्रतम कर्म है। हाथी और चींटी दोनों परमात्मा के प्यारे हैं। वे ज्ञानी सन्त थे। उनकी उक्ति है :

'साईं के सब जीव हैं, कीरी कुंजर दोय।'

सन्त कबीर जनता के कवि थे। उन्होंने हृदय से निकली सीधी-सादी जन-भाषा में भगवान के प्रेम और सत्य-कर्म पर कविता लिखी। उन्होंने कविता के लिये कविता नहीं की। वे सत्य के गायक थे, सत्य उनके समस्त साहित्य में ओतप्रोत है। कबीर ने अपने काव्य-शरीर का प्राण राम को माना, उनके राम-घट-घट में व्यापी निर्गुण, निराकार, चिदघनानंदमूर्ति हैं।

कबीर बालक के समान अत्यन्त सरल हृदय के सन्त थे। उन्होंने परमात्मा को माता-पिता और अपने आपको बालक माना है। वे ज्ञानी भक्त थे, सत्यरूपी ईश्वर को प्रियतम मानते थे। राम ही उनके सर्वस्व थे। वे एकतावादी अथवा समन्वयवादी सन्त थे। अपने सुधार-वादी विचारों से उन्होंने समाज का बड़ा कल्याण किया। पाखण्ड और दिखावट का अन्त कर दिया। सबको मिल जुल कर रहने की सीख दी। उन्होंने सत्यरूपी परमतत्व का प्रकाश जनता में फैलाया। उन्होंने राम की अभय पद-नगरी का पता बताया, उन्होंने बताया :

'मेरे राम की अभय पद नगरी, कहै 'कबीर' जुलाहा।'

कबीर ने ईश्वर की प्रियतम रूप में भी उपासना की थी। उन्होंने सत्य-ज्योति में अपनी पूरी-पूरी पहुँच का निवेदन किया है, उनकी सन्तमत-निष्ठा ने रहस्यमयी चिन्मय भगवदीय ज्योति का दर्शन किया।

कबीरो सन्त नदी गयौ, बहि रे।
ठाढ़ी माइ करारे टेरे, है कोई ल्यावै गहि रे।
बादल पानी, रामघन उनया, बरखै अमरित धारा।
सखी नीरगंग भरि आई, पीवै प्रान हमारा।
जहं बहि लागे सनक सनन्दन, रुद्र ध्यान धरि बैठे।
सुयं प्रकास आनन्द बमक में, धनि कबीर ह्वै पैठे॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्त कबीर ब्रह्मवादी सन्त थे। उन्होंने समस्त जगत को ब्रह्म-मय देखा। उन्होंने ब्रह्मानन्द-प्राप्ति के मार्ग में माया को बाधक माना, माया का वन्धन काटने को ही उन्होंने मुक्ति-पद स्वीकार किया।

नानक कवीर के समकालीन थे। ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने कवीर का दर्शन किया था। नानक कबीर की सत्य-साधना, एकतावाद और सन्तमत से वहुत प्रभावित थे। मगहरनिवास-काल में गोरखनाथ मठ के सिद्ध योगी और सन्त उनके सत्संग और दर्शन से अपने को धन्य मानते थे। सूफी सन्त शेख तकी पर कबीर का विशेष प्रभाव स्वीकार किया जाता है। कवीर की वाणी में कहीं-कहीं शेख तकी का नाम आया है। कवीर ने उन्हें ज्ञान की वातें समझायीं और उपदेश दिया। कवीर के शिष्यों में धरमदास का नाम लिया जाता है। कबीर का दर्शन उन्हें मथुरा में यमुना नदी के तट पर हुआ था।

कबीर की साधना में एक स्मरणीय वात यह है कि उन्होंने स्वानु-भूति के वल पर एकरस अखण्ड तत्व को अपने भीतर स्वप्रकाशित देखा था—समझा था।

जीवन के अन्तिम दिनों में कबीर मगहर में ही रहे। ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने सम्वत् १५७५ वि. में शरीर छोड़ा। अन्त काल में भी वे राम ही के स्मरण में तत्पर थे।

'मुआ कबीर रमत श्रीराम।'

हिन्दू उनके शव को जलाना चाहते थे और मुसलमान स्मारक बनाना चाहते थे। चादर उठाने पर शव के स्थान पर फूल दीख पड़ा। दोनों ने आधा-आधा ले लिया। काशी नरेश वीरसिंह बघेल ने काशी में उनका अन्तिम संस्कार किया। गोरखपुर जनपद के नवाब बिजली खान पठान ने आमी नदी के तट पर मगहर में ही एक अच्छा-सा स्मारक बनवाया। मगहर ऐतिहासिक स्थान है, हिन्दुओं की ओर से कबीर की समाधि भी वहीं बनायी गयी। मगहर कबीर की तपोभूमि होने के नाते पवित्र तीर्थ है, उसके कण-कण में सत्य, ज्ञान, तप, प्रेम और पुण्य का निवास है। कबीर जननायक थे, लोकसन्त थे, उन्होंने लोक में अलौकिक आत्मज्योति की रामरूप में अभिव्यक्ति सिद्ध की। वे उच्चकोटि के ज्ञानी सन्त थे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रचना

कबीरदास ने जन-बोली में सन्त साहित्य प्रस्तुत किया। शिष्यों ने समय-समय पर उनकी वाणी का संकलन किया। साखी, शब्द, रमैनी, बीजक आदि उनकी प्रसिद्ध रचनायें हैं।

वाणी

ऐसी बानी बोलिये, मन का आपा खोय।
अपना मन सीतल करै, औरन को सुख होय॥
बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजों आपना, मुझसा बुरा न कोय॥
बड़ा भया तो क्या भया, जैसे पेड़ खजूर।
पन्थी को छाया नहीं, फल लागै अति दूर॥
सुखिया सब संसार है, खावै, अरु सोवै।
दुखिया दास कबीर है, जागे अरु रोवै॥
एक न भूला, दोय न भूला, भूला सब संसारा।
एक न भूला दास कबीरा, जाके राम अधारा॥
कबीर कहता जात हूँ, सुनता है सब कोय।
राम कहे तेरा भला होयगा, नहिं तेरा भला न होय॥
कबीर राम न छोड़िये, तन-धन जाय तो जाय।
चरन कमल चित बोधिया, रामहि नाम समाय॥
लूटि सकै तो लूटियो, राम-नाम है लूट।
पीछे ही पछितावगे, यह तन जैहे छूट॥
तन को जोगी सब करै, मन को विरला कोय।
सब विधि सहजे पाइये, जे मन जोगी होय॥
कबीर कहा गरबियो, काल गहे कर केस।
न जानें कहाँ मारसी, कै घर कै परदेस॥
तोकों पीव मिलेंगे, घूँघट का पट खोल रे।
घट-घट में वह साईं रमता, कटुक बचन मत बोल रे॥
धन-जोबन का गरब न कीजै, झूठा पँच रंग चोल रे।
सुन्न महल में दीया बार ले, आसन सो मत डोल रे॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जोग-जुगत सों रंग-महल में, पिय पायो अनमोल रे।
कहै 'कबीर' आनन्द भयो है, बाजत अनहद ढोल रे॥

नैहरवा हमकों न भावै।
साईं की नगरी, परम अति सुंदर, जहँ कोई जाय न आवै।
चाँद-सूरज जहँ पवन न पानी, को संदेस पहुँचावै।
दरद यह साईं को सुनावै॥
आगे चले पन्थ नहिं सूझै, पीछे दोस लगावै।
केहि विधि ससुरे जाउं मेरी सजनी, बिरहा जोर जनावै।
विषय-रस नाच नचावै॥
विन सतगुरु अपनो नहिं कोई, जो यह राह बतावै।
कहत 'कबीर' सुनो भाई, साधो सपने न प्रीतम पावै।
तपन यह जिय की बुझावै॥

झीनी-झीनी बीनी चदरिया।
काहे के ताना, का है के भरनी, कौन तार से बीनी चदरिया।
इंगला-पिंगला ताना-भरनी, सुखमन तारसे बीनी चदरिया॥
आठ कँवल दस चरखा डोलै, पाँच तत्त गुन तीनी चदरिया।
साईं के सियत मास दस लागे, ठोक-ठोक के बीनी चदरिया॥
सो चादर सुर नर मुनि ओढ़े, ओढ़ि के मैली कीनी चदरिया।
दास 'कबीर' जतन से ओढ़ी, ज्यों-की-त्यों धरि दीनी चदरिया॥

हमकां ओढावै चदरिया, चलती बिरिया॥
प्रान राम जब निकसन लागे, उलट गई दोउ नैन पुतरिया।
भीतर से जब बाहर लाये, छूट गई सब महल अटरिया॥
चार जने मिलि खाट उठाइनि, रोवत ले चले डगर डगरिया,
कहत 'कबीर' सुनो भाई साधो, संग चली वह सूखी लकरिया॥

कौन ठगवा नगरिया लूटल हो।
चन्दन काठ के बनल खटोलना, तापर दुलहिन सूतल हो॥
उठो सखी मोरी माँग संवारो, दुलहा मोसे रूठल हो।
आये जमराज पलंग चढ़ि बैठे, नैनन आँसू टूटल हो॥
चारजने मिलि खाट उठाइनि, चहुँ दिसि धू-धू ऊठल हो।
कहत 'कबीर' सुनो भाई साधो, जग से नाता टूटल हो॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्त पीपा

प्रथम भवानी भक्त मुक्ति माँगन को धायो।
सत्य कहो तिहिं सक्ति सुदृढ़ हरि सरन बतायो॥
रामानन्द-पद पाइ भयो अति भक्ति की सीवा।
गुण असंख्य निर्मोल सन्त धरि राखत ग्रीवाँ॥
परसि प्रनाली सरस भइ सकल विस्व मंगल कियो।
पीपा प्रताप जगवासना नाहर को उपदेश दियो॥

—भक्तमाल

सन्त-चरित्र की प्रधानता अलौकिकता, दिव्यता और सिद्धि-सम्पन्नता में है। सन्त-चरित्र का वर्णन अद्‌भुत कार्य है; भगवान की प्रसन्नता और कृपा से सन्त-चरित्र का बखान करने की क्षमता मिलती है। सन्त पीपा एक विलक्षण सन्त थे। उनका चरित्र परम अद्‌भुत है। वे स्वामी रामानन्द के शिष्य थे, सिद्ध और परम भगवद्‌विश्वासी महात्मा थे। रैदास और कबीर के समकालीन थे; वे सन्त पीपा की भगवद्‌भक्ति और निर्मल श्रद्धा के बड़े प्रशंसक थे। सन्त पीपा ने रैदास और कबीर की ही तरह अपने आराध्य राम की चराचर में अनुभूति की। स्वामी रामानन्द ने कबीर, रैदास, पीपा आदि सन्तों के अध्यात्मबल और साधना के सहारे समाज में आध्यात्मिक क्रान्ति की। सन्त पीपा की सबसे बड़ी मौलिकता यह है कि उन्होंने विशाल राज्य और अधिकार पर लात मार कर, विषय और भोगसुख को तिलाञ्जलि देकर रामानंद की चरणधूलि सिर पर चढ़ा कर अन्तरव्यापी परमतत्व राम का भजन किया। वे गागरौन गढ़ के राजा थे। परम ऐश्वर्य-सम्पन्न थे। वे मेवाड़ के सीसौदिया कुल के महाराणा कुम्भ के सम्बन्धी थे। सन्त पीपा के वंशज राजा अचलदास का विवाह राणा कुम्भ की बहिन से हुआ था। राजा पीपा खींची चौहान थे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजा पीपा का जन्म सम्वत् १४४२ वि. के लगभग हुआ था। बाल्यावस्था से ही उनमें भक्तिभावना अंकुरित थी। वे देवी के परम भक्त होते हुए भी साधुओं और सन्तो की सेवा में सदा तत्पर रहते थे। राजसी ठाट-बाट में उनका मन कम लगता, उनके बारह रानियाँ थीं। पर वे विषय-विलास में अनासक्त रहते थे।

एक बार गागरोन गढ़ में एक सन्त-मण्डली का आगमन हुआ। राजा ने सन्तों के भोजन आदि की पूरी-पूरी व्यवस्था करवा दी पर दर्शन के लिये स्वयं न आये। सन्तों को राजा पीपा के आचरण से बड़ा विस्मय हुआ। सन्तों ने भगवान से राजा की बुद्धि सुधारने की प्रार्थना की।.....राजा पीपा रात को सो रहे थे। देवी ने उन्हें स्वप्न में आदेश दिया कि काशी जाकर स्वामी रामानन्द से दीक्षा लो, इससे भगवान का दर्शन होगा। स्वप्न समाप्त होने पर आँखें खुल गयीं। आधी रात का समय था। वे महामाया को प्रणाम करने के लिये चल पड़े। काली मंदिर से बाहर आने पर उन्होंने काशी के लिये प्रस्थान किया। भगवान को पाने के लिये वे इतने उत्सुक थे कि उनके लिये परम सुलभ राजसुख और विनश्वर भोग्य पदार्थों में नीरसता-ही-नीरसता दीखने लगी।

काशी में स्वामी रामानन्द के सामने उन्हें कड़ी-से-कड़ी परीक्षा का सामना करना पड़ा था। गंगा में स्नान कर वे स्वामी रामानंद की कुटी पर आये। रामानन्द ने अपने शिष्य से सन्देश भेजा कि मैं राजाओं से नहीं मिलता। पीपा जी का मन तो सन्त के निवासस्थान के पवित्र वातावरण से प्रभावित हो चुका था, उनके हृदय में भगवान की भक्ति की तरंगें लहरा रही थीं। वे तो पूर्ण रूप से रामानन्द के पद-पंकज पर सर्वस्व समर्पित करने के लिये ही काशी आये थे। उन्होंने राजसी वस्त्र उतार दिये, पलमात्र में ही वे राजा से रंक हो गये। स्वामी रामानन्द उनके आचरण से बहुत प्रसन्न हुए। थोड़ी-सी परीक्षा शेष रह गयी, स्वामी ने कहा कि कुएँ में कूद पड़ो। पीपा कुएँ में कूदने ही जा रहे थे कि रामानन्द के शिष्यों ने उनको ऐसा करने से मना किया। स्वामी रामानन्द ने पीपा को दीक्षा दी। वे विरक्त वेष में अपनी राजधानी में लौट आये। साधु और सन्तों की सेवा में लग

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गये। राजप्रासाद उनके लिये संन्यास-आश्रम वन गया। कुछ दिनों के बाद सन्त पीपा रामानन्द जी के दर्शन के लिये आकुल हो उठे। उन्होंने गुरु को गागरौन पधारने का निमन्त्रण दिया। स्वामी रामानन्द अपने चालीस शिष्यों के साथ गागरोन गढ़ आये। इस यात्रा में सन्त कबीर और महात्मा रैदास भी स्वामी जी के साथ थे। सन्त पीपा ने गुरु के स्वागत में विशेष उत्सव किया, शोभा-यात्रा निकाली, अपने कन्धों पर उनकी पालकी उठाकर राजधानी में प्रवेश किया। रामानन्द के सत्संग और उपस्थिति से असंख्य प्राणी धन्य हो गये।

कुछ दिनों तक गागरोन में निवास करने के वाद रामानन्द ने द्वारका जाने की इच्छा प्रकट की। पीपा भी साथ जाना चाहते थे। उनकी वारह रानियों ने चलने की अनुमति माँगी। सन्त पीपा ने कहा कि सारे सुख को तिलाञ्जलि देकर, राजसी वेष का परित्याग कर, भूख-प्यास की चिंता किये विना द्वारिका चलना होगा। रानियों ने साथ जाने का संकल्प छोड़ दिया। छोटी रानी सीता ने राजसी वेष उतार दिये, उनके हृदय में भक्ति के संस्कार थे, रामानन्द की अनुमति से वे द्वारका जाने का अवसर पा सकीं। सन्त पीपा की आज्ञा साथ चलने के लिये उन्हें मिल गयी। . . . द्वारका में सन्त पीपा का मन लग गया। रामानन्द स्वामी शिष्यों सहित काशी चले आये पर उनकी आज्ञा से पीपा द्वारका में रह गये। वे नित्य प्रति भगवान का दर्शन करने के लिये मन्दिर में जाया करते थे, उनका प्रेम भगवान के प्रति निरन्तर वढ़ता गया। वे द्वारकापति के दर्शन को ही अपने जीवन का परम श्रेय समझते थे। वे अहू और काली सिंध नामक नदियों के संगम पर एक गुफा में ठहरा करते थे, नदी में स्नान कर पीपा गुफा के ही मार्ग से मन्दिर में जाया करते थे। वे एक बार कृष्ण-दर्शन के लिये इतने आकुल हुए कि भावावेश में समुद्र में कूद पड़े। भगवान की कृपा से पीपा और उनकी पत्नी सीता का बाल बांका न हुआ। समुद्र में ही उन्हें रुक्मिणी-सहित कृष्ण का प्रत्यक्ष दर्शन हुआ, वे भगवान के दिव्य धाम में सात दिनों तक रहे। उन्होंने प्रभु से निवेदन किया कि अब मैं सदा पत्नी सहित यहीं रहना चाहता हूँ। भगवान ने सान्त्वना दी कि यद्यपि आप का कथन उचित है तो भी लोक यह समझेगा कि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भगवान के विरह में समुद्र में कूदने वाले भक्त का प्राणान्त हो गया, ऐसी स्थिति में द्वारका नगर में आपका सीता सहित प्रकट होना नितान्त आवश्यक है, भागवती मर्यादा यही है। कृष्ण ने अपनी छाप दी। सन्त पीपा सीता सहचरी के साथ समुद्र से बाहर आ गये। द्वारका में उनकी जयध्वनि से चारों ओर आनन्द का समुद्र उमड़ आया। लोगों ने उनकी चरणधूलि अपने मस्तक पर चढ़ा कर जीवन कृतार्थ किया। सन्त पीपा ने मन्दिर के पुजारी को भगवान की छाप दी; उन्होंने कहा–'जिनका इससे स्पर्श होगा वे भवसागर से पार उतर जायेंगे।' उनकी ख्याति दूर-दूर तक बढ़ने लगी। लोग उनके प्रति श्रद्धा और आदर का भाव रखने लगे। सन्त पीपा ने सम्मान-वृद्धि को अपनी साधना के मार्ग का बहुत बड़ा विघ्न समझा। उन्होंने एकान्त स्थान में भगवद्भजन करने का निश्चय किया।

वे वन की ओर चल दिये। सघन जंगल में पठानों ने सीता का हरण किया। पीपा भगवान के पादपद्म में निश्चित होकर एकान्त में भजन करने लगे। भगवान कृष्ण ने सीता की पठानों के हाथ से रक्षा की। वे उनकी कृपा से पीपा के पास सुरक्षित चली आयीं।

एक बार वे किसी सघन वन में जा रहे थे। उन्हें एक सिंह दीख पड़ा। सन्त पीपा का दर्शन करते ही उसकी हिंसावृति का अन्त हो गया। उसने पीपा के चरणों में आत्मसमर्पण किया। सन्त पीपा ने सिंह को दीक्षा दी।...इस घटना के बाद वे एक गांव में गये। उस गांव में उन्होंने भगवान के शेषशायी विग्रह का दर्शन किया। लाठी बेचने वाले व्यक्ति से एक लाठी मांगी। उसने पीपा से कहा हरे बांस की लाठी काट लो। लाठी बेचने वाले की लाठियाँ जमीन में गड़ गयीं, तत्काल उनको हरे बाँस के रूप में देखकर लाठी बेचने वाला आश्चर्य में पड़ गया। पीपा ने हरे बाँस से लाठी काट ली। उस व्यक्ति नें क्षमा माँगी। सन्त किसी का अपराध या दोष थोड़े ही देखते हैं। सन्त पीपा ने उसे गले लगा लिया।

पीपा के समकालीन चीधड़—श्रीधर भक्त थे। यद्यपि वे परम कंगाल थे तो भी उनका हृदय भगवान की भक्ति का धनी था। सन्त पीपा एक बार उनसे मिलने गये, साथ में सीता सहचरी भी थीं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भक्तराज ने उनका अच्छी तरह स्वागत-सत्कार किया। भोजन के समय चार पत्तल परोसे गये पर पीपा को आश्चर्य हुआ—श्रीधर की पत्नी की अनुपस्थिति से वे खिन्न हुए। उन्होंने सीता को भक्तराज की पत्नी को लाने का आदेश दिया, कहा कि हम लोग एक ही साथ भोजन करेंगे। श्रीधर मौन थे। सीता ने भक्तराज के घर में प्रवेश किया, उन्होंने आवाज दी। श्रीधर की पत्नी ने कहा कि बहिन मैं वस्त्र-हीन हूँ, लहंगा बेच कर सन्त की सेवा में उसका उपयोग किया, बाहर नहीं आ सकती। सीता सहचरी ने अपना आधा वस्त्र फाड़ कर पहना दिया। सन्त पीपा ने भक्तराज और उनकी पत्नी की त्याग-वृत्ति की बड़ी सराहना की। उन्होंने उनकी सहायता करने का निश्चय किया। राजपथ और बीच बाजार में पीपा दम्पति नाच-गाकर धन माँगने लगे। साध्वी सीता नाचती थीं और पीपा सारंगी बजाते थे।

सन्त के जीवन की प्रत्येक घटना उपदेशप्रद और विचित्र होती है। संत के प्रत्येक आचरण में कुछ-न-कुछ रहस्य अवश्य रहता है। सन्त पीपा श्रीधर भक्त को कृतार्थ कर टोड़े ग्राम आये। पोखरे पर स्नान करते समय कुछ मोहरें देखीं। उन्होंने मोहरों की बातें सीता से कहीं। चोरों ने उनकी बातें सुनीं। पीपा मोहरों के सम्बन्ध में यों ही बातें कर रहे थे, उनकी उनमें आसक्ति ही किस प्रकार होती! उन्होंने तो राजवैभव पर लात मार कर संन्यास लिया था। चोरों ने पोखरे के किनारे मोहरों के स्थान पर साँप-बिच्छू का ढेर देखा, उन्हें वर्तन में भर कर चोरों ने संत पीपा के छप्पर पर छोड़ दिया, वे सब मोहरें हो गये। पीपा ने भगवान की कृपा समझ कर उनका उपयोग साधु-सन्तों की सेवा में किया।

टोड़े के राजा सूरजसेन संत पीपा का दर्शन करने आये। उन्होंने पीपा से दीक्षा ली, सारा राजपरिवार तथा धन उनके चरणों पर समर्पित कर दिया। सन्त पीपा ने कहा कि यद्यपि आपकी निष्ठा मेरे प्रति स्तुत्य है तो भी इन वस्तुओं को मेरी मानते हुए भी सत्कार्य में इनका उपयोग करना आपका कर्तव्य है। राजा सूरजसेन सन्त पीपा की अनासक्ति और निष्काम भगवद्भक्ति से बहुत प्रभावित हुए।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पीपा टोड़े ग्राम में कुटी बना कर रहते थे। एक बनजारा बैल खरीदने आया। दुष्टों ने उसे बहका कर पीपा के स्थान पर भेज दिया। पीपा ने कहा, "कल दोपहर को बैल मिलेंगे।' बनजारा रुपये रख कर चला गया। दूसरे दिन पीपा ने उन रुपयों का उपयोग सन्तों के भण्डारे में किया। बनजारा के आने पर उन्होंने सन्तों की ओर संकेत किया कि भवसागर के खेप को उस पार ले जाने वाले मोटे-मोटे बैल हैं। बनजारा सन्त पीपा के चरणों पर गिर पड़ा। उन्होंने उसको दीक्षा दी।

पीपा सन्त-सेवा को बड़ा महत्व देते थे। सन्त को वे भगवान का रूप मानते थे। एक दिन वे किसी व्यक्ति के झगड़े का पंच बन कर सूरजसेन की राजसभा में गये थे। उनकी अनुपस्थिति में कुटी में कुछ सन्त आ गये। सीता सहचरी किसी बनिये के यहाँ से, रात को आने की बात कह कर भोजन का सामान लायीं। पीपा सीता की सन्तभक्ति से बड़े प्रसन्न हुए। वे अपने कन्धे पर सीता को बिठा कर बनिये के घर रात को ले गये, पानी बरस रहा था। बनिये को बड़ा आश्चर्य हुआ, सीता के पैर तक भीगे न थे, उसे आत्मज्ञान हुआ, वह उनके चरणों पर गिर पड़ा, कहा कि माता मुझे क्षमा कर दो, मैं अनजान बालक हूँ। उसने पीपा से दीक्षा ली।

एक बार उनकी कुटी में एकादशी को कीर्तन हो रहा था, जागरण का व्रत चल रहा था। राजा सूरजसेन भी उपस्थित थे। पीपा उठकर खड़े हो गये। हाथ मलने लगे। लोगों ने उनके हाथ में कालिख देखी। उन्होंने कहा कि द्वारका के मन्दिर में भगवान कृष्ण के चंदोवे में आग लग गयी थी। मैं बुझा रहा था। राजा ने साड़िनी-सवार भेज कर इस रहस्य का पता लगाया। बात ठीक थी। पुजारी ने कहा कि प्रत्येक एकादशी की रात को पीपा मन्दिर में उपस्थित रहते हैं, चंदोवे में आग लग गयी थी। वे बुझा रहे थे।

एक बार एक रूपवती तेलिन 'तेल लो' कहती जा रही थी। पीपा ने कहा कि तुम्हारे मुख से 'सीताराम' का नाम अच्छा लगेगा। तेलिन ने कहा कि इस नाम का उच्चारण विधवा करती है।...घर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पहुँचते ही उसके पति का देहान्त हो गया। पीपा जी ने उसके पति को जीवित कर दिया। दोनों सीताराम का निरन्तर स्मरण करने लगे।

सन्त पीपा बड़े परोपकारी महात्मा थे। सब को आत्मीय समझते थे। एक बार उनकी कुटी से कुछ चोर भैंस चुरा कर ले जा रहे थे। पीपा जी को पता चल गया। वे भैंस की पड़िया लेकर चोरों के पीछे दौड़ पड़े। आवाज दी कि पड़िया भी लेते जाओ, बिना इसके भैंस दूध नहीं देगी। सन्त का वाक्य था। चोरों को अपनी करनी पर बड़ा पश्चाताप हुआ। वे पीपा जी के चरणों पर गिर पड़े, उनसे दीक्षा लेकर भगवान के भजन में लग गये।

निस्सन्देह सन्त पीपा अपने समय की एक परम दिव्य विभूति थे। उन्होंने जीव और जगत को चैतन्य सत्ता से परिव्याप्त देखा। वे निर्गुण ज्ञानधारा में भक्त सन्त थे।

रचना

उनका पद गुरु ग्रन्थ साहब में संकलित है। 'पीपा की वानी' नाम से उनके हस्तलिखित संग्रह का भी उल्लेख मिलता है।

वाणी

काया देवा, काया देवल, काया जंगम–जाती।
काया धूप-दीप-नैवेदा, काया पूजा–पाती।
काया बहु खण्ड खोजते, नव निधि पाई।
न कछु आइबो, न कछु जाइबो, राम की दोहाई।
जो ब्रह्मण्डे सोई पिण्डे, जो खोजै सो पावै।
'पीपा' प्रनवै परम तत्त ही, सतगुरु होइ लखावै॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्त सेन

'जिहिं घर साध न पूजिये, हरि की सेवा नाहिं।
ते घर मड़हट सारखे, भूत बसै तिन माहिं॥'

—कबीर

सन्त-सेवा से बढ़कर धरती पर पवित्र कर्म दूसरा नहीं है, हरि की पूजा से बढ़ कर प्राणी के लिये पवित्र धर्म दूसरा नहीं है। जो सन्तदर्शन से आनन्दित तथा हरि के नाम-श्रवण से प्रफुल्लित नहीं होता है वह प्राणी सजीव मृतक है, अधम-से-अधम और नीच-से-नीच है। सन्त सेन उच्च कोटि के सन्त-पूजक और हरिसेवी थे, उन्होंने आजीवन इन दोनों कर्म-धर्म का नियमपूर्वक पालन किया। नामदेव और रैदास की तरह सन्त सेन भी निम्न वर्ग के थे पर उनके मन में भागवत साम्राज्य था, हृदय में भगवान का निवास था, बड़े-बड़े सन्त उठे। उनके चरण में मस्तक नत करने को अपने लिये परम गौरव समझ कर मानते थे। उनके ऊपर गुरुरूप में स्वामी रामानन्द के वरद हस्त अभयदान था, संरक्षक रूप में सन्त ज्ञानेश्वर की कृपा थी। इन सन्त अभंगों में सन्त सेन ने ज्ञानेश्वर की बड़ी महिमा गायी है। वे स्वयं सन्त थे। मध्यकालीन भारतीय सन्त-साहित्य के इतिहास में उनका महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

सेन के सम्बन्ध में कई एक मत प्रचलित हैं। कुछ लोगों ने उनको बीदर-नरेश का आश्रित माना है। कुछ लोगों ने उन्हें बघेलगढ़ के अधिपति का सेवक स्वीकार किया है। दूसरा मत कुछ अधिक मान्य है। सन्त सेन ने कुछ समय तक पण्ढरपुर में भी निवास किया था। उनके हृदय में सन्तसेवा के प्रति दृढ़ निष्ठा और भक्ति थी; उनके जीवन की ओर तो थी दूसरी ओर उनके मन में राजा की सेवा में ठीक समय पर न पहुँचने की चिन्ता थी। सन्त-समागम के बाद उन्होंने बाल बनाने की पेटी कन्धे पर रख कर राजभवन की ओर प्रस्थान किया। उन्हें राजपथ में जो लोग देखते थे वे ही उनकी प्रशंसा करने लगते थे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लगभग छः सौ साल पहले की बात है। बघेलखण्ड का
गढ़ नगर अत्यन्त समृद्ध और समलंकृत था। महाराजा वीर
पहुँचते राजकाल में इस नगर की प्रसिद्धि दूर-दूर तक थी। बड़े-बड़े
जीवित प्रासाद, भव्यभवन, रमणीय उपवन, स्वच्छ सरोवर और पवित्र
मन्दिरों से वान्धवगढ़ नगर सुशोभित था। उसी के एक भाग
प्रकृति की हरी-भरी गोद में सेन नाई का निवास-स्थान था। वे
थे। ए निस्पृह, उदार और सीधे-सादे व्यक्ति थे। राजा की सेवा में नियुक्त
थे। पी थे, वे निश्चित समय पर राजप्रसाद में राजा को तेल मलने तथा
पीछे द स्नान कराने के लिये नित्य प्रति जाया करते थे। अपने काम से काम
भैंस द रखते थे, जो कुछ मिल जाता था, सन्तोषपूर्वक उसी से अपने परिवार
बड़ा का भरण-पोषण करते थे। काम, क्रोध और लोभ आदि विकारों
दीक्षा ने उनकी चित्तवृत्ति का स्पर्श तक नहीं किया था। वे भगवान के
अटल विधान में पूरा विश्वास रखकर निश्चित रूप से जीवन का
थे। सदुपयोग करते थे। पूरे नगर में उनकी प्रशंसा होती थी, वे सबको
वे अपने परम आत्मीय के रूप में देखते थे। सब के प्रति समभाव रखते
राजा उनकी सेवा से सदा प्रसन्न रहते थे। वे संतसेवा और हरि-
उ में परमानंद का अनुभव करते थे।

नाम से न सेन नित्य प्रति बड़े सवेरे शौच आदि से निवृत्त होकर भगवान
राधना में लग जाते थे। भगवान की पूजा समाप्त करने के
बाद वे राजा की सेवा के लिये राजप्रासाद में जाते थे। एक
उनके जीवन ने विचित्र घटना देखी। वे बाल बनाने के सामान
लेकर राजप्रासाद की ओर जा ही रहे थे कि रास्ते में उनको
भण्डली मिली, सन्त-दर्शन के आनन्द में वे आत्मविभोर हो
इस बात की तनिक भी चिन्ता नहीं रही कि राजा की
क्ये राजप्रासाद जाने का समय हो गया है। वे सन्तों को
अपने घर आये। उनका यथाशक्ति स्वागत-सत्कार किया।
लगा। सन्त सेन सत्संग और कीर्तन में लग गये।
ान उनकी दृष्टि में उस समय कोई

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत्कण्ठा से प्रतीक्षा कर रहे थे। भगवान अपने भक्त की मर्यादा की रक्षा करने के लिये सदा प्रस्तुत रहते हैं। जिनके ध्यान में ब्रह्मा, विष्णु और महेश, बड़े-बड़े देवता, महर्षि, मुनि और ज्ञानी रात-दिन निमग्न रहते हैं उन्होंने सन्त सेन के रूप में राजा को दर्शन दिया। भगवान ने भक्त की चिंता को दूर करने के लिये मोरपंख का त्याग कर नाई की पगड़ी बांध ली, कुण्डल, वैजन्तीमाला, कौस्तुभ मणि उतार कर उन्होंने तन ढकने के लिये सेन की तरह वेष बना लिया। शंख, चक्र, गदा, पद्म का परित्याग कर जगत्पति ने कन्धे पर बाल बनाने की पेटी रख ली। जिनके चरणों की सेवा के लिये ऋद्धि-सिद्धि तरसती रहती हैं वे स्वयं बान्धवगढ़ के राजपथ से राजप्रासाद में पहुँच गये।

सेन के रूप में प्रभु का दर्शन कर राजा वीरसिंह को अपूर्व आनन्द प्राप्त हुआ, उनके अंग-अंग में अमृत प्रवाहित हो उठा। प्रभु ने राजा के शरीर में तेल मल कर स्नान कराया, नित्य के कार्य पूरे किये। उनके कोमल करों के स्पर्श से वीरसिंह परम मुग्ध हो उठे। राजा ने कहा कि सेन तुम यहीं रहो। मेरे राजप्रासाद में ही रहकर मुझे अपनी सेवा से तृप्त करते रहो। उन्हें क्या पता था कि भगवान चरणों के लालन के लिये लक्ष्मी सदा हाथ जोड़ कर खड़ी रहती हैं वे प्रभु स्वयं राजप्रासाद में सामने खड़े हैं। वीरसिंह ने ठीक ही कहा है। था, जीव प्रभु को पाने पर उनसे विलग नहीं हो सकता है, वह संग भगवत्मय जीवन को ही अपना स्वाभाविक धर्म समझता है। सन्तकृष्ण के वेष में आनेवाले प्रभु ने नित्य सेवा पूरी की, बाल बनाने की पेटी कर रख कर वे क्षणमात्र में राजप्रासाद से बाहर हो गये। राजा वीरसिंह में में लोगों ने बड़ा परिवर्तन पाया, वे सेन के वियोग से परम दुखी हुये। भगवान और उनके भक्तों की प्रत्येक लीला विचित्र होती है।

इधर सन्त सेन की मानसिक स्थिति विचित्र थी। एक ओर तो उनके हृदय में सन्तसेवा और सत्संग तथा कीर्तन से उत्पन्न प्रसन्नता थी दूसरी ओर उनके मन में राजा की सेवा में ठीक समय पर न पहुँचने की चिन्ता थी। सन्त-समागम के बाद उन्होंने बाल बनाने की पेटी कन्धे पर रख कर राजभवन की ओर प्रस्थान किया। उन्हें राजपथ में जो लोग देखते थे वे ही उनकी प्रशंसा करने लगते थे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कि राजा आज की सेवा से बहुत प्रसन्न हैं। सेन की समझ में कुछ भी न आया, प्रतिपल उनका आश्चर्य बढ़ता गया कि विलम्ब होने के नाते लोग मेरा मजाक उड़ा रहे हैं। सेन राजद्वार पर पहुँच गये।

सैनिक ने प्रसन्नतापूर्वक पूछा कि भीतर कुछ भूल तो नहीं गये।

सेन ने सोचा कि मैं तो भीतर गया ही नहीं था, वे चिंतित हो उठे। सैनिक ने कहा कि राजा आज बहुत प्रसन्न हैं। सन्त सेन समझ गये कि प्रभु ने, जगन्नाथ मदनमोहन राघवेन्द्र ने—नन्दनन्दन कृष्ण ने राजा को दर्शन दिया। उनके अंग-अंग पुलकित हो उठे। प्रभु को मेरे कारण इतनी चिंता करनी पड़ी, पृथ्वी पर मुझसे बढ़कर अभागा दूसरा है नहीं, मैं महापापी हूँ, भगवान को इतना कष्ट उठाना पड़ा। उनकी आँखों से अश्रुधारा बरसने लगी। उन्होंने विचार किया कि राजा वीरसिंह कितने भाग्यशाली हैं, प्रभु ने उन्हें दर्शन दिया, उनका जन्म लेना कृतार्थ हो गया। सेन उनके दर्शन के लिये दौड़ पड़े। राजा वीरसिंह के मुखमण्डल पर दिव्यता मुसकरा रही थी, हृदय में भक्ति की गंगा बह रही थी, वे सेन को देखते ही दौड़ पड़े। नाम से सेन का आलिंगन किया, कहा कि फिर तेल लगा दो। मैं ा स्नान करूँगा। उन्होंने सेन की ओर देखा। सेन का अंग-अंग ञ्चत था। उन्होंने राजा की भाग्य-सराहना की कि लीलापति सुन्दर भुवनमोहन भगवान ने उनको धन्य कर दिया। राजा सिंह विस्मित थे, उन्होंने सेन की चरण-धूलि मस्तक पर चढ़ा ली। ा ने कहा कि आप मेरे गुरु हैं, आपकी भक्ति के प्रताप से भगवान दर्शन से मैं सपरिवार कृतार्थ हो उठा। यह राजवंश जन्म-जन्म तक ा और आपके परिवार का ऋणी रहेगा। सेन को वैराग्य हो गया।

सन्त सेन ने कुछ दिन तक वान्धवगढ़ में निवास किया। उन्होंने स्वामी रामानन्द से दीक्षा लेकर तीर्थयात्रा का कार्यक्रम पूरा किया। वे वान्धवगढ़ से पण्ढरपुर चले आये। विठ्ठल की भक्ति में सराबोर हो गये।

उन्होंने सन्त ज्ञानेश्वर का सत्संग किया। वे ज्ञानेश्वर की ज्ञान-भक्ति से बहुत प्रभावित थे। उन्होंने सन्त ज्ञानेश्वर के स्तवन में अनेक अभंगों की रचना की। वे ज्ञानेश्वर को अपना सखा मानते थे। उनकी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उक्ति है कि 'मेरे सखा ज्ञानेश्वर विष्णु के अवतार हैं। चलो, चलो, अलकापुरी इन्द्रायणी में स्नान करने से मुक्ति चरणों में लिपटती है। सेन ज्ञानेश्वर के चरणों में लोटने आया है। वह भूमि धन्य है जिस पर ज्ञानेश्वर का निवास है। वे प्राणी धन्य हैं जो ज्ञानेश्वर का दर्शन करते हैं।'

सेन भक्त के साथ-ही-साथ ज्ञानी भी थे। उनके सन्तमत की नींव ज्ञान और भक्ति के समन्वय पर है। वे समस्त प्राणी में अपने प्रियतम भगवान का दर्शन करते थे, वे रामानन्द के चरण-चिह्नों पर पूर्णरूप से चलने वाले थे। अपने पण्ढरपुर-निवासकाल में उन्होंने विट्ठल के सम्बन्ध में अनेक अभंग लिखे जो भक्तिरस से परिपूर्ण हैं। वे विठ्ठल में पूर्ण अनुरक्त थे। उनकी उक्ति है 'विठ्ठल के दर्शन से मेरे मन की विषय-वासना का अन्त हो गया। राम-कृष्ण के प्रेमपूर्वक नाम-उच्चारण से काल दूर भाग जाता है। समस्त दोष मिट जाते हैं। उनके नाम का ऐसा प्रताप ही है। नाम से ताप नष्ट होते हैं। मुख से निरन्तर रामनाम का उच्चारण करते रहना चाहिये।' उनकी भगवन्नाम-भक्ति निस्सन्देह असाधारण कोटि की है। सेन की साधना में संकीर्तन और भजन मुख्य स्वीकार किये जा सकते हैं। सेन भजनानन्दी महात्मा थे। तत्कालीन सन्तसमाज ही भजनानन्दी था। रामानन्द के प्रमुख शिष्य भजन में तल्लीन थे, पण्ढरपुर कीर्तन और भजन का गढ़ था। सेन का कथन है कि कीर्तन प्रेम का सुखसाम्राज्य है। आनन्दपूर्वक हरि के गुणों का गान करना चाहिये। वैष्णवों का संग करना चाहिये। लोकलाज की तनिक भी चिन्ता न कर रामकृष्ण नारायण का ही मन्त्र निरन्तर संतों के संग में रह कर जपना श्रेयस्कर है। उनका चित्त सदा विठ्ठल के चरण में लगा रहता था, अन्तर में उन्हीं का स्मरण होता रहता था। सन्त-समागम ही उनका प्राणधन था। सन्त सेन के नाम पर सेन-पंथ का भी उल्लेख मिलता है।

सन्त सेन की कथनी-करनी की समानता उनके दिव्य जीवन की विशेषता थी। वे महान सन्त, परम ज्ञानी और प्रेमी-भक्त थे; महात्मा थे।

रचना

उनका पद गुरुग्रन्थ साहब में संग्रहीत है। मराठी में उन्होंने लगभग एक सौ पचास अभंगों की रचना की थी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पद

धूप-दीप घ्रित साजि आरती, वारने जाउ कमलापती।
मंगला, हरिमंगला। नित मंगल राजा राम राइ को।
उत्तम दीअरा निरमल बाती। तुही निरञ्जन कमलापती।
राम भगति रामानन्दु जानै, पूरन परमानन्द वरवानै।
मदन मूरति भवतारि गोबिन्दे, 'सेन' भने भजु परमानन्दे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्त वेमना

'सभी मनुष्यों की श्रद्धा उनके अन्तःकरण के अनुरूप होती है तथा यह पुरुष श्रद्धामय है, इसलिये जो पुरुष जैसी श्रद्धावाला है, वह स्वयं भी वही है—जैसी जिसकी श्रद्धा है, वैसा ही उसका स्वरूप है।'

—भगवद्गीता

सन्त वेमना निर्गुण ज्ञानधारा के शिवयोगी थे, शैव सन्त थे; उन्हें दक्षिण भारत—विशेषरूप से आन्ध्र का कबीर स्वीकार किया जाता है। उन्होंने समाज में आध्यात्मिक क्रान्ति की। उनके शिव का स्वरूप सर्वथा निराकार, अलख और अमूर्त है। यद्यपि वे वीरशैव धर्म में दीक्षित थे तो भी उन्होंने साम्प्रदायिक सिद्धान्त से अतीत परम शिव तत्व की उपासना की। वेमना ने तत्कालीन समाज में प्रचलित कुरीतियों, अन्धविश्वास और रूढ़िगत जड़ता की कड़ी आलोचना की, उन्होंने पन्द्रहवीं और सोलहवीं शती के दक्षिण भारत का आध्यात्मिक नेतृत्व किया, वे लोकसन्त थे। 'हरि को भजने वाला हरि का ही हो जाता है'—सिद्धान्त का नेतृत्व रामानन्द के शिष्य कबीर, रैदास और सेन आदि उत्तर भारत में कर रहे थे तथा, 'शिव को भजने वाला शिव का ही हो जाता है' इस उक्ति को शैव दक्षिण भारत में उसी समय वेमना आदि सन्त और महात्मा अपनी कथनी और करनी में चरितार्थ कर रहे थे; इस प्रकार का आन्दोलन निस्सन्देह अखिल भारतीय था। सन्त वेमना ने विक्रमीय पन्द्रहवीं शती के दूसरे चरण से विक्रमीय सोलहवीं शताब्दी के प्रथम चरण की अवधि को अपनी उपस्थिति से धन्य किया। वे सं. १४६९ से सं. १५३७ वि. तक सम्भवतः विद्यमान थे। भारतीय अध्यात्म-साधना के क्षेत्र में यह समय कर्ममार्ग के तिरस्कार और भक्तिमार्ग के अवलम्बन का था। उत्तर भारत में वैष्णवों और दक्षिण भारत में शैव सन्तों का सामाजिक चेतना पर पूरा-पूरा आधिपत्य था।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वेमना अपने समय की एक बहुत बड़ी आवश्यकता थे। समाज को सुधारवादी सन्तों की नितान्त अपेक्षा थी। साधना और उपासना का क्रम नित्य प्रति बिगड़ता जा रहा था। विष्णु और शिव का नृत्य-गान से मनोरंजन करनेवाली देवदासियों और वसिवियों के कारण मन्दिर पाप और वासना तथा व्यभिचार के गढ़ बन गये थे। लोग विषय-वासना के नारकीय कीड़े बन रहे थे। ऐसी स्थिति में सन्त वेमना ने शुद्ध आत्मस्वरूप शिव की उपासना का प्रचार किया। पाप और व्यभिचार की भावनाओं का खण्डन किया। वेमना सन्त कवि थे। निम्न रेड्डी वर्ग में जन्म लेकर भी उन्होंने उच्च-से-उच्च आत्मज्ञान दिया। तेलुगु साहित्य में सन्त वेमना को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। उन्होंने वेदान्तवेद्य परमात्मतत्व शिव की खोज की। वे वीरशैव सम्प्रदाय में पैदा हुए थे। सांसारिक विषय-सुखों का अच्छी तरह भोग कर उन्होंने योग-सिद्धि प्राप्त की थी, संक्षेप में यही उनकी जीवन-कथा है। शूद्र जाति के रेड्डी परिवार में जन्म लिया था। उनके पिता शिव के बड़े भक्त थे। वे सन्तों और भक्तों की सेवा से बड़े मुदित होते थे। वेमना के बचपन को उन्होंने विशेष रूप से प्रभावित किया था। वेमना के जन्म-स्थान के सम्बन्ध में अनेक मत हैं। दत्तमण्डल के अन्तर्गत कटारू-पल्लि नामक ग्राम को कुछ लोग उनका जन्म-स्थान मानते हैं। बहुतों की मान्यता है कि गुण्टूर से बीस मील की दूरी पर एक बड़े उपनगर में उनका जन्म हुआ था। वेमना के एक पद से पता चलता है कि नेल्लूर जिले के मूगचिन्तल गांव में उन्होंने जन्म लिया था। यह बात असंदिग्ध है कि वे मूगचिन्तल में ही पैदा हुए थे। वेमना प्रतिभा-सम्पन्न थे। बचपन से ही घर में उन्हें किसी प्रकार के अभाव का अनुभव नहीं हुआ। उनके माता-पिता बड़े सम्मानित और धनी थे इसलिये वेमना के पालन-पोषण तथा शिक्षा-दीक्षा में किसी प्रकार की त्रुटि नहीं रह सकी। उनका जीवन विलासी और विषयी हो चला।

वेमना का जीवन पूर्ण सांसारिक हो चला। वे घरवालों की तनिक भी चिन्ता किये बिना सारा धन वेश्या के घर ले जाने लगे। तत्कालीन समाज के अधिकांश लोग वेश्यागामी और विलासी थे। इस वाता-वरण का प्रभाव वेमना के मन पर भी पड़ा था। वे अपने-आपकी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कामवासना और व्यभिचार की आग से रक्षा नहीं कर सके। भोग और विषय से उन्हें शान्ति न मिली। वे अपनी भाभी नरसम्मा में बड़ी श्रद्धा रखते थे, भाभी के साथ ही रहते थे। एक दिन उन्हें उदास देखकर नरसम्मा ने कहा कि भैया, अड़ोस-पड़ोस के लोग आपका मजाक उड़ाते हैं, धनी लोग आपको उजड्ड और आवारा कहते हैं, यदि आप विवाह कर लें तो समाज वाले आपकी इस तरह निन्दा नहीं करेंगे। वेमना ने भाभी के कहने से विवाह कर लिया। उन्होंने दाम्पत्य-जीवन में प्रवेश किया, बहुत दिनों तक सुखपूर्वक जीवन के अनेक वसन्त रागरंग और मस्ती में बिताये। यद्यपि उनकी पत्नी बहुत कड़े स्वभाव की थी तो भी वे उसके प्रेम में रात-दिन डूबे रहते थे, उनकी आसक्ति इतनी बढ़ गयी कि एक पल के लिये भी पत्नी से अलग रह जीवित रहना उनके लिये कठिन हो गया। उन्होंने नौकरी की पर उसमें भी उनका मन नहीं लगता था, परिवार वाले उनसे अप्रसन्न रहते थे, वेमना को अपने-आप पर घृणा लगी। वे सोचने लगे कि मुझे धिक्कार है, मैं तो आया था आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिये, शिव की भक्ति के लिये और उलझ गया विषयवासना में, मैं कितना पापी हूँ कि जिस स्थान से मैंने जन्म लिया उसी का भोग—दाम्पत्य-जीवन में प्रवेश कर—करने लगा, मैं कितना पतित हूँ कि बचपन में मैंने जिस स्थान से दूध पीया उससे स्त्री की प्रसन्नता के लिये आसक्त हो गया। वे भगवान शिव से प्रार्थना करने लगे कि देव, मुझे पापपंक और व्यभिचार के रौख तथा वासना के कुम्भीपाक से शीघ्र ही बाहर निकाल कर अपने भजन और प्रेम में मग्न कर दीजिये। स्त्री के कलहकारी स्वभाव से खिन्न होकर ऐश्वर्य और भोग-विलास की क्षणमात्र में उपेक्षा कर वे संन्यास लेने के लिये प्रस्तुत हो गये। संन्यास के संस्कार तो उनमें विद्यमान थे ही। दस-ग्यारह साल की ही अवस्था से वे वैराग्य-पूर्ण कविता भी लिखने लग गये थे, नरसम्मा के सम्पर्क से उनकी चित्तवृत्ति में पहले से ही संन्यास के बीज अंकुरित हो रहे थे। गृहस्थी उनके लिये भार हो गयी, संन्यास उनके लिये परमानन्दरूप शिव की प्राप्ति का अचूक साधन बन गया। वे घर से निकल पड़े।

उन्होंने लम्बिका शिवयोगी से शिवमन्त्र की दीक्षा ली। वे उनकी सेवा में लग गये। लम्बिका योगी स्वर्णयोग में बड़े निपुण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

थे, वेमना ने स्वर्ण बनाने की कला सीखने के लिये उनसे दीक्षा ली पर थोड़े ही समय में स्वर्णयोग की बात भूल गये, उन्होंने हठयोग की साधना की। वे बहुत बड़े आत्मज्ञानी–शिवयोगी हो गये। पूरे दिगम्बर हो गये, स्त्री-पुरुष के भेदभाव से परे वस्त्रहीन होकर इधर-उधर घूम कर शिवतत्व का प्रचार करने लगे। उन्होंने लोगों को समझाया कि मा के गर्भ में जन्म लेते समय मानव ने कपड़ा देखा तक नहीं और शरीर छोड़ते समय भी उसका वह अनुसरण नहीं करता है, इसलिये जन्म और मरण के मध्यन्तर में वस्त्रधारण करना हास्यास्पद है। योगी वेमना ने कहा 'मैंने अपने हृदय में कोई घण्टाख सुन लिया है; निर्मल ज्योति देखी है, उसी ज्योति के अनुसन्धान से मैंने परम शिव–ब्रह्म का दर्शन कर लिया है। यह मिथ्या भाषण नहीं है।' इस प्रकार योगी वेमना ने भोग के स्थान पर योग का वरण कर लिया, संसार के स्थान पर हृदय में शिव की प्रतिष्ठा की, लौकिक अशान्ति और चिन्ता को अलौकिक शान्ति और शिवभक्ति में रूपान्तरित किया, शिव-ज्योति देखी। लम्बिका शिवयोगी के रूप में उन्हें योग्य गुरु की प्राप्ति हो गयी। उनकी दृढ़ मान्यता थी कि जब तक मुझे योग्य गुरु की प्राप्ति नहीं होगी, मेरे लिये ज्ञान प्राप्त करना असम्भव है। वे कहा करते थे कि जिस प्रकार अन्धकार के नाश के लिये दीपशिखा और रोग का अन्त करने के लिये चिकित्सा की आवश्यकता है उसी प्रकार भवरोग के अन्त के लिये गुरुचरणारविंद-मकरन्द और हृदय के अन्धकार के लिये शिवमन्त्र की अपेक्षा है। वेमना ने अपने हृदय में शिव की–परम ज्योति की खोज की, उन्होंने अनुभव किया कि शिव को अपने आप में ही खोजना चाहिये, आत्मा ही शिव है। अपने वचन में उन्होंने कहा है कि हाथ में मक्खन लेकर घी की खोज में निकलने वाले मूर्ख की तरह संसारी जीव हृदय में भगवान को रखकर–भगवान होकर भी उनकी खोज किया करता है।

सन्त वेमना ने अपने अनुयायियों के लिये कई नियम बनाये जिनमें सात प्रमुख हैं। उन्होंने अपने साथ चलने वालों को समझाया कि चोरी नहीं करनी चाहिये, दूसरों का हृदय नहीं दुखाना चाहिये, दूसरों की समृद्धि और उन्नति से नहीं जलना चाहिये; जीवमात्र पर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दया, ईश्वर का सदा चिन्तन करना चाहिये तथा क्रोध छोड़ना चाहिये और यथालाभ संतुष्ट रहना चाहिये।

वेमनाकालीन भारत में दो सिद्धान्तों—अद्वैत और वीरशैव की प्रधानता थी। वेमना वीर शैव सिद्धान्त के अनुयायी थे। इस सिद्धान्त के अनुसार शिवतत्व सहज शक्ति से लिंग और अंग के रूपों में परिणत हो जाता है। शक्ति, कला और भक्ति रूप में विभाजित हो जाती है। कला शिव में आत्मस्थ होकर सृष्टि में सहायता देती है और भक्ति जीव में रहकर मुक्ति का कारण बनती है। जीव शिव के साथ मुक्ति का अनुभव करता है। वीरशैव सिद्धान्त में इस मुक्ति के लिये योग का आश्रय लिया जाता है। वेमना ने शिव के साथ मुक्ति का अनुभव करने के लिये योग का आश्रय लिया। वेमना ने शिव-योगी होकर भी वीरशैव धर्म की कमजोरी को प्रकाशित करने का साहस किया, जो कार्य उत्तर भारत में सन्त कबीर ने किया उसी की पूर्ति वेमना ने दक्षिण भारत में की। उन्होंने वैष्णव और शैव दोनों के पाखण्ड और दम्भ की कड़ी आलोचना की। उन्होंने कहा कि वैष्णव नाममात्र से वैष्णव रह गये हैं, वे प्रजा को भ्रष्ट करते हैं; इसी प्रकार वीरशैव के सम्बन्ध में कहा कि वे लिङ्गधारी चोर हैं; ब्रह्म समस्त विश्व में व्याप्त है, अपने भीतर है, त्रिमूर्ति ब्रह्मा, विष्णु और महेश ब्रह्म नहीं हैं। वेमना ने जो कुछ भी कहा उसके मूल में उनकी अनुभूति प्रधान है। उन्होंने स्पष्ट कहा कि 'ब्रह्मा की लिखावट के विरुद्ध बोलने वाला, आदि विष्णु और शिव के विरोध में खड़ा होने वाला केवल वेमना है। माया में जन्म लेकर तथा पलकर जो माया को नहीं जानता है उसका जीवन व्यर्थ है, जो जानता है उसका जीवन धन्य है।'

वेमना ने अपने समकालीन समाज से कहा कि 'पोथों-के-पोथे पढ़ जाने मात्र से ही नीच व्यक्ति सभ्य और संस्कृत नहीं हो जाता है। उसके मन का ओछापन दूर नहीं होता है। भला अपनी पीठ पर इत्र आदि ढोने से कहीं गदहा गौरवान्वित होता है।' वेमना पार्वती-पति शिव नहीं—आत्मव्यापी निर्गुण शिव के उपासक और भक्त थे। वेमना कर्मबन्धन से मुक्त ज्ञानी थे। वेमना ने समस्त विश्व में परमात्मा की व्याप्ति की अनुभूति की। उन्होंने बताया कि परमात्मा का विश्व

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

से पृथक् अस्तित्व ही नहीं है, समस्त ब्रह्माण्ड ही उनका शरीर है, वायु प्राण है; सूर्य, चन्द्र और अग्नि उनके नेत्र हैं, विश्व त्र्यम्बक का विराट् रूप है। परमात्मा की भक्ति का स्वरूप-विवेचन करते हुए वेमना ने कहा कि रति की इच्छा से जिस प्रकार पुरुष अपनी स्त्री को मनाता है, सच्चा योगी भी उसी तरह की उत्कंठा और दीनता से परमगति पाने के लिये परमात्मा की उपासना करता है—उनको मनाता है। वे भगवद्भक्ति को पूर्वजन्म का फल मानते थे और शिव तथा विष्णु के मन्त्र में उनकी भेद-दृष्टि नहीं थी। उनका निश्चित मत था कि गंगाधर शिव ही सच्चे देव हैं, संगीत ही कर्णमधुर अनाहत नाद है, संसार में स्वर्ण ही उपभोग्य है, अंगज काम ही मृत्यु का कारण है, नैतिक पतन ही वास्तविक मृत्यु है।

वेमना ने नया पन्थ चलाया, उन्होंने समाज में आध्यात्मिक क्रान्ति को जन्म देकर उसका नवीन चेतना से शृंगार किया। उन्होंने जीवन के अन्तिम दिनों में समस्त आन्ध्र देश की यात्रा की। दिगम्बर वेमना को पत्थर मार-मार कर पागल समझकर लोग नगर और गाँव से बाहर कर दिया करते थे पर वेमना तो शिव के सच्चे योगी थे इसलिये उनपर इस व्यवहार का तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ सका। वे दिन-रात श्मशान में ही रहने लगे। धीरे-धीरे उनके शिष्यों की संख्या बढ़ गयी, वे पेड़ की छाया में बैठ कर उनकी जिज्ञासा की निवृत्ति और शंका का समाधान करते थे।

निस्सन्देह सन्त वेमना दक्षिणी कबीर थे। उन्होंने कहा कि शूद्रों की निंदा नहीं करनी चाहिये, उनके हृदय में निवास करने वाले परमात्मा की कोई जाति नहीं है, प्राणीमात्र परमात्मा के—शिव के ही रूप हैं। वेमना ने अभय होकर कहा कि झण्डा फहरा कर, ढिंढोरा पीट कर घोषणा करनी चाहिये कि परमात्मा एक हैं। प्रत्येक प्राणी के हृदय में उनका निवास है। साधनामार्ग पर चल कर दर्शन करने वाले को वे आनन्दसमुद्र में डुबा देते हैं, वे आनन्दस्वरूप हैं। वेमना उच्चकोटि के समाज-सुधारक थे। वे राष्ट्रीयता, एकता, समता और आध्यात्मिकता के देवदूत थे, भगवद्दूत थे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वेमना ने अन्त समय में मौन धारण किया था, जूठन खाकर, जमीन पर सोकर जीवन विताते थे। सड़सठ साल की अवस्था में उन्होंने पामूर नामक गांव के पास एक गुफा में प्रवेश कर समाधि ली। अनन्तपुर जनपद के कटारुपिल्ल गाँव में उनका एक मंदिर है, वेमना की समाधि है। सं. १५३७ वि. में वे शिव में लीन हो गये। सन्त वेमना महायोगी थे।

रचना

उनके पदों की संख्या लगभग तीन हजार है, आशुकवि थे। जनभाषा में अपने विचार प्रकट किये।

वाणी

वेमना का दृढ़ निश्चय है कि परतत्व–शिव का दर्शन करने वाला ही ब्राह्मण है। जव तक देहस्थ परमात्मा का ज्ञान नहीं प्राप्त हो जाता है, संध्या, वन्दन, जप और वेदाध्ययन आदि निष्फल हैं।

विच्छू के डंक और सांप के जवड़े में विष होता है पर खल जनों के सिर से पैर तक विष-ही-विष भरा रहता है।

सोने का पहाड़ मेरु ही जिनका धनुष है, चांदी का पहाड़–रजताद्रि जिनका आवास है ऐसे भगवान शिव तक को भिक्षाटन करना पड़ा है। कर्म-बन्धन कौन पार कर सकता है?

हे परमपिता, आपसे स्वतन्त्र मेरी सत्ता कुछ भी नहीं है, आप खेलते हैं तो मैं खेलता हूँ, आप हँसते हैं तो मैं हँसता हूँ, आप सोचते हैं तो मैं सोचता हूँ। आप रहते हैं तो मैं रहता हूँ। मेरे सभी व्यापार, आप की ही लीलायें हैं।

हे भगवान, बुढ़ापे में जब वात, पित्त और कफ का प्रकोप बढ़ जाता है, चित्त स्थिरता खो बैठता है, नेत्रों की ज्योति क्षीण हो जाती है, मृत्यु समीप आ जाती है तब मूर्ख मानव आपका उस समय किस प्रकार अन्वेषण कर सकता है?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नदी का जल चाहे जितना भी गन्दा हो, समुद्र में मिलने पर पवित्र माना जाता है, इसी प्रकार मानव की बुद्धि भी अन्त में ब्रह्म में लीन होने पर सार्थक और पवित्र बन जाती है।

भगवान की सृष्टि में पुरुष की जाति शर्म से रहित है। जिस स्थान (योनि) से वह जन्म लेता है बड़ा होकर उसी के प्रति रुचि दिखाता है, शैशव में जिनसे दुग्धपान करता है यौवन में उन्हीं को पकड़ने की लालसा रखता है।

सन्तों की संगति में रह कर मनुष्य सभी नीच गुणों-अवगुणों से मुक्त हो जाता है। चन्दन के लेप से देह की गन्ध ढक जाती है। सज्जन-गोष्ठी से बढ़ कर दूसरा कोई उत्तम काम नहीं है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परम वैष्णव नरसी मेहता

'जो अनन्य भाव से मेरे में स्थित हुए भक्त जन मुझ परमेश्वर को निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्काम भाव से भजते हैं, उन नित्य एकी भाव से मेरे में स्थितिवाले पुरुषों का योगक्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर देता हूँ।'

—भगवद्गीता

नरसी मेहता परम भागवत थे, वे गृहस्थ सन्त थे। गुजरात की परम पवित्र भूमि का सौभाग्य सर्वथा सराहनीय है कि उसकी रमणीय गोद में, दिव्य धूलि में नरसी मेहता ऐसे महान भगवद्रसिक ने जन्म लेकर भक्ति की मन्दाकिनी प्रवाहित की, वे मध्यकालीन भारत के भक्ति-भगीरथ थे, निस्सन्देह वैष्णवता उनसे कृतार्थ और धन्य हो गयी। नरसी मेहता गुजराती साहित्य के आदि कवि स्वीकार किये जाते हैं, वे गुजरात के जयदेव थे, उनकी कृष्णभक्ति-माधुरी से सराबोर वाणी गीतगोविन्द की दिव्यतम प्रतीक कही जा सकती है। वे परम वैष्णव और रसिक भक्त थे, उन्होंने गुजरात ही नहीं, समस्त भारत के कण-कण में निष्काम भगवद्भक्ति का सृजन किया, भगवान उनकी साधना से परम प्रसन्न होकर पूर्णरूप से उनके हो गये।

नरसी मेहता ने जूनागढ़ क्षेत्र को अपनी उपस्थिति से पवित्र किया था। जूनागढ़ में रावमाण्डलीक का शासन था। वे दिल्लीपति हुमायूं के अधीन थे। भारत की केन्द्रीय राजसत्ता शक्तिहीन-सी थी, हूमायूं के लिये बाबर ने व्यवस्थित राज्य नहीं छोड़ा था, चारों ओर अशान्ति, अराजकता और विद्रोह की आशंका थी, ऐसे समय में नरसी मेहता ने एक प्रतिष्ठित नागर ब्राह्मण कुल में जन्म लिया था। उनका परिवार रावमाण्डलीक की कृपा का पात्र था, उनके बड़े भाई वंशीधर मेहता जूनागढ़ के नगर-कोटपाल थे। लोग उनके परिवार का

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बड़ा आदर करते थे। ऐसे ऐतिहासिक अराजकतापूर्ण समय में नरसी मेहता ने भगवद्भक्ति का साम्राज्य स्थापित किया। उन्होंने कहा :—

'भरतखण्ड भूलल माँ जनमी जेणे गोविन्दना गुण गाया रे।
धन धन रे एनां मात-पिता ने, सफल करी ऐने काया रे।'

उन्होंने घोषणा की कि 'इस पृथ्वीलोक में भक्तिरूपी एक महान पदार्थ है, वह ब्रह्मलोक में नहीं है। जिन्होंने पुण्यों के द्वारा स्वर्ग प्राप्त किया, वे अन्त में चौरासी के चक्कर में गिर पड़े। हरि के भक्त तो मुक्ति न मांग कर बार-बार जन्म मांगते हैं जिससे वे नित्य सेवा, नित्यकीर्तन और नित्य उत्सव में नन्दकुमार भगवान श्रीकृष्ण को देखते रहें। इस पृथ्वी में जिन्होंने भरतखण्ड में जन्म लेकर गोविंद का गुण-गान किया उनके माता-पिता धन्य हैं, उन्होंने अपना जीवन सफल कर लिया।' नरसी मेहता की उक्ति है कि जो प्राणी हरि का भक्त नहीं है उसकी माता व्यर्थ ही दस मास बोझ ढोती रही। नरसी मेहता ने समाज को जागरुकता प्रदान की, भगवद्भक्ति की चेतना-ज्योति से उन्होंने संसार के अज्ञान-अन्धकार से ग्रसित जीवमात्र को सोते से जगाया।

नरसी मेहता का जन्म सौराष्ट्र प्रान्त के जूनागढ़ में सम्वत् १४७० वि. में हुआ था। उनके एक पद से पता चलता है कि वे जूनागढ़ के निकट तलाजा गाँव में पैदा हुए थे। उनके पिता कृष्ण-दामोदर और माता लक्ष्मीगौरी—दोनों बड़े ईश्वरभक्त और धर्म-परायण थे, नरसी ऐसे भागवत बालक को जन्म देना उन्हीं के सौभाग्य की बात थी। जब नरसी केवल पांच साल के थे, उनके माता-पिता ने स्वर्ग की यात्रा की। पालन-पोषण का भार उनकी दादी जयकुंवरि के कन्धों पर आ पड़ा। नरसी के बड़े भाई वंशीधर सम्मानित राजपद पर अधिष्ठित थे, नगर में तथा नागरकुल में उनकी विशेष प्रतिष्ठा थी। ...जयकुंवरि के धार्मिक और भक्तिमूलक संस्कारों का प्रभाव नरसी मेहता के विकास पर पड़ा। वे जन्म से गूंगे थे। अपनी दादी के साथ कभी-कभी हाटकेश्वर मन्दिर में भगवान शिव का दर्शन करने जाया करते थे। एक समय वे अपनी दादी के साथ शिवमंदिर जा रहे थे; उस समय वे केवल आठ साल के बालक थे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रास्ते में एक साधु की कृपा से उनका कण्ठ खुल गया। जयकुंवरि ने साधु से घर चलने का आग्रह किया पर साधु गिरनार चले गये। ऐसी मान्यता है कि भगवान श्रीकृष्ण ने ही साधु-वेष में अपने भक्त नरसी मेहता पर कृपा की थी। वे लीलानायक सब कुछ कर सकते हैं, उनकी कृपा से सम्भव असम्भव और असम्भव सम्भव के रूप में बदल जाते हैं। चलते समय साधु नरसी मेहता को 'राधाकृष्ण' मन्त्र का उच्चारण करते रहने के लिये कह गये थे।

नव साल की अवस्था में नरसी मेहता का विवाह कर दिया गया। उनकी सौभाग्यवती पत्नी माणिकगौरी परम रूपवती और सुलक्षण थीं, उनका आचरण पति के अनुकूल था, वे उस समय सात साल की थीं। नरसी मेहता रात-दिन भगवान के नाम का संकीर्तन किया करते थे, उनके अधरों पर 'राधाकृष्ण' मन्त्र सदा स्पन्दित होता रहता था, गृहस्थी सुखपूर्वक बीत रही थी, घर में किसी प्रकार का अभाव नहीं था, बड़े भाई वंशीधर के वे स्नेहपात्र थे पर उनकी पत्नी दुरितगौरी नरसी दम्पति से मन-ही-मन जलती थी, उनके प्रति कठोर व्यवहार करती थी। अनेक प्रकार की यातना देती थी।

नरसी मेहता पन्द्रह साल के हुए। उनकी दादी जयकुंवरि जीवित थीं। नरसी का अधिकांश समय सन्त-सेवा में बीतता था, वे रास देखते थे, भजन गाते थे और बड़ी सात्विक वृत्ति से रहते थे। नरसी मेहता को घास लाने का काम सौंपा गया था। वे घोड़े के लिये शाम को घास लाया करते थे। कालान्तर में दो सन्तानें हुईं। पुत्री का नाम कुंवरिबाई था, पुत्र का नाम शामलदास था। दुरितगौरी के कड़े स्वभाव से सहम कर जयकुँवरि ने अपने जीते जी वंशीधर को अनुकूल बना कर नरसी मेहता की कन्या कुँवरिबाई का विवाह काठियावाड़ के ऊना नामक गांव के श्रीरंगधर मेहता के पुत्र वसन्त-राय के साथ कर दिया।...जयकुँवरि के देहान्त के बाद दुरित-गौरी का मन बढ़ गया। वह नरसी मेहता के परिवार से प्रकट रूप से जलने लगी पर नरसी मेहता सदा उसे प्रसन्न करने की ही चेष्टा में रहते थे। दुरितगौरी इस बात को कभी नहीं सह सकती थी कि नरसी मेहता का परिवार उसके पति द्वारा कमाये धन का उपयोग

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करे। एक दिन शाम को वे घास लेकर आये, वंशीधर कहीं बाहर गये थे, दुरितगौरी ने नरसी मेहता को फटकारना आरम्भ किया और पति के आते ही उन्हें घर के बाहर कर दिया। वैशाख पूर्णिमा की रात थी, वे रात में घर के बाहर चबूतरे पर पड़े रहे, दूसरे दिन घर से बारह कोस की दूरी पर एक जंगल में चले गये, शिवमन्दिर में लिंग के सामने उन्होंने माथा टेका, सात दिनों के कठिन तप के बाद भगवान शंकर ने उनको दर्शन दिया। वें भगवान शंकर के साथ अपने प्रियतम श्रीकृष्ण के दिव्य दर्शन के लिये द्वारिका की ओर चल पड़े। भगवान शंकर नरसी मेहता को साथ लेकर कृष्ण के दिव्य धाम में पहुँच गये। नरसी मेहता ने दिव्य धाम का अत्यन्त रोचक वर्णन किया है। उनकी उक्ति है कि भूमि सोने की थी, भगवत्प्रासाद में विद्रुम और मणि के स्तम्भ थे। कण-कण में दिव्यता का रमण था। श्रीकृष्ण ने भक्तराज को स्वीकार किया। वे लीलापति के साथ उन्हीं के दिव्य धाम में रहने लगे।...शरद पूर्णिमा की तिथि आ गयी। श्रीधाम में रासोत्सव आरंभ हुआ। नरसी मेहता ने सखी-भाव में निमग्न होकर राग छेड़ दिये। वे मसाल दिखला रहे थे। श्रीकृष्ण ने उनके प्रेम में विभोर होकर अपना पीताम्बर ओढ़ा दिया। रास की समाप्ति पर श्रीकृष्ण तथा परिकर का ध्यान उनकी ओर गया, वे भगवल्लीला में इतने तन्मय हो गये थे कि मसाल से हाथ जल रहा था पर उन्हें इसका पता तक न था, भगवान ने उन्हें गले लगा लिया, रुक्मिणी ने उनकी निष्ठा से प्रसन्न होकर अपना हार दिया। श्रीधाम में इस प्रकार एक मास बीत गया। वे भगवान के आदेश से देवऋण, पितृऋण उतारने के लिये तथा भगवान की भक्ति का प्रचार करने के लिये वैष्णव वेश में घर लौट आये। श्रीकृष्ण ने उन्हें अपनी प्रतिमा दी, करताल, मोरपंख और पीतांबर दिया। नरसी मेहता वैष्णव रूप में घर आये, उनका जीवन भगवत्कृपा से सार्थक और सफल हो गया।

जिनके दृष्टि-परिवर्तन मात्र पर असंख्य लक्ष्मी सहम जाती हैं, ब्रह्मा का मद चूर हो जाता है, कोटि-कोटि शिव अपनी संहार की लीला भूल जाते हैं उन भगवान का चरित्र परम विचित्र है, उनका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वभाव कभी-कभी उन्हीं की कृपा से केवल उनके उपासक और भक्त समझ लेते हैं। वैष्णव वेश में नरसी मेहता को देख कर लोग आश्चर्य में पड़ गये। उनकी बात पर किसी को विश्वास ही न हुआ। दुरित-गौरी के कहने पर वंशीधर ने नरसी मेहता को सपरिवार घर के बाहर कर दिया। भगवान की दी हुई प्रतिमा ही नरसी-परिवार की सम्पत्ति थी। वे परिवारसहित धर्मशाला में चले आये, उनका दृढ़ विश्वास था कि मेरे श्रीकृष्ण की कृपा से जो कुछ भी हो रहा है, सब ठीक है। उन्हें अक्रूर का दर्शन हुआ, अक्रूर ने कहा कि भगवान कृष्ण के आदेश से मैंने आप के निवास तथा भोजन आदि की पूरी-पूरी व्यवस्था कर दी है। नरसी मेहता प्रभु की भक्ति में आत्मविभोर हो गये। वे समस्त विघ्न-बाधाओं से निश्चिंत होकर श्रीकृष्ण के सरस भजन में लग गये, उन्हीं की तरह उनका परिवार भी परम भागवत था। श्रीकृष्ण भक्तराज के योगक्षेम की व्यवस्था करने लगे; 'प्रभु का भक्त दुखी रहे—' भगवान को यह बात कदापि सह्य नहीं है। श्रीकृष्ण ने भयानक-से-भयानक और संकटपूर्ण परिस्थिति में उनको अभय और निश्चिन्त किया। उनके जीवन में अनेक विलक्षण घटनाओं का घटना पाया जाता है।...

...एक बार कुँवरि बाई को विदा कराने के लिये श्रीरंगधर मेहता के कुल पुरोहित आये, घर में एक पैसे का भी प्रबन्ध नहीं था, दूसरे ही दिन कन्या को विदा करना था, रात में वे सपरिवार भगवान की प्रतिमा के सामने कीर्तन करने लगे। प्रभु ने कृपापूर्वक आभूषण आदि की व्यवस्था कर दी और कुँवरिबाई को विदा कर पुरोहित ससुराल ले गये।

बड़नगर के दीवान मदन मेहता की पुत्री जूठीबाई से उन्होंने अपने पुत्र शामलदास के विवाह का वचन दिया। जूनागढ़ में मदन मेहता के परिचित सारंगधर मेहता रहते थे। उन्होंने मदन मेहता को पत्र लिखा कि पुरोहित ने नरसी मेहता के पुत्र से आपकी पुत्री का विवाह-सम्बन्ध भ्रम से निश्चित किया है, वे तो दरिद्र हैं, मजाक के लिये लोगों ने पुरोहित को उनके घर भेज दिया था। मदन मेहता ने नरसी मेहता को लिखा कि यदि आप मेरे सम्मान के अनुकूल बारात

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लेकर न आयेंगे तो मैं विवाह नहीं होने दूंगा। नरसी मेहता ने उत्तर दिया कि मुझे तो भगवान का भरोसा है, वे जो कुछ भी करेंगे उसमें मेरी हितभावना ही होगी। माघ शुक्ला पंचमी को एक कीर्तन मण्डली के साथ पुत्र का विवाह रचाने भक्तराज निश्चित हो कर वड़नगर की ओर चल पड़े। गाँव के लोग बहुत प्रसन्न हुए कि नरसी मेहता पर बड़नगर में खूब बीतेगी। इधर बड़नगर की सीमा पर साक्षात् नन्द-नन्दन नारायणी बारात लेकर उपस्थित थे, प्रभु ने भक्तराज का आलिंगन किया। मदन मेहता ने ऐसे भागवत परिवार में अपनी लड़की देने में बड़े गौरव का अनुभव किया। भगवान ने मदन मेहता से कहा कि मैं तो सदा नरसी मेहता के अधीन रहता हूँ, मैं इनका दास हूँ, स्मरण करते ही उपस्थित हो जाता हूँ। मदन मेहता के रोम-रोम आनन्द से पुलकित हो उठे। नरसी मेहता के नयनों से प्रेमामृत की धारा बरसने लगी। बड़े उत्साह से विवाह की शुभ विधि सम्पन्न हुई।....विवाह के कुछ ही दिनों के बाद शामलदास बीमार हो गये। नरसी मेहता ने उनको बचाने के लिये अथक श्रम किया पर मृत्यु के हाथ से पुत्र को बचा न सके। पुत्र के देहान्त के बाद भक्तराज ने पत्नी को समझाते हुए कहा कि—

'भलुं थयुं भांगी जंजाल,
सुखे भजीशुं श्री गोपाल।'

—बड़ा अच्छा हुआ, जंजाल समाप्त हो गया, भगवान का भजन सुखपूर्वक करूँगा। वे भगवान के भजन में दूने उत्साह से लग गये।

नरसी मेहता भगवान के हाथ के यन्त्र थे, प्रभु जिस प्रकार उन्हें नचाते थे, उसी तरह वे नाचते थे। एक बार पिता की श्राद्ध-तिथि थी। वंशीधर ने उनको अपने घर आने के लिये निमन्त्रित किया। उन्होंने बड़ी विनम्रता से निवेदन किया कि भगवान की पूजा और कीर्तन समाप्त करने के बाद ही आना सम्भव है। वंशीधर ने अपना अपमान समझा, उन्होंने कहा कि यदि ऐसी बात है तो अपने घर पर ही पिता का श्राद्ध कर लेना चाहिये। नरसी मेहता ने कहा कि यदि आपकी यही इच्छा है तो मैं चेष्टा करूँगा। उन्होंने सती माणिक-गौरी के आभूषण बन्धक रख कर श्राद्ध का प्रबन्ध किया। सात सौ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नागरों को निमन्त्रित किया था। घी की कुछ कमी थी, उसे लेने वे मोदी की दूकान गये। लौटने में देर हुई, वे मोदी को भजन सुनाने लगे। भगवान ने अक्रूर द्वारा श्राद्ध की सारी व्यवस्था सम्पन्न करायी, वे नरसी मेहता के वेष में स्वयं प्रकट हो गये। ब्राह्मणों को अच्छी तरह भगवान ने भोजन कराया, दक्षिणा में स्वर्ण मुद्रायें दीं। श्राद्ध की समाप्ति पर भोजन करने ही बैठे थे कि नरसी मेहता घी लेकर आ गये। भगवान अन्तर्धान हो गये। प्रभु अपने भक्त के लिये सब कुछ करते हैं, भक्त की हेठी नहीं होने देते हैं।

नरसी मेहता के जीवन में हुण्डी वाली कथा एक अमर घटना है। पत्नी की मृत्यु हो गयी। ब्राह्मणों ने एकादशाह और द्वादशाह श्राद्ध करने की सम्मति दी। पास में एक छदाम भी नहीं था। वे चबूतरे पर बैठे थे, चिंतित थे। थोड़ी देर में उन्होंने अपने सामने चार साधु देखे, वे द्वारका जा रहे थे; उनके पास सात सौ रुपये थे। साधुओं ने नरसी मेहता से कहा कि गांव वालों ने आपके ही पास हम लोगों को भेजा है, आप बहुत बड़े सेठ हैं, सात सौ रुपये लेकर हमें हुण्डी दे दीजिये, द्वारका में हम रुपये ले लेंगे। भक्तराज ने सरलतापूर्वक अपने प्रियतम प्राणाधार कृष्ण शामलशाह सेठ के नाम पर हुण्डी लिख दी, उनका दृढ़ विश्वास था कि प्रभु ने ही रुपये भिजवाये हैं। और वे द्वारका में अवश्य रुपये दे देंगे। बात ऐसी ही हुई। द्वारकापति श्रीकृष्ण ने शामलशाह सेठ के रूप में प्रकट होकर सात सौ रुपये देने की लीला में रस लिया। नरसी मेहता ने पत्नी के श्राद्ध और सन्तसेवा में रुपयों का सदुपयोग किया।

पत्नी के स्वर्गवास के बाद वे पाँच साल तक जीवित रहे। उन्होंने सारी चिन्ताओं से मुक्त होकर अपने प्रियतम श्रीकृष्ण की रसमयी लीला का गान किया। वे पूर्ण विरक्त होकर लोगों को भगवद्भक्ति का उपदेश देने लगे। उन्होंने राम-नाम से पूरा नाता जोड़ लिया। उन्होंने आजीवन भगवान श्रीकृष्ण की शृंगारमयी सरस लीला का आस्वादन किया। उनकी एक पद में उक्ति है कि 'वृन्दावन धन्य है, वृन्दावन की लीलायें और व्रजवासी धन्य हैं। अष्टसिद्धियाँ व्रज-वासियों के आंगन में खड़ी हैं और मुक्ति उनकी दासी है।...इस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लीलारस का स्वाद भगवान शंकर जानते हैं। योगी शुकदेव जानते हैं, व्रज की गोपियाँ जानती हैं।' नरसी ने स्वयं इस परम रहस्यमय भागवत रस की अनुभूति की :

'ए रसनो स्वाद शंकर जाणे, के जाणे शुक जोगी रे।
कोई एक जाणे, व्रजनी गोपी, भणे 'नरसैंयो' भोगी रे।'

नरसी को व्रज-लीला का साक्षात्कार होता रहता था।

हे आज सखी रे श्रीवृन्दावनमां, मधराते मोरली वागी रे।
सुणतां रे चित्त हर्यां मारी सजनी, भर निद्रामांथी हुं जागी रे।
हे जाग्रत स्वप्न सषुपति तुरीया, ऊनमीये ताली लागी रे।
त्रिगुण रहित थयुं मन मारूँ, काम वासना ताहां भागी रे।
ई जम जम दृष्टि पड़े मारी सजनी, तम तम ताणी मोहती रे।
नरसैंया चा स्वामिनी लीला, हरखे हीडु हुं जोती जोती रे।

नरसैया की चित्तवृत्ति आधी रात में मुरलीवादन से अपने वश में नहीं रह गयी। वर्णन की कितनी पवित्रता है इस रसमयी कामवासना रहित भागवत वाणी में। निस्सन्देह नरसी मेहता के भक्तिरसमाते नयन भगवान के लीला-दर्शन के अधिकारी थे। नरसी मेहता का जीवन भगवान के चरणों में पूर्ण समर्पित था, उनकी भगवद्भक्ति ही उनकी साधना का फल थी। उन्होंने कहा है कि नारायण का नाम लेने से जो रोकता है उसे छोड़ देना चाहिये। लक्ष्मीपति विष्णु का भजन ही सर्वोत्तम कार्य है, श्रेयस्कर है। उनकी कथनी-करनी में भगवद्भक्ति ही ओतप्रोत थी। वे हरि के पूर्ण शरणागत थे। उनकी सीख थी कि 'कराल कलिकाल में श्री हरि का नाम ही रटना चाहिये। श्यामसुन्दर सदा भक्त के अधीन रहते हैं, वे समस्त कार्य स्वयं सिद्ध कर दिया करते हैं। भगवान का भजन भवसागर से पार उतार देता है।...जिसका चित्त श्रीकृष्ण के चरण में लग जाता है वह किसी का विरोध नहीं करता है।' नरसी मेहता भगवान से सदा यही आत्मनिवेदन करते थे कि हे मुरारी, पहले आपने अनेक भक्तों की रक्षा की है। उन्हें सहायता दी है। हे मेरे स्वामी, मेरे लिये आपकी शरण ही बहुत है। भगवान उनके सर्वस्व थे। नरसी मेहता ने भगवान से मुक्ति के स्थान पर भक्ति मांगी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एक बार जूनागढ़ के निवासियों ने नरसी मेहता की परीक्षा ली। सारंगधर मेहता उनके बहुत बड़े विरोधी थे। उन्होंने षड़यन्त्र रचा। भक्तराज की परीक्षा के लिये चंचला वेश्या भेजी गयी। वेश्या ने अत्यन्त अद्भुत शृंगार किया, श्वेत साड़ी पहनी, स्वर्ण और रत्नों के आभूषण धारण किये, नयनों को नचाती हुई तथा मीठी-मीठी नूपुर-ध्वनि करती हुई वह भक्तराज की भजन-कुटी में पहुँच गयी। नरसी मेहता भजन में लीन थे। आंख खोलने पर उन्होंने अपने सामने रूपवती स्त्री देखी। वेश्या ने कहा कि मैं प्रभासक्षेत्र की रहनेवाली हूँ, श्रीकृष्ण का दर्शन करने के लिये द्वारका जा रही हूँ। एक रात आपकी कुटी में रहना चाहती हूँ। नरसी मेहता ने उसके ठहरने की व्यवस्था कर दी। आधी रात को वेश्या ने उनसे कामवासना तृप्ति की भीख माँगी। नरसी मेहता ने कहा कि माता, हरि के चरणकमल के रस का आस्वादन आत्मतृप्ति का सबसे बड़ा साधन है। प्रभु के पवित्र नाम का कीर्तन कर आप भवसागर से पार उतरने का यत्न कीजिये। सन्त-वाणी ने वेश्या के मन पर प्रभाव डाला, वह गिड़गिड़ा कर नरसी मेहता के चरणों पर गिर पड़ी, क्षमा माँगी अपने घर जाकर भगवान के भजन में लग गयी।...सारंगधर मेहता समाचार जानने के लिये चंचला के घर गये, वे उसकी स्थिति देखकर लौट पड़े। रास्ते में उन्हें साँप ने काट लिया। नरसी मेहता ने उन्हें भगवान का चरणामृत पिला कर जीवित कर दिया। उन्होंने अपकार का बदला उपकार से दिया पर सारंगधर तो उनको नीचा दिखाना चाहते थे। उन्होंने रावमाण्डलीक को नरसी मेहता के विरुद्ध उकसाया कि वे अनाचारी और व्यभिचारी हैं। रावमाण्डलीक ने भक्तराज को राजसभा में उपस्थित होकर अभियोग अप्रमाणित करने का आदेश दिया। वे राजसभा में जा रहे थे कि रास्ते में एक ब्राह्मण से भेंट हुई, ब्राह्मण ने अपनी कन्या के विवाह में सहायता स्वरूप साठ रुपये माँगे, भक्तराज को केदार राग अत्यन्त प्रिय था, वे उससे भगवान का आवाहन किया करते थे। उन्होंने धरणीधर ब्राह्मण से साठ रुपये लेकर केदार राग बन्धक रख दिया। ...राजसभा में उपस्थित होने पर राव-माण्डलीक ने एक पुष्पहार दिया, राधा-दामोदर को पहनाने का आदेश दिया, कहा कि यदि यह हार कल प्रभात काल में आप के गले में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भगवान पहना देंगे तो आप निर्दोष समझे जायेंगे। मन्दिर का पट बन्द कर दिया गया। भक्तराज चिंतित होकर मन्दिर के आंगन में चबूतरे पर बैठ गये। रात कटना कठिन हो गया। भगवान ने नरसी मेहता के वेष में धरणीधर के घर जाकर रूपये देकर केदारराग छुड़ा लिया। भरपायी का प्राप्तिपत्र भगवान ने मन्दिर के आंगन में गिरा दिया। नरसी मेहता ने प्रभु की लीला से मुग्ध होकर केदार राग गाया, भगवान का आवाहन किया, उन्होंने गाया कि मुझे मृत्यु से भय नहीं है, मुझे आप की अपकीर्ति से भय है कि भगवान अपने भक्त की रक्षा न कर सके। अरुणोदय हो रहा था, मन्दिर का पट अपने आप खुल गया। भगवान ने अपने गले का हार प्रत्यक्ष रूप से नरसी मेहता को पहना दिया। उनकी जयध्वनि से दिशायें गूंज उठीं। ...रावमाण्डलीक ने क्षमा मांगी।

नरसी मेहता ने इस घटना के बाद अपना अन्तिम जीवन द्वारका में बिताना चाहा। वे द्वारका चले गये। प्रभु के स्तवन में असंख्य पद लिखे। जीवन के अन्तिम पांच साल उन्होंने द्वारका में ही बिताये। सम्वत् १५७७ वि. में वे गोलोक गये। नरसी मेहता उच्चकोटि के भक्त सन्त थे, भागवत गृहस्थ और असाधारण महात्मा थे।

रचना

उन्होंने भागवत के दशमस्कन्ध और गीतगोविंद का अनुवाद किया। राससहस्त्रपदी और आत्मलक्षी पद आदि की रचना की।

वाणी

वैष्णव जन तो तेने कहीये, जे पीड़ पराई जाणे रे।
पर दुःखे उपकार करे तोये, मन अभिमान न आणे रे॥
सकल लोकमां सहुने वन्दे, निन्दा न करे केनी रे।
वाच काछ मन निश्चल राखे, धन धन जननी तेनी रे॥
समदृष्टि ने तृष्णा त्यागी, पर स्त्री जेने मात रे।
जिह्वा थकी असत्य न बोले, परधन नव झाले हाथ रे॥
मोहमाया व्यापे नहिं जेने, दृढ़ वैराग्य जेना मनमां रे।
राम नाम शुं ताली लागी, सकल तीरथ तेना तनमां रे॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वण लोभी ने कपट रहित छे, काम-क्रोध निवार्यां रे।
भणे 'नरसैंयो' तेनुं दरसन करतां, कुल एकोतेर तार्यां रे॥

हे आज सखी रे श्रीवृन्दावन मां, मधराते मोरली वागी रे।
सुणतां रे चीत हर्यां मारी सजनी, भर निद्रामांथी हुँ जागीरे॥
हे जाग्रत स्वप्न संपुपति तुरीया, ऊनमीये ताली लागी रे।
त्रिगुण रहित थयुं मन मारूँ, काम वासना ताहां भागी रे॥
ई जम-जम दृष्टि पड़े मारी सजनी, तम-तम ताणी मोहती रे।
नरसैंया चा स्वामिनी लीला, हरखे हीडु हुँ जोती जोती रे॥

भूतल भक्ति पदारथ मोटुं, ब्रह्मलोकमां नाहीं रे।
पुण्य करी अमरापुरी पाम्या, अन्ते चौरासी माहीं रे॥
हरिना जन तो मुक्ति न मांगे, मांगे जन्मोजन्म अवतार रे।
नित्य सेवा नित्य कीरतन ओच्छव, निरखवा नन्दकुमार रे॥
भरत खण्ड भूतलमां जन्मी, जेणे गोविन्दना गुण गाया रे।
धन धन रे एनां मातपिताने, सफल करी ऐने काया रे॥
धन वृन्दावन धन ए लीला, धन ए व्रजना बासी रे।
अष्ट महासिद्धि आंगणिये रे ऊभी, मुक्ति छे एमनी दासी रे॥
ए रसनो स्वाद शंकर जाणे, के जाणे शुक जोगी रे।
कोई एक जाणे व्रजनी गोपी, भणे 'नरसैंयो' भोगी रे॥

कृष्णजी कृष्णजी कहेतां उठो रे प्राणी।
कृष्णजीना नाम बिना जे बोलो तो मिथ्या रे वाणी॥
कृष्णजीए वास्युं रुडुं, गोकुलीऊँ रे गाम।
कृष्णजीए पूरी, मारा मनड़ा केरी हाम॥
कृष्णजीए अहल्या तारी, गणका ओधारी।
कृष्णजीना नाम ऊपर, जाऊँ वलिहारी॥
कृष्णजी माता, कृष्णजी पिता, कृष्ण सहोदर भाई।
अन्त काले जावुं एकलड़ा, साथे श्रीकृष्णजी सगाई॥
कृष्णजी कृष्णजी कहेतां, कृष्ण सरीखा थाशो।
भणे रे 'नरसैंयो' सहेजे, तमे वैकुंठे जाशो॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नारायणनुं नाम ज लेतां, वारे तेने तजिये रे।
मनसा वाचा कर्मणा करीने, लक्ष्मीवरने भजिये रे॥
कुलने तजिये, कुटुम्बने तजिये, तजिये माने बाप रे।
भगिनी सुत दाराने तजिये, जेम तजे कंचुकी सांप रे॥
प्रथम पिता प्रहलादे तजियो, नव तजियुं हरिनुं नाम रे।
भरत शत्रुघ्ने तजी जनेता, नव तजिया श्रीराम रे॥
ऋषि पत्नी श्रीहरिने काजे, तजिया निजभरथार रे।
तेमां तेनुं कांइये न गयुं, पामी पदारथ चार रे॥
वृजवनिता विट्ठलने काजे, सरव तजी वन चाली रे।
भणे 'नरसैंयो' वृन्दावनमां, ते तो घणुं माहली रे॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्त धरमदास

'राम रसाइन प्रेम रस, पीवत अधिक रसाल।
कबीर पीवन दुलभ है, मांगै सीस कलाल॥'

—सन्त कबीर

रामरस पीना वास्तव में अत्यन्त कठिन है, अहंकार का सम्पूर्ण समर्पण किये विना यह रस पीया ही नहीं जाता है। सन्त धरमदास, रामरस पीने वाले एक उच्चकोटि के महात्मा थे। सन्त कबीर के प्रधान शिष्यों में से एक थे, उनकी साधना कबीर ऐसे ज्ञानी सन्त के चरणदेश में स्वस्थ होने पर सफल हो गयी। सन्त धरमदास का जीवन काल पन्द्रहवीं शताब्दी के तृतीय चरण से पूरी सोलहवीं शती की अवधि है। उस समय देश की राजनैतिक स्थिति विचित्र थी, केन्द्रीय शासनसत्ता में परिवर्तन होने की आशंका सदा बनी रहती थी जो तलवार और सैनिक शक्ति का धनी होता था वह शासक बनने का सपना देखने लग जाता था। ऐसे राजनैतिक उथल-पुथलवाले समय में सन्त कबीर के शरणागत धनी धरमदास ने निर्गुण, निराकार और अलख परमात्म तत्व का चिंतन कर सन्तमत की नींव दृढ़ की। जीवन की नश्वरता का रहस्य-उद्घाटन किया। प्रत्येक वर्ग का समन्वय कर आध्यात्मिक एकता और राष्ट्रीयता का सूत्रपात किया।

धनी धरमदास का जन्म बांधोगढ़ में सम्वत् १४७५ वि. के लगभग हुआ था। वे कसौधन बनिया थे। घर में अपार सम्पत्ति थी। वे निश्चिंत होकर व्यापार करते थे और साथ-ही-साथ भगवान की पूजा-अर्चा भी करते रहते थे। वे बचपन से ही भगवद्भक्त और सात्विक वृत्ति के थे। साधु और सन्तों की सेवा तथा शास्त्रों के श्रवण में उनका मन बहुत लगता था। भगवद्विग्रह के सम्मुख घंटों बैठ कर वे विशुद्ध मन से हरि की आराधना किया करते थे। श्रीमद्भगवद्गीता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आदि में उनकी बड़ी श्रद्धा थी। 'अमरसुख निधान' ग्रन्थ में उनके सम्बन्ध में उल्लेख मिलता है :

'धरमदास बंधों के बानी, प्रेमप्रीति भक्ति मैं जानी।
सालिगराम की सेवा करई, दया-धरम बहुतैं चित धरई।
....
भगवत गीता बहुत कहाई, प्रेमभक्ति रस पीये अघाई।'

इस उद्धरण से उनके पूर्वाश्रम के भागवत जीवन का पता चलता है।

एक समय वे तीर्थयात्रा के लिये मथुरा गये हुए थे। सन्त कबीर से भेंट हुई, उनके सत्संग और उपदेश तथा आत्मज्ञान से धनी धरमदास बहुत प्रभावित हुए। कबीर के प्रति स्वाभाविक रूप से उनका आकर्षण बढ़ गया। कबीर ने धरमदास को ज्ञान दिया कि जब तक मन में सकाम भाव है तब तक नर-नारी नरक हैं, निष्काम भाव का मन में उदय होते ही राम अपने हो जाते हैं। उन्होंने कहा कि आत्मतत्व का रहस्य जानना, निर्गुण का भेद पाना सरल नहीं है। गुरु की कृपा से ही निर्गुण परमात्मतत्व की जानकारी होती है। राम का किसी भी परिस्थिति में परित्याग नहीं करना चाहिये, जीवन भले ही चला जाय पर राम न जाने पायें। सन्त धरमदास कबीर के चरणों पर गिर पड़े, उन्होंने विनम्रतापूर्वक निवेदन किया: भवसागर से पार उतारने की प्रार्थना की। धरमदास ने कहा:

गुरु पैयां लागो नाम लखा दीजो रे।
जनम-जनम का सोया मनुवा, सवदन मार जगा दीजो रे।
घट अधियार नैन नहि सूझे, ज्ञान की दीप जला दीजो रे।
विष की लहर उठत घट-अन्तर अमरित बूंद चुवा दीजो रे।
गहरी नदिया अगम बहै धरवा, खेय के पार लगा दीजो रे।
'धरमदास' की अरज गुसाईं, अब की खेप निभा दीजो रे।

मथुरा के सत्संग में उन्हें सन्त कबीर ने सोते से जगाया, आत्मप्रकाश दिया।...कुछ दिनों के बाद सन्त धनी धरमदास काशी गये। उनके निवासस्थान पर शास्त्र महारथियों की भीड़ लगी रहती थी। रात-दिन पूजा-पाठ का क्रम चलता रहता था। कबीर ने उन्हें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

काशी में दर्शन दिया। इस दर्शन का आशय परम गूढ़ था। इस बार धरमदास कबीर के चरणों में समर्पित हो गये, मथुरा में मन और वाणी ने कबीर को गुरु माना था पर काशी में हृदय ने उनको अपना परम गुरु स्वीकार कर लिया। कबीर ने बोध दिया कि हरि के समान कोई दूसरा राजा नहीं है। तन, धन, परिवार और सगे-सम्बन्धी साथ छोड़ देते हैं पर हृदय में निरन्तर रमनेवाले राम कभी अपने आप से अलग नहीं होते हैं, वे ही परम धन हैं, प्रियतम और प्राणाधार हैं। जगत नश्वर है, उसका आत्मा से सम्बन्ध ही नहीं हो सकता है। धरमदास के नयनों में जगत की विनश्वरता थिरक उठी, उन्हें जगत से वैराग्य हो गया, वे वैराग्य-रस के रसिक होकर कबीर के चरणों में पूर्ण आत्मार्पण कर बैठे। सन्त कबीर ने उनका आलिंगन किया, धरमदास सत्यनाम के व्यापारी हो गये। गुरु ने शिष्य को और शिष्य ने गुरु को पहिचान लिया। वे समस्त सम्पत्ति का त्याग कर काशी में ही रहने लगे। उन्होंने कबीर से अपने हृदय की पीड़ा कही। उन्होंने गुरु से याचना की :

साहब खेइ लगावो पारा।
असी कोस में झील अरु झांकर, असी कोस अंधियारा।
असी कोस बैतरनी नदिया, जहवां हँस उतारा।
बड़े-बड़े सीकारी जोधा, आगे पग है डारा।
खाल खैंचि जम भूसा भरावै, ऐंचि लेहि जस आरा।
लेखा मांगे जम फुरमावै, तीन लोक लै डारा।
उपजत विनसत जनम बीतिगे, चौरासी की धारा।
गगन मंदिल में सतगुरु बोलै, सुनि लै सवद हमारा।
'धरमदास' चरनन पर बिनवै, अब की अरज हमारा।

धनी धरमदास ने अपनी कथनी और करनी में कबीर के सन्तमत–निर्गुण तत्वचिन्तन का भाष्य किया। गुरु के उपदेश के अनुकूल जीवन बिताना ही उनका सिद्धान्त था। उनकी उक्ति है :

'सद्गुरु चारिउ बरन से ऊँचे।'

उन्होंने 'बन्दीछोर' सन्त कबीर साहब से सदा यही निवेदन किया कि 'आप मेरी ओर देखते रहिये, मुझे केवल आपका भरोसा है। यदि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुझसे भूल हो जाय तो आप ठीक कर दिया करें। आज तक मैं भूला हुआ था पर अब आप के निकट हूँ, मेरी ओर देखिये। मैं केवल आप की वन्दना करता हूँ। सारे दोषों को क्षमा कर मुझे अपनी भक्ति दीजिये। आप के बिना मेरी पीड़ा दूसरा कोई नहीं हर सकता है। उन्होंने गुरु की कृपा से प्रियतम की लालिमा का दर्शन उन्हीं के स्वरूप में किया था; धरमदास का पद है : कितनी ऊँची अनुभूति और रस-अभिव्यञ्जना है :

'साहेब, तेरी देखौं सेजरिया हो।
लाल महल के लाल कंगूरा, लालिनि लागि किवरिया हो।
लाल पलंग के लाल बिछौना, लालिनि लागि झलरिया हो।
लाल साहेब की लालनि मूरति, लालि लालि अनुहरिया हो।
'धरमदास' बिनवै कर जोरी, गुरु के चरन बलिहरिया हो।'

धरमदास के गुरु सन्त कबीर ने साहब की जो लाल झांकी देखी थी उसी का वर्णन इस पद में हुआ है। कबीर ने कहा था :

लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल।
लाली देखन मैं चली, मैं भी हो गयी लाल॥

सन्त धरमदास ने अपने नयनों में इसी दिव्य लालिमा का अमृत उतारा। इस 'लाली' का अनुभव ही उनके जीवन का साधनाक्रम था। उन्होंने योगी का वेष धारण कर प्रियतम की खोज की। वे अपने प्रियतम के विना बावले हो गये। 'प्रियतम के देश में सदा कबीर सन्त का आना-जाना होता है, उसका रहस्य वे ही जानते हैं'—ऐसी धरमदास की सुदृढ़ मान्यता थी। उनकी उक्ति है :

'सूतल रहलौं मैं सखियाँ, तो विषकर आगर हो।
सतगुरु दिहलैं जगाइ, पायौं सुख-सागर हो।'

कबीर रूपी प्रियतम की प्राप्ति से वे आवागमन के बन्धन से छूट गये।

सन्त धरमदास ने कबीर-पन्थ की छत्तीसगढ़ी शाखा का उत्तरदायित्व सम्हाला था। उन्होंने कबीर की वाणी का संग्रह 'बीजक' के रूप में सुरक्षित किया। लोगों ने कबीर के देहत्याग के बाद धरमदास को

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ही उत्तराधिकारी घोषित किया। उन्होंने सम्वत् १६०० वि. के लगभग चोला छोड़ा। वे सदा कबीर के पुण्यमय दर्शन के लिये तरसते रहते थे। उनका विश्वास था कि सन्त कबीर से ही इस भवसागर से मेरा उद्धार हो सकता है। सन्त धरमदास भावुक सन्त थे, उनकी वाणी में मिठास और सरसता का दर्शन होता है।

रचना

'धरमदास की वानी'—उनका एक संग्रह प्रकाशित है। उन्होंने जनभाषा में अपने भाव प्रकट किये।

वाणी

हमैं एक अचरज जानि परै॥
जल भीतर इक वृच्छा उपजै, ता में अगिन जरै।
ठाढ़ी साखा पवन झकौरे, दीपक जोति बरै॥
माथे पर तिरबेनी वहत है, चढ़ि ऊपर असनान करै।
लरजै गरजै दामिनी दमकै, कामिनि कलस भरै॥
मट्टी का गढ़ कोट बना है, जामें फौज लरै।
सूरबीर कोऊ नजरि न आवै, नाहक रार करै॥
साहब अमर मरै न कबहूँ, नाहक सोच करै।
'धरमदास' या पद को गावै, फिर कबहूँ न टरै॥

कहो केते दिन जियबौ हो, का करत गुमान।
कच्चे बाँसन का पिंजरा हो, जामें पवन समान।
पंछी का कौन भरोसा हो, छिन में उड़ि जान।
कच्ची माटी के घड़ुवा हो, रस-बूंदन सान।
पानी बीच बतासा हो, छिन में गलि जान।
कागद की नैया बनी हो, डोरी साहेब हाथ।
जौने नाच नचैहैं हो, नाचब वोही नाच।
'धरमदास' एक बनिया हो, करै झूठबजार।
साहेब कबीर बनजारा हो, करै सत बैपार॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मितऊ मड़ैया सूनी करि गैलो।
अपन वलम परदेस निकरि गैलो,
हमरा के कछुवो न गुन दै गैलो।
जोगिन होइ के मैं वन-वन ढूढौं
हमरा के विरह-वैराग दै गैलो।
संग की सखी सव पार उतरि गैलीं,
हम धन ठाढ़ी अकेली रहि गैलो।
'धरमदास' यह अरज करतु है,
सार सवद सुमिरन दै गैलो।

चढ़ि अमवा की डारि, अकेली धन कारे खड़ी।
चले जाव मुरुख गंवार, मोरि तोहिं कारे पड़ी।
की तोरी सासू दारुनियां, की नैहर दूर वसै।
की तोरा पिय परदेस, जोहत वाकी वाट खड़ी।
ना मोरी सासू दारुनिया, न नैहर दूर वसै।
हमरे वलम परदेस, जोहत वाकी वाट खड़ी।
पंचरंग पहिरि चुनरिया, ऊपर धरो आरसी।
सतगुर संग सुजान, समुझै मोर पारसी।
यह मंगल सतलोक, हंस जन गावहीं।
कहै कवीर 'धरमदास' प्रेम पद पावहीं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रसिक वैष्णव चण्डीदास

'कर धरू करू मोहे पारे, देब में अपरुब हारे, कन्हैया।
सखि सब तेजि चल गेली, न जानू कोन पथ भेली, कन्हैया॥
हम न जाएब तुअ पासे, जाएब, औघट घाटे, कन्हैया।
विद्यापति एहो भाने, गूजरि भजु भगवाने, कन्हैया॥'

—महाकवि विद्यापति

प्रेम-धर्मी चण्डीदास परम वैष्णव थे; रसिक सन्त और योगी थे। शस्य श्यामला वंगभूमि में उन्होंने जिस श्रद्धा से राधाकृष्ण के शृंगार और प्रेम का चिन्तन किया उसकी मौलिकता संदिग्ध नहीं है। वे वैष्णव सहज सम्प्रदाय के रसिक महात्मा थे; उन्होंने आजीवन राधा-कृष्ण की लीला से अपनी भक्तिमयी सरस वाणी का चिन्मय शृंगार सम्पन्न किया। अपार्थिवता के धरातलपर अपनी प्रेम-साधना की परीक्षा की। चण्डीदास ने अपने सरस प्रेमपूर्ण लीलात्मक पदों से बंगाल में भागवतधर्म का बीजारोपण कर परम सुख—सुखराज, महा आनन्द की अनुभूति की, कृष्णभक्ति का दान किया। मध्यकालीन बंगाल या भारत में ही नहीं, समस्त विश्व में साहित्य में मानवीय सम्बन्ध को लेकर एक ऐसे दिव्य प्रेम का उदय हुआ जो सर्वथा अभूतपूर्व, अलौकिक और पवित्र था, अपार्थिव था। इस दिशा में भारतीय परम्परा में चण्डीदास का नाम अग्रगण्य है। विश्व वाङ्मय के हृदय ने चौदहवीं से सोलहवीं शताब्दी तक भगवदीय प्रेम का पार्थिवता और अपार्थिवता की समन्वय-भूमि पर रसास्वादन किया। भारतीय साहित्य में राधा-कृष्ण के ही प्रेमगान की प्रधानता रही। वैष्णव सन्त चण्डीदास का समस्त जीवन भगवदीय प्रेम-साधना से परिपूर्ण था। उन्होंने अपनी पदावली में सर्वत्र श्रीराधाकृष्ण के मधुर प्रेम-रस के गीत गाये हैं। चण्डीदास का नाम सुनते ही नयनों में प्रेम के अश्रु उमड़ पड़ते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रसनापर श्रीराधाकृष्ण का माधुर्य छलक पड़ता है; हृदय में भक्ति की मन्दाकिनी का वेग बढ़ जाता है। वे पूर्ण प्रेमी और परम भगवद्भक्त थे। उन्होंने अपने समकालीन भारत को सावधान किया :

'शुनो रे मानुष भाई।
सावार उपरे मानुष सत्य
ताहार उपरे नाई।

हे मनुष्य भाई सुनो, सब के ऊपर मनुष्य सत्य है, उसके परे कोई नहीं है। इसका यह आशय है कि भगवत्तत्व की सर्वोत्कृष्ट अनुभूति मानवता के ही धरातल पर हो सकती है। चण्डीदास के पहले दसवीं सदी में कनु भट्ट ने बंगाल में वैष्णव प्रेम-पदावली की गंगा प्रवाहित की थी। विदेशी प्रभुता से आक्रान्त होने पर भारतीय मानव की उपासना साकार ब्रह्म की ओर आकृष्ट हो गयी, इस प्रतिक्रिया का दर्शन बंगाल में भी हुआ। वैष्णव उपासना-क्षेत्र में और विशेषता से वैष्णव सहज सम्प्रदाय में इस ऐतिहासिक क्रान्ति का नेतृत्व बंगाल में चण्डीदासने किया। चण्डीदास भागवत प्रेम के साहित्यकार थे। चण्डीदास की जीवन-कथा साक्षात् प्रेम की कथा है। चण्डीदास का जन्म सम्वत् १४७४ वि. में बंगाल के वीरभूमि जनपद में छटना ग्राम में हुआ था। उनके जन्म के थोड़े समय के बाद उनके पिता सपरिवार बोलपुर के नन्नुरा ग्राम में जाकर बस गये। चण्डीदास ने वारेन्द्र ब्राह्मण वंश में जन्म लिया था। उनके पिता की आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं थी पर चण्डीदास के पालन-पोषण का उत्तरदायित्व उन्होंने बड़ी योग्यता से निबाहा। चण्डीदास के परिवार की गणना कट्टर ब्राह्मणों में होती थी। अपनी धार्मिक आचारनिष्ठा के कारण चण्डीदास के पिता का नन्नुरा ग्राम के धनी-मानी सज्जनों से अच्छा सम्पर्क हो गया। नन्नुरा में वाशुली अथवा विशालाक्षीदेवी के मन्दिर के वे पुजारी नियुक्त हो गये और पैतृक उत्तराधिकार के रूप में पिता के देहावसान के बाद चण्डीदास ने वाशुली देवी की पूजा का भार सम्हाला। वाशुली देवी में चण्डीदास की बड़ी निष्ठा थी। वे देवी की उपासना और प्रेम-गीत-साधना में ही अपनी महती शक्ति का उपयोग करते थे। उस समय उनकी अवस्था सुकुमार थी, यौवन में कोमलता और मृदुता,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सरसता और मधुरता तथा सुन्दरता का सरस सम्मिश्रण था। यौवन की रेखायें मुसकरा रही थीं, उनका वर्ण गौर था, रंग सुनहली कान्ति की स्पर्धा करता था, काली-काली अलकावली सहसा मनोमुग्धकारिणी थी। उनका स्वर बड़ा मीठा और कोमल था। नन्नुरा की जनता उनको बहुत मानती थी, चण्डीदास का भी लोगों से सहज अनुराग था। चण्डीदास लोगों को बड़े प्रेमसे देवी का प्रसाद देते थे। उनके अन्तर देश में प्रेम-काव्य-पुरुष का आधिपत्य था। वे कभी-कभी देवी के प्रति भक्तिपूर्ण गीत गाते-गाते दिव्य उन्माद से अभिभूत हो जाया करते थे। उन्होंने प्रेम-तपस्या की। बंगाल की भावुकता के वे मध्यकालीन प्रतीक थे।

चण्डीदास के भक्तिपूर्ण प्रेम-पदों की रचना की मूलभूमि रामी में उनकी अपार्थिव कामगन्धहीन दिव्य आसक्ति स्वीकार की जाती है। चण्डीदास नन्नुरा से लगभग दो कोस की दूरी पर तेहाई ग्राम में सरिता के तट पर प्राकृतिक दृश्यों के आनन्द का नित्य उपभोग करने जाया करते थे। प्राकृतिक सौन्दर्य-दर्शन में उनका मन बहुत लगता था। एक दिन वे उसी स्थल पर जा रहे थे कि उन्होंने बाजार में देखा कि एक मछली बेचने वाली सुन्दरी युवती एक व्यक्ति को और लोगों से उतने ही दाम पर अधिक मछली दे रही है। उन्हें पता चला कि इसका कारण यह है कि दोनों एक दूसरे को प्रेम करते हैं, उन्हें ज्ञान हो गया कि संसार के प्राणी का एकमात्र धर्म प्रेम है, वही प्राण है; यदि मानव प्रेमहीन है तो वह जड़ है। उनका हृदय प्रेम से परिपूर्ण हो उठा। वे प्रेम के सम्बन्ध में विचार करते-करते अपने विहारस्थल पर पहुँच गये। संध्या का समय था, आकाश में सूर्यदेवता की पीली-पीली लालिमा थिरक कर अन्धकार के आगमन की सूचना दे रही थी पर इस अन्धकार में चण्डीदास को शाश्वत दिव्य प्रेम-ज्योति का दर्शन हुआ। नदी का शीतल कलख सरस समीर का आलिंगन कर रहा था, खगावली शांत थी, दिशायें निस्पन्द थीं। चण्डीदास ने एक रजक-कन्या को कपड़े धोते देखा, वह पूर्ण युवती थी; उसके नयनों में यौवनकी मदिरा आलोड़ित थी, सुनहली गौर-कान्तिविलसित कपोलों पर घुंघराले केश चंचल थे, ऐसा लगता था

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मानो मधुकर कनक कमल में विलास कर रहे हों; रमणी का शरीर सौन्दर्य और सुषमा में ढला हुआ था, सिर से पैर तक सुन्दरता मूर्तिमान होकर उसकी प्रदक्षिणा कर रही थी। चण्डीदास के नेत्रों ने शृंगार की देवी का दर्शन किया, चिन्मय लावण्य के कंठ-देश से उनकी वाणी ने अपने हृदय-देश में प्रेम की सजीव प्रतिमा का आवाहन किया, चण्डीदास के रसिक मन ने देवी का स्तवन किया: शृंगार का गान गाया :

'शृंगार रस बूझिबे के, सब रस सार शृंगार जे।
शृंगार रसेर मरम बूझे, मरम बूझिया शृंगार यजे।
सकल रसेर शृंगार सारा, रसिक भगत शृंगारे मरा।
किशोर किशोरी दुइ टी जन, शृंगार रसेर मूरति हन।
गुरुवस्तु एबे वलिब काय, विरिंचि भवादि सीमा ना पाय।
किशोर किशोरी जाहा के भजे, गुरु वस्तु से सदाइ यजे।
चण्डीदास कहे ना बूझे केह, जे जन रसिक बूझये सेह।'

रमणी ने उनकी ओर देखा। दोनों एक दूसरे की सात्विक प्रेम-भावना से विमुग्ध हो गये, आसक्त हो गये। चण्डीदास के निस्पन्द अधरों ने प्रेममयी रमणी के चरणों का सस्वर अभिवादन किया। उन्हें रामी के रूप में भागवत शृंगार की दिव्य प्रेरणा का दर्शन हुआ। इस दर्शन में वासना और कामासक्ति की गन्ध तक नहीं थी। रजक कन्या ब्राह्मण देवता की दूर से ही चरण धूलि लेकर मस्तक पर चढ़ा सकती थी और चण्डीदास उसे केवल आशीर्वाद दे सकते थे। वे नित्य रजक-रमणी को देखने आते थे, दोनों बिना एक दूसरे को देखे नहीं रह सकते थे। चण्डीदास की कंठभारती ने रामी के पवित्र सौन्दर्य में अलौकिक और दिव्य प्रेम का दर्शन किया। वह उनकी सब कुछ हो चली। वाशुलीदेवी में उनकी निष्ठा घटने लगी। रामी के सौन्दर्य और प्रेम से प्रेरणा पाकर वे राधाकृष्ण सम्बन्धी सरस प्रेमपूर्ण पदों की रचना करने लगे। उन्हें कण-कण में राधाकृष्ण के सौन्दर्य का दर्शन होने लगा। लोग उन्हें 'पगला चण्डी' कह कर पुकारने लगे पर उनकी वृत्ति तो राधाकृष्ण की भक्ति में अन्तर्मुखी हो उठी।...रामी का नाम रामिनी, राममणि, तारामणि आदि था पर वह साहित्य में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रामी नाम से ही प्रसिद्ध है। उसने वाशुलीदेवी के मंदिर में परिचारिका का काम करना आरंभ किया पर जब मन्दिर के अधिकारियों को पुजारी चण्डीदास से उसके प्रेम-सम्बन्ध का पता चला तो उन्होंने दोनों को मन्दिर से बाहर निकाल दिया। समाज वालों ने चण्डीदास को बहिष्कृत कर दिया। लोगों ने चण्डीदास के बड़े भाई नकुल ठाकुर को समझाया कि यदि चण्डीदास प्रायश्चित करें तो जाति म लिये जा सकते हैं; चण्डीदास का रामी से शरीर-सम्बन्ध नाम मात्र को भी न था; दोनों प्रेम-राज्य में आत्मा के माध्यम से सम्बद्ध थे; दोनों पवित्र थे, इसलिये चण्डीदास ने कहा कि मैं रामी के साथ ही कुल में आ सकता हूँ। प्रायश्चित स्थगित हो गया। रामी के प्रति चण्डीदास की पवित्र भावना का दर्शन उनके पदों में होता है: वे रामी के प्रति आत्मा के स्तर से पूर्ण समर्पित होकर भी राधाकृष्ण के ही भक्त बने रहे—यह उनके चरित्र की पवित्र मौलिकता है; दिव्य अलौकिकता है। इसी प्रकार रामी भी उनके पवित्र प्रेम-राज्य में निवास करती थी। प्रायश्चित का प्रश्न उठने पर रामी ने नकुल ठाकुर से निवेदन किया था:

'चण्डीदास साथे धोविनी सहिते
मिश्रित एकई प्राणे।'

रामी का प्राण चण्डीदास के प्राण में मिश्रित हो गया था। चण्डीदास ने प्रायश्चित पर लात मार कर रामी के चरणों में अत्यन्त श्रद्धा और पवित्र भक्ति से अपार्थिव-दिव्य प्रेम के धरातल पर आत्म निवेदन किया था:

'एक निवेदन करि पुनि पुनि, शुनि रजकिनी रामि।
युगल चरण शीतल देखिया, शरण लइलाम आमि।
रजकिनी रूप, किशोरी स्वरूप, कामगंध नाहिं ताय।
ना देखिले मन करे उचाटन, देखिले पराण जुड़ाय॥
तुमि रजकिनी आमार रमणी, तुमि हउ मातृ-पितृ।
त्रिसंध्या याजन, तोमारि भजन, तुमि वेदमाता गायत्री॥
तुमि वाग्वादिनी, हरेर घरणी, तुमि से गलार हारा।
तुमि स्वर्ग-मर्त्य, पाताल-पर्वत, तुमि से नयनेर तारा॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तोमा विने मोर सकलि आंधार, देखिले जुड़ाय आँखि।
जे दिन ना देखि उचाँद वदन, मरमे मरिया थाकि॥
ओ रूप माधुरी, पासरिते नारि, कि दिये करिब वश।
तुमि से तन्त्र, तुमि से मन्त्र, तुमि उपासना रस॥
भेबे देख मने, ए तिन भुवने, के आछे आमार आर।
वाशुली आदेशे कहे चण्डीदासे, धोपानी चरण सार॥'

रामी के प्रति चण्डीदास के प्रत्येक भाव का चित्रांकन इस पद में मिलता है। चण्डीदास ने रामी को प्रेम-रमणी, वेदमाता गायत्री, सरस्वती और साक्षात् माता-पिता के रूप में देखा। रामी को छोड़ कर उनको संसार में कोई अपना न दीख पड़ा जिसकी प्रेरणा से वे आध्यात्मिक साधना में, राधाकृष्ण की भक्ति में और प्रेम की चिन्मयी अनुभूति में गति करते। एक उच्च कोटि के वैष्णव भक्त कवि के रूप में उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गयी। वे निरन्तर राधाकृष्ण के सम्बन्ध में पद रचने लगे और विचित्रता तो यह थी कि उन्हें गा-गा कर अपनी स्वर-माधुरी से आराध्य राधाकृष्ण का मनोरञ्जन भी करते थे।

पदकल्पतरू से पता चलता है कि उनकी कृष्णभक्ति से आकृष्ट होकर परम कृष्णभक्त महाकवि विद्यापति ने उनसे मिलने की इच्छा प्रकट की। उस समय चण्डीदास युवावस्था में थे और कवि रञ्जन विद्यापति की अवस्था अधिक हो चुकी थी। वे मिथिला के अधिपति शिवसिंह के परम मित्र थे, उन्हें उनका राजाश्रय प्राप्त था। एक वार शिवसिंह उनको साथ लेकर गौड़ राज्य का परिदर्शन कर रहे थे। विद्यापति चण्डीदास के निवासस्थान नन्नुरा ग्राम के लिये चल पड़े। चण्डीदास को इस वात का पता नहीं था कि मैथिलि कोकिल उन्हें धन्य करने स्वयं आ रहे हैं, उनको इस वात की जानकारी थी कि नान्नुरा के निकट ही शिवसिंह के साथ विद्यापति का आगमन हुआ है। वे बड़े उल्लास और उत्साह से कविशेखर के दर्शन के लिये गौड़ बंगाल की राजधानी मंगल कोटि की ओर चल पड़े। दोनों एक दूसरे से मिलने आ रहे थे। भगवती भागीरथी के तट पर वट वृक्ष के नीचे दोनों कृष्णभक्तिमर्मज्ञों का साक्षात्कार हुआ। चण्डीदास

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ठाकुर ने महाकविकी चरण धूलि मस्तक पर चढ़ा ली। कवि कण्ठहार विद्यापति ने उनका प्रेमपूर्वक आलिंगन किया और सराहना की कि शस्यश्यामला बंग भूमि ही नहीं समस्त भरत खण्ड की पृथ्वी आप की कृष्ण-भक्ति और राधाकृष्ण के प्रेम-काव्य से पवित्र और धन्य हो गयी है। आप भागवत कवि हैं, रसिक सन्त हैं। दोनों का मिलन अद्‌भुत था। चण्डीदास वैष्णव सहज सम्प्रदाय के अनुयायी थे। सहजिया वैष्णव सम्प्रदाय वज्रयान अथवा सहजयान से विशेष प्रभावित था। सहजयान में परमानंद–महासुख अथवा सुखराज की प्राप्ति ही साधना का लक्ष्य है। सहज वैष्णव सम्प्रदाय में परमात्मा की प्रेमानन्द-प्राप्ति ही उपासना की मूलभूमि है। प्रेम-धर्म ही परमात्मा की भक्ति का पर्याय है। जीव भगवान का अंश है इसलिये प्रेमस्वरूप परमात्मा की प्राप्ति ही उसकी सिद्धि की परमावस्था है। इसी परमावस्था की ओर चण्डीदास ने अपनी प्रेम-साधना प्रवाहित की। सहज वैष्णव भक्ति रागानुगा है। इस सम्प्रदाय में यह स्वीकार किया गया है कि प्रत्येक मनुष्य में रूप और स्वरूप तत्व विद्यमान रहते हैं, श्रीकृष्ण का आध्यात्मिक तत्व ही स्वरूप है; भौतिक तत्व रूप कहलाता है। इसके अनुसार प्रत्येक पुरुष और स्त्रीको अपने रूप में स्वरूप का आरोप कर रूपगत आसक्ति का प्रेम में दिव्यीकरण करना पड़ता है। रूपगत आसक्ति वासना है, स्वरूपगत अनुरक्ति ही कृष्णभक्ति अथवा प्रेम है, इस प्रेम की प्राप्ति के लिये साधक को परकीया भाव का आश्रय ग्रहण करना पड़ता है। रूप में स्वरूप का आरोप होने पर साधक सहज मानव की स्थिति में प्रवेश करता है। इसी सहज मानव की ओर लक्ष्य कर वैष्णव भक्त चण्डीदास ने कहा था।

'मानुष नाम विरल धाम, विरल ताहार प्रीति।
चण्डीदास कहे सकलिविरल, के जाने ताहाररीति॥'

चण्डीदास ने अनुभव किया कि सहज मानव की स्थिति में आने पर ही शुद्ध सात्विक गुण के उदय के बाद सौन्दर्य-माधुर्यनिधि राधा-कृष्ण की रसानुभूति होती है; चण्डीदास ने इस मार्ग को श्रेय दिया वे रागमार्गी वैष्णव थे। चण्डीदास ने सहज तत्व का दर्शन आनन्द, परमानंद सहजानन्द और विरमानन्द के माध्यम से किया। विरमानन्द

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पूर्णतम मुक्ति की स्थिति है। चण्डीदास ने अपने आत्मा-माध्यम से राधा-कृष्ण की संयोग-सुखराशिका अनुभव किया। राधा-भाव के स्तर से उन्होंने कहा कि हे कृष्ण जन्म-जन्म से आप ही मेरे प्राणाधार प्रियतम हैं :उनकी उक्ति है :

'चण्डीदास बले, शुनह नागर, राधाय मिनति राख ।
पीरिति रसेर चूड़ा मणि हये, सदाइ अन्तरे थाकिं ।'

चण्डीदास ने कहा कि 'सहज' 'सहज' सब लोग कहते हैं पर सहज को बिरले ही जान पाते हैं। जो अन्धकार को पार कर ज्योति के आनन्द-राज्य में प्रवेश करता है वही सहज तत्व समझ पाता है ।चण्डीदास ने कहा :

'निज देह दिया भजिते पारे, सहजे पीरिति बलिव तारे।
सहजे रसिक करये प्रीति, रागेर भजन एमन रीति।
एरवनि सेरवनि एक हैले, सहज पीरिति ना छाड़े मैले।
सहज बुझिये जे हय रत, ताहार महिमा कहिवे कत।
चण्डीदास कहे सहज रीति, बुझिया नागरी करइ प्रीति।'

रामी और चण्डीदास दोनों सहज मतावलम्बी थे। रामी भी चण्डीदास की प्रेरणा से कविता करती थी। उसने कहा है कि चण्डीदास के विना मेरे लिये समस्त संसार अन्धकार पूर्ण है। चण्डीदास के नयनों के लिये रामी पवित्र प्रेममयी परकीया-भाव-साधना की चिन्मय प्रतीक थी। भाव की पवित्रता, भक्ति और आत्मगत सहज आसक्ति के कारण चण्डीदास की प्रेम-लीला भगवदीय लीला की रसभूमि हो गयी। चण्डीदास की रामी समाज के लिये श्रद्धा और पूजा की देवी हो गयी। रामी उनके लिये हाड-मांस की रमणी नहीं थी, रसाकृति थी।

वाशुली देवी ने चण्डीदास को वेदान्त से परे रस-समुद्र का मर्म समझाया था। साधन का बीज बताया था। वाशुली देवी की कृपा से ही उन्होंने भागवत प्रेम-राज्य में प्रवेश किया। उनकी प्रेम-साधना उच्च कोटि की थी। राधा-कृष्ण के प्रेम में वे रात-दिन मग्न रहते थे। उनका भगवदीय प्रेम सर्वथा लोकोत्तर और चिन्मय था। उसमें सर्वत्र माधुर्य ही अभिव्यक्त दीख पड़ता है। उनके पद-गान में प्रेम और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विरह के अन्योनाश्रय सम्बन्ध का सुन्दर चित्रण हुआ है। वे मिलन में विरह के दुख से सदा आशंकित रहते थे। उन्होंने आजीवन प्रीतिकी व्याधि का सामना किया; वे सदा प्रेम-वाण से विद्ध रहते थे। उन्हें भगवत्प्रेम की प्राप्ति करने में समाज का दोषारोपण तनिक भी रोक नहीं सका। उन्होंने कहा कि जो प्रीति करता है उसे किसी भी प्रकार के कलंक से भयभीत नहीं होना चाहिये; प्रेम तो भगवान का भाव-विग्रह है, भक्ति-रूप है। प्रीति के मूक विरह की वेदना का अनुभव चण्डीदास ने लोक-मर्यादा और सामाजिक वन्धन को ताक पर रख कर किया, उनके लिये मानवीय प्रेम भी स्वर्गीय हो गया, मानवीय रूपस्थ आसक्ति को उन्होंने अपने अन्तःकरण की शुद्धता से भगवद्भक्ति में स्वस्थ कर लिया। उन्होंने प्रेम की मर्यादा गायी है :

'पीरिति वलिया, एकटी कमल, रसेर सायर माझे।
प्रेम-परिमल, लुवध भ्रमर, घायल, आपन काजे॥
भ्रमरा जानये कमल माधुरी, तेइ से ताहार वश।
रसिक जानये रसेर चातुरी, आने कहे अपयश॥
सइ ए कथा वूझिवे के॥
जे जन जानये, से जदिना कहे, केमने धरिवे दे।
धरम करमलोक-चरचा ते, ए कथा बूझिते नारे॥
एतिन आँखर जाहारमरमे, सेइ से बूझिते पारे॥
चण्डीदास कहे शुन लो सुंदरि, पीरिति रसेर सार।
पीरिति रसेर रसिक नहिले, कि छार परान तार॥'

चण्डीदास के राधा-कृष्ण-प्रेम-गान ने पूर्वराग, दौत्य, अभिसार, सम्भोग, मिलन, आत्मनिवेदन आदि पर पूर्ण प्रकाश डाला है। चण्डी-दास ने राधाकृष्ण के रूप-सौन्दर्य-चिंतन की गहरी नींव पर अपना प्रेम-राजप्रासाद समस्थित किया। समस्त चराचर में उन्हें अपने प्रेम-देवता का ही सौन्दर्यदर्शन हुआ। चण्डीदास ने राधा-तत्व की परख अपने हृदय की कोमलतम भक्ति के सिंहासन पर की। वे नित्य कृष्ण-प्राणमयी के रूप में चण्डीदास द्वारा चित्रित की गयी हैं। वे श्रीकृष्ण की अनन्त संगिनी हैं। चण्डीदास ने ऐसी राधा की भक्ति की जिन्होंने अपना प्राण नन्दनन्दन में पूर्णरूप से समर्पित कर दिया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चण्डीदास की राधा का मन पूर्ण रूप से यमुना किनारे कदम्ब के नीचे त्रिभंगी रूप में खड़े होने वाले व्रजनन्दन ने अपना लिया। उनकी वंशी में चण्डीदास ने सदा 'राधा-राधा' का ही स्वर सुना। श्याम-सुन्दर की प्रत्येक आज्ञा में रत रहने वाली राधा की ही लीलाभक्ति चण्डीदास ने गायी। एक पद में राधाकृष्ण के पारस्परिक प्रेम-सम्बन्ध का उन्होंने अत्यन्त दिव्य चित्रण किया है: उनका कथन है :

'नागर चतुरमणि कहेन एक टिवाणी, शुन शुन सुकुमारी राधे।
दौंड़ाइते शिख आगे, तबसे भलाइ लागे, तबे वांशी शिखाइब साधे॥
धरह आमारवेश, आरोह चरण शेष, पदेर उपर देह पद।
त्रिभंग हइया रउ वांशी सने कथा कउ, वांशी गाउ हइया आमोद॥
शुनिया आनन्द बड़ी से नव किशोरी गौरी, त्रिभंगिम भांगिम सुठाम।
धरियाराधार करे नागररसिकवरे, अंगुलि घुराइ ते शिखान॥
रन्ध्रे-रन्ध्रे से अंगुली, शिखाइ छे वनमाली, देह फुकु सुकुमारी राधा।
वाजाह मधुर तान, मन्द मन्द कर गान, तिले केउ नाहि कर बाधा॥
हासि कहे सुबदनी, एबे किशिखिबे आमि, अलपे अलपे जदि परि।
कहेन रसिकराज बूझितुमि पाबे लाज, चण्डीदास जायबलिहारी।'

राधाकृष्ण की लीला का चिन्तन ही चण्डीदास का प्राणधन था, उनके रूप और सौन्दर्य की स्मृति ही चण्डीदास की भगवद्भक्ति थी। उन्होंने राधाकृष्ण की मधुर रस की उपासना की। उन्होंने अध्यात्मपक्ष से परकीया भाव का वरण कर अपनी भगवद्भक्ति चरितार्थ की। उनका परकीया-भक्ति-भावसदा मनोगत ही रहा, देह सम्बन्ध में उसका कभी अवतरण नहीं हो सका। उन्होंने भगवद्भक्ति की प्राप्ति के लिये परकीया-भावगत दिव्य प्रेम की आग में शरीर को तृण के समान जला कर राख कर देने में ही परम सुख का साक्षात्कार किया। वे श्यामसुन्दर का ही रात-दिन चिन्तन किया करते थे: उनकी एक स्थल पर भक्तिपूर्ण मार्मिक उक्ति है :

'ए तिन भुवने ईश्वरगति।
ईश्वर—छाड़िते पारे शकति॥
ईश्वर छाड़िते देह ना रय।
मानुष भजन केमने हय॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

साक्षाते नहिले किछुइ नइ॥
मने ते भाविले स्वरूप हय॥
कहे चण्डीदास बुझये के।
इहार अधिक पुछये जे॥'

चण्डीदास को सदा अपने प्रियतम के वियोग का भय बना रहता था। वे निरन्तर विरहोन्माद में उद्विग्न रहते थे। उन्होंने अनुभव किया कि हंसते-हंसते तो मैंने प्रेम किया था और रोते-रोते समय बीत रहा है। उनकी उक्ति है कि कौन कहता है कि प्रीति अच्छी वस्तु है। प्रीति के कारण मेरी जो अवस्था हो गयी है उसे देख कर संशय होता है कि प्राण रहेगा या चला जायेगा। चण्डीदास ने भगवद् के वियोग-पक्ष की व्यथा का भी विशेष अनुभव किया: उनका कथन है:

'एमन पीरिति कभु देखि नाइ शुनि;
पराणे पराणे बांधा आपना आपनि।
दुहु कोले दुहु कान्दे विच्छेद भाविया,
तिल आध ना देखिले जाय जे मरिया।
जल विना मीन जेन कबहु ना जीये,
मानुष एमन प्रेम कभु ना शुनिये।
भानु कमल बलि सेह हेन नहे,
हिमे कमल मरे, भानु सुखे रहे।
चातक जलद कहि, से नहे तुलना,
समय ना हले सेह ना देय एक कणा।
कुसुम मधुपे कहि सेह नहे तुल,
ना एले भ्रमरा आपनि ना जाय फूल।
कि छार चकोर चाँद दुहु, सम नहे
त्रिभुवन हेन नाइ चण्डीदास कहे।'

चण्डीदास भगवान् के प्रेमी भक्त और विरह-योगी थे। उन्होंने शास्त्र सम्मत, निगमागमगत भगवत्प्रेम की साधना की। चण्डीदास और उनकी रामी दोनों राधिका के रसराज्य की प्रजा थे। उन दोनों ने रूप में स्वरूप का परिज्ञान प्राप्त कर तथा भगवदीय प्रेम-सरोवर में स्नान

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करे राधाकृष्ण के चरण में आत्मार्पण कर दिया। चण्डीदास की सहज प्रेम-भक्ति राधाकृष्ण की शरणागति का दूसरा नाम है।

सम्वत् १५३४ वि. में चण्डीदास ने देह का परित्याग कर भगवद् प्रेमराज्य में प्रवेश किया। उनकी अन्तिम जीवन-लीला की कथा अमित वेदनामयी है। वे किर्णहार ग्राम में अपने एक मित्र के घर पर बैठ कर प्रेम-गान गा रहे थे, उनके नयनों में व्रजरमण और उनकी राधा की सौन्दर्य-माधुरी छलक रही थी; वे आत्मा के दिव्य स्वर से भगवान का आवाहन कर रहे थे कि ठीक उसी समय सहसा छत गिर जाने से उनके प्राण चल बसे। वे प्रेमी भक्त, रसिक सन्त और विरह-योगी थे।

रचना

चण्डीदास ने राधाकृष्ण के सम्बन्ध में अनेक सरस पद लिखे। रामी सम्बन्धी उनके पद उपलब्ध हैं।

पद

सखि कि बुके दारुणव्यथा; से देशे जाइव जे देशे ना शुनि।
पाप–पिरीतिर–कथा।
सइ के बले पीरिति भाल।
हाँसिते हाँसिते पीरिति करिया, काँदिते जनम गेल।
कुलवती हइया कुले दाँड़ाइया, जे जन पीरीति करे।
तुषेर अनल से जन साजाइये, एमति पुड़िया मरे।
हाम अभागिनी जनम दुखिनी, प्रेमे छल छल आँखि।
'चण्डीदास' कहे जेमति हइल, पराण संशय देखि।

श्याम बामे बैठल किशोरी, मेघे जेन मिशये बिजुरी।
सोनार कमले मधुकर, तेमति साजल कलेवर।
दुहु रूप ना जार कथन, कोटि कोटि मुरछे मदन।
सहचरी कुंज निकेतने, केह करे चामर व्यजने।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

केह वा चन्दन दिछे गाय, केह चुया ताम्बुल जोगाय।
केह करे पारवा मृदु वाय, 'चण्डीदास' दुहु गुण गाय।

सइ के वा सुनाइल श्याम-नाम।
कानर भीतर दिया मरमे पशिल गो आकुल करिल मोर प्रान।
ना जानि कतेक मधु श्याम नामे आछेगो वदन छाड़िते नाहिं पारे।
जपिते जपिते नाम अवश करिल गो केमने पाइव सइ तारे।
नाम-परतापे आर ऐछन करिल गो अंगेर परशे किवा हय।
जे खाने वसति तार नयने देखिया गो युवति धरम कैछे रय।
पाशरिते करि मने पाशारान जायगो, कि करिबो कि हवे उपाय।
कहे द्विज 'चण्डीदास' कुलवती कुल नाशेआपनार यौवन याचाय।

मानुष मानुष, सवाइ वलये, मानुष केमन जन।
मानुष रतन, मानुष जीवन, मानुष पराण धन।
भुवन भुलये, ए सव लोके, मरम नाहिक जाने।
मानुषेर प्रेमा, नाहिक जीव के, मानुष से प्रेमा जाने।
जे जन मानुष, से जाने मानुष, मानुषे मानुष चिने।
ए लोक मानुष, ए दुयेरवल, मानुषे मानुष जाने।
मानुष जारा, जीयन्ते मरा, सेइ त मानुष सार।
मानुष लक्षण, महा भाग्यवान, मानुष सबार परं।
मानुष नाम विरल धाम, विरल ताहार प्रीति।
'चण्डीदास' कहे, सकलि विरल, के जाने ताहार रीति।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महात्मा शंकर देव

'जप तप तीरथ करसि. गया, कासीवास वयस गोवाइ।
जानि योग युगुति मन मोहित बिने हरिभकति गति नाइ॥'

—बड़गीत

महात्मा शंकरदेव अपने समय के परम वैष्णवों में से एक थे। उन्होंने लोकमात्र के कल्याण के लिये भागवती कृपा—भक्तिमयी अहिंसा का आवाहन कर शाक्त मत के तान्त्रिक माया-जाल से जीवों को मोक्ष-दान देकर भागवत धर्म का अभ्युत्थान किया। वे महान निर्गुण सन्त कबीर और अभिनव कृष्ण चैतन्य महाप्रभु के समकालीन थे। आसाम का इतिहास उन्हें तथागत बुद्ध का अवतार स्वीकार करता है। उन्होंने भगवान की विशुद्ध भक्ति का प्रचार किया। उन्होंने घोषणा की कि हरि की भक्ति ही परम सम्पत्ति है, इससे सकल मनोरथ सिद्ध होते हैं। केलिगोपाल नाटक में उनकी उक्ति है :

'हरिक भक्ति अहि परम संपद।
दोहे दोस सब मिलावय मनोरथ॥'

निस्सन्देह वे परम भागवत थे। उन्होंने कामरूप में कामाख्या मन्त्र-पीठ में जो भयानक पशुबलि शाक्त मत के नाम पर होती थी उसे समाप्त कर आसाम प्रान्त में श्रीष्कृष्ण की भक्तिसुधा प्रवाहित की। शाक्तपीठों के सामने पशुओं के रक्त की नदी बहती देख कर महात्मा शंकरदेव का कोमल हृदय हाहाकार कर उठा, उन्होंने शास्त्रसम्मत वैष्णव-धर्म का प्रश्रय लेकर लोगों में आत्मज्योति—अद्वैत भक्ति, भगवान की लीला और उनके नाम की शरणागति की त्रिवेणी का अवतरण सम्भव किया। वे अपने समकालीन महाराजा नरनारायण की प्रशंसा और आदर के महान पात्र थे, आसामी साहित्य के स्वर्णयुग में महाभागवत शंकरदेव का प्राकट्य हुआ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विचित्र बात तो यह है कि उनके पूर्वज और परिवार वाले भी कट्टर शाक्त थे, शंकर देव को वैष्णव धर्म की स्थापना के लिये विकट संघर्ष करना पड़ा। उन्होंने आसाम का धार्मिक नेतृत्व किया। वे धार्मिक नेता, महान साहित्यकार, परम भक्त, अनुपम संगीतसाधक और शास्त्रमहारथी महात्मा थे। वे अपने समय के असाधारण महा-पुरुष थे, उनकी एक उपाधि 'महापुरुष' भी है, उनके द्वारा प्रवर्तित वैष्णव धर्म महापुरुषीय धर्म कहलाता है। उनके असाधारण व्यक्तित्व का बखान उनके शिष्य माधवदेव ने एक स्थल पर अत्यन्त रोचक ढंग से किया है, माधवदेव का कथन है:

'श्रीमत शंकर गौर कलेवर, चन्द्रर येन आभास।
बृहस्पति सम पण्डित उत्तम, येन सुर प्रकास॥
पद्मपुष्प समवदनप्रकाशे, सुंदर ईषत हांसि।
गंभीर वचन मधु येन स्रवे, नयन पंकज पासि॥'

महात्मा शंकरदेव के दर्शन मात्र से ही लोग प्रभावित होकर उनकी ओर आकृष्ट हो जाते थें। तेरहवीं सदी में ब्रह्मदेश की आहम जाति ने कामरूप पर अधिकार कर लिया। कामरूप का नाम आहम अथवा आसाम प्रसिद्ध हो गया। विक्रमीय सोलहवीं शती के प्रथम चरण में आसाम में आहम नरेश सुनेफा के राजकाल में शंकरदेव ने इतिहास प्रसिद्ध चण्डीवर के वंश में जन्म लिया। आसाम के नवगांव जिले के वटद्रवा अथवा बरदोआ ग्राम में सम्वत् १५०६ वि. में कार्तिक मास की अमावस्या की आधीरात को शंकरदेव के रूप में महान भागवत ज्योति का अवतरण हुआ। उनके पिता का नाम कुसुमवर था। वे शिव के महान भक्त थे। उनका विश्वास था कि भगवान शंकर की कृपा से ही उन्हें पुत्र की प्राप्ति हुई है। उन्होंने नवजात शिशु का नाम शंकरवर रखा। निस्सन्देह कुसुमवर कायस्थकुल भूषण थे। वे महान आस्तिक और आचारनिष्ठ थे। शंकरवर के जन्म के तीन दिन बाद उनकी माता सत्यसंधा ने स्वर्गलोक की यात्रा की। शंकरवर के पालन-पोषण का भार उनकी दादी खेरसती पर आ पड़ा।

बालक शंकरवर का मन खेलने-कूदने में बहुत लगता था। वे देखने में बड़े सुंदर और शुभ लक्षणों से युक्त थे। क्षणमात्र के लिये

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भी घर से बाहर निकलने पर लोग उनके लिये चिंतित हो उठते थे। वे स्वभाव के बड़े चंचल थे। दिन भर बागों में या सरोवर के किनारे अपने साथियों के साथ घूमा करते थे। ब्रह्मपुत्र सरिता में तैरा करते थे, वन में हरिणों के पीछे दौड़ते रहते थे। बारह साल के हो गये पर शिक्षा में उनका मन ही नहीं लगता था।... एक दिन वे बाहर से खेल कर देर से आये, दादी भोजन परोसकर प्रतीक्षा कर रही थीं, वे चिंतित और उदास थीं। शंकरवर ने उदासी और चिंता का कारण पूछा। दादी ने कहा कि तुम्हारे कुल में बड़े-बड़े विद्वान होते आये हैं, उन्होंने तुम्हारे कुल की प्रतिष्ठा और ख्याति बढ़ायी है पर तुम खेल-कूद में इतने आसक्त हो चले हो कि वंश की मर्यादा की रक्षा होने में सन्देह है। शंकरवर को दादी की बात लग गयी। उन्होंने उनके चरण छूकर प्रतिज्ञा की कि मैं अवश्य पढ़ूंगा और लोगों में अपने पाण्डित्य द्वारा भगवद्भक्ति का प्रचार कर जीवन सफल करूँगा। वे होनहार और संस्कारी थे, उनका मन खेल-कूद से उचट गया।

महान शास्त्रज्ञ और संस्कृत के अद्वितीय विद्वान् महेन्द्र कन्दलि की पाठशाला में वे अध्ययन करने लगे। शंकरवर की प्रतिभा और गुरु-भक्ति से महेन्द्र कन्दलि बहुत प्रभावित थे। बारह-तेरह साल की ही आयु में वे काव्य-रचना करने लगे, उनके उच्चकोटि के काव्य-सृजन से गुरु बहुत प्रसन्न हुए। एक दिन विचित्र घटना हुई। पाठशाला की छुट्टी हो गई थी। विद्यार्थी अपने-अपने घर के लिये चल पड़े। केवल शंकरवर रह गये। एकादशी की तिथि थी। पाठशाला के आहाते में ही एक वृक्ष के नीचे शंकरवर विश्राम करने लगे। उनकी आँख लग गयी। धूप तेज थी।...महेन्द्र कन्दलि कहीं जा रहे थे, उन्होंने शंकरवर को देखा और आश्चर्य में पड़ गये कि एक साँप उनके सिर पर फन की छाया डाल कर रक्षा कर रहा है।....वे शास्त्रज्ञ थे; वे समझ गये कि शंकरवर के रूप में धरती पर किसी दिव्य विभूति का अवतरण हुआ है। उन्होंने उन्हें 'देव' की उपाधि दी। शंकरवर गुरु के आशीर्वाद से शंकरदेव हो गये। उनके पूर्व जीवन के पुण्य जाग उठे; मन में संसार के प्रति वैराग्य का भाव बढ़ना आरम्भ हो गया। अध्ययन समाप्त कर वे घर आ गये; गुरु से विदा ली। महेन्द्र कन्दलि ने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उनकी योग्यता और पौराणिक अध्ययन में निपुणता देख कर घोषणा की कि शंकरदेव बहुत बड़े ज्ञानी, ईश्वरभक्त और योगी हैं। घर आकर वे तटस्थ-से रहने लगे, योगाभ्यास करने लगे। उनके पिता कुसुमवर सशंकित हो गये कि कहीं शंकरदेव संन्यासी न हो जायें।

तेईस साल की अवस्था में एक प्रसिद्ध कायस्थ कुल की कन्या सूर्यवती से उनका विवाह कर दिया गया। गृहस्थाश्रम में उनका मन तनिक भी नहीं लगता था। वे रात-दिन भगवान कृष्ण की लीलाओं का चिन्तन किया करते थे, भागवत-पुराण का पाठ करते थे और योगाभ्यास में अपने अधिकांश समय का सदुपयोग करते थे। थोड़े समय के बाद उनके पिता और पत्नी का देहान्त हो गया। पिता की मृत्यु से उनके कोमल हृदय को बड़ा धक्का लगा। उन्होंने तीर्थयात्रा का निश्चय किया। अपनी कन्या मनु का विवाह-संस्कार सम्पन्न कर वे अपने कुलपुरोहित रामराम, शिक्षागुरु महेन्द्र कन्दलि और सत्रह अनुयायियों को साथ लेकर चौंतीस साल की अवस्था में तीर्थयात्रा के लिये निकल पड़े। काशी, गया, वृन्दावन, मथुरा, बदरिकाश्रम, द्वारका और रामेश्वर आदि में उन्होंने वैष्णवधर्म का विजय-केतन फहराया। अयोध्या, वाराहकुण्ड, सीताकुण्ड, और प्रयाग आदि को अपनी उप-स्थिति से धन्य किया; सन्त और महात्माओं की चरणधूलि से ही तीर्थक्षेत्र की सार्थकता चरितार्थ होती है। अपने यात्राकाल में उन्होंने विचार-क्रान्ति की, समाज का भागवतधर्म अथवा वैष्णव सिद्धान्त के माध्यम से आध्यात्मिक कायाकल्प किया। चारों ओर घूम-घूमकर कृष्णभक्ति का प्रचार किया। वृन्दावन में निवास कर उन्होंने 'बड़गीत' की रचना पूरी की। काशी में सन्त कबीर से उनका सत्संग हुआ था, दोनों एक दूसरे से प्रभावित थे। उन्होंने अपनी ज्ञान-संचय प्रवृत्ति और भक्तिभावना से इस यात्रा काल में लोकजीवन विकसित और प्रभावित किया। उन्होंने बदरिकाश्रम में मन को सम्बोधित करते हुए कहा:

'मन, राम का चरण-चिंतन करो;
देखते नहीं हो, काल निकट आ रहा है,
प्रत्येक क्षण आयु समाप्त हो रही है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किसी समय भी प्राण निकल सकता है;
मन, काल रूपी साँप निगल रहा है;
जानते नही हो, मृत्यु बढ़ती आ रही है।
मन, निस्सन्देह यह शरीर नष्ट होगा
इसलिये माया का बन्धन तोड़कर राम का
चरण-चिंतन करो; तुम अन्धे हो,–
तुम देख कर भी नहीं देख पाते हो।
मन, तुम क्यों असावधान और निद्रित हो;
जागो और गोविन्द का चिंतन करो।
मन, शंकर का यह दृढ़ विश्वास है
कि राम ही एकमात्र परमाश्रय हैं।'

इस यात्राकाल में उन्होंने माधवदेव को अपने शिष्य के रूप में स्वीकार किया। माधव प्रतिभाशाली कायस्थ युवक थे। नवगांव जनपद के बॅन्दुका-ग्राम में पैदा हुए थे। माधव शाक्त थे। शंकरदेव ने कहा कि देवी-देवता के प्रति की गयी भक्ति भी भगवान अच्युत नारायण की ही उपासना है, उन्होंने श्रीमद्भागवत का एक श्लोक प्रमाणरूप में रखा; माधव देवविवेकी और ज्ञानी थे, वे भागवत धर्म में दीक्षित हो गये। माधव देव के बाद दामोदर और हरिदेव दो विद्वान ब्राह्मणों ने शंकरदेव से दीक्षा लेकर भगवद्भक्ति के प्रचार में अमित सहयोग दिया। आसाम का एक-एक कण कृष्णभक्ति की सरसता में संप्लावित हो उठा।

बारह साल के बाद अपने साथ अनुयायियों का एक समूह लेकर घर लौट आये। उन्होंने एकशरण सम्प्रदाय की नींव डाली। लोग दूर-दूर से आकर उनके शिष्य होने लगे। शंकरदेव का समय भगवद्-भक्ति सम्बन्धी पदों की रचना और भजन तथा कीर्तन में बीतने लगा। तीर्थयात्रा की समाप्ति पर शंकरदेव ने कामरूप जनपद के बरपेटा ग्राम में अपना निवासस्थान चुना, पतबाँसी में रह कर श्रीकृष्ण की शुद्ध भक्ति का प्रचार किया। कालिन्दी नामक कन्या से लोगों के आग्रह पर दूसरा विवाह किया। इस नवीन गृहस्थाश्रम में भी भक्ति-साधना में कोई कमी नहीं आने दी। उनका भगवद्प्रेम बढ़ता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गया, यश फैलता गया। तिरहुत में जगदीश मिश्र नाम के एक सात्विक और धर्मनिष्ठ तथा भगवद्भक्त ब्राह्मण रहते थे। वे पुरी में भगवान जगन्नाथ के सम्मुख श्रीमद्भागवत का पाठ करने गये। श्री जगन्नाथ ने उन्हें स्वप्न में शंकर देव के पास जा कर पाठ सुनाने का आदेश दिया। वे शंकरदेव के पास गये। उनके पवित्र दर्शन से अपने आप को सफल किया। इस घटना से महात्मा शंकरदेव की भगवद्प्रियता का पता चलता है।

महात्मा शंकर देव ने दूसरी तीर्थयात्रा के लिये प्रस्थान किया। पहले वे गोरखपुर जनपद में भगवती आमी नदी के तट पर मगहर में सन्त कबीर से मिलने आये। सन्त कबीर से भेंट कर उन्होंने पुरी की यात्रा की। उस समय गौरांग कृष्ण चैतन्य महाप्रभु पुरी में ही थे। दोनों एक दूसरे से हृदय खोल कर मिलने चले। शंकरदेव आसाम के चैतन्य थे। महाप्रभु कृष्ण चैतन्य ने उनका विशेष स्वागत किया, और कुछ दिनों तक दोनों एक दूसरे की भक्ति-माधुरी का आस्वादन करते रहे। सार्वभौम भट्टाचार्य जो चैतन्य महाप्रभु के विशेष प्रशंसकों में से एक थे शंकरदेव के चरित्र और भक्तिमूलक आचरण से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने शंकर देव का चरित्र भी लिखा है। श्रीधर कन्दलि भी शंकरदेव के प्रधान शिष्यों में से एक थे। दूसरी यात्रा में शंकर देव ने दक्षिण भारत के अधिकांश तीर्थों का भ्रमण किया, इस समय उनकी अवस्था लगभग इक्यासी वर्ष की थी।

दूसरी यात्रा समाप्त कर लौटने पर आसाम-प्रान्त का राजसम्मान उनकी चरण-धूलि लेने के लिये दौड़ पड़ा। शंकरदेव तो राजसम्मान और लोकप्रतिष्ठा की सीकचों से बाहर थे। राजा के भाई और सेनापति शीलराय शंकरदेव के शिष्य हो गये। उनके भागवत धर्म के प्रचार को देखकर तथा उनकी सत्कार-वृद्धि से कुछ ब्राह्मण ईर्ष्या करने लगे। शास्त्रार्थ में महात्मा शंकर देव को पराजित करने के लिये काशी से विद्वान आये पर उन्होंने शंकरदेव की भक्ति और सरलता तथा निष्कपट व्यवहार से प्रभावित होकर स्वयं अपनी पराजय मान ली। कूच बिहार के राजा नरनारायण इस घटना से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने अपनी राजसभा में पधारने के लिये शंकर देव को

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आमन्त्रित किया, उनके पधारने पर शिष्य होने की इच्छा प्रकट की। महात्मा शंकरदेव ने राजा को दीक्षा देना उचित नहीं समझा। उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि आपको दीक्षा नहीं दी जा सकती है, राज प्रबन्ध में आप को ऐसे कार्य करने पड़ते हैं जो वैष्णव धर्म के सिद्धान्तों के सर्वथा विपरीत हैं। पर राजा ने बार-बार दीक्षा के लिये आ ग्रह किया। शंकर देव ने राजा से कहा कि आप रात भर उपवास-व्रत कीजिये और भगवान का नाम लीजिये। दूसरे दिन आप को दीक्षा दी जायेगी। ऐसा कह कर महात्मा शंकरदेव अपने स्थान पर आ गये। उनका मन बहुत खिन्न था। वे यही सोच रहे थे कि राजा से हरि की भक्ति नहीं निभ सकेगी, वैष्णव धर्म कलंकित होगा। उनकी दशा प्रत्येक क्षण शोचनीय होती गयी। उनके शिष्य माधवदेव पतबाँसी में थे। दूसरे दिन कूचबिहार के राजा के कर्मचारी शंकर देव को लेने आये। माधवदेव को शंकरदेव ने अपना उत्तराधिकारी घोषित कर एक सौ बीस साल की आयु में कूचबिहार में ही अपने घर में योग द्वारा सम्वत् १६२६ वि. में देह में चन्दन आदि का लेप कर समाधि ली, उन्होंने भगवद्विग्रह के सम्मुख अपनी जीवनलीला समाप्ति की। राजकर्मचारी दरवाजे पर बैठे रह गये। ... थोड़े समय के बाद उन्हें इस दुखमयी घटना का पता चला।...राजा स्वयं बहुत दुखी हुए। इस प्रकार आसाम में वैष्णवधर्म का प्रवर्तन कर उन्होंने लोक जीवन में भगवद्भक्ति की प्राणप्रतिष्ठा की।

भागवत धर्म का प्रचार ही महात्मा शंकरदेव के जीवन का प्रधान कार्य था; भगवान का भजन ही उनके सम्प्रदाय का मुख्य सिद्धान्त था। महात्मा शंकरदेव रामानुज आचार्य के विशिष्टाद्वैतवाद से अधिक प्रभावित थे। आसाम से उन्होंने तान्त्रिक प्रभाव का जड़ोन्मूलन कर दिया। उनके द्वारा प्रचलित धर्म महाधर्म, महापुरुषधर्म अथवा महापुरुषिया धर्म के नाम से विख्यात है। उनकी एक उपाधि 'महापुरुष' की भी है। शंकरदेव के महापुरुष धर्म में दीक्षा—शरण कहलाती है और दीक्षित व्यक्ति 'शरणिया' विशेषण से समलंकृत होते हैं। उन्होंने अपने धर्म के सिद्धान्तों का मूल आधार श्रीमद्-भगवद्गीता और भागवत पुराण को स्वीकार किया। 'श्रीकृष्ण' को ही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उन्होंने परम आराध्य स्वीकार किया। कीर्तन घोष में शंकरदेव की उक्ति है कि जिस प्रकार अग्नि में समस्त वस्तुएँ जल कर स्वाहा हो जाती हैं, वे चाहें या न चाहें उसी प्रकार हरि के नाम से असंख्य पाप नष्ट हो जाते हैं। उन्होंने कृष्ण के चरणारविंद पर अचल भक्ति की याचना की। उन्होंने दास्य-भक्ति अपनायी, उनका निश्चय था कि मधुर भक्ति समाज के लिये उपादेय नहीं हो सकती है, वह तो विशिष्टतम साधना है, समाज के लिये दास्य भक्ति ही वरणीय है। उनकी उक्ति है :

'देव, मैं आपके चरण पर विनत हूँ
मैं आपसे ... प्रार्थना करता हूँ —
मेरी आत्मा सांसारिक वस्तु के विषैले
नाग के जहर से संतप्त है,
इस धरती पर सब कुछ क्षणभंगुर
और नश्वर है—धन, सगे-सम्बन्धी,
जीवन, यौवन, और संसार—सब-के-सब
नश्वर हैं। सन्तान, परिवार—सब
अनिश्चित हैं। किसी पर भी भरोसा
नहीं किया जा सकता है।'
कमल के पत्ते पर एक जल-बूंद के समान
मन चंचल है; उसमें दृढ़ता नहीं है,
आपकी कृपा-दृष्टि में कुछ भी अनिश्चित
नहीं है; आपके चरण की शरण में भय नहीं है।
मैं—शंकरदेव—आपके चरणों में प्रणत
होकर निवेदन करता हूँ, हृषीकेश,
मुझे दुखरूपी संसार-सागर से पार कर दीजिये।
मेरा हृदय अपनी ओर कर लीजिये,
मुझे अपना बना लीजिये, हे कृपामय,
मुझे सत्य का प्रकाश दिखलाइये, मेरा
पथ-प्रदर्शन कीजिये। आप मेरे
सौभाग्य हैं, सर्वस्व हैं, मुझे
दुख से मुक्ति दीजिये।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उन्होंने चैतन्य महाप्रभु की तरह आसाम की जनता को बताया कि हरि के नाम का कीर्तन ही परम धर्म है। इसमें समस्त प्राणियों का अधिकार है, हरि का नाम सब धर्मों का राजा है—ऐसा शास्त्र का विचार है। शंकरदेव वास्तव में युगप्रवर्तक महात्मा थे, भक्तयोगी थे। आसाम के आदिकवि हेम सरस्वती और माधव कन्दलि के रामायण-अनुवाद और 'देवजित' काव्य से शंकरदेव अमित प्रभावित थे, भक्तिसिद्धान्त की स्थिरता में उन्हें इनसे बड़ी सहायता मिली थी। उन्होंने भक्तिप्रधान ग्रन्थों की रचना की। कूचबिहार के राजा नर-नारायण के सेनापति और भाई प्रथम शुक्ल ध्वज अथवा शीलराय के अनुरोध पर महात्मा शंकरदेव ने बहुत-से नाटकग्रन्थ लिखे। केलि-गोपाल नाटक, रामविजय नाटक आदि बहुत प्रसिद्ध हैं। उन्होंने राम-विजय नाटक में स्वीकार किया है:

'राम क परम भकति रस जाना,
श्री शुक्लध्वज नृपति-प्रधाना।
राम विजय जो करावत नाट
मिलह ता क वैकुण्ठ क बाट।'

महात्मा शंकरदेव आध्यात्मिक साधना में अद्वैतवादी थे पर व्यवहार पक्ष में उन्होंने भक्ति का प्रश्रय लिया। उन्होंने प्राणीमात्र को भगवान का अभिव्यक्त रूप बताया। जीव का सर्वश्रेष्ठ धर्म भगवान कृष्ण की भक्ति है—ऐसा उनका अटल सिद्धान्त था। उन्होंने संसार रूपी भयानक वन से काम-क्रोध रूपी कुत्तों और लोभ-मोह रूपी बाघों से आत्मोद्धार करने के लिये सदाशिव कल्याणमय परमात्मा की शरण ली। उनका वचन है:

'ए भव गहन वन, अति मोह पाशे चन,
ताते हामो हरिण बेड़ाय।
फंदिलो मायार पाशे, काल व्याध धाया आशे,
काम-क्रोध कुत्ता खेदि खाय।
हराइल चेतन हरि, न जानी कियते तरि
गुणिते दगध भेल जीव।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लोभ-मोह दुहो वाघ, सतते न छाड़े, लाग
राखु राखु राखु सदाशिव।'

उन्होंने कहा कि भक्ति के मार्ग में प्रेम और विश्वास की परम आवश्यकता है। उनकी भक्ति-साधना में राधा का स्थान गौण है, राधा मधुर भक्ति की प्राण-संजीवनी हैं, दास्य भक्ति में राधा अन्य गोपियों की तरह गौण समझी जाती हैं। शंकरदेव ने जीवों का परमाश्रय अपने भक्ति-सिद्धान्त में कृष्ण को ही माना। गोविन्द के नाम-जप और भजन-कीर्तन में शंकरदेव ने परमानन्द की अनुभूति की। शंकरदेव के आराध्य श्रीकृष्ण अपने आप में परिपूर्ण हैं, स्वरूपस्थ हैं। उन्होंने कहा कि जीव को लक्ष्मी की तरह नारायण की सेवा, भक्ति और उपासना में निरन्तर संलग्न रहना चाहिये। राम और कृष्ण अभेद हैं, एकरूप और नितान्त अभिन्न हैं। राम और कृष्ण चराचर के उपास्य हैं। उनके कृष्ण वेदान्त प्रतिपाद्य निराकार-निर्गुण ब्रह्म हैं। कृष्ण पूर्ण ब्रह्म हैं। शंकरदेव का दीक्षा-मन्त्र—'शरणं मे जगन्नाथ श्रीकृष्ण पुरुषोत्तम' है। उनका जीवन श्रीकृष्ण के चरणों में पूर्ण समर्पित था। वैकुण्ठ से उन्होंने धरती के जीवों के लिये भक्ति-सुधा का असीम सागर उतारा। वे सिद्धयोगी थे। उन्होंने बहुत से लोकोत्तर कर्म किये। उनकी गर्वोक्ति थी कि ईश्वर प्राप्ति तर्क या पाण्डित्य से नहीं, भक्ति से होती है:

'भाई मुखे बोला राम, हृदय धरा रूप,
एते के मुकुति पाइबा, कहिलो स्वरूप।
पाप संहारक हरिनाम महावलि
यार ध्वनि सुनि कम्पि पलाय पाप कलि।'

शंकरदेव ने तुलसी और सूर के अग्रज की तरह पूर्व भारत में—आसाम में वैष्णव धर्म के सिद्धान्तों का समन्वय किया। वे आसामी साहित्य के पिता थे। उन्होंने साहित्य को भक्ति-रूप प्रदान किया, राम और कृष्ण को साहित्य का प्रतिपाद्य स्वीकार कर श्रीमद्भागवत और रामायण के पौराणिक ब्रह्म की भक्ति सिद्ध की।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रचना

शंकरदेव ने संस्कृत और व्रज बोली में ग्रन्थ लिखे। भागवत पुराण के प्रथम, द्वितीय, अष्टम, एकादश, द्वादश स्कन्ध का भावानुवाद किया। रुक्मिणी-हरण, पारिजातहरण, केलिगोपाल नाटक, रामविजय नाटक, वैष्णवामृत, भक्तिरत्नाकर, उत्कलमाला, लीलामाला, कीर्तन घोष, बड़गीत आदि उनकी प्रसिद्ध रचनायें हैं।

वाणी

बोलहु राम नामे से मुकुतिनिदान।
भव वैतरणी तरणी सुख सरणी
नाहि नाहि नाम समान।
नाम पंचानन नादे पलावत
पापदंती भयभीत।
बुलिते एक सुनिते सत नितरे
नाम धरम विपरीत।
बचने बुलि राम धरम अरथ काम
मुकुति सुख सुखे पाइ।
सब कहु परमा सुहृद् हरिनामा,
छुटे अन्तकेरि दाइ।
नारद शुक मुनि राम नाम बिनि
नाहि कहल गति आर।
'कृष्ण किंकर' कय छोड़ मायाभय
राम परम तत्वसार।

———

जादव हे, कैछन बात बेगारि।
सकल निगम तेरि अन्त न पावत,
हाम पामर गोपनारि।
तुहु परम गुरु निखिल निगम पति
मानुस भाव तोहारि।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चतुर वयन तेरि, माया विमोहित,
जाने नाहिं योग विचारि।
तेरा अइचन भाव न जानिए,
कयालु गरब नाथ तोइ।
राधा उचित बात, कहय माधव दिन
गति गोविन्द पद मोइ।

परम निर्मल धर्म हरिनाम कीर्तन
त समस्त प्राणीर अधिकार।
एतेके से हरिनाम समस्त धर्मेर राजा,
एहि सार शास्त्रर विचार।

'कृष्ण किंकर' कह विछोड़ि विसम कामा,
राम-चरण लेहु शरण, जप गोविन्द कु नामा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्त नानक

'जिन लोगों ने सत्वगुणियों के परमाराध्य श्रीहरि को हृदय में धारण कर लिया है उन महात्मा साधुओं के लिये भला कौन-सा काम दुष्कर है और ऐसा कौन-सा त्याग है जिसे वे नहीं कर सकते हैं; वे सब कुछ त्यागने और करने में समर्थ हैं।'

—श्रीमद् भागवत

भारत देश आदि काल से तपोभूमि की संज्ञा से समलंकृत होता चला आ रहा है। मध्यकालीन विश्व-इतिहास ने बहुत बड़े-बड़े सन्तों, दार्शनिकों, कवियों और साहित्यकारों को जन्म दिया, उनमें सन्त नानक को एक विशिष्ट और परमोच्च स्थान प्राप्त है। वे सन्त कबीर के परम्परावादी तो नहीं थे पर निरंकार, निरञ्जन, रोम-रोम में रमने-वाले और अलख सत्य-परमात्मा के स्मृतिकार थे। नानक ने हरि के नाम-जप को सर्वश्रेष्ठ धर्म स्वीकार किया। नानक ने सत्य का स्तवन किया। जीवमात्र की मौलिक एकता सिद्ध की। उन्होंने सत्य और परमात्मा की अभिन्नता की ओर लक्ष्य किया। उनका आत्मबोध परमात्मा की ओर ले जाता है। उनकी आत्मा की वाणी का मीठा कंठ कह सका:

'तुमरी उस्तुति तुम ते होइ।
नानक और न जानसि कोइ।'

नानक ने सत्य श्री अकाल, परमेश्वर के भजन को ही जीवन का परम ध्येय बतलाया। उनकी भारतीय शास्त्र की भगवदीय परम्परा में पूरी-पूरी आस्था थी। भारतीय इतिहास की वे बहुत बड़ी आवश्य-कता थे। दिल्ली की केन्द्रीय राजसत्ता नानक के प्राकट्य-काल में बाहरी आक्रमणों से क्षुब्ध और त्रस्त थी। नानक ने भयभीत जनता को सत्यनाम की महत्ता बताकर समाज का मौलिक ढंग से आध्यात्मिक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संगठन किया। वे निर्गुण ज्ञान-धारा के सन्त थे, सन्तमत की पुष्टि कर उन्होंने समाज में चिन्मय सत्य–परम पुरुष परमात्मा की उपासना चलायी। सन्त नानक ने सम्वत् १५२६ वि. में वैशाख शुक्ल तृतीया को लाहौर के सन्निकट तलवण्डी ग्राम में जन्म लिया था, उनके जन्म-स्थान को नानकाना साहब भी कहा जाता है। उनके पिता का नाम कालूचन्द था, वे पटवारी थे; माता का नाम तृप्ता था। नानक बचपन से ही ईश्वरोन्मुख थे, उनके संस्कार दिव्य और शुभ थे। उनके पिता उन्हें सांसारिक कार्यों में लगाना चाहते थे। उनकी शिक्षा का क्रम भी उन्होंने कुछ सांसारिक ढंग पर ही रखना चाहा। बचपन में पाठशाला में उन्होंने अपने शिक्षागुरु से एक दिन कहा कि आप मुझे ऐसी शिक्षा दीजिये जिससे मेरा माया-बन्धन टूट जाय, मैं भगवान का भजन कर सकूं और सांसारिक ज्वाला मुझे न सता सके। उनके शिक्षा-गुरु आश्चर्यचकित हो गये। नानक ईश्वर के चिन्तन, स्मरण और भजन में रात-दिन लगे रहते थे। घरवाले उन्हें ईश्वर से विमुख कर प्रपंच में जकड़ने का साहस न कर सके। वे एकान्त में बैठ कर भगवान का ध्यान करते थे। एक दिन वे दोपहर तक घर न आ सके, लोग उनके लिये चिंतित हो उठे। पिता उनकी खोज में गये, ध्यान में लीन पाया, घर लाकर भोजन पर बिठाया पर उन्होंने भोजन नहीं किया। उनकी बाह्य स्थिति विलक्षण देख कर पिता ने उन्हें स्वस्थ करने के लिये वैद्य बुलाया। कुछ चेत होने पर नानक ने वैद्य से कहा, "आप दवा देकर मुझे नीरोग तो करना चाहते हैं पर आपके भीतर काम, क्रोध, मोह, मद और मत्सर तथा लोभ आदि जो व्याधि हैं उनका उचित उपचार कर आपने अपने आपको स्वस्थ कर लिया है या नहीं।' वैद्य जी नानक की बात सुन कर अवाक हो गये। भवरोग के धन्वन्तरि के मध्यकालीन संस्करण के चरण पर मस्तक नत कर उन्होंने नानक के घरवालों से कहा कि आप लोगों ने इस समय मुझे यहाँ बुला कर मेरा परम उपकार किया है। मैं जन्म-जन्म तक आप के आभार से दबा रहूँगा। आपके घर में असाधारण व्यक्ति ने जन्म लिया है। प्राणीमात्र के दुख और कष्ट ने उन्हें चिंतित किया है। भगवान की उन पर महती कृपा है। मेरा तो उनके दर्शन मात्र से मोहान्धकार हट गया। नानक में असाधारण पुरुष के लक्षण देख कर भी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उनके पिता ने अपने प्यारे पुत्र को गृहस्थ के ही रूप में देखना चाहा। उनके मन ने कभी यह नहीं स्वीकार किया कि नानक घर त्याग कर संन्यासी हो जायें। उन्होंने नानक को खेती करने की आज्ञा दी। नानक ने कहा कि मैंने जितनी धरती पर खेती की है वह तो बहुत लम्बी-चौड़ी है, उसमें मैंने अपने इष्ट मन्त्र—सत्य नाम का बीज बोया है। जो फसल होगी उसका भण्डार अक्षय होगा। मेरी खेती में जो रत्न फलेंगे केवल उनकी प्राप्ति से ही जीवमात्र के इह लोक और परलोक दोनों सुधर जायेंगे। प्राणीमात्र अनन्त शान्तिमय जीवन के भागी होंगे। ,..वे परमेश्वर की भक्ति-भागीरथी में स्नान कर संसार में सत्य-दान की महिमा प्रतिष्ठित करेंगे। नानक के कथन से पिता को विशेष संतोष न हुआ। वे यही चाहते थे कि पुत्र सांसारिक यश और सम्पत्ति की अभिवृद्धि करे। उन्होंने नानक को दूकानदारी की सीख दी और परदेश में सौदा खरीदने के लिये भेजना चाहा। नानक ने विनम्रता-पूर्वक कहा कि इस संसार में चारों ओर मेरी ही दूकानें हैं, सन्तजन स्थान-स्थान पर हरिनाम का सौदा कर रहे हैं। मेरी दूकान में सांसारिक वस्तु नहीं मिलती है, उसमें तो मैंने यत्नपूर्वक सारवस्तु का संचय किया है। उसमें वस्तु खरीदने वाले स्वर्ग और परमात्मा का योग पाते हैं, आत्मतत्व समझने वाले ही सारवस्तु—सत्यतत्व के गाहक हैं। पिता के बार-बार अनुरोध करने पर नानक ने कुछ रूपये लेकर विदेश की यात्रा की। उन्होंने इस कार्य में परमेश्वर की पवित्र प्रेरणा का दर्शन किया। मंगलविधान देखा। उनके साथ बाला नामक नौकर गया था। रास्ते में एक जंगल में कुछ सन्तों की मण्डली देखी। नानक का नवनीत के समान हृदय पिघल गया। उन्होंने सारे रुपये सन्तों की सेवा में लगा कर घर की राह ली। पिता उनके इस आचरण से खिन्न और अप्रसन्न हुए। नानक की बहन उन्हें ससुराल ले गयी। नवाब की राजसभा में उनकी नियुक्ति हुई। कुछ दिनों के बाद नानक ने नवाब की नौकरी छोड़ दी। उनके हृदय में तो परमात्मा के चरण-चिन्तन का भाव उदय हो चुका था। नवाब उनके उच्च चरित्र और आचार-विचार से बहुत प्रभावित था पर नानक ने परमेश्वर की राज-सभा को छोड़ना अपने लिये हितकर नहीं समझा। उन्नीस वर्ष की अवस्था में गुरदासपुर जनपद के मुलानामक व्यक्ति की कन्या

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुलक्खनी देवी के साथ उनका विवाह कर दिया गया; इस प्रकार नानक ने गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया, उनके दो पुत्र श्रीचन्द्र और लक्ष्मीचन्द्र हुए। श्रीचन्द्र उदासी महात्मा थे. उन्होंने उदासी सम्प्रदाय के सिद्धान्तों की प्राणप्रतिष्ठा की। नानक दृढ़ संयमी, अध्यवसायी और मेधावी थे। उनका मन गृहस्थाश्रम में तनिक भी नहीं लगता था। उनमें घर के प्रति तनिक भी आसक्ति नहीं थी। वे अपने दो सेवक बाला और मरदाना को साथ लेकर प्रभु-भक्ति के प्रचार के लिये निकल पड़े। बाला उनकी सेवा करता था और मरदाना ईश्वर के अत्यन्त मधुर गुणगान से उन्हें सदा प्रसन्न रखता था। नानक ने निराकार, निरञ्जन अलख ब्रह्म से नाता जोड़ा, उन्होंने अमूर्त तथा निर्गुण ब्रह्म की भक्ति निभाने की सीख दी। उन्होंने कहा कि निराकार प्रभु की पूजा से ही मोक्ष-प्राप्ति हो सकती है। नानक ने गोरख, नामदेव और कबीर की निराकार-उपासना की परम्परा को प्रगति दी। लोग उनके उपदेश और वेश से प्रभावित हुए। इस ऐतिहासिक यात्रा में उनके सिर पर कलन्दरी टोपी या पगड़ी रहती थी. ललाट पर केशर का तिलक लगाते थे, गले में माला सुशोभित रहती थी, शरीर पर लाल या नारंगी रंग का परिधान रहता था। वे इस यात्रा में अमर योगी भर्तृहरि के आश्रम पर भी गये थे। हठयोगी भर्तृहरि से नानक ने कहा कि मनुष्य की रक्षा के लिये भगवान ने भक्तियोग का विधान किया है। भक्ति-मार्ग पर चलने से प्राण सरस हो जाता है, भक्ति ईश्वरीय देन है, अमृतमयी गंगा जी भी इसकी स्पर्धा के लिये प्रयत्नशील रहती हैं, जीवन समुज्ज्वल, सरस और मधुर हो जाता है, भगवान की भक्ति निरन्तर उनके नाम का चिंतन करने से मिलती है। इसकी प्राप्ति के लिये सचेष्ट रहना ही श्रेय मार्ग का अवलम्बन है। भर्तृहरि के आश्रम से वे विश्वम्भरपुर नगर में पहुँचे। इस स्थान का प्रसिद्ध व्यापारी उनका शिष्य हो गया। ऐसा कहा जाता है कि विश्वम्भरपुर में नानक के पास एक हीरा था। नानक ने बाला-को उसका मूल्य लगाने के लिये बाजार भेज दिया। सालसराय नामक व्यापारी ने सौ रुपया बयाना देकर हीरे का मूल्य पूछा। नानक ने कहा कि सालसराय इसे नहीं खरीद सकता है और बयाना लौटा दिया। व्यापारी पर इस घटना का बड़ा प्रभाव पड़ा,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वह उनके दर्शन के लिये आया और दीक्षित हो गया। विश्वम्भरपुर से नानक मक्का और मदीना गये। इन स्थानों में उन्होंने अद्भुत चमत्कार दिखाये। काबे की ओर पैर फैला कर सोने पर कुछ लोगों ने उन्हें झिड़की दी। उन्होंने पैर घुमा लिये, काबे का दरवाजा भी पैर की ओर घूम गया। लोगों ने उन्हें सिद्ध सन्त समझ कर अच्छी तरह स्वागत-सत्कार किया।.....उसके बाद सैदपुर में बाबर के सैनिकों ने उनको बन्दी बना लिया। बाबर ने दैवी सिद्धि से प्रभावित होकर उनको मुक्त कर दिया। बगदाद और काश्मीर होते हुए वे दरबलोत स्थान पर आये, मरदाना का देहावसान हो गया।...अजोधन पाकपत्तन में सन्त फरीद द्वितीय से भी उनकी भेंट हुई थी। नानक यात्रा से लौट कर गेरुआ वस्त्र धारण कर करतारपुर में घर वालों के साथ अठारह साल तक रहे, वैराग्य अधिक होने पर वे प्रयाग, काशी आदि तीर्थों में होते हुए जगन्नाथपुरी में आये। पुरी में उनके बहुत से लोग शिष्य हो गये। जिस समय पुरी में जगन्नाथ जी की आरती हो रही थी वे उसे बाह्य आडम्बर समझ कर बाहर ही खड़े रहे, प्रभु के ध्यान में मग्न होकर उन्होंने अपनी पवित्र वाणी से भगवान की दिव्य आरती उतारी। उन्होंने गाया:

गगनमय थाल रविचन्द दीपक बने
तारक मण्डल जनक मोती।
धूप मलयानिलो पवन चँवरी करै
सकल बनराई फूलन्त जोती।
कैसी आरती हो भवखण्डना तेरी,
आरती अनहता शब्द वाजन्त भेरी।
सहस तव नैन तव नैन हरि तोहि कोउ
सहस मूरत मना, एक तोही।
सहस पद विमल तव एक पद गन्ध बिन
सहस तव गन्ध इव चलत मोही।
सब महँ जोति जोति है सोई
तिस दे चांनण सब मह चांनण होई।
गुरु साखी जोति परगट होई,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जो तिस भावे सो आरती होई।
हरिचरण कमल मकरन्द लोभित मनो,
अनदिनो मोही आहि पियासा।
कृपा-जल देह नानक सारिंग कहँ
होइ जाते तेरे नाइ वासा।

पुरी से लौटते समय दिल्लीश्वर बाबर ने उनका सत्संग-लाभ किया था। बाबर ने उनको पर्याप्त पुरस्कार देना चाहा पर सन्त नानक तो परमात्मा की राजसभा के सदस्य थे, उन्हें इस लोक-व्यवहार से क्या करना था। उन्होंने बाबर को सदुपदेश दिये।

नानक ने आत्मतत्व की साधना को ही सत्यनाम-कर्ता पुरुष की उपासना का रूप दिया। उनका सत्य अकाल, निर्विकार और सर्वथा निर्भय है। सन्तों के सत्य का यही रूप होता है। नानक ने वैदिक सत्य की महिमा का विवरण मध्यकालीन भारत को सरस उपासना की वाणी में दिया था। शंकराचार्य के वेदान्त से भारतीय मस्तिष्क उपराम होना चाहता था, इसलिये उन्होंने उसका दरवाजा खटखटाया। निर्गुण और सगुण भक्ति का भारतीय जनता ने सहारा लिया। सन्तों और भक्तों का अनुसरण किया। नानक ने कबीर और रैदास की तरह समाज को निर्गुण भक्तिधारा का रसास्वादन कराया। उन्होंने कहा कि ईश्वर सम्राटों के सम्राट हैं, उनका ऐश्वर्य पूर्ण रसमय है : उन्होंने कर्ता पुरुष की स्तुति में कहा :

'केते गावण हारे,
गावहि तुहिनो, पवणु पाणी वैसंतरु
गावै राजा धरम दुआरे।
गावहि चित्तगुपुत लिखि जाणहि
लिखि लिखि धरमु बीचारे।
गावहि ईसरु बरमा देवी
सोहनि सदा संवारे।
गावहि इन्दासणि बैठे देवतिआ दरि नाले,
गावहि सिद्ध समाधी अन्दरि
गावनि साध विचारे।'...

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नानक उच्च कोटि के महात्मा और भगवद्भक्त थे। वे किसी नवीन मत या सम्प्रदाय का प्रवर्तन नहीं करना चाहते थे। उनके शिष्य 'सिख' कहलाते थे। नानक ने रात के पिछले पहर ईश्वर-भजन गाने की प्रथा चलायी थी। नानक ने ऐसे हरि की लीला का रसास्वादन किया जिनका गुणगान सन्तजन आदि काल से करते चले आते हैं, सिद्धजन समाधि में जिनके चैतन्य स्वरूप का प्रकाश अपनाते रहते हैं। नानक का देश सारा विश्व था, उनका परिवार चराचर जगत था, उनका ईश्वर-विश्वास सत्य की विजयिनी पताका का प्रश्रय था। शंकराचार्य का आत्मतत्व चेतनाप्रधान ज्ञानयोग का स्रष्टा था तो नानक का आत्मबोध भावनाप्रधान भक्तिमूलक कर्मयोग का—दिव्य और ईश्वरीय भोग का—हरि की ऐश्वर्य-माधुर्य-लीला का नियामक था। पहले ने माया को ईश्वर से अलग कर वेदान्त का आत्मवाद सिखाया तो दूसरे ने माया को ईश्वर के बन्धन में सम्मोहित कर निर्गुण भक्ति-आत्मोपासना सिद्ध की। दोनों ज्ञानी थे, दोनों भक्त थे पर अन्तर केवल इतना ही था कि आचार्य शंकर दार्शनिक थे और नानक सन्त थे।...नानक निर्गुण परमात्मा के ऐश्वर्य और माधुर्य के मध्यकालीन समन्वय-सूत्र थे। निर्गुण और सगुण भक्ति ने उनके सत्य से प्राणमयी संजीवनी शक्ति की गंगा में स्नान किया, सत्य के रमणीय शिव से ज्ञान के कैलाश पर अपने प्रणय का प्रमाणपत्र प्राप्त किया। भारत को नानक की यह मौलिक देन है। नानक कबीर के पूरक थे। उन्होंने राष्ट्रीय संस्कृति दी।

नानक ने सीख दी कि हरि-सत्य का भजन करने वाले ही जगत की स्तुति और सम्मान के पात्र हैं। सत्य की शक्ति के सामने नास्तिक को भी नतमस्तक होना पड़ता है—उनकी यह मान्यता थी। नानक के सत्य ने आत्मप्रेम दिया, विश्व-बन्धुत्व दिया। नानक ने मानवता के पूर्णतम विकास पर ईश्वरीयता की अभिव्यक्ति निश्चित की। नानक युगपुरुष थे, उन्होंने जनभाषा में समाज को सत्यानुराग और ईश्वर-प्रेम की शिक्षा दी। उन्होंने कहा कि सत्य नाम का व्यवहार ही लोक-व्यवहार में सच्चा सहायक है; हरि के गुणगान से दैन्य भाग जाता है, दुख मिट जाता है; हरि का स्वरूप-चिंतन प्राणिमात्र की सेवा का

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पाठ पढ़ाता है, सेवा-दान मानव को देवता बनाता है।

हरि की कृपा और प्रसाद से प्राप्त नरदेह का उपयोग नानक ने भगवान के स्मरण, ध्यान, चिंतन और भजन में स्थिर किया। नानक ने ईश्वर के आदेश से दिव्य पथप्रदर्शक के रूप में धरती पर जन्म लिया था। उनका समस्त जीवन ईश्वर के चरण पर समर्पित था। वे ईश्वरीय कृपा के मध्यकालीन प्रतीक थे। उन्होंने काश्मीर से कामरूप तक के भूमिभाग में सत्य की पवित्र भक्ति उतारी, सन्तमत की सरस्वती में कलि के संतप्त प्राणियों का अभिषेक किया। नानक का प्राकट्य समय की माँग के अनुकूल ही हुआ। नानक ने समाज के सिर से असत्य का बोझा उतार कर उसे सत्य का निर्मल बाना पहनाया। उन्होंने निस्संकोच कहा कि सत्य सापेक्ष, रूढ़िगत और सम्प्रदायगत नहीं हो सकता है।...वह तो सर्वथा स्वतन्त्र, निरपेक्ष और निस्सीम है। उन्होंने घोषणा की कि समस्त जीवों पर समान रूप से भगवान की कृपा दृष्टि रहती है। नानक ने ब्रह्म की अमृतमयी दृष्टि की ओर ध्यान आकृष्ट किया। सत्यपुरुष निरंकार ही सद्गुरु हैं, उनके चरण में नित्य-निरन्तर कृपा की गंगा का रमण होता है, जीवात्मा बिना ईश्वर की कृपा के रह ही नहीं सकता है—नानक की ऐसी दृढ़ मान्यता थी।

सन्त नानक ने करतारपुर में सं. १५९५ वि. में आश्विन शुक्ल दशमी को महाप्रस्थान किया। अन्तिम समय निकट जानकर उन्होंने अपने विश्वासपात्र शिष्य लहिणा को उत्तराधिकारी घोषित किया। गुरु अंगद के रूप में उनके प्रति सम्मान प्रकट किया। नारियल और पैसों की भेंट कर दूसरों के लिये अपने आचरण का आदर्श रखा। अन्तिम समय में गुरु नानक एक वृक्ष के नीचे जा बैठे, उनका मुखमण्डल दिव्य तेज से आलोकित था, नयनों में शान्ति थी, मन में आनन्द था। कीर्तनमण्डली झूम झूम कर सरस भक्तिमय पद गा रही थी। 'जपु' जी का पाठ हो रहा था, पाठ की समाप्ति के थोड़े समय पहले सन्त नानक ने चादर ओढ़ ली, 'वाह गुरु, वाह गुरु' का उच्चारण करते-करते वे परमात्मा में लीन हो गये। सारे वातावरण में जपु साहब की यह वाणी गूंज उठी कि एक जीभ के स्थान पर यदि मेरी लाख जीभ हो जायें और लाख से बीस लाख हो जायें, एक एक जीभ से मैं लाख-लाख बार जगदीश्वर का ही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नाम जपूंगा। इस प्रकार स्वामी–परमात्मा के मार्ग की सीढ़ियों से चढ़ कर उनमें लीन हो जाऊँगा।

नानक भगवद्भक्ति के बहुत बड़े प्रचारक थे। उन्होंने अपने समकालीन समाज को जागृत किया और कहा कि जब सबसे पहले और कुछ भी अस्तित्व में नहीं था तब केवल सत्स्वरूप परमात्मा ही थे,....अब भी सत्य है और आगे भी सत्य रहेगा। नानक ने दुखी जीवों को सन्देश दिया कि परमात्मा सत्य हैं, उनका नाम भी सत्य है, उनके बखान करने के भाव अगणित हैं। अमृत वेला में–मंगलमय प्रभात काल में उनके सत्यनाम और महिमा का विचार करना चाहिये। उनका समस्त जीवन ही एक यज्ञ था। वे असहाय और दीन जनता के संरक्षक थे, उन्होंने सत्य, शान्ति और प्रेम का सन्देश दिया।

रचना

आदि ग्रन्थ में उनके 'सलोक', 'सब्द' और साखी संग्रहीत हैं। 'जपु जी' 'असा दी वार', 'रहिरास' और 'सोहिला' प्रसिद्ध रचनायें हैं।

वाणी

रैणि गवाई सोइ कै, दिवसु गवाइआ खाइ।
हीरे जैसा जनमु है, कउड़ी बदले जाइ॥
नामु न जानिआ राम का।
मूढ़े फिरि पाछै पछुताहिरे।
अनता धुन धरणी धरे, अनत न चाहिआ जाइ।
अनत कउ चाहन जो गए से, आए अनत गवाइ॥
आपण लीआ जे मिलै तासमु को भागनु होइ।
करमा ऊपरि नीवड़ै जे लौवै सभु कोइ॥
'नानक' करण जिनि कीआ, सोई सार करेइ।
हुकमु न जापी खसमं का किसै बढ़ाई देइ॥

कुंभे बधा जलु रहै, जल बिनु कुम्भ न होइ।
गिआन का बधा मनु रहै, गुर बिनु गिआन न होइ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जिनी न पाइउ प्रेमरस, कंत न पाइउ साउ।
सूने घर का पाहुणा, जिउ आइया तिउ जाउ॥
धनवंता इवही कहै, अवरी धन कउ जाउ।
'नानक' निरधनु तितु दिनि, जितु दिनि विसरैनाउ॥
जिनके पलै धनुवसै, तिनका नाउ फकीर।
जिन्हकै हिरदै तू वसहि, ते नर गुणी गहीर॥
असंख जप असंख भाउ, असंख पूजाअसंख तप ताउ।
असंख गरंथ मुखि वेद पाठ, असंख जोग मनि रहहि उदास।
असंख भगत गुण गिआन विचार असंख सती असंख दातार।
असंख सूरमुहँ भरवसार, असंखयोनि लिवलाइ तार।
कुदरति कवण कहा वीचारु, वारिआ न जावा एक बार।
जो तुध भावै साई भली कार, तू सदा सलामति निरंकार॥

हरि बिनु, किउ रहिये दुखु व्यापै।
जिहवा सादु न, फीकी रसबिनु, विनु प्रभु काल सतापै।
जब लगु दरसु न परसै प्रीतम तब लगु भूख पिआसी।
दरसनु देखत ही मनु मानिआ, जल रसि कमल बिगासी।
ऊनवि धनहरु गरजै बरसै, कोकिल मोर बैरागै।
तरवर बिरख बिहंगभुअंगम धरि पिरु धन सोहागै।
कुचिल कुरूप कुनारि कुलखनी पिर कउ सहजुन जानिआ।
हरि रस रंगि रसन नहीं तृपती, दुरमतिदूख समानिआ।
आइ न जावै ना दुखु पावै, ना दुखु दरदु सरीरे।
'नानक' प्रभुते सहज सुहेली, प्रभु देखत ही मनु धीरे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महाप्रभु वल्लभाचार्य

भरोसो दृढ़ इन चरननि केरो।
श्रीवल्लभनखचंद छटा बिन सब जग माँझ अधेरो।
साधन नहीं और या कलि में जासों होय निबेरो।
'सूर' कहा कहे द्विविध आँधरो बिना मोल को चेरो।

महाप्रभु वल्लभाचार्य महादार्शनिक, परम भागवत और बहुत बड़े तथा अपूर्व और असाधारण भगवल्लीला-पारखी थे। उनके आत्मदर्शन में सगुण-निर्गुण ब्रह्म ने पूर्ण रूप से शुद्ध सच्चिदानन्दमय लीलारूप धारण कर लिया, वे भक्ति के आचार्य थे, उनका प्रत्येक कार्य सर्वथा लोकोत्तर, दिव्य और भगवदनुग्रहमय था। उन्होंने भारतीय लोकजीवन में भगवान के चरणारविन्द की पूर्णतम शरणागति उतार कर श्रीकृष्ण की वात्सल्य-रति की जो अमृत-मन्दाकिनी प्रवाहित की वह भक्ति के इतिहास में एक मौलिक प्रयास स्वीकार किया जा सकता है। महाप्रभु वल्लभाचार्य शुद्धाद्वैत दर्शन के महापण्डित थे, प्रवर्तक थे। मध्यकालीन भारत म्लेच्छाक्रान्त था, भारतीय संस्कृति और समाज तथा धर्म का रूप विकृत होता जा रहा था, दिव्य सम्पत्ति पर आसुरी सत्ता की प्रबलता बढ़ रही थी, शंकराचार्य के वेदान्तरंगमंच के ब्रह्म के नीरस चिन्तन से लोक-जीवन ऊब-सा रहा था;—ऐसे समय में महाभागवत वल्लभाचार्य ने भागवतधर्म की कल्पलता की शीतल और शान्त छाया में जनता को भक्ति-सुधा सागर में सराबोर कर श्रीकृष्ण भक्ति की मार्मिक व्याख्या समझायी। वे श्रीकृष्ण के रूप-रस, ऐश्वर्य-माधुर्य और सौन्दर्य के अप्रतिम भाष्यकार थे। मध्यकालीन भारतीय साहित्य को भक्तिप्रधान बनाने का श्रेय उन्हीं को है।

वल्लभाचार्य के प्राकट्य-काल में भारत की राजनीतिक स्थिति अस्थिर और अशान्त थी। कृष्णाश्रय ग्रन्थ में स्वयं महाप्रभु ने स्वीकार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किया है कि देश में म्लेच्छों का प्रभाव बढ़ रहा है, चारों ओर पाप की प्रभुता है, सत्पुरुष उत्पीड़ित हैं, लोक पीड़ित है; ऐसे देश में भगवान श्रीकृष्ण ही हमारे रक्षक हैं। गंगा आदि तीर्थों में भी म्लेच्छों का उत्पात बढ़ रहा है, लोग वैदिक जीवन से हीन होते जा रहे हैं, धर्म-कर्म की मर्यादा समाप्त होती जा रही है, ऐसी भयानक स्थिति में भगवान श्रीकृष्ण ही हमारी गति हैं।

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने पाप का उन्मूलन किया, जड़ता और अज्ञान-अन्धकार का विनाश किया। लोगों को भगवद् विश्वास और प्रेम से सम्पन्न कर अभय दान दिया। उनकी कृपा और भक्ति के प्रताप से घर-घर में बालकृष्ण की लीलायें अभिव्यक्त हो उठीं। सूरदास, कुम्भन-दास, गोविंददास और परमानन्ददास आदि ने साहित्य को श्रीकृष्ण की सरस लीला-चेतना से समृद्ध कर सत्य के सौन्दर्य का शिवरूप-कल्याणरूप देखा। भक्ति का मूल स्त्रोत दक्षिण भारत है, भागवत आदि ग्रन्थों में ऐसा उल्लेख है। महाप्रभु वल्लभाचार्य के पूर्वज दाक्षि-णात्य थे। उनके पिता लक्ष्मण भट्ट आन्ध्र प्रान्त में व्योमस्तम्भ पर्वत के सन्निकट भगवती कृष्णा नदी के पवित्र तट पर काकरवाड या काकु-म्मकर नगर में रहते थे, बाद में वे अग्रहार गाँव में आकर रहने लगे। उनके कुल का नाम बेलनाट था। लक्ष्मण भट्ट बड़ी सात्विक वृत्ति के धर्मनिष्ठ शतसोमयाजी ब्राह्मण थे, वे पुण्यात्मा थे। उनकी पत्नी इल्लमागारु भी परम सती-साध्वी और भक्तिपरायण थीं। लक्ष्मण भट्ट तैलंग ब्राह्मण थे।

पांच सौ साल पहले की बात है, लक्ष्मण भट्ट अपनी पत्नी सहित तीर्थयात्रा के लिये काशी आये हुए थे। उन्हें समाचार मिला कि काशी पर शीघ्र ही यवनों का आक्रमण होने वाला है। वे दक्षिण के लिये चल पड़े। भगवती महानदी के तट पर त्रिस्थली—चम्पारण्य में पतिव्रता इल्लमागारु से सं. १५३५ वि. में वैशाख कृष्ण एकादशी को रात में महाप्रभु वल्लभाचार्य का प्राकट्य हुआ। वे असीम दिव्य ज्योति से नितान्त समलंकृत थे। उस समय यवनों का आतंक इतना छाया हुआ था कि लक्ष्मण भट्ट और इल्लमागारु को अपना ही प्राण बचाना कठिन लग रहा था, ऐसी स्थिति में नवजात शिशु को उन्होंने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महानदी के निर्जन तट पर शमीवृक्ष के नीचे असहाय छोड़ कर आगे बढ़ने का निश्चय किया। कुछ दूर वे गये ही थे कि सौभाग्यवती वात्सल्यमयी जननी से न रहा गया, उनके हृदय की ममता दया में बदल गयी, वे पति के साथ लौट पड़ीं। वे नवजात शिशु को ढूँढ़ने लगीं। दम्पति आश्चर्यचकित हो गये। उन्होंने नवजात शिशु को अग्नि-मण्डल से घिरा देखा, उन्हें ऐसा लगा कि चिन्मय भगवद्रूप में नवजात ने उनकी गोद को पवित्र और धन्य किया है, वे नवजात को लेकर काशी की ओर चल पड़े।.....वातावरण में आनन्द छा गया, कण-कण से यही ध्वनि निकलने लगी कि:

'प्रातसमय उठि करिये श्री लक्ष्मणसुत गान।
प्रगट भये श्रीवल्लभप्रभु देव भक्ति को दान।
श्रीविट्ठलेश महाप्रभु रूप के निधान।'

लक्ष्मण और इल्लमागारु अपने प्राणप्रिय नवजात शिशु को गोद में उठा कर काशी आ गये और हनुमान घाट पर रहने लगे। महाप्रभु वल्लभाचार्य बचपन में अलौकिक प्रतिभा से सम्पन्न थे। लोगों ने उन्हें ('बाल-सरस्वती वाक्पति' कहना आरम्भ किया। विष्णुचित्, तिरुम्मल और माधव यतीन्द्र की देखरेख में उन्हें अच्छी से अच्छी शिक्षा मिली, वे बचपन में ही अपने गुरुओं की कृपा और भगवान के अनुग्रह से वैष्णव शास्त्रों में पारंगत हो गये। तेरह साल की ही अवस्था में वे वेद-वेदांग, पुराण तथा धर्मशास्त्र आदि में निष्णात होकर भगवान की भक्ति में समय का सदुपयोग करने लगे। ग्यारह साल की अवस्था में, पिता के परलोक पधारने पर महाप्रभु वल्लभ को संसार के प्रति पूर्ण वैराग्य हो गया, उन्होंने भगवदाराधन को ही अपने जीवन का ध्येय स्थिर किया।

धीरे-धीरे उनकी विद्वत्ता और भगवद्भक्ति की ख्याति चारों ओर बढ़ने लगी। दक्षिण भारत में विजयनगर में महाराज कृष्णदेव राय शासन कर रहे थे। वल्लभाचार्य विष्णुस्वामी के भक्ति-सिद्धान्तों से बहुत प्रभावित थे। उन्होंने अपनी माता के साथ दक्षिण भारत की यात्रा की। उस समय दक्षिण में शांकर वेदान्त और मायावाद के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सिद्धान्तों का बोलबाला था। विजयनगर वेदान्त का प्रधान दुर्ग था। उन्होंने राजसभा में उपस्थित होकर मायावाद का खण्डन किया, भागवत-धर्म और विष्णुभक्ति की विजयिनी ध्वजा फहरायी। दक्षिण का पाण्डित्य उनके चरणों पर नत हो गया, राजसभा ने उन्हें 'महाप्रभु' की उपाधि से सम्मानित किया, राजा ने शास्त्रीय विधि से उनका कनकाभिषेक कर उनके प्रति यथोचित सम्मान दिखाया। वे जगद्गुरु श्रीमदाचार्य महाप्रभु की उपाधि से दक्षिण और उत्तर भारत में समान रूप से प्रख्यात हो गये। उन्होंने वैष्णव सिद्धान्त का मण्डन किया। महाराजा कृष्ण देवराय का शासन विजय नगर के राज्य-काल का, स्वर्णयुग था, वे साहित्य-संगीत और कला के मर्मज्ञ तथा प्रेमी थे, भक्ति के सिद्धान्तों को समझने में उनकी बुद्धि कुशाग्र थी, उन्होंने अपनी राजसभा में महाप्रभु—भक्तिकल्पतरु साक्षात् पुरुषोत्तम प्रभु की उपस्थिति से अपने सौभाग्य की सराहना की। विजयनगर राज्य द्वारा वैष्णवधर्म को मान्यता देने का परिणाम यह हुआ कि समस्त दक्षिण भारत में वैष्णव अथवा भागवत धर्म की दुन्दुभी बजने लगी। महाप्रभु ने उत्तर भारत के प्रसिद्ध तीर्थक्षेत्रों की भी यात्रा कर भक्ति-सिद्धान्त को ही उपासनामय जीवन का श्रेय स्थिर किया।

महाप्रभु ने स. १५४९ वि. में व्रज की यात्रा की। उन्होंने गोवर्धन पर्वत पर श्रीनाथजी का विग्रह स्थापित किया। अम्बाले के एक भगवद्भक्त सेठ पूरनमल खत्री ने महाप्रभु की प्रसन्नता और आज्ञा से एक मन्दिर बनवाया, उसमें श्रीनाथजी पधराये गये। व्रज में कुछ दिनों रह कर आचार्यचरण ने पण्ढरपुर की यात्रा की, उन्होंने चन्द्र-भागा में स्नान कर भक्त पुण्डलीक का दर्शन किया तथा विट्ठल और रुक्मिणी के साक्षात्कार-सुख का रसास्वादन किया, पण्ढरपुर वैष्णवधर्म का विशाल गढ़ था, इसलिये महाप्रभु को उस पवित्र क्षेत्र की यात्रा से भगवद्भक्ति के प्रचार के लिये विशेष प्रोत्साहन मिला। इस प्रकार अन्य तीर्थक्षेत्रों की पवित्रता की श्रीवृद्धि करते हुए महाप्रभु प्रयाग आये। गंगा-यमुना के संगम पर उनका मन मुग्ध हो गया।

आचार्य ने अठ्ठाइस साल की अवस्था में गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया। उनकी पत्नी का नाम लक्ष्मीदेवी था। वे काशी निवासी मधुमंगल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नामक तैलंग ब्राह्मण की कन्या थीं। वे परम सौभाग्यवती, भक्तिमती और आचारनिष्ठ थीं। पातिव्रत की उज्ज्वलतम विभूति थीं। उन्होंने अपने महाभागवत पति की सेवा और चरणचिह्न-अनुगमन से गृहस्थ जीवन को स्वर्ग बना दिया। उन्होंने पति के जीवन को प्रत्येक स्थिति में सुखमय और भगवदीय बनाने का प्रयत्न किया। महाप्रभु प्रयाग के सन्निकट यमुना के दूसरे तट पर अड़ैल नामक स्थान में निवास करने लगे। वे आचार्यपद ग्रहण कर चुके थे। दक्षिण और उत्तर भारत में उनकी प्रसिद्धि दिनदूनी, रात-चौगुनी बढ़ती जा रही थी। आचार्य का गृहस्थाश्रम आनन्दप्रद था। भगवद्भक्ति की श्रीवृद्धि के लिये ही आचार्य ने दाम्पत्य-जीवन में प्रवेश किया था। आचार्य के दो पुत्र—श्री गोपीनाथ तथा विठ्ठलनाथ हुए। दोनों पुत्र महाभागवत थे। पुष्टिमार्ग की प्रतिष्ठा और प्रगति में गोस्वामी विट्ठलनाथजी का बड़ा हाथ था।

महाप्रभु वल्लभाचार्य भगवान के अभिव्यक्त विग्रह थे। उनके पवित्र भक्ति-प्रचार कार्य में कुम्भनदास, सूरदास, परमानन्ददास आदि ने महान योग दिया, वल्लभाचार्य ने उनके साहित्य और जीवन को कृष्ण की कृपा से, पुष्टि-भक्ति से नितान्त सरस और समृद्ध बना दिया था। अड़ैल मे ही परमानन्ददास को महाप्रभु ने ब्रह्मसंबंध दिया था। सूरदास को व्रज में दीक्षित कर भगवान के लीला-वर्णन का आदेश प्रदान किया था। अड़ैल से व्रज जाते समय उन्होंने गऊघाट पर महाकवि सूरदास को दीक्षित किया। सूर की उक्ति है कि महाप्रभु ने मुझे भगवत्तत्त्व सुनाया, श्री भगवान की रसमयी लीला बतायी। सूर का कथन है :

'श्रीवल्लभ गुरु तत्व सुनायो,
लीला भेद बतायो।'

सूरदास की दीक्षा के तीन-चार दिनों के बाद विश्राम घाट पर श्रीमदाचार्य ने कृपापूर्वक कृष्णदास अधिकारी को पुष्टि-दीक्षा देकर ब्रह्मसम्बन्ध सम्पन्न किया। कृष्णदास ने वल्लभाचार्य की महिमा का बखान करते हुए अपने एक पद के अन्तिम चरण में स्वीकार किया है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'कृष्णदास, गिरिधर के द्वारे,
श्रीवल्लभ पद रज बल गरजत।'

श्रीवल्लभ की चरणधूलि ने महाकवि परमानन्ददास को परमानन्द-सागर उढ़ेलने की स्फूर्ति दी। महाकवि और परम भागवत, सरलता और विनम्रता के प्रतीक कुम्भनदास ने श्रीवल्लभ की चरण-धूलि के बल से महामुगल सम्राट् अकबर की राजसभा में, फतहपुर सीकरी में राजत्व और ऐश्वर्य को अपने चरणदेश में विनत कर लिया, अकबर का राज-ऐश्वर्य उनकी भगवद्भक्ति के सामने नीरस, तेजहीन और फीका हो गया। उन्होंने दिल्लीपति को सावधान किया:

'सन्तन को कहा सीकरी सो काम।'

महाप्रभु वल्लभाचार्य का प्रताप अनुपम और अद्वितीय था। कोटि-कोटि दिल्लीश्वर की राजशक्ति अड़ैल की भागवती प्रभा पर नीछावर की जा सकती है।

महाप्रभु के जीवन में अनेक चमत्कारपूर्ण घटनाओं का पता चलता है। एक बार एक ब्राह्मण साधु राघवदास को शालग्रामशिला और भगवद्प्रतिमा में भेद की प्रतीति हुई। वे शालग्राम को श्रेष्ठ मानते थे। आचार्य ने समझाया कि दोनों अभिन्न हैं। उनमें भेद-बुद्धि नहीं रखनी चाहिये। आचार्य के कथन पर उन्हें विश्वास नहीं हुआ। रात को सोते समय उन्होंने प्रतिमा के वक्ष पर शालग्राम को रख कर पधरा दिया। दूसरे दिन सवेरे उठने पर उन्होंने देखा कि शालग्राम की शिला चूर-चूर हो गयी है। उन्हें अपनी भूल पर पश्चात्ताप हुआ। वे महाप्रभु के पास गये, चरणों पर गिर कर क्षमा माँगी। आचार्य ने भगवान के चरणामृत और यमुना-जल से शिला-चूर्णों को जोड़ दिया। इसप्रकार उन्होंने भगवान के श्रीविग्रह में अभिन्नता का दर्शन कराया।

गोकुल में भगवान श्रीकृष्ण ने प्रत्यक्ष दर्शन दिया था। वे भगवान के अनन्य प्रेमी—अथवा भक्त थे। उनका भगवत्सेवा-मार्ग अत्यन्त कठिन था—कड़ा था। एक बार भगवान के भोग के लिये द्रव्य का अभाव था। उन्होंने भगवान को अर्पित सोने की कटोरी बन्धक में रख कर भोग की व्यवस्था की। आश्चर्य की बात तो यह थी कि महाप्रभु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ने स्वयं प्रसाद नहीं ग्रहण किया। दो दिन के बाद द्रव्य आने पर भगवान का भोग लग जाने पर उन्होंने प्रसाद लिया। वैष्णवों और भक्तों के कारण पूछने पर उन्होंने कहा कि कटोरी भगवान को समर्पित थी, वह उनकी थी, उस कटोरी के मूल्य का भोग भगवान के ही लिये उचित है, उस भोग-अंश से प्रसाद ग्रहण करना मेरे लिये बहुत बड़ा सेवा-अपराध था। आचार्य ने घोषणा कर दी थी कि मेरे वंश में, या मेरा कहला कर, जो कोई भगवद्अर्पित द्रव्य का उपयोग अपने लिये करेगा वह महापापी है, अधम और नीच है, उसका नाश निश्चित है। महाप्रभु ने तन-मन-धन—सब कुछ श्रीनाथ के चरणों में समर्पित कर दिया था। उन्होंने भगवान की विशुद्ध भक्ति-साधना की। एक बार श्रीनाथजी का आदेश हुआ कि मुझे गौ चाहिये, गोपाल को गायों की कमी किस तरह हो सकती है पर यह प्रभु की लीला थी। महाप्रभु के घनिष्ट सम्पर्क में सद्दू पांडेय नाम के एक व्यक्ति थे, उन्होंने आचार्य के चरणों पर तन-मन-धन—सर्वस्व समर्पित कर दिया था। महाप्रभु के पास सोने का एक छोटा—सा टुकड़ा था, उन्होंने उसे बेच कर गाय लाने के लिये सद्दू पाण्डेय को आदेश दिया। पाण्डेय जी ने विनम्रता पूर्वक कहा कि प्रभु, मेरी गायें तो हैं ही, उन्हें लाता हूँ। महाप्रभुने सद्दू पाण्डेय की त्याग-वृति की बड़ी सराहना की पर स्वर्ण का टुकड़ा बेच कर गाय लाने का आदेश स्थिर रहा। विवश होकर सद्दू पाण्डेय ने महाप्रभु की प्रसन्नता के लिये सोना बेच कर गाय खरीदी और श्रीनाथजी के सामने उपस्थित की। महाप्रभु के व्रज-भक्तों ने इस घटना से प्रभावित होकर अपनी-अपनी गायें श्रीनाथ जी की सेवा में समर्पित कर दीं, चारों ओर गायें—ही गायें दीखने लगीं। छीत स्वामी ने इस दृश्य का वर्णन अपने पद में किया है:

'आगे गाय पाछे गाय, इत गाय, उत गाय;
गोपाल को गायन में वसिबोई भावे री।'

इस घटना से महाप्रभु की निष्काम भगवद्सेवा और श्रीनाथजी के प्रति अचल भक्ति तथा निष्ठा का परिचय मिलता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लोकजीवन को भगवद्भक्ति के रंग में सराबोर कर देना ही उनका महत्तम सिद्धान्त था। मध्यकालीन भारत में गीता की शरणागति–'मामेकं शरणं व्रज' की भक्तिमयी टीका शुद्धाद्वैतवाद के स्तर से वल्लभाचार्य ने पूरी की। आचार्य ने पुष्टिमार्ग की स्थापना की। श्रीमद्भागवत, ब्रह्मसूत्र और श्रीमद् भगवद्गीता को उन्होंने अपने पुष्टिमार्ग का प्रधान साहित्य स्वीकार किया। श्रीमद्भागवत में वर्णित भगवल्लीलाओं में पूर्ण आस्था प्रकट की। उनकी प्रेरणा से स्थान-स्थान पर श्रीमद्भागवत सप्ताह का अनुष्ठान होने लगा। वेदान्तवेद्य ब्रह्म ने कृष्ण की रसमाधुरी से अपना रसराजत्व सिद्ध किया। कृष्ण सच्चिदानन्द के ऐश्वर्य माधुर्य-रूप में अभिव्यक्त होते रहते हैं–आचार्य ने ऐसी मान्यता प्रकट की। आचार्य के पुष्टिमत ने मायासम्बन्ध से अलिप्त नितान्त शुद्ध ब्रह्म को जगत का कारण माना। उन्होंने घोषणा की कि ब्रह्म से जगत और जीव की सत्ता है। आचार्य ने कहा कि ब्रह्म के निर्गुण और सगुण दोनों ही रूप, सत्य और उपास्य हैं। श्रीकृष्ण ही ब्रह्म हैं, उनका शरीर सच्चिदानन्दमय है। अनन्त शक्तियों से वेष्टित श्रीकृष्ण का रमण लोकनित्य वैकुण्ठ विष्णु के वैकुण्ठ से भिन्न है, परे है, गोलोक भी उसका केवल अंशमात्र है। उन्होंने ब्रह्म के तीन प्रकार–आधिभौतिक–जगत् आध्यात्मिक–अक्षर-ब्रह्म और आधिदैविक–परब्रह्म पुरुषोत्तम–बताये। आचार्य ने घोषणा की कि आनन्द की इच्छा के लिये भगवान जीवरूप में अभिव्यक्त होते हैं। उन्होंने जीव को शुद्ध, मुक्त और संसारी–तीन श्रेणियों में विभक्त किया। उन्होंने अविकृत परिणामवाद के सिद्धान्त को मान्यता दी, उनके मत के अनुसार निर्गुण सच्चिदानन्द ब्रह्म ही अविकृत भाव से जगत में परिव्याप्त होता है। प्राणीमात्र को मोक्ष देने के लिये भगवान अभिव्यक्त होते हैं; सुबोधिनी में महाप्रभु की उक्ति है:

'प्राणीमात्रस्य मोक्षदानार्थमेव भगवान् अभिव्यक्त :।'

आचार्य के मत से वेद-वेदान्त और समस्त शास्त्रों के सारतत्व भगवान कृष्ण ही हैं। जगत, सत्य और जीव भगवत्स्वरूप हैं। गोलोक में निवास करने वाले श्रीकृष्ण की सायुज्यप्राप्ति ही मुक्ति है। पुरुषोत्तम से युक्त जीव सर्वस्व का उपभोग कर सकता है। भगवान

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

की कृपा और प्रसन्नता से पुष्टिमार्गीय भक्ति का उदय होता है। पुष्टिमार्गीय भक्ति आचार्य की मौलिक और स्वतन्त्र खोज है। भगवान का अनुग्रह ही जीव का पोषण है। इस मत में लौकिक और वैदिक कर्मों के फल-त्याग को अमित महत्व दिया जाता है। आचार्य की विज्ञप्ति है कि जीव उतना ही सत्य है जितना ब्रह्म सत्य है, पर जीव है ब्रह्म का अंश ही, सेवक ही। आचार्य ने जीव की अणुता का समर्थन किया। पुष्टिमार्ग शुद्ध भगवत्प्रेम की ओर ले जाता है। जीव का विषय-भोग से उद्धार कर पुष्टि-भक्ति परमात्मा की कृपा देती है। भगवान को सर्वस्व समर्पित कर भक्ति के द्वारा उनके अनुग्रह की प्राप्ति का नाम ब्रह्म-सम्बन्ध है। वल्लभाचार्य ने वात्सल्य-भक्ति के साथ-ही साथ सख्य और कान्ताभाव की महत्ता की ओर भी संकेत किया।

श्रीनाथजी ने कलिमलग्रसित जीवों के उद्धार के लिये आचार्य को स्वयं दर्शन देकर 'आत्मनिवेदन' मन्त्र बताया था। 'सहस्र परिवत्सर-मितकाल जातकृष्णवियोगजनिततापक्लेशानन्दतिरोभावोऽहं भगवते कृष्णाय देहेन्द्रियप्राणान्तःकरणानि तद्धर्मांश्च दारागारपुत्राप्तवित्तेहापराणि आत्मना सह समर्पयामि दासोऽहं श्रीकृष्ण तवास्मि।'

वल्लभाचार्य ने पुष्टि को भगवान की कृपा अथवा पोषण का पर्याय स्वीकार किया।– 'पोषणं तदनुग्रहः।' आचार्य ने प्रवाह मार्ग, मर्यादा मार्ग और पुष्टिमार्ग में पुष्टिमार्ग को सर्वोत्कृष्ट कहा। प्रवाह मार्ग संसार के वैषयिक भोग की ओर ले जाता है; मर्यादा मार्ग ज्ञानद्वारा सायुज्य मुक्ति देता है पर पुष्टिमार्ग शुद्ध भक्तिमार्ग है, सर्वोत्तम है। वल्लभाचार्य ने नवधा भक्ति को साधन भक्ति माना, मर्यादा भक्ति के रूप में स्वीकार किया। उन्होंने भगवद्सेवा के तनुजा, वित्तजा और मानसी–तीन रूप बतलाये। तनुजा सेवा में शरीर भगवान के लिये समर्पित हो जाता है। वित्तजा में धन का समर्पण होता है। मानसी सेवा में मन भगवान का होता जाता है। वल्लभाचार्य ने 'श्रीकृष्णः शरणं मम' को पुष्टिमार्ग का शरणमन्त्र घोषित किया। उनके श्रीकृष्ण पूर्णतम, सुन्दरतम और मधुरतम हैं; श्रीकृष्ण की समस्त लीलायें मधुर-ही-मधुर हैं। वल्लभाचार्य ने 'मधुराधिपतेरखिलम् मधुरम्' कहा। भगवान श्रीकृष्ण के–अधर, मुख, नेत्र, हास्य, हृदय, गति, वचन,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चरित्र, वस्त्र, अंगभंगी, चाल, भ्रमण, वेणु, चरणरज, करकमल, चरण, नृत्य, सख्य, गान, पान, भोजन, शयन, रूप, तिलक, करण, तरण, हरण, रमण, उद्‌गार, शान्ति, गुञ्जा, माला, यमुना, यमुना की तरंगें, जल, कमल, गोपी, लीला, संयोग–वियोग, निरीक्षण, शिष्टाचार, गोप, गौएँ, लकुटी, रचना, दलन, फल––सब कुछ उन्हें मधुर-ही-मधुर दीख पड़े। उन्होंने माधुर्य-ब्रह्म का सौन्दर्य देखा।

महाप्रभु बावन वर्ष तक पृथ्वी पर विद्यमान रहे। अड़ैल-निवास-काल में उनकी महाप्रभु चैतन्य से भी भेंट हुई थी। दोनों एक-दूसरे की भक्ति-पद्धति के बहुत बड़े प्रशंसक थे। चैतन्यदेव ने अड़ैल में उनका आतिथ्य ग्रहण किया। महाप्रभु ने सम्वत् १५८७ वि. में ज्येष्ठ कृष्ण दशमी को प्रयाग में नारायणेन्द्र तीर्थ से संन्यास लेकर चतुर्थाश्रम की विधि भी पूरी कर ली। वे काशी चले आये। जीवन के अन्तिम दिन उन्होंने काशी में ही बिताये। सं. १५८७ वि. की आषाढ़ शुक्ल तृतीया की तिथि थी। वे हनुमान घाट पर गंगा की धारा में मध्याह्न-स्नान करने गये। उस दिन उन्होंने मौनव्रत लिया था, अन्तिम समय निकट था। परिवार के लोग उपस्थित थे, उन्होंने पूछा कि हम लोगों का क्या कर्तव्य है, महाप्रभु मौन थे। उन्होंने अंगुली से धूलि पर साढ़े तीन श्लोक लिखे कि 'जब आप लोग किसी प्रकार बहिर्मुख हो जायेंगे तब काल के प्रवाह में देह और चित्त आप लोगों का संहार कर देंगे। ऐसा मेरा मत है। प्रभु श्रीकृष्ण लौकिक नहीं हैं, वे लौकिक भाव को मान्यता देते हैं। ...भगवान श्रीकृष्ण ही सब प्रकार से हमारी पारलौकिक और ऐहिक सम्पत्ति हैं। इसलिये सर्व भाव से उन्हीं गोपीश्वर की सेवा करनी चाहिये। वे हमारा मंगल करेंगे।' लोगों ने देखा कि भागीरथी की मध्यधारा में महाप्रभु के स्थान पर एक अलौकिक अग्नि-शिखा आकाश की ओर उठती जा रही है। इस प्रकार अग्निस्वरूप महाप्रभु वल्लभाचार्य ने अपने प्राणधन कृष्ण के नित्य लीला-लोक में प्रयाण किया। महाप्रभु परमात्मा की दिव्यतम ज्योति में लीन हो गये।

निस्सन्देह महाप्रभु वल्लभाचार्य दार्शनिकशिरोमणि थे। उन्होंने भरतखण्ड के समस्त तीर्थक्षेत्रों की अनेक बार पैदल यात्रा कर भागवत

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धर्म की ध्वजा फहरायी। उनकी चौरासी बैठकें उनके दिव्य चरित्र की प्रतीक हैं। वे भक्ति के कर्णधार थे। वे भागवत सन्त और दार्शनिक महात्मा थे।

रचना

वह्मसूत्र पर अणुभाष्य, भागवत के दशम तथा अन्य स्कन्धों पर सुबोधिनी टीका तथा, पूर्वमीमांसाभाष्य, तत्वदीपनिबन्ध, षोड्सग्रन्थ आदि उनकी प्रसिद्ध रचनायें हैं।

वाणी

जीवो स्वभावतो दुष्टा दोषा भावाय सर्वदा।
श्रवणादि ततः प्रेम्णा सर्वं कार्यं हि सिद्धयति॥

जीव स्वभाव से ही दोषमय है, दोषों की निवृत्ति के लिये श्रवणादि नवधा भक्ति के साधनों को अपनाकर प्रेम से हरि की भक्ति करनी चाहिये, इससे कार्यसिद्ध होता है।

तस्माच्छ्रीकृष्ण मार्गस्थो विमुक्तः सर्वलोकतः।
आत्मानन्दं समुद्रस्थं कृष्णमेव विचिन्तयेत्॥

समस्त लौकिक विषय–अहंता-ममता से मुक्त होकर श्रीकृष्ण का, जो आत्मानन्द के समुद्र हैं, चिन्तन करना चाहिये।

चिन्ता काऽऽपि न कार्या निवेदितात्मभिः कदाऽपीति।
भगवानपि पुष्टिस्थो न करिष्यति लौकिकीं च गतिम्॥

भगवान श्रीकृष्ण के चरण में आत्मनिवेदन करने पर किसी भी प्रकार की चिंता नहीं करनी चाहिये। वे सर्वथा अनुग्रहरूप हैं, लौकिकों की तरह वे व्यवहार नहीं करेंगे।

सेवायां कथायां वा यस्याऽसक्तिर्दृढ़ा भवेत्।
यावज्जीव तस्य नाशो न क्वाऽपीति मे मतिः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जिस जीव की प्रभु श्रीकृष्ण की सेवा और कथा में गाढ़ आसक्ति है उसका कभी नहीं नाश होता है—ऐसी मेरी मति है।

अज्ञानादथवा ज्ञानात्कृतमात्मनिवेदनम् ।
यैः कृष्णसात्कृत प्राणैस्तेषां का परिदेवना ॥

अज्ञान या ज्ञान से जिन्होंने श्रीकृष्ण के चरणों में आत्मनिवेदन-पूर्वक अपना प्राण समर्पित कर दिया उन्हें चिंता ही नहीं करनी चाहिये।

अंतःकरणमद्वाक्यं सावधानतया शृणु।
कृष्णात्परं नास्ति दैवं वस्तुतो दोषवर्जितम् ॥

हे मन! सावधानी से मेरे वचनों को सुनो, श्रीकृष्ण से वढ़ कर निर्दोष पवित्र वस्तु और कोई दूसरी है ही नहीं।

तस्मात् सर्वं परित्यज्य निरुद्धैः सर्वदागुणाः।
सदानन्दपरैर्गेयाः सच्चिदानन्दता ततः।

समस्त लौकिक आश्रयों का त्याग कर प्रभु में ही आत्मार्पित होकर उन्हीं का गुण-गान कर—सच्चिदानन्द में रमण करना चाहिये।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रसिक सन्त हरिदास

'रंक छत्रपति दुहुन की धरी न मन परवाह।
रहे भीजि रसमाधुरी लीने कर करवाह॥'

—ध्रुवदास

सन्त हरिदास स्वामी परम रसिक महात्मा थे। उन्होंने राधाकृष्ण युगलस्वरूप की माधुरी का गोपीप्रेम—सखी भाव के माध्यम से आस्वादन किया। वृन्दावन के प्रेमदेवता विहारी जी को उन्होंने आराध्य स्वीकार किया। स्वामी हरिदास ने वृन्दावन में कृष्णभक्ति का रसराजत्व सिद्ध किया। चारों ओर सरस भक्ति का सागर उमड़ रहा था। महात्मा हितहरिवंश, व्यासदास तथा गौड़ीय सन्त और अष्टछाप के सन्त कवि अपनी भागवती वाणी से श्रीराधाकृष्ण की उपासना में संलग्न थे। महाप्रभु वल्लभाचार्य और गोसाईं विट्ठलनाथ के नवनीतप्रिय और श्रीनाथजी, हितहरिवंश के राधावल्लभ, रूप-सनातन के गोविन्द देव और सन्त हरिदास के विहारी जी के गुणानुवाद से वृन्दावन के कण-कण पवित्र हो रहे थे। वास्तव में महात्मा हरिदास कृष्णरस के मौलिक मर्मज्ञ थे। वे सम्राट अकबर के समकालीन थे। संगीत-सम्राट तानसेन के गुरु थे। अकबर के हृदय में महात्मा हरिदास के लिये बड़े सम्मान के भाव थे। अकबर के राजत्व ने देश की राजनैतिक स्थिति शान्त और समस्थिर कर दी थी, प्रजा सुखी और समृद्धिमय थी। ऐसे समय में महात्मा हरिदास ने वृन्दावन में कृष्ण का सरस यश गाया; जनजीवन को भगवान की सरस भक्ति से समृद्ध और गतिशील बनाया। उन्हें ललिता सखी का अवतार माना जाता है। उनकी कुटी के सामने अगणित राजा-महाराजाओं और दर्शकों की सदा दर्शन के लिये भीड़ लगी रहती थी। उनके सम्बन्ध में अष्टछाप के महात्मा गोविन्ददास की उक्ति है कि जिस पथ पर ध्यान-समाधि लगाने वाले महामुनि नहीं चल पाते हैं, जिसका भेद वेद

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नहीं पाते हैं उसी पथ को हरिदासजी ने समझ लिया, रसरीति चलायी, वे अनन्य रसिक थे। निस्सन्देह स्वामी हरिदास रसमार्गी महात्मा थे।

स्वामी हरिदास का जन्म सम्वत् १५३७ वि. के लगभग वृन्दावन से थोड़ी दूर पर राजपुर गाँव में एक कुलीन ब्राह्मण के घर में हुआ था। ऐसा कहा जाता है कि गंगाधर उनके पिता थे और माता का नाम चित्रादेवी था। कुछ लोगों ने दीक्षा-गुरु आशुधीर जी को ही हरिदास जी का पिता माना है। हरिदास जी बचपन से बड़े संस्कारी और भगवान की लीलाओं में रुचि रखने वाले थे। खेल में उनका मन अन्य बालकों के साथ नहीं लगता था। वे एकान्त में बैठ कर भगवान की ही लीलाओं का चिन्तन किया करते थे। उनके माता-पिता बड़े भगवद्भक्त थे। उनके आचरण ने स्वामी हरिदास के पवित्र चरित्र-विकास पर बड़ा प्रभाव डाला। वे उपवनों में, तालाब के किनारे तथा सरिता-तट पर बैठकर शान्तिपूर्वक अपने आराध्य श्रीकृष्ण के सरस लीला-चरित्र का ध्यान किया करते थे। माता-पिता ने वैराग्य का उदय होते देख कर उनका मन घर-गृहस्थी में लगाया, उन्हें संगीत, काव्यकला तथा अन्य उपयोगी विषयों की शिक्षा दी पर हरिदास ने अपनी समस्त निपुणता—कलाकारिता श्रीहरि के चरणों पर समर्पित कर दी। उनका मन तो वृन्दावन की सुषमा में आसक्त था इसलिये घर पर उन्हें किस प्रकार शान्ति मिलती। उन्होंने वृन्दावन में जाकर वैराग्य लेने का निश्चय किया।

धीरे-धीरे गृहस्थाश्रम के प्रति उनकी अनासक्ति बढ़ने लगी, मन में तीव्र वैराग्य का उदय हुआ। आचार-विचार से तो वे वैष्णव थे ही। एक विरक्त की तरह पचीस साल की अवस्था मे घर का त्याग कर वे वृन्दावन चले आये। उन्होंने विहारी जी के चरणों में आत्मसमर्पण कर दिया, निधुवन में रहने लगे। उन्होंने अपने उपास्य देवता के सामने निवेदन किया:

काहू को बस नाहिं, तुम्हारी कृपा ते
सब होय बिहारी—बिहारिनि।
और मिथ्या प्रपञ्च काहे को भाखिये

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सो तो ह्वै हारनि।
जाहि तुम सों हित तासों तुम हित करौ
सब सुखकारनि।
'हरिदास' के स्वामी श्यामा कुंजबिहारी,
प्राननि के आधारनि।

उन्होंने विश्वासपूर्वक कहा कि वृन्दावन के प्रेम-देवता विहारी और विहारिणी राधा रानी की कृपा से ही सब कुछ सम्भव है, जीव को नीरस प्रपञ्च में नहीं पड़ना चाहिये। जो भगवान से प्रेम करते हैं भगवान उनके योग-क्षेम का सदा ध्यान रखते हैं। निस्सन्देह श्रीराधाकृष्ण ही प्राण के आधार हैं।

हरिदास जी के तप, त्याग और वैराग्य से आकृष्ट होकर दूर-दूर से तथा वृन्दावन के रसिक सन्त, महात्मा और प्रेमी लोग सत्संग तथा दर्शन के लिये अधिकाधिक संख्या में आने लगे। श्रीराधाकृष्ण के रास-विहार और लीला-चरित्रों के रसास्वादन में ही वे अपने समय का सदुपयोग करने लगे। उनके नयनों में नन्दनन्दन और उनकी प्राणप्रियतमा के सरस शृंगारपूर्ण कुंज-विहार की झांकी रातदिन आलोड़ित रहती थी।

श्रीराधाकृष्ण के रंग में उनकी चेतना सदा सराबोर रहती थी। एक बार वे भगवती कलिन्दनन्दिनी के तट पर रजत रेती में समासीन थे। वसन्त ऋतु का यौवन सरस कुंजों और निकुंजों में लहरा रहा था, मलयानिल का रमणीय संचार हो रहा था। महात्मा श्री हरिदास जी भगवान के रंगोत्सव में समाधिस्थ थे, उन्हें तनिक भी बाह्य ज्ञान नहीं था। उनके मानस-नयनों की ज्योति के सरस रंगमंच पर भगवान होली खेल रहे थे, राधारानी ने भी पीताम्बर धारण किया था, श्रीकृष्ण सोने की पिचकारी से राधा पर रंग छिड़क-छिड़क कर दिव्य मदन-मन्त्र का अनुष्ठान कर रहे थे। ललिता, विशाखा आदि श्रीकृष्ण को रंग में सराबोर कर रही थीं, नन्दनन्दन अपने विमल आलिंगन, परिरम्भन और भुजबन्धन से उन्हें धन्य कर रहे थे, वृषभानुनन्दिनी प्रेम के दिव्योन्माद में मन्द-मन्द मुसकरा रही थीं, उनके नयनों से दिव्य ज्योति निकल कर अरुण कपोलों की सुषमा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बढ़ा रही थी। हरिदास जी इस दिव्य रंगोत्सव में परमानन्द का अनुभव कर रहे थे कि ठीक इसी समय एक सेवक ने उनके हाथ में इत्र की शीशी रख दी। वे तो अन्तर चेतना में लीन थे। उन्होंने राधाकृष्ण पर इत्र उढ़ेल कर होली-क्रीड़ा के लिये ललकारा।...थोड़ी देर में वे वाह्यज्ञानसम्पन्न हुए। उन्होंने सेवक की मानसिक वेदना पहिचानी, विचार किया कि उसे भ्रम हो गया है कि इत्र का दुरुपयोग हुआ है। उन्होंने उसे विहारी जी के मन्दिर में दर्शन के लिये भेज दिया। समस्त मन्दिर इत्र-गन्ध से आपूर्ण था, विहारी जी का श्रीविग्रह मह-मह महक रहा था। सेवक ने अनुभव किया कि भगवान ने इत्र स्वीकार कर लिया। उसने लौट कर महात्मा हरिदास के चरण की धूलि मस्तक पर चढ़ायी, अपने सौभाग्य की सराहना की।

एक वार हरिदास जी यमुनातट पर बैठे ए थे। उन्हें किसी प्रेमी ने पारस की भेंट की। हरिदास जी तो श्रीकृष्ण से नाता जोड़ चुके थे। उन्हें पारस किस प्रकार मुग्ध करता। हरिदास ने उस व्यक्ति को आज्ञा दी कि पारस यमुना जी में फेंक दो। उसने पारस तो फेंक दिया पर उसके मन से पारस की लिप्सा न गयी। महात्मा हरिदास ने उसकी मनोवृत्ति समझ ली। वे उसे वन में ले गये, उसने असंख्य पारसों का दर्शन किया। हरिदास जी ने समझाया:

'हित तो कीजै कमल नैन सों जा हितके
आगे और हित लागे फीको।
कै हित कीजै साधु संगति सों
ज्यों कलमषि जाय जीको।
हरि को हित ऐसो जैसो रंग मजीठ,
संसार हित ऐसो जैसो रंग कसूम दिन दुती को।
कहि हरिदास हित कीजै बिहारी सों
और निबाहू जी को।"

उस व्यक्ति ने स्वामी हरिदास से भगवत्प्रेम का मर्म समझ लिया। वह उनके पैरों पर नतमस्तक हो गया। हरिदास ने उसे अपना शिष्य बना लिया और श्रीकृष्ण की भक्ति करने का आदेश दिया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सम्राट अकबर की उदारता और गुणग्राहकता इतिहासप्रसिद्ध है। एक बार अकबर ने अपने सभा-गायक संगीतसम्राट तानसेन से प्रश्न किया कि क्या तुमसे भी बढ़ कर गाने वाले हैं? तानसेन ने विनम्रतापूर्वक निवेदन किया कि वृन्दावन के महात्मा हरिदास जी हैं। अकबर ने स्वामी जी को अपनी राजसभा में उपस्थित होने का निमन्त्रण भेजा पर तानसेन के यह कहने पर कि वे वृन्दावन छोड़ कर कहीं आते-जाते नहीं हैं स्वयं वृन्दावन के लिये तानसेन के साथ साधारण नागरिक के वेष में प्रस्थान किया। महात्मा हरिदास तानसेन के संगीत-गुरु थे इसलिये तानसेन को उनके सम्मुख उपस्थित होने में तनिक भी संकोच नहीं हुआ। तानसेन ने जान-बूझ कर एक गलत राग गाया, तानसेन की इच्छा थी कि स्वामी जी साधारण नागरिक वेष वाले अकबर के सामने गायें। स्वामी ज़ी ने उस गीत को शुद्ध और परिमार्जित राग में अपने कोकिल कंठ से गाया। भारतवर्ष के सम्राट ने उनकी चरणधूलि सिर पर चढ़ाली, वातावरण सरसता और दिव्यता से आपूरित हो उठा। अकबर ने तानसेन से माधुर्य का कारण पूछा तो उत्तर मिला कि महात्मा हरिदास भगवान के सम्मुख गाते हैं इसलिये इनके गीत में इतना स्वाद है। अकबर ने याचना की कि मेरी कोई सेवा स्वीकार कीजिये। कृष्णचरणारविंदमकरन्द से प्रमत्त मधुप को किसी अन्य रस की अपेक्षा ही नहीं थी पर मुसकरा कर उन्होंने यमुना के एक टूटे घाट की ओर संकेत कर कहा कि इसका जीर्णोद्धार करा दीजिये। अकबर ने घाट को नीलम, पोखराज आदि कीमती मणियों से जटित देख कर अपनी गलती पर पश्चात्ताप किया और सोचा कि सारा मुगल खजाना भी इस कार्य में कम होगा। हरिदास ने बादशाह को आदेश दिया कि मेरे पास कभी मत आइयेगा और वृन्दावन के वन्दरों के लिये सेवास्वरूप अन्न भेजते रहियेगा तथा इसका ध्यान रखियेगा कि वृन्दावन के वृक्ष कोई भी न काटने पाये। अकबर ने उनकी आज्ञा का पालन किया और त्याग-वृत्ति की सराहना की। महाप्रभु चैतन्यदेव स्वामी हरिदास के समकालीन थे। जिस समय चैतन्यदेव वृन्दांवन में गये हुए थे उस समय महात्मा हरिदास जी निधुवन में रहते थे। स्वामी हरिदास की प्रसिद्धि से प्रभावित

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होकर चैतन्यदेव उनसे मिलने आये। दोनों पास्परिक भगवल्लीला-कथन में व्यस्त थे कि इतने में राधाकुण्ड पर निवास करनेवाले महात्मा रघुनाथदास जी मानसिक शृंगार में खोयी हुई श्रीराधाजी की पुष्प-वेणी खोजते हुए हरिदास जी के निकट आ पहुँचे। हरिदास जी रसज्ञ थे, उन्हें रघुनाथ दास की मनोदशा का पता चल गया। स्वामी हरिदास जी ने अश्वत्थ वृक्ष के नीचे पता लगा कर उनकी मानसिक सेवा की समस्त व्यवस्था निरूपित कर दी और महाप्रभु चैतन्यदेव से श्रीकृष्णविषयक रति पर विचार–विनिमय करने लगे। उन्होंने 'रसो वै सः' को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान श्रीकृष्ण की उपासना में प्रतिष्ठित किया; उनकी भगवत्सेवा दिव्य रसकी उपासना की प्रतीक स्वीकार की जाती है। वे पूर्ण अनुभवी और उच्च कोटि के रसिक थे। वे श्रीकृष्ण के रूप-सौन्दर्य के रसवेत्ता थे। वे निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुयायी थे, उनकी उपासना सखी-भाव की थी। उनके रससिद्धान्त में भोक्ता केवल भगवान हैं और चराचर उनका भोग्य है। स्वामी हरिदास ने श्रीकृष्ण को सौन्दर्यसार-सर्वस्व के रूप में देखा। उनकी भक्ति निस्सन्देह शृंगारजा थी। उनके भागवत शृंगार का मूलाधार अन्तर्मुखी दिव्यता पर अवस्थित है। उनकी रसमयी उक्ति है :

'गहो मन सब रस को रससार।
लोक वेद कुल करमै तजिये भजिये नित्य विहार।
गृह कामिनि कंचन धन त्यागो सुमिरो स्याम उदार।
गति हरिदास रीति सन्तन की गादी को अधिकार।'

उन्होंने अपनी इस उपासना में प्रेम, सौन्दर्य और माधुर्य का समन्वय किया। उन्होंने शृंगार और भक्ति दोनों को भगवद्रूप माना। उन्होंने सखी सम्प्रदाय की प्राणप्रतिष्ठा की। राधाकृष्ण की प्रेमलीला ही उनके सखी सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का सार तत्व है। स्वामी हरिदास ने अथाह और अतल भगवत्प्रेम समुद्र में अवगाहन किया। सदा भागवती केलि गायी : एक स्थल पर उनकी उक्ति है :

'आज तृन टूटत है री, ललित त्रिभंगी पर।
चरन-चरन पर, मुरली अधर पर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चितवनि बंक छबीली, भुव पर।
चलहु न वेग सधिका पिय पै
जो भयी चाहति हो सरबोपरि।
'श्रीहरिदास' के स्वामी को समयो अब नीको बन्यो
हिलिमिलि केलि अटल रति ध्रू पर।'

स्वामी हरिदास रसरीति के आचार्य थे। उन्होंने रसरूप में श्रीकृष्ण की प्राप्ति की। राधा और कृष्ण की एकरूपता का अनुभव किया। वे सदा युगल मन्त्र का जप किया करते थे। गोपीप्रेम की सिद्धि अथवा प्राप्ति ही उनके जीवन की परम कामना थी। वे रासरस के परम तत्वज्ञ थे। गोपीप्रेम के माध्यम से एक सरस पद में उनकी उक्ति है:

'सुनि धुनि मुरली वन बाजै हरि रास रच्यो।
कुंज-कुंज द्रुम, वेली प्रफुलित,
मण्डल कंचन मनिन खच्यो।
नृत्यत जुगल किसोर जुवती जन-मन
मिलि राग केदारो मच्यो।
'हरिदास' के स्वामी स्यामा कुंजविहारी
नीकै री आज प्यारो लाल नच्यो।'

उनके प्रत्येक पद में राधाकृष्ण–युगल स्वरूप की लीला प्राणमयी है। राधाकृष्ण का विहार ही उनका प्राणधन स्वीकार किया जाता है। उनका अन्तिम समय भी परम रसमय था। वे निम्बार्क सम्प्रदाय के अन्तर्गत 'ठट्टी संस्थान' के स्थापक थे। सदा उनकी सहज समाधि लगी रहती थी। वे कहा करते थे कि प्रेम-सागर का थाह नहीं लगाया जा सकता है। प्रेमस्वरूप विहारी जी में ही तन्मय रहते थे; उनका दृढ़ विश्वास था कि विहारी जी अपने भक्तों के दोषों की उपेक्षा कर देते हैं। महात्मा व्यासदास की उक्ति है:

'ऐसो रसिक भयो नहिं ह्वै है, भुवमण्डल प्रकास।
देह विदेह भये जीवत ही, बिसरे विश्व विलास।'

सम्वत् १६३२ वि. तक वे निधुवन में विद्यमान रहे। ऐसा कहा जाता है कि वे सं. १६६५ वि. तक जीवित थे। महात्मा हरिदास परम संगीतज्ञ, रसज्ञ और सन्त थे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रचना

'साधारण सिद्धान्त' और 'केलिमाला' स्वामी हरिदास जी की प्रसिद्ध रचनायें हैं।

वाणी

हरि को ऐसोई सब खेल।
मृगतृष्णा जग व्यापि रह्यो है कहूँ बिजौरो न बेल।
धन मद जोवन मद राजमद ज्यों पंछिन में डेल।
कहि हरिदास यहै जिय जानौं तीरथ को सों मेल।

जौ लों जीवै तौलों हरि भजि रे मन और बात सब वादि।
द्यौस चार के हला भला में तू कहा लेगौ लादि।
माया मद जोवन मद गुनमद भूल्यौ नगर विवादि।
कहि हरिदास लोभ चरपट भयौ काहे की लगै फिरयादि।

जगत प्रीति करि देखी नाहिं नेग टीकौ कोऊ।
छत्रपति रंक लौं प्रकृति विरोध बन्यो नहिं कोऊ।
दिन जु गये बहुत जनमन के अैसो जावौ जिन कोऊ।
कहि हरिदास मीत भलो पायौ विहारी अैसे पावौ सब कोऊ

प्रेमसमुद्र रूपरस गहिरे कैसे लागे घाट।
बेकार्‌यो दै जानि कहावत जानिपन्यो की कहा परी वाट।
काहू को सर सूधो न परै मारत गाल गली-गली हाट।
कहि हरिदास जानि ठाकुर विहारी तकत न ओट पाट।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महाप्रभु चैतन्य देव

'अर्नापितचरीं चिरात् करुणयावतीर्णः कलौ
समर्पयितुमुन्नतोज्ज्वलसां स्वभक्तिश्रियम्
हरिः पुरटसुन्दरद्युति कदम्बसंदीपितः
सदा हृदयकन्दरे स्फुरतु नः शचीनन्दनः।'

जिन चैतन्य महाप्रभु ने उत्कृष्ट और परम उज्ज्वल रसमयी भक्ति सम्पत्ति-वितरण के लिये कलियुग में कृपापूर्वक अवतार लिया है वे स्वर्ण कान्तिवाले शचीनन्दन हरि हमारे हृदयमें स्फूर्ति-लाभ करें।

—विदग्ध माधव

महाप्रभु चैतन्य देव—अभिनव कृष्ण मध्यकालीन भारत की परम दिव्य विभूति थे, कृष्णभक्ति के कल्पवृक्ष थे। उन्होंने असंख्य प्राणियों को हरिनाम संकीर्तन-सुधा से प्रमत्त कर भवसागर की उत्ताल तरंगों से पार कर भक्ति प्रदान की। नीलाचल-पुरीधाम उनके पुण्य और दिव्य ऐश्वर्य से वृन्दावन में रूपान्तरित हो गया। बड़े-बड़े सन्त-महात्मा, विद्वान, वेदान्ती, शास्त्रमहारथी तथा ऐश्वर्यशाली शासकों और महापुरुषों ने उनकी चरणधूलि से अपने मस्तक का शृंगार कर, उनकी कृपा से अपने आप को परम कृतार्थ, धन्य और सफल कर भगवान की निष्काम और परमशुद्ध भक्ति कमायी।

जिस समय चैतन्य का प्रादुर्भाव हुआ उस समय देश की राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक दशा में अराजकता, अनाचार और अशान्ति का विशेष समावेश था। दिल्ली के सिंहासन पर बहलोल लोदी और उनके उत्तराधिकारी सिकन्दर लोदी की राजसत्ता का रूप शिथिल और विकृत होता जा रहा था। विदेशी आक्रमण की आशंका प्रतिक्षण थी। विजयनगर और मेवाड़ दोनों विदेशी राजसत्ता को बाहर निकालने की विशेष चेष्टा कर रहे थे। उड़ीसा में गजपति प्रतापरुद्र का एकच्छत्र

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

साम्राज्य था, गौड़ में हुसेनशाह की तूती बोल रही थी। नदिया में उसी की शासन-सत्ता थी। धार्मिक स्थिति भी विगड़ती जा रही थी, अनेक मत-मतान्तरों का प्रकोप वढ़ता ही जा रहा था, देश वौद्ध धर्म के विशेष यानों से तथा तान्त्रिक उपासनागत विवेकशून्य धार्मिक आचार-विचार से उत्पीड़ित था। सामाजिक अशान्ति वाढ़ पर थी। कहीं-कहीं वैष्णव भक्ति-पद्धति की शान्तिपूर्ण किरणें फैल रही थीं। गौड़ देश में श्री राधाकृष्ण के लीलासम्वंधी गान गाये जा रहे थे। कनुभट्ट और चण्डीदास के भक्तिपूर्ण गीतों से जनता का मानसिक स्तर समुत्थित हो रहा था। ऐसे विचित्र समय में नव्य न्याय के महानगर नदिया—नवद्वीपधाम में श्रीचैतन्य देव का एक परम पवित्र ब्राह्मण कुल में आविर्भाव हुआ। उन्होंने कृष्णभक्ति के अमृत सागर में केवल गौड़ वंगाल ही नहीं, समस्त भरतखण्ड को संप्लावित कर भागवतरस का दान दिया। चैतन्य के पहले वंगाल को महावैष्णव माधवेन्द्रपुरी—'भक्तिचन्द्रोदय' का आशीर्वाद मिल चुका था। वे आदि वैष्णव गौड़ीय आचार्य स्वीकार किये जाते हैं, चैतन्य का पथ उन्होंने पहले से ही प्रशस्त कर दिया।

महाप्रभु चैतन्य देव ने धर्म के नाम पर प्रचलित पाखण्डों का अन्त कर दिया। भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति का प्रचार किया। असंख्य प्राणियों ने श्रीकृष्ण चैतन्य की शरण लेकर अपना जीवन सफल और कृतार्थ कर लिया। रूपसनातन ऐसे विषयसुख भोग में आसक्त ऐश्वर्य-मदोन्मत्त प्राणी ने सांसारिक सुख-साम्राज्य पर लात मार कर, प्रकाशानन्द और सार्वभौम भट्टाचार्य ऐसे अद्वैत सिद्धान्ती—वेदान्ती ने ब्रह्मानन्द की उपेक्षा कर, नित्यानन्द ऐसे परमहंस और अवधूत ने विरक्ति-वृत्ति भूल कर चैतन्य महाप्रभु के चरणों की ज्योति-गंगा में स्नान कर परम दिव्य कृष्णभक्ति का रसास्वादन किया। रूपगोस्वामी ने महाप्रभु का स्तवन किया कि जो पृथ्वी पर उदित होकर द्विजराज की स्थिति में रहते हुए निज प्रेमरसामृत का वितरण कर रहे हैं और अज्ञान रूपी अन्धकार का नाश कर रहे हैं वे ही सम्पूर्ण जगत के मन को वश में करने वाले शचीनन्दन चैतन्यचन्द्र हम लोगों का कल्याण करें। चैतन्य राधाकृष्ण के एकीभाव स्वरूप थे। उनका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्राकट्य सर्वथा शास्त्रसम्मत स्वीकार किया जाता है। अनन्तसंहिता, बृहन्नारदपुराण, भविष्य पुराण, देवी पुराण, स्कन्द पुराण, मार्कण्डेय पुराण, पद्मपुराण, कापिल तन्त्र और विश्वसार तन्त्र आदि में यह उल्लेख है कि भागीरथी के तट पर नवद्वीप में द्विजकुल में कृष्ण चैतन्य का आविर्भाव होगा। चैतन्य महाप्रभु ने भक्तियोग और संन्यास आश्रम का आश्रय लेकर हरिनामसंकीर्तनमाधुरी से थोड़े समय के लिये कलियुग को द्वापर में रूपान्तरित कर दिया। वे श्रीराधाकृष्ण की दिव्य कान्ति और रूप-माधुरी तथा ललित रसमयी लीला का ही अनुभव किया करते थे। महाप्रभु चैतन्य देवकी जीवन—कथा का अधिकांश उनके समकालीन सन्तों, महात्माओं और भक्तों की वाणी का अमित प्रासादिक मांगलिक प्रतीक है। उनकी जीवन-कथा की प्रामाणिकता का मूलाधार तत्कालीन रचनाओं का आँखों-देखा वर्णन है। वृन्दावनदास कृत चैतन्य भागवत; चैतन्यमंगल, चैतन्य चरितामृत, चैतन्य-चरित, चैतन्य-चन्द्रोदय आदि ग्रन्थ उनकी जीवन-कथा के अक्षर-सूत्र हैं। मुरारिगुप्त का चैतन्य चरितामृत भी इस दिशा में एक सुन्दर प्रयत्न है। कविकर्णपूर के चैतन्य-चन्द्रोदय में भी पर्याप्त विवरण मिलता है। चैतन्य के लीला-प्रवेश के पन्द्रह साल बाद वृन्दावनदास ने चैतन्य भागवत की रचना की। उन्होंने नित्यानंद की आज्ञा से इस पवित्र ग्रन्थ का निर्माण किया। कवि की उक्ति है :

'नित्यानन्द स्वरूपेर आज्ञा धरि शिरे।
सूत्र मात्र लिखि आमि कृपा अनुसारे।'

कृष्णदास कविराज ने चैतन्य चरितामृत लिखा। उन्होंने चैतन्य को केवल राधाकृष्ण का अवतार ही नहीं, एक परम रसिक भक्त और महान धर्माचार्य भी स्वीकार किया। जगद्वन्धु कृत गौड़पादतरंगिणी में भी उनके जीवन-चरित्र का वृतान्त मिलता है। नरहरि ठाकुर ने उनको विशेष रूप से राधा-भाव में चित्रित किया है, उनका कथन है :

'गौराङ्ग ठेकिला पाके भावेर आवेशे राधा-राधा बलि डाके।'

इसी प्रकार वासुदेव की उक्ति है :

'अरे मोरा गोरा, द्विजमणि, राधा-राधा बलि कांदे लोटाय धरणी।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चैतन्य महाप्रभु की जीवन-लीला को सरस भगवत्ता का रूप देने में वंगभूमि की मृदुता, माधुरी और श्रद्धामयी मनोवृत्ति का विशेष हाथ है। निस्सन्देह वे कलियुग के कृष्ण थे, महाभागवत थे।

महाप्रभु चैतन्य का प्राकट्य सम्वत् १५४३ वि. में फाल्गुन पूर्णिमा को श्रीनवद्वीप धाम में हुआ था। उनके पिता जगन्नाथ मिश्र अत्यन्त धर्मनिष्ठ ब्राह्मण थे तथा माता शचीदेवी शान्ति, सरलता और वात्सल्य की सजीव मूर्ति थीं। चैतन्य तो साक्षात् भगवान के लीलाविग्रह थे पर देश और काल के अनुरूप लीला के ही लिये बाल्यावस्था में उन्होंने मातृ-पितृ-भक्ति का सुचारु आदर्श उपस्थित किया। चैतन्य महाप्रभु के पूर्वज चन्द्रद्वीप के रहने वाले थे। उनके पिता नवद्वीप में विद्याध्ययन के लिये आये थे और वहीं शचीदेवी से विवाह कर वे बस गये। उन्हें सन्तान-कष्ट का बुरा अनुभव था। उनकी आठ कन्यायें मृत्यु के मुख में जा चुकी थीं, चैतन्य के बड़े भाई विश्वरूप ने संन्यास ले लिया था इसलिये चैतन्य देव का प्राकटच उनके परिवार के लिये एक परम आनन्दपूर्ण घटना था।

नवजात शिशुका नाम विश्वम्भर रखा गया। उनकी शिशुलीला अमित अलौकिक और रहस्यपूर्ण है। जब वे रोते थे, लोग हरि का नाम लेते थे; इससे वे चुप हो जाते थे। शची माता उन्हें अपने प्राणों से प्रिय समझती थीं। कभी-कभी व्यवस्थित ढंग से सजाये गये घर के सामानों को इधर-उधर विखेर कर वे खाट पर आँख मूद कर सो जाने का बहाना करते थे। माता अपने पुत्र की इस लीला से बहुत प्रसन्न होती थीं। नामकरण-संस्कार के दिन एक विचित्र घटना से लोग आश्चर्य-चकित हो गये। विश्वम्भर के सामने पोथी, खील, धान, कौड़ी, सोना, चांदी आदि पदार्थ परीक्षा के लिये रख दिये गये। उन्होंने इन पदार्थों में से भागवत की पोथी उठाली। इस प्रकार उन्होंने इस लीला में यह रहस्य प्रकट कर दिया कि मैंने भागवतधर्म और श्रीकृष्ण की भक्ति के प्रचार के लिये ही शरीर धारण किया है।

धीरे-धीरे उनकी आयु बढ़ने लगी। घुटनों के वल चलने का अभ्यास बढ़ने लगा। एक दिन वे घर के बाहर धूलि में खेल रहे थे। उनके गोरे अंग की कान्ति और घुंघराली अलकावली पथिकों का मन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुग्ध कर रही थी। उनकी रूपमाधुरी दो चोरों के नयनों में बस गयी। वे स्वर्ण आभूषण पहने हुए थे। चोरों में इस बात पर विवाद छिड़ गया कि कौन-सा आभूषण किसके भाग्य में आयेगा। उनका हृदय अपने वश में नहीं था, दोनों ने विश्वम्भर को सन्देश आदि मिष्ठान्न खिलाये और एकान्त स्थान में ले जाने की चेष्टा करने लगे। उन चोरों को इस बात से बड़ा विस्मय हुआ कि वे विश्वम्भर के पीछे-पीछे मुग्ध होकर उन्हीं के दरवाजे पर चले आये। वे उनकी बालछवि से मोहित हो गये, उनकी लीलामाधुरी से प्रभावित हुए। वे चले गये और आभूषण पहने हुए विश्वम्भर घर में जाकर मा की गोद में बैठ कर शिशुलीला करने लगे।

जब वे कुछ बड़े हुए तब उन्हें विद्याध्ययन के लिये पाठशाला भेजा गया। वे नटखट और चंचल स्वभाव के थे। कुमारियाँ गंगातट पर नहा-धोकर पूजा किया करती थीं। विश्वम्भर-निमाई उनसे कहा करते थे कि तुम्हें मेरी पूजा करनी चाहिये, मैं तुम लोगों को मुंह-मांगा वरदान दूंगा। इतना कह कर वे दधिअच्छत-ताम्बूल-फूल-फल और चन्दन आदि अपने आप को अर्पित कर लेते थे और वरदान देने लगते थे कि तुम लोगों को परम सुंदर पति की प्राप्ति होगी। कुमारियों को उनकी इस लीला से मन में तो प्रसन्नता होती थी पर ऊपर से वे रोष प्रकट करती थीं। सारे नैवेद्य आदि उनकी सेवा में उपस्थित कर देती थीं, वे उनकी रूप-माधुरी और सौन्दर्य का चिन्तन करने लगती थीं तथा पूजापाठ–ध्यान आदि की उन्हें तनिक भी सुधि नहीं रह जाती थी। वे निमाई का दर्शन कर अपने आप को परम भाग्य-वती मानती थीं।

बालक निमाई पर उनके बड़े भाई विश्वरूप की संन्यास-वृत्ति का अमित प्रभाव पड़ा था। वे कभी-कभी उन्हें अद्वैताचार्य की सभा में बुलाने ज़ाया करते थे। उनके संन्यास लेने पर निमाई ने माता-पिता के सामने हर्ष प्रकट किया था कि कुल पवित्र हो गया। माता-पिता अपने छोटे पुत्र के इस भाव से आशंकित हो गये कि आगे चल कर कहीं निमाई भी संन्यास न ले लें।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यथासमय उनका उपनयन-संस्कार सम्पन्न हुआ। उनके पिता ने एक दिन स्वप्न में देखा कि निमाई ने घर का परित्याग कर संन्यास ले लिया है। वे बहुत भयभीत हुए। कुछ दिनों के बाद जगन्नाथ मिश्र का देहान्त हो गया। निमाई ने सोलह साल की अवस्था में विद्याध्ययन समाप्त कर लिया। परिवार के भरणपोषण का उत्तरदायित्व उनके कन्धों पर आ गया। उन्होंने नदिया में ही मुकुन्दसंजय नामक एक सज्जन के चण्डीमण्डप में पाठशाला खोल कर अध्यापन आरम्भ किया। उनकी विलक्षण प्रतिभा और चमत्कारपूर्ण अध्यवसाय तथा न्यायशास्त्र के ज्ञान से आकृष्ट होकर अधिकाधिक संख्या में छात्र उनकी पाठ शाला में प्रवेश प्राप्त कर लाभ उठाने लगे; चारों ओर उनकी विद्वत्ता की धूम मच गयी। अध्ययन-काल में निमाई ने अपने मित्र और सहपाठी रघुनाथ के लिये एक अपूर्व त्याग किया था। उनके मित्र ने प्रसिद्ध दीधीति न्याय ग्रन्थ की रचना कर न्याय-दर्शन के महान् विद्वान् निमाई पण्डित को सुनाना चाहा। उनको तहीं विदित था कि निमाई ने भी एक न्याय ग्रन्थ लिखा है। गंगा में नाव पर बैठ कर निमाई ने रघुनाथ को अपना ग्रंथ सुनाया। वे रोने लगे, उन्होंने मन में बड़ी व्यथा भर कर कहा कि मेरे ग्रन्थ का इसके आगे तनिक भी आदर नहीं होगा। निमाई ने मित्र की पीड़ा की वास्त-विकता का अनुभव किया। उन्होंने रघुनाथ के देखते-देखते अपना ग्रन्थ गंगा की धारा में प्रवाहित कर दिया। रघुनाथ उनके त्याग से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने निमाई को गले लगा लिया, बड़े प्रेम से आलिंगन किया। इस प्रकार निमाई ने स्वार्थरहित मैत्री का परिचय दिया।

पूर्ण युवावस्था में प्रवेश करने पर निमाई पण्डित ने नवद्वीप-निवासी वल्लभाचार्य की कन्या लक्ष्मी से विवाह कर लिया। दोनों का एक दूसरे के प्रति अमित प्रेमपूर्ण आकर्षण था। विवाह के पूर्व सुन्दर और रूप-लावण्यमयी लक्ष्मी को गंगा-तट पर देखकर निमाई कहा करते थे कि तुम मेरी पूजा करो, वर दूंगा। दोनों की गृहस्थी अमित सुखमयी हो गयी।

'कृष्णलीलामृत काव्य' के रचयिता महात्मा ईश्वरपुरी निमाई के दीक्षा-गुरु थे। एक बार वे नवद्वीप आये। मार्ग में निमाई से उनकी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भेंट हो गयी। अत्यन्त श्रद्धापूर्वक निमाई ने उनको अपने घर भोजन पर आमन्त्रित किया। ईश्वरपुरी निमाई के प्रेम से बहुत आकृष्ट हुए, उन्होंने उनको कृष्ण-लीलामृत काव्य के कुछ अंश सुनाये तथा भक्ति का रहस्य समझाया। निमाई ने उनके सम्पर्क से अपने आप को परम गौरवान्वित समझा। पिता की मृत्यु के बाद आर्थिक संकट को दूर करने के लिये उन्होंने पूर्वी बंगाल की यात्रा की। इस यात्रा में उन्होंने पर्याप्त यश-प्राप्ति की तथा धन की भी प्रचुर मात्रा में उपलब्धि हो सकी। पर यह उनके लिये सुखद न रही। घर लौटने पर उन्हें अपनी पत्नी लक्ष्मीदेवी के मृत्यु-समाचार से बड़ा कष्ट हुआ; उन्होंने इस घटना में भगवान की कृपा का ही अनुभव किया तथा माता को सान्त्वना दी।

निमाई पण्डित न्यायशास्त्र के परम मर्मज्ञ थे। वे शिष्यों को साथ लेकर नगर का परिभ्रमण करते थे तथा गंगा-तट पर बैठ कर शास्त्र की व्याख्या किया करते थे। नवद्वीप में एक दिग्विजयी पण्डित का आगमन हुआ। वे अपनी विद्वत्ता और शास्त्रज्ञता पर बड़ा अभिमान करते थे, नगर के लोग उनका लोहा मान गये। एक दिन शाम को उनकी भेंट गंगा-तट पर निमाई पण्डित से हो गयी। निमाई ने विनम्रता पूर्वक उनसे गंगा-स्तवन करने की प्रार्थना की। दिग्विजयी पण्डित ने एक सांस में गंगा की महिमा में सौ नये श्लोक रच कर सुना दिये। निमाई ने उनमें से एक तत्काल उद्धृत कर दिग्वजयी से उसकी व्याख्या पूछी। वे निमाई की विलक्षण प्रतिभा से आश्चर्यचकित हो गये। दिग्विजयी की अनुमति से उनके श्लोकों की निमाई ने स्वयं व्याख्या की और उनके मद को चूर करने के लिये अनेक दोषों की ओर बड़ी मृदुता से संकेत किया। दिग्विजयी पण्डित बहुत लज्जित हुए, अपने आप को पराजित पाकर उनका मस्तक निमाई की विद्वत्ता के चरणों पर नत हो गया।

निमाई पण्डित नित्य प्रति आत्म प्रकाश और अलौकिक दिव्य तेज से सम्पन्न होने लगे। नवद्वीप-निवासी उनकी रूप-सुधा और दिव्य कान्ति-धारा में सम्प्लावित हो कर अपने आप को धन्य मानने लगे। वे समस्त नगर के प्रेमपात्र हो गये।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शची माता के संतोष और गृहस्थाश्रम की सुव्यवस्था के लिये निमाई पण्डित ने विष्णुप्रिया से विवाह कर लिया। विष्णुप्रिया नवद्वीप के समृद्ध और प्रसिद्ध ब्राह्मण सनातन की कन्या थीं। निमाई का विवाह उनके साथ एक राजपुत्र की तरह बड़े ठाट-बाट से हुआ। विष्णुप्रिया और निमाई पण्डित के विवाह सम्बन्ध से दोनों परिवारों में बड़ी प्रसन्नता छा गयी। विष्णुप्रिया परम रूपवती, सुशीला और संस्कृत थीं। निमाई का गृहस्थाश्रम उनकी पवित्र उपस्थिति से स्वर्ग बन गया, वे शची माता को सदा संतुष्ट रखती थीं तथा पति के चरणों की सेवा में निरन्तर संलग्न रहती थीं।

विवाह के बाद निमाई पण्डित ने गया-यात्रा का निश्चय किया, वे पिता का श्राद्ध गया में ही सम्पन्न करना चाहते थे। बहुत-से शिष्यों को साथ लेकर उन्होंने गया के लिये प्रस्थान किया। चिर नदी में स्नान कर मन्दार पर्वत पर मधुसूदन देव का दर्शन किया। पुन-पुन नदी में स्नान कर पुन-पुन क्षेत्र में उन्होंने पितृ-पूजा की।...गया पहुँचने पर ब्रह्मकुण्ड में स्नान कर निमाई पण्डित ने चक्रवेड़ में गदाधर का दर्शन किया। गया में ही उन्हें पूर्व परिचित महात्मा ईश्वरपुरी का दर्शन हुआ। पुरी महोदय ने उन्हें मन्त्र-दीक्षा देकर कृष्ण की प्रेम कथामृत-तरंगिणी से कृतार्थ कर दिया। निमाई के हृदयदेश में कृष्णभक्ति की कालिन्दी प्रवाहित हो उठी। उनकी आज्ञा से वे नवद्वीप आये। गया-यात्रा उनके जीवन को कृष्णभक्ति की ओर पूर्ण रूप से मोड़ने के लिये एक अत्यन्त ऐतिहासिक घटना है। इस यात्रा में विशेष स्मरणीय बात यह है कि कुमार हट्ट में ईश्वरपुरी का दर्शन करने के बाद उन्होंने श्रद्धापूर्ण हृदय से मिट्टी बांध कर नवद्वीप की ओर प्रस्थान किया। वे अपने दीक्षागुरु की चरणधूलि से परम प्रभावित हुए। चैतन्य भागवत में उल्लेख है:

'प्रभु कहे ईश्वरपुरीरजन्मस्थान
ए मृत्तिका आमार जीवन धन प्रान।'

निमाई पण्डित ने पोटली में मिट्टी बांधते समय कहा कि महात्मा ईश्वरपुरी के जन्मस्थान की मिट्टी मेरा जीवन-धन-प्राण है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

घर लौटने पर उनका मन श्रीकृष्ण के प्रेम में रंग उठा। उन्हें घर-गृहस्थी की तनिक भी सुधि नहीं रह गयी। पाठशाला के अध्यापन कार्य में उनका मन तनिक भी नहीं लगता था। वे रात-दिन श्रीकृष्ण के कीर्तन में मस्त रहते थे; श्यामसुन्दर की मूर्ति-माधुरी ही उनके नयनों में निरन्तर आलोड़ित होती रहती थी। एक बार नवद्वीप के शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी के घर में श्रीकृष्ण के नाम का कीर्तन करते-करते वे अचेत और मूर्छित हो गये। वे बार-बार उन्मत्त होकर रोने लगे। उनका हृदय श्रीकृष्ण के विरह में हाहाकार कर उठा। एक बार गंगा-स्नान कर वे सीधे पाठशाला चले गये। छात्रों के मध्य में बैठ कर वे श्रीकृष्ण नाम की व्याख्या करने लगे। उन्हें इस बात का भान ही नहीं रह गया कि छात्रों को व्याकरण और न्याय का पाठ पढ़ाना है। उन्होंने अमित विरहाकुल हृदय से छात्रों को बताया कि कृष्ण का नाम ही सत्य है, उनके चरण-कमलों में भक्तिनिधि की प्राप्ति होती है।...छात्रों के 'धातु' शब्द की व्याख्या पूछने पर उन्होंने कहा कि कृष्ण की शक्ति ही धातु है, उन्होंने पाठशाला बन्द कर दी, जड़ विद्या का त्याग कर पराविद्या—श्रीकृष्णभक्ति में अपने अमूल्य समय का सदुपयोग करना ही उचित समझा। शची माता ने समझा कि पुत्र को वायुरोग हो गया है पर रोग तो भगवद्विरह का था; उनका हृदय राधा के प्राणधन वृन्दावनचन्द्र के दर्शन के लिये परम आकुल हो उठा था।

नवद्वीप में घर-घर कृष्णनाम संकीर्तन की धूम मच गयी। नवद्वीप में हरिनाम के प्रचार के लिये निमाई पण्डित ने नित्यानन्द-निताई और हरिदास को अपनी सेवा में ले लिया। उन दिनों नदिया के कोतवाल जगाई-मधाई-दो ब्राह्मण सहोदर थे। वे सदा मदिरा पीकर प्रमत्त रहते थे। उनके पाप बढ़ने लगे। नदिया के काजी—शासक को बहुत-सा धन देकर वे नगर-निवासियों के प्रति मनमाना व्यवहार किया करते थे। एक दिन रात को दोनों ने निमाई पण्डित के कीर्तन-स्थान के निकट डेरा डाला, मदिरोन्मत्त थे। हरिनाम की भिक्षा मांगने वाले नित्यानन्द पर मधाई ने मदिरा का पात्र फेंका, उनके सिर से रक्त बहने लगा। निमाई घटना-स्थल पर स्वयं आये। उन्होंने सुदर्शन चक्र

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

का आवाहन किया। नित्यानन्द ने कहा 'प्रभु, ये लोग अनजान हैं, इन्हें आप की शक्ति का ज्ञान नहीं हैं, इन्हें क्षमा कर दीजिये।' जगाई ने नित्यानन्द की रक्षा की थी। प्रभु ने उसे गले लगाया। मधाई को अपनी करनी पर पश्चात्ताप हुआ। मधाई प्रभु के पैरों पर गिर पड़ा पर उन्होंने कहा कि तुमने श्रीपाद नित्यानन्द के प्रति घोर अपराध किया है, वे ही तुम्हें क्षमा कर सकते हैं। निताई की प्रार्थना पर प्रभु ने उसको क्षमा कर दिया। गंगा-तट पर ले जाकर दोनों भाइयों के पाप का संकल्प करवा लिया। दोनों भाइयों ने हाथ में जल लेकर प्रभु के हाथ में अपने पाप दे दिये। वे निष्पाप हो गये। समस्त नवद्वीप 'हरे राम, हरे कृष्ण' मन्त्र से धन्य हो उठा। मधाई ने गंगा पर सुन्दर घाट वनाया, वह स्नान करने वालों से अपने पाप और दोषों के लिये क्षमा मांगा करता था।

नदिया के श्रीवास पण्डित के घर रात को प्रभु अपने भक्तों के साथ जोर-जोर से हरिनाम का कीर्तन किया करते थे। जगाई-मधाई भी उसमें सम्मिलित होते थे। गौड़ेश्वर की ओर से नदिया के काजी चाँद थे। चाँद के भय से लोग प्रकट रूप से कीर्तन नहीं करते थे। एक दिन आधी रात को कीर्तन हो रहा था। चाँद काजी ने कीर्तन-यज्ञ विध्वंस किया, मृदंग तोड़ डाला।...प्रभु सदल-वल कीर्तन करते हुए उसके निवासस्थान पर पहुँच गये। वह घर में छिप गया। प्रभु ने उसको बाहर बुलाया। काजी ने उनसे क्षमा मांगी और कहा कि मेरे वंश का कोई व्यक्ति कीर्तन में कभी विघ्न नहीं डालेगा। प्रभु ने उसका उद्धार किया। उन्होंने कहा कि कलियुग में केवल हरिनाम ही सत्य है, कलिकाल में नामरूप में ही भगवान कृष्ण का अवतार है। नाम से ही समस्त जगत का निस्तार होता है। प्रभु ने श्रीकृष्ण की नाममाधुरी से असंख्य प्राणियों का उद्धार किया। उनकी महिमा की कथा सारे गौड़ देश में होने लगी। एक दिन प्रभु ने रात में स्वप्न में एक संन्यासी का दर्शन किया, उन्हें ऐसा लगा कि संन्यासी ने उन्हें संन्यास लेने की प्रेरणा दी है। उसके दूसरे दिन गंगा के उस पार कटवा में रहने वाले संन्यासी केशव भारती नवद्वीप आये, उन्होंने प्रभु के घर भिक्षा ली, प्रभु ने संन्यास लेने की वात कही तो कह पड़े कि आप तो साक्षात्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नारायण हैं। प्रभु ने कहा कि श्रीकृष्णप्रेम के प्रचार के लिये संन्यास धर्म मेरा आवश्यक कर्म हो गया है। संन्यास की तिथि निश्चित हो गयी। केशव भारती के कटवा चले जाने पर प्रभु ने नित्यानन्द से कहा कि मैं जगत का उद्धार करने के लिये पृथ्वीपर अवतीर्ण हुआ हूँ। संन्यास लूंगा। शची माता ने सुना तो घबड़ा गयीं पर प्रभु ने आश्वासन दिया कि मैं श्रीकृष्णनाम रूपी धन से घर भर दूंगा। सौभाग्यवती विष्णुप्रिया विशेष चिंतित थीं। वे रात-रात भर जागती रहीं। प्रभु को पर्यंकस्थ देख कर उनकी चिन्ता कम होती थी। पर प्रभु को रोकने का साहस किस में था। वे तो भक्ति की बाढ़ में बह रहे थे।...सम्वत् १५६७ वि. की माघ शुक्ल संक्रांति को जब चार घड़ी रात शेष रह गयी थी, प्रभु घर से बाहर हो गये। उनकी स्वर्ण शरीर-कान्ति गंगा की धवलिमा पर प्रतिविम्बित हो उठी। उन्होंने तैर कर गंगा पार की और उस पार कटवा में केशव भारती के आश्रम पर पहुँच गये। पूर्णिमा की चाँदनी थिरक रही थी।...केशव भारती का चित्त उद्विग्न हो उठा, संन्यास-दीक्षा में वे संकोच करने लगे। उन्होंने कहा कि यह अवस्था संन्यास का नहीं है। मैं संन्यास-दीक्षा नहीं दे सकता। प्रभु ने प्रार्थना की कि संन्यास ही मेरी परम गति है। कहा:, कृष्णदास कविराज की वाणी है:

'मोरा निन्दा करे ये न करे नमस्कार।
ए सब जीवेर अवश्य करिब उद्धार।
अतएव अवश्य आमि संन्यास करिव।
संन्यासी बुद्धे मोरे प्रणत हइब।
प्रणतिते हबे इहार अपराध क्षय
निम्मल हृदय-भक्ति करिब उदय।'

प्रभु का मुण्डन करते-करते नापित रो पड़ा। केशव भारती के नयन सजल हो उठे। उन्होंने संन्यास-दीक्षा दी और प्रभु का नाम भारती ने कृष्ण चैतन्य रखा। प्रभु ने इसी नाम का आजीवन वरण किया। संन्यास लेने के बाद चैतन्य देव अद्वैताचार्य के घर शान्तिपुर आये, उन्होंने नवद्वीप से शची माता को बुलाया; दर्शन किया; उनके अनुरोध से नीलाचल—जगन्नाथ क्षेत्र में रहना स्वीकार कर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लिया। वे अपने भक्तों के साथ जगन्नाथ के दर्शन के लिये नीलाचल की ओर चल पड़े।

चैतन्य ने नीलाचल क्षेत्र में प्रवेश किया। जगन्नाथ देव का दर्शन करते ही उनका प्रेमोन्माद बढ़ गया। वे भगवद्विग्रह का आलिंगन करने के लियें आकुल हो उठे। आलिंगन के लिये वे दौड़ना ही चाहते थे कि मन्दिर के दरोंगा (पड़िछा) ने रोक दिया। पुजारियों ने महाप्रभु को मारना चाहा पर संयोग से वेदान्त के प्रकाण्ड पण्डित सार्वभौम भट्टाचार्य मन्दिर में ही उपस्थित थे। उन्होंने प्रभु के मुख पर प्रेम के सात्विक विकार देखे, पुजारियों को मना किया; प्रभु ने मूर्छा हटने पर सार्वभौम को देखा, सार्वभौम प्रभु की रूप-माधुरी और दिव्य ओजस्विता से उनके वश में हो गये। वे सात दिन तक सार्वभौम के मुख से वेदान्त के सिद्धान्त सुनते रहे।...चैतन्य ने दक्षिणयात्रा का निश्चय किया।

चैतन्य दक्षिण की ओर चल पड़े। गजपति प्रताप रुद्र के प्रतिनिधि रामानन्द राय से गोदावरी के तट पर प्रभु की भेंट हुई। श्रीकृष्ण-भक्ति को लेकर सत्संग हुआ। प्रभु उनकी कृष्णभक्ति से बहुत प्रसन्न हुए। वे श्रीरंगक्षेत्र गये। शृंगेरी मठ के शंकराचार्य से भेंट की। वे श्रीरंग में चार मास तक रह गये। श्रीरंग से उड़ीपी क्षेत्र में आकर चैतन्य ने मध्वाचार्य द्वारा स्थापित नर्तक गोपाल का दर्शन किया; वे भगवद्विग्रह के सामने आनन्द और प्रेम से उन्मत्त होकर नाचने लगे।...महाप्रभु ने पण्ढरपुर में विट्ठल देव का दर्शन किया, वे कृष्ण वेणा के तट पर आये, महाकवि विल्वमंगल कृत कृष्णकर्णामृत काव्य-संग्रह कराया तथा विद्यानगर लौट कर राय रामानन्द को कृष्णकर्णामृत और ब्रह्मसंहिता की पाण्डुलिपि प्रदान की। दक्षिण-यात्रा समाप्त कर चैतन्य देव पुरी लौट आये।...पुरी में वे काशी मिश्र के निवासस्थान पर ठहर गये। रथयात्रा का समय था। उस समय उड़ीसा के महाराजा प्रताप रुद्र उत्सव में उपस्थित थे। उन्होंने महाप्रभु से मिलने की बड़ी चेष्टा की पर चैतन्य ने कहा कि राजा-महाराजा से नहीं मिलता हूँ। सार्वभौम और रामानन्द की समस्त चेष्टायें निष्फल हो गयीं।...रथा-रोहण के कुछ समय पहले प्रताप रुद्र वैष्णव वेष में सोने के झाड़ू से

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रथ-मार्ग साफ कर रहे थे। चैतन्य उनकी वैष्णवता से बहुत प्रसन्न हुए। महाप्रभु रथस्थ भगवान जगन्नाथ का दर्शन कर मूर्छित हो गये। मूर्छा-अवस्था में प्रताप रुद्र प्रभु का चरण सहलाने लगे और गोपी-गीत का एक श्लोक कहने लगे। प्रभु को गोपी-गीत सुनकर वृन्दावन-लीला की स्फूर्ति हुई। उन्होंने प्रताप रुद्र का प्रेमालिंगन किया।...उन्होंने वृन्दावन जाने का निश्चय किया। यद्यपि सार्वभौम आदि ने उनको रोकना चाहा पर प्रभु गौड़ होते हुए वृन्दावन के लिये चल पड़े।...शान्तिपुर में शची माता उनसे मिलने आयीं। वे नवद्वीप आये। घर के सामने मार्ग में खड़े हो गये। विष्णु प्रिया ने दर्शन किया, महाप्रभु ने खडाऊँ देकर कहा कि इन्हीं के सहारे जीवन बिताना चाहिये। नवद्वीप से गंगा-तट होते हुए महाप्रभु रामकेलि ग्राम में आये। उन्होंने अपने दर्शन से गौड़ेश्वर हुसेनशाह के उच्च अधिकारी प्रधान सचिव और प्रधानमन्त्री—दबीर खास (सनातन) और शाकिर मल्लिक (रूप) को धन्य किया। वे उनके भक्त हो गये। रूप-सनातन के कहने पर उन्होंने कुछ दिनों के लिये वृन्दावन की यात्रा स्थगित कर दी और पुरी आ गये।...उनका मन वृन्दावन के लिये आकुल था। वे झारखण्ड के मार्ग से श्यामसुन्दर की रसराजधानी के दर्शन के लिये चल पड़े। वन देख कर उन्हें वृन्दावन की सुधि आ जाती थी, सरिता देख कर कलिन्दनन्दिनी की श्यामता नयनों में समा जाती थी। पहाड़ देखते तो गोवर्धन का स्मरण हो जाता था। प्रभु काशी पहुँच गये। मणिकर्णिका पर स्नान कर विश्वनाथ का दर्शन किया...प्रयाग में तीन दिन ठहर कर वे मथुरा पहुँच गये। विश्राम घाट पर स्नान कर उन्होंने आदि केशव का दर्शन किया, अन्य तीर्थस्थानों में गये। वृन्दावन में प्रवेश कर वे प्रेमविभोर होकर श्रीकृष्ण का नाम-कीर्तन करते-करते नाचने लगे। गोवर्धन में हरिदेव का दर्शन किया। राधाकुण्ड और श्यामकुण्ड का पता लगाया। व्रजवासियों ने उनके रूप में यशोदानन्दन श्रीकृष्ण का दर्शन किया, उन्हें द्वापर के रसघनमूर्ति चिदानन्द ब्रह्म नन्दनन्दन का चैतन्य के वेश में प्रत्यक्ष दर्शन हुआ। महाप्रभु वृन्दावन की दशा से बहुत चिंतित हुए। उन्होंने अनेक गुप्त और लुप्त तीर्थों के उद्धार का संकल्प किया। कुछ दिनों तक वृन्दावन में निवास कर सूकरक्षेत्र होते हुए वे प्रयाग आ गये। प्रयाग में उनका बड़ा स्वागत हुआ। महाप्रभु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वल्लभ आचार्य से उनका मिलन हुआ। महाप्रभु ने उन्हें अड़ैल में अपने निवासस्थान पर आमन्त्रित किया। दोनों भक्ति के महान् आचार्य थे; श्रीकृष्ण की लीला के अपूर्व विशेषज्ञ थे। दोनों ने एक-दूसरे का दर्शन कर अपने आप को धन्य माना।...गौड़ेश्वर का राजकार्य छोड़ कर रूप अपने छोटे भाई अनुपम को साथ लेकर महाप्रभु चैतन्य देव से मिलने प्रयाग आये। महाप्रभु ने रूप को वृन्दावन जाकर लुप्त तीर्थों का उद्धार करने का आदेश दिया। भक्तिरसामृतसिन्धु ग्रन्थ लिखने की प्रेरणा दी। भक्तिशास्त्रसम्बन्धी शिक्षा दी। महाप्रभु प्रयाग से काशी आ गये। उन्होंने प्रकाशानंद ऐसे महान् वेदान्ती को श्रीकृष्ण का भक्त बना लिया। गौड़ेश्वर ने सनातन को कैद कर लिया था। उन्होंने जेल-दरोगा को रुपये देकर जेल से मुक्ति प्राप्त की। काशी में प्रभु के दर्शन के लिये उपस्थित हुए। उनका रूप दर वेशका-सा था। वैराग्य और संन्यास की मूर्ति थे। हाजीपुर में उनके बहनोई श्रीकान्त ने एक शाल दिया था। महाप्रभु बार-बार उसकी ओर देखने लगे तो उन्होंने उसका भी त्याग कर दिया। चैतन्य देव के साथ वे काशी में दो मास तक रह गये। महाप्रभु ने उनको जीव और श्रीकृष्ण के नित्य सम्बन्ध का रहस्य समझाया। श्रीकृष्ण को नित्य सुखी देखना ही जीवात्मा की भक्ति साधना का फल है। चैतन्य महाप्रभु ने सनातन को भक्ति-ग्रन्थों की रचना का आदेश देकर रूप और अनुपम के पास वृन्दावन भेज दिया।

चैतन्य महाप्रभु की नीलाचल-लीला परम मधुर और सरस स्वीकार की जाती है। चैतन्य देव बलभद्र भट्टाचार्य के साथ काशी से सदा के लिये पुरुषोत्तम-क्षेत्र चले आये। वे समुद्र-स्नान कर जगन्नाथ देव का दर्शन कर नित्य प्रति अपने आप को धन्य मानने लगे। उनसे मिलने वृन्दावन से रूपगोस्वामी आये। वे हरिदास के साथ ठहर गये। महाप्रभु ललितमाधव और विदग्धमाधव नाटकों के कुछ अंश तथा अन्य भक्तिपूर्ण रचनायें सुन कर बहुत प्रसन्न हुए। रूप गोस्वामी वृन्दावन चले गये। महाप्रभु के दर्शन के लिये वृन्दावन से सनातन गोस्वामी आये। झारखण्ड के मार्ग से आने के कारण उनका शरीर बिगड़ गया था, वे खाज के शिकार हो गये थे। महाप्रभु बार-बार आलिंगन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करते थे, सराहना करते थे कि मैं धन्य हो गया, सनातन के शरीर में अनुपम दिव्य गन्ध है। वे बार-बार सनातन को हृदय से लगाने का प्रयत्न किया करते थे। सनातन को आत्मग्लानि हुई। उन्होंने रथ के नीचे दब कर आत्मघात करने का संकल्प किया। महाप्रभु ने उनको समझाया कि कृष्णप्रेम आत्मघात से नहीं मिलता है, उनकी अहैतुकी भक्ति से ही कृष्णप्रेम की प्राप्ति होती है। प्रभु की आज्ञा से सनातन वृन्दावन चले आये।

नीलाचल में राय रामानन्द महाप्रभु को भागवत की कथा सुनाया करते थे और स्वरूप कीर्तन किया करते थे। महाप्रभु ने जीवन के अन्तिम दिनों तक कृष्णान्वेषण किया, उनका प्रेमोन्माद बढ़ता गया। प्रभु सदा अपने प्रेमी भक्तों से घिरे रहते थे। नीलाचल-निवास-काल में उनके जीवन से सम्बन्ध रखने वाली अनेक शिक्षाप्रद घटनायें उल्लेख्य हैं। महाप्रभु ने अपने भक्तों को स्त्री-सम्पर्क से दूर रहने का आदेश दिया था। एक दिन प्रभु पुरी-निवासी भगवान आचार्य के घर भिक्षा पर निमन्त्रित थे। भगवान आचार्य के कहने से प्रभु के कीर्तनकार छोटे हरिदास ने माधवी नामक स्त्री से प्रभु के ही लिये महीन चावल की भिक्षा ली। प्रभु को पता चला तो उन्होंने छोटे हरिदास को आने की मनाही कर दी। हरिदास बहुत दुखी हुए पर प्रभु ने उनका मुख न देखने का व्रत ले लिया था। प्रभु ने अपने भक्तों से व्रत का कारण बताया कि संन्यासी को कभी स्त्री के सम्पर्क में नहीं आना चाहिये। इन्द्रियाँ दुर्दमनीय हैं, इसलिये माता, बहिन और कन्या के साथ कभीं एकान्त में एक आसन पर नहीं बैठना चाहिये। काठ की बनी स्त्री का भी विश्वास नहीं किया जा सकता है। कुछ समय के बाद त्रिवेणी संगम पर हरिदास ने शरीर-त्याग दिया; महाप्रभु ने कहा कि संन्यासी हरिदास ने अपने कर्म का फल भोग लिया, स्त्री-दर्शन का यही प्रायश्चित है।

एक बार एक देवदासी अत्यन्त सरस स्वर से गीत गोविन्द गा रही थी। प्रभु को इस बात का तनिक भी पता नहीं था कि स्वर स्त्री का है या पुरुष का। वे प्रेमावेश में उसके आलिंगन के लिये दौड़ पड़े; उनके सेवक गोविन्द ने कहा कि स्त्री का स्वर है। महाप्रभु सावधान

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हो गये। उन्होंने गोविन्द से कहा कि आज तुमने मेरा प्राण बचा लिया नहीं तो स्त्री के स्पर्श से आज मेरा मरण निश्चित था।

जगन्नाथ देव के नाट्य मन्दिर में गरुड़ स्तम्भ के पीछे खड़े होकर प्रभु दर्शन किया करते थे। एक बार एक बूढ़ी स्त्री भीड़ में प्रभु के कन्धों के सहारे गरुड़ स्तम्भ पर खड़ी होकर जगन्नाथ देव का दर्शन कर रही थी। चैतन्य के सेवक गोविन्द ने उसको रोका, नीचे उतार दिया। प्रभु ने कहा वह आवेश में जगन्नाथ का दर्शन कर रही है, उसे बाह्य दशा का तनिक भी ज्ञान नहीं है, कहीं मुझे भी ऐसे भाव की जगन्नाथ-दर्शन के लिये प्राप्ति हो जाती तो मैं कृतार्थ हो जाता।

चैतन्य का समय कृष्णप्रेम के दिव्योन्माद में बीतने लगा। नीलाचल का समय उनके जीवन का मधुरतम अंश है। चैतन्य महाप्रभु ने अपने प्रधान अनुयायी नित्यानन्द, अद्वैतप्रभु, रायरामानन्द, रूपगोस्वामी, सनातन गोस्वामी, जीवगोस्वामी, रघुनाथ भट्ट, गोपाल भट्ट, रघुनाथ-दास, हरिदास तथा नरहरि सरकार आदि विभूतियों के माध्यम से कृष्ण की प्रेम-भक्ति का प्रचार किया; वैष्णवता का प्रचार किया। भक्तिशास्त्र पर ग्रन्थ लिखाये तथा वृन्दावन आदि तीर्थों के गुप्त और लुप्त क्षेत्रों तथा स्थानों का पता लगाया। चैतन्य देव का यह कार्य ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण स्वीकार किया जाता है। समस्त देश उनके

'हरये नमः यादवाय नमः'
गोपाल गोविन्द राय श्रीमधुसूदन'

—मन्त्र से जाग उठा, कृष्णभक्ति का रसास्वादन करने लगा। चैतन्य महाप्रभु वैराग्यविद्या और भक्तियोग के अनुपम रसज्ञ थे। उन्होंने वृन्दावन की चिन्मयी, रसमयी तथा सौन्दर्यमयी भागवत विभूति का दर्शन किया। श्री राधाकृष्ण के रूप-सौन्दर्य के एकीभूत स्वरूप की आराधना की।

चैतन्य महाप्रभु ने—

'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

—मंत्र को महामन्त्र बताया। उन्होंने कहा कि इस मन्त्रराज के निरन्तर जाप से जीव संसार-बन्धन से मुक्त होकर भगवान के परम धाम का अधिकारी हो जाता है। उन्होंने अचिंत्यभेदाभेदवाद का प्रचार किया। उन्होंने कहा कि हरि के गुण ही ऐसे हैं कि बड़े-बड़े आत्माराम ज्ञानी-विज्ञानी विधि-निषेध से अलग होने पर भी उनसे प्रेम कर भक्ति का रसास्वादन करते हैं। चैतन्य के मत में भागवत-पुराण प्रमुख शास्त्र स्वीकार किया गया है तथा गीत गोविन्द को विशिष्ट स्थान प्राप्त है। लीलाशुकरचित कृष्णकर्णामृत ग्रन्थ में उनकी बड़ी रुचि थी। जयदेव, विद्यापति और चण्डीदास के गीतों में महाप्रभु को विशेष आनन्द और रस का अनुभव होता था। चैतन्य देव ने कहा कि भगवान अमूर्त नहीं, मूर्त हैं, उनका नाम ही उनका रूप है। भगवान की कृपा से ही प्रेमा भक्ति की प्राप्ति होती है। साधना-भक्ति से तो केवल ब्रह्मज्ञान मिलता है। गोपी श्रीकृष्ण की वास्तविक प्रेमिका हैं, नित्य प्रेयसी हैं। वे भगवान श्रीकृष्ण की स्वरूप-शक्ति हैं। राधा महाभाव की पराकाष्ठा हैं। चैतन्य ने दिव्योन्माद अथवा मादन महाभाव में राधा और कृष्ण की स्वरूपानुभूति की। पुरी में अपने जीवन के अन्तिम दिनों में उन्हें राधा के मादन महाभाव का स्वरूपानन्द प्राप्त होता था। उल्लेख है:

'राधिकार भावकान्ति करि अधिकार,
निज रस आस्वादिते करिआछअवतार।
तवे हासि प्रभु निज देखल स्वरूप,
रसराज महाभाव दुइ एक रूप'

चैतन्य के मत में—अचिंत्य भेदाभेदवाद के क्षेत्र में व्रजपति नन्द के पुत्र श्रीकृष्ण ही आराध्य हैं। वृन्दावन उनका लीलाधाम है। व्रज-गोपिकाओं द्वारा की गयी उपासना ही माननीय और प्रामाणिक है। चैतन्य महाप्रभु ने भागवत को निर्मल प्रमाणशास्त्र माना, प्रेम को सर्वश्रेष्ठ पुरुषार्थ स्वीकार किया। समस्त विद्या का फल उन्होंने कृष्णपद-प्रेम ही माना। चैतन्य भावगत में महाप्रभु की उक्ति है:

'सेइ से विद्यारफल जानिह निश्चय।
कृष्णपादपद्मे यदि चित्त वित्त रय।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महाप्रभु ने इस बात पर जोर दिया कि जब तक शरीर में प्राण हैं, देह में शक्ति है तब तक कृष्ण-चरण में भक्ति करनी चाहिये, कृष्ण माता, पिता, प्राणधन, तन और मन हैं, सर्वस्व हैं। अपने शिक्षाष्टक में चैतन्य महाप्रभु ने श्रीकृष्ण के संकीर्तन, नाम-स्मरण, विनम्रता, निष्काम भगवद्भक्ति, सेवा पर विशेष जोर दिया, उन्होंने श्रीकृष्ण के चरणों में पूर्ण समर्पण पर ही विश्वास किया। अन्तिम समय में चैतन्य देव का दिव्योन्माद अधिक बढ़ गया। एक दिन समुद्र की ओर जा रहे थे। बीच में चटक पर्वत पड़ता था। उन्होंने गोवर्धन समझकर उसका आलिंगन करना चाहा, भागवत का श्लोक पढ़ते-पढ़ते वे अचेत होकर गिर पड़े।...जगन्नाथ देव उन्हें मुरली मनोहर श्यामसुन्दर के रूप में दर्शन देने लगे। एक बार प्रभु विरहावेश में समुद्र में कूद पड़े थे।

उनका अवसान विलक्षण ढंग से हुआ। सम्वत् १५८० वि. में आषाढ़ मास में एक दिन प्रभु जगन्नाथ-मन्दिर में दर्शन कर रहे थे। प्रभु मन्दिर में गरुड़ स्तम्भ के पीछे से दर्शन किया करते थे पर उस दिन वे सीधे मन्दिर के भीतर चले गये। दरवाजे बन्द हो गये। लोग आश्चर्य में पड़ गये। वे जगन्नाथ जी की ज्योति में लीन हो गये। इस घटना से स्वरूप गोस्वामी का हृदय फट गया। चैतन्य के निधन पर रूप गोस्वामी की उक्ति है कि समुद्र के तट-उपवन समूहों को वृन्दावन समझ कर जो प्रेमाभिभूत हो जाते थे, श्रीकृष्ण के नाम संकीर्तन में जिनकी रसना सदा लगी रहती थी, वे भक्तिरसरसिक क्या हमें फिर दर्शन देंगे?

महाप्रभु चैतन्य देव भक्तिरस के महान् आचार्य थे। गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय उनकी भक्ति-परम्परा के अनुगमन का अप्रतिम प्रतीक है। उनका सम्पूर्ण जीवन श्रीकृष्णमय था। वाणी—सरस्वती की परम प्रसन्नता के फलस्वरूप इतने बड़े भागवत सन्त की जीवन-कथा के चिंतन का सौभाग्य मिलता है।

रचना

उनके आठ श्लोक—शिक्षाष्टक बहुत प्रसिद्ध हैं। रूपगोस्वामी ने उनके कई श्लोकों का पद्यावली में संग्रह किया है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वाणी

चेतो दर्पण मार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं
श्रेयः कैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम्।
आनन्दाम्बुधिवर्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम्॥

भगवान कृष्ण के संकीर्तन की जय हो। वह चित्तरूपी दर्पण को साफ रखता है, संसाररूपी दावानल को शान्त कर देता है, कल्याण-कुमुद को अपने किरणजाल से खिला देता है, विद्या वधू का जीवन है, चन्द्रमा के समान-आनन्द समुद्र को बढ़ा देता है, अमृत का रसास्वादन कराता है, सम्पूर्ण आत्मा उससे शांति और आनन्द में मग्न हो जाती है।

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति–
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणो न कालः।
एतादृशी तवकृपा भगवन्ममापि
दुर्दैवमीदृश मिहाजनि नानुरागः॥

हे भगवान् आप के नामसमूह अनेक रूप से प्रकट हैं। नाम-स्मरण में काल-अकाल का प्रश्न नहीं है। आप के नाम में आप की भगवत्ता अभिव्यक्त है, यह आप की महान कृपा है पर अभाग्य से आप के नाम में मेरा अनुराग नहीं हो सका।

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥

तृण से भी अधिक विनम्र-नीच होकर, वृक्ष से भी अधिक सहनशील और अमानी होकर सदा दूसरे को सम्मानित करते हुए भगवान श्रीकृष्णहरि का कीर्तन करते रहना चाहिये।

न धनं न जनं न सुन्दरीं कवितां वा जगदीश कामये।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद्भक्तिरहैतुकीत्वयि॥

हे जगदीश! मुझे धन, परिवार, सुन्दरी-कविता नहीं चाहिये। मैं जन्म-जन्म तक आप के चरणों में अहैतुकी भक्ति मांगता हूँ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अयि नन्दतनुज किङ्करं पतितं मां विषमे भवाम्बुधौ ।
कृपया तव पादपङ्कजस्थितधूलीसदृशं विचिन्तय ।।

हे नन्दनन्दन ! विषम संसार-सागर में पड़े हुए मुझ दास को कृपापूर्वक अपने चरण-कमल के एक धूलि-कण के समान समझ लीजिये ।

नयनं गलदश्रुधारया वदनं गद्गदरुद्धया गिरा ।
पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नामग्रहणे भविष्यति ।।

हे देव ! ऐसा कब होगा कि आप का नाम लेने पर मेरे नयन अश्रु-जल से भीगे रहें, कंठ गद्गद अवरुद्ध हो जाने से मेरे मुख से रह-रह कर वाणी निकले तथा शरीर रोमाञ्चित हो जाय ।

युगायितं निमेषेण चक्षुषा प्रावृषायितम् ।
शून्यायितं, जगत्सर्वं गोविन्दविरहेण मे ।।

हे गोविन्द ! आप के विरह में मेरा एक निमेष युग के समान हो गया है, नयनों से जल-वृष्टि हो रही है, जगत सूना-सूना-सा लगता है ।

आश्लिष्य वा पादरतां पिनष्टु मा –
मदर्शनान्मर्महतां करोतु वा ।
यथा तथा वा विदधातु लम्पटो
मत्प्राणनाथस्तु स एव नापरः ।।

अपनी चरण-सेवा में रत चाहे वे मेरा आलिंगन करें या पीस डालें, मेरे नयनों के सामने से चाहे ओंझल होकर मुझे मर्माहत करें, जो इच्छा हो वही करें, पर है हमारे प्राणनाथ वे हरि ही, दूसरा कोई नहीं है ।

—शिक्षाष्टक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महात्मा सनातन गोस्वामी

तस्मै नमोऽस्तु निरुपाधिकृपाकुलाय
श्रीगोपराजतनयाय गुरुमुत्तमाय।
यः कारयन् निजजनं स्वयमेव भक्तिं
तस्यातितुष्यति यथा परमोपकर्तुः।

गोपराजतनय—नन्दनन्दन, उत्तमगुरु, सदा अहैतुकी कृपा करनें के लिये आकुल भगवान श्रीकृष्ण को, जो स्वयं प्रेरणा करके अपने स्वजनों से भक्ति कराते हैं तथा उन पर अपने परम उपकारी की तरह प्रसन्न होते हैं, नमस्कार है।

—बृहद् भागवतामृतम्।

महात्मा सनातन गोस्वामी को मध्यकालीन रसिक सन्तों की श्रेणी में विशेष स्थान प्राप्त है। वे भगवत्तत्व—कृष्णरस अथवा भक्तिदर्शन के परम विशेषज्ञ थे। सनातन और उनके छोटे भाई रूप नें भक्तिरस को दर्शन के रंगमंच पर प्रतिष्ठित कर वेदप्रतिपाद्य रस-ब्रह्म श्रीकृष्ण की कृपा से उपासना को पूर्व और उत्तर मीमांसा-दर्शन का प्राण सिद्ध किया। कर्म और ज्ञान को भक्ति के आश्रित कर निर्गुण ज्ञानधारा की अद्वैत सन्तपरम्परा पर सगुण चिन्तन पद्धति की भक्तिमयी विजयिनी ध्वजा फहरा कर वेदान्तप्रतिपाद्य ब्रह्मानन्द का भागवतसंवेद्य कृष्ण-तत्व में रूपान्तर कर दिया। महाप्रभु वल्लभाचार्य, चैतन्यदेव और गोस्वामी तुलसीदास की कृष्णभक्ति और राम-अनुरक्ति की मूल भूमि में इसी रूपान्तर का दर्शन होता है। मध्यकालीन सन्त-साहित्य के इतिहास में यह रूपान्तर एक अत्यन्त आवश्यक और महत्वपूर्ण अध्याय है।

सनातन ने विक्रम की सोलहवीं और सत्तरहवीं शताब्दी को अपने भक्तिसाहित्य से प्रभावित किया। उनके जीवन के प्रारम्भिक काल में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दिल्ली में नित्यप्रति राज्यवंश के परिवर्तन की आशंका बनी रहती थी। प्रान्तों के शासक अपनी स्वतन्त्र राजसत्ता की स्थापना कर रहे थे। देश विभिन्न स्वतन्त्र प्रान्तों में विभक्त था। उनके जीवन के मध्य और अन्तिम भाग में केन्द्रीय राजसत्ता मुगल आधिपत्य में बलवती हो चली थी; सम्राट अकबर ने देश की राजनैतिक एकता की ओर विशेष ध्यान दिया; राजनैतिक एकता के अनुरूप सांस्कृतिक और साहित्यिक तथा आध्यात्मिक चिन्तन में भी एकता का सूत्रपात हुआ। भगवान् की सगुण भक्ति का प्राबल्य देखा गया; सूर और तुलसी ने, रूप और सनातन तथा जीव गोस्वामी ने, हितहरिवंश, व्यास और हरिदास आदि ने भगवान् की लीला के रसराजत्व से जन-जीवन को समृद्ध बनाया। विक्रम की सोलहवीं सदी के दूसरे चरण की समाप्ति के लगभग गौड़ बंगाल में हुसेन शाह का आधिपत्य था। आध्यात्मिक क्षेत्र में महाप्रभु चैतन्य देव की कृष्णकीर्तनमाधुरी नदिया से व्रज तक और हिमालय से नीलगिरि तक परिव्याप्त थी। ऐसे पुण्यमय पवित्र समय में सनातन ने भागवत चेतना प्राप्त की। सनातन गोस्वामी के पूर्वज दक्षिण प्रान्त के कर्णाटक मण्डल के रहने वाले थे। उन्हें सरस्वती और लक्ष्मी दोनों की कृपा तथा प्रसन्नता प्राप्त थी। वे राज ऐश्वर्य से सम्पन्न थे। भारद्वाज गोत्रीय यजुर्वेदी ब्राह्मण थे। इस पवित्र कुल में एक सर्वज्ञ नामक यशस्वी महापुरुष हुए थे। उनके वंशज पद्मनाभ किसी कारण से कर्णाटक छोड़ कर बंगाल में आकर फतेहाबाद में बस गये। पद्मनाभ के पौत्र कुमार देव सनातन गोस्वामी के पिता थे तथा माता का नाम रेवतीदेवी था। सनातन के दो भाई थे, उनका नाम रूप और अनुपम था। सनातन का असली नाम अमर था और रूप का नाम संतोष था। माता-पिता ने सनातन की शिक्षा-दीक्षा में बड़ी सावधानी रखी। सं. १५३९ वि. के लगभग सनातन का जन्म हुआ था। उनकी शिक्षा की व्यवस्था नवद्वीप के प्रकाण्ड विद्वान् रत्नाकर विद्यावाचस्पति के हाथ में सौंपी गयी। विद्या समाप्त करने पर वे घर पर ही रह कर काव्य आदि शास्त्रग्रन्थों का अध्ययन करने लगे। कविता में उनकी विशेष रुचि थी। उनके पिता की हुसेन शाह की राजसभा तक पहुँच थी, इसका फल यह हुआ कि हुसेन शाह के विश्वास-पात्र कवि मालाधार वसु के विशेष प्रभाव से सनातन और उनके छोटे भाई

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजसभा में विशेष अवसरों पर उपस्थित होने लगे। हुसेन शाह ने सनातन की योग्यता और बुद्धिमत्ता से प्रसन्न होकर उन्हें प्रधानमन्त्री-साकर मल्लिक के पद पर प्रतिष्ठित किया तथा रूप को अपना दबीर खास अथवा निजी सचिव बनाया। सनातन राजप्रबन्ध की सुविधा की दृष्टि से गंगातटपर रामकेलि ग्राम में एक विशाल प्रासाद बनवा कर सपरिवार रहने लगे। दोनों भाइयों का जीवन भोगमय हो उठा, लक्ष्मी और सरस्वती दोनों ने उनको समृद्धि और बुद्धि का आशीर्वाद दिया। भोग में रहते हुए भी सनातन को किसी-न-किसी विशेष अभाव का दुख था। वे श्रीकृष्णचन्द्र के चरणानुरागी थे। उन्हें बड़े-बड़े सन्तों का सत्संग मिलता रहता था। दोनों श्रीकृष्ण की लीला पर काव्य रचना भी करते थे। सनातन ने सन्तों और विद्वानों के मुख से अनेक बार चैतन्य देव का नाम सुना था, वे उनकी कृष्णभक्ति के बड़े प्रशंसक थे। चैतन्य के चरण-दर्शन की उनकी और रूप की बड़ी इच्छा थी। महाप्रभु के पास एक पत्र भेजा गया, उसका उत्तर चैतन्य ने दिया कि जिस प्रकार दूसरे से प्रेम करने वाली नारी गृहकर्म में तत्पर रह कर अपने प्रियतम का चिन्तन करती है उसी प्रकार राजकार्य में व्यस्त रह कर भी आपको श्रीकृष्ण के चिन्तन-सुख का निरन्तर आस्वादन करना चाहिये। इस उत्तर को पाकर सनातन और उनके छोटे भाई रूप का प्रेमाकर्षण महाप्रभु के प्रति बढ़ने लगा, वे उनके दर्शन के लिये आकुल हो उठे। राजकार्य में उनका मन अधिक नहीं लगता था, हुसेन शाह के प्रधान मन्त्री सनातन तो महाप्रभु चैतन्य देव की राह देख रहे थे, वे उस समय की प्रतीक्षा कर रहे थे जब अत्यन्त दैन्यपूर्वक श्रद्धा और भक्ति से वे अपने आप को चैतन्य के चरणों पर निछावर कर देते। इधर महाप्रभु की भी दशा विलक्षण थी। वे दोनों भाइयों को अपनाने के लिये, प्रेमदान देने के लिये विशेष समुत्सुक हो उठे। महाप्रभु चैतन्य देव व्रजयात्रा के बहाने दोनों भाइयों को धन्य करने के लिये पुरी से रामकेलि ग्राम आ पहुँचे। महाप्रभु के आगमन से समस्त गंगातटीय वातावरण हरिनाम कीर्तन-ध्वनि से मधुर और रमणीय हो उठा। रात में सनातन दाँत में तिनका दबा कर और गले में कपड़ा लपेट कर रूप को साथ लेकर एकान्त में प्रभु से मिलने गये। नित्यानन्द और हरिदास को परिचय दिया। महाप्रभु चैतन्य ने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उनका प्रेम से आलिंगन किया और कहा कि मैं तो तुम्हारे ही लिये यहाँ आया हूँ। उन्होंने सनातन और रूप को अपने अन्तरंग प्रेमियों में स्वीकार कर लिया। महाप्रभु ने कहा कि हरि ही समस्त शास्त्रों के मूल हैं। निगम-आगम सब-के-सब श्रीकृष्ण की ही महिमा का बखान करते हैं। श्रीकृष्ण ही जगत के जीवनस्वरूप हैं। श्रीकृष्ण का भजन ही इस असार संसार में श्रेय है। तुम लोगों पर श्रीकृष्ण की अपार कृपा है। महाप्रभु ने वृन्दावन के लिये प्रस्थान करना चाहा पर सनातन ने उन्हें राजनैतिक अशान्ति और मार्ग की दुर्गमता का परिचय कराया। महाप्रभु चैतन्य देव ने वृन्दावन की यात्रा स्थगित कर दी। वे नीलाचल लौट आये।

महाप्रभु के पुरी लौटने के बाद सनातन की विरहाकुलता बढ़ने लगी। अभी उनकी अवस्था लगभग बत्तीस साल की थी, पर वैराग्य और संन्यास में ही उनका मन शान्ति का अनुभव करने लगा। रूप उनकी अनुमति से छुट्टी लेकर फतेहाबाद चले आये। उन्होंने अपने छोटे भाई अनुपम के पुत्र जीव के लिये थोड़ा-सा धन बचा कर शेष ब्राह्मणों को दे दिया। सनातन का मन राजकार्य से उचट गया। बादशाह के वे बहुत बड़े विश्वासपात्र थे इसलिये उनकी अरुचि से राजप्रबन्ध बिगड़ने की सम्भावना थी। उन्होंने बीमारी का बहाना बना कर राजसभा में जाना बन्द कर दिया। हुसेनशाह ने वास्तविकता का पता लगाया। बादशाह ने उनके घर स्वयं जाकर देखा कि वे कुछ पण्डितों के साथ भागवत पुराण पर चिन्तन कर रहे हैं, सनातन को कारागार में डाल दिया गया। पर सनातन को इस घटना से प्रसन्नता हुई, राजसभा और राजकार्य से अवकाश मिल गया। कारागार में प्रभुचिन्तन से भवरोग का नाश हो जायेगा—ऐसा उनका दृढ़ विचार था। रूप गोस्वामी उनके कारावास से बड़े चिंतित हुए। उन्होंने सनातन को पत्र लिखा कि मैं अनुपम को साथ लेकर प्रभु चैतन्य देव से मिलने व्रज जा रहा हूँ। मोदी के पास दस हजार रुपये रख दिये हैं, आवश्यकता के समय उनका उपयोग कर लीजियेगा। सनातन ने जेल दरोगा को अपने मन की स्थिति समझायी, कहा कि मैं चोर, डाकू या राज-अपराधी तो हूँ नहीं, तुम जानते ही हो कि राज्य में मुझे कितना

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गौरवपूर्ण पद प्राप्त है पर श्रीकृष्ण-चैतन्य की रूप माधुरी के लिये मेरे नयन प्यासे हैं, वे उनको देखना चाहते हैं, मैं तुम्हें वड़ी-से-वड़ी लौकिक सम्पत्ति दूंगा, मुझे मुक्त कर दो। सनातन ने एक भावमय करुण पद सुनाया, कारागार-अधिकारी का हृदय पिघल गया। सनातन उसे सात हजार रुपये पुरस्कार में देकर चुपके-से निकल गये। ईशान नामक सेवक उनके साथ था। वे पूर्ण प्रेमावेश में एक दीन-हीन की तरह प्रभु से मिलने चल पड़े। ईशान ने बिना सनातन को बताये ही आठ मोहरों को पाथेय रूप में रख लिया था। गंगा-पार करने पर सनातन का हृदय आनन्दमग्न हो गया। वे पातड़ा ग्राम में आये, ग्राम-निवासी भौमिकों ने उनका विशेष आदर किया। सनातन को वड़ा आश्चर्य हुआ कि मेरे पास तो कुछ भी नहीं है, पर ये भौमिक मेरा इतना सम्मान क्यों कर रहे हैं? उन्होंने ईशान से पूछा कि तुम्हारे पास कुछ है तो नहीं? ईशान के पास आठ मोहरें थीं, एक मोहर छिपाकर उसने सात ही वतलायीं; सनातन ने सातों मोहरें भौमिकों को दिलवा दीं। वे चल पड़े। रास्ते में ईशान ने अपने पास वाली मोहर की वात बता दी। सनातन ने सोचा कि यह सेवक ईश्वर की कृपा में कम विश्वास रखता है, उन्होंने उसे घर लौटा दिया और वे अकेले चलने लगे। हाजीपुर आते-आते शाम हो गयी, सूर्य डूब रहे थे, अस्तकालीन नीले नभ की लालिमा वृक्षों के पत्तों से छन कर धरती से शरण-याचना कर रही थी। सनातन एक वृक्ष के नीचे वैठ कर मस्ती से श्री कृष्णनाम का कीर्तन करने लगे। हाजीपुर में उनके वहनोई श्रीकान्त ठहरे हुए थे। वे हुसेन शाह के लिये घोड़ा खरीदा करते थे। सनातन का परिचित स्वर सुनकर वे वृक्ष के नीचे आये। उन्होंने एक गौरवर्ण तथा स्वर्ण-कान्ति सम्पन्न पुरुष को देखा, उनकी दाढ़ी वढ़ी हुई थी, नयनों से अश्रुपात हो रहा था। उन्होंने सनातन को पहिचाना, गले लगा लिया। सनातन और श्रीकान्त का मिलन ऐसा लगता था मानों ऐश्वर्य और दारिद्र मिल रहे हैं। श्रीकान्त का वैभव सनातन की दिव्य भगवद्-भक्ति के सामने नीरस हो गया। उन्होंने सनातन से घर लौट चलने को कहा। सनातन ने कहा कि मैं अपने घर ही जा रहा हूँ, अपने प्रभु से मिलने के लिये निकल पड़ा हूँ, अव संसार मुझे भूल में नहीं डाल सकता है। श्रीकान्त ने पाथेय के रूप में कुछ देना चाहा पर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सनातन ने स्वीकार नहीं किया। अन्त में श्रीकान्त का मन रखने के लिये एक दुशाला स्वीकार कर लिया पर वह बहुत कीमती था। सनातन के लिये बोझा था। जिन्होंने करोड़ों की सम्पत्ति पर कृष्ण चैतन्य की प्रसन्नता के लिये लात मार दी उनके लिये एक कीमती दुशाले का महत्व ही क्या था? सनातन प्रभु चैतन्य देव की खोज में काशी पहुँच गये। विश्वनाथ की पुरी के नरनारी बालक सब-के-सब हरि-नाम की सरस कीर्तन-ध्वनि से प्रमत्त थे। चैतन्य महाप्रभु चन्द्रशेखर के घर पर कीर्तन कर रहे थे। असंख्य प्राणी कीर्तन में सम्मिलित थे, उनका अंगना भीड़ से भरा हुआ था, ऐसा लगता था मानों काशी के समस्त पुण्य एकत्र हो गये हों। सनातन चन्द्रशेखर के दरवाजे पर बैठ गये। महाप्रभु ने चन्द्रशेखर को आज्ञा दी कि बाहर जो वैष्णव बैठे हुए हैं उन्हें सम्मानपूर्वक ले आइये। चन्द्रशेखर ने प्रभु से निवेदन किया कि बाहर कोई वैष्णव सज्जन नहीं हैं, एक दरवेश बैठे हुए हैं। महाप्रभु ने कहा कि उन्हीं को बुला लाइये। सनातन ने यह सुन कर कि प्रभु ने मुझे भीतर बुलाया है बड़ी प्रसन्नता का अनुभव किया। वे बार-बार चैतन्य देव की कृपा और प्रेम का स्मरण करने लगे। प्रभु ने उन्हें देखकर आलिंगन किया। ऐसा लगता था मानों भगवान् ने भाव को अपना लिया है; भक्त के हृदय को अपना निवास-स्थान बना लिया है। चैतन्य देव के स्पर्श से सनातन गोस्वामी के शरीर में दिव्यता की संजीवनी लहरा उठी। चन्द्रशेखर तथा अन्य भक्तगण आश्चर्य-चकित हो गये कि महाप्रभु एक मुसलमान दरवेश को छाती में भर रहे हैं पर उन्हें पता नहीं था कि वे ब्राह्मणशिरोमणि, वैराग्यराजेश्वर सनातन गोस्वामी हैं। चैतन्य महाप्रभु ने उनका परिचय कराया तो लोग उनकी चरण-धूलि के लिये लालायित हो उठे। वे साकार वैराग्य थे। मुण्डन करवा कर सनातन ने गंगास्नान किया और प्रभु के शिष्य तपन मिश्र से एक फटी धोती माँग कर दो टुकड़े किये, एक टुकड़ा पहन लिया और दूसरा कन्धे पर रख लिया। वे प्रभु चैतन्य देव के समीप बैठ गये, सोचने लगे कि मेरे ऐसे पापी और विषयी भोगी को क्या कृष्ण-प्रेम मिलेगा, क्या मुझे महाप्रभु अपनायेंगे? महाप्रभु उनकी ओर बार-बार देख रहे थे, कन्धे पर श्रीकान्त का दिया दुशाला था। सनातन ने सोचा कि महाप्रभु की दृष्टि में दुशाला खटक रहा है,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उन्होंने उसे एक वैरागी को देकर उसकी गुदड़ी कन्धे पर रख ली। महाप्रभु उनके वैराग्य से बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उनको श्रीकृष्णतत्त्व का रहस्य समझाया। वे काशी में दो मास तक महाप्रभु से भगवत्तत्त्व का रहस्य समझते रहे। चैतन्य देव ने बताया कि श्रीकृष्ण ही परम-तत्त्व हैं। जीव का उनके साथ प्रभु और सेवक का नित्य सम्बन्ध है। जीव श्रीकृष्ण के सुख में अपना सुख मानता है—यही प्रयोजन अथवा कृष्ण-प्रेम है। चैतन्य महाप्रभु ने रूप और अनुपम के पास सनातन को वृन्दावन भेज दिया। वे वृन्दावन में वृक्ष के नीचे रहते थे और मधुकरी से काम चलाते थे। रोटी जमीन में गाड़ देते थे, और दूसरे दिन उसी को खाते थे। वे वैराग्य की पराकाष्ठा पर पहुँच गये। उन्होंने वृन्दावन में रहकर भक्तिपरक ग्रन्थ लिखे, लुप्त तीर्थों का उद्धार किया। उनके वृन्दावन पहुँचने के पहले रूप और अनुपम ने चैतन्य महाप्रभु से मिलने के लिये पुरी की यात्रा की। लकड़ी बेचकर सनातन भोजन का प्रबन्ध करते थे पर बाद में भिक्षा से ही काम चलाया। उन्होंने वृन्दावन में रह कर श्रीकृष्ण के लीलास्थानों का पता लगाया। चैतन्य देव का विरह उनके लिये असह्य था। उन्होंने महाप्रभु के दर्शन के लिये नीलाचल-यात्रा का निश्चय किया और महाप्रभु से मिलने चल पड़े। झार-खण्ड से होते हुए सनातन पुरी पहुँच गये। झारखण्ड के दूषित जलपान से उनके शरीर में कोढ़ हो गया था। चैतमास था। सनातन बड़े हरिदास की कुटिया पर ठहर गये। प्रभु नित्य हरिदास से मिलने आया करते थे। सनातन ने महाप्रभु को देखकर साष्टांग प्रणाम किया। चैतन्य देव उन्हें आलिंगन करने के लिये दौड़ पड़े। सनातन ने अपने कोढ़ की ओर संकेत किया, दूर हट गये पर चैतन्य तो प्रेमोन्मत्त थे। उन्होंने सनातन से कहा कि मुझे दिव्य सुगन्ध का अनुभव हो रहा है। प्रभु उन्हें बहुत प्यार करते थे। जेठ मास में महाप्रभु यमेश्वर टोटा गये हुए थे। सनातन उनसे मिलने गये, प्रभु ने उनका बार-बार आलिंगन किया। सनातन को बड़ी आत्मग्लानि हुई। उन्होंने रथ-यात्रा के समय जगन्नाथ जी के रथ के नीचे दब कर प्राण देने का निश्चय किया, सोचा कि पापी कोढ़मय शरीर का इस तरह अन्त हो जायेगा तो अच्छा ही है। महाप्रभु को उनके निश्चय का पता चल गया। उन्होंने सनातन को समझाया कि आत्मघात करने से कृष्णप्रेम की

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्राप्ति नहीं होती है। कुछ दिन पुरी में निवास कर महाप्रभु की आज्ञा से भक्तिग्रन्थों के प्रणयन तथा रूप को श्रीकृष्ण-भक्ति के प्रचार-कार्य में सहायता देने के लिये उन्होंने व्रज की यात्रा की। वे वृन्दावन के चिन्मय सौन्दर्य पर रीझ गये। एक वृक्ष के नीचे निवास स्थिर कर श्रीकृष्ण भगवान् का भजन करने लगे। उनके नयनों के सामने श्रीकृष्ण का रूप नाचने लगा। वे 'मदनटेर' स्थान पर झोपड़ी वना कर रहनें लगे। रूप गोस्वामी भी इसी समय पुरी से आ पहुँचे। दोनों भाई श्रीकृष्णप्रेम में विह्वल थे। सनातन ने तीव्र वैराग्य का व्रत लिया। वे 'श्रीकृष्ण, गोपाल, हरे मुकुन्द, गोविन्द, नन्दकिशोर, यशोदा-तनय, वल्लवीजीवन, राधिकेश आदि भगवन्नामों का निरन्तर गान कर उन्मत्त रहा करते थे। भगवान् के साक्षात् दर्शन के लिये अभिलाषा करते रहते थे। वे सोचा करते थे, बृहद्भागवतामृत में उनकी वाणी साक्षी है, उक्ति है :

सा वन्यभूषा स च वेणुवाद्य
माधुर्यपूरोऽखिलचित्तहारी,
तद्गोपयोषिद्गणमोहनञ्च
मया कदास्यानुभविष्यतेऽद्धा

कि कृष्ण के सुन्दर वनवेष, वेणुमाधुरी—जिससे जगत् का चित्त-हरण हो गया था तथा व्रजसुन्दरी मोहित हो गयी थीं— आदि लीला का मुझे कव दर्शन होगा। उन्हें कृष्ण की सारी व्रज-लीलाओं की सरस अनुभूति होती रहती थी। कभी वे चीरहरण की बात सोचते थे तो कभी यज्ञपत्नी उद्धार, गोवर्धनपूजन, रासविलास आदि की भक्तिमयी करुणा, पवित्रता और दिव्यता में निमग्न हो जाते थे। इस प्रकार उनका जीवन व्रज में बीतने लगा। वृन्दावन उनका आराध्य धाम वन गया। उनका जीवन वैराग्य का अप्रतिम प्रतीक बन गया। वे अपने पास एक मिट्टी का करवा और लंगोटी रखते थे। वृक्ष के नीचे अधिकांश समय बिताते थे, कभी-कभी झोपड़ी में भी रहते थे। उनके व्रज-जीवन की कुछ घटनायें विशेष उल्लेख्य हैं।

उनमें वैराग्य और भक्ति का अनुपम समन्वय दीख पड़ता है। सनातन गोस्वामी नित्य मधुकरी मांगने मथुरा जाया करते थे। एक चौबा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इन के घर भी जाते थे, वहाँ नित्य मदनमोहन जी की मूर्ति का दर्शन करते थे। मदनमोहन जी में उनकी विशेष निष्ठा हो गयी। एक दिन चौबाइन के घर के सामने उन्हें लड़कों के साथ खेलते हुए मदन मोहन जी का साक्षात् दर्शन हुआ। प्रभु की काली-काली अलकावली कन्धे तक लटक रही थी, श्याम शरीर धूलिधूसरित था, कटि में सोने की करधनी और चरणों में पैंजनी की शोभा मनमोहिनी थी। श्यामसुन्दर ने सनातन को धन्य कर दिया, वे प्रभु के प्रेमोन्माद में प्रमत्त हो गये। रात को स्वप्न में श्रीकृष्ण नवघनश्यामशरीर मदनमोहन ने आदेश दिया कि मुझे अपनी कुटिया में ले चलो। सनातन सोचने लगे कि मेरे पास तो प्रभु के रागभोग के लिये कुछ भी नहीं है, मैं तो बिना नमक की रोटी खाता हूँ। प्रभु के चरणों में उन्होंने अपनी विवशता निवेदित की। प्रभु को उनके वैराग्य से प्रसन्नता हुई। इतना ऊँचा वैराग्य था कि प्रभु अतिथि बनना चाहते हैं और भक्त को संकोच होता है। श्यामसुन्दर ने चौबाइन को भी स्वप्न दिया कि मुझे सनातन की कुटिया में पधरा दो। सनातन ने मदनमोहन जी को अपनी कुटिया में प्रतिष्ठित किया। भिक्षा माँग कर सूखी रोटी का भोग रखते थे। भगवान् ने नमक की ओर संकेत किया; वे तो सर्वस्वादमय हैं, पर लीला के वशीभूत होकर सनातन गोस्वामी के वैराग्य के नियम को कसौटी पर कसना चाहा। सनातन ने निस्संकोच कहा कि मैं दूसरों के घर से नमक माँग कर अपने वैराग्य का नियम शिथिल नहीं करूँगा। यदि यह सूखी रोटी पसन्द न आती हो तो किसी दूसरे भक्त का दरवाजा देखना चाहिये। भक्त की विजय हो गयी। इसी समय मुलतान नगर के व्यवसायी कृष्णदास की रत्नों से भरी नौका वृन्दावन के निकट यमुना जी में डूबने लगी। जिनके नाम से असंख्य प्राणियों की जीवन-नौका भवसागर से पार हो जाती है उन श्रीमदनमोहन कृष्णचन्द्र ने एक छोटे-से बालक के रूप में प्रकट होकर व्यवसायी से कहा कि वृन्दावन के महात्मा सनातन गोस्वामी के नाम-स्मरण से नौका बच जायेगी। व्यवसायी ने सनातन के नाम का कीर्तन किया, नौका बच गयी। कृष्णदास ने सनातन से सारी स्थिति बतायी तो प्रेमालिंगन से उन्होंने व्यवसायी को धन्य कर दिया और कहा कि तुम धन्य हो, तुम्हें मेरे प्रियतम भगवान् नन्दनन्दन का दर्शन हो गया। व्यवसायी के अनुरोध

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

से मदनमोहन जी के मन्दिर का निर्माण हुआ तथा रागभोग की व्यवस्था हो गयी।

एक बार वे व्रज-मण्डल कि परिक्रमा कर रहे थे। वे प्रभु के भजन-भाव में इतने आसक्त हो गये की उनके लिये मधुकरी माँगने के लिये जाना असह्य हो गया। उनके नयन भगवान् के रूप-दर्शन के लिये आकुल थे। वे नन्दगांव में मानसरोवर पर तीन दिन तक भूखे पड़े रहे। भगवान् के अतिथि को भूखा रहना पड़े—यह असम्भव था। नन्दनन्दन ने गोप बालक का वेष बनाकर उन्हें दूध पिलाया, भोजन खिलाया। उनकी रूप-माधुरी पर सनातन आसक्त हो गये। प्रभु ने स्वप्न में बताया कि गोप-बालक के वेष में मैं था। निस्सन्देह भगवान् भक्त के गुणों के अधीन होकर दृष्टिगोचर हो जाते हैं, उनका दर्शन-मन के संयोग से होता है, नेत्रों को तो देखने का अभिमान मात्र रहता है। इस विषय में बृहद्भागवतामृत में गोस्वामी सनातन देव की उक्ति है :

'तस्य कारुण्यशक्त्या वा दृश्योऽस्त्वपि बहिर्दृशोः।
तथापि दर्शनानन्दः स्वयोनौ जायते हृदि।'

यद्यपि श्रीभगवान् की कृपा से उनके साक्षात् दर्शन नेत्रों को होते हैं तथापि दर्शन के आनन्द को तो हृदय ही अनुभव करता है।

गोवर्धन-निवास-काल में सनातन गोस्वामी नित्य नियमपूर्वक गिरिराज की परिक्रमा किया करते थे। वे उस समय बहुत बूढ़े हो चले थे। इसलिये परिक्रमा में बड़ी कठिनाई होती थी। श्रीभगवान् ने गोपबालक के रूप में प्रकट होकर उन्हें एक शिलाखण्ड दिया, और कहा कि इस पर श्रीकृष्ण के चरणचिह्न अंकित हैं, इसकी परिक्रमा से गिरिराज की परिक्रमा हो जायेगी। निस्सन्देह प्रभु भक्तों के अपने हैं, वे भक्तों के लिये सबकुछ करते हैं, वे परम प्रेमी हैं, विश्वासरूप हैं। सनातन गोस्वामी रातदिन प्रभु के विरह में तल्लीन रहते थे। भगवद्विरह के सम्बन्ध में महात्मा सनातन ने बृहद्भागवतामृत में एक स्थल पर कहा है :

'मन्येऽहमेवं परमप्रियेभ्य
स्तेभ्यः प्रदेयस्य सुदुर्लभस्य।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

द्रव्यस्य कस्यापि समर्पणार्हो।
वदान्यमौलेर्व्यवहार एषः।'

उनकी उक्ति है कि मेरा मत तो यह है कि श्रीकृष्ण सब दानियों में श्रेष्ठ हैं, उनका अपने प्रेमियों को विरह प्रदान करना एक प्रकार का अनुष्ठान है जो दुर्लभ द्रव्य अथवा प्रेमसमर्पण करने के लिये किया जाता है। सनातन गोस्वामी विरहसिद्ध भगवत्प्रेमी थे।

एक बार सनातन गोस्वामी को एक पारस का टुकड़ा मिला। उन्होंने यमुना किनारे उसे धूलि में छिपा दिया। एक ब्राह्मण ने अपनी कन्या के विवाह के लिये शिव जी से धन की याचना की, अनुष्ठान किया। शिव जी ने स्वप्न में आदेश दिया कि वृन्दावन में महात्मा सनातन से मिलने पर आवश्यकता पूरी हो जायेगी। ब्राह्मण ने सनातन से भेंट की। उन्होंने पारस का पता दिया। पारस को धूलि के नीचे देख कर ब्राह्मण को ज्ञान हो गया कि महात्मा सनातन के पास इससे भी अमूल्य धन है; यदि ऐसा न होता तो सनातन इसे फेंक क्यों देते? वह उनके चरणों पर गिर पड़ा। क्षमा माँगी, सनातन ने ब्राह्मण का आलिंगन किया, कृष्णप्रेमरूपी धन का दान दिया।

सनातनने आजीवन व्रज में ही निवास किया, अनेक भक्ति-ग्रन्थ लिखे। वे गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के विजयस्तम्भ थे। उन्होंने चैतन्य महाप्रभु के अचिंत्य भेदाभेद दर्शन का भक्तिभाष्य किया। श्रीराधा-कृष्ण के प्रेम की रसानुभूति से लोकजीवन–जनजीवन को समृद्ध कर चेतना प्रदान की। अचिंत्य, अनन्त, शक्तिशाली परतत्व के शक्तिसमूह तथा शक्तिपरिणत वस्तु समूह के साथ परतत्व का जो अचिंत्य युगपत् भेद और अभेद से युक्त सम्बन्ध है वही अचिंत्य भेदाभेदवाद है, इसी सम्बन्ध को राधाकृष्ण की भक्ति में संप्लावित करने का श्रेय सनातन गोस्वामी को है। ज्ञानसहित मोक्ष के परित्याग से भगवत्प्रेम में आसक्ति ही भक्ति है– ऐसी सनातन गोस्वामी की मान्यता दीख पड़ती है। जीव स्वयं अणु सच्चिदानन्दस्वरूप है, परमसुख का अनुभव वह अपनी अणुता के अनुरूप ही करता है। भगवान् की कृपा से– भक्ति से मोक्ष-अवस्था से परे होकर जीव परमानन्द का अनुभव करता है। जीव का स्वरूप श्रीभगवान के सदृश सच्चिदानंद होने से

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अभेद है, उनका अंश स्वरुप होनेसे भेद है, इसलिये जीव मुक्त होने पर भी भगवान से भिन्न ही रहता है। सनातन गोस्वामी के मत से

'सर्वेषां साधनानां तत्साक्षात्कारो हि सत्फलं।
तदैवामूलतो माया नश्येत् प्रेमापि वर्द्धते।'

—सब साधनों का श्रेष्ठ फल भगवान् का साक्षात् दर्शन है। दर्शन के प्रभाव से माया जड़से नष्ट हो जाती है और भगवत् प्रेम बढ़ जाता है। सनातन ने कृष्णप्रेम का मूल अधिष्ठान चैतन्य महाप्रभु को स्वीकार किया, उन्होंने चैतन्य और श्रीकृष्ण में तनिक भी भेद नहीं किया। उनकी वृहद्भागवतामृत में चैतन्य-स्तवन है:

'जयति निजपदाब्जप्रेमदानावतीर्णो
विविधमधुरिमाब्धिः कोऽपि कैशोरगन्धिः।
गतपरमदशान्तंयस्य चैतन्यरूपा
दनुभवपदमाप्तं प्रेमगोपीषुनित्यम्।'

—एक अनिर्वचनीय नित्य किशोर हैं, वे विविध-माधुरी के समुद्र हैं, चरण-कमल के प्रेमदान के लिये उन्होंने अवतार लिया है। उनकी जय हो। वे ही चैतन्यरूप में अभिव्यक्त हुए हैं तथा उनकी कृपा से दीन-हीन पतितों ने भी अलौकिक गोपी-प्रेम का अनुभव किया है। गोपी-प्रेम की रसानुभूति पर ही गौड़ीय भक्ति का राजप्रासाद अवस्थित है। श्रीराधाकृष्ण की अभेदता ही, तदात्मता ही गौड़ीय भक्ति का प्राण है। यह निर्विवाद तथ्य है कि श्रीकृष्ण की भक्तिसुधा का पान करने से देह और दैहिक कर्मों का विस्मरण हो जाता है, पंचभौतिक शरीर सच्चिदानन्दस्वरूप हो जाता है। सनातन का कथन है:

कृष्णभक्तिसुधापानाद्देहदैहिक विस्मृतेः।
तेषां भौतिकदेहेऽपि सच्चिदानन्दरूपता॥'

श्रीकृष्ण के चरणारविन्द की मकरन्दस्वरूपा भक्ति ही साध्य है। ज्ञान, कर्म, वैराग्य की आशा छोड़ने पर श्रीकृष्ण की कृपा से ही उनकी चरण-भक्ति प्राप्त होती है। भक्तिका परम फल भगवत्प्रेम है। सनातन गोस्वामी ने अपने बृहद्भागवतामृत ग्रन्थ में विस्तार से भगवान के भक्तिरस का वर्णन किया है, श्रीकृष्ण की लीलानुभूति का सरस साहित्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रदान किया है। इस ग्रन्थ में श्री राधाकृष्ण के रूप, रस, सौन्दर्य, माधुर्य तथा भक्तितत्व का श्रीमद्भागवत् के आधार पर सरस वर्णन किया गया है। महात्मा सनातन की वाणी है :

'भगवद्भक्तिशास्त्राणामयं सारस्य संग्रहः।
अनुभूतस्य चैतन्यदेवे तत्प्रियरूपतः।'

बृहद्भागवतामृत समस्त भक्ति-शास्त्रों का सारभूत संग्रह है। मैंने श्रीकृष्ण चैतन्य की सेवा-अनुभूति से इसको ऐसा रूप देने का सौभाग्य पाया है।

सनातन गोस्वामी लगभग सम्वत् १६४८ वि. के पहले भगवान के नित्य धाम में चले गये। सनातन गोस्वामी और उनके छोटे भाई रूप गोस्वामी तथा भतीजे जीव गोस्वामी ने कृपापूर्वक जीवमात्र को श्रीकृष्ण की प्रेमसुधा में मग्न कर दिया। सनातन गोस्वामी वैराग्य के स्वरूप थे। उन्होंने बड़े-से बड़े सांसारिक वैभव की उपेक्षा कर चैतन्य महाप्रभु की कृपा से कृष्ण–रस का अनुभव किया।

रचना

बृहद्भागवतामृत, बृहद् वैष्णवतोषिणी, कृष्णलीलास्तव, हरिभक्ति विलास आदि महात्मा सनातन गोस्वामी की प्रसिद्ध रचनायें हैं।

वाणी

'श्रीराधिकाप्रभृतयो नितरां जयन्ति
गोप्यो नितान्त भगवत्प्रियतोप्रसिद्धाः।
यासां हरौ परमसौहृदमाधुरीणां
निर्वक्तुमीषदपि जातु न कोऽपि शक्तः॥'

राधिका आदि व्रज-गोपियों की जय हो, वे श्रीकृष्ण की नित्य प्रेयसी हैं, उनकी श्रीकृष्ण विषयक प्रेम माधुरी का कोई भी वर्णन नहीं कर सकता है।

—बृहद् भागवतामृत।

'जयति जयति वृन्दारण्यमेतन्मुरारेः
प्रियतममतिसाधुस्वान्तवैकुण्ठवासात्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रमयति स सदागाः पालयन् यत्र गोपीः
स्वरितमधुरवेणुर्वर्द्धयन् प्रेमरासे ॥'

वृन्दावन की जय हो, वह भक्तों के हृदय-कमल और वैकुण्ठ से भी अधिक श्रीकृष्ण को प्रिय है। उसमें वे गाय चराते हैं और प्रेमरास में मुरली बजा कर गोपियों को सुख देते हैं।

—बृहद् भागवतामृत।

'नमः श्रीगुरुकृष्णाय निरुपाधिकृपाकृते।
यः श्रीचैतन्यरूपोऽभूत तन्वन्प्रेमरसं कलौ॥'

मैं श्रीकृष्णस्वरूप अपने गुरु को प्रणाम करता हूँ, वे अकारण कृपालु हैं और कलियुग में प्रेमरस के विस्तार के लिये चैतन्यरूप से प्रकट हुए हैं। —बृहद् भागवतामृत।

'तत्तविनोदामृतसागरान्तरं
विभेत्यलं मे रसनावगाहितुम्।
सदैव तत्तन्मधुरप्रियापि यत्
कर्मण्य शक्ये न जनः प्रवर्त्तते।'

श्रीकृष्ण के लीलामृतसागर को पार करने में मेरी रसना भयभीत होती है, वह तो उसका निरन्तर पान करना चाहती है। यद्यपि प्रत्येक प्राणी अपनी प्रियवस्तु का सदा आस्वादन करना चाहता है तथापि शक्ति न होने से वह किस प्रकार आस्वादन कर सकता है?

—बृहद् भागवतामृत।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महात्मा रूप गोस्वामी

मुखारविन्दनिस्यन्दमरन्दभरतुन्दिला।
ममानन्दं मुकुन्दस्य सन्दुग्धां वेणुकाकली।
मुकुन्द के मुख कमल से निकले हुए मकरन्द बिन्दुओं से
भरी हुई वंशी की गुंजार मेरी आनन्द-वृद्धि करे।

—लघु भागवतामृत

महात्मा रूप गोस्वामी महाप्रभु चैतन्य देव के अचिंत्यभेदाभेद-सिद्धान्त के मौलिक भाष्यकार थे, उच्च कोटि के विद्वान् और परम भागवत तथा विरक्त कृष्णभक्त थे, रसिक सन्त थे। बड़ी से बड़ी समृद्धि और भोगविलास तथा विषय-सुख पर लात मार कर चैतन्य देव की चरण-धूलि की एक कणिका के सहारे जीवन बिताने वालों में महात्मा रूप गोस्वामी और उनके अग्रज सनातन गोस्वामी के नाम अग्रगण्य हैं। रूप गोस्वामी मूर्तिमान् वैराग्य थे, साकार तप थे। उनकी भगवद् भक्ति ने वृन्दावन की दिव्यता और भगवत्ता का संरक्षण किया। कृष्ण-भक्ति के विकास-क्षेत्र में वे बहुत बड़े ऐतिहासिक आवश्यकता थे। रूप गोस्वामी चैतन्य महाप्रभु के समकालीन थे। लगभग चार सौ साल पहले की बात है, बंगाल के सिंहासन पर हुसेनशाह आसीन थे, उनकी राजधानी गौड़ नामक नगरी थी। रूप गोस्वामी हुसेनशाह के बहुत बड़े विश्वासपात्र थे, बादशाह ने उन्हें दबीर खास की उपाधि से सम्मानित किया था। रूपने अपने बड़े भाई सनातन साकर मल्लिक की सहायता से योग्यतापूर्वक राज्य का प्रबन्ध किया। उन दिनों दिल्ली की केन्द्रीय सत्ता कमजोर थी, प्रान्तीय शासक अपने आप को बादशाह घोषित कर अपने प्रान्तों में स्वतन्त्र राजसत्ता स्थापित कर रहे थे। इसी प्रकार गौड़ बंगाल भी विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में एक स्वतन्त्र राज्य था। देश में राजनैतिक एकता का ह्रास हो रहा था। समाज वैष्णव सम्प्रदायों के भगवद्भक्ति-प्रचार से प्रभावित

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

था। रूप गोस्वामी ने भगवद्भक्ति-प्रचार में चैतन्य महाप्रभु को सहयोग दिया। उनके बड़े भाई सनातन और छोटे भाई अनुपम के पुत्र जीवगोस्वामी ने भी इस पवित्र कर्म का उत्तरदायित्व निवाहा। वृन्दावन में चैतन्य महाप्रभु की संकीर्तन-माधुरी का सन्देश पहुँचाने में इन तीन महात्माओं का विशेष हाथ था। रूप ने महाप्रभु के आदेश से भक्ति-परक ग्रन्थों की रचना की तथा वृन्दावन के गुप्त और लुप्त तीर्थों को खोज निकाला।

रूप गोस्वामी के पूर्वज परम प्रतिष्ठित, समृद्ध और ईश्वर-भक्त थे। उनका जीवन भोग और योग का पुण्यमय समन्वय था। बंगाल के मालदह जिले में भगवती भागीरथी के तट पर रमणीय कुंजों और उपवनों से समलंकृत रामकेलि ग्राम के एक सुन्दर हवेली में रूप और सनातन निवास करते थे। उनके पिता कुमार कर्णाटराज सर्वज्ञ के वंशज थे। उनके पूर्वज कर्णाटक के रहने वाले थे। रूप के प्रपितामह पद्मनाभ कर्णाटक छोड़ कर नवहट्ट चले आये। उनके छोटे पुत्र मुकुन्द देव के आत्मज कुमार देव रूप के पिता थे। कुमार देव ने नवहट्ट छोड़ कर फतेहाबाद में अपना निवास-स्थान स्थिर किया था। संवत् १५४५ वि में रूप गोस्वामी का जन्म हुआ। रूप की माता का नाम रेवती देवी था, वे मधाईपुर के हरिनारायण की कन्या थीं। रूप को माता-पिता से बचपन में सदाचार और धर्माचरण तथा भगवन्निष्ठा की अच्छी शिक्षा मिली थी।

नवहाटी के प्रसिद्ध पण्डित सर्वदानन्द उनके शिक्षा-गुरु थे और उनसे उन्होंने संस्कृत भाषा का ज्ञान प्राप्त किया। सप्तग्राम के फकरुद्दीन ने उनको फारसी की शिक्षा दी थी। प्रसिद्ध कृष्णभक्त मालाधर वसु के सम्पर्क में उन्होंने गौड़ेश्वर के दरबार में अपने बड़े भाई के साथ विशेष राजसम्मान प्राप्त किया। ...वे विक्रम की सोलहवीं शताब्दी के तीसरे चरण में विद्यमान थे। यद्यपि उन्हें प्रचुर राजकीय ऐश्वर्य प्राप्त था, तथापि किसी बहुत बड़े अभाव की प्रतीति हो रही थी। गौड़ बंगाल में वे बादशाह के दाहिने हाथ थे पर उनका सिर अध्यात्म के चरणों पर प्रणत होने के लिये आकुल था। उनकी शास्त्र-ग्रन्थों में बड़ी निष्ठा थी। साधु-सन्तो के सम्पर्क से लाभान्वित होने के लिये रूप गोस्वामी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सदा उत्सुक रहते थे। चैतन्य महाप्रभु नीलाचल में अपने परमपवित्र हरिनाम-संकीर्तन-प्रचार से असंख्य प्राणियों का जीवन धन्य और कृतार्थ कर रहे थे। जगन्नाथ देव की लीलाभूमि पर कृष्णभक्ति का रस-पारावर उमड़ रहा था। रूप और सनातन दोनों भाई महाप्रभु चैतन्य देव से मिलने के लिये बहुत उत्सुक थे। पूर्व जन्म के संस्कारों और पुण्यों के परिणामस्वरूप चैतन्य महाप्रभु के चरणों में दोनों भाइयों की बड़ी श्रद्धा थी। उन्होंने चैतन्य को पत्र लिखा, दर्शन देने की याचना की। महाप्रभु ने पत्र का उत्तर दिया:

'परव्यसनिनी नारी व्यग्रापि गृहकर्मसु,
तमेवास्वादयत्यन्तर्नवसङ्गरसायनम्।'

पर पुरुष पर अनुरक्त रहने वाली स्त्री जिस प्रकार अपने प्रेमी के प्रति अनुराग रख कर भी घर के काम-काज में लगी रहती है उसी प्रकार राजकार्य में रहते हुए भी आप भगवत्प्रेमानंद-रसास्वादन में संलग्न रहिये। कुछ दिनों के बाद महाप्रभु चैतन्य देव ने वृन्दावन-यात्रा का निश्चय किया। उन्होंने नीलाचल से गौड़ होते हुए वृन्दावन जाने का कार्यक्रम बनाया। महाप्रभु रूप और सनातन से मिलने के लिये उत्सुक थे। उन्होंने एक रात रामकेलि ग्राम में ठहरने का विचार किया। वे कीर्तन करते हुए अपने भक्तों के साथ गौड़ में गंगातट पर रूप-सनातन को धन्य करने आ पहुँचे। हरिनाम-संकीर्तन की तुमुल मधुर ध्वनि से समस्त गौड़ गूंज उठा। असंख्य प्राणी कृष्णानुराग-मद से प्रमत्त होकर महाप्रभु का अनुगमन कर रहे थे। हुसेन शाह इस विशाल भीड़ से भयभीत हो गया। उसने अपने प्रधान कर्मचारी साकर मल्लिक और दबीर खास से वास्तविकता का पता लगाया; उसे भय था कि कहीं गौड़ पर शत्रु ने आक्रमण न कर दिया हो। दोनों भाइयों ने चैतन्य महाप्रभु का अभी दर्शन नहीं किया था, वे उनके रूप से परिचित न थे पर उनके चरणों में दोनों की बड़ी भक्ति थी। दोनों ने बादशाह को समझाया कि भगवान् संन्यासी का वेष धारण कर स्वयं धरती पर जीवों के कल्याण के लिये चैतन्य महाप्रभु के रूप में उतर आये हैं। बादशाह को उनकी बातों पर विश्वास हो गया पर इधर महाप्रभु रूप और उनके बड़े भाई से मिलने के लिये उतावले हो रहे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

थे। दोनों भाई आधी रात की नीरवता में अत्यन्त दैन्यपूर्वक महाप्रभु से मिलने चले। दोनों ने दाँतो के तले तिनके दवाये थे और गले में कपड़े लपेट लिये थे। भगवती भागीरथी का जल कल-कल करता हुआ वह रहा था, रात अपनी जवानी पर थी। सन्नाटा का राज्य था। महाप्रभु श्रीकृष्ण के ध्यान में मग्न थे। नित्यानन्द और महात्मा हरिदास प्रभु की सेवा में जाग रहे थे। उन्होंने प्रभु को रूप तथा उनके अग्रज सनातन के आगमन की सूचना दी। महाप्रभु ने उनको प्रेम-दान दिया। दोनों भाइयों ने शरणागति ग्रहण की, —कहा कि देव, हम लोगों ने आज तक अपना जीवन भोग में बिताया है, अनेक पाप किये हैं, भगवत्‌रस की प्राप्ति की बड़ी इच्छा है। महाप्रभु ने उन्हें दीक्षा दी। और उनके नाम रूप और सनातन रखे। दीक्षा के पूर्व साकर मल्लिक का नाम अमर था, और दबीर खास संतोष के नाम से प्रसिद्ध थे। महाप्रभु ने उनको अपना लिया। रूप ने महाप्रभु के चरणों में सर्वस्व-समर्पण कर दिया। उन्हें भोग से वैराग्य हो गया। महाप्रभु चैतन्य देव ने वृन्दावन की यात्रा स्थगित कर दी। वे पुरी लौट आये।

रूप के मन की स्थिति विचित्र हो गयी। राजकार्य उन्हें काटने लगा। राजमहल उन्हें नरक-सा दीख पड़ने लगा। विषय-भोग के प्रति उनके मन में पूर्ण घृणा पैदा हो गयी। उन्हें संसार की किसी भी वस्तु में सुख न दीख पड़ा। हृदय में वैराग्य का सागर उमड़ आया। चैतन्य-चरण-चिन्तन की माधुरी के लिये उन्होंने त्यागरूपी धन में आसक्ति और अभिरुचि प्रकट की। सनातन की अनुमति से नाव पर अपार धन और बहुमूल्य वस्तुएँ लाद कर वे फतेहाबाद के लिये चल पड़े। रूप और सनातन दोनों निस्सन्तान थे। रूप ने अपने छोटे भाई परम रामभक्त अनुपम के पुत्र जीव गोस्वामी को थोड़ा-सा धन देकर शेष ब्राह्मणों को दे दिया। वे वैराग्यपूर्वक अपने दिन बिताने लगे। बड़े-बड़े धनपति जिनके आदेश की प्रतीक्षा किया करते थे उन्होंने सन्त-महात्माओं की चरणधूलि को ही अपने जीवन का श्रेय स्वीकार किया। रूप ने पुरी में एक सेवक भेज दिया, उसे आदेश दिया था कि जब चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन के लिये प्रस्थान करें, मुझे सूचना देना। ऐसा ही हुआ। महाप्रभु वृन्दावन के लिये चल पड़े। इधर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रूप ने अपने छोटे भाई अनुपम के साथ यात्रा आरम्भ की। उन्हें कृष्ण चैतन्य के दर्शन की बड़ी उत्कंठा थी। उन्होंने अपने बड़े भाई रूप को एक पत्र लिख दिया कि मोदी के पास दस हजार रूपये रख दिये हैं, आवश्यकता पड़ने पर उनका उपयोग कर लीजियेगा। बादशाह रूप के अचानक चले जाने पर बहुत रुष्ट हो गया। उसनें सन्देह में सनातन को कारागार में डाल दिया।...चैतन्य महाप्रभु प्रयाग में थे। रूप और अनुपम ने प्रयाग में महाप्रभु का दर्शन किया। महाप्रभु ने बड़े प्रेम से रूप को गले लगा लिया। रूप सनातन के कारावास से चिंतित थे। महाप्रभु ने आश्वासन दिया कि सनातन कारामुक्त हो गये हैं। चैतन्य देव ने रूप को कृष्णप्रेम का रहस्य समझाया, भक्ति-ग्रन्थों के प्रणयन की आज्ञा दी। महाप्रभु के आदेश से वे वृन्दावन में लुप्त और गुप्त तीर्थों की खोज के लिये अपने छोटे भाई के साथ प्रयाग से चल पड़े।

व्रज में प्रवेश करते ही रूप श्रीकृष्ण के प्रेम में विभोर हो गये। उनके नयनों ने व्रज की सरस चिन्मयता का दर्शन किया। व्रज में पहुँचने पर एक किसान से पूछा कि व्रज कहाँ है; किसान की व्रज की मीठी बोली में गाली सुनकर वे आनन्दमग्न हो गये। उन्होंने कलिन्दजा को प्रणाम किया। शीतल, मन्द और सौरभित पवन का संचार हो रहा था, वे श्री चैतन्य की चरणकृपा के सहारे भगवन्नाम का उच्चारण करते हुए अपने ध्येय की पूर्ति के पथ में बड़े वेग से गति कर रहे थे। उन्होंने रसग्रन्थों और भक्ति-ग्रन्थों की रचना की। महाराजा मानसिंह उनके बड़े भक्त थे, उनकी प्रसन्नता के लिये महाराजा ने प्रचुर सम्पत्ति के सदुपयोग से 'गोविन्ददेव' का मन्दिर बनवा दिया।

व्रज में उनका मन बहुत दिनों तक न लगा। वे चैतन्य महाप्रभु के दर्शन के लिये पुरी की ओर चल पड़े। रास्ते में अनुपम की ज्वर से मृत्यु हो गयी। रूप महाप्रभु के शिष्य बड़े हरिदास की कुटी में ठहर गये। महाप्रभु चैतन्य देव नित्य समुद्र-स्नान से लौटने पर उनको देखने आया करते थे और रूप गोस्वामी अपने ललित माधव और विदग्ध माधव के कुछ अंशों को सुनाकर चैतन्य और उनके भक्तों का

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मनोरञ्जन किया करते थे। कुछ दिनों तक पुरी में निवास कर वे वृन्दावन चले आये और भक्तिग्रन्थों के प्रणयन तथा लुप्त तीर्थों के उद्धार में अपने समय को सार्थक करने लगे। वे पुरी से लौटने पर आजीवन वृन्दावन में ही रह गये, कहीं बाहर नहीं गये। श्रीकृष्ण और चैतन्य देव की एकरूपात्मक भक्ति-रसमाधुरी का आस्वादन ही उनका दैनिक कार्यक्रम था। अनुपम के पुत्र जीव ने संन्यास ले लिया। वे वृन्दावन में आकर रूप के साथ रहने लगे और उनके कार्यों में सहयोग दिया। वृन्दावन में रूप का वैराग्य पराकाष्ठा पर पहुँच गया। वे केवल फटी लंगोटी पहनते थे, भीख माँग कर भगवान का प्रसाद पाते थे, साथ में गुदड़ी और करवा रखते थे। वे वृक्ष के नीचे रहते थे, केवल चार घड़ी सोते थे और शेष समय का उपयोग भक्तिशास्त्र के अध्ययन और श्रीकृष्ण के नाम-संकीर्तन में करते थे।

वृन्दावन-निवास-काल में उनका जीवन कृष्णप्रेममय था। उनके जीवन में अनेक घटनाओं का उल्लेख मिलता है। एक बार सनातन गोस्वामी पाद उनकी कुटी पर गये; अपनी एक रचना में रूप गोस्वामी ने राधा की चोटी की उपमा नागिन से दी थी। कवि की वाणी थी और भागवती महाशक्ति की शृंगारमयी दिव्यता से आभूषित थी पर सनातन को इस उपमा से बड़ा दुख हुआ। सनातन पद सुन कर चले गये। उन्हें राधाकृष्ण का झूला झूलते हुए दर्शन हुआ, राधा जी की वेणी लहरा रही थी नागिन की तरह, सनातन गोस्वामी की शंका का समाधान हो गया। उन्होंने रूप गोस्वामी की काव्य-भारती का मन-ही-मन बखान किया।

एक बार गोस्वामी सनातन रूप के पास बैठे हुए थे। उन्होंने देखा कि एक कुमार गोप बालक ने रूप को दूध पिला कर अपना रास्ता लिया। उन्होंने बालक को अदृश्य होते देखा, रूप से कहा कि भैया, नन्दनन्दन बड़े कोमल और सुकुमार हैं। उनको कष्ट नहीं देना चाहिये। रूप ने अपने अग्रज के कथन पर बालक के हाथ से दूध पीना बन्द कर दिया। वे मधुकरी मांग कर काम चलाने लगे। महात्मा रूप गोस्वामी के नन्दगांव-निवासकाल में एक बार की घटना से तो सनातन बहुत ही क्षुब्ध हुए। वे रूप की कुटी में उपस्थित थे। उन्हें प्रत्यक्ष राधा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रानी का दर्शन हुआ। कृष्ण की परमा शक्ति राधा भक्त को धन्य करने के लिये भोजन के सामान एकत्र कर रही थीं। भगवान श्रीकृष्ण और राधारानी के विशेष कृपापात्र रूप गोस्वामी थे। वे परम भगवदीय और महान् सन्त थे। व्रजरस के अद्भुत विशेषज्ञ थे। चैतन्य महाप्रभु की कृपा के पात्र थे।

श्रीकृष्ण-भक्ति-प्रचार, चैतन्य-चरण-चिंतन और भक्तिशास्त्रपरक ग्रन्थ-प्रणयन तथा वृन्दावन और व्रज के लुप्त तीर्थों के उद्धार में ही वे आजीवन लगे रहे। पूर्वाश्रम में महान् भोगी थे, उत्तर जीवन में सबसे बड़े योगी हुए। रूप गोस्वामी चैतन्य महाप्रभु के अचिंत्य भेदाभेद सिद्धान्त के बहुत बड़े दार्शनिक थे, उन्होंने महाप्रभु की कृष्णभक्ति की अनुभूति और दर्शन के माध्यम से व्याख्या की। उनकी चरण-कृपा से भक्ति रस पर उज्ज्वल नीलमणि और हरिभक्ति-रसामृतसिन्धु ग्रन्थों की रचना की। हरिभक्तिरसामृतसिन्धु में उन्होंने स्वीकार किया है :

'हृदि यस्य प्रेरणया प्रवर्तितोऽहं वराकरूपोऽपि।
तस्य हरेः पदकमलं वन्दे चैतन्य देवस्य ॥'

इसी प्रकार भक्ति-सिद्धान्तपरक रचना के लिये अपने अग्रज गोस्वामी सनातन पाद का भी उपकार स्वीकार किया है। अपनी प्रसिद्ध रचना लघुभागवतामृत में उनकी उक्ति है :

'श्रीमत्प्रभु पदाम्भोजैः श्रीमद्भागवतामृतम्।
यद्वतानि तदेवेदं संक्षेपेण निषेव्यते।

उन्होंने कहा है कि हमारे प्रभुपाद सनातन गोस्वामी ने वृहद्भाग-वतामृत ग्रन्थ में जो कुछ भी विस्तार से कहा है उसे मैं इस ग्रन्थ लघुभागवतामृत में संक्षेप से कहूँगा। रूप गोस्वामी ने साहित्य को भागवतरस से समृद्ध किया। श्रीकृष्ण के चरणों में अनुकूलता से अनुशीलन ही रूप के मत से भक्ति है। इस अनुशीलन में अन्य अभि-लाषाओं की उन्होंने कोई सत्ता नहीं स्वीकार की। यह ज्ञान, कर्म आदि से तनिक भी आवृत नहीं रहता। हरिभक्तिरसामृत सिन्धु में रूप गोस्वामीपाद की इस सम्बन्ध में स्वीकृति है :

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'अन्याभिलाषिता शून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ॥'

रूप गोस्वामी ने चैतन्यमत का यह तथ्य सिद्ध किया कि जगत् सत्यभूत पदार्थ है, वह सत्यसंकल्पविद् हरि की बहिरंगा शक्ति का विलास है। उन्होंने शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य को वैष्णवता—कृष्णभक्ति का मूलरस माना। रूप गोस्वामी ने माधुर्य भाव—रस की सिद्धि में कृष्ण की चरम प्रेमाभिव्यक्ति का दर्शन किया। साधारणी, समञ्जसा और समर्थारति में माधुर्य रस विभक्त है। समर्थारति ही महाभाव-स्थिति है। गोस्वामी रूप ने समर्थारति को ही अचिंत्य भेदाभेद-सिद्धान्त का प्राण स्वीकार किया। साधारणी रति में आत्मानन्द ही भगवदुपासना का मूल है। समञ्जसा में प्रेमी प्रेम के लिये कर्तव्य-बुद्धि का विधान करता है। समर्था रति भगवदानन्द की प्राणसंजीवनी है। रूप गोस्वामी ने समर्थारति में भागवत रस की पूर्णता का दर्शन किया। रूप गोस्वामी भक्तिरस के आचार्य स्वीकार किये जाते हैं। उन्होंने अपनी भक्ति का आधार-शास्त्र श्रीमद्भागवत को स्वीकार किया। कर्म, वैराग्य और ज्ञान से भक्ति साध्य नहीं है—ऐसी रूप गोस्वामी की मान्यता दीख पड़ती है। व्रज की रागात्मिका भक्ति को उन्होंने रागानुगा भक्ति का स्रोत माना। अपने 'उज्ज्वलनीलमणि' ग्रन्थ में उन्होंने कृष्णविषयक रति को भागवत रस का स्थायी भाव स्वीकार किया। भागवत प्रेम का पूर्ण प्रतिपादन ही 'उज्ज्वलनीलमणि' का विषय है। श्रीकृष्ण के प्रेमानन्द के लिये लोकलज्जा आदि से पूर्ण निवृत्त होकर सर्वस्व-समर्पण ही परमोज्ज्वल दिव्यतम भक्ति है—ऐसा स्पष्टीकरण रूप गोस्वामी के 'हंस दूत', 'विदग्धमाधव' और 'ललितमाधव' ग्रन्थों में मिलता है। भागवत शृंगार की परम दिव्यता से परिव्याप्त रूप गोस्वामी पाद की 'ललितमाधव' में वाणी है: ललिता की राधा से उक्ति है :

'महेन्द्रमणिमण्डलीमदविडम्बितदेहद्युति
व्रजेन्द्रकुलनन्दनः स्फुरति कोऽपि नव्यो युवा,
सखि स्थिरकुलाङ्गनानिकरनीविबन्धार्गल
च्छिदाकरणकौतुकी जयति यस्य वंशीध्वनिः।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस कथन में श्रीकृष्ण की प्रेममयी दिव्य शक्ति की महत्ता का बखान किया गया है। रूप गोस्वामी ने दिव्य भगवद्प्रेम गाया। श्रीकृष्ण अथवा भगवत्तत्व के सम्बन्ध में रूप गोस्वामी की स्वीकृति है कि श्रीकृष्ण प्रपंच से परे वैकुण्ठधाम में स्वयंरूप, तदेकात्मरूप और आवेशरूप में नित्य विलास करते हैं। सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण ही परमेश्वर हैं। वे अखिलरसामृतमूर्ति हैं। रूप गोस्वामीने श्रीराधा–कृष्णात्मास्वरूपिणी रासेश्वरी से आजीवन कृपाकटाक्ष की याचना की। उन्होंने राधाकृष्ण के प्रेम का ही व्रत निबाहा। उनकी उक्ति है कि प्रेम, प्रेमी, प्रेमपात्र तीन होकर भी एकात्म हैं। वे सदा एकरूप हैं। अपने प्रिय में स्वाभाविक प्रेम, पूर्ण आवेश और तन्मयतायुक्त भक्ति ही प्रेम की परम अभिव्यक्ति अथवा रागात्मक भक्ति है। रूप गोस्वामी प्रेमी सन्त थे।..... उनकी भक्ति कृष्णप्रेममाधुरी से ओतप्रोत है।

रूप गोस्वामी का वृन्दावन में ही सम्वत् १६४५ वि. में श्रावण शुक्ला द्वादशी को गोलोकवास हुआ। राधादामोदर मन्दिर की पवित्रता से उनकी समाधि गौरवान्वित है। वे कृष्णतत्व के अनुपम ज्ञाता थे, चैतन्य-महाप्रभु के परम भक्त और रसिक महात्मा थे।

रचना

उज्ज्वल नीलमणि, हंसदूत, ललितमाधव, विदग्धमाधव, हरिभक्ति-रसामृतसिन्धु, दानकेलिभानिका 'नाटकचन्द्रिका' आदि रूप की प्रसिद्ध रचनाये हैं।

वाणी

'शृंगाररससर्वस्वम् शिखिपिच्छविभूषणम्।
अंगीकृतनाराकारमाश्रये भुवनाश्रयम्॥'

में शृंगाररस सर्वस्व, मोरपक्षविभूषणधारी,
नराकार, समस्त भुवन के आश्रय भगवान् श्री कृष्ण चन्द्र का आश्रय ग्रहण करता हूँ।

—उज्ज्वलनीलमणि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'सुधानां चान्द्रीनामपि मधुरिमोन्माददामिनी,
दधाना राधादिप्रणयघनसारैः सुरभिताम्,
समन्तात् सन्तापोद्गमविषमसंसारसरणी,
प्रणीतां ते तृष्णां हरतु हरिलीला शिखरिणी।'

जो चन्द्रमा में उत्पन्न हुए अमृत की मधुरिमा के उन्माद का दमन करने वाली, राधादि के प्रणय-घनसार से सौरभित है वह हरिलीलारूपी शिखरिणी संताप को उत्पन्न करने वाले विषमसंसार मार्ग में भ्रमण करने से पैदा हुई तृष्णा को चारों ओर से हर ले।

—विदग्ध माधव

'निजप्रणयितां सुधामुदयमाप्नुवन् यः क्षितौः
किरत्यलमुरीकृतद्विजकुलाधिराजस्थितिः
स लुञ्चिततमस्त तिर्मम शची सुताख्यः शशी
वशीकृतजगन्मनाः किमपि शर्म विन्यस्यतु।'

जो पृथ्वी पर उदित होकर द्विजराज की स्थिति में रह कर अपने प्रणयरसामृत का दान और अज्ञान-अन्धकार का अन्त कर रहे हैं वे सम्पूर्ण जगत के मन को वश में करने वाले शचीनन्दन चन्द्र कल्याण करें।

—ललित माधव

'तत्तत् श्रीभगवत्येव स्वरूपं भूरि विद्यते।
उपासनानुसारेण भाति तत्तदुपासके॥
यथारूपरसादीनां गुणानामाश्रयः सदा।
क्षीरादिरेक एवार्थो जायते बहुधेन्द्रियैः॥'

भगवत्तत्व सच्चिदानन्दस्वरूप अनन्त शक्ति से सम्पन्न है, अनादि है। जिस प्रकार रूपरसादि गुणों का आश्रय एक पदार्थ दूध भिन्न-भिन्न इन्द्रियों द्वारा भिन्न दीख पड़ता है उसी प्रकार उपासनाभेद से एक ही परम तत्व विभिन्न रूप में अनुभूत होता है।

—लघु भागवतामृत

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महात्मा कुम्भनदास

'राधा माधव बिनुकोउ पद निज कबहुँ न गायो।
बिरह रीति हरि प्रीति पंथ करि प्रगट दिखायो।
सुनत कृष्न को नाम श्रवन हियरो भरि आवत।
प्रेम मगन नितनवपद रचि हरि सनमुख गावत।
श्रीवल्लभगुरुपदजुग पदुम प्रगट सरस मकरंद जनु।
श्री कुम्भनदास कृपालु अति मूरति धारें प्रेम मनु।'

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

महात्मा कुम्भनदास गृहस्थ सन्त थे। श्रीनाथ जी की सख्य-रति में परम अनुरक्त थे। वे सुख-दुख, लाभ-हानि, जीवन-मरण और यश-अपयश—सबमें अपने उपास्य देव नन्दनन्दन की दिव्य अभिव्यक्ति का अनुभव करते थे। उनमें तृष्णा, लोभ और विषय-सुख-वासना तथा मोह-मद और मत्सर आदि नाममात्र को भी न थे। वे अपनी स्थिति में परम संतुष्ट रहते थे और श्रीभगवान श्यामसुन्दर के भजन को अपना प्राण-धन समझते थे। उन्होंने अपने समकालीन सम्राट अकबर के राजऐश्वर्य की भगवत्प्रेम के सम्मुख उपेक्षा कर दी। उन्हें फतहपुर सीकरी का ऐश्वर्य अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सका। वे उच्चकोटि के त्यागी और विरक्त थे। प्रभु के वियोग को वे क्षणमात्र भी नहीं सह सकते थे। निस्सन्देह वे 'श्रीकृष्णः शरणं मम' महामन्त्र के क्रियात्मक रूप थे। प्रभु की उन पर विशेष कृपा थी, वे श्रीनाथ जी के अनन्य उपासक थे। वे अपनी भगवत्साधना में निरन्तर लगे रहते थे। वे आदर्श गृहस्थ थे। उनके जीवन की सबसे बड़ी मौलिकता अथवा अलौकिकता यह थी कि श्रीनाथ जी सखाभाव से उनके साथ प्राकृत बालक की तरह क्रीड़ा किया करते थे, खेला करते थे। सूरदास, नन्ददास आदि उनका बड़ा सम्मान करते थे। वे महाप्रभु वल्लभाचार्य और उनके उत्तराधिकारी गोसाईं—गोस्वामी विट्ठल नाथ जी के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पूर्ण प्रेमपात्र थे। उनका परिवार परम भागवत था। उनके पुत्र चतुर्भुज दास को भी गोसाईं विट्ठलनाथ ने अष्टछाप में स्थान दिया।

महात्मा कुम्भनदास का जन्म सम्वत् १५२५ वि. में चैत कृष्ण एकादशी को गोवर्धन के सन्निकट जमुनावतो ग्राम में हुआ था। वे गोरवा छत्रिय थे। उनके पिता भगवानदास जमुनावतो और गोवर्धन के निकट परासोली में खेती करके जीविका चलाते थे। वे आदर्श गृहस्थ थे। कुम्भनदास अपने पिता के आचार-विचार से वहुत प्रभावित थे। यथासमय गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर उन्होंने जल में कमल की तरह रह कर खेती करके अपने विशाल परिवार के पालन-पोषण का निश्चय किया। वे स्वाव-लंबी थे। यद्यपि उनको आर्थिक अभाव सदा खटकता रहता था तो भी उन्होंने किसी के सामने रूपये-पैसे के लिये हाथ नहीं पसारा। वे सात्विक वृत्ति और सरल हृदय के अलौकिक प्राणी थे। भगवान में उनका विश्वास था। वे समझते थे कि प्रभु मेरे लिये जो कुछ भी करते हैं वही परम मंगलमय है, वे मेरी आवश्यकता को अच्छी तरह समझते हैं। वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित होने के पहले भी वे भगवद् की प्रसन्नता के लिये पद-रचना किया करते थे। उनके जीवन में निरन्तर दिव्य सम्पत्ति बढ़ती जाती थी।

पुष्टि मार्ग के संस्थापक महाप्रभु वल्लभाचार्य सम्वत् १५५० वि. के लगभग व्रज की यात्रा कर रहे थे। कुम्भनदास में भगवद्भक्ति के बीज अंकुरित हो. रहे थे। साधु-महात्माओं के सत्संग और मिलन में बड़े सुख का अनुभव होता था। आचार्य का आगमन सुनकर वे दर्शन के लिये गये। उन्होंने अमित श्रद्धा और भक्ति से अपने आप को महाप्रभु के चरणों में समर्पित कर ब्रह्म-सम्बन्ध लिया। वे भागवत राज्य के नागरिक हो गये। महाप्रभु उनकी भक्ति और भागवती निष्ठा से बहुत प्रसन्न रहते थे। उन्होंने कुम्भनदास को श्रीनाथ जी का कीर्तन-कार नियुक्त किया। वे नित्य नये-नये पद वना कर श्रीनाथ जी को समर्पित किया करते थे। श्रीनाथ जी के प्रति उनका सख्य-भाव था। वे परम भगवदीय थे। वे श्रीनाथजी के राजभोग-दर्शन के कीर्तनकार थे।

महाप्रभु वल्लभाचार्य के लीला-प्रवेश के बाद उनके उत्तराधिकारी गोसाईं विट्ठलनाथ जी कुम्भनदास का बड़ा सम्मान करते थे। सम्वत्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१६०२ वि. में गोसाईं जी ने अष्टछाप के कवियों में उनकी गणना की। उनकी कृपा से कुम्भनदास की भक्ति श्रीनाथ जी में उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। सूरदास, नन्ददास, परमानन्ददास, महात्मा हितहरिवंश और स्वामी हरिदास आदि उनका सत्संग करने के लिये सदा समुत्सुक रहते थे। बड़े-बड़े राजा-महाराजा दरवाजे पर धरना देते थे कि उन पर महात्मा कुम्भनदास की दृष्टि पड़ जाय। निस्सन्देह जीवन तो भगवान के भक्त का ही सार्थक और आनन्दमय होता है। भगवद्रस का अनुभव सन्त और महात्मा तथा भक्त का हृदय ही कर सकता है। सन्त कुम्भनदास आर्थिक संकट में थे पर उन्होंने भगवान श्यामसुन्दर की सौन्दर्य-माधुरी में प्रमत्त होकर उसकी कभी चिंता नहीं की। नन्दनन्दन के सखा को आर्थिक दैन्य किस तरह प्रभावित करता!

कुम्भनदास आजीवन गृहस्थाश्रम में रहे। वे खेती करके कुटुम्ब का पालन करते थे और भगवान का भजन करते थे। एक बार गोसाईं जी अपनी द्वारिका-यात्रा के समय उन्हें साथ ले जा रहे थे। कुम्भनदास की इच्छा जाने के लिये नहीं थी पर गोसाईं जी की आज्ञा को न मानना उनके वश की बात न थी। वे श्रीनाथ जी के विरह को क्षणमात्र के लिये भी न सह सकते थे। वे सोचते जा रहे थे:

'कहिये कहा कहिवे की होय।
प्राननाथ बिछुरन की वेदन जानत नाहिन कोय।'

भगवान का विरह उनके अंग-अंग को पीड़ित कर रहा था। गोसाईं जी ने सोचा था कि द्वारिका-यात्रा में वैष्णवों की सहायता से कुम्भनदास आर्थिक संकट से मुक्त हो जायेंगे और इधर कुम्भनदास की स्थिति विचित्र होती जा रही थी। उनके अंग-अंग भगवद् विरह-ज्वर से आक्रान्त थे, शरीर में असह्य वेदना थी, नयनों में प्रभु को देखने की प्यास उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी, तरुण किशोर रसिक नन्दनन्दन की लीलामाधुरी चित्त से उतरती नहीं थी। वे अप्सरा कुण्ड तक ही पहुँचे थे कि उनका विरहविदग्ध कोकिलकंठ कूक उठा, कराह और तड़प उठा;

'केते दिन जु गये विनु देखें।
तरुन किसोर रसिक नन्दनन्दन, कछुक उठति मुख रेखें।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वह सोभा, वह कांति वदन की, कोटिक चन्द विसेखैं।
वह चितवन, वह हास मनोहर, वह नटवर वपु भेखैं।
स्याम सुंदर संग मिलि खेलन की आवति हिये अपेखैं।
'कुम्भनदास' लाल गिरिधर विनु जीवन जनम अलेखैं।'

वातावरण कुम्भनदास के विरह से श्याम हो गया, उनके नयनों के सामने श्यामसुन्दर के वियोग की श्यामता छा गयी। प्रभु की दर्शन-ज्योति के लिये हृदय हाहाकार कर उठा। गोसाईं जी तो परम भगवद्-रस-पारखी थे, वे कुम्भनदास की मनोदशा समझ गये। उन्होंने कुम्भनदास से कहा कि 'तुम्हारे लिये श्रीनाथ जी का कुछ समय का वियोग युगों के समान हो रहा है। तुम घर लौट जाओ।' कुम्भनदास का प्राण शरीर में लौट आया। उन्होंने श्री गोसाईं जी की चरण-वन्दना की और अविलम्ब श्रीनाथ जी की सेवा में उपस्थित होकर अपने आराध्य के सम्मुख निवेदन किया कि प्रभु, मैं तो आपकी कृपा से आप के पास आ गया, मैं तो यही चाहता था, मुझे आप से बढ़ कर संसार में कुछ भी नहीं दीखता है, मेरी तो यही अभिलाषा है कि एक पल के लिये भी आप का विरह न हो, आप का विस्मरण न हो। आपके सम्मुख मुझे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष–किसी की भी आवश्यकता नहीं है, मेरे नयनों में आप की रूपसुधा सदा उमड़ती रहे–केवल यही याचना है।' वे श्रीनाथजी की सेवा में उपस्थित होकर परम आनन्दित हुए।

महात्मा कुम्भनदास का यश चारों ओर तेजी से फैलने लगा। सम्वत् १६२० वि. में दिल्लीपति अकबर के दाहिने हाथ और सेना नायक महाराजा मानसिंह व्रज गये। व्रज में उन्होंने घूम-घूम कर वृन्दा-वन आदि में मन्दिरों के दर्शन किये। वे बड़े भक्तहृदय के उदार महापुरुष थे। वृन्दावन-दर्शन के बाद महाराजा गोवर्धन आये, उस समय श्रीनाथ जी की राजभोग-आरती हो रही थी। महात्मा कुम्भनदास मृदंग और वीणा पर झूम-झूम कर कीर्तन कर रहे थे। महाराजा मानसिंह उनकी वेश-भूषा और पदगान के ढंग से बहुत प्रभावित हुए। कीर्तन समाप्त होने के बाद कुम्भनदास जमुनावतो गये। मानसिंह उनसे मिलने के लिये आकुल हो उठे। ऐश्वर्य ने–लौकिक वैभव ने भक्ति के दरवाजे पर जाकर आत्मसमर्पण करना चाहा। महाराजा मानसिंह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कुम्भनदास से मिलने जमुनावतो गये। उस समय कुम्भनदास स्नान कर ध्यानमग्न बैठे थे। महाराजा को उन्होंने आदरपूर्वक बैठाया पर उनके आने से मन में किसी प्रकार का कौतुहल या परिवर्तन न हुआ। थोड़ी देर में कुम्भनदास ने तिलक लगाने के लिये अपनी भतीजी से दर्पण माँगा, बैठने के लिये आसन माँगा। भतीजी ने कहा कि बाबा, आसन (घास) पड़िया खा गयी और दर्पण (पानी) पी गयी। आशय यह था कि वे इतने त्यागी थे कि घास पर बैठ कर आसन का काम चलाते थे और पानी में मुख देख कर तिलक करते थे। महाराजा मानसिंह उनकी त्याग-वृत्ति से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने सोने का दर्पण देना चाहा। कुम्भनदास ने विनम्रता पूर्वक कहा कि मैं तो झोपड़ी में रहता हूँ, यदि कोई सुनेगा कि मेरे पास सोने का दर्पण है तो प्राण ले लेगा। श्रीनाथ जी के सेवा-भजन का उद्देश्य फिर इस जीवन में पूरा नहीं होगा। महाराजा मानसिंह ने अखिल लोकनायक के मित्र कुम्भनदास को स्वर्ण-मोहरों की थैली भेंट की, भगवान के भक्त ने अस्वीकार कर दी। महाराजा ने गिड़गिड़ा कर कहा कि मैं जमुनावतो ग्राम आप के नाम कर देना चाहता हूँ। इससे जीविका अच्छी तरह चल जायेगी। कुम्भनदास ने बड़े सन्तोष से उत्तर दिया कि श्रीनाथ जी की कृपा से मुझे किसी वस्तु के अभाव की ही प्रतीति नहीं होती है। उन्होंने कहा कि मेरा काम तो करील और बेर के वृक्ष से ही चल जाता है। उष्ण काल में करील और जाड़े में बेर के वृक्ष ही हमारे मोदी हैं। महाराजा मानसिंह ने उनकी चरणधूलि अपने मस्तक पर चढ़ायी और कहा कि मुझे सच्चे भगवद्भक्त का दर्शन हुआ है, मैंने माया के भक्त अनेक देखे पर भगवद्भक्त तो आप ही मिल सके। कुम्भनदास के दर्शन से वे धन्य हो गये। कुम्भनदास विरक्त गृहस्थ और व्रज-भक्त थे। वे व्रज की सीमा के बाहर नहीं जाते थे। एक बार अकबर की राजसभा में किसी गायक ने महात्मा कुम्भनदास का एक पद गाया। अकबर की सहृदयता प्रभावित हो उठी। अकबर ने कुम्भनदास को सीकरी आने के लिये आदरपूर्वक निमन्त्रित किया। उस समय कुम्भनदास की अवस्था एक सौ तेरह साल की थी। वे सीकरी नहीं जाना चाहते थे पर दूतों के विशेष आग्रह से विवश होकर उन्होंने सीकरी जाना स्वीकार किया। अकबर ने उनके लिये सवारी का प्रबन्ध

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किया था पर वे पैदल गये। राजसभा विशेष ढंग से सजायी गयी थी। चारों ओर मोतियों की झालरें लगी हुई थीं, रत्नसिंहासन रखा हुआ था। कुम्भनदास ने सोचा कि मैं तो एक साधारण कृषक हूँ, सीकरी में तो मेरा कोई प्रयोजन ही नहीं है। न जाने, श्रीनाथजी की क्या इच्छा है। वे फटी पगड़ी, मैली तनिया पहने राजसभा में उपस्थित हुए। वे आत्मग्लानि में डूबे जा रहे थे। उन्हें ऐसा लगा कि मानों नरक में आ गये हों। अकबर ने उनका स्वागत किया, भगवान श्यामसुन्दर के मित्र के पैरों पर सम्राट का मस्तक नत हो गया, भारत का राजकीय ऐश्वर्य व्रजरस से सनी कुम्भनदास की चरणधूलि से मोहित हो गया। अकबर ने कहा कि बाबा साहब विराजिये। आप के पद बड़े सरस और भगवद्भक्ति में सने होते हैं, कोई नवीन पद सुनाइये। श्रीनाथ जी के भक्त ने, सन्त कुम्भनदास ने अकबर को चुनौती दी, निर्भय होकर उपदेश दिया, भक्ति का महत्व समझाया।

'भगत को कहा सीकरी सो काम।
आवत जात पन्हैयाँ टूटीं, बिसरि गयो हरिनाम।
जाको मुख देखें दुखलागै, ताको करनो पर्‌यो परनाम।
'कुम्भनदास' लालगिरिधर बिनु और सबै बेकाम।'

अकबर की उदारता ने भक्त के हृदय की बात समझी। कुम्भनदास को आदरपूर्वक जमुनावतो भेज दिया। कुम्भनदास की वल्लभाचार्य और गोसाईं विट्ठलनाथ में असाधारण भक्ति और निष्ठा थी। वे उन्हें भगवत्स्वरूप समझते थे। एक बार महाप्रभु ने प्रसन्न होकर कुम्भनदास से कहा कि तुम्हें तो निकुंजलीला के रस की अनुभूति हो रही है। कुम्भनदास ने आचार्य के सम्मुख निवेदन किया कि मुझे तो इसी रस की नितान्त आवश्यकता है। वे श्रीनाथ जी की सख्यभक्ति में रातदिन मग्न रहते थे। उनकी भक्ति-साधना उच्च कोटि की थी। निस्सन्देह वे वल्लभसम्प्रदाय की एक बहुत बड़ी विभूति थे।

वृद्धावस्था में भी वे नित्य जमुनावतो से पैदल चल कर गोवर्धन में श्रीनाथ जी का दर्शन करने आया करते थे। उनके सात पुत्र थे, सब-के-सब खेती करते थे। चतुर्भुज दास उनके पुत्र थे। वे अष्टछाप के कवियों में अपने पिता के ही साथ एक अच्छे भक्त के रूप में परिगणित हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एक बार वे अपने पुत्र चतुर्भुज दास के साथ श्रीनाथ जी का दर्शन करके लौट रहे थे। संकर्षण कुण्ड पर आन्योर के निकट वे ठहर गये। उन्होंने चतुर्भुज दास से कहा कि अब अन्तिम समय निकट है, घर चल कर क्या होगा। अन्तकाल में गोसाईं जी उपस्थित थे। विट्ठल नाथ जी ने पूछा कि इस समय मन कहाँ है, कुम्भनदास ने कहा:

'लाल तेरी चितवन चितहिं चुरावे।'

इसके बाद युगलस्वरूप का ध्यान किया, श्यामसुन्दर और राधा-रानी की बाकी झाँकी गायी:

'रसिकनी रस में रहत गड़ी।
कनकवेलि वृषभानुनन्दिनी स्याम तमाल चढ़ी।
विहरत श्रीगिरिधरनलाल संग, कौने पाठ पढ़ी।
'कुम्भनदास' प्रभु गोवरधनधर रति-रसकेलि वढ़ी।'

इस प्रकार सम्वत् १६४० वि. के लगभग गोलोक प्राप्त किया। विट्ठलनाथ जी ने करुण स्वर में कहा कि सच्चे भगवद्भक्तों का अब पृथ्वी पर तिरोधान होने लगा है। कुम्भनदास का सम्पूर्ण जीवन भगवान के चरण में समर्पित था। उन्होंने आजीवन भगवद्संग का रसास्वादन किया। उनकी भगवद्भक्ति का बखान नहीं किया जा सकता है। कुम्भनदास की सख्य-भक्ति धन्य है।

रचना

पुष्टिमार्गीय कीर्तनपदसंग्रह में इनके अनेक पद संग्रहीत हैं।

पद

नैन भरि देख्यौ नन्दकुमार।
बिन देखे हौं विकल भये हौं, विसर्‌यो पन परिवार।
तादिन तैं सब भूलि गये हौं अंग-अंग सब हारि।
ताते सुधि है सांवरे मूरति की लोचन भरि-भरि वारि।
रूपरासि पैमित नहीं मानों कैसे मिललों कन्हाई।
'कुम्भनदास' प्रभु गोवरधनधर मिलये वहुरि री माई।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रूप देख नैना पल लागे नहीं।
गोवरधन के अंग-अंग प्रति
निरखि नैन मन रहत नहीं।
कहा कहौं कछु कहत न आवै
चित चोर्‌यो माँगिवे दही।
'कुम्भनदास' प्रभु के मिलन की
सुंदर वात सखियन सो कही।

हिलगिन कठिन है या मन की।
जाके लिये देखि मेरी सजनी लाज गयी सब तन की।
धरम जाउ अरु लोग हँसौं सब अरु गावौ कुल गारी।
सौ क्यों रहे ताहि बिनु देखे जो जाकौ हितकारी।
रसलुबधक निमिख न छाँड़त है ज्यों अधीन मृग गानो।
'कुम्भनदास' सनेह परम श्रीगोवरधनधर जानों।

जो पै चोंप मिलन की होय।
तो क्यों रहै ताहि बिनु देखें लाख करौ जिन कोय।
जो यह विरह परस्पर ब्यापै जौ कछु जीवन बनै।
लोक लाज कुल की मरजादा एकौ चित न गनै।
'कुम्भनदास' प्रभु जाय तन लागी और न कछू सोहाय।
गिरिधरलाल तोहि बिनु देखे छिन छिन कलप बिहाय।

लाल तेरी चितवन चितहिं चुरावै।
नन्दग्राम वृषभानुपुरा बिच
मारग चलन न पावै।
हौं भरिहौं डरिहौं नहि काहू
ललिता दृगन चलावे।
'कुम्भनदास' प्रभु गोवरधनधर
धर्‌यो सो क्यों न बतावे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्त सूरदास

किधौं सूर को सरलग्यौ, किधौं सूर की पीर।
किधौं सूर को पद सुन्यौ, तन मन धुनत सरीर।

—तानसेन

सूरदास सन्त और भागवत कवि थे। मध्यकाल के दूसरे और तीसरे चरण की सन्धि के साहित्य-क्षेत्र में सूर ने ब्रह्म का माधुर्य गाया—कृष्ण की लीला गायी, तुलसी ने भगवान का ऐश्वर्य गाया— राम की लोकोत्तरता का चिंतन किया और महाकवि देव ने शुद्ध सच्चिदानन्द का सौन्दर्य चित्रित किया। सूरदास रसिक सन्त थे, उच्च कोटि के महात्मा थे। उनकी वाणी सिद्ध थी, उनके समस्त कर्म श्रीकृष्ण को समर्पित थे, उनका धर्म भागवत काव्य का सृजन था। सूरदास की कृष्णभक्ति, तुलसीदास की राम-उपासना और महाकवि देव की दिव्य सौन्दर्यमयी सरस काव्य-वाणीकी त्रिवेणी की पवित्रता अमिट है। सूरदास अनन्य भक्त, अनुपम सन्त और भगवदीय साहित्यकार थे। सूरदास के गुरु महाप्रभु वल्लभाचार्य और उनके आत्मज गोस्वामी विट्ठलनाथ ने उनको 'भक्ति के सागर' और 'पुष्टिमार्ग के जहाज' की उपाधि से समलंकृत किया था। उनका सूरसागर भगवान की लीलामाधुरी का अमृत सागर है; पुष्टिमार्ग के सिद्धान्तों का सर्वश्रेष्ठ काव्य-भाष्य है। सूरकालीन भारत यवनों के आक्रमण से उत्पीड़ित तो था ही, अकबर की द्विविधात्मक उदारता से आक्रान्त तो था ही, साथ-ही-साथ शैवों और वैष्णवों के संघर्ष तथा वैष्णवों में भी अनेक सम्प्रदायों के स्पर्धात्मक विवाद से भी प्रभावित था; सूरदास की काव्यगरिमा ने संतुलन-दान किया, देश को भागवती काव्यकारिता से समृद्ध कर सत्य, शिव और सुन्दर के समन्वय-मंच पर श्रीकृष्ण की लीलामाधुरी का मौलिक ढंग से भागवत-पुराण के माध्यम से सृजन किया। सूरदास मानसी सेवा के अधिकारी सिद्ध भक्त थे। लोगों का मन प्रभु कृष्ण के चरणकमल में लगाना

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

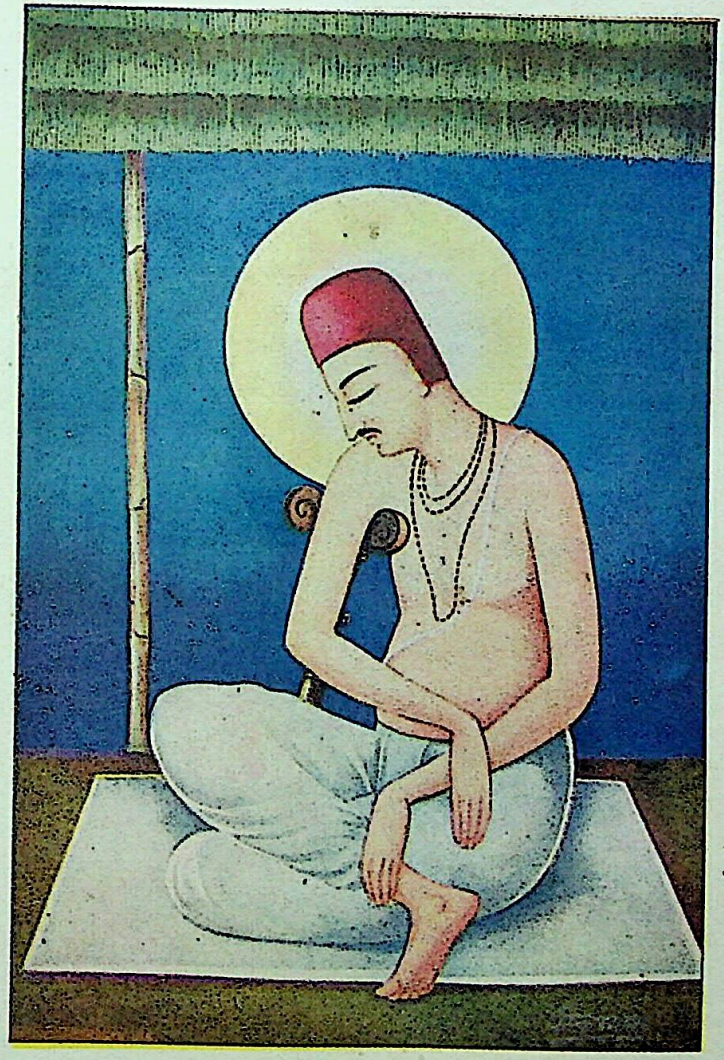

संत सूरदास

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उनका पवित्र कर्म था। वे उच्च कोटि के भगवदीय थे। वे अष्टछाप के कवियों में निस्सन्देह अग्रगण्य थे। उन्होंने जो कुछ भी भगवदीय रचना की वह नवीन और सर्वथा मौलिक थी। परम भागवत नाभादास ने अपने भक्तमाल में उनकी काव्यगरिमा का उल्लेख किया है :

'सूर कवित सुनि कौन कवि
जो नहि सिर चालन करै।'

सूरदास लोकोत्तर प्राणी थे, उनकी दृष्टि दिव्य थी, उन्हें संसार की किसी भी वस्तु का ध्यान नहीं था, वे तो रात-दिन मंगलमय व्रजराजेश्वर नन्दनन्दन का ही चिंतन किया करते थे। उनकी भगवन्निष्ठा उच्च कोटि की थी; उनकी काव्यसाधना असाधारण श्रेणी की थी।

दिल्ली से थोड़ी दूर पर एक ब्राह्मण के घर में सम्वत् १५३५ वि. में वैशाख शुक्ल पंचमी को सूरदास का जन्म हुआ; वे एक दिव्य ज्योति के रूप में धरती पर प्रकट हुए। वे जन्मान्ध थे। पिता उनके प्रति उदासीन रहने लगे। घरवाले भी प्रायः उनकी उपेक्षा ही किया करते थे।...धीरे-धीरे बालक सूर के मन में स्वाभाविक रूप से घर के प्रति वैराग्य का उदय हुआ। उन्होंने घर से बाहर जाकर एकान्त में रहने का निश्चय किया। गाँव से थोड़ी दूर पर एक रमणीय सरोवर के किनारे वे पीपल के वृक्ष के नीचे रहने लगे। वे लोगों को शकुन बताया करते थे, भगवान की उन पर ऐसी कृपा थी कि प्रायः उनकी बतायी सारी बातें सच उतरती थीं। दूर-दूर के गाँवों में उनका यश फैल गया। दिन भर उनकी कुटी के सामने अगणित लोगों की भीड़ रहती थी।...एक दिन एक जमींदार की गाय खो गयी। जमींदार को सूर ने गायका पता बता दिया। वह उनके चमत्कार से बहुत प्रभावित हुआ, उनके लिये एक अच्छी-सी कुटी बनवा दी। उनकी मान-प्रतिष्ठा दिन-दूनी और रात-चौगुनी बढ़ने लगी। सूरदास स्वामी के नाम से प्रख्यात होने लगे। उन्होंने एक रात को बड़ा पश्चात्ताप किया, सोचा कि मैं तो भगवान श्रीहरि के भजन के लिये घर से बाहर निकला था पर संसार मुझे नित्य अपनी माया में जकड़ता जा रहा है। मैंने जन्म लिया भगवान के भजन के लिये और उलझ गया प्रपंच में। ऐसा विचार कर उन्होंने मथुरा के लिये प्रयाण किया। मन में वैराग्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

का उदय बड़े जोर से हो रहा था; मथुरा में उनका मन नहीं लगा। वे मथुरा से रेणुका-रुनकता क्षेत्र में आकर हरि का भजन करने लगे। भीड़ ने उनका पीछा नहीं छोड़ा। रेणुका-क्षेत्र से एकान्त के अभाव में वे यमुना के किनारे गऊघाट पर आकर भजन और संगीत का अभ्यास बढ़ाने लगे। थोड़े ही समय में एक सिद्ध महात्मा के रूप में उनकी ख्याति चारों ओर फैल गयी। गऊघाट रुनकता-क्षेत्र से तीन मील दूर पच्छिम की ओर कालिन्दी के तट पर अवस्थित है। कवि, संगीतज्ञ और अच्छे सन्त के नाम से वे प्रसिद्ध हो गये। इस समय इनकी अवस्था अठारह साल से अधिक हो गयी थी। रसिक हरिराय जी का कथन है कि गऊघाट पर निवास-काल में उनके सेवकों की संख्या बहुत बढ़ गयी थी, उनका कंठ अमित मधुर था। उनमें भक्ति के विभिन्न अंगों का बड़ी तेजी से विकास हो रहा था। सूर ने विनय-सम्बन्धी अधिकांश पदों की रचना गऊघाट पर ही की थी। विजयनगर राज्य में महाप्रभु श्रीमदाचार्य वल्लभ के कनकाभिषेक की घटना चारों ओर प्रसिद्ध हो गयी थी। सूरदास महाप्रभु से मिलने के लिये विशेष उत्सुक थे। महाप्रभु अड़ैल से व्रज जा रहे थे। गऊघाट पर उन्होंने अस्थायी निवास स्थिर किया। लोगों के मुख से उन्होंने सूरदास के चमत्कारपूर्ण जीवन और भगवत्प्रियता के सम्बन्ध में अनेक बातें सुनीं। वे सूर को देखने के इच्छुक थे।...इधर सूरदास महाप्रभु को सौभाग्य से अपनी कुटी के ही निकट उपस्थित सुनकर उनकी दिव्य चरणधूलि से अपने आपको पवित्र करने के लिये चल पड़े। उनके हृदय में श्रद्धा और शरणागति की तरंगें बड़े वेग से उठ रही थीं। उन्होंने महाप्रभु के चरण का स्पर्श किया और अत्यन्त करुण स्वर में अपने पतित होने के सम्बन्ध में एक विनय-पद सुनाया। महाप्रभु ने कहा कि सूर होकर इस तरह क्यों घिघियाते हो। भगवान के लीला-पद गाओ। सूरदास ने निवेदन किया कि मुझे लीला का तनिक भी ज्ञान नहीं है। आचार्य ने सुबोधिनी सुनायी, सूर के हृदय में भगवान श्रीकृष्ण की रसमयी लीला का स्फुरण हुआ, वे लीलासम्बन्धी सरस पद गाने लगे। महाप्रभु उनकी श्रद्धा और भगवद्भक्ति से बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने सूर को दीक्षित किया। तीन दिन तक महाप्रभु गऊघाट पर ही रह गये। सूरदास ने साथ चलने का निवेदन किया। महाप्रभु उन्हें अपने साथ गोकुल ले आये। सूरदास नित्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नवनीतप्रिय का दर्शन करते और भगवल्लीला के पद सुनाते थे। महाप्रभु के साथ गोकुल से गोवर्धन चले आये। गोवर्धन में श्रीनाथ जी के चरणों में उन्होंने पूर्ण आत्मसमर्पण कर दिया। आचार्य ने कृपापूर्वक उनको श्रीनाथ जी का कीर्तनकार नियुक्त कर दिया। इस प्रकार भगवान की कृपा से उनको महाप्रभु वल्लभाचार्य ने अपना कर भागवत लीलाओं के समस्त तत्वों और भेदों का ज्ञान बताया।

गोकुल से गोवर्धन आने पर सूर ने चन्द्रसरोवर के निकट परासोली में अपना स्थायी निवास-स्थान बनाया। वे नित्य प्रति श्रीनाथ जी की प्रत्येक झाँकी का दर्शन करने तथा उसके अनुरूप नये पद रचकर सुनाने आते थे। अष्टछाप के कवि कुम्भनदास, परमानंद दास, कृष्णदास और नन्ददास आदि से धीरे-धीरे उनकी घनिष्टता बढ़ने लगी। उन्होंने सूरसागर की रचना इसी समय की। महाप्रभु के लीलाप्रवेश के बाद गोस्वामी विट्ठल नाथ जी की सूरदास पर विशेष कृपा-दृष्टि थी। वे उनका बहुत सम्मान करते थे। सूरदास अष्टछाप के महाभागवत कवियों में प्रमुख थे; वे नवनीतप्रियदर्शन के लिये गोकुल भी जाया करते थे। श्रीनाथजी उनके परम उपास्य और आराध्य थे।

सूरदास की कीर्ति-कल्पलता की छाया दूर-दूर तक फैलने लगी। एक बार महासंगीतज्ञ तानसेन अकबर की राजसभा में सूरदास का एक पद गा रहे थे। सूरदास ऐसे परम सन्त की वाणी थी, अकबर पर बड़ा प्रभाव पड़ा। अकबर ने सूरदास से मिलने की इच्छा प्रकट की। आवश्यक कार्य से मथुरा भी जाना था। सं. १६२३ वि. में अकबर ने तानसेन के ही साथ मथुरा-यात्रा-काल में सूरदास से भेंट की, सूरदास ने एक पद–'हे मन, माधव से प्रीति करो' गाया। अकबर ने परीक्षा लेने की भावना से अपने यश-वर्णन के लिये कहा। सूरदास तो लीलापति श्रीकृष्ण के भक्त थे, जिनके चरणों के स्पर्श के लिये कोटि-कोटि इन्द्रों के मौलिमुकुट प्रतीक्षा करते रहते हैं उनके यश-गायक थे। सूरदास ने अपने आराध्य श्रीनाथ जी का यश गाया।

नाहिन रह्यो मन में ठौर।
नन्दनन्दन अछत कैसे आनिये उर और।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अकबर ने उनकी निःस्पृहता और भगवद्भक्ति से परम शान्ति का अनुभव किया। सूरदास भगवान के शृंगार का ज्यों का त्यों वर्णन कर दिया करते थे। एक बार वे नवनीतप्रिय का दर्शन करने गोकुल गये। गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के पुत्र गिरिधर जी ने गोकुलनाथ के कहने से उनकी दिव्य दृष्टि की परीक्षा लेनी चाही। आषाढ़ मास का समय था। ठाकुर जी को कोई वस्त्र नहीं पहनाया गया था। केवल मोतियों से ही उनका शृंगार किया गया था। सूरदास नवनीतप्रिय के सामने आकर पद गाने लगे। भगवान ने भक्त की लाज रखी। सूर ने भगवान का तत्कालीन शृंगार गाया :

'देखे री हरि नंगम नंगा।
जल सुत भूषन अंग विराजत,
वसन हीन छवि उठत तरंगा।
अंग-अंग प्रति अमित माधुरी
निरखि लजित रति कोटि अनंगा।
किलकत दधिसुत मुख ले मन भरि,
'सूर' हँसत व्रजजुवतिन संगा।'

सूरदास परीक्षा की कसौटी पर खरे उतर गये। भगवान का दिव्य रूप उनके हृदय-कमल पर अभिव्यक्त हो उठा। रासेश्वर नन्दनन्दन उनके पद-गान से प्रमत्त हो उठे।

सूर का सम्पर्क तत्कालीन प्रसिद्ध भगवद्भक्तों और महाकवियों से था। रामभक्ति के सागर में सदा मग्न रहने वाले तुलसीदास जी से भी उनकी भेंट हुई थी। दोनों एक दूसरे की भक्तिपद्धति और अलौकिक काव्य-साधना से प्रभावित थे। सूरदास ने अपने विशाल काव्य सूरसागर में कुछ पदों में रामचरित्र का वर्णन किया है; इसी प्रकार सन्त शिरोमणि तुलसीदास ने 'कृष्णगीतावली' की रचना की। गोस्वामी विट्ठलनाथ ने अष्टछाप में उन्हें प्रमुख तथा सर्वश्रेष्ठ स्थान प्रदान कर उनकी साहित्य-गरिमा और काव्यसाधना की व्यापकता स्वीकार की। सन्त सूरदास वैराग्य और भक्ति के मूर्तिमान स्वरूप थे। श्रीकृष्ण के प्रेम में वे इतने आसक्त और आत्मविभोर थे कि एक पल के लिये उनके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ध्यान का विस्मरण होने पर नयनों से गंगा-यमुना की धारायें फूट पड़ती थीं। श्रीनाथ जी का विरह उनके लिये असह्य था। सूरदास की काव्य-कारिता ने भगवद्भक्ति का वरण किया था। उन्होंने श्रीकृष्ण के वेद-सम्मत चरित्र का वर्णन किया। व्रज-मण्डल की चौरासी कोसवाली सीमा में उन्होंने सरस वेद-ब्रह्म कृष्ण के पौराणिक रूप का मध्यका-कालीन साहित्य में शृंगार गाया। सदा वे श्याम की देवदुर्लभ रूप-माधुरी का आस्वादन करते रहे। उनका कथन है:

'नैननि निरखि स्याम स्वरूप।
रह्यो घट-घट व्यापि सोई, जोतिरूप अनूप।
चरन सप्त पताल जाके, सीस है आकास।
'सूर' चन्द्र नछत्र पावक, सर्व तासु प्रकास।'

यह श्रीकृष्ण का सरस विराट रूप-दर्शन है। सूरदास विशेष रूप से वात्सल्य रस के कवि स्वीकार किये जाते हैं। पर शृंगाररस के संभोग और विप्रलम्भ अंग का वर्णन उन्होंने अनुपम सफलता से किया है। वे व्रज-भक्त थे, उनकी कविता वृन्दावन के कण-कण के आलिंगन से परम भागवती हो गयी। वृन्दावन की महिमा के सम्बन्ध में सूरदास का पद है:

'धनि यह वृन्दावन की रेनु।
नन्दकिसोर चरावत गैया, मुखहि बजावत बेनु।
मनमोहन को ध्यान धरे जिय, अति सुख पावत चैनु।
चलत कहा मन और पुरी तन, जहाँ कुछ लैन न दैनु।
इहाँ रहहु, जहाँ जूठन पावहु, व्रजवासिन के ऐनु।
'सूरदास' ह्यां की सरवर नहिं, कल्पवृक्ष सुरधेनु।'

उनकी गुरु-भक्ति और भगवद्भक्ति की सहज सिद्धि की प्रतीक वृन्दा-वन की धूलि है, उन्होंने श्यामसुन्दर की चरणनूपुरध्वनि से रसमयी वृन्दावन-धूलि पर स्वर्ग, अपवर्ग और वैकुण्ठ की समृद्धि नीछावर कर दी। उनका काव्य श्रीकृष्ण का अलौकिक वाणी-विग्रह है। सूरदास की गुरुभक्ति सराहनीय थी। वे आचार्य वल्लभ के चरणों में सुदृढ़ रूप से अनुरक्त थे। गुरु के चरणों का चिन्तन और भगवल्लीलागान ही उनका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जीवन-प्राण था। उन्होंने आजीवन उन हरि के चरणकमलों की वन्दना की जिनकी कृपा से पंगु पहाड़ लांघ जाता है, अंधा सब कुछ देख सकता है और बहिर सुनता है, गूंगा बोलता है तथा रंक राजा हो जाता है। वे युगलस्वरूप के शृंगार-सागर में सदा निमग्न रहते थे; उन्होंने राधाकृष्ण की लीलामाधुरी से अपना जीवन धन्य और सफल कर लिया। उनकी सदा के लिये कामना थी, भागवत वासना थी कि श्रीकृष्ण और राधारानी सदा उनके नयनों के वृन्दावन-कुंज में विहार करते रहें :

'बसो मेरे नयननि में यह जोरी।
सुंदर स्याम कमल दललोचन संग वृषभानुकिसोरी
मोर मुकुट मकराकृत कुण्डल, पीताम्बर झकझोरी।
'सूरदास' प्रभु तुम्हारे दरस कों का वरनों, मति थोरी।'

सूरदास ने गुरु और भगवान में अभिन्नता–अभेदता का अनुभव किया। उन्हें अपने गुरु वल्लभाचार्य से ही भगवत्तत्व और लीला भेद का पता चला था। उन्होंने मध्यकालीन साहित्य को भक्ति-प्रधान बनाया। साहित्य सर्वथा अलौकिक और दिव्य हो उठा–उन्होंने साहित्यजीवन के क्षेत्र में भगवानकी मानसी सेवा–उपासना सिद्ध की। वे लीलारसिक सन्त कवि थे। नामदेव और बिल्वमंगल के समन्वयरूप थे। नामदेव की तरह विनय के पद गाकर उन्होंने हरि से भक्ति माँगी और बिल्वमंगल की तरह लीला के पद गा कर उन्होंने राधाकृष्ण से उनकी रूप-माधुरी के चिंतन का वरदान पाया। सूरदास के काव्य में लौकिक चिन्तन नाम मात्र के लिये भी नहीं है। उनकी भगवद्भक्ति-प्रेम-सिद्धि गोपी भाव की प्रतीक है। सूर के नयनों से श्याम के विरह का अनुभव कर, विरहिणी गोपियों की मनोदशा विचार कर नित्य निरन्तर अश्रु की धारा बहती रहती थी। सूर की गोपी की भक्ति और अनुरक्ति के चरणों पर योग, तप, संन्यास और वैराग्य-सब के सब पराजित होकर नत हो गये। सूर ने साहित्य में भगवान की भक्ति को श्रेय स्वीकार किया और तदनुरूप आचरण कर अपने सिद्धान्त की वास्तविकता सिद्ध की। उनकी स्पष्ट उक्ति है कि सर्वस्व त्याग कर नन्दनन्दन का भजन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करना चाहिये। दूसरे के भजन से भवसागर से मुक्ति नहीं मिल सकती है। जन्म-जन्म के पाप-वृक्ष को काटने के लिये हरिनाम का कुठार ही समर्थ है। वेद पुराण और भगवद्गीता आदि का यही मत है कि विना हरिपद-नवका की शरण लिये भवसमुद्र से पार उतरना असम्भव है। संसार में जन्म लेकर भगवान के भजन में अमूल्य समय का सदुपयोग कर लेना चाहिये। मनुष्य का जन्म फिर नहीं मिलेगा। संसार और भगवान दोनों का भजन साथ-साथ नहीं हो सकता है—ऐसी उनकी दृढ़ मान्यता थी। भगवान का भजन ही उनका अक्षय प्राणधन था। उन्होंने पचासी साल की अवस्था में गोलोक-प्रवेश किया। वे नित्य श्रीनाथ जी की आठों झाँकी का दर्शन करते और प्रत्येक झाँकी के सम्बन्ध में तत्काल नवीन पद रच कर श्री नाथ जी को समर्पित किया करते थे। एक दिन उन्हें अपने शरीर में विशेष शिथिलता का अनुभव हुआ। परासोली से आकर उन्होंने श्रीनाथ जी की मंगल-आरती—प्रथम झाँकी का दर्शन किया। यह उनका अन्तिम दर्शन और पद गान था। वे धीरे-धीरे परासोली आ गये। भगवान के शृंगार-दर्शन के समय परम भागवत सूर की अनुपस्थिति से गोस्वामी विट्ठलनाथ आश्चर्यचकित हो गये। उन्होंने श्रीनाथ जी की ओर देखा, सूर के नित्य सखा भगवान श्याम-सुन्दर के शृंगार में उन्हें आनन्द का दर्शन नहीं हुआ। विट्ठलनाथ जी का हृदय सूर के विरह की आशंका से द्रवित हो उठा, उनका कंठ भाव के आवेग से अवरुद्ध हो गया, नयनों से जल की धारा उमड़ पड़ी। उन्होंने अपने भक्तों से कहा, कृष्ण के लीला-साहित्य के महाकवियों से—गोविन्ददास, कुम्भनदास आदि से कहा कि आज पुष्टिमार्ग का जहाज सदा के लिये, भवसागर के पार जा रहा है, जिसको जो कुछ भी लेना है वह शीघ्रता से परासोली पहुँच जाय। लोग परासोली की ओर चल पड़े। श्रीनाथ जी के राजभोग के बाद विट्ठलनाथ जी भी अमित शीघ्रता से कुम्भनदास और गोविन्ददास को लेकर परासोली आगये। सूरदास ने परासोली पहुँच कर बड़ी श्रद्धा से श्रीनाथ जी की पताका को प्रणाम किया। वे अपनी चित्तवृत्ति श्रीनाथ जी और विट्ठलनाथजी में समग्र रूप से लगा कर विचार करने लगे कि यह काया श्यामसुन्दर की सेवा में पूर्ण रूप से न लग सकी। इतने में गोस्वामी विट्ठलनाथजी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पहुँच गये। सूरदास ने उनकी चरण-वन्दना की, कहा कि मैं तो आप की ही प्रतीक्षा कर रहा था। सूरदास ने पद गाया :

'खंजन नैन रूपरस माते।
अतिसय चारु चपल अनियारे, पल पिंजरा न समाते।
चलि चलि जात निकट स्रवननि के, उलटि ताटंक फँदाते
'सूरदास' अंजन गुन अटके, नतरु अबहिं उड़ि जाते।'

वे श्री राधाकृष्ण के युगलरूप का ध्यान कर रहे थे। विट्ठलनाथ जी ने पूछा कि 'चित्तवृत्ति कहाँ है?' सूरदास ने निवेदन किया कि मैं श्रीराधारानी की चरण-वन्दना करता हूँ क्योंकि भगवान श्रीकृष्ण सदा उनके प्रेमसागर में निमग्न रहते हैं। सूर ने गाया :

'बलि बलि बलि हो कुंवरि राधिका,
नन्दसुवन जासों रति मानी।'

चतुर्भुज दास ने कहा कि आपने असंख्य पदों की रचना की पर महाप्रभु का यश-वर्णन नहीं किया। सूरदास ने समाधान किया कि मैं महाप्रभु जी, और श्रीनाथ जी में कोई भेद ही नहीं मानता हूँ। वे तो साक्षात्, लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्ण के स्वरूप हैं, मैंने सूरसागर में भगवत्रूप महाप्रभु की ही लीलाओं का वर्णन किया है। मैंने उन्हीं का यश गाया है। सूरदास जी ने एक पद कहा, गुरु तत्व का स्तवन किया:

'भरोसो दृढ़ इन चरननि केरो।
श्रीवल्लभनखचन्द्र छटा बिनु सब जग माँझ अधेरो।
साधन नाहिं और या कलि में, जासों होय निवेरो।
'सूर' कहा-कहै द्विविधि आँधरो बिना मोल को चेरो।'

चतुर्भुज दास की विशेष प्रार्थना पर उन्होंने उपस्थित भक्तों को पुष्टिमार्ग के सिद्धान्त संक्षेप में सुनाये। उन्होंने कहा कि 'गोपीजनों के भाव से भावित भगवान के भजन से पुष्टिमार्ग के रस का अनुभव होता है। इस मार्ग में केवल प्रेम की मर्यादा है।'

'भजि सखि! भाव भावक देव।
कोटि साधन करो कोऊ तऊ न माने सेव!
व्रजवधू वस किये मोहन 'सूर' चतुर सुजान।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उन्होंने अन्तसमय में श्रीराधाकृष्ण के ध्यान में अपने प्राण के सरस स्वर समर्पित कर दिये। उन्होंने प्रभु के सम्मुख सदा अपने आप को पतितों का नायक घोषित किया, श्यामसुन्दर को चुनौती दी कि संसार में मुझसे बड़ा दूसरा कोई पतित है ही नहीं। उन्हें विश्वास था कि मैं बुरा हूँ या भला हूँ, जो कुछ भी हूँ, प्रभु मुझे अवश्य अपनायेंगे, मैं उन्हीं का हूँ। श्रीनाथ जी के प्रति उनकी शरणागति उच्च कोटि की थी, अप्रतिम और अनुपम थी। वे सन्त भक्त थे। उन्होंने सगुण ब्रह्म का चिन्तन किया। उन्होंने श्रीकृष्ण की प्रत्येक लीला का दिव्य दृष्टि से अनुभव कर सूरसागर की रचना की। वे महाभागवत थे ।

रचना

सूरसागर, साहित्य लहरी, सूरसारावलि आदि सन्तशिरोमणि महाकवि सूरदास की प्रसिद्ध रचनायें हैं।

पद

जो सुख होत गुपालहिं गायें ।
सो सुख होत न जप-तप कीन्हें, कोटिक तीरथ न्हायें ।
दिये लेत नहीं चार पदारथ, चरन-कमल चित लायें ।
तीन लोक तृन-सम करिलेखत, नन्दनन्दन उर आयें ।
वंसीवट वृन्दावन जमुना तजि वैकुंठ न जावें ।
'सूरदास' हरि को सुमिरन करि, बहुरि न भवजल आवें ।

हरि बिनु मीत नहिं कोउ तेरे ।
सुनि मन, कहौं पुकारि तोसौं हौं, भजि गोपालहिं मेरे ।
या संसार विषय-विष-सागर, रहत सदा सब घेरे ।
'सूर'स्याम बिनु अंत काल मैं कोउ न आवत नेरे ।

प्रभु हौं सब पतितन को टीकौ ।
और पतित सब दिवस चारि के, हौं तो जनमत ही कौ ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बधिक अजामिल गनिका तारी, और पूतना ही कौ।
मोहिं छाँड़ि तुम और उधारे, मिटै सूल क्यों जी कौ।
कोउ न समरथ अघ करिबे को, खैंचि कहत हौं लीकौ।
मरियत लाज 'सूर' पतितन में, मोहूँ तैं को नीकौ॥

रे मन गोविन्द के ह्वै रहिये।
यहि संसार आपार विरत ह्वै जम की त्रास न सहिये।
दुख-सुख-कीरति भाग आपनें, आइ परै सो गहिये।
'सूरदास' भगवन्त भजन करि अंत बार कछु लहिये।

बड़ी है राम नाम की ओट।
सरन गयें प्रभु काढ़ि देत नहिं, करत कृपा कैं कोट।
बैठत सबै सभा हरि जू की, कौन बड़ो को छोट।
'सूरदास' पारस के परसें, मिटति लोह की खोट।

नन्द को नन्दन साँवरो, मेरो-मन चोरे जाइ।
रूप अनूप दिखाइ कै, सखि वह औचक गयो आइ।
मोर मुकुट कुण्डल स्रवन, सिर पीताम्बर फहराइ।
अधरनि पर मुरली धरे, मृदु मधुरी तान बजाइ।
चन्दन की खौरी किये तन, कटि काछनी बनाइ।
'सूरज' प्रभु बैठे लखे में, जमुना-तीर कन्हाइ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महात्मा श्रीचन्द्र

'चेतहु नगरी तारहु गाँव।
अलख पुरुष का सिमरहु नाँव॥'

—मात्राशास्त्र

परम उदासी, असाधारण विरागी और भगवान के विलक्षण अनुरागी महात्मा श्रीचन्द्र ने आचार्य शंकर की तरह भारतीय संस्कृति और अध्यात्म ज्ञान का संरक्षण किया। उन्होंने जीवमात्र को भवसागर से पार उतारने के लिये सुगम तथा आचारमूलक भक्ति का पथ प्रशस्त किया; वे ऐतिहासिक दिव्य पुरुष थे। श्रीचन्द्र ने धर्म की मर्यादा सुरक्षित की, वे जन्मजात योगी थे। उन्होंने ज्ञानयोग की साधना की। महात्मा श्रीचन्द्र के प्राकट्य-समय में भारत की राजनीतिक स्थिति अमित अस्थिर और अशान्त थी, प्रत्येक दिन दिल्ली में नये-नये राज्य की स्थापना की आशंक बनी रहती थी। चारों ओर राजनीतिक षड़यन्त्र और धर्मसम्बन्धी उत्पात का ही बोलवाला था। उस समय मेवाड़ का राजतन्त्र विदेशी सत्ता को दिल्ली से बाहर निकाल कर स्वतन्त्रता की ज्योति फैलाने के लिये पूरा-पूरा यत्नशील था। दिल्ली में लोदी शासन शिथिल हो चला था। बाबर भारत की ओर बढ़ने और राज करने के सपने देख रहा था। इस राजनीतिक अशान्ति के साथ-ही -साथ धर्म-क्षेत्र में शासन हस्तक्षेप कर रहा था। वैष्णव और शैवों का संघर्ष नित्य प्रति उग्र रूप धारण करता जा रहा था। कहीं-कहीं वाम मार्ग की साधना प्रबल थी। निस्सन्देह यदि महात्मा श्रीचन्द्र का ऐसे कठिन और अशान्त समय में प्राकट्य न होता तो देश की धार्मिक स्थिति अत्यन्त विचित्र होती तथा चारों ओर अशान्ति का ही साम्राज्य छा जाता। विकराल युद्ध-वातावरण में महात्मा श्रीचन्द्र ने धर्माचरण का शंखनाद कर भारतीय संस्कृति की रक्षा की, यह उनकी मौलिकता है। वे उदासीन सम्प्रदाय के मध्यकालीन आचार्य स्वीकार किये जाते हैं। उन्होंने भारतीय जीवन को वैदिक मर्यादा से सम्पन्न कर सनातन धर्म का गौरव बढ़ाया, वे धार्मिक समन्वय के मध्यकालीन सूत्रधारों में से एक थे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महात्मा श्रीचन्द्र सन्त नानक के पुत्र थे। उनका जन्म सम्वत् १५५१ वि. में भाद्रपद शुक्ल नवमी को तलवण्डी ग्राम में हुआ था। उन्होंने इतिहासप्रसिद्ध परम पवित्र कुल को धन्य किया। उनकी माता सुलक्षणी अथवा सुलक्खनी देवी थीं। इस समय सन्त नानक बत्तीस साल के थे। श्रीचन्द्र के जन्म-समय में नानक घर के बाहर बैठक में सत्संग कर रहे थे। उनकी बहिन नानकी ने सूचना दी कि अमित तेजस्वी बालक ने जन्म लिया है। पहले तो उनकी मा ने जटा भस्मादि से अलंकृत शिवरूप में उनको देखा पर प्रार्थना करने पर वे साधारण शिशु हो गये। सन्त नानक दिव्य शिशु के जन्म से बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने तत्क्षण समझ लिया कि चन्द्रमा की तरह विश्व का अज्ञान-अन्धकार मिटाने के लिये किसी दैवी आत्मा ने हम लोगों पर कृपा की है, उन्होंने उनका नाम श्रीचन्द्र रखा।

चार साल के बाद नानक दूसरे पुत्र लक्ष्मीचन्द्र के जन्म के बाद संन्यासी वेष में घर से बाहर निकल गये। श्रीचन्द्र पिता के वैराग्य-संस्कार से बचपन से ही प्रभावित होने लगे। वे अन्य लड़कों से बहुत कम मिलते थे। दूर से ही निर्लिप्त भाव से उनके खेल देखा करते थे। एकान्त स्थान में उनका मन बहुत लगता था। घर में लोगों को विश्वास हो गया था कि श्रीचन्द्र भी पिता की ही तरह संन्यास ले लेंगे इसलिये लोग उनके प्रति विशेष सावधान रहने लगे। एक दिन विचित्र बात हुई। श्रीचन्द्र हाथ में थोड़े से चने लेकर भिक्षुक को देने घर से बाहर आये, भिक्षु के पात्र में चने के स्थान पर मोती देख कर घर वाले तथा अन्य लोग आश्चर्य चकित हो गये।...श्रीचन्द्र का अधिक समय एकान्त में बीतता था। वे लोगों से सुना करते थे कि पिता नानक बचपन में इधर-उधर वन में घूमा करते थे। वे अपने गांव से थोड़ी दूर पर एक वन में चले गये। दोपहर तक घर न लौटने पर लोग आशंकित हुए। खोज आरम्भ हो गई। वन में प्रवेश करने पर लोगों ने श्रीचन्द्र को एक पेड़ के नीचे बैठा पाया। उस वन में एक भयानक सिंह रहता था। लोगों ने देखा कि सिंह श्रीचन्द्र के सामने शान्त भाव से बैठा है और वे समाधिस्थ हैं, एक काला नाग उनके गले से लिपटा हुआ है। तलवण्डी के शासक रायबुलार घटनास्थल पर उपस्थित थे। श्रीचन्द्र के दर्शन से वे प्रभावित हुए। दूर-दूर से लोग श्रीचन्द्र का दर्शन करने के लिये आने लगे।

कुछ दिनों के लिये श्रीचन्द्र अपने नाना के घर चले आये, उनके छोटे भाई लक्ष्मीचन्द्र भी साथ थे। एक दिन वे वन में गये, रात को दोनों भाई वन में ही रह गये। उनकी माता सुलक्षणी आदि की चिन्ता बढ़ने लगी। उनके न लौटने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पर लोग खोज में निकल पड़े, सौभाग्य से प्रसिद्ध उदासीन महात्मा अविनाशी मुनि का उनको दर्शन हुआ, मुनि ने सान्त्वना दी कि बालक शीघ्र ही घर आ जायेंगे। मुनि के आशीर्वाद से वे घर आ गये। इस समय श्रीचन्द्र आठ साल के थे। वे अपने भाई के साथ अपने घर तलवण्डी चले आये। ननिहाल में तीन साल तक रहने के बाद वे ग्यारह साल की अवस्था में घर आये थे। यथासमय उपनयन-संस्कारसम्पन्न होने पर विवाह की बात चलने लगी। पर वे तो जन्मजात संन्यासी थे इसलिये विवाह की बात आगे न बढ़ सकी। ....श्रीचन्द्र विद्याध्ययन के लिये काश्मीर गये। वहाँ वे समस्त शास्त्रों में निष्णात हो गये। लोग उनकी कुशाग्र बुद्धि और प्रतिभा से बहुत प्रभावित हुए। चौदह साल की ही अवस्था में उन्होंने सारे शास्त्र पढ़ डाले, काशी के दिग्विजयी पण्डित सोमनाथ को शास्त्रार्थ में गहरी पराजय दी।...धीरे-धीरे उनमें वैराग्य का भाव प्रबल होने लगा। घर और परिवार के प्रति आसक्ति तो थी ही नहीं इसलिये मन में निर्मल वैराग्य का उदय हुआ।

अविनाशी मुनि से उन्होंने दीक्षा ली, वे उस समय अमरनाथ की यात्रा के लिये जा रहे थे। दीक्षित होने के बाद ही गुरु के आदेश से धर्म-प्रचार के लिये उन्होंने भरतखण्ड के प्रसिद्ध तीर्थों और धर्मक्षेत्रों की यात्रा की। वे व्रज, काशी और प्रयाग भी गये थे। जगन्नाथपुरी में उन्होंने दिग्विजयी पण्डित सोमनाथ त्रिपाठी को शिष्य रूप में स्वीकार कर उनका नाम सोमदेव रखा। वे करतारपुर भी गये थे। गांव के बाहर ही उन्होंने आसन लगाया। उनके पिता सन्त नानक उस समय करतारपुर में ही थे। नानक ने उनको संन्यासी और महात्मा के रूप में देख कर परम आनन्द का अनुभव किया। वे करतारपुर से काश्मीर चले आये। इस प्रकार उन्होंने देश में धार्मिक और आध्यात्मिक संगठन सुदृढ़ किया। काश्मीर में महात्मा श्रीचन्द्र ने सात साल तक निवास कर श्रीमद्भगवद्गीता, ब्रह्मसूत्र आदि पर विद्वत्ता-पूर्ण भाष्य लिखे। उन्होंने चारों वेदों पर विस्तार से भाष्य लिखे पर वे अप्राप्य हैं। उन्होंने पेशावर में भी धर्म-प्रचार किया। काबुल गये। लोग उनके यौगिक चमत्कारों से आकृष्ट होकर उनके दर्शन के लिये आने लगे। वजीरखान नामक एक मुसलमान उनकी सीख से प्रभावित होकर 'रामकृष्ण' का नाम लेकर करताल बजा-बजा कर काबुल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

की गलियों में घूमने लगा। मुसलमानों ने उसको काफिर घोषित कर दण्ड देना चाहा पर वे सामने आने पर अन्धे हो गये। वे अपनी करनी पर पछिताने लगे। महात्मा श्रीचन्द्र ने कहा कि वजीरखान के क्षमा करने पर वे देखने लगेंगे। वजीरखान नें क्षमा-दान किया। लोग अधिकाधिक संख्या में इस घटना से प्रभावित होकर श्रीचन्द्र का दर्शन करने के लिये कुटी में आने लगे और उनके शिष्य हो गये। कन्दहार में कामरान से भी महात्मा श्रीचन्द्र की भेंट हुई थी। पेशावर होते हुए वे बारठ आये। बारठ से हरिद्वार और हरिद्वार से सिंध गये। गुजरात होते हुए महात्मा श्रीचन्द्र आबू पहाड़ पर गये। वहाँ उन्होंने अपने गुरु के गुरु वेदमुनि का दर्शन किया। उन्होंने मेवाड़ के कुल-देवता एकलिंग का भी दर्शन किया। मेवाड़पति महाराणा प्रताप को उन्होंने सांस्कृतिक संरक्षण के लिये प्रोत्साहन दिया।

महात्मा श्रीचन्द्र संसार के प्रति पूर्ण अनासक्त—उदासीन थे। उन्होंने अपनी चित्तवृत्ति ब्रह्म-प्राप्ति में लीन कर सनातन धर्म को अभय किया। उन्होंने उदासी सम्प्रदाय में किसी प्रकार के द्वेष, वैमनस्य या संघर्ष का उदय नहीं होने दिया, पंचदेव की उपासना प्रचलित की। अपने-अपने इष्टदेव की उपासना के लिये उदासी पन्थ के लोग उनकी कृपा से स्वतन्त्र हैं। निस्सन्देह तत्कालीन भारत के लिये यह बहुत बड़ा धार्मिक सुधार था। श्रीचन्द्र ने पंचदेवोपासना में एक ही परमात्मा की भक्ति अथवा निष्ठा प्रतिष्ठित की। उन्होंने इस प्रकार आध्यात्मिक क्रान्ति का सृजन किया। उन्होंने कहा:

'निराश मठ निरन्तर ध्यान
निर्भव नगरी दीपक गुरुज्ञान।'

—निराशा ही हमारा मठ है। अभय और अलौकिक ब्रह्म नगर में हमारा निवास है। हमारे मठ में निरन्तर गुरुज्ञान रूपी अखण्ड दीपक जलता रहता है। मुक्ति अनुभव करना हमारा सहज स्वभाव है। महात्मा श्रीचन्द्र ने आचार और निष्ठा पर विशेष बल दिया। गुरुमन्त्र और हरि के नाम को उन्होंने मध्यकालीन उदासीन सम्प्रदाय का प्राण स्वीकार किया। मन, वचन और कर्म से निरन्तर सत्य का अनुष्ठान करते रहने में उन्होंने अमित विश्वास प्रकट किया। श्रीचन्द्र

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ने वेदशास्त्रसम्मत कल्याण मार्ग का उपदेश दिया। ज्ञान, क्षमा, संयम, शील, और काल-मोक्ष अपनाने के लिये उन्होंने अपने अनुयायियों को प्रोत्साहित किया। वे आचार्य शंकर के नवीन संस्करण थे। उन्होंने सारे शास्त्रों का मन्थन कर युगधर्म का स्वरूप निश्चित किया। वे जगद्गुरु थे। उन्होंने भवरोग से पीड़ित जीवमात्र के लिये आत्मज्ञान का रसायन प्रस्तुत किया। जीवात्मा को अभय पद प्रदान किया। अपनी ज्ञान की धूनी में दुःख-सुख जलाकर श्रीचन्द्र ने त्रिगुणात्मक प्रकृति से परे परम निर्मल भागवत रस का आस्वादन किया। उनका मात्राशास्त्र जन्म-मरण के वन्धन से जीव को मुक्त करने का परम साधन है। मात्राशास्त्र के अन्त में श्रीचन्द्र की उक्ति है।

'नानकपूता श्रीचन्द बोले।
जुगत पछाणे तत्व विरोले॥
ऐसी मात्रा लै पहिरै कोय।
आवागमन मिटावै सोय॥'

वे पूरे तत्वज्ञ थे, महात्मा थे।

जीवन के अन्तिम दिन श्रीचन्द्र ने काश्मीर और पंजाव में ही विंताये। वादशाह जहाँगीर श्रीचन्द्र से वहुत प्रभावित था। उसने उनको लाहौर आने का निमन्त्रण दिया और स्वयं उनका दर्शन करने उनके स्थान पर भी गया था। उसके आमन्त्रण पर वे लाहौर गये। जनता और जहाँगीर दोनों ने उनका स्वागत किया। इस समय एक विचित्र घटना हुई। राजसभा में उपस्थित होने पर उनकी गूदड़ी थर-थर काँपने लगी। जहाँगीर ने कारण पूछा तो गूदड़ी शान्त हो गयी और वादशाह का मुख सूख गया, वह थर-थर कांपने लगा। महात्मा श्रीचन्द्र ने कहा कि राजसभा में प्रवेश करने के पहले मुझे ज्वर आने वाला था, मैंने उसे गूदड़ी में छिपा दिया था। लोग उनकी सिद्धि से चकित हो गये।

आचार्य श्रीचन्द्र ने दक्षिण भारत की यात्रा के समय स्वामी समर्थ रामदास को भी धन्य किया था। नीलगिरी के निकट सम्वत् १६८० वि. में स्वामी रामदास से उनकी भेंट हुई थी और उन्हें यौगिक क्रियायें बतायी थीं। दक्षिण की यात्रा समाप्त कर वे बारठ चले

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आये। वारठ से श्रीनगर जाने पर उन्होंने अपने अनुयायियों को मात्राशास्त्र का ज्ञान दिया, उदासी पन्थ में मात्राशास्त्र के वचन वेदमन्त्र के समान पवित्र और महत्वपूर्ण स्वीकार किये जाते हैं। मात्राशास्त्र आत्मज्ञान का साहित्य है। आचार्य श्रीचन्द्र वारठ होते हुए चम्बा की ओर चल पड़े। भगवती रावी के तट पर चम्बा के रमणीय प्रान्त में वे एकान्त साधना करने लगे। सम्वत् १७०० वि. की बात है। एक दिन प्रभात होने के पहले ही वे रावी के पार हो गये और पार्वतीय वन-प्रदेश में सदा के लिये अन्तर्धान हो गये।

महात्मा श्रीचन्द्र का सम्पूर्ण जीवन ज्ञान, भक्ति और कर्म का दार्शनिक समन्वय था। उन्होंने दिव्य आत्मज्ञान की ज्योति फैलायी, समाज की आन्तरिक चेतना जगायी, पृथ्वी पर सत्य, प्रेम और शान्ति का साम्राज्य स्थापित किया। श्रीचन्द्र अनुपम विभूति थे।

रचना

वेद, ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता पर भाष्य लिखे। 'मात्राशास्त्र' उनकी प्रसिद्ध कृति है।

वाणी

गुरु अविनाशी खेल रचाया,
अगम निगम का पन्थ बताया।

निराश. मठ निरन्तर ध्यान,
निर्भव नगरी दीपक गुरुज्ञान।

अकल की बरछी गुणों की कटारी,
मन को मारि करो असवारी।

भाव भोजन अमृत कर पाया,
भला-बुरा मन नहीं बसाया।

अमृत प्याला उदक मन दिया,
जो पीवे सो शीतल भया।

सहज विरागी करे विराग,
माया मोहनी सकल त्याग।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

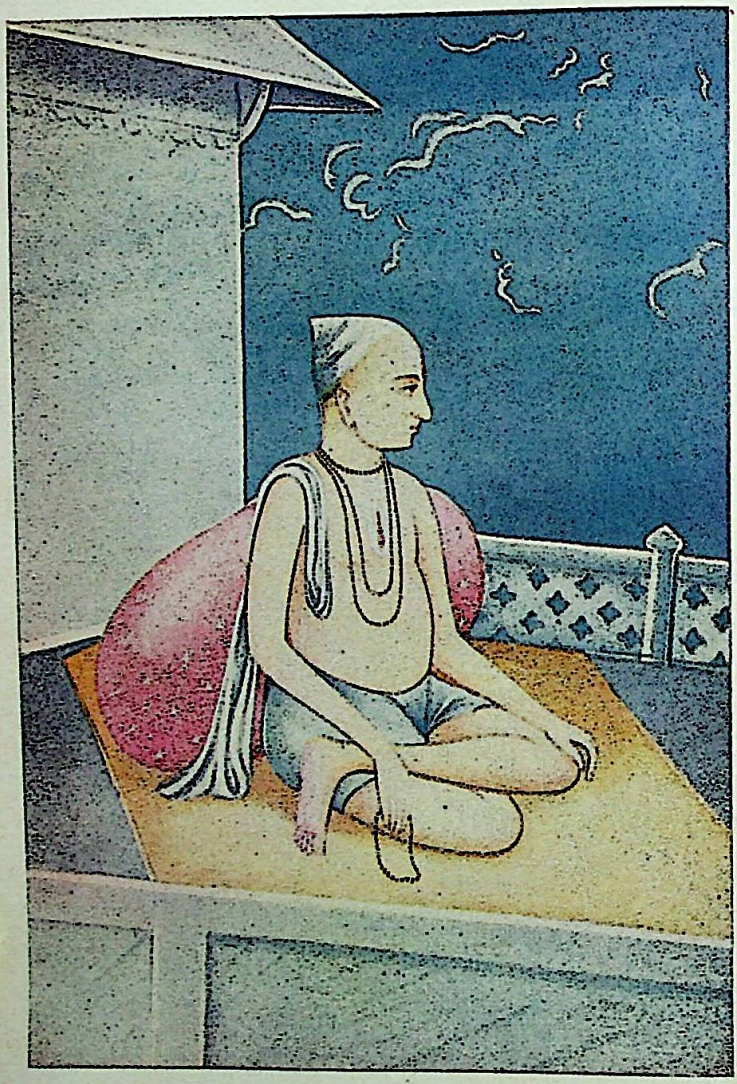

गोस्वामी तुलसीदास

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गोस्वामी तुलसीदास

'आनन्दकानने ह्यस्मिन् जङ्गमस्तुलसीतरुः।
कवितामञ्जरी यस्य राम-भ्रमर-भूषिता॥'

—मधुसूदन सरस्वती

सन्त शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास महर्षि वाल्मीकि के अवतार थे, मध्य-कालीन भारतीय काव्य-साम्राज्य के एकच्छत्र सम्राट थे। उन्होंने मर्यादा पुरुषोत्तम पूर्ण ब्रह्म परमेश्वर राम का काव्य में साहित्य-अवतार सम्भव किया, वे राम के रूप-सौन्दर्य, ऐश्वर्य और माधुर्य के गायक सन्त थे। वे दिव्य शक्ति के साहित्यकार थे। उन्होंने मानवता को 'रामचरित-मानस' के रूप में भगवद्भक्ति-कल्पतरु का दान किया। उनकी वाणी भागवतधर्म की विजयिनी पताका है। उन्होंने भारतीय काव्य–जगत में ही नहीं–भक्ति-क्षेत्र में भी क्रान्ति उपस्थित की, भगवान राम का लोकरक्षक, कल्याणकारी, मंगल स्वरूप प्रस्तुत कर भारतीय संस्कृति को साहित्य के माध्यम से मर्यादित किया, वे बहुत बड़ी ऐतिहासिक विभूति थे। समग्र भारतीय जनता की वाणी ने राम-चरित मानस के स्वर में स्वर मिला कर वेदसंवेद्य राम की अचल भक्ति में सुदृढ़ विश्वास प्रकट किया। तुलसीदास की रामभक्ति विश्वजनीन हो उठी। गोस्वामी तुलसीदास 'क्रान्तदर्शी' कवि तो थे ही, साहित्य-कार भी थे. उन्होने त्रेता के भगवान का स्तवन किया। उनकी लीला-कथा-सुधा से स्वान्तसुख के बहाने अनेक पुराण, निगम-आगम तथा समस्त शास्त्र का मन्थन कर जगत में भक्तिरूपी अमृतधारा का संचार किया। यही उनका सन्तमत है, साहित्य-धर्म है। तुलसीदास के रामचरित मानस ने सनातन तत्व, –मानव-धर्म की सार्थकता में आस्था और विश्वास प्रकट करने वालों को मर्यादा मार्ग के अवलम्बन की सीख दी। विदे-शियों से आक्रान्त भारत देश को भगवदीय मर्यादा का स्मरण-दान कर तुलसी-दास ने जिस क्रान्ति का अभ्युदय किया उसकी रूपरेखा रामचरित मानस की

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपनी मौलिक सम्पत्ति है। रामचरित मानस के काव्यनायक भगवान राम ने तुलसीदास के हृदय में क्रान्ति-साहित्य की सम्पूर्ण ज्योति बिखेर कर धरती को समग्र रूप से आश्वस्त किया। निस्सन्देह मध्यकालीन आसुरी–निशाचरी सत्ता का रामचरित मानस के प्राकट्य से अन्त हो गया। मराठी साहित्य के तुलसीदास रामभक्त महाकवि मोरोपन्त की उक्ति है :–

'श्रीरामपदाब्जअलि तुलसीदास हा सदा गावा।
श्रीवाल्मीकि च झाला श्रीतुलसीदास रामजस गाया।
तरिच प्रेम रसा च खाणि वाणी तशी च वश गाया।
यांचें सुप्रेम भवन कवन निवदितें सदा बुधा सरसें।
हे जों जों सेवावें सेव्यचि गमे, सुधा सरसें।'

–तुलसीदास राम के चरणकमल का रस चूसने वाले भ्रमर हैं। उनकी सदा स्तुति करनी चाहिये। रामयशगान करने में तुलसीदास मूर्तिमान वाल्मीकि ही हो गये है, प्रेमरस की खानि उनकी वाणी वाल्मीकि की वाणी के सदृश ही उनके वश में थी। उनका काव्य उत्तम प्रेममन्दिर है, ज्यों-ज्यों उसका आस्वादन किया जाता है, त्यों-त्यों वह अमृत के समान सेव्य ज्ञात होता है। मोरोपन्त की यह उक्ति समीचीन ही है। तुलसीदास ने रामनामामृत के आश्रय के सम्बन्ध में कहा कि राम-नाम कलियुग में कामतरु है, सकल मंगलों का स्रोत है, इसके स्मरण से पद-पद पर परमानन्द की प्राप्ति होती है, सारी सिद्धि हाथ में आ जाती हैं। उन्होंने जन्म-जन्म के लिये राम से उनके नाम की भक्ति माँगी। सन्त तुलसीदास समन्वयवादी थे। उन्होंने भक्ति मार्ग में शैव-वैष्णव और निर्गुण-सगुण तथा यौगिक और दार्शनिक परम्पराओं का तथा विविध भारतीय साहित्य-चिन्तन-शैली और काव्य-पद्धति का सावधानी से समन्वय किया। वे अपने युग के प्रतिनिधि साहित्यकार, उच्चकोटि के सन्त भक्त और आत्ममानव थे।

गोस्वामी तुलसीदास की जीवन-कथा की अधिकांश-सामग्री रघुवरदास कृत गोसाईं चरित्र और बाबा वेणीमाधव दास के मूल गोसाईं चरित में उपलब्ध होती है। वल्लभ सम्प्रदाय के वार्ताग्रन्थ से भी इस सम्बन्ध में कुछ प्रकाश मिलता है तथा प्रियादास कृत भक्तमाल की टीका में भी उनके जीवन के सम्बन्ध में विशेष उल्लेख मिलता है। इन्हीं ग्रन्थों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के आधार पर तथा रामचरितमानस, कवितावली और विनयपत्रिका में आत्मसम्बन्धी उक्तियों के सहारे उनके जीवनचरित्र का वर्णन किया जा सकता है।

गोस्वामी तुलसीदास सरयूपारीण ब्राह्मण थे। उनके पूर्वज उत्तर प्रदेश के बस्ती जनपद के गाना के मिश्र थे। उन्हें यज्ञ में गणेश जी का भाग मिलता था। गोस्वामी जी के एक पूर्वज परशुराम मिश्र गाना से कसया चले आये। कसया भगवान बुद्ध का समाधि-स्थान होने के नाते इतिहास प्रसिद्ध है। परशुराम मिश्र गोस्वामी तुलसीदास के प्रपितामह थे। वे तीर्थयात्रा के लिये चित्रकूट गये थे। स्वप्न में हनुमान जी का आदेश पाकर वे भगवती कालिन्दी नदी के तट पर राजापुर ग्राम में बस गये। उनके वंशज मुरारी मिश्र गोस्वामी तुलसीदास के पिता थे। तुलसीदास जी की माता का नाम हुलसी था। पिता का नाम कहीं-कहीं आत्माराम भी कहा गया है। तुलसीदास का जन्म बाँदा जिले के राजापुर ग्राम में सम्वत् १५५४ वि. की सावन शुक्ल सप्तमी को अभुक्त मूल नक्षत्र में हुआ। उनके जन्म से माता-पिता के अनिष्ट की आशंका थी। जन्म के समय तुलसीदास ने रुदन नहीं किया और उनके बत्तीस दांत निकले हुए थे। लोग उन्हें देख कर आश्चर्य में पड़ गये। उनका नाम रामबोला अथवा तुलाराम रखा गया।

तुलसीदास की माता का स्वर्गवास हो गया। अभुक्त मूल में पैदा होने के कारण पिता ने उनका त्याग कर दिया। तुलसीदास का बचपन बड़े कष्ट से बीतने लगा। वे दरवाजे-दरवाजे भीख मांग कर अपना पेट भरने लगे। भिक्षा ही उनके बाल्य जीवन की सम्पत्ति हो गयी। चूनी-खूदी पर, कोदो-कन पर उनका शरीर बढ़ने लगा। इस संकटपूर्ण परिस्थिति में भी वे भगवान का सदा स्मरण करते रहे, सदा रामनाम रटते रहे। सात साल की अवस्था में सरयू के तट पर उनका उपनयन-संस्कार सम्पन्न हुआ। नरहरियानन्द या नरहरिदास उनके गुरु थे। उन्होंने सरयू और घाघरा के संगम पर प्रसिद्ध तीर्थक्षेत्र-'सूकर खेत' में अपने गुरु से राम-कथा का श्रवण किया; इसके परिणामस्वरूप उनके मन में राम-भक्ति के परम पुण्यमय पवित्र संस्कार जाग उठे। उन्होंने गुरु के साथ सूकरखेत में पांच साल तक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रह कर रामकथामृत का दैवयोग से रसास्वादन किया। सूकर क्षेत्र से वे काशी आये।.....शेष सनातन से उन्होंने शास्त्रों का अध्ययन किया। कुछ दिनों तक वे चित्रकूट में रहे। चित्रकूट से राजापुर चले आये। उनकी अवस्था इस समय अठाइस साल से अधिक थी। उन्होंने रत्नावली से विवाह किया। रत्नावली में रूप और विद्वत्ता दोनों का अंश था। तुलसीदास अपनी नवविवाहिता रमणी में आसक्त थे पर राम के चिन्तन में उन्होंने शिथिलता नहीं आने दी। एक बार रत्नावली नैहर गयी। तुलसीदास उसके रूप से मुग्ध होकर उससे मिलने चल पड़े। आधी रात का समय था, आकाश में काली-काली घटायें डोल रही थीं, बिजली चमक रही थी, उन्होंने नदी पार की और रत्नावली के पास पहुँच गये। वह उनको देख कर आश्चर्य में पड़ गयी। रत्नावली ने विनम्रता पूर्वक निवेदन किया कि आप ने मेरे प्रति प्रेम कर एक नदी पार कर ली; यदि आप कृपानिकेतन दशरथनन्दन भगवान राम के प्रति अनुरक्त हो जायें तो विकराल भव-सागर पार करने में तनिक भी विलम्ब नहीं लगेगा। रत्नावली ने कहा; समझाया:

'अस्थिचर्ममय देह मम, तामैं जैसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम महँ, होति न तौ भवभीति॥'

तुलसीदास को ज्ञान हो गया—माया मोह का बन्धन टूट गया। संसार की असारता उनकी समझ में आ गयी। उन्होंने वैराग्य-गुरु रत्नावली का स्तवन किया। वे निकल पड़े, पत्नी ने संन्यास लेने से मना किया पर अब तो वे राम के चरण-कमल के मधुप हो चुके थे। उन्होंने निश्चय किया:

'जो चेतन कहँ जड़ करइ, जड़हि करइ चैतन्य।
अस समर्थ रघुनायकहि, भजहि जीव, ते धन्य॥'

वे रामभक्ति में सराबोर हो गये। पत्नी के उपदेश ने उनका जीवन बदल दिया। उन्होंने संसार से अभय होकर कहा:

'कटे एक रघुनाथ संग, बाँधि जटासिर केस।
हम तौ चाखा प्रेमरस, पतिनी के उपदेश॥'

वे प्रयाग आये। विरक्त हो गये। जगन्नाथ, रामेश्वर, द्वारिका, बदरी नारायण आदि की चौदह साल तक तीर्थ-यात्रा करते रहे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तीर्थ-यात्रा के बाद वे काशी में रह कर सन्तों का संग और राम की कथा करने लगे। वे नित्य प्रति शौच के लिये गंगा के उस पार जाया करते थे। शौच से लौटने पर लोटे का शेष जल एक पेड़ की जड़ में डाल दिया करते थे। उस पेड़ पर एक प्रेत रहता था। जल से तृप्त होकर प्रेत ने तुलसीदास के सामने प्रकट होकर वर माँगने के लिये कहा। तुलसीदास ने राम-दर्शन का वर माँगा तो प्रेत ने उनको बताया कि अमुक स्थान की राम-कथा में हनुमान जी पधारते हैं। सबसे पहले आते हैं, सबसे बाद में जाते हैं। उनकी कृपा से राम का दर्शन होगा। तुलसीदास कथा में गये। हनुमान जी ने उन्हें चित्रकूट जाने का आदेश दिया। उन्हें चित्रकूट में राम और लक्ष्मण का दर्शन हुआ। सम्वत् १६०७ वि. की मौनी अमावास्या-तिथि, बुधवार को चन्दन घिसते समय उन्हें अपने आराध्य राम का दर्शन हुआ। हनुमान जी की कृपा से गोस्वामीजी ने रामचरितमानस की रचना का निश्चय किया। उन्होंने काशी में हनुमान घाट पर तथा गोपाल मन्दिर में एक कोठरी में बैठ कर अपनी रचना का अधिकांश लिखा। सम्वत् १६३१ वि. में अयोध्या में मधुमास की नवमी तिथि और भौमवार को उन्होंने रामचरित मानस का प्रकाश किया। रामचरित मानस के प्रणयन में लगभग तीन साल का समय लगा था। उनकी उक्ति है:

'संवत सोरह सै इकतीसा, करौं कथा हरिपद धरि सीसा।
नौमी भौमवार मधुमासा, अवधपुरी यह चरित प्रकासा।'

वे वृन्दावन में नन्ददास से मिलने गये। इस यात्रा में उनकी नाभादास और महात्मा सूरदास से भी भेंट हुई थी। वल्लभसम्प्रदाय के वार्ता-साहित्य से पता चलता है कि नन्ददास उनके गुरु भाई थे। नन्ददास की ऐसी स्वीकृति भी है। नन्ददास ने रामचरित मानस के रचयिता तुलसीदास का गुरुभाई के रूप में स्मरण किया है:

'श्रीमत्तुलसीदास स्वगुरु-भ्राता पद बन्दे।
सेष सनातन विपुल ज्ञान जिन पाइ अनन्दे॥
रामचरित जिन कीन्ह तापत्रय कलिमल हारी॥
करि पोथी पर सही आदरेउ आप पुरारी॥
राखी जिनकी टेक मदनमोहन धनुधारी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आम-ओ-आम रे पी - नागपाल - लेख
अंधेरा

बालमीकि अवतार कहत जेहि संच प्रचारी ॥
नन्ददास के हृदय-नयन को खोलेउ सोई।
उज्ज्वल रस टपकाय दियो जानत सब कोई ॥'

तुलसीदास और नन्ददास दोनों ने काशी में शेष सनातन के पास विद्याध्ययन किया। एक बार काशी से एक लीलामण्डली के साथ रसिक नन्ददास रणछोड़ जी का दर्शन करने के लिये द्वारिका की ओर चल पड़े पर व्रज में यात्रा स्थगित कर विट्ठलनाथ से दीक्षित होकर श्रीनाथ जी की भक्ति में लग गये। तुलसीदास ने उनको काशी बुलाया पर नन्ददास के लिये व्रज छोड़ना असम्भव हो गया। ऐसी स्थिति में गोस्वामी जी स्वयं उनसे मिलने के लिये चल पड़े। वे नन्ददास की कृष्णभक्ति से बहुत प्रसन्न हुए। तुलसीदास ने उनके आराध्य देव, श्रीनाथ जी का राम के रूप में दर्शन किया। उन्होंने व्रजेश्वर के पादपद्मों में अपनी रामभक्ति का साक्ष्य-निवेदन किया:

'का वरनउँ छबि आज की भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक तव नवे, धनुष बान लेओ हाथ ॥'

भगवान श्याम-सुन्दर ने अपने भक्त की निष्कपटता से प्रसन्न होकर वंशी के स्थान पर धनुषबान ग्रहण कर लिया। व्रज-गमन काल में महात्मा सूरदास से भी उनका मिलन हुआ था। दोनों एक दूसरे की भाव-भक्ति से परम प्रभावित थे। सूर ने अपने सूरसागर में रामचरित सम्बंधी कुछ पदों की रचना की तथा गोस्वामी तुलसीदास ने कृष्णगीतावली लिखी। सूर के एक पद से दोनों सन्तों के सरस सत्संग और समागम का पता चलता है: सूरदास की स्वीकृति है:

'धन्य भाग मम सन्तसिरोमनि चरन-कमल तकि आयउँ।
वदन प्रसाद सदन दृग भरिलखि सुख सन्दोह समायउँ ॥
दया-दृष्टि से मम दिसि हेरेउ तत्व स्वरूप लखायो।
कर्म उपासन-ज्ञान जनित भ्रम-संसय भूल नसायो ॥
हरि लीला गायों तेहि सुनि तनु पुलकित मानस धीर।
सुधा समान वचन कहि पोषेउ सुमिरत सिय रघुबीर ॥
श्रीतुलसी सुचि सन्त-समागम अद्भुत अमल अनूप।
'सूरदास' जीवन फल पायो दरसन जुगल स्वरूप ॥'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्रज में तुलसीदास और नाभादास का भी मिलन हुआ था। नाभा जी ने काशी में तुलसीदास से मिलने की इच्छा प्रकट की थी पर उस समय वे ध्यानस्थ थे। नाभादास विना मिले ही व्रज चले आये थे। नाभादास ने भक्तमाल में उनको वाल्मीकि का अवतार स्वीकार किया। जिस समय तुलसीदास नाभा जी से मिलने गये उस समय सन्तों का भण्डारा चल रहा था। नाभा जी ने जान-बूझ कर उनको आदर नहीं दिया; वे उनको सन्तत्व की कड़ी कसौटी पर कसना चाहते थे। खीर परोसने के लिये पात्र नहीं था। गोस्वामी जी ने एक सन्त की पनही लेकर कहा कि इससे बढ़ कर दूसरा पात्र क्या हो सकता है। वे नाभादास की कसौटी पर खरे उतर गये। उन्होंने उनको गले लगाया और कहा कि आज मुझे अपने 'भक्तमाल' का सुमेरु मिल गया।

गोस्वामी तुलसीदास के समसामयिक सन्तों और भगवदनुरागी व्यक्तियों में महात्मा हितहरिवंश, मीरा, रहीम आदि के नाम गण्यित हैं। चित्रकूट-निवास-काल में गोस्वामी तुलसीदास के अवलोकन के लिये हितहरिवंश ने अपने शिष्य नवलदास के हाथ राधा-सुधानिधि ग्रन्थ भेजा था। गोस्वामी जी के सम्बन्ध में हितहरिवंश की उक्ति है:

'कवि कोकिल पूरव हते त्रेता जे 'हरिवंश' हित।
हरिनाम स्वांति कलि माहिं तेइ तुलसीदास चातक उदित॥'

हितहरिवंश मध्यकालीन भारतीय भक्तिक्षेत्र में रसिकराज थे, उनकी इस उक्ति की साहित्यिक महत्ता की उपेक्षा नहीं की जा सकती है।

तुलसीदास को मीरा ने चित्तौड़ की राजसत्ता से उत्पीड़ित होकर पत्र लिखा था कि मेरे लिये क्या करना उचित है। तुलसीदास ने निस्संकोच उत्तर दिया था कि जिसे 'राम-वैदेही' प्रिय न हों उसका कोटि वैरी के समान परित्याग कर देना चाहिये। मीरा ने उनकी सम्मति का आदर किया और व्रज चली आयीं।

रहीम खानखाना तुलसीदास से अमित प्रभावित थे। उन्होंने अपनी रचनाओं में श्रीराम और कृष्ण के प्रति बड़ी भक्ति प्रकट की है। एक बार एक ब्राह्मण, धन के अभाव में अपनी कन्या का विवाह नहीं कर सकता था। गोस्वामी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तुलसीदास और रहीम में बड़ा स्नेह था। तुलसीदास ने एक चिट पर दोहे का एक चरण लिख कर उस ब्राह्मण के हाथ भेज दिया :

'सुरतिय नरतिय नागतिय चाहति हैं सब कोय ।'

रहीम ने ब्राह्मण को प्रचुर धन देकर तथा दोहा पूरा कर तुलसीदास के पास भेज दिया ।

'गोद लिये हुलसी फिरै तुलसी सों सुत होय ।'

रहीम की बरवै–शैली से प्रभावित होकर गोस्वामी तुलसीदास ने बरवै रामायण की रचना की। मूल गोसाईं चरित में वेणी माधवदास की उक्ति है :

'कवि रहीम बरवै रचे, पठये मुनिवर पास ।
लखि तेइ सुंदर छंद में रचना कियेउ प्रकास ।'

काशी-निवासी टोडरमल गोस्वामी जी के अनन्य मित्र थे। महाराज मान-सिंह भी कभी-कभी उनके दर्शन के लिये काशी आया करते थे।

उनके जीवन के सम्बन्ध में अनेक चमत्कारपूर्ण अलौकिक घटनाओं का विवरण मिलता है। एक बार तुलसीदास की कुटी पर चोर चोरी करने गये। वे रात में धनुष-बाण लिये एक श्यामसुन्दर बालक को पहरा देते देख कर लौट आये। दूसरे दिन भी उन्होंने वही दृश्य देखा। तीसरे दिन सवेरे उन्होंने गोस्वामी तुलसीदास से अपने मन की बात कही तो वे स्तब्ध हो गये। उनके नयनों से अश्रु झड़ने लगे कि प्रभु राम ने उनके लिये इतना कष्ट किया। उनके पास कुटी में जो कुछ भी था उसका दान कर दिया।

एक बार एक स्त्री सती होने जा रही थी। उसने रास्ते में गोस्वामी तुलसीदास को प्रणाम किया। उन्होंने उसको सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद दिया। गोस्वामी जी को पता चला कि उसका पति कुछ देर पहले स्वर्गवासी हो चुका है। उन्होंने पति का शव रक्षित रखने का आदेश दिया और भगवन्नाम का कीर्तन करने लगे। गोस्वामी जी की कृपा से स्त्री का पति जी उठा। दिल्लीश्वर जहाँगीर ने इस घटना से प्रभावित होकर करामात दिखाने का निवेदन किया। गोस्वामी जी ने कहा कि मेरे लिये तो राम का नाम ही करामात है। वे बन्दी बना लिये गये। उन्होंने कारागार में हनुमान जी का स्तवन किया। दूसरे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दिन बन्दरों ने राजप्रासाद विध्वंश करना आरंभ किया। बादशाह ने तुलसीदास को मुक्त कर दिया, क्षमा मांगी।

गोस्वामी जी का समग्र जीवन रामभक्ति का प्रतीक है। उन्होंने स्वान्त-सुख अथवा आत्मानन्द के लिये राम का गुणगान कर लोक-कल्याण किया। उन्होंने साहित्य में निगमागमसम्मत रामभक्ति का मन्त्र जगाया, यह उनकी साधना की मर्यादा है, वैदिकता है। राम ही उनके लिये सब कुछ थे। उनकी उक्ति है :

'भरोसो जाहि दूसरो सो करो।
मोको तो राम को नाम कल्पतरु कलि कल्यान फरो॥
करम उपासन ज्ञान वेदमत सो सब भाँति खरो।
मोहि तो सावन के अंधहि ज्यों सूझत रंग हरो॥
चाटत रह्यों स्वान पातरि ज्यों कबहुँ न पेट भरो।
सो हौं सुमिरत नाम सुधारस पेरवत परुसि धरो॥
स्वारथ औ परमारथ हू को नहिं कुंजरो नरो।
सुनियत सेतु पयोधि परवाननि करि कपि कटक तरो॥
प्रीति प्रतीति जहाँ जाकी तहँ ताको काज सरो।
मेरे तों माय-बाप दोउ आखर हौं सिसु-अरनि अरो॥
संकर साखि जो राखि कहौं कछु तो जरि जीह गरो।
अपनो भलो राम नामहिं ते तुलसिहिं समुझि परो॥'

उन्होंने किसी मत का खण्डन नहीं किया, सब का मण्डन करते हुए भी राम-भक्ति पर सुदृढ़ रहे। उन्होंने भक्ति को साधन माना, साध्य नहीं माना। राम ही उनके पूर्ण रूप से आराध्य, साध्य और उपास्य थे। उन्होंने राम के सगुण रूप का चिन्तन किया, उनकी मर्यादापूर्ण लीला का आदर्श समाज के सामने प्रस्तुत किया। समस्त चराचर में राम की कृपा का अनुभव किया। पशु-पक्षी सब में राम का समान रूप से प्रेम चित्रित किया। राम की अरण्य-लीला में जटायु गीध के प्रति जिस आदर का प्रदर्शन तुलसीसाहित्य में हुआ है वह अन्यत्र दुर्लभ है। सीता के अन्वेषण में विकल मायामानव लीला-ब्रह्म राम की स्थिति का निरुपण अमित मौलिक है;

तुलसीदास की वाणी साक्षी है :

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'राघो गोद गीध करि लीनों।
नयन-सरोज सनेह सलिल सुचि मनहु अरघ जल दीन्हों॥
सुनहु लखन ! खगपतिहि मिले बन मैं पितु-मरन न जान्यों।
सहि न सक्यो सो कठिन विधाता, बड़ो पछुआजहि मान्यो॥
बहु विधि राम कह्यो तनु, राखन परम धीर नहिं डोल्यो।
रोकि प्रेम, अवलोकि बदन विधु वचन मनोहर बोल्यो॥
'तुलसी' प्रभु झूठे जीवन लखि समय न धोखो लैहौं।
जाको नाम मरत मुनि दुरलभ तुमहि कहा पुनि पैहौं।'

तुलसीदास के रामचरित मानस के प्रत्येक पात्र का जीवन-ध्येय राम-चरण-शरणागति में ही निरूपित किया गया है। खलपात्र भी राघवेन्द्र की ही ओर अभिमुख चित्रित किये गये हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने राम के रूप में सौन्दर्य-ब्रह्म का चिन्तन किया, ऐश्वर्य-ब्रह्म की सत्ता से अधर्म का नाश किया और माधुर्य-ब्रह्म की भक्ति से स्वान्त सुख का रामायणीकरण किया। उनके रामायणीकरण का मूल आधार सत्य-शिव और सुन्दर का समन्वय था। सच्चिदानन्द रसघनमूर्ति राम के नाम का भक्ति-भाष्य ही रामचरित मानस का मूल विषय है। काव्यकार को राम के स्तवन और आवाहन का समय बड़े भाग्य से मिलता है। शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण करने वाले भगवान विष्णु के राजत्व का प्रतीक धनुष-बाण ग्रहण है। पाप और भौतिकता तथा असत्य के रावण, कुंभकर्ण और मेघनाद की आसुरी संपत्ति बढ़ जाने पर विष्णु जटा और चीर धारण कर अपनी शेष-शक्ति के उपयोग से स्वगत श्री अथवा लक्ष्मी को बचाने के लिये ऋषियों और मुनियों के आश्रम में घूम-घूम कर, तपोवनों में तप और त्याग का वरण कर अध्यात्म-यज्ञ करते हैं, स्वर्ण की आहुति देते हैं। लंका सोने की प्रतीक-आत्मा है, रावण पाप का पर्याय है, सीता दिव्य सम्पत्ति की अधिष्ठात्री हैं, राम चिन्मय ब्रह्म के समग्र ऐश्वर्य-रूप हैं। रामचरित मानस के साहित्य-प्रासाद की नींव इस मान्यता पर खड़ी है। तुलसी के रामचरित मानस ने राम के शरणग्रहण को ही मानवता का आदर्श स्वीकार किया है। 'गए राम सरन सब को भलो।'—अकाट्य सिद्धान्त है। कलिकाल में कल्याण का एक मात्र साधन रामनाम रूपी कल्पतरु ही है, साहित्यकार सन्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तुलसीदास ने इसी को भागवतधर्म अथवा सनातन धर्म स्वीकार किया। तुलसीदास ने राम से निवेदन किया;

'यह विनती रघुबीर गुसाई।
और आस-विस्वास-भरोसो, हरो जीव जड़ताई॥
चहौं न सुगति, सुमति, सम्पति कुछ, रिधि-सिधि बिपुल बड़ाई।
हेतुरहित अनुराग रामपद बढ़ै अनुदिन अधिकाई॥
कुटिल करम लै जाहिं मोहि जहँ जहँ अपनी बरिआई।
तहँ तहँ जनि छिन छोह छाँड़ियो, कमठ अंड की नाई॥
या जग में जहँ लगि या तनु की प्रीत प्रतीत सगाई।
ते सब तुलसीदास प्रभु ही सों, होहिं सिमिटि इक ठाईं।'

उन्होंने कहा कि यदि कामदेव के समान रूप हो, सूर्य के समान प्रताप हो, इन्द्र का वैभव हो तो राम की भक्ति के बिना यह सब कुछ दो कौड़ी का है। उन्होंने रामचरित मानस में रसराज शृंगार को भक्ति के माध्यम से मर्यादित कर चिन्मयता प्रदान की। उनके ऐश्वर्यब्रह्म राम ने वीर-रस की मर्यादा में प्रतिज्ञा की:

'निसिचर हीन करउँ महि, भुज उठाइ पन कीन'

रावण का अन्त करने वाले राम के प्रति तुलसीदास की वाणी ने घोषणा की कि कलियुग में हरि का गुण-गान करना चाहिये, भव-सागर को पार करने का यह सर्वोत्तम उपाय है:

'कलियुग केवल हरि गुन गाहा।
गावत नर पावहिं भव थाहा।'

उन्होंने हरि के नाम-भजन को ही युगधर्म माना। आत्मा को राम-नाम की भक्ति में सराबोर कर स्वान्त सुख का मूल अधिष्ठान राम के गुणगान में सिद्ध किया। उन्होंने रामभक्ति को ही भगवद्दर्शन स्वीकार किया। रामचरित मानस में रावण का वध गौण है, उसका अन्त तो कवि का लक्ष्य था ही पर प्रधान रूप से सन्त तुलसीदास ने ऐश्वर्य के नारायणीकरण की ही ओर ध्यान दिया। रामचरित मानस की साहित्य-समीक्षा से सिद्ध हो जाता है कि तुलसीदास ने अपने पूर्ववर्ती समस्त राम काव्य का 'क्वचिदन्यतोऽपि' के माध्यम से समन्वय किया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वाल्मीकि रामायण में राम-कथा ऐश्वर्य और सौन्दर्य का समन्वय रूप है, अध्यात्म रामायण में राम के सत्य रूप–सत् का दर्शन होता है, महाभारत में उनके ऐश्वर्य का सन्दर्भ मिलता है, श्रीभागवत में व्यास की लेखनी ने शुकदेव के अधरों पर उनका माधुर्य उतारा। तुलसीदास के रामचरित मानस में इन सब रूपों का अत्यन्त विधिपूर्वक साहित्यीकरण हो सका है। रामचरित मानस में राम समग्र रूप से साहित्यमय हैं। तुलसीदास के अलौकिक सन्त-साहित्य ने रामचरित मानस ने राम-दर्शन के माध्यम से कहा :

'राम, स्वरूप तुम्हार, बचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह॥'

सन्त तुलसीदास ने विप्र-धेनु-सुर-सन्त की रक्षा को ही राम की राजसत्ता स्वीकार की। मध्यकालीन भारतीय साहित्य का यही क्रांति रूप है। मानव धर्म है। तुलसीदास ने राम के साहित्य-संरक्षण-आधार से कहा :

'मोरे मन प्रभु अस विस्वासा।
राम ते अधिक राम कर दासा।'

रामचरित मानस सन्त-साहित्य है। सन्तमत का इसमें पूर्ण शास्त्रीकरण मिलता है। यदि यह कहा जाय कि भगवत्त के भारतीय साहित्य में रामचरितमानस सर्वोत्तम आदि सन्त-साहित्य है तो इसमें अतिशयोक्ति नहीं दीख पड़ती। इसका आशय यह नहीं है कि वाल्मीकि और व्यास सन्त नहीं थे, वे संत तो थे ही पर महर्षि थे। मंत्रद्रष्टा वैदिक ऋषि थे। उन्होंने रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत और पुराणों में वैदिक ब्रह्म का रूपक उतारा। तुलसी और सूर ने साहित्य-ब्रह्म का सौन्दर्य-चिन्तन किया। जब संतों की वाणी में राम का साहित्यरूप उतरता है तब जगत पाप और असत्य का परित्याग कर पुण्य और सत्य के बल पर साकेत और गोलोक उतारता है।..... रामचरित मानस राम का कृपासाहित्य है। रामचरित मानस की साहित्यकारिता का संकेत है कि जब तक जीव रामकृपा का दर्शन और अनुभूति नहीं करता है, वह सत्य शिव सुन्दर ब्रह्मानन्द की

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भक्ति नहीं पा सकता। गोस्वामी तुलसीदास ने आजीवन राम की कृपा का दर्शन किया।

जीवन के अन्तिम दिनों में गोस्वामी तुलसीदास काशी में ही थे। वे अस्सी घाट पर रहते थे। अस्सी घाट पर ही उन्होंने रामलीला का आरम्भ किया था।.....अन्त समय में उन्हें बाहु-पीड़ा थी, उन्होंने उसकी निवृत्ति के लिये हनुमान-बाहुक की रचना की थी। सम्वते १६८० वि. में सावन श्यामा तीज को उन्होंने भौतिक शरीर का त्याग कर दिया। गोस्वामी जी ज्ञानी सन्त थे, विज्ञानी भक्त थे। निस्सन्देह वे सन्तसम्राट थे।

रचना

गोस्वामी जी ने रामचरितमानस, कवितावली, गीतावली, विनय-पत्रिका, दोहावली, बरवै रामायण, वैराग्य संदीपिनी, जानकी-मंगल-पार्वती-मंगल, रामलला नेहछू, हनुमान-बाहुक, रामाज्ञा प्रश्न, कृष्णगीतावली आदि की रचना की। उनके ग्रन्थ अवधी भाषा में हैं।

वाणी

जड़ चेतन गुन दोषमय विश्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि वारि बिकार।

आकर चारि लाख चौरासी। जाति जीव जल थल नभ बासी।
सीयराममय सब जग जानी। करौं प्रनाम जोरि जुग पानी।

वेद पुरान संत मत एहू। सकल सुकृत फल रामसनेहू।

कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानौं एक भगति कर नाता।
जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई।
भगति हीन नर सोहै कैसा। बिनु जल वारिद देखिअ जैसा।

स्वारथ साँच जीव कहँ एहा। मन क्रम बचन राम पद नेहा।
सोइ पावन सोइ सुभग सरीरा। जो तनु पाइ भजै रघुबीरा।
राम विमुख लहि बिधिसमदेही। कवि कोबिद न प्रसंसहि तेही।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कामिहि नारि पिआरि जिमि। लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरन्तर प्रिय लागहु मोहि राम॥

—रामचरितमानस

काल कराल बिलोकहु होइ सचेत।
राम नाम जपु तुलसी प्रीति समेत॥
दोष-दुरित-दुख-दारिद-दाहक नाम।
सकल सुमंगल दायक तुलसीराम॥

—बरवै रामायण

बिगरी जनम अनेक की सुधरै अबहीं आजु।
होहि राम को, नाम जपु तुलसी तजि कुसमाजु॥
एक भरोसो एक बल, एक आस बिस्वास।
एक राम घनस्याम हित, चातक तुलसीदास॥
पुरुषारथ स्वारथ सकल, परमारथ परिनाम।
सुलभ सिद्धि सब साहिबी, सुमिरत सीताराम॥

—दोहावली

सीतल बानी संत की, ससि हू ते अनुमान।
तुलसी कोटि तपनि हरै, जो कोउ धारै कान॥
तन करि, मन करि, बचन करि, काहू दूषत नाहिं।
तुलसी ऐसे संत जन, राम रूप जग माहिं॥

—वैराग्य संदीपिनी

सखि! रघुनाथ-रूप निहारू।
सरद-बिधु रवि-सुवन मनसिज-मान-भंजनिहारू॥
स्याम सुभग सरीर जनु मन-काम-पूरनिहारू।
चारू चंदन मनहु मरकत सिखर लसत निहारू॥
रुचिर उर उपवीत राजत, पदिक गजमनि हारू।
मनहुँ सुरधनु नखत गन बिच तिमिर-भंजनि हारू॥
बिमल पीत दुकूल दामिनि-दुति-बिनंदिनिहारू।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वदन सुषमा सदन सोभिभत मदन-मोहनिहारु ॥
सकल अंग अनूप नहिं कोउ सुकवि बरननि हारु ।
'दासतुलसी' निरखतहि सुख लहत निरखनिहारु ॥

—गीतावली

अब लौं नसानी अब न नसैहौं ।
रामकृपा भवनिसासिरानी जागे फिर न डसैहौं ॥
पायो नाम चारु चिंतामनि, उर-कर तें न खसैहौं ।
स्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी चित कंचनहिं कसैहौं ॥
परबस जानि हँस्यो इन इन्द्रिन, निजबस ह्वैन हँसैहौं ।
मन मधुकर पन करि तुलसी रघुपति-पद कमल बसैहौं ॥

—विनयपत्रिका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महात्मा मधुसूदन सरस्वती

'पुञ्जीभूतं प्रेम गोपाङ्गनानां
मूर्तीभूतं भागधेयं यदूनाम् ।
एकीभूतं गुप्तवित्तं श्रुतीनां,
श्यामीभूतं ब्रह्म मे सन्निधत्ताम् ॥'

गोपियों के पुञ्जीभूत प्रेम, यादवों के मूर्तिमान सौभाग्य तथा श्रुतियों के धनीभूत गुप्त धन श्याम ब्रह्म श्रीकृष्ण सदा मेरे समीप ही रहें।

—राधवचैतन्य

महात्मा मधुसूदन सरस्वती वेदान्तप्रतिपाद्य ब्रह्म, चिद्घन परमात्मा के मधुर रूप के अनन्य रसिक थे। वेदान्त के हिमालय पर आत्म-साधना करते हुए भी उन्होंने अपने हृदय में प्रेम की कालिन्दी और भक्ति की मन्दाकिनी के संगम पर श्याम ब्रह्म श्रीकृष्ण की रसानुभूति की। जिस समय महाप्रभु वल्लभाचार्य के दर्शन का मधुर काव्य-भाष्य सूरदास कर रहे थे, अयोध्यापति राम के ऐश्वर्य और सौन्दर्य से सन्त तुलसीदास अपनी वाणी की सौभाग्य-लिपि कर रहे थे, राजस्थान की मन्दाकिनी—मीरा कृष्ण-प्रेम की आराधना कर रही थीं, राधाभाव में रात-दिन निमग्न रहने वाले चैतन्य महाप्रभु की शिष्य-परम्परा भागवत धर्म का मधुर विस्तार कर रही थी, उस समय बंगदेश को अपनी उपस्थिति से गौरवान्वित कर तथा वेदान्त चेतना को भक्तिमाधुर्य से अलंकृत कर मधुसूदन सरस्वती ने अध्यात्म जगत में बड़ा नाम कमाया। वे सन्त तुलसीदास के समकालीन थे। उन्होंने वेदान्त के माध्यम से भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और तप का समन्वय किया। उन्होंने भगवान नीलाचलनाथ— जगन्नाथ की भक्ति से समृद्ध बंग देश के ज्ञानचक्षु को भजनाञ्जन से निर्मल किया। मधुसूदन सरस्वती ने वेदान्त जगत में भगवद्माधुर्यसम्वलित क्रान्ति उपस्थित की। उन्होंने कहा कि भगवान

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विभु, नित्य, पूर्ण और बोधसुखात्मक हैं, द्रवित चित्त से उनका ग्रहण करने पर फिर कुछ भी करने के लिये शेष नहीं रह जाता है। उन्होंने भगवान को सम्पूर्ण सौन्दर्यमय, परम रसमय और निश्शेष चिन्मय देखा।

मधुसूदन सरस्वती का जीवन-काल अप्पय दीक्षित के बाद आता है। उन्होंने परिमलकारपद से उनका उल्लेख कर अमित सम्मान प्रकट किया है। अप्पय दीक्षित का परलोकवास सम्वत् १६५० वि. में हुआ था, इसलिये यह निश्चित-सा है कि मधुसूदन ने विक्रम की सत्रहवीं सदी के उत्तरार्ध में जन्म लिया था; पूर्वार्ध में भी उनकी जन्मतिथि की सम्भावना का अनुमान किया जा सकता है। यह नितान्त निश्चित है कि वे विक्रमीय सत्रहवीं शताब्दी में उपस्थित थे।

मधुसूदन सरस्वती का जन्म उत्तम ब्राह्मण कुल में हुआ था। उनके मूलपुरुष राम मिश्र थे। वंगाल प्रान्त के फरीदपुर जनपद के कोटाल-पाड़ा ग्राम में एक धर्मनिष्ठ ब्राह्मण प्रमोदन पुरन्दर रहते थे। मधुसूदन उन्ही के तीसरे पुत्र थे, वाल्यावस्था में उनका नाम कमलजनयन था। वे बचपन से ही प्रतिभासम्पन्न थे। पढ़ने-लिखने में उनका मन वहुत लगता था। उन्होंने न्याय शास्त्र का वड़े उत्तम ढंग से अध्ययन किया था, उनके शिक्षागुरु हरिराम तर्कवागीश थे। माधव सरस्वती से भी उन्होंने अध्ययन किया था। नवद्वीप-अध्ययन-काल में न्याय के प्रसिद्ध पण्डित गदाधर भट्टाचार्य उनके सहाध्यायी थे। बीस साल की अवस्था में ही मधुसूदन ने नवद्वीप में पूर्णरूप से न्याय शास्त्र का अध्ययन कर लिया। अभी तक वे अविवाहित थे। उनके मझले भाई यादवानन्द न्याय के वहुत वड़े पण्डित थे। वाकला राज्य के अधिपति प्रतापादित्य की राजसभा में उन्हें पर्याप्त सम्मान प्राप्त था। एक दिन कमलजनयन मधुसूदन अपने भाई के साथ वाकला की राजसभा में गये। राजा उनकी विलक्षण काव्यशक्ति से वहुत प्रभावित हुए। उन्होंने मधुसूदन से मनचाहा पुरस्कार माँगने का आग्रह किया। मधुसूदन ने तत्काल विचार किया कि राजा की प्रसन्नता से नश्वर विषयसुख के पदार्थ प्राप्त हो सकते हैं, मुझे तो भगवान की प्रसन्नता प्राप्त करनी चाहिये। उन्होंने राजऐश्वर्य की ओर से दृष्टि फेर ली,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भगवद्भजन को ही अपने जीवन का श्रेय स्थिर कर काशी-गमन का निश्चय किया। उन्होंने काशी के लिये प्रस्थान किया। रास्ते में मधुमती नदी के तट पर अवस्थित होकर उन्होंने बड़ी श्रद्धा और निष्ठा से नदी की उपासना की, नदी मूर्तिमती हो उठी, उसने मधुसूदन को वर दिया। वे काशी गये।

वे काशी में विश्वेश्वर सरस्वती नामक एक दण्डी संन्यासी के मठ में निवास कर शास्त्राध्ययन करने लगे। श्रीधर स्वामी से उन्होंने शास्त्रों का अध्ययन किया। विश्वेश्वर सरस्वती ने उनकी प्रतिभा से आकृष्ट होकर अपने पास बुलाया और संन्यास की दीक्षा दी। संन्यास लेने के बाद मधुसूदन सरस्वती ने श्रीक्षेत्र के निकट एक नदी के तट पर सत्रह साल तक कठोर तप कर सिद्धि प्राप्त की।

मधुसूदन बहुत बड़े शास्त्रमहारथी थे। ऐसा कहा जाता है कि एक समय किसी परमहंस ने उनसे कहा कि शास्त्रज्ञान तो यहीं पड़ा रह जायेगा, मुख्य कार्य तो परमेश्वर की भक्ति है। मधुसूदन के हृदय पर परमहंस की बात का बड़ा प्रभाव पड़ा, शास्त्र आदि के सम्बन्ध में विवाद छोड़ कर उन्होंने भगवद्भक्ति प्राप्त करने में अपने समय का सदुपयोग किया।

श्रीक्षेत्र के निकट नदी तट पर कठोर तप में प्रवृत हुए। वे नेत्र बन्द कर भगवान के चिन्तन-ध्यान में लग गये। निकटवर्ती प्रदेश में वीरसिंह नाम के एक राजा थे। वे निस्संतान थे। वे सदा चिंतित रहते थे। एक रात को उन्हें स्वप्न हुआ कि मधुसूदन यति की सेवा करने से संतान-प्राप्ति होगी। राजा वीरसिंह उनकी खोज में निकल पड़े। संयोग से वे उसी नदी के तट पर पहुँच गये। मधुसूदन नदी की तलहटी में एकान्त स्थान में तप कर रहे थे। उनके तपस्थान का किसी को पता नहीं था। राजा वीरसिंह की छावनी के लिये मिट्टी खोदी जा रही थी, मधुसूदन सरस्वती दीख पड़े। राजा को दृढ़ विश्वास हो गया कि मधुसूदन सरस्वती ये ही हैं। वे उनके चरण पर विनत हो गये। मधुसूदन सरस्वती के लिये एक मन्दिर का निर्माण कराया, राजभोग आदि की राज्य की ओर से व्यवस्था कर दी। इस घटना के तीन साल के बाद मधुसूदन ने नेत्र खोले, वे विस्मित हो उठे और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तीर्थयात्रा के लिये निकल पड़े। भगवद्भक्ति का प्रचार उनकी तीर्थ-यात्रा का मुख्य उद्देश्य था।

श्रीक्षेत्र में तप करते समय घोर दुर्भिक्ष पड़ा। उत्कल के अधिपति महाराज मुकुन्द देव शान्ति के लिये श्रीक्षेत्र आये। उन्होंने मधुसूदन सरस्वती का दर्शन किया। राजा ने निवेदन किया कि अकालग्रस्त प्रजा हाहाकार कर रही है, आप सन्तसमर्थ हैं, प्रजा की रक्षा कीजिये। मधुसूदन सरस्वती राजा की निष्कपटता और प्रजा के प्रति सद्भावना से बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होंने आशीर्वाद दिया कि शस्य-वृद्धि होगी और प्रजा दुर्भिक्ष से मुक्ति पायेगी।

एक समय मधुसूदन सरस्वती महाराजा दरभंगा की राजसभा में भी गये। बड़े-बड़े दिग्गज शास्त्रज्ञ पण्डितों ने उनके चरण में प्रगाढ़ श्रद्धा समर्पित कर घोषणा की :

'मधुसूदनसरस्वत्याः पारं वेत्ति सरस्वती।
पारं वेत्ति सरस्वत्याः मधुसूदनसरस्वती॥'

मधुसूदन सरस्वती ने लोकप्रतिष्ठा की ओर कभी ध्यान ही न दिया। वे तो वेदान्त के अद्वैत राज्य में निर्मल वैराग्य और निष्काम भगवद्-भक्ति के सहारे निष्कंटक विचर रहे थे।

अद्वैत मत—वेदान्त के परम ज्ञाता होने के साथ-ही-साथ मधुसूदन उच्च कोटि के निष्काम भक्त थे। उन्होंने निर्गुण-सगुण भक्तितत्व का एकीकरण किया। श्रीमद्भगवद्गीता की टीका गूढ़ार्थ दीपिका में उन्होंने अनेक स्थलों पर भगवान विष्णु का श्रद्धापूर्वक स्मरण किया है। उनकी उक्ति है :

'ध्यानाभ्यासवशीकृतेन मनसा
तन्निर्गुणं निष्क्रियं
ज्योतिः किञ्चन योगिनो यदि
परं पश्यन्ति पश्यन्तु ते।
अस्माकं तु तदेव लोचनचमत्काराय
भूयाच्चिरं,
कालिन्दीपुलिनेषु यत्किमपि तन्नीलं महो धावति।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

—ध्यानाभ्यास से मन को वश में कर योगी जन यदि किसी परम निर्गुण निष्क्रिय ज्योति को देखते हैं तो भले ही देखें; हमारे लिये तो यमुनातट पर जो अलौकिक नील ज्योति दौड़ती फ़िरती है वही चिरकाल तक नेत्रों को चमत्कृत करती रहे। मधुसूदन सरस्वती ने अपने भक्ति-सिद्धान्त की घोषणा की, गूढ़ार्थ-दीपिका साक्षी है :

'प्रमाणतोऽपि निर्णीतं कृष्णमाहात्म्यमद्भुतम्।
न शक्नुवन्ति ये सोढुं ते मूढ़ाः निरयं गताः॥'

प्रमाण से भी निर्णीत अद्भुत श्रीकृष्ण माहात्म्य को सहने में जो समर्थ नहीं हैं वे मूढ़ नरकगामी होते हैं। उन्होंने अपने समकालीन सम्प्रदायों के सिद्धान्त-समन्वय की भूमिका में कहा :

'शैवाः सौराश्च गाणेशा वैष्णवा शक्तिपूजकाः।
भवन्ति यन्मयाः सर्वे सोऽहमस्मि परः शिवः॥'

शैव, सूर्योपासक, गणेश, वैष्णव और शक्ति जिनमें एक हो जाते हैं वे ही परम शिव मैं हूँ। उनका किसी भी सम्प्रदाय से विरोध नहीं था, उन्होंने सर्वत्र श्याम ब्रह्म शिवमय श्रीकृष्ण का ही दर्शन किया। उनका भगवद्दर्शन अद्वैतसिद्धान्त परक होकर भी रूप-रस से सम्पन्न है। उनकी उक्ति है कि वंशी विभूषित हाथ वाले, नवीन मेघ के समान कान्तिवाले, पीताम्बरधारी, लाल बिम्बफल के समान अधरोष्ठ वाले, पूर्ण चन्द्र के समान सुंदर मुख वाले, कमल के समान नेत्र वाले श्रीकृष्ण ही परम तत्व हैं, उनसे परे मैं किसी दूसरे तत्व को जानता ही नहीं हूँ। इसी कृष्ण-तत्वरसामृतपान के लिये उन्होंने दूसरे जीवों को सावधान किया : भक्तिरसायन के आरंभ में ही उनकी वाणी है :

'संसाररागेण बलीयसा चिरं
निपीडितैस्तत्प्रशमेऽति शिक्षितम्।
इदं भवद्भिर्बहुधा व्ययातिगं
निपीयतां भक्तिरसायनं बुधाः॥'

संसार की महान विषयासक्ति से पीड़ित सज्जनों को उसके शमन के लिये इस अव्यय भक्तिरसायन का सेवन करते रहना चाहिये। इस रसायन से संसारराग का प्रशमन हो जाता है। इसी कथन की परि-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुष्टि में उन्होंने कहा कि कुछ विद्वान किसी अनन्त में चित्त को स्थापित कर विषयान्तर से चित्त शान्त करते हैं पर हे श्रीकृष्ण मेरा मन आप के चरणकमल से निकलते हुए मकरन्दबिन्दु का बार-बार आस्वादन कर प्रसन्न होता है। गूढ़ार्थदीपिका में उनकी उक्ति है :

'पराकृतनमद्बन्धं परं ब्रह्मं नराकृतिं।
सौन्दर्यसारसर्वस्वं वन्दे नन्दात्मजं महः॥'

संसार-बन्ध को निवृत्त करने वाले, नराकृति सौन्दर्य सार सर्वस्व नन्दनन्दन की मैं वन्दना करता हूँ।

उन्होंने सत्यज्ञान सुखात्मक विष्णुतत्व का अनुभव किया।

मधुसूदन सरस्वती की साधना-पद्धति विलक्षण थी। उनकी स्वीकृति है—

'न तं प्रति कृतार्थत्वात् शास्त्रमारब्धुमिष्यते।
प्राक्सिद्ध साधनाभ्यासाद् दुर्ज्ञेया भगवत्कृपा॥'

भगवत्कृपा अचिन्त्य है, पूर्वजन्म में सिद्ध हुए साधनों के अभ्यास से प्राप्त हो जाती है। जो पूर्वजन्मसिद्ध साधनाभ्यास अथवा जन्म से ही विषय-वैराग्य आदि साधन से सम्पन्न अथवा कृतार्थ है, उसके प्रति शास्त्र का आरंभ इष्ट नहीं है। मधुसूदन सरस्वती की गुरु में बड़ी श्रद्धा थी। उन्होंने अपनी कृतियों में गुरु के प्रति बड़े पूज्य भाव प्रकट किये हैं। 'सिद्धान्तविन्दु' ग्रन्थ के आरम्भ में उनकी उक्ति है :

'श्रीशंकराचार्यनवावतारं
विश्वेश्वरं विश्वगुरुं प्रणम्य।
वेदान्तशास्त्रश्रवणालसानां
बोधाय कुर्वे कमपि प्रबन्धम्।'

सन्त-साहित्य के इतिहास में उन्होंने महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया। सन्तों की कृतियों और मान्यताओं में उनका दृढ़ अनुराग था। मधुसूदनी गीता के आरम्भ में उन्होंने भगवत्पाद-भाष्य के प्रति आदर प्रकट किया है। उनका कथन है :

'भगवत्पादभाष्यार्थमालोच्याऽतिप्रयत्नतः।
प्रायः प्रत्यक्षरं कुर्वे गीतागूढ़ार्थदीपिकाम्॥'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उन्हें कर्तृत्व का तनिक भी अभिमान नहीं था। उनका पाण्डित्य अगाध था पर वे विनयी थे। भगवच्चरणारविंद में अपनी कृति समर्पित करने में उन्होंने परमानन्द का अनुभव किया। प्रसिद्ध कृति अद्वैतसिद्धि म उन्होंने स्वीकार किया है:

'कुतर्कगरलाकुलं भिषजितुं मनो दुर्धियां
मयायमुदितो मुदा विषघाति मन्त्रो महान्।
अनेन सकलापदां विघटनेन यन्मेऽभवत्,
परं सुकृतमर्पितं तदखिलेश्वरे श्रीपतौ॥'

द्रवित चित्त की गोविन्दाकारता को ही उन्होंने भक्ति-संज्ञा प्रदान की। उन्होंने सन्तमत को भगवान के परमानन्द स्वरूप की माधुरी से–रसमयता से सम्पन्न किया। भागवत की टीका पर उनकी उक्ति है:

'अनुदिनमिदमायुः सर्वदाऽसत्प्रसङ्गै–
र्बहुविधपरितापैः क्षीयते व्यर्थमेव।
हरिचरितसुधाभिः सिच्यमानं तदैतत्,
क्षणमपि सफलं स्यादित्ययं मे श्रमोऽत्र॥'

तत्कालीन भारत के बड़े-बड़े सन्त-महात्मा उनका परिचय प्राप्त कर अपने आप को कृतार्थ मानते थे, उनके सत्संग से परम लाभ प्राप्त करते थे। गोस्वामी तुलसीदास के प्रति उनके मन में प्रगाढ़ अपनत्व था। भाषा ग्रन्थ रामचरित मानस के प्रचार से काशी की पण्डित-मण्डली ने क्षुब्ध होकर घोषणा की कि यदि मधुसूदन सरस्वती इस पुस्तक को मान्यता प्रदान करेंगे तो यह सर्वमान्य होगी। मधुसूदन रामचरित मानस को देख कर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने अपनी सम्मति प्रदान की:

'आनन्दकाननेऽस्मिन् जङ्गमस्तुलसीतरुः।
कवितामञ्जरी भाति रामभ्रमरभूषिता॥'

इस काशीरूपी आनन्दवन में तुलसीदास तुलसी के चलते-फिरते पौधा हैं। उनकी कविता रूपी मञ्जरी बड़ी सुंदर है जिस पर राम-रूपी भ्रमर सदा मँडराया करता है।.....मधुसूदन सरस्वती के शिष्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुरुषोत्तम सरस्वती थे। उनके पाण्डित्य ने अनेक शिष्यों को शास्त्र-महारथी के पद पर प्रतिष्ठित किया।

संन्यास-ग्रहण के पश्चात् एक समय वे अपनी जन्मभूमि का दर्शन करने गये थे; उनकी इस यात्रा से सम्बद्ध नवद्वीप-प्रवेश के समय ऐसा कहा जाता है कि पण्डित-मण्डली कम्पित हो उठी। उक्ति है :

'नवद्वीपं समायाते मधुसूदनवाकपतौ।
चकम्पे तर्कवागीशः कातरोऽभूत गदाधरः।'

मधुसूदन सरस्वती ज्ञानी भक्त और रसिक महात्मा थे। ऐसा कहा जाता है कि सम्वत् १७०७ वि. तक वे जीवित रहे। वे अलौकिक सन्त थे, शास्त्रज्ञ महात्माओं के नेता थे। नवद्वीप से काशी तक अध्यात्म-जगत में उनका एकच्छत्र साम्राज्य था। वे सरस्वती के वरद पुत्र थ, भगवद्भक्ति-साम्राज्य में अत्यन्त गौरवपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित थे।

रचना

वेदान्त कल्पलतिका, महिम्नस्तोत्र टीका, संक्षेप शारीरक व्याख्या, अद्वैतसिद्धि, अद्वैत रत्न रक्षण, प्रस्थान भेद, सिद्धान्तविन्दु, भक्तिरसायन, भागवत व्याख्या, गूढ़ार्थदीपिका आदि मधुसूदन सरस्वती की प्रमुख कृति हैं।

वाणी

वंशी विभूषितकरान्नवनीरदाभात्
पीताम्बरादरुणविम्बफलाधरोष्ठात्।
पूर्णेन्दुसुंदरमुखादरविन्दनेत्रात्
कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने॥

जिनके करकमल वंशी से विभूषित हैं, जिनकी नवीन मेघ की-सी आभा है, जिनके पीत वस्त्र हैं, अरुण विम्ब फल के समान अधरोष्ठ हैं, पूर्ण चन्द्र के सदृश मुख है तथा कमल के-से नेत्र हैं उन श्रीकृष्ण को छोड़ कर अन्य किसी भी तत्व को मैं नहीं जानता।

—गूढ़ार्थदीपिका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीगोविन्दपदारविंदमकरन्दास्वादशुद्धाशया :
संसाराम्बुधिमुत्तरन्ति सहसा पश्यन्ति पूर्णं महः।
वेदान्तैरवधारयन्ति परमं श्रेयस्त्यजन्ति भ्रमं
द्वैतं स्वप्नसमं विदन्ति विमलां विन्दन्ति चानन्दताम्॥

श्री गोविन्दपदारविन्दमकरन्द रस के आस्वाद से पवित्र अन्तः-करण वाले संसाररूपी सागर के पार उतरते हैं, पूर्ण ज्योति ब्रह्म-स्वरूप का अविलम्ब दर्शन करते हैं, वेदान्त द्वारा परम कल्याण का निश्चय करते हैं, द्वैत भ्रम के स्वप्न का परित्याग कर देते हैं तथा विमल आनन्द प्राप्त करते हैं। —गूढ़ार्थदीपिका

भगवान् परमानन्दस्वरूप : स्वयमेव हि।
मनोगतस्तदाकाररसतामेति पुष्कलम्॥

भगवान स्वयं परमानन्दस्वरूप हैं, वे जब मन में प्रवेश कर जाते हैं तब वह पूर्ण रूप से उन (भगवान) के आकार का होकर रसमय बन जाता है। —भक्तिरसायन

भगवन्तं विभुं नित्यं पूर्णं बोधसुखात्मकम्
यद् गृह्णाति द्रुतं चित्तं किमन्यदवशिष्यते॥

द्रवित चित्त जब सर्वव्यापक, नित्य, पूर्ण, चिदानन्दस्वरूप भगवदाकार धारण कर लेता है तब उसके लिये कुछ भी शेष नहीं रह जाता है। —भक्तिरसायन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रसिक सम्राट् हितहरिवंश

बड़ोई कठिन है भजन ढिग ढरिबो।
तमकि सिन्दूर मेलि माथे पर
साहससिद्ध सती कैसी जरिबो।
रण के चाय घायल ज्यों घूमै
सुरै न गरूर सूर कैसे लरिबो।
'नागरीदास' सुलभ जिनि जानौ
श्री हरिवंश पंथ पग धरिबो॥

—नागरीदास

वृन्दावन दास चाचा के शब्दों में हितहरिवंश रसिक मुकुटमणि थे। हितहरिवंश के प्राकट्य-काल में देश की राजनैतिक स्थिति विगड़ती-सी जा रही थी। दिल्ली में हूमायूं का आधिपत्य था। सूरी वंश केन्द्र में पठान-प्रभुता स्थापित करने के लिये उत्सुक था। प्रान्तीय प्रशासकों की स्वाधीन मनोवृत्ति वादशाही का स्वप्न देख रही थी। धार्मिक क्षेत्र में—विशेषता से भक्तिक्षेत्र में कवीर द्वारा प्रतिपादित और नानक द्वारा समर्थित निर्गुण ज्ञान धारा—सन्तज्ञानधारा के साथ-ही-साथ वैष्णव आचार्यों द्वारा निर्धारित सगुण भक्ति का अविच्छिन्न प्रवाह चल रहा था। नवद्वीप के चैतन्य और दक्षिण के वल्लभ श्रीकृष्णरस की व्याख्या के लिये प्रकट हो चुके थे। साहित्य के क्षेत्र में सूफीसन्त जायसी पद्मावत की रचना में आत्मा-परमात्मा का प्रेम-सम्वन्ध सिद्ध कर रहे थे। ऐसे ऐतिहासिक समय में महात्मा हितहरिवंश का भगवद रस सागर में जीवमात्र को निमग्न करने के लिये प्राकट्य हुआ। लोकमात्र—जीवमात्र के सम्मुख उन्होंने कामना की कि निकुञ्जनव-नागरी केलिप्रिय रसिक शेखर से वृन्दावन प्राणमय है, वे मुझे अपनी प्रियतमा राधारानी के रसमय चरण-कमल में शरण देने की कृपा करें। उनका जन्म मथुरा के निकट वाद ग्राम में सम्वत् १५५६ वि. की वैशाख शुक्ला एकादशी को परम पवित्र ब्राह्मण कुल में हुआ था।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उनके पिता व्यासमिश्र महान् धर्मनिष्ठ और भगवद् कृपापात्र थे। माता तारादेवी भी बड़ी सती-साध्वी थीं। माता-पिता के पवित्र पुण्य के पुञ्जीभूतरूप हितहरिवंश जी महाराज थे। सारा परिवार उनको प्यार करता था। हितकथामृततरंगिणी के एक प्रसंग से ऐसा पता चलता है कि उनके जन्म की अलौकिकता से आकृष्ट होकर दिल्लीश्वर हूमायूँ ने शिशुरूप में उनका दर्शन किया था और अपने को परम कृतार्थ माना था। निस्सन्देह वे दिव्य शिशु थे। श्री राधारानी के जन्म-जात ही नहीं—जन्मजन्मान्तर के ही नहीं— नित्य भक्त थे। शिशु-काल में 'राधा' नाम सुनकर वे किलकारी मार कर हँसने लगते थे। ऐसी मान्यता है कि छः माह की अवस्था में उन्होंने राधासुधानिधि के स्तोत्रों का पाठ किया था, उस समय उनके ताऊ नृसिंहाश्रम स्वामी सौभाग्य से उनके निकट थे। वे शिशु के मुख से सरस स्तवन सुनकर आश्चर्य चकित हो गये। उन्होंने समस्त श्लोक लिख लिये। माता-पिता ने उनके लालन-पालन में किसी भी प्रकार की कमी नहीं रखी।

हितहरिवंश का शैशव अद्भुत चमत्कारों से आपूरित है। एक दिन प्रातः काल श्री हरिवंश जी अपने उपवन में कुछ समवयस्कोंके साथ बाल-क्रीड़ा में रत थे। राधा-कृष्ण में उनकी चित्तवृत्ति निरन्तर लगी रहती थी। उन्होंने दो गोरे और काले बालकों में राधा-कृष्ण की भावना की, उन को सज्जित कर खेलने लगे। कभी राधा को कृष्ण के और कभी कृष्ण को राधा के स्थान पर बैठा देते थे। ठीक इसी समय उनके पिता, जो राधा कृष्ण के बड़े भक्त थे, अपने आराध्य श्रीविग्रहों का शृंगार कर ध्यानस्थ थे। ध्यान-भंग होने पर देखा कि राधा के स्थान पर कृष्ण हैं और कृष्ण के स्थान पर राधा हैं, सोचा कि शृंगार करने में भूल हो गयी पर क्षण मात्र में दृश्य फिर बदल गया। वे आश्चर्य में पड़ गये। घर के बाहर आकर उन्होंने उपवन में देखा कि हितहरिवंश रूप बदलने का खेल खेल रहे हैं, उन्होंने अपने भाग्य की सराहना की और अपने आत्मज की सिद्ध भगवद्भक्ति से आनन्दमग्न हो गये। इसी प्रकार एक दिन हितहरिवंश के पिता ने प्रभात काल में ठाकुर जी का शृंगार कर लड्डू का भोग रखा, उन्होंने तत्काल ही थाली के निकट दोनों में रखे फलफूल भी देखे। उन्हें इस घटना ने आश्चर्य-चकित कर दिया। वे घर से बाहर आकर उपवन की ओर दौड़ पड़े,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देखा हितहरिवंशने दो वृक्षों में राधा-कृष्ण की भावना कर दोनों में फल-फूल का भोग लगाया है। रहस्य उनकी समझ में आ गया। इस प्रकार नित्य-प्रति हितहरिवंश की युगल रूप-माधुरी में अनुरक्ति और भक्ति बढ़ती गयी, वे सदा राधा के रूपसागर के अतल तल पर स्थिर रहने लगे। उनकी वाह्याकारिता अन्तर की रसमयता में रूपान्तरित हो गयी। उनका अधिकांश समय एकान्त में बीतने लगा।

धीरे-धीरे वे पाँच साल के हो गये। लोग उन्हें बहुत मानते थे। एक दिन वे उपवन के निकट खेल रहे थे। राधा कृष्ण के मनोमोहक ध्यान में मग्न थे कि अचानक निकटस्थ सूखे कुएँ में गिर पड़े। उनके पिता पुत्र की यह दशा देख कर विह्वल हो गये; वे उनको बाहर निकालने के लिये स्वयं कुएँ में कूदने ही जा रहे थे कि लोगों ने कुएँ में एक दिव्य प्रकाश फैलते देखा। हितहरिवंश श्याम सुंदरकी एक सुंदर मूर्ति को लेकर बाहर आ गये। कुआँ जल से भर गया। हितहरिवंश ने अपने नये श्यामसुन्दर के विग्रह का नाम नवरंगीलाल रखा। वे नवरंगी लाल ठाकुर की विधिपूर्वक पूजा-अर्चा करने लगे। कुछ दिनों के बाद राधारानी ने उन पर कृपा की, दर्शन दिया तथा मन्त्र दिया। इस प्रकार हितहरिवंश ने राधारूपी गुरु का शिष्यत्व-सौभाग्य पाया। आठ वर्ष की अवस्था में उनका उपनयन-संस्कार हुआ और सोलह साल के होते-होते वे रुक्मिणी देवी से विवाहित कर दिये गये। थोड़े समय के बाद उनके मातापिता का देहान्त हो गया। इस घटना से वे बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने वृन्दावन में रहने का निश्चय किया। नवरंगी लाल की सेवा घरवालों पर सौंप कर वे श्रीकृष्ण और राधा के परम मधुर दिव्य रमणस्थल वृन्दावन के लिये चल पड़े। वे पूर्णानुरागरससागरसारमूर्ति श्रीराधा की कृपा का स्मरण करते चले जा रहे थे। उन्होंने मार्ग में चिड़थावल ग्राम में आत्मदेव नामक ब्राह्मण से भेंट की। ब्राह्मण ने उनको राधावल्लभ की मूर्ति दी। हितहरिवंश वृन्दावन की सुषमा का चिन्तन करते हुए आगे बढ़ने लगे। उन्होंने वृन्दावन में आकर सेवा कुंज में निवास स्थिर किया। राधा वल्लभ की स्थापना की। गृहस्थ वेष में रह कर भजन करने लगे। श्रीराधाकृष्ण के लीलाविलास-सम्बन्धी पदों की रचना करने लगे। उनकी काव्यवाणी परम मधुर है। उनको श्रीकृष्ण की वंशी का अवतार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वीकार किया जाता है। वे राधा वल्लभीय सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे। इस सम्प्रदाय में प्रेम शृंगार के संयोग लीला-विलास का ही आश्रय लिया जाता है; वियोग शृंगार की मान्यता ही नहीं है। कृष्ण राधा से कभी अलग ही नहीं होते हैं, वे उनके साथ नित्य विहार करते रहते हैं। श्रीराधा कृष्ण की निकुंज केलि के चिन्तन का आनन्द ही परमरस—मधुर भाव है। इस सम्प्रदाय में इसी रस का अनुभव किया जाता है। हितहरिवंश ने श्रीराधा की उपासना पर जोर दिया, उनकी उपासना और प्रसन्नता से ही कृष्णभक्ति का आनंद प्राप्त होता है—ऐसी उनकी विज्ञप्ति है। उनका कथन है :

'वैदग्ध्यसिंधुरनुरागरसैकसिन्धु
र्वात्सल्यसिन्धुरतिसांद्रकृपैकसिन्धु :।
लावण्यसिन्धुरमृतच्छविरूपसिन्धु :
श्रीराधिका स्फुरतु मे हृदि केलिसिन्धु :।'

निस्सन्देह हितहरिवंश राधाभाव की उपासना-पद्धति के असाधारण आचार्य थे। बड़े-बड़े समकालीन रसोपासक सन्तों से उनका घनिष्ठ परिचय था। अष्टछाप के सन्त कवियों के प्रति वे विशेष आकृष्ट थे। महात्मा हरिदास स्वामी से उनकी गहरी छनती थी। व्यासदास उनकी उपासना-पद्धति के समर्थक ही नहीं अनुयायी भी थे। महाकवि सूरदास से भी कभी-कभी हितहरिवंश जी का सत्संग हो जाया करता था। हितहरिवंश जी रसकी राजधानी में—वृन्दावन की परम पवित्र दिव्य भूमि में रात-दिन कोटि-कोटि रसराज-सेवित राधारानी के चरणारविंद -मकरन्द का पान करने में ही आत्मा की मुक्ति और परमात्मा की प्राप्ति समझते थे। वे तो रात-दिन कहा करते थे :

'रसना कटौ जु अन रटौ, निरखि अन फुटो नैन।
स्रवन फूटौ जु अन सुनौ, विन राधा जस बैन।'

राधा में उनकी दृढ़ अनन्यता थी। उन के सरस चरण का शीतल आश्रय ही उनके लिये परम सुखद था। उनकी उक्ति है :

'वृन्दावनेश्वरि तवैव पदारविन्दं
प्रेमामृतैकमकरन्दरसौघपूर्णम्
हृद्यर्पितं मधुपतेः स्मरतापमुग्रं
निर्वापयत्परमशीतलमाश्रयामि।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हितहरिवंश रस-उपासक थे, ब्रह्मानन्द से परे परमानन्दरस की प्राणशक्ति श्रीराधारानी के चरणकिंकर थे। व्रजकाव्य की रसचिंतन परम्परा में गोस्वामी हितहरिवंश ने पर्याप्त श्री-वृद्धि की। यद्यपि व्रज-काव्य का रस तो पूर्णतम है तथापि हितहरिवंश की महती देन की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। उनकी रस-चिन्तन-पद्धति मौलिक होते हुए भी वेद-पुराण द्वारा प्रतिपादित थी। उन्होंने स्वकीया-परकीया भाव से परे राधा-प्रेम की पूर्णता स्वीकार की।...जब दर्शन और साहित्य का समन्वय होता है तब धरती पर भगवान का रस-अवतार होता है। भगवान की रस-अभिव्यक्ति श्रीराधा हैं – ऐसी हितहरिवंश की स्वीकृति है: भगवान कृष्ण की सर्वोत्तमा सिद्धि श्री राधा हैं, राधा के लिये शृंगाररस रूपमय हो जाता है। महात्मा हितहरिवंश की सरस उक्ति है:

'यस्याः कदापि वसनाञ्चलखेलनोत्थ
धन्यातिधन्यपवनेन कृतार्थमानी,
योगीन्द्रदुर्गमगतिर्मधुसूदनोऽपि
तस्या नमोऽस्तु वृषभानुभुवो दिशेऽपि।'

हितहरिवंश रसमार्गी सन्त थे, भक्तिरस के दार्शनिक कवि थे। उनका कथन है:

'सा राधेति सदा हृदि
स्फुरतु मे विद्या परा द्वयक्षरा।'

राधा रूपिणी पराविद्या का विज्ञान समझ लेने पर जीव के लिये किसी अन्य आश्रय की आवश्यकता ही नहीं रह जाती है, यह विज्ञान दिव्यतम, मधुरतम और सुन्दरतम है। राधा सुधानिधि में हितहरिवंश का वचन है: मधुर उद्गार है:

'राधानामसुधारसं रसयितुं
जिह्वास्तु मे विह्वला,
पादौ तत्पदकांकितासु चरतां
वृन्दाटवी वीथिषुः।
तत्कर्मैव करः करोतु हृदयं
तस्याः पदं ध्यायतात्तद्भावोत्सवतः परं भवतु,
मे तत्प्राणनाथे रतिः'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हित हरिवंश ने कहा कि यदि जीव वास्तविक सुख चाहता है तो उसे अपना शरीर सत्संग में रखना चाहिये; मन प्रेमरस में सराबोर रखना चाहिये; सदा कृष्णकल्पतरु का सेवन करना चाहिये। हितहरिवंश की वाणी चिन्मय युगल-विहार की अमृत लहरी से स्निग्ध और सिक्त है। गोस्वामी हितहरिवंश के भगवद्भजन की रीति अद्भुत है। उन्होंने राधारानी के चरणों को हृदय में धारण कर श्रीकृष्ण की उपासना की। युगल केलि के कैंकर्य–दास्य को जीवन का श्रेय बताया। हितहरिवंश ने भगवान् की नित्य लीला प्रकट की। उनके सम्बन्ध में वचन मिलता है:

'चन्द्रोनश्यतु सूर्यो वा नश्येत्त्रिगुणवैभवं
दृढ़ः श्रीहरिवंशस्य विहारो नान्यथा भवेत्।'

राधावल्लभीय सम्प्रदाय में राधा की महिमा अनन्त और अपार स्वीकार की गयी है। ऐसा कहा जाता है कि श्रीप्रिया जी ने ललिता को रास-मण्डल की रचना करने का आदेश दिया। उन्होंने कहा कि उस रास-मण्डल में हम दोनों प्रिया-प्रियतम रासक्रिया में स्थित होंगे, तुम लोग परिक्रमा करना।"... प्रिया-प्रियतम ने अभ्यन्तर निकुंज में प्रवेश किया। रास-क्रिया में राधा की नूपुरध्वनि से ब्रह्म का प्राकट्य हुआ, तदनन्तर माया से परे महत्तत्व–पुरुष का प्राकट्य हुआ, नारायण स्वयं आविर्भूत हुए और नारायण के नाभिकमल से ब्रह्मा प्रकट हुए। .....राधातत्व की प्राप्ति और अनुभूति के लिये बड़ी-से-बड़ी तपस्या का वरण करना पड़ता है। राधावल्लभीय सम्प्रदाय में राधा तत्व की बड़ी महिमा है, हितहरिवंश इस तत्व के परम ज्ञाता हीनहीं, अनुभवी भी थे। हितहरिवंश की उपासना सखीभाव की थी। दास्य और कैंकर्य में –सख्य और प्रेम में हितहरिवंश ने राधाकृष्ण की मधुर भक्ति का माध्यम स्थिर किया। आचार्य ने विशुद्ध भगवत्प्रेम का 'राधासुधानिधि' में साहित्यीकरण किया। उनकी परम मार्मिक उक्ति है:

'यत्र यत्र मम जन्मकर्मभिर्नारकेऽथ परमेपदेऽथवा।
राधिकारतिनिकुञ्जमण्डली तत्र तत्र हृदि मे विराजताम्॥'

मैं अपने जन्म-कर्मानुसार नरक में जाऊँ या परमपद प्राप्त करूँ, सर्वत्र मेरे हृदय में श्री राधिकारतिनिकुञ्जमण्डली ही सर्वदा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विराजित रहे। हितहरिवंश को राधा का चरण-कैंकर्य अत्यन्त प्रिय था। उनकी परमाकांक्षा राधा के मुख-सौन्दर्य-अवलोकन में ही विशेष अभिव्यक्त है, उक्ति है :

'सत्प्रेमराशिसरसो विकसत्सरोजं
स्वानन्दसिन्धुरससिन्धुविवर्द्धनेन्दुम्
तच्छ्रीमुखं कुटिलकुन्तलभृंगजुष्ट
श्रीराधिके तव कदा नु विलोकयिष्ये।'

हितहरिवंश ने राधाकृष्ण के असीम विहार-सौन्दर्य का आजीवन चिंतन किया। वे माधुर्य ब्रह्म कृष्ण और उनकी प्राणेश्वरी राधारानी का ही विलास निरन्तर देखते रहे। उनकी स्वीकृति है :

"पौढ़े प्यारी राधिका संग स्याम।
कनक मणिमय जगमगात अति रंग महल निज धाम।
परे परदा सरस सुंदर सहचरी ढिग भाम।
सुरति केलि विलास विलसत राधिका भुज वाम।
किये रसवस प्रान प्रिय को लूटि सब निसि काम।
जान्यो न 'हितहरिवंश' बीतत जात बासर याम।"

महात्मा हितहरिवंश ने वृन्दावन में नित्य वसन्त का विलास पाया। वंशीवट पर सदा मीठी-मीठी दिव्य वंशी ध्वनि का श्रवण किया। उनके नयनों ने नित्य रास का दर्शन किया।

सम्वत् १६०९ विक्रमीय की शारदीय पूर्णिमा उनके जीवन की अन्तिम तिथि थी। वे आनन्दमग्न होकर शारदीय चाँदनी में प्रिया-प्रियतम के पूर्णतम रास-विहार का दर्शन कर रहे थे, उनकी वाणी स्पन्दित थी :

'आज गोपाल रासरस खेलत
पुलिन कल्पतरु तीर री सजनी।
शरद विमल नभ चन्द विराजत,
रोचक त्रिविध समीर री सजनी।
चम्पक बकुल मालती मुकलित
पत्त मुदित पिक कीर री सजनी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देसी सुधंग राग रंग नीको
व्रज जुवतिन की भीर री सजनी।
मघवा मुदित निसान वजायो
व्रत छाँड्यो मुनि धीर री सजनी।
'हित हरिवंस' मगन मन स्यामा
हरत मदन घन पीर री सजनी।'

इस प्रकार उनकी अन्तिम चित्तवृत्ति भगवान कृष्ण और श्रीराधा-रानी की शारदीय रासपूर्णिमा की दिव्य केलि में लगी हुई थी। मरण-सम्वत् १६०९ वि. से आगे भी माना जाता है। महात्मा हित-हरिवंश उच्च कोटि के रसाचार्य, असाधारण भगवत्प्रेमी और गृहस्थ-वेष में भी वैराग्य के हिमालय के शिवमय सत्य-सौन्दर्य थे। उन्होंने वृन्दावन की भागवती समृद्धि-वृद्धि में महान् योग दिया। उनकी भक्ति-मयी रस-उपासना में कर्म, ज्ञान–वैराग्य का तनिक भी प्रवेश सम्भव नहीं हो सका। उनकी रस-उपासना का प्राण कोमलतम भागवत सौन्दर्य-चिंतन ही है। वे पूर्ण रूप से भगवद्रसिक महात्मा थे।

रचना

गोस्वामी हितहरिवंश ने समान रूप से संस्कृत और व्रजभाषा में रचना की। संस्कृत में 'राधा सुधानिधि' और भाषा में 'हितचौरासी' उनकी प्रसिद्ध रचनायें हैं।

वाणी

'राधाकरावचितपल्लववल्लरीके
राधापदाङ्कविलसन्मधुरस्थलीके
राधायशोमुखरमत्तखगावलीके
राधाविहारविपिने रमतां मनो मे।'

राधा के विहार-विपिन में—जिसमें उन्होंने अपने हाथों से वल्लरी के कोंपल का अवचयन किया है, जो उनके पदांकित मधुर स्थली से सम्पन्न है, जिसमें खगावली उनके यश गा रही हैं –मेरा मन रमण करे– आनन्द प्राप्त करे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दिव्यप्रमोदरससारनिजाङ्गसङ्ग
पीयूषवीचिनिचयैरभिषेचयन्ती
कन्दर्पकोटिसरमूर्च्छितनंदसूनु
सञ्जीविनी जयति कापि निकुञ्जदेवी ।

कन्दर्प के कोटि शर से मूर्च्छित नन्दनन्दन को अपनी दिव्य प्रमोद रससारआलिंगनरूपीअमृत-लहरी से सञ्जीविनी प्रदान करने वाली निकुंजदेवी राधा की जय हो।

—राधा सुधानिधि

बनी राधा मोहन की जोरी।
इन्द्रनील मणि स्याम मनोहर सांत कुंभ तन गोरी।
भाल विसाल तिलक हरि कामिनि चिकुर चन्द्र विच रोरी।
गजनायक प्रभु चाल गयन्दनि गति वृषभानु किसोरी।
नील निचोल जुवति मोहनपट पीत अरुन सिर खोरी।
'हितहरिवंस' रसिक राधापति सुरति रंग में बोरी।

बेनु माई बाजै वंसीवट।
सदा वसन्त रहत वृन्दावन पुलिन पवित्र सुभग जमुनातट।
जटित किरीट मकराकृतकुण्डल मुखारविंद भ्रमर मानों लट।
दशननि कुंद कली छविलज्जित सज्जित कनक समान पीत पट।
मुनि मन ध्यान धरत नहिं पावत, करत विनोद संग बालक भट।
दासि अनन्य भजन रस कारण 'हितहरिवंस' प्रकट लीला नट।

रहो कोउ काहू मनहि दिये।
मेरे प्राननाथ श्रीश्यामा सपथ करों तिन छिये।
जो अवतार कदम्ब भजत है धरिदृढ़ व्रत जु हिये।
तेऊ उमगि तजत मरजादा वन विहार रस पिये।
खोये रतन फिरत जे घर घर कौन काज इमि जिये।
'हितहरिवंस' अनत सचु नाहीं विन या रसहिं पिये।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्त मीराबाई

वंशीविभूषित करान्नवनीरदाभात्
पीताम्बरादरुणविम्बफलाधरोष्ठात्
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्
कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने ।

जिनके करकमल वंशी से विभूषित हैं, जिनकी नवीन मेघ की-सी आभा है, जिनके पीत वस्त्र हैं, अरुण विम्बफल के समान अधरोष्ठ हैं, पूर्ण चन्द्र के सदृश सुन्दर मुख और कमल के-से नयन हैं, उन भगवान श्रीकृष्ण को छोड़ कर अन्य किसी भी तत्व को मैं नहीं जानता हूँ।

—मधुसूदन सरस्वती

सन्त मीराबाई के नाम का स्मरण होते ही हृदय-वीणा के सरस तार झंकृत हो उठते हैं; चितवृत्ति में प्रेम-भक्ति की गंगा-यमुना लहरा उठती हैं, मन सरसता के सागर में आलोड़ित हो उठता है। वे अभिनव राधा थीं, गोपीप्रेम की चिन्मय वाणी थीं। उन्होंने व्रजराजेश्वर के रस का आस्वादन करने के लिये चित्तौड़ के राजवैभव की उपेक्षा कर दी। भारत का मध्यकाल भक्ति का स्वर्ण युग था। ज्ञानधारा के साथ-ही-साथ सूर और तुलसी ने सगुणभक्ति की प्रेममयी मन्दाकिनी वहा दी। जनता भगवान के लोकरक्षक और लोकरञ्जन स्वरूपों से परिचित हो गयी। अयोध्या, मथुरा, श्रीरंग, नदिया, जगन्नाथपुरी और पण्ढरपुर तथा द्वारिका आदि में भक्त कवियों और रसिक सन्तों की वाणी व्याप्त हो रही थी। मीरा ने अपनी व्यक्तिगत साधना से केवल अपना ही कल्याण नहीं किया, उन्होंने साहित्य, समाज और देश का बहुत बड़ा हित किया। उनकी अलौकिक तपस्या ने सिद्ध कर दिया कि राजमहल में रहनेवाली राजरानी राजकीय वैभवों पर लात मार कर व्रज की गली-गली में भगवान की खोज करने में आकाश-पाताल एक कर सकती है; पाषाण में प्रतिष्ठित भगवत्प्रतिमा से प्रत्यक्ष संलाप कर सकती

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है। मीराबाई कृष्णमयी थीं। उनके नयनों में सदा नन्दनन्दन अपनी रसमयी केलि चित्रित करते रहते थे। उन्होंने सदा कृष्ण की साँवरी रूप-मधुरिमा का दर्शन करते रहने का अनुष्ठान किया। संतों को सुख देने वाले भक्तवत्सल गोपाल का ध्यान उनका प्राण-धन था। मीरा ने अपने चरित्र में भागवतगत गोपी-प्रेम का सत्य चरितार्थ किया; उनके पदों में उनकी रसानुभूति की वास्तविकता का दर्शन होता है। मीराबाई की जीवन-कथा भक्ति की मध्यकालीन सरस प्रतीकों में एक महत्वपूर्ण स्थान पर प्रतिष्ठित है। यदि राजरानी मीरा का प्राकट्य न होता तो यह असंदिग्ध बात है कि मध्यकालीन साहित्य की सरस भक्ति का इतिहास अधूरा रहता। उनकी कृष्णभक्ति और वैराग्य-वृत्ति सन्त शिरोमणि तुलसीदास द्वारा, मान्य, जीवगोस्वामी द्वारा समर्थित और सन्त रैदास की कृपा से समृद्ध थी। मीरा बाई का जन्म सम्वत् १५६० वि. के लगभग राजस्थान के मेड़ता परगने के कुड़की गाँव में प्रसिद्ध राठौर वंश में हुआ था। वे जोधपुर के संस्थापक राव जोधा जी की प्रपौत्री, मेड़ता के राव दूदाजी की पौत्री और रतन-सिंह जी की पुत्री थीं। उनका लालन-पालन प्रसिद्ध भक्त जयमल जी के साथ हुआ था जिनकी सराहना नाभा जी ने भक्तमाल में की है। जयमलजी मीरा के ताऊ वीरम जी के पुत्र थे। मीरा की उक्ति है :

'मेड़तिये घर जन्म लियो है, मीरा नाम कहायो।'

बाल्यकाल से ही मीरा में भगवद्भक्ति के संस्कार जागृत होने लगे थे। मीराबाई जब दस साल की थीं, उनके घर पर एक सन्त का समागम हुआ। सन्त के पास एक सुन्दर भगवद्मूर्ति थी। मीराबाई का मन मूर्ति के सौन्दर्य पर आकृष्ट हो गया। साधु ने उनको मूर्ति दे दी। सन्त नें कहा कि यह भगवान गिरिधरलाल की मूर्ति है, इसका सावधानी से पूजन करना चाहिये। सन्त के जाने के बाद गिरिधरलाल मीरा के प्राणधन हो गये। वे मूर्ति को स्नान कराने, चन्दन लगाने आदि में ही व्यस्त रहती थीं। एक दिन मीरा ने बरात देखी। अनेक प्रकार के बाजे बज रहे थे, बारात विचित्र ढंग से सजायी गयी थी। मीरा ने घरवालों से पूछा कि मेरा दूल्हा कौन है? उत्तर मिला गिरिधरलाल नन्दनन्दन ही पति हैं। उसी दिन से मीरा ने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नन्दनन्दन को अपना पति मान लिया। वे अल्पावस्था से ही भक्तिपूर्ण पदों की रचना करने लग गयी थीं, अब तो वे आधी-आधी रात तक अपने गिरिधर को पद रच कर सुनाया करती थीं। उन्हें स्वप्न में भी अपने इष्टदेव का दर्शन होने लगा: उनका पद है:

'माई म्हाँने सुपने वरी गोपाल।
राती पीती चूनड़ी ओढ़ी, मेहदी हाथ रसाल॥
काँई और कूं वरूँ भाँवरी, म्हाँ के जग जँजाल।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर करौ सगाई हाल॥'

मीरा का समय भगवान श्यामसुन्दर के रूपसौन्दर्य-चिंतन में बीतने लगा। घरवाले उनकी भक्ति-वृत्ति से बहुत प्रसन्न रहते थे। उनके घर में कृष्ण-प्रेम साकार हो उठा।

यथासमय चित्तौड़ के अधिपति महाराणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र कुमार भोजराज के साथ मीरा का विवाह कर दिया गया। विवाह-मण्डल में मीरा ने गिरिधरलाल की मूर्ति रख दी थी। कुमार के साथ फेरे लेते समय मीरा ने गिरिधर के साथ भी फेरे लिये। उन्होंने सोचा कि हाड़-माँस के नश्वर पुतले से विवाह करने की अपेक्षा अजर, अमर और अविनाशी नन्दनन्दन को अपना पति स्वीकार कर लेना अधिक श्रेयस्कर है। वे गिरिधर गोपाल की मूर्ति लेकर चित्तौड़ आयीं। राज-महल में साक्षात् कृष्णभक्ति ने ही मीरा के रूप में प्रवेश किया।

ससुराल में आने पर सास उनकी उपासना और पूजा-शैली से चिढ़ कर बात-बात में उपेक्षा करने लगी। मीरा से वह जलने लगी। चित्तौड़ के राजमंहल में मीरा ने कृष्णभक्ति की धूनी रमायी। सास और ननद ऊदाबाई ने सोहाग को अक्षुण्ण रखने के लिये मीरा को गौर-पूजन के लिये उत्साहित किया पर मतवाली राजरानी ने कहा कि मेरे तो पति गिरिधरलाल हैं, वे अमर हैं इसलिये मेरे सोहाग की अमरता का प्रश्न ही नहीं उठता है। मीराने रनिवास में अभय होकर घोषणा की:

'वाला मैं बैरागण हूँगी।
जिन भेषाँ म्हारो साहिव रीझे, सोही भेष धरूँगी॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सील सँतोष धरूँ घट भीतर, समता पकड़ रहूँगी।
जाको नाम निरञ्जन कहिये, ताको ध्यान धरूँगी ॥
गुरु के ज्ञान रंगूं तन कपड़ा, मन मुद्रा पैरूँगी।
प्रेम-प्रीत सूं हरि गुण गाऊँ चरणन लिपट रहूँगी ॥
या तन की मैं करूँ कींगरी, रसना नाम कहूँगी।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, साधाँ सग रहूँगी ॥'

चित्तौड़ की राजरानी लोकलज्जा छोड़ कर झाँझ-करताल वजा कर गोविन्द को रिझाये और गाये—'तेरो कोई नहीं रोकणहार मगन होइ मीरा चली', राणा के परिवार के लिये यह वात असह्य थी। पर इधर तो अजव मस्ती थी, कुछ और ही ढंग था। श्याम रंग की तरंग में जिनका मन वह रहा था, उन पर दूसरे का रंग चढ़ता ही किस तरह? दूर-दूर से भक्तमण्डली आने लगी। राजपरिवार मीरा के तपोमय जीवन में विघ्न डालने के लिये कटिवद्ध था पर भगवान की उपासिका का अमंगल करने वालों का चेहरा काला पड़ गया। जिन नयनों में नन्दलाल वसते थे उनमें विश्व के वड़े-से-वड़े सौन्दर्य के लिये स्थान भी तो नहीं था। चित्तौड़ का राजप्रासाद शक्ति से परिपूर्ण तो था ही, राजरानी मीरा के आगमन से वह भक्ति से समृद्ध और सम्पन्न हो उठा। कुमार भोजराज की मीरा सदा प्रसन्न रखने की चेष्टा करती थीं। भोजराज का मीरा के प्रति व्यवहार अत्यन्त शिष्ट और संयमित था। एक वार उनकी वहिन ऊदा ने कुमार से शिकायत की कि मीरा तो रात में मन्दिर का पट वन्द कर न जाने किस पुरुष से आधी रात में वातें करती रहती हैं। कुमार भोजराज पट के वाहर खड़े हो गये। मीरा एकान्त में अपने प्राणप्रियतम गिरिधरलाल के विग्रह से प्रेम-संलाप कर रही थीं। कुमार को ऐसा लगा कि कोई दूसरा व्यक्ति भीतर वैठा है। उन्होंने तलवार खींच ली, भीतर जाकर मीरा से पूछा, मीरा ने कहा कि मैं तो गोपाल लाल से वातें कर रही थी, मैं इस जीवन में किसी दूसरे पुरुष को जानती ही नहीं। भोजराज ने कोना-कोना छान मारा, अन्त में उन्हें अपनी करनी पर वड़ा पश्चात्ताप हुआ। कुमार ने उनके लिये किले से थोड़ी दूर पर रणछोड़ जी का एक मन्दिर वनवा दिया। मीरा उसमें निवास कर संतों की मण्डली

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

में भजन-पूजन करने लगीं। राजमर्यादा के लिये यह बात असह्य हो गयी। उनके साधन में अनेक विघ्न उपस्थित होने लगे। मीरा एक दिन आधी रात को गिरिधर के विरह से घायल होकर निकल पड़ीं। अपने राज्य में ही एक नदी में डूब कर उन्होंने प्राणान्त करने का निश्चय किया। वे नदी में कूदने ही वाली थीं कि भगवान गोविन्द का उन्हें साक्षात्दर्शन हुआ। भगवान ने श्रीमुख से आदेश दिया कि मेरा राज्य वृन्दावन है, वृन्दावन भक्ति-साम्राज्य है, उसमें प्रवेश कर मेरा भजन करना ही कर्तव्य है। राजरानी मीरा राजमर्यादा और लोकशील को ताक पर रख कर वृन्दावन के लिये चल पड़ीं; उन्होंने बड़ी प्रसन्नता और प्रेमोन्माद से व्रज में प्रवेश किया। मीराबाई का कोमल संगीत व्रज के कण-कण में गूंज उठा। सन्त उनके गीत गा-गा कर भगवान को रिझाने लगे। वैराग्य का बाना पहन कर राणा सांगा की कुलवधू ने घोषणा की:

'मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई॥
जाके सिर मोर मुगुट मेरो पति सोई।
तात मात भ्रात बंधु आपनो न कोई॥
छाँड़ि दई कुल की कानि कहा करिहै कोई।
संतन ढिग बैठि-बैठि लोक लाज खोई॥
चूनरी के लिये टूक ओढ़ लीन्हीं लोई।
मोती मूंगे उतार वनमाला पोई।
अंसुवन जल सींचि सींचि प्रेम वेलि बोई।
अब तो बेल फैल गई आणँद फल होई॥
दूध की मथनियाँ बड़े प्रेम से विलोई।
मारवन जब काढ़ि लियो छाछ पियै कोई॥
भगत देखि राजी हुई जगत देखि रोई।
दासी 'मीरा' लाल गिरिधर तारो अब मोई॥'

प्रत्येक मन्दिर में मीराबाई के आगमन के सम्बन्ध में बात होने लगी। कुमार भोजराज उन्हें व्रज से वापस लेने गये। मीरा ने राणा सांगा के वंशज से कहा कि मैं तो गोविन्द का गुण-गान करती हूँ, उनका दर्शन करना और चरणामृत का पान करना मेरा नित्य का

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नियम है, मैं पैरों में घुंघरू बाँध कर उनके मन्दिर में नित्य नृत्य और कीर्तन करती हूँ। भोजराज ने समझाकर उन्हें चित्तौड़ चलने के लिये राजी कर लिया। वे पति के कहने से चित्तौड़ आ गयीं और हरि का भजन करने लगीं। सम्वत् १५८० वि. के लगभग कुमार भोजराज का देहान्त हो गया। राणा सांगा ने भी परलोक-गमन किया। विक्रमसिंह अथवा रतनसिंह चित्तौड़ के राणा हुए। ऊदाबाई के संकेत पर उन्होंने मीरा को सताना आरम्भ किया, अनेक प्रकार के कष्टों से उनकी चित्तवृत्ति फेरने की चेष्टा की पर उनके समस्त प्रयत्न निष्फल हो गये। मीराबाई की गिरिधर नागर में आसक्ति बढ़ती गयी।

राजरानी मीरा की प्रसिद्धि सुनकर तानसेन के साथ दिल्लीश्वर अकबर ने वैष्णव वेष में आकर उनका दर्शन किया और चलते समय रणछोड़ को एक बहुमूल्य हार की भेंट की। दूसरे दिन राणा विक्रम को अकबर के आगमन का पता चला, वे क्रोधोन्मत्त हो उठे। उन्होंने मीरा को बड़ी-से-बड़ी यातना दी। उनका अत्याचार पराकाष्टा पर पहुँच गया। राणा ने उनके जीवन का अन्त कर डालने के लिये विषका प्याला और काला नाग भेजा। पर काल उनका कुछ भी न बिगाड़ सका। मीरा की दशा तो विचित्र हो गयी:

'मीरा मगन भई हरि के गुण गाय॥
साँप पिटारा राणा भेज्या मीरा हाथ दिया जाय।
न्हाय धोय जब देखन लागी, सालिगराम गई पाय॥
जहर का प्याला राणा भेज्या, इम्रत दिया बनाय।
न्हाय धोय जब पीवन लागी, हो गई अमर अँचाय॥
सूली सेज राणा ने भेजी, दीज्यो मीरा सुवाय।
साँझ भई मीरा सोवण लागी, मानो फूल बिछाय॥
'मीरा' के प्रभु सदा सहाई, राखे विघन हटाय।
भजन भाव में मस्त डोलती, गिरिधर पर बलि जाय॥'

प्रेमयोगिनी मीरा को अपने भगवान के बल पर पूरा-पूरा विश्वास था। उनमें दृढ़ आस्था थी। उन्होंने राणा को दिखला दिया: 'थारी मारी न मरूँ, मेरो राखणहारा और।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जिस राजमहल में राग-रंग होता था, दूर-दूर देशों के संगीतज्ञ और कलाकार अपनी कला का परिचय देते थे उसी में सीसोदिया कुल की एक राजरानी ने भगवान का गुण गाकर सारा वातावरण भक्तिभाव से ओत-प्रोत कर दिया।

'पग घुंघरू बाँध मीरा नाची रे॥
लोग कहैं मीरा भई रे बावरी, सास कहैं, कुलनासी रे।
विष को प्यालो राणाजी भेज्यो, पीवत मीरा हाँसी रे॥
मैं तो अपने नारायण की आपहि हो गई दासी रे।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर सहज मिल्या अविनासी रे॥'

समस्त राजपरिवार मीरा का वैरी हो गया। रास्ते के फूल कण्टक बन गये। मीरा के अंग-अंग में भक्ति की धारा प्रवाहित हो उठी। सीसोदिया कुल के राणा भले ही रूठ जायं, 'म्हें तो गोविंद का गुण गास्यां हो माई।'– की तीव्र भाव-भंगिमा उनके अधरों के स्पन्दन में आलोड़ित थी। उन्होंने अच्छी तरह समझ लिया था कि ऐसा जन्म बार-बार नहीं मिला करता है, इसलिये हरि का भजन ही उनके जीवन का एक मात्र शृंगार हो गया।

राणा विक्रम के अत्याचारों से उत्पीड़ित होकर मीरा ने संत शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास को पत्र लिखा, अपने जीवन का वकील चुना तुलसीदास की राजसभा में ही उन्हें उचित न्याय मिलने की आशा थी। राजरानी ने उनके दरबार में आवेदन भेजा:

'स्वस्ति श्री तुलसी कुल भूषण दूषण हरण गुसाईं।
बारहिंबार प्रणाम करहुँ, अब हरहु सोक समुदाई॥
घर के स्वजन हमारे जेते, सबन उपाधि बढ़ाई।
साधुसंग अरु भजन करत मोहिं देत कलेस महाई॥
सो तो अब छूटत नहिं क्यों हूँ, लगी लगन बरियाई।
बालपणें से मीरा कीन्ही गिरिधर लाल मिताई॥
मेरे मात-पिता के सम हो, हरिभगतन सुखदाई।
हमहू कहा उचित करिबो है, सो लिखियो समुझाई॥'

राघवेन्द्र के पदारविन्द-मकरन्द में रात-दिन डूबे रहने वाले महात्मा ने भक्त-हृदय की वेदना समझ ली। उन्हें इस बात का तनिक भी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ध्यान नहीं था कि यदि उत्तर महाराणा के हाथ में पड़ेगा तो उसका भयानक परिणाम हो सकता है। राम-भक्त की वाणी ने अभय होकर उत्तर भेजा :

'जाके प्रिय न राम वैदेही ।
तजिये ताहि कोटि वैरी सम, जद्यपि परम सनेही ॥
तज्यो पिता प्रह्लाद, विभीषन बंधु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रज बनितनि, भये मुद मंगलकारी ॥
नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लों।
अंजन कहा आँखि जेहि फूटे बहुतक कहौं कहाँ लों ॥
तुलसी सो सब भाँति परमहित, पूज्य, प्रान ते प्यारो।
जासों होय सनेह रामपद, एतो मतो हमारो ॥'

आशा के अनुरूप उत्तर पाकर मीरा का हृदय गद्‌गद हो उठा। नयनों में प्रेम की अश्रुधारा बहने लगी। अंग-अंग में रोमाञ्च होने लगा। मन में प्रेम की घटा उमड़ आयी। राजरानी ने महल की ओर देखा, उन्होंने ऐश्वर्य के भौतिक पुतले से विदा माँगी, चित्तौड़ की पवित्र भूमि की वन्दना की। गिरिधर नागर ने अपनी लीलाभूमि में चलने का संकेत किया, उन्होंने मन से कहा :

'चलो मन गंगा-जमुना तीर ॥
गंगा–जमुना निरमल पानी सीतल होत सरीर।
बंसी बजावत गावत कान्हो, संग लिये बलवीर ॥
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, कुण्डल झलकत हीर।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर चरणकवल पै सीर ॥'

ऊदाबाई ने मीरा को रोकना चाहा, ऊदा का मन बदल गया था पर मीरा तो गिरिधर प्रियतम के दर्शन के लिये आकुल थीं। वे ब्रजयात्रा के लिये निकल पड़ीं। मन ब्रजधाम की शोभा देखने के लिये आकुल था। वे पूर्ण रूप से प्रेमोन्मत्त थीं, हृदय में भगवद्‌विरह की आग जल रही थी : वे गाती जा रही थीं :

'मैं गिरिधर के घर जाऊँ।
गिरिधर म्हाँरो साँचो प्रीतम देखत रूप लुभाऊँ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रैण पड़ै तबही उठ जाऊँ, भोर भयें उठ आऊँ।
रैण-दिना वाके संग खेलूं, ज्यूँ-त्यूँ ताहिं रिझाऊँ॥
ज़ो पहिरावै सोई पहिरूँ जो दे सोई खाऊँ।
मेरी उण की प्रीति पुराणी उण बिन पल न रहाऊँ॥
जहँ बैठावें तित ही बैठूँ, बेचै तो बिक जाऊँ।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर बार-बार बलि जाऊँ॥'

वे अपने प्रियतम के देश में पहुँच गयीं। व्रज भूमि की माधुरी से सिक्त श्याम सुन्दर के चिन्मय रूप-सौन्दर्य का आलिंगन कर वे धन्य हो गयीं। व्रज की रीति-नीति निराली थी। मीरा ने देखा कि व्रज में दही बेचने वाली दही का नाम न लेकर कहा करती है कि कोई 'श्याम सलोना' ले लो। उन्हें व्रज में परमानन्द का अनुभव हो गया, कण-कण में प्राण की अमृत-मन्दाकिनी का विलास हो उठा। मीराबाई ने निस्संकोच स्वीकार किया:

'माई री मैं तो लियो गोविन्दो मोल।
कोई कहै छाने कोई कहै छुपके, लियो री बजन्ता ढोल॥
कोई कहै मुँहघो कोई कहै सुहँघो, लियो री तराजू तोल॥
कोई कहै कारो, कोई कहै गोरो, लियो री अमोलक मोल॥
कोई कहै घर में, कोई कहै वन में, राधा के संग किलोल।
'मीरा' को प्रभु दरसण दीज्यो, पूरब जन्म को कोल॥'

वे व्रज भूमि में रह कर बहुत दिनों तक सन्तों का सत्संग करती रहीं। भगवान श्रीकृष्ण की पूर्ण प्रेमप्राप्ति में ही उन्होंने अपना जीवन समर्पित कर दिया। अपने समकालीन सन्तों से वे बहुत प्रभावित थीं। तुलसीदास की महानता के सम्मुख वे विनत थीं। सन्त रैदास की वाणी और कृपा से वे धन्य हो गयीं। उन्होंने अपने पदों में कहीं-कहीं महात्मा रैदास का उल्लेख किया है और उनकी कृपा के प्रति आभार प्रकट किया है। उनकी उक्ति है:

'मीरा मन मानी सुरत सैल असमानी॥
जब जब सुरत लगी वा घर की, पल पल नैनां पानी।
रात दिवस मोहें नींद न आवत, भावे अन्न न पानी॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ऐसी पीर विरह तन भीतर, जागत रैन बिहानी।
कासों पीर कहूँ तन की री, पीर में भरमूं खानी॥
खोजत फिरूँ वैद वा घर को, कोई न करत बरवानी।
संत रैदास मिले मोहिं सत्गुरु, दीनी सुरत सहदानी॥
मैं मिली जाय, पाये पिया अपने, तब मेरी पीर बुझानी।
'मीरा' खाक खलक सिर डारी, मैं अपना घर जानी॥'

मीरा ने रैदास के प्रति अमित श्रद्धा प्रकट की है। गौड़ीय वैष्णव भक्ति से भी वे अमित प्रभावित थीं। एक बार वे गौड़ीय महात्मा जीव गोस्वामी से मिलने गयी थीं। गोस्वामी जी ने यह कह कर कि 'मैं स्त्रियों से नहीं मिलता' मिलना अस्वीकार कर दिया। गिरिधर नागर की सहेली मीरा ने कहला भेजा, 'मैं तो समझती थी व्रज में पुरुष केवल एक श्रीकृष्ण ही हैं पर यह जान कर आश्चर्य हुआ कि एक और भी हैं।' इतना सुनकर जीव गोस्वामी उनसे नंगे पाव मिलने दौड़ पड़े। मीराबाई ने अपने एक पद में गौर हरि चैतन्य का भी नाम लिया है:

'अब तौ हरी नाम लौ लागी।
सब जग को यह माखन चोरा, नाम धर्‌यो वैरागी॥
कित छोड़ी वह मोहन मुरली, कित छोड़ी सब गोपी।
मूड़ मुँड़ाइ डोरी कटि बाँधी, माथे मोहन टोपी॥
मात जसोमति माखन कारन, बाँधे जाके पाँव।
स्याम किसोर भयो नव-गौरा, चैतन्य जाको नाँव॥
पीताम्बर को भाव दिरवावै, कटि कोपीन कसै।
गौर-कृष्ण की दासी 'मीरा', रसना कृष्ण बसै॥'

मीरा केवल भक्त ही नहीं, भावुक कवि भी थीं। कविता उनकी भक्ति का अलंकार है। उनका काव्य हृदय का काव्य है। गिरिधर गोपाल ही उनके काव्य के नायक हैं। उनकी उपासना मधुर भाव की थी। उन्होंने अपने पदों और गीतों में भगवान का पतिरूप में स्मरण किया है। वे प्रेमयोगिनी थीं। भगवान कृष्ण ही उनके प्राणाधार थे। उन्होंने अविनाशी के चरणकमल का भजन करने के लिये मन को

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बार-बार समझाया है कि धरती और गगन के बीच में जो कुछ भी दीख पड़ता है वह सब उठ जायेगा। शरीर मिट्टी में मिल जायेगा, संसार नश्वर है, इसका तनिक भी भरोसा नहीं करना चाहिये। मीरा बाई ने अपने आपको भगवान के चरणों पर समर्पित कर दिया था ; उन्होंने अपने जीवन में गोपीप्रेम की रसानुभूति की। उनकी स्वीकृति है :

"मैं तो साँवरे के रंग राँची।
साजि सिंगार बाँधि पग घुँघरू, लोक लाज तजि नाँची॥
गई कुमति, लई साधु की संगति, भगत रूप भई साँची
गाय गाय हरि के गुण निसदिन, काल व्याल सूँ बाँची॥
उण बिन सब जग खारो लागत, और बात सब काँची।
'मीरा' श्रीगिरिधरन लाल सूँ, भगति रसीली जाँची॥"

उन्होंने रस-भक्ति की साधना की। उनका प्रेम पूर्ण भगवद्विरहानुभूति पर अवस्थित है। वे सदा भगवान के दर्शन के लिये तड़पती रहीं। जो दशा जल के बिना कमल और चन्द्रमा के बिना रात की होती है उसी का अनुभव मीराबाई ने किया। उनका समग्र जीवन व्रजरस से परिपूर्ण था। उन्होंने श्रीकृष्ण के व्रजलीला सम्बन्धी अनेक पदों की रचना की, व्रजलीला-वर्णन में उन्होंने हृदय का रस उढ़ेल दिया है। एक पद में उनकी सरस उक्ति है :

'जागो बंसी वारे ललना जागो मोरे प्यारे॥
रजनी बीती भोर भयो है, घर-घर खुले किंवारे।
गोपी दही मथत सुनियत है, कंगना के झनकारे॥
उठो लाल जी भोर भयो है, सुरनर ठाढ़े द्वारे।
ग्वाल-बाल सब करत कुलाहल, जय-जय सबद उचारे॥
माखन-रोटी हाथ में लीनी, गउवन के रखवारे।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर तरण आया को तारे॥'

उनकी साहित्यिकता में श्रीकृष्ण की रसमयी लीला का दर्शन होता है। प्रकृति और पुरुष का अनुभव-पूर्ण चित्रांकन देखने को मिलता है। उन्होंने प्राकृतिक सौन्दर्य में अपार्थिवता, भगवत्ता और चिन्मयता का ही निरूपण किया है : उनकी एक पद में उक्ति है कि मैं बादल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देख कर डर गयी। सर्वत्र पानी-ही-पानी दीख पड़ता है। मैं बाहर खड़ी होकर भीज रही हूँ। दूसरे पद में कथन है कि सावन की घटा देख कर मुझे अपने प्रियतम के आगमन का पता चल जाता है। नन्हीं-नन्हीं बूंदों और शीतल पवन से मन आनन्दित हो उठता है। एक पद में यमुना तट पर स्थित कृष्ण के सौन्दर्य-माधुर्य में उनका चित्रण है :

'या मोहन के मैं रूप लुभानी।
सुन्दर वदन कमल दल लोचन, बाँकी चितवन मंद मुसकानी।
जमुना के नीरे तीरे धेनु चरावै, बंसी में गावै मीठी बानी।
तन-मन-धन गिरिधर पर वारूँ, चरण कवल 'मीरा' लपटानी॥'

मीरा व्रज से द्वारिका चली आयीं। वे रणछोड़ के सामने नाचती और कीर्तन करती थीं। चित्तौड़ के अधिपति ने उन्हें द्वारिका से चित्तौड़ ले जाना चाहा पर अभिनव राधा—मीरा ने जाना अस्वीकार कर दिया। सम्वत् १६३० वि. के लगभग वे एक दिन रणछोड़ जी के सम्मुख नृत्य तथा संगीत से उनका मनोरञ्जन कर रही थीं कि एक दिव्य ज्योति ने भगवान की प्रतिमा से निकल कर उनका आलिंगन किया, मीरा ज्योति में समा गयीं। यह मूर्ति डाकोर जी में है और मीरा का चीर बगल में लटका हुआ है। राजरानी मारी मध्यकालीन भारत में कृष्णभक्ति की कल्पलता थीं, रस की सजीव चिन्मय मूर्ति थीं, वे परम भक्त और सन्त थीं।

रचना

राजरानी मीरा के भक्तिसम्बन्धी तथा लीलासम्बन्धी अनेक पदों का संग्रह उपलब्ध है।

पद

बसो मोरे नैनन में नन्दलाल।
मोहनी मूरत साँवरी सूरत नैना बने विसाल॥
मोर मुकुट मकराकृत कुण्डल अरुन तिलक वर भाल।
अधर सुधारस मुरली राजत उर वैजन्ती माल॥
छुद्र घंटिका कटि तट शोभित नूपुर सबद रसाल।
'मीरा' प्रभु सन्तन सुखदायी भगत बछल गोपाल॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नहि ऐंसो जनम वारम्बार।
का जानूं कछु पुण्य प्रकटे मानुसा अवतार॥
बढ़त छिन-छिन घटत पल-पल जात न लागे बार।
बिरछ के ज्यों पात टूटे, बहुरि न लागै डार॥
भवसागर अति जोर कहिये, अनत ऊँडी धार।
रामनाम का बाँध बेड़ा उतर परले पार॥
ज्ञान चौसर मण्डी चोहटे सुरत पासा सार।
या दुनिया में रंची बाजी जीत भावे हार॥
साधु-संन्त महन्त ज्ञानी चलत करत पुकार।
दासी 'मीरा' लाल गिरिधर जीवणा दिन चार॥

हेरीं मैं तो प्रेम दीवाणी, मेरो दरद न जाणे कोय॥
घायल की गति घायल जाणे कि जिण लाई होय।
जौहरि की गति जौहरि जाणे कि जिण जौहर होय॥
सूली ऊपर सेज हमारी सोवण किस विध होय।
गगन मण्डल पै सेज पिया की किस विध मिलणा होय॥
दरद की मारी वन-वन डोलूं वैद मिल्या नहिं कोय।
'मीरा' की प्रभु पीर मिटैगी जब वैद साँवलिया होय॥

दरस बिनु दूरवण लागे नैन।
जब ते तुम बिछुड़े पिय प्यारे कबहु न पायो चैन॥
सबद सुनत मेरी छतियाँ काँपै मीठे लागें बैन।
विरह कथा कासूं कहूँ सजनी बह गई करवत ऐन॥
कल न परत पल हरिमग जोवत भई छमासी रैन।
'मीरा' के प्रभु कब रे मिलोगे, दुख मेटण सुख दैन॥

हरि मेरे जीवन-प्राण अधार।
और आसरो नाहीं तुम बिन तीनूं लोक मंझार॥
आप बिना मोहि कछू न सुहावै निरख्यो सब संसार।
'मीरा' कहै मैं दास रावरी दीज्यौ मती बिसार॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महात्मा व्यासदास

जय जय विशद व्यास की वानी
मूलाधार इष्ट रसमय उत्कर्ष भक्तिरस सानी।
रस शृंगार सरस यमुना सम वर धारा घहरानी।
विधिनिषेध तरुवर तरु तोरत हरिजसजलधि समानी।
जुगल बिहार विटप सों लिपटी सुबरन वेलि निवानी।
लगे रंगीले सुमन जासु मैं फल रसमय निरवानी।

—नीलसखी

महात्मा व्यासदास परम रसज्ञ थे। उन्होंने अपने जीवन में हितहरिवंश द्वारा प्रतिपादित निकुंजलीलागत वृन्दावन-रस की सरस अनुभूति की। मध्यकालीन वृन्दावन-रस के परमोत्कर्ष-काल में उन्होंने अपनी सरस कृष्णभक्ति से लोकमात्र का कल्याण किया। वे परम निःस्पृह, उच्च कोटि के विरागी और कविहृदय सन्त थे। उन्होंने वृन्दावन को परम धन स्वीकार किया। वे चैतन्य महाप्रभु और श्रीमद्वल्लभाचार्य के समकालीन थे, हितहरिवंश को उन्होंने अपना पथप्रदर्शक बनाया। उनकी वाणी की कृपा से वृन्दावन का रसराजत्व जाग उठा, माधुर्य रस का यौवन उमड़ पड़ा, वे वैराग्य के रसरूप थे। उन्होंने कहा कि वृन्दावन ही वास्तविक धन है। करोड़ों सोने के पहाड़ का परित्याग कर नन्दनन्दन का भजन करना ही जीवन का श्रेय है। वृन्दावन में राधारानी की चरण-धूलि की लक्ष्मी बलिहारी लेती है। गोपियों का नित्य रास होता है और कृष्ण वंशी बजाते रहते हैं। वृन्दावन की लीला अद्भुत है। उसका वैभव अद्भुत है। व्यास ने वृन्दावन का रस-वैभव प्रकट किया। उनका जीवन-काल भगवान् की लीला-भक्ति के प्राकट्य का प्रतीक था।

दिल्ली की राज सत्ता लोदी और सूर वंश के हाथ से निकल कर मुगलों को विजयमाला पहना रही थी। देश बाबर के आक्रमण से

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आतंकित था। केन्द्रीय शासन पर शक्तिहीनता का प्रकोप बढ़ रहा था। प्रान्तीय शासकों में स्वतन्त्र होने की चेष्टा चल रही थी। ऐसे ऐतिहासिक समय में मध्यभारत के ओड़छा राज्य को महात्मा व्यास ने अपने जन्म से गौरवान्वित किया था। ओड़छा में उस समय महाराज मधुकर शाह राज कर रहे थे। परम पवित्र भगवती वेत्रवती नदी के तट पर सम्वत् १५६७ वि. में मार्ग शीर्ष पंचमी को ओरछा में महात्मा व्यासदास का जन्म हुआ। उनका नाम हरिराम रखा गया। उनके पिता सुमोरवन शुक्ल पर सरस्वती और लक्ष्मी दोनों की समान रूप से कृपा थी। उनकी माता पद्मावती परम शीलवती और सुशिक्षिता थीं। माता-पिता ने उनको अच्छी-से-अच्छी शिक्षा देने की व्यवस्था की। स्वयं सुमोखन शुक्ल ने ही उनको युगल मन्त्र की दीक्षा देकर उन्हें भक्ति का प्रकाश दिखाया। हरिराम बड़े ज्ञानी और शास्त्र-महारथी थे। यौवन में प्रवेश करते ही सुशीला नामक कन्या से उनका विवाह कर दिया गया।... गृहस्थाश्रम में उनकी रुचि नहीं थी, वे शास्त्रार्थ और अध्ययन में ही अपना समय लगाते थे। उनकी विद्वत्ता से प्रसन्न होकर महाराज मधुकर शाह ने उनको अपना गुरु बना लिया दोनों में बड़ा प्रेम था।

पिता के परलोक-गमन के बाद वे ओड़छा राज्य के राजगुरु-पद पर प्रतिष्ठित हुए। वे पण्डितों का पता लगा कर उनसे शास्त्रार्थ करने जाया करते थे और अपनी विजय में उनको बड़ा आनन्द मिलता था। एक बार वे काशी गये। काशी के शास्त्र-महारथियों ने उनका लोहा मान लिया। उन्हें 'व्यास' की उपाधि से समलंकृत किया। उन्होंने श्रावण मास में भगवान् विश्वनाथ का अभिषेक कराया और उनके विशेष कृपापात्र हो गये। काशी-निवास-काल में एक साधु ने उनसे स्वप्न में काशी में कहा कि विद्वत्ता की पूर्णता भगवद्भक्ति की प्राप्ति में है। इस स्वप्न का उन पर बड़ा प्रभाव पड़ा, ज्ञान का मद उतर गया और विनम्रतापूर्वक भगवतद्भक्ति के रसास्वादन के लिये उनका मन समुत्सुक हो उठा।

हरिराम व्यास काशी से ओड़छा चले आये। उनका जीवन बदला हुआ-सा था। राजवैभव, घर-गृहस्थी, परिवार और शास्त्रार्थ आदि के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रति वे पूर्ण अनासक्त हो उठे थे। उनका मन वैराग्यरस से निर्मल हो चुका था। उनका हृदय गुरु के चरणों में सर्वात्मसमर्पण के लिये प्रस्तुत था। इसी समय ओड़छा में वृन्दावन के रसिक सन्त हितहरिवंश के शिष्य नवलदास का आगमन हुआ। व्यासने उनके भक्तिपूर्ण सत्संग से प्रभावित होकर सदा के लिये वृन्दावन को प्रस्थान किया।

वे वृन्दावन की सीमा में पहुँच गये, बार-बार सोच रहे थे कि मैं कब व्रजवास करूँगा। उन्होंने यमुना जी को प्रणाम किया, कलिन्द-नन्दिनी में स्नान कर वे सेवाकुंज की ओर हितहरिवंश से मिलने चल पड़े। द्रुम और लताओं को भेंटने लगे मानों वे उनके परम आत्मीय थे। हृदय भक्तिभाव से परिपूर्ण था, नयनों में आनन्द के नीरकण थे, वे गा रहे थे:

'हम कब होहिंगे व्रजवासी।
ठाकुर नन्दकिसोर हमारे, ठकुराइन राधा-सी।
कब मिलिहैं वे सखी-सहेली हरिवंसी हरिदासी।
वंसीवट की शीतल छैयाँ सुभग नदी जमुना-सी।
जाको वैभव करत लालसा कर मीड़त कमला-सी।
इतनी आस 'व्यास' की पुजवहु वृन्दाविपिन-विलासी।'

महात्मा हितहरिवंश राधावल्लभ का राग-भोग सिद्ध कर रहे थे, अपने ठाकुर के लिये भोजन बना रहे थे। उन्होंने हरिराम व्यास का आगमन सुनकर पात्र अलग रख दिया और आग पानी डाल कर बुझादी। व्यास जी ने कहा कि आग—बुझाने की क्या आवश्यकता थी, भोजन बनता रहता और बात भी होती रहती। हितहरिवंश ने समाधान किया कि मन बड़ा चंचल है। इसकी वृत्ति व्यभिचारिणी होती है। इसे एक समय एक ही विषय में लगाया जा सकता है, इसको श्रीराधावल्लभ के चरणों में लगा देना ही उचित है। इस घटना से व्यास जी बहुत प्रभावित हुए। हितहरिवंश ने उनको दीक्षा दी और अपने शिष्य रूप में स्वीकार कर लिया। हरिराम व्यास का नाम व्यास-दास हो गया। वे सेवाकुञ्ज के निकट ही एक मन्दिर में निवास कर भगवत्सेवा में लग गये। श्यामसुंदर के रसराज्य में—वृन्दावन-रस में हितहरिवंश की कृपा से उन्होंने प्रवेश किया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उनका मन श्रीराधावल्लभ की प्रेम-भक्ति में आसक्त हो गया। वे वृन्दावन के कण-कण में अपने आराध्य का दर्शन करने लगे। वे राधा-रानी से विनय करने लगे कि हे वृषभानुनन्दिनी मैं आप की चरण-धूलि चाहता हूँ, मेरी परम इच्छा है कि मैं किसी कुंज में एक कोने में बैठ कर राधा-श्याम का नाम गाता रहूँ। जिस धूलि को शिवसनकादि रात-दिन खोजते रहते हैं उसी को मैं अपने मस्तक पर चढ़ाना चाहता हूँ। मेरी अभिलाषा है कि मैं आप का दर्शन करता रहूँ और साथ-ही-साथ आप के यश-गान से अपनी वाणी सरस और पवित्र बनाता रहूँ। वे वृन्दावन में रहने लगे। ओड़छा नरेश ने उनको घर वापस लाने के लिये अपना मन्त्री भेजा। व्यासदास तो कृष्णरस में इतने अनुरक्त हो गये थे कि उन्होंने प्रण कर लिया था कि प्राण चाहे चले जायें पर मैं वृन्दावन से कभी बाहर नहीं जाऊँगा। मन्त्री ने हितहरिवंश से व्यास के ओड़छा जाने की आज्ञा ले ली। व्यास जी को बड़ा दुख हुआ। वे तीन दिनों तक छिपे रह गये। चौथे दिन गुरु हितहरिवंश ने बड़ी खोज करायी तो उन्होंने उनके सम्मुख आने का निश्चय किया। वे मुख पर कालिख पोत कर तथा साथ में एक गदहा लेकर आये और पूछने पर कहा कि मैंने जिनके चरणों में आश्रय लिया है वे मुझे वृन्दावन से बाहर निकालना चाहते हैं इसलिये मुख काला कर गदहे पर बैठ कर संसार में लौटना ठीक होगा। हितहरिवंश उनकी गुरुनिष्ठा और व्रजभक्ति से बहुत प्रसन्न हुए। महात्मा व्यासदास का ओड़छा जाना स्थगित हो गया। सन्तों की पंक्ति में बैठकर उनका जूठा प्रसाद खाते व्यास को देख कर मन्त्री के मन में घृणा का उदय हुआ। उसने सोचा कि राजपुरोहित आचारभ्रष्ट हो गये हैं इसलिये उनका ओड़छा जाना कदापि उचित नहीं है। व्यास तो चाहते ही यही थे। मन्त्री ने ओड़छा पहुँच कर भावुक राजा को सारी बातें बतायीं। वे भक्तहृदय के पुरुष थे। उनके मन में व्यास के प्रति श्रद्धा बढ़ गयी। उन्होंने सोचा कि यदि इतने बड़े भगवद्भक्त का मेरी राजधानी में एक दिन के भी लिये आगमन हो जाय तो ओड़छा पवित्र हो जायेगा। वे व्यास को ले आने के लिये स्वयं वृन्दावन गये। उन्होंने व्यास जी से बड़ा आग्रह किया पर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्यास जी ने स्वीकृति न दी। राजा ने उनको बलात् पालकी में बैठा कर ले चलना चाहा। व्यास जी एक-एक द्रुम और लता से भेंट करने लगे। उनका आलिंगन कर कहने लगे कि मेरा क्या पाप था जिससे मुझे व्रज से जाना पड़ रहा है। राजा मधुकर शाह उनका व्रजप्रेम देख कर चरणों पर गिर पड़े, कहा कि महाराज! आप जैसा चाहें वैसा करें। व्यास का जाना रुक गया। उन्होंने राजा को दीक्षा दी और भगवद्भजन का उपदेश दिया। व्यास की पत्नी ने भी ओड़छा से आकर पति से दीक्षा ली और वृन्दावन में एकान्त में रह कर भगवान के भजन में अपना जीवन सार्थक किया। व्यासदास की उक्ति चरितार्थ हो गयी।:

'मोसों पतित न अनत समाइ।
याही तें मैं श्रीवृन्दावन की
सरन गह्यो है आइ।'

व्रज के चराचर उनके लिये परमप्रिय थे, सब उनके अपने थे। निस्सन्देह महात्मा व्यासदास व्रज-रस के महापण्डित थे, कृष्णतत्व के ज्ञाता और राधा के चरण-सेवक थे।

वृन्दावन-निवास काल में उन्होंने अनेक चमत्कार दिखाये। एक बार रास-उत्सव हो रहा था। वृन्दावन के बड़े-बड़े रसिक और सन्त उपस्थित थे, उनके नेत्रों से लीला-आनन्दविभोर अश्रु-प्रवाह चल रहा था। परिकर सहित राधाकृष्ण के स्वरूप रास-मण्डल में नृत्य कर रहे थे। थोड़ी देर में राधारानी का चरण-नूपुर टूट गया। परमानन्द में रसाभास होने की आशंका थी कि तत्काल लीला-विभोर व्यास ने अपना यज्ञोपवीत तोड़ कर नूपुर बांध दिया, मर्यादा-मार्ग रसमार्ग से पराजित हो गया, आर्य पथ का परित्याग कर व्यास ने रास का आनन्द प्राप्त किया। सन्तों और महात्माओं ने उनके आचरण की बड़ी प्रशंसा की।

एक बार ओड़छा से रत्नजटित वंशी किसी ने ठाकुर जी के शृंगार में अर्पित करने के लिये भेजी थी। वंशी थोड़ी-सी मोटी थी। वंशी धारण कराते समय श्रीविग्रह की अंगुली कुछ छिल गयी। व्यास जी के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मन में बड़ा दुख हुआ। ...वे कुंज से बाहर आ गये। थोड़ी देर में प्रभु ने रसिक भक्त की प्रसन्नता के लिये वंशी स्वयं धारण कर ली।

एक बार किसी भक्त ने जरकसी पाग भेजी थी। व्यासदास के बार-बार प्रयत्न करने पर भी प्रभु ने शृंगार में उसको धारण नहीं किया। व्यास जी ने कहा कि वास्तव में आप बड़े चंचल हैं। यदि आपको मेरी बाँधी पाग पसन्द नहीं आती है तो आप स्वयं बाँध लें। वे कुंज से बाहर आ गये। प्रभु ने पाग धारण कर ली। दर्शन करने वालों से पाग की प्रशंसा सुनकर व्यास परमानंद सागर में सराबोर हो गये। उन्होंने बड़ी अनन्यता से प्रभु के चरणों की धूलि बार-बार मस्तक पर चढ़ायी और अपना जीवन परम सफल माना।

व्यासदास भगवान के ही रूप-चिन्तन राग-भोग और शृंगार में सदा लीन रहते थे। व्यासदास ने वृन्दावन में सन्तप्रेम की गंगा, रस उपासना की यमुना और कुंज तथा निकुंज की लीलाओं की सरस्वती के संगम पर श्री राधाकृष्ण की शृंगारजा भक्ति -मधुर भक्ति का सफल अनुष्ठान किया। उन्होंने राधा-वल्लभीय सम्प्रदाय की उपासना-पद्धति पर ही जोर दिया। ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक और तुलसी की माला में उनका अक्षुण्ण विश्वास था। वे हितहरिवंश को अपना गुरु और सखा मानते थे। उन्होंने उनसे वृन्दावन की सहज माधुरी का आस्वादन किया। व्यासदास को विशाखा का अवतार स्वीकार किया जाता है। सन्तों के चरणों में उनकी बड़ी श्रद्धा और भक्ति थी। लीला-मानसरोवर-हंस कह कर उन्होंने अपने गुरु हितहरिवंश का स्तवन किया है। उन्होंने गौड़ीय वैष्णव रूप और सनातन तथा नामदेव, जयदेव, कबीर, रैदास, पीपा, सेन, धना आदि का अपनी काव्य-वाणी में स्मरण किया है, वे किसी सम्प्रदाय विशेष के कठघरे में सीमित नहीं थे; वे भगवद्भक्तों की चरण-धूलि के सच्चे चिंतक सन्त थे। स्वामी हरिदास में भी उनकी बड़ी निष्ठा थी। उनके लिये उन्होंने कहा है:

'ऐसो रसिक भयो नहि ह्वै है
भुवमण्डल आकास।
देह विदेह भये जीवत ही
बिसरे बिस्व बिलास।'

व्यासदास उच्च कोटि के रसिक थे। उन्होंने अपने आप को राधा वल्लभ का प्रियदास कहा है। उन्होंने राधावल्लभ को छोड़ कर किसी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दूसरे का भजन नहीं किया। सदा राधाकृष्ण का चित्रांकन किया:

'मोहिनी को मोहन प्यारो।
आनन्द कन्द सदा वृन्दावन कोटि चंद उजियारो।
व्रजवासिन के प्रान जीवनि धन गोधन को रखवारो।
नन्दयसोदा को कुलमण्डन, दुष्टनि मारन वारो।
चरन सरन साधारन तारन आरत हरन हमारो।
नव निकुञ्ज सुख पुंजनि वरसत 'व्यासहि' छिन न विसारो।'

उन्होंने कहा कि राधाकृष्ण की छवि का वर्णन नहीं हो सकता है। शेष और ब्रह्मा के वश की वात नहीं है कि वे राधावल्लभ का रूप-वर्णन कर सकें। भरतखण्ड की कविमण्डली भी इस दिशा में थक जाती है। व्यासदास ने राधावल्लभ की उपासना सखी भाव से की। उन्होंने कुंज और निकुंज दोनों की लीलाओं का आनन्द अपने गुरु हितहरिवंश की कृपा से प्राप्त किया। कुंज लीला में सखी भाव का प्रवेश है पर निकुंज लीला में तो भाव या वाणी की तनिक भी गति नहीं है। उसमें तो केवल प्रिया-प्रियतम का ही अप्रकट विहार चलता है, यह लीला मधुरतम है। यही वृन्दावन-रस है। व्यासदास ने इसका अनुभव किया था। उन्होंने अपने मन से सदा कहा:

'मन रति वृन्दावन सो कीजै।'

वृन्दावन में सदा श्यामाश्याम के रासरस की वृष्टि होती रहती है। व्यासदास ने कहा कि मेरी जाति अनन्य रसिकों की है। मेरी कुलदेवी श्रीराधारानी हैं तथा व्रजवासी ही मेरे भाई-बन्धु हैं। उन्होंने वृन्दावन-रस का बखान किया है:

'वृन्दावन की सोभा देखे मेरे नैन सिरात।
कुंज-निकुंज पुंज सुख बरसत, सबको हरसत गात।
राधा-मोहन के निज मंदिर महाप्रलय नहिं जात।
ब्रह्मा ते उपज्यो न, अखण्डित कबहूँ नाहिं नसात।
फनि पर, रवि तर, नहिं विराट महं, नहिं संध्या नहिं प्रात।
निरगुन सगुन ब्रह्म ते न्यारो बिहरत सदा सुहात।
'व्यास' विलास रास-अद्भुत गति, निगम अगोचर बात।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्यास ने अपनी काव्य-वाणी में वृन्दावन तत्व प्रकट किया। उनके वृन्दावन-तत्व का मूलाधार श्रीराधारानी का नाम है, इस परम पवित्र नाम का भगवान कृष्ण अपनी वंशी में बार-बार आवाहन करते रहते हैं। हरि के गुणगान को ही व्यासदास ने कलियुग का परम पुण्य कर्म स्वीकार किया। जीवनके अन्तिम समय तक वृन्दावन में निवास कर उन्होंने निकुंज-लीला में प्रवेश किया।

रचना

उन्होंने व्रजभाषा में भक्तिपूर्ण पदों की रचना की। व्यासदास की रचना 'व्यास वाणी' सिद्धान्त और रस-विहार—दो भागों में विभाजित है।

वाणी

साँचे मन्दिर हरि के सन्त।
जिनिमें मोहन सदा विराजत, तिनहिं न छोड़त अंत।
जिनि महँ रुचि कर भोग भोगवत पाँचौ स्वाद अदंत।
जिनि महँ बोलत-हँसत कृपा करि चितवत नैन सुपंत।
अपने मत भागवत सुनावत रति दे रस बरसंत।
जिनि में बसि संदेह दूरि करि देह धरम परजंत।
जहँ न संत तहाँ न भागवत भक्त सुसील अनंत।
जहाँ न 'व्यास' तहाँ न रासरस वृन्दावन को मंत।

ऐसौ मन कब करि हौ हरि मेरो।
कर करवा कामरि कांधे परि कुंजनि माँझ बसेरो।
व्रजवासिनि के टूक भूख में घर-घर छाँछ महेरो।
छुधा लगे जब माँगि खाउँगो गनों न साँझ सबेरो।
रास-विलास वृत्ति करि पाऊँ मेरे खूँट न खेरो।
'व्यास' विदेही वृन्दावन में हरिभक्तन को चेरो।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परम धन राधा-नाम अधार।
जाकों स्याम मुरली में टेरत सुमिरत बारम्बार।
जंत्र मंत्र अरु वैदतन्त्र में सभी तार को तार।
श्री सुक प्रकट कियौ नहिं याते जान सारको सार।
कोटिन रूप धरे नन्दनन्दन तऊ न पायो पार।
'व्यासदास' अब प्रगट बखानत डारि भार में भार।

वृन्दावन के राजा दोऊ स्याम राधिका रानी।
तीन पदारथ करत मँजूरी मुक्ति भरत जहँ पानी।
करनी धरनी करी जेवरी धरु छावत हैं ज्ञानी।
जोगी जती तपी संन्यासी इन चोरी कैं जानी।
पनिहाँ वेद पुरान मिलनियां कहत सुनत यह बानी।
घर-घर प्रेम भक्ति की महिमा 'व्यास' सबनि पहिचानी।

हरि गुन गावत कलिजुग रहिये।
बिधि व्यौहार रह्योन कछू अब, साधु चरन निजु गहिये।
इहि संसार समुद बोहित उठि हरिहरि कहत निबहिये।
'व्यास' स्याम की आस करहु उपहास सबनिको सहिये।

किसोरी, तेरे चरननि की रज पाऊँ।
बैठि रहौं कुंजनि के कोने, स्यामराधिका गाऊँ।
या रज सिवसनकादिक खोजत सो रज सीस चढ़ाऊँ।
'व्यास' स्वामिनी की छवि निरखत विमल विमल जस गाऊँ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संत परमानंददास

'पौगंड बाल कैसोर गोपलीला सब गाई।
अचरज कहा यह बात हुतौ पहिलौ जु सखाई।
नैननि नीर प्रबाह रहत रोमांच रैन दिन।
गदगद गिरा उदार स्याम सोभा भीज्यो तन।
सारंग छाप ताकी भई श्रवन सुनत आवेस देत।
व्रजवधू रीति कलिजुग विषे परमानन्द भयो प्रेमकेत।'

—भक्तमाल

सन्त परमानन्ददास मध्यकालीन कृष्ण-प्रेम की ध्वजा थे। अष्ट-छाप के सन्तकवियों में विरह-गान में वे सर्वश्रेष्ठ स्वीकार किये जा सकते हैं। परमानन्ददास रात-दिन श्रीकृष्ण के विरह में डूबे रहते थे, उनको रह-रह कर कृष्ण की व्रजरस-लीला का आवेश होता रहता था। श्रीभगवान को वे अपना प्रियतम प्राणाधार समझते थे। उनके तन-मन श्यामसुंदर के शोभा-सागर में सदा भीजे रहते थे। उनकी प्रेम-साधना उच्च कोटि की थी, वाणी भगवद्भक्ति-गान में सिद्ध थी। उनकी कविता में हृदय की कोमलता और मधुर भावों का दर्शन होता है; वे लीलारसिक सन्त थे।

वे महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य थे। महाप्रभु की उन पर बड़ी कृपा थी। गोसाईं विट्ठलनाथ की दृष्टि में वे महान भगवदीय और असाधारण लीलागायक कवि थे। उनकी वाणी ने अकबरकालीन भारत में केन्द्रीय राजसत्ता की द्विविधात्मक नीति से लोक-जीवन को सावधान कर भगवान की ओर उन्मुख करने में आचार्य महाप्रभु वल्लभ और उनके आत्मज विट्ठलनाथ जी के पवित्र भक्ति-आन्दोलन में—आध्यात्मिक अथवा भागवती क्रान्ति में पूरा-पूरा सहयोग दिया। परमानन्द भगवत्प्रेम की अप्रतिम विभूति थे। उन्होंने कृष्ण के विरह में लाखों पद रचे। उन्होंने सख्य, वात्सल्य और मधुर रस की अनु-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भूति से मध्यकालीन भक्ति-साहित्य को समृद्ध किया। गुरु के चरण में सर्वस्व समर्पित कर उन्होंने परमानन्द प्राप्त किया। अष्टछाप के कवियों ने साहित्य में व्रजभक्ति के सिन्दूर—कृष्ण का काव्यरूप उतारा। परमानन्द परम कृष्ण भक्त थे। परमानन्द का जन्म सम्वत् १५५० वि. में मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी को कन्नौज में हुआ। उनके पिता सरल-संतोषी और प्रेमी हृदय के कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। वे खेती तथा दान-वृत्ति से अपने परिवार का पालन-पोषण करते थे। परमानन्द-दास के जन्म-दिन पर एक विचित्र घटना का पता चलता है। उस दिन एक धनी सेठ ने उनके पिता को बहुत-सा धन दिया। इस अयाचित दान से घर में चारों ओर परम आनन्द छा गया। पिता ने प्रसन्नतापूर्वक अपने नवजात शिशु का नाम परमानन्द रख दिया। उनके पिता साधारण श्रेणी के ब्राह्मण थे इसलिये परमानन्द की शिक्षा-दीक्षा का क्रम साधारण ही रहा। पर उनमें एक विचित्रता यह देखी गयी कि वे घर से प्रायः विरक्त और उदासीन रहने लगे, घर के किसी काम-काज में उनका मन नहीं लगता था।

एक बार कन्नौज में बहुत बड़ा अकाल पड़ा। कन्नौज के शासक ने दण्ड के रूप में परमानन्द जी के पिता का सारा धन छीन लिया। वे पैसे-पैसे के लिये कंगाल हो गये थे। परमानन्द इस समय तक युवावस्था में पहुँच गये थे। थोड़ी-बहुत कविता कर लेते थे, भजन गा लेते थे। भगवान की पूजा में अपने अधिकांश समय का उपयोग करते थे। जो कुछ खाने-पीने और पहनने-ओढने के लिये मिल जाता था उसी से संतोष करते थे। उनके पिता ने उन पर विवाह करने के लिये जोर डाला पर परमानन्द गृहस्थी के बन्धन में नहीं पड़ना चाहते थे। उन्होंने अपने पिता से साफ शब्दों में निवेदन किया कि अब मेरे विवाह की चिंता मत कीजिये, जो कुछ आय हो जाती है उसका परिवार के पालन-पोषण और साधु-सन्त तथा अतिथि की सेवा में सदुपयोग कीजिये। पिता के सिर पर धन कमाने की सनक सवार थी। वे धन कमाने के लिये विदेश-यात्रा में चले गये। परमानन्द छब्बीस साल के हो चुके थे। पिता के घर से चले जाने पर वे भजन-पूजन तथा कथा-कीर्तन में लग गये। उनके घर पर साधु-सन्तों की

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भीड़ लगने लगी। वे स्वामी परमानन्द के नाम से प्रसिद्ध हो गये। साधु हृदय के व्यक्ति को मान और प्रतिष्ठा से बड़ी चिढ़ रहती है। उन्होंने घर से बाहर जाना ही उचित समझा। वे मकर स्नान में प्रयाग चले आये। गंगा किनारे एक कुटी बना कर कथा-कीर्तन करने लगे। लोग उनके स्वभाव और भगवद्भक्ति तथा आचार-विचार से बहुत आकृष्ट हुए। धीरे-धीरे उनका वैराग्य बढ़ता गया। दूर-दूर से लोग उनके सत्संग और दर्शन के लिये आने लगे। एक अच्छे संगीतज्ञ और निपुण कवि के रूप में उनकी प्रसिद्धि बढ़ने लगी। कुटी में भक्तों का तांता लगा रहता था। परमानन्द जी की कुटी के सामने यमुना के उस पार पुष्टि मार्ग के प्रवर्तक श्रीमदाचार्य महाप्रभु वल्लभ अड़ैल में निवास करते थे। परमानन्द ने उनके सम्बन्ध में विशेष रूप से सुना था। विजयनगर में आचार्य की कनकाभिषेक वाली घटना उत्तर भारत में पर्याप्त प्रसिद्धि पा चुकी थी। वे परम भगवदीय के रूप में चारों ओर विख्यात हो गये थे। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने भी परमानन्द की अच्छे कथाकार और कवि, संगीतज्ञ तथा भगवद्भक्त के रूप में जानकारी प्राप्त की थी। दोनों एक दूसरे से मिल कर सत्संग आदि करने के लिये बड़े उत्सुक थे। एक दिन ऐसा संयोग भगवान की कृपा से आ गया। वल्लभाचार्य का जलघड़िया कपूर प्रायः परमानन्द जी के कथा-कीर्तन में सम्मिलित होने जाया करता था। परमानन्द स्वामी एकादशी को रात में जागरण कर कथा-कीर्तन किया करते थे। इस अवसर पर कुटिया में भक्तों की भीड़ लगी रहती थी। एक दिन एकादशी को वे रात में जागरण कर रहे थे, बहुत-से भक्त एकत्र होकर कथा-कीर्तन सुन रहे थे। वे प्रभु के लीला-कथन में आत्मविभोर थे। इधर अड़ैल में कपूर जलघड़िया का मन कीर्तन में उपस्थित होने के लिये छटपटा रहा था। शयन-आरती के बाद वह अड़ैल से चल पड़ा। यमुना तट पर उस समय कोई नाव नहीं थी। वह पानी में तैर कर इस पार आ गया। कथा में बैठा ही था कि परमानन्द ने एक विलक्षण दृश्य देखा। उनके नयनों को ऐसा लगा कि उज्ज्वल नीलमणि सा एक श्यामवर्ण का शिशु कपूर की गोद में बैठा है। उसके सिर पर मयूर-पिच्छ है, भाल में तिलक है, कानों में स्वर्ण कुण्डल है, अलकावली कन्धदेश पर लटक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रही है, गले में वैजयन्ती माला है, तन पर पीताम्बर लहरा रहा है। कमर में सोने की मणिजटित करधनी है, चरणों में पायल है। उन्होंने प्रत्यक्ष देखा कि बालक कपूर की गोद में बैठ कर उनकी कथा बड़ी एकाग्रता और निष्ठा से सुन रहा है। इस दिव्य दृश्य से उनके अंग-अंग रोमाञ्चित हो उठे, उन्हें अपने सखा श्यामसुन्दर का दर्शन हो गया। बालक के अधरों पर मन्द मुसकान थिरकने लगी ऐसा लगता था मानों भगवान की कृपा भक्त से मिल कर आनन्दपूर्वक नाच रही है! परमानन्द का मन भगवद्रस में सराबोर हो उठा। उत्सव समाप्त होने पर लोग अपने-अपने घर चले गये पर परमानन्द का मन तो श्यामसुन्दर के दर्शन के लिये तड़प रहा था। उन्हें रात में स्वप्न में आचार्य वल्लभ से मिलने के लिये भगवत्प्रेरणा हुई। वे दूसरे दिन अड़ैल आये। उन्होंने महाप्रभु का दर्शन किया। आचार्य ने भगवान की लीला का वर्णन करने की आज्ञा दी। उन्होंने विनम्रतापूर्वक कहा कि मैं तो लीला जानता ही नहीं हूँ। महाप्रभु की प्रसन्नता के लिये उन्होंने भगवद्विरह से परिपूर्ण एक पद गाया:

'जिय की साध जु जियहिं रही री।
बहुरि गुपाल देखि नहिं पाये
बिलपत कुंज अहीरी।
इक दिन साजु सखी यहि मारग
बेचन जात दही री।
प्रीति के लिएँ दान मिस मोहन
मेरी बाँह गही री।
बिनु देखें छिनु जात कलप सम
बिरहा अनल दही री।
'परमानन्द स्वामी' बिनु दरसन
नैनन नदी बही री।'

आचार्य ने उनको गले लगा लिया। इसके बाद परमानन्द ने भगवान श्रीकृष्ण की बाल-लीला के अनेक पद सुनाये। आचार्य ने उनको सम्वत् १५७६ वि. में ज्येष्ठ शुक्ल द्वादशी को ब्रह्म-सम्बन्ध दिया। परमानन्द स्वामी से दास हो गये। वे परमानन्ददास के नाम से प्रसिद्ध हुए।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महाप्रभु के पास अड़ैल में ही आकर रहने लगे। श्रीमदाचार्य के चरणों में बैठकर भागवत की कथा और सुबोधिनी सुना करते थे। अड़ैल-निवास-काल में उन्होंने भगवान के बाल-लीला सम्बन्धी अनेक पद लिखे। महाप्रभु उनकी कीर्तन-शैली से बहुत प्रसन्न रहते थे।

सम्वत् १५८२ वि. में परमानन्ददास महाप्रभु के साथ व्रज गये। रास्ते में कन्नौज पड़ता था। परमानन्ददास के घर पर महाप्रभु तीन दिन तक ठहरे रहे। उन्होंने आचार्य को हरिलीला के स्मरण के संबंध में पद सुनाया। महाप्रभ पद सुनकर तीन दिन मूर्छित रहे। परमानन्द ने पद गाया था:

'हरि! तेरी लीला की सुधि आवै।
कमल नैन मन मोहनी मूरति, मन मन चित्र बनावै।
एक वार जाय मिलत मया करि, सो कैसे बिसरावै।
मुख मुसकानि बंक अवलोकनि, चाल मनोहर भावै।
कबहुँक निबिड़ तिमिर आलिंगन, कबहुँक पिक सुर गावै।
कबहुँक सम्भ्रम क्वासि क्वासि कहि, संगहीन उठि धावै।
कबहुँक नैन मूँदि अन्तर गति, मनिमाला पहिरावै।
'परमानंद' स्याम ध्यान करि, ऐसै विरह गँवावै।'

परमानन्ददास भी लीलाविभोर थे। तीसरे दिन उन्होंने आचार्य की मूर्छा दूर करने के लिये पद गाया:

'विमल जस वृन्दावन के चन्द को।
कहा प्रकास सोम सूरज को सो मेरे गोविन्द को।
कहत जसोदा सखियन आगे वैभव आनंदकन्द को।
खेलत फिरत गोप बालक संग ठाकुर 'परमानंद' को।'

आचार्य की चेतना लौट आयी। कन्नौज से परमानंद को साथ लेकर महाप्रभु ने व्रज की ओर प्रस्थान किया। परमानन्ददास गोकुल आये, उन्होंने नवनीतप्रिय का दर्शन किया। पद सुनाये। गोवर्धन आकर उन्होंने श्रीनाथ जी का दर्शन किया। वे सदा के लिये गोवर्धन पर ही रह गये। सुरभी कुण्ड पर श्याम तमाल के नीचे उन्होंने अपना स्थायी निवास स्थिर किया। वे व्रज से बाहर कहीं नहीं गये। सदा श्रीनाथ जी की सेवा में कीर्तन सुनाया करते थे। उनके मंगला-दर्शन के पद

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रसिद्ध हैं। वे कभी-कभी नवनीतप्रिय का दर्शन करने गोकुल भी आया करते थे।

महात्मा परमानन्ददास ने श्रीनाथ जी के सेवा-कीर्तन में सर्वस्व समर्पित कर आजीवन उनकी लीला गायी। उनकी भक्ति बाल, कान्ता और दास भाव की थी। भगवद्विरहसम्बन्धी उनकी अनुभूति अमित उच्च कोटि की है। उनका भगवान से सहज स्नेह था। उनकी उक्ति है:

'मेरो माई हरिनागर सों नेह।
जब ते दृष्टि परे मनमोहन तब ते विसर्‌यो गेह।
कोऊ निन्दो कोऊ वन्दो मो मन गयो सन्देह।
सरिता सिंधु मिली 'परमानंद', भयो एकरस नेह।'

उनके पदों में समर्पण के भाव की अभिव्यक्ति बड़ी सुंदरता से हुई है। वे महाप्रभु वल्लभाचार्य और गोसाईं विट्ठलनाथ दोनों में भगवद्-बुद्धि रखते थे। साक्षात् श्रीकृष्णचन्द्र का स्वरूप समझते थे। उनकी भक्ति और निष्ठा गुरु और भगवान दोनों में एकरस थी। उन्होंने शृंगारजा भक्ति में भी सिद्धि प्राप्त की थी। एक पद में उन्होंने सरस लीला के बखान में कहा है :

'चलो किन देखन कुंज कुटी।
मदन गोपाल जहाँ मधिनायक मन्मथ फौज लुटी।
सुरत समर में लरत सखी की मुक्तामाल टुटी।
उरज ते जु कंचुकी चिरकुट भई कटि पर ग्रंथि छुटी।
'परमानन्द' गुविन्द ग्वालिनि की नीकी जोट जुटी।'

यह शृंगार सर्वथा चिन्मय है, इसमें प्राकृत भाव नाम मात्र को भी नहीं है। परमानन्द दास ने अपनी भगवदीय शृंगार-लीला में शक्तिद्वारा शक्तिमान की पराजय का दर्शन किया है, पुरुष प्रकृति पर विजय पाने में असमर्थ-सा चित्रित किया गया है। परमानन्ददास के श्याम-सुन्दर ने व्रजनारी के सामने पराजय स्वीकार करने में ही अपनी शृंगारमयी केलि—क्रीड़ा की सफलता मानी अन्यथा वे तो सर्वथा अजेय और सर्वशक्तिमान हैं। परमानन्ददास ने भगवद्विरह वर्णन में बड़ी सफलता पायी है: श्यामसुन्दर के विरह में उन्मत्त व्रज-लोक की विचित्र दशा का उन्होंने अद्भुत वर्णन किया है: उनका एक पद है:

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'ब्रज के विरही लोग विचारे।
विनु गोपाल ठगे-से ठाढ़े अति दुरबल तन हारे।
मात जसोदा पंथ निहारत निरखत साँझ सकारे।
जो कोइ कान्ह कान्ह कहि बोलत अंखियन वहत पनारे।
यह मथुरा काजर की रेखा जे निकसे ते कारे।
'परमानन्द' स्वामी विनु ऐसे ज्यों चंदा विनु तारे।'

परमानन्द उच्च कोटि के भक्त थे। सम्वत् १६०२ वि. में गोसाईं विट्ठलनाथ जी ने उन्हें अष्टछाप में सम्मिलित कर लिया। परमानन्द-दास भावप्रधान भागवत कवि थे। पुष्टिमार्ग के कवियों में उनको विशिष्ट स्थान प्राप्त है, श्रीकृष्ण की लीला का चिन्तन ही उनका काव्य-धर्म था। परमानन्ददास ने उद्दीपन वर्णन में– प्रकृति के सौन्दर्य-निरूपण में भी भगवान श्यामसुन्दर की ही झाँकी देखी। एक वार परमानन्द जी गोसाईं विट्ठलनाथ जी के साथ कृष्ण-जन्माष्टमी के उत्सव में सम्मिलित होने तथा नवनीतप्रिय के दर्शन के लिये गोकुल गये। उन्होंने पद गाया :

'रानी तिहारो घर सुवस बसो।'
सुनो हो जसोदा तिहारे ढोटा को न्हात हू जिनि बार खसो।
कोउ करत वेद मंगल धुनि, कोऊव गावो कोऊव हँसो।
निरखि निरखि मुख कमल नैन को आनन्द प्रेम हियो हुलसो।
देत असीस सकल गोपीजन कोऊव अति आनन्द लसो।
परमानंद नन्द घर आनन्द पुत्र जनम भयो जगत जसो।

अन्तिम चरण गाते-गाते वे मूर्छित हो गये। दधिकांदों में भी उन्होंने यही पद गाया। वे मूर्छित अवस्था में गोकुल से गोवर्धन लाये गये। सुरभी कुण्ड पर कुटी में आने पर उन्होंने बोलना छोड़ दिया। गोसाईं विट्ठलनाथ जी ने उनके मस्तक पर हाथ फेरा, कहा 'परमानन्ददासजी मैं तुम्हारे मन की बात जानता हूँ। ऐसा लगता है कि अब तुम्हारा दर्शन भी दुर्लभ होने वाला है।' परमानन्द जी ने नयन खोल दिये। उन्होंने नयनों में अश्रु भरकर गोसाईं जी के चरणों में निवेदन किया कि कृपानाथ, प्रेमास्पद तो केवल नन्दनन्दन हैं, वे ही प्रेमपात्र हैं, उन्हीं से प्रेम करना चाहिये।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भक्त सुख-दुःख में समान रूप से उन्हीं के सहारे जीते रहते हैं, वे परम उदार हैं, मन की बात जानते हैं, वेद-पुराण साक्षी हैं कि उन्होंने भक्त की प्रसन्नता के अनुकूल ही आचरण किया है। उन्होंने पद गाया :

'प्रीति तो नन्दनन्दन सों कीजै।
संपति-विपति परे प्रतिपाले कृपा करे तो जी जै।
परम उदार चतुर चिंतामनि सेवा सुमिरन माने।
चरन कमल की छाया राखे अंतरगति की जाने।
वेद-पुरान-भागवत भाषै कियो भक्त को भायो।
'परमानन्द' इन्द्र को वैभव विप्र सुदामा पायो।'

गोसाईं विट्ठलनाथ उनकी ओर बड़े ध्यान से देखने लगे। सम्वत् १६४१ वि. की भाद्रपद कृष्ण नवमी का मध्याह्न काल था; परमानंद युगल स्वरूप का चिंतन कर रहे थे। गोसाईं जी ने पूछा कि इस समय चित्तवृत्ति कहाँ है। श्रीनाथ जी के अनन्य उपासक परमानंददास की वाणी का कंठ खुल गया :

'राधे बैठी तिलक सँवारति।
मृगनैनी कुसुमायुध कर धरि नंदसुवन को रूप विचारति।
दर्पन हाथ सिंगार बनावति, वासर जुग सम टारति।
अंतर प्रीति स्याम सुंदर सों हरिसंग केलि संभारति।
वासर गत रजनी व्रज आवत मिलत गोवर्धन प्यारी।
'परमानन्द' स्वामी के संग मुदित भई व्रजनारी।'

अन्त समय में उनकी चितवृत्ति राधाकृष्ण की सरस लीला में आसक्त थी। उन्होंने अपने परम आराध्य का चिन्तन करते हुए गोलोक की यात्रा की। परमानन्ददास ने प्रेम का परमानन्द-सागर आलोड़ित किया।

रचना

परमानन्ददास का पदसंग्रह—'परमानन्द-सागर' है। उन्होंने अनेक सरस पदों की रचना की।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पद

चलौ सखि ! देखौ नन्दकिसोर।
श्रीराधा संग लीये विहरत सघन कुंज वन खोर ।
तैसिय घटा घुमड़ि चहुँ दिस ते गरजति है घनघोर।
तैसिय लहलहाति सौदामिनि पवन चलत अति जोर।
पीत वसन वनमाल स्याम कै सारी सुरंग तन गोर।
सदा विहार करो 'परमानन्द' सदा बसौ मन चोर।

जब नन्दलाल नैन भरि देखे ।
एक टक रही, सम्भार न तन की, मोहन मूरति पेखे।
स्याम वरन पीताम्वर काछे अरु चन्दन की खोर।
कटि किंकन कल राव मनोहर, सकल त्रियन के चित चोर।
कुंडल झलक परत गण्डनि पर, आइ अचानक निकसे मोर।
श्री मुख कमल मंद मृदु मुसकनि, लेत करषि मन नंदकिसोर।
मुक्त माल राजत उर ऊपर चितए सखी जव इहै ओर।
'परमानन्द' निरखि अंग-सोभा व्रजवनिता डारत तृन तोर।

गावत गोपी मधु व्रज वानी।
जाके भुवन वसत त्रिभुवन पति
राजा नन्द यसोदा रानी ।
गावत वेद, भारती गावत
गावत नारदादि मुनि ज्ञानी ।
गावत गुन गन्धर्व काल शिव
गोकुलनाथ महातम जानी ।
गावत चतुरानन जदुनायक
गावत सेस सहस्र मुख रास ।
मन क्रम-वचन प्रीति पद अम्बुज,
अव गावत 'परमानन्द दास' ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मेरो माई माधो सो मन लाग्यो।
मेरो नैन और कमलनैन को
इक ठौरो करि मान्यो।
लोकवेद की कानि तजी मैं
न्योति आपुनै आन्यो।
एक गुविन्द-चरण के कारण
वैर सवन सो ठान्यो।
अव को भिन्न होय मेरी सजनी,
दूध मिल्यौ जैसे पान्यो।
'परमानन्द' मिल्यौ गिरिधरसों, हैं पहली पहिचान्यो।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संत कृष्णदास

'श्रीवल्लभगुरुदत्त भजन सागर गुन आगर।
कबित नोख निरदोष नाथ सेवा में नागर।
बानी बंदित बिदुष सुजस गोपाल अलंकृत।
व्रज रज अति आराध्य वहै धारी सरबसु चित।
सान्निध्य सदा हरि दास वर गौर स्याम दृढ़ व्रत लियो।
गिरिधरन रीझि कृष्णदास को नाम माझ साझो दियो।'

—भक्तमाल

सन्त कृष्णदास भगवान श्रीनाथ के राज्य के परम भगवदीय नागरिक थे। वे श्रीनाथ जी की सेवा में परम चतुर और भक्तिरस के विचित्र रसिक थे। अष्टछाप के कवियों में वे एक अमित प्रभावशाली व्यक्ति थे, सूरदास आदि उनका पर्याप्त सम्मान करते थे। उन्होंने राधाकृष्ण के अभिराम यश-गायन से अपनी पवित्र वाणी का सौभाग्य अमर कर लिया। व्रजरज में उनकी विशिष्ट रति थी, श्रीनाथ जी के साज-शृंगार के वे व्यवस्थापक थे। महाप्रभु वल्लभाचार्य उनका बड़ा विश्वास करते थे और गोसाईं विट्ठलनाथ ने उनकी प्रतिष्ठा में कमी नहीं आने दी।

गोसाईं विट्ठलनाथ जी ने स्वयं अपने श्रीमुख से उनकी प्रशंसा की है कि उन्होंने अपने अधिकार का उपयोग उचित ढंग से किया, श्रीनाथ जी का कीर्तन किया और महाप्रभु वल्लभाचार्य के सेवक हो कर उनकी तथा श्रीनाथ जी की ऐसी सेवा की जैसी किसी दूसरे से न हो सकी। जिस समय श्री कृष्णदास गोवर्धन पर अपने आराध्य श्रीनाथ जी को कीर्तन-सेवा से रिझा रहे थे उस समय भारतवर्ष के सम्राट अकबर की तूती सारे देश में बोल रही थी। अकबर की धार्मिक उदारता के फलस्वरूप जनता राजकीय सुव्यवस्था और धार्मिक स्वतन्त्रता का अनुभव कर रही थी। श्री कृष्णदास ने ऐसी शान्तिपूर्ण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्थिति में श्रीनाथ जी की सेवा में अपनी सारी व्यवस्था-बुद्धि का उपयोग कर धरती पर दिव्यता का साम्राज्य उतार लिया—यह उनकी मौलिकता है। सन्त कृष्णदास का जन्म गुजरात के अहमदावाद जनपद में सम्वत् १५५३ वि. में चणोतर नामक गाँव में एक कुनबी कायस्थ कुल में हुआ था। उनके पिता गाँव के प्रमुख थे; लोगों में उनका बड़ा प्रभाव था। खाने-पीने की किसी वस्तु का अभाव नहीं था। कृष्णदास का पालन-पोषण उचित ढंग से हुआ। शिक्षा-दीक्षा की भी अच्छी व्यवस्था थी। जब वे केवल पाँच साल के थे तभी से भगवान के कथा-कीर्तन में सम्मिलित हुआ करते थे। उनका शरीर बहुत सुन्दर था; मन भावुक और कोमल था; धीरे-धीरे सद्गुणों का विकास हो रहा था। पिता कभी नहीं चाहते थे कि बालक कृष्णदास को साधुओं के सत्संग और कीर्तन में जाने का कभी प्रोत्साहन मिले पर होनी तो होकर ही रहती है। उनके पिता धनलोलुप थे, वे चाहते थे कि कृष्णदास पढ़-लिखकर धन कमायें। वे कभी नहीं चाहते थे कि कृष्णदास घर का त्याग कर संन्यासी हो जायें। कृष्णदास अपने पिता की धनलोलुपता से बहुत चिढ़ते थे। घर के टीमटाम और भोग-विलास के नश्वर पदार्थ उनका मन अपनी ओर आकृष्ट न कर सके। उनका वैराग्य बढ़ता गया, उन्हें घर और परिवार में तनिक भी आसक्ति नहीं रह गयी।

एक दिन विचित्र घटना हुई। कृष्णदास केवल बारह साल के थे। गाँव में बनजारा आया। उसने माल बेचकर बहुत-सा रुपया जमा किया। सूर्यास्त होने के कारण वह गाँव छोड़ कर अपने डेरे पर न जा सका। कृष्णदास के पिता ने उसके रुपये रात में लुटवा कर अपने पास रख लिये। वह बिचारा कहीं का न रह गया। कृष्णदास ने रुपये लौटा देने के लिये पिता को बहुत समझाया पर उनकी बात उन्हें अच्छी नहीं लगी। कृष्णदास स्वयं बनजारा के पास गये। उन्होंने आश्वासन दिया कि न्यायालय में अपने पिता के विरुद्ध गवाही दूँगा। बनजारा उनके निष्कपट व्यवहार से अमित प्रभावित हुआ। न्यायालय में अपने पिता के दुराचरण के विरुद्ध गवाही देकर उन्होंने बनजारे को रुपये दिलवा दिये। उनके पिता ने अप्रसन्न होकर उनको घर से बाहर निकल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जाने की आज्ञा दी। उन्होंने कहा कि तुम पहले जन्म में फकीर थे, इस जन्म में तुमने मुझ को भी फकीर बना दिया। तुम दूर चले जाओ, न मैं तुम्हारा मुख देखूँगा, न मेरे मन में दुःख होगा। कृष्णदास को इस आदेश से बड़ी प्रसन्नता हुई। भगवान की उन पर यह बहुत बड़ी कृपा थी कि घर के पापपूर्ण वातावरण से वे बाहर हो गये। वे परम धन—सत्य पदार्थ, भगवान की खोज में घर से बाहर निकल पड़े। कोमल अवस्था में ही उनके घर छोड़ने की घटना से लोग बहुत दुःखी हुए पर कृष्णदास के लिये तो यही सबसे उत्तम बात थी। वे तीर्थयात्रा के लिये चल पड़े।

पुष्टि मार्ग के संस्थापक महाप्रभु वल्लभ अड़ैल से व्रज जा रहे थे। अभी कुछ ही दिनों पहले उन्होंने सूरदास को गऊघाट पर दीक्षित किया था। आचार्य ने विश्राम घाट पर कृष्णदास को देखा। वे सुन्दर शरीर तथा कोमल चित्तवृत्ति वाले बालक के घर से सहसा निकल आने की घटना पर सोचने लगे। कृष्णदास को उन्होंने ब्रह्म सम्बन्ध दिया। ब्रह्म सम्बन्ध लेते ही श्री कृष्णदास को भगवल्लीला का ज्ञान हो गया। वे आचार्य के चरण पर गिर पड़े। सदा के लिये उनके शरणागत होकर श्रीकृष्ण रूपी परम धन की खोज के लिये आचार्य के साथ गोवर्धन आ गये। आचार्य ने उनको श्रीनाथ जी के मन्दिर का अधिकारी नियुक्त किया। ऐसे तो शयन के समय के कीर्तनकार भी थे। गोपीलीला तथा अनुराग, निकुंज आदि के पद रचकर श्रीनाथ जी को समर्पित किया करते थे। अष्टछाप के समस्त कवि तथा वृन्दावन के बड़े-बड़े रसिक महात्मा उनका श्रीनाथ मन्दिर के अधिकारी होने के नाते बड़ा सम्मान करते थे। महाप्रभु के गोलोक-प्रवेश के बाद उनके ज्येष्ठ पुत्र गोपीनाथ उत्तराधिकारी हुए और उनके कुछ ही समय के बाद शरीर त्यागने पर उत्तराधिकार का प्रश्न बड़ा महत्व-पूर्ण हो गया। गोसाईं विट्ठलनाथ के विरोध में गोपीनाथ जी की पत्नी ने अल्पवयस्क पुरुषोत्तम जी का पक्ष लिया। कृष्णदास भी पुरुषोत्तम जी की ओर हो गये। बात इतनी आगे बढ़ी कि कृष्णदास ने गोसाईं जी के लिये श्रीनाथ जी का ड्योढ़ी-दर्शन तक बन्द कर दिया। गोसाईं जी परासोली चले आये, वहीं से वे श्रीनाथ जी की ध्वजा का दर्शन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कर लिया करते थे। वीरवल गोसाईं जी के भक्त थे। उनके संकेत पर आगरे के शासक ने कृष्णदास को कारागार में डाल दिया। गोसाईं जी इस घटना से बहुत दुःखी हुए। उन्होंने व्रत लिया कि जब तक कृष्णदास मुक्त नहीं होंगे, मैं अन्न जल नहीं ग्रहण करूँगा।.....कृष्णदास उनकी कृपा से मुक्त हो गये, वे गोसाईं जी की सहानुभूति से बहुत प्रभावित हुए। श्री विट्ठलनाथ जी को उन्होंने वास्तविक उत्तराधिकारी घोषित किया। गोसाईं जी में उनकी श्रद्धा बढ़ गयी। उन्होंने एक पद में उनकी बड़ी भावपूर्ण वन्दना की है; उनकी निष्ठा का इससे पता चलता है :

'जय जय श्रीवल्लभनन्दन,
सुरनर मुनि जाकी पदरजवन्दन,
मायावाद किये जु निकन्दन।
नाम लिये काटत भवफन्दन
प्रकट पुरुषोत्तम चरचितचन्दन,
'कृष्णदास' गावत श्रुति छन्दन।'

श्रीविट्ठलनाथ जी उनको बहुत मानते थे। अष्टछाप की कविश्रेणी में उनको सम्मानपूर्ण स्थान दिया। वे गोसाईं जी के उत्तराधिकार-काल में आजीवन श्रीनाथजी के मन्दिर के अधिकारी बने रहे। उन्होंने योग्यतापूर्वक अपने कार्य का उत्तरदायित्व निबाहा। कृष्णदास की उक्ति है कि उसके सामने मस्तक नत कर देना चाहिये जो गोसाईं जी की चरणधूलि का भक्त है :

'ताही को सिरनाइये जो
श्रीवल्लभसुतपदरजरत होय।'

श्रीकृष्णदास जी की देख-रेख में श्रीनाथ जी की सेवा राजसी ढंग से होती थी। श्रीनाथ जी उनके प्राणाधार थे, उनका समस्त जीवन उनकी सेवा में समर्पित था। वे श्रीनाथ जी के मन्दिर के अधिकारी थे, उनके यश के गायक थे और चरणसेवक थे। एक बार किसी विशेष कार्य से उनको आगरा जाना पड़ा। आगरा उस समय मुगल ऐश्वर्य का केन्द्र था। वे आगरा के बाज़ार में घूम रहे थे कि उन्हें इतने में ही किसी युवती का कोकिल कंठ सुनाई पड़ा। वह मधुर से मधुर स्वर में गा रही थी। कृष्णदास कविहृदय के व्यक्ति थे, कलाप्रिय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

थे। वे पदगान की ओर आकृष्ट होकर चल पड़े। उन्होंने देखा कि वह नवयुवती एक वारांगना है। उसके मनोमोहक रूप और साजशृंगार ने कृष्णदास के मन में यह भाव पैदा किया कि यह तो श्रीनाथ जी के सम्मुख पदगान करने के लिये स्वर्गलोक से पृथ्वी पर उतर आयी है। उनके हृदय में श्रीनाथ जी की भक्ति का सागर उमड़ आया, उन्होंने निश्चय किया कि इसे श्रीनाथ जी के पदगान और नृत्य-सेवा में समर्पित कर देना चाहिये। भगवान के विश्वासी भक्त के मन में इस प्रकार के पवित्र संकल्प का उठना था कि उनके पैर वेश्या के आगार की ओर अपने आप चल पड़े। वेश्या उनको देख कर सहम गयी, आश्चर्य में पड़ गयी। उसे क्या पता था कि श्रीनाथ जी के परमकृपापात्र, उनकी सेवा के अधिकारी ने अपने भगवान की रीझ और प्रसन्नता के लिये उसके घर को पवित्र किया है। वारांगना की नागिन-सी अलकावली पीठ पर लहरा रही थी, उसके चन्द्रमुख के स्वर्ण आभूषण चमक रहे थे, उसके गोरे-गोरे गालों से अमृत की लालिमा का प्रकाश निकल रहा था, वक्ष की सुगन्धित माला मनमोहनी थी, वह ऐसी लगती थी नीली रेशमी साड़ी में मानो नीलाम्बर की आभा उसके शृंगार के लिये पृथ्वी पर उतर पड़ी है। चरणदेश की रक्तिम सुषमा अद्भुत थी। कृष्णदास ने उसको एक टक निहारा। निस्सन्देह वह अभिशापग्रस्त दैवी जीव थी, उसके उद्धार का समय निकट था। कृष्णदास ने कहा कि तुम जो धन माँगोगी मैं तुम्हें दूँगा पर एक बार मेरे बालगोपाल श्रीनाथ जी को अपना पद सुना दो। सन्त की पवित्र कृपा-दृष्टि से उसका मन पवित्र हो चला था; वह नन्दनन्दन को रिझाने जायेगी, उनके सामने गायेगी, नाचेगी—यह सोचकर कृष्णदास प्रेममग्न हो गये। भक्त ने वारांगना को उसकी कला, रूप और सुषमा सहित श्रीकृष्ण के चरणों पर समर्पित कर दिया। वह उनके साथ गोवर्धन आयी। वारांगना ने स्नान किया, स्वच्छ वस्त्र धारण किया। वह श्रीनाथ जी के दर्शन के लिये मन्दिर में शुद्ध मन से और पवित्र हृदय से उपस्थित हुई। उत्थापन-झांकी का समय था, यशोदा-नन्दन के अधरों पर स्मित की मन्द-मन्द केलि देख कर वारांगना के रोम-रोम सिहर उठे, उसके नयनों में गोपीजनवल्लभ समा गये। वह उनके रूप पर बिना मूल्य के केवल हृदय के भाव से नीलाम हो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गयी। मन्दिर में पुष्टि-सिद्धान्त के दिग्गज-विशेषज्ञ उपस्थित थे, बड़े-बड़े रसिक सन्त और भक्त प्रभु के दर्शन से अपने आपको धन्य करने आये थे। कृष्णदास ने आनन्दमग्न होकर कहा कि तुमने आजतक संसारी जीवों को रिझांया है, आज हमारे लाला को रिझाकर अपना जीवन सफल कर लो, ऐसा अवसर फिर नहीं मिलेगा। वीणा बज उठी, मृदंग गरजने लगे, झांझ के खनन-खनन में वारांगना के स्वर्णिम पायल की मधुर ध्वनि झंकृत हो उठी, ताल और स्वर के रंगमंच पर उसके कंठ ने कृष्णदास का रचित पद गाया:

'मो मन गिरिधर छवि पै अटक्यौ।
ललित त्रिभंग चाल पै चलि के चिबुक चारु गड़ि ठटक्यौ।
सजल स्याम घन बरन लीन ह्वै फिर चित अनत न भटक्यौ।
'कृष्णदास' किए प्रान निछावरि, यह तन जग सिर पटक्यौ।'

श्रीनाथ जी की कृपा-दृष्टि वारांगना पर पड़ गयी। दोनों के नयन चार हो गये; कृष्णदास ऐसे रसिक सन्त की वाणी थी, फलवती हो गयी, प्रभु ने वेश्या को अपने चरणों में स्थान दे दिया। गीत समाप्त होते ही प्रभु के अंग से एक ज्योति निकली, वारांगना के प्राण उसमें समा गये। कृष्णदास के लाला ने उनके द्वारा समर्पित वस्तु स्वीकार कर ली। कृष्णदास के अधिकारीभाव का उपयोग सिवा श्रीनाथ जी के दूसरा किस तरह कर ही सकता था!

कृष्णदास पुष्टि-भक्ति के दृढ़ पोषक थे। महाप्रभु के सिद्धान्तों को उन्होंने अपने जीवन में पूर्णता से चरितार्थ किया था; वे आचार्य के पुष्टिमत के आचरण-भाष्य थे। कृष्णदास की गुरु-निष्ठा अद्भुत और अनुपम थी। उन्होंने कहा है:

'कृष्णदास गिरिधर के द्वारे
श्रीवल्लभपदरज बल गरजत।'

उन्होंने श्रीवल्लभाचार्य की शरण की अद्भुत महिमा गायी है, उन्होंने स्वीकार किया है कि उनकी चरण-कृपा से मुझे श्रीनाथ जी की भक्ति मिल गयी, मैंने अविद्या का त्याग कर श्रुतिपथ का अवलम्बन लिया। उनका कथन है:

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'जब तें स्याम सरन हौं पायौं।
तब तें भेंट भई श्रीवल्लभ, निजपति नाम बतायौ।
और अविद्या छाँड़ि मलिन मति, स्रुति पथ आप दृढ़ायौ।
'कृष्णदास' जन चहुँ जुग खोजत, अब निहचै मन आयौ।'

कृष्णदास बड़े दबंग थे। गोसाईं विट्ठलनाथ पर भी उनका अमित प्रभाव था। वे श्रीनाथ जी के सेवासंबंधी अधिकांश कार्य कृष्णदास की ही सम्मति से करते थे। कृष्णदास बहुत बड़े सेवा-रसिक सन्त थे। वे मधुररस के उपासक थे पर वात्सल्यलीला में भी अनुरक्त थे। सदा श्रीनाथ जी के सरस सौन्दर्य का चिंतन करते रहते थे, श्रीराधा स्वामिनी में उनकी बड़ी निष्ठा और आस्था थी। उन्होंने अपने पदों में युगलस्वरूप का पवित्रतम और दिव्यतम लीला-शृंगार गाया है। उनका एक ध्यान सम्बन्धी पद है:

'विहारिन विलसत स्याम धनी।
नन्दनन्दनवृषभानुनन्दिनी रति-रस-केलि ठनी।
स्याम स्वरूप सन्यो प्रियतम में ज्यों घन तड़ित बनी।
'कृष्णदास' प्रभु रसबस करि लीने गुन गावत सजनी।'

उन्होंने नित्य-निरन्तर मनमोहन श्यामसुंदर की रूप-सुधा पीने वाली राधा की भक्ति में अचल विश्वास प्रकट किया है। राधा-कृष्ण दोनों एक दूसरे के हृदय-देश में प्रतिक्षण निवास करते हैं—कृष्णदास की यह रसानुभूति थी। उनकी उक्ति है कि हे राधा, आपके सौभाग्य की महिमा अकथनीय है, आपके पति साक्षात् नन्दनन्दन हैं। श्याम तमाल रूपी नटनागर सदा आप को अपनी बाँह-लता में सुरक्षित रखते हैं, आप दोनों सौन्दर्य के मूर्त रूप हैं, आप दोनों का यश ही परम गेय है। आप की भुजा में सदा कृष्ण अनुरक्त रहते हैं—विहार करते हैं। श्रीकृष्ण के सरस विहार में आसक्त कृष्णदास की चित्त-वृत्ति की एक झाँकी में मन मोहित हो उटता है। उनकी वाणी पवित्र और निर्दोष है। उनका पद है:

'रीझे माई मोर मुकुट छवि निरखे।
कुण्डल चलन हलन नयननि की मृदुमुसके मन हरखे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संग लिये नव तन व्रज वनिता रमत तरणिजा करखे।
'कृष्णदास' के मन की गमता संग सांवरी सरसे।'

पद-पद में उनकी रस-भक्ति का पवित्र निष्कलंक और दोषातीत दर्शन होता है। भगवान कृष्ण की वालछवि के वर्णन में भी उन्होंने बड़ी सफलता प्राप्त की। उनके मन ने गोपाललाल की वालदशा की सरस अनुभूति की है। कृष्णदास के नयनों ने वालकृष्ण की भी सरस झाँकी देखी: उनकी वाणी साक्षी है:

'वाल दसा गोपाल की सव काहू प्यारी।
लै लै गोद खिलावहीं, जसुमति महतारी।
पीत झंगुलि तन सोहहीं सिर कुलहि विराजै।
छुद्र घंटिका कटि वनी पाय नूपुर वाजै।
मुरि मुरि नाचे मोर ज्यों सुर नर मुनि मोहै।
'कृष्णदास' प्रभु नंद के आंगन में सोहै।'

रसिक कृष्णदास की कविता भगवान के वात्सल्य-सागर में स्नान कर युगल स्वरूप की भक्ति से अपना शृंगार कर पुष्टिसिद्धान्त के कल्प-तरू के नीचे समाधिस्थ होकर अमर हो गयी, सफल और धन्य हो गयी। वे निकुंजलीलारस के पारखी थे, राधाकृष्ण के रूप-सौन्दर्य–दिव्य केलि के कवि थे।

वे राधाकृष्ण के अन्तरंग सखा थे। उनमें वात्सल्य, दास्य, सख्य और मधुर भक्ति का सरस समन्वय था। वास्तव में उनका जीवन प्रत्येक रूप से अलौकिक था, उनका व्रह्मचर्य अखण्ड था, उनकी भगवद्भक्ति निष्कलंक थी और उनकी गुरुनिष्ठा मर्यादित थी।

सम्वत् १६३६ वि. के लगभग उन्होंने भगवान के लीलाधाम में प्रवेश किया। वे एक कूप का निर्माण करा रहे थे। उसका निरीक्षण करते समय वे उसमें गिर पड़े। उसको पूरा करवा कर श्रीगोसाईं जी ने उनकी आत्मा को शान्ति दी। कृष्णदास का व्यक्तित्व महान था, वे प्रभावशाली सेवक और भक्त थे और उच्चकोटि के सन्त थे।

रचना

उन्होंने शृंगारभावप्रधान पद लिखे। 'युगल मान-चरित्र' उनकी विशिष्ट रचना है। अष्टछाप के कवियों में उनकी गणना है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वाणी

नीकौ मोहि लाग्यो श्रीगिरिधर गावै।
ततथेइ ततथेइ ततथेइ ततथेइ, भैरव राग मिलि मुरली बजावै।
नाचत नृपवृषभानुनन्दिनी औघट गति तरंग उपजावै।
नूपुर रुनित कुणित मनि कंकन जुवति जूथ रसरास बढ़ावै।
सुरति देति मधु मत्त मधुप कुल एक ताल सब के जिय भावै।
गिरिधर पिय प्यारी के पदरज 'कृष्णदास' न्योछावर पावै।

ग्वालिनि कृष्ण दरस सों अटकी।
बार-बार पनघट पर आवत सिर जमुना जल मटकी।
मदन मोहन की रूप-सुधा-निधि पीवत प्रेमरस गटकी।
'कृष्णदास' धन्य धन्य राधिका लोकलाज सब पटकी।

रास-विलास रच्यो नागर नट।
जुरमण्डल नरतत व्रजवनिता नवल निकुंज सुभग जमुना-तट।
उपजत तान बंधान सप्त सुर बाजत ताल मृदंग बीन रट।
सन्मुख ह्वै नाचत पिय-प्यारी लेत सुधंग चाल गति अटपट।
रसिक विहार निरखि ससि हार्‌यो शरद निसा भूल्यो अपनीअट
'कृष्णदास' गिरिधर श्रीराधा राजत मेघ मानों दामिनि घट।

निरखि सखी नीलाम्बर को छोर।
झूमि रह्यो सखी वदन चन्द पै
आइ घटा घनघोर।
हसन लसन दामिनी दुति विलसत
दस नख चन्द चकोर।
'कृष्णदास' प्रभु रूप घटा में
मानों नाचत मोर।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गोस्वामी विट्ठलनाथ

'वल्लभसुत बल भजनके कलियुग में द्वापर कियो।
विठलनाथ व्रजराज ज्यों लाल लड़ाय कैसुख लियो॥'

—भक्तमाल

गोस्वामी विट्ठलनाथ परम रससिद्ध महात्मा थे। उन्होंने पुष्टिमार्ग की मर्यादा के अनुरूप श्रीकृष्ण और उनकी प्राणप्रियतमा राधारानी की रसमयी लीला का चिंतन अमित विद्वत्तापूर्ण ढंग से किया, कर्म और ज्ञान दोनों भक्ति की कालिन्दी में रसमग्न कर लोकजीवन का सरस आत्मोत्थान किया, वे महाप्रभु वल्लभाचार्य के पुण्य के पुञ्जीभूत स्वरूप थे, भागवत धर्म के अभ्युत्थान के लिये धरती पर उनका प्राकट्य हुआ, समस्त प्राणीमात्र को उन्होंने श्रीकृष्ण की भक्ति का अधिकारी घोषित किया। निस्सन्देह उनके भजन के प्रताप से कलियुग कृष्णभक्ति में सरस होकर, वृन्दावन की शुद्ध सच्चिदानन्दमयी तथा अलौकिक दिव्य वात्सल्य-लीला और कमनीय कुंज की केलि से द्वापर में रूपान्तरित हो गया। उन्होंने भगवान कृष्ण की परिचर्या और सेवा का राग, भोग, शय्या, भूषण, वसन आदि से युक्त विधान स्थिर किया। मध्यकालीन भक्ति-साहित्य ने नन्ददास, छीतस्वामी आदि के वाणी-माध्यम से उनके चरणों में अमित विश्वास प्रकट किया है। छीतस्वामी की उक्ति है कि, हम तो वल्लभनन्दन विट्ठलनाथ की उपासना और भक्ति करते हैं, वे साक्षात् मुक्तिस्वरूप हैं, उनको छोड़ कर किसी अन्य का ध्यान नहीं किया जा सकता है, उनका आश्रय ग्रहण करना सर्वथा वैदिक है—वेदसम्मत है। छीतस्वामी ने विट्ठल नाथ में गुरुभावना और भगवद्भक्ति की अभिन्नता की अनुभूति की। गोस्वामी विट्ठल-नाथ ने भगवद्भक्ति के अवलम्बन से युगान्तर उपस्थित किया, उन्होंने म्लेच्छ से आक्रान्त देश में वैदिक मर्यादा की पवित्रता का संरक्षण किया। नन्ददास की उक्ति है:

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'श्रीवल्लभसुत के चरण भजो।
नन्द सुकुमार भजन सुखदायक
पतितन पावन करन भजो।
पुष्टि मर्याद, भजन-सुखसीमा,
निज जन पोषन करन भजो।
'नन्ददास' प्रभु प्रकट भये दोउ
श्री विट्ठलेश गिरिधरन भजो।'

विट्ठलनाथ ने प्रेमलक्षणाभक्ति सिद्ध की। उन्होंने असंख्य प्राणियों को भगवान के चरणारविंद में प्रणत कर ब्रह्मसम्बन्ध कराया, उनकी कृपा से साहित्य, संगीत और कला ने भक्ति के चरण पर आत्मसमर्पण कर दिया। गोस्वामी विट्ठल नाथ भक्ति-सूत्रधार महाप्रभु वल्लभाचार्य के आत्मज थे, उनके जन्म से परम पवित्र तैलंग कुल ही नहीं, समस्त भरतखण्ड धन्य हो गया। गोस्वामी विट्ठलनाथ महाप्रभु वल्लभाचार्य के द्वितीय पुत्र थे। उनका जन्म काशी के सन्निकट चरणाट-चुनार में सं. १५७२ वि. में पौष कृष्ण नवमी को हुआ था। उस समय महाप्रभु चरणाट में ही निवास कर रहे थे। चारों ओर प्रसन्नता की लहर दौड़ गयी। व्रज में महाकवि सूरदास आदि ने बधाई के पद गाये। परम भागवत ज्योति का धरती पर असंख्य जीवों को तारने के लिये अवतरण हुआ। महाप्रभु वल्लभाचार्य परम मुदित थे। अपने पुत्र के जन्मोत्सव पर उन्होंने प्रचुर दान दिया। वर्णन मिलता है:

'सुनि सुत को जस लक्ष्मणनन्दन
ढाढ़ी निकट बुलायो हो।
कंचन थार भरे मुक्ताफल
भक्ति वसन पहरायो हो।
मन वांछित फल बहुविधि दीन्हों
कीयो अजाची ढ़ाढ़ी हो।
मानिकचन्द बलि बलि उदारता
प्रीति निरन्तर बाढ़ी हो।'

वृन्दावन में तो दिव्य ज्योति प्रकाशित हो उठी। चरणाट गंगातट पर अवस्थित है। भगवती, भागीरथी के हृदय देश में आनन्द उमड़ आया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जन्म के एक मास के बाद विधिपूर्वक गंगापूजन हुआ। सौभाग्यवती लक्ष्मी देवी अपनी गोद में पुत्र को लेकर गंगा-पूजन कर रही थीं कि इतने में गंगाजल में बाढ़ आ गयी। भागीरथी ने नवजात का चरण स्पर्श किया। साक्षात् प्रकट होकर लक्ष्मी के भाग्य की सराहना की कि तुम्हारे पति साक्षात् पुरुषोत्तम हैं और पुत्र भी पुरुषोत्तम रूप में प्रकट हुआ। महाप्रभु ने इस घटना पर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। उन्होंने अपने नवजात शिशु का नाम विट्ठलनाथ रखा। विट्ठलनाथ का जन्म सन्तों के संरक्षण के लिये तथा कलियुग के जीवों के उद्धार के लिये हुआ:

कुम्भनदास का पद है:

'प्रकटे श्री विट्ठलेश लाल गोपाल।
कलियुग जीव उधारन कारन संत जनन प्रतिपाल।
द्विज कुल मण्डन तिलक तैलंग-वल्लभ कुल अतिरसाल।
'कुम्भनदास' प्रभु गोवरधनधर नित उठि नेह करत व्रजबाल॥'

सम्वत् १५८० वि. में अड़ैल में उनका यज्ञोपवीत-संस्कार सम्पन्न हुआ। उनकी शिक्षा-दीक्षा अड़ैल में ही हुई। पिता की तरह उन्होंने भी गृहस्थाश्रम ही स्वीकार किया, दो विवाह किये। उनकी पहली पत्नी का नाम रुक्मिणी और दूसरी पत्नी का नाम पद्मावती था। गोस्वामी विट्ठलनाथ ने अपने जीवन का अधिकांश गोकुल और गोवर्धन में बिताया। व्रज के प्रति वे स्वभाव से ही आकृष्ट थे। धीरे-धीरे उनकी ख्याति बढ़ने लगी। सम्वत् १५८७ वि. में महाप्रभु वल्लभाचार्य के नित्य गोलोक-प्रवेश के बाद उनके ज्येष्ठ पुत्र गोपीनाथ जी पुष्टि-मार्ग के आचार्य हुए। पर थोड़े समय के बाद उनका गोलोक-गमन हुआ। विट्ठलनाथ जी सपरिवार अड़ैल से व्रज आ गये थे। उत्तराधिकार का प्रश्न छिड़ने पर गोपीनाथ जी की पत्नी ने अपने पुत्र पुरुषोत्तम जी का पक्ष लिया, कृष्णदास जी भी पुरुषोत्तम जी की ही ओर थे। श्रीविट्ठलनाथ जी ने आचार्यपद की अधिकार-याचना की पर मान्यता न दी गयी। वे श्रीनाथ जी में दृढ़ अनुरक्त और आसक्त थे। कृष्णदास ने उनका डयोढ़ी-दर्शन भी बन्द कर दिया। गोस्वामी विट्ठलनाथ श्रीनाथ जी के विरह-दुःख से इतने संतप्त हो गये कि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उनका समय कटना कठिन हो गया। वे परासोली चले गये। वहाँ से नित्य नियमपूर्वक श्रीनाथ जी के मन्दिर के झरोखे की ओर देखा करते थे और उनकी पताका को श्रद्धा और भक्ति से नमस्कार कर लिया करते थे। गोविन्ददास का इस घटना के सम्बन्ध में पद है, उससे गोस्वामी विट्ठलनाथ की वास्तविक मनोदशा का पता चलता है :

'चितवत रहत सदा गोकुल तन।
बार-बार खिरकी ह्वै झाँकत अति आतुर पुलकित मन।
.....सुख चाहत है भरत कमल दल लोचन।
ताही समै मिले री 'गोविन्द' प्रभु कुमर विरह-दुख मोचन।'

परासोली-निवास काल में उन्होंने श्रीनाथ जी के वियोग-दुख में 'विज्ञप्ति' की रचना की। उनके पुत्र गिरिधर ने मथुरा के शासक से शिकायत कर कृष्णदास को कैद करवा दिया। गोस्वामी जी इस घटना से बहुत दुःखी हुए। उन्होंने अन्न-जल त्याग दिये, उनका उदार और कृपालु हृदय द्रवित हो उठा। कृष्णदास के मुक्त होने पर उन्होंने भोजन किया। कृष्णदास गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के इस सहानुभूति-पूर्ण आचरण से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने क्षमा माँगी और गोस्वामी विट्ठलनाथ को पुष्टिमार्ग का आचार्य स्वीकार किया, गोस्वामी जी महाप्रभु के आचार्य पद के वास्तविक अधिकारी हुए। गोस्वामी विट्ठल-नाथ कुछ दिनों तक गोकुल में रहे, वे चार साल तक मथुरा में भी रहे; सम्वत् १६२८ वि. में गोकुल को उन्होंने अपना स्थायी निवास-स्थान बना लिया।

उन्होंने गुजरात तथा दक्षिण और मध्यभारत के तीर्थों की यात्रा की थी। बादशाह अकबर, मानसिंह, वीरबल, महारानी दुर्गावती, राजा आसकरण आदि उनको बड़े सम्मान और आदर की दृष्टि से देखते थे, सर्वथा पूज्य समझते थे। गोस्वामी विट्ठलनाथ का सबसे बड़ा और पवित्रतम कार्य यह था कि उन्होंने पुष्टिभक्ति में राधाभाव का समावेश किया और नितान्त स्मरणीय तो यह है कि उनकी आराध्या राधा स्वामिनी हैं, स्वकीया हैं, उन्होंने उनमें कहीं भी परकीया भाव का स्पर्श तक नहीं होने दिया, कृष्ण के रमणोत्सव में—केलि में, निकुंज-लीला में राधा का उन्होंने स्वकीयत्व मर्यादित किया। गोस्वामी विट्ठल-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नाथ की यह असाधारण मौलिकता है, अपूर्व सूझ है। गोस्वामी विट्ठलनाथ ने पुष्टिमार्ग को सुदृढ किया। उन्होंने श्रीकृष्ण की प्राप्ति में सर्वस्व का सदुपयोग किया, अपने जीवनकाल की कलाकारिता, काव्यमर्मज्ञता, संगीतनिपुणता आदि को उन्होंने श्रीकृष्ण की भक्ति के चरण पर नीछावर कर दिया। भगवद्भक्ति उनकी सहज सिद्ध सम्पत्ति थी। उन्होंने महाकवि सूरदास, नन्ददास, कुम्भनदास, परमानन्ददास, गोविंददास, चतुर्भुजदास, कृष्णदास और छीतस्वामी आदि को अष्टछाप की पवित्र गद्दी पर प्रतिष्ठित कर साहित्यक्षेत्र में दिव्य क्रान्ति की। अष्टछाप के सन्त कवियों ने अपने आराध्य श्रीकृष्ण का रसराजत्व सिद्ध किया। गोस्वामी विट्ठलनाथ के अनेक भक्त हुए, उनमें से दो सौ बावन वैष्णव अमित प्रसिद्ध हैं। इन दो सौ बावन वैष्णवों में अष्टछाप के आठ सखाओं को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हैं। गोस्वामी विट्ठल नाथ की महिमा के बखान में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की उत्तरार्ध 'भक्तमाल' में विलक्षण उक्ति है।

'श्री श्री वल्लभ सुअन विप्रकुल तिलक जगत वर।
माया मत तम तोम विमरदन ग्रीष्म दिवाकर।
जन चकोर हित चन्द भक्ति पथ भुव प्रगटावन।
अंतरंग सखि भाव स्वामिनी दास्य दृढ़ावन।
दैवी जन मिलि अवलंब हित इक जा पद दृढ़ करि गह्यौ।
निज प्रेमपंथ सिद्धान्त हरि विट्ठल वपु धरि कै कह्यौ।'

उन्होंने महाप्रभु वल्लभाचार्य द्वारा निर्दिष्ट पुष्टिमार्गीय-भगवद्साधना की आठ झाँकियों का सुन्दर क्रम निबाहा, प्रत्येक झाँकी के अलग-अलग अष्टसखाओं में से कीर्तनकार नियुक्त किये। मंगला में अनुराग, खण्डिताभाव, जगाने, और दधिमन्थन के पद के लिये परमानन्ददास, शृंगार में बालरूप सौन्दर्य, वेशभूषा और बालक्रीड़ा के लिये नन्ददास ग्वाल भोग में सख्यभाव, क्रीड़ा, चौगान, गोचारण, गोदोहन और माखनचोरी के पद-गान के लिये गोविन्ददास, राजभोग में छाक के पद के लिये अष्ट सखा और विशेषरूप से कुम्भनदास, उत्थापन में गोटेरन और वन्य लीला के पद के लिये सूरदास, भोग में कृष्णरूप वर्णन, गोपीदशा, मुरली, रूपमाधुरी, गाय-गोप आदि के कीर्तन के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लिये चतुर्भुजदास, संध्याआरती में गोग्वाल सहित वन से आगमन, गोदोहन, धैया, यशोदा के वात्सल्यपूर्ण आवाहन के पदगान के लिये छीतस्वामी और शयन में अनुराग, गोपीभाव, निकुंज लीला, सयोग-शृंगार के वर्णन के लिये कृष्णदास—कीर्तनकार नियुक्त किये। गोस्वामी विट्ठलनाथ निस्सन्देह मध्यकालीन वात्सल्य और माधुर्य से युक्त भागवत साम्राज्य के एकच्छत्र सम्राट थे। सूरदास आदि अष्ट सखा उनके प्रधान मन्त्री थे, श्रीमद्भागवत उनका न्याय शास्त्र था और कृष्णभक्ति की प्राप्ति ही उनके साम्राज्य की परम समृद्धि थी। गोविन्ददास का कथन है कि यदि श्री विट्ठल ने रूप न धारण किया होता तो कलि-युग के महापतितों का निस्तार किस तरह होता:

'जो पै श्री विट्ठल रूप न धरते।
तो कैसेक घोर कलियुग के महापतित निस्तरते।'

वे चतुर्भुजदास के लिये समस्त सुखों की महामांगलिक निधि थे और नन्ददास ने तो तन-मन-धन—सब कुछ उन पर नीछावर कर दिया था।

पुष्टिमार्ग को युगल स्वरूप की उपासना उनकी बहुत बड़ी देन है। उन्होंने अनन्य भाव से कृष्ण की प्राणेश्वरी राधा का भजन किया। उनकी परम पवित्र उक्ति है कि हे नाथ, हे व्रजराजनन्दन! मैं दातों में तिनका लेकर विनती करता हूँ कि हे मोहन! आप की अत्यन्त प्रियतमा श्री राधा ही जन्म-जन्म में मेरी प्रिय स्वामिनी हों। एक स्तोत्र में उन्होंने राधा के प्रति अत्यन्त पूज्य भाव प्रकट किया है। उनकी उक्ति है कि 'राधे! अपने प्रियतम श्री व्रजेन्द्रनन्दन के नेत्रों से कटाक्ष रूपी बाणों की वर्षा होने पर आप के अधरों से जो मधुर हास्य की उज्ज्वल धारा फूट निकलती है और आप के नेत्रों से जो अश्रु-प्रवाह छूट पड़ता है. उन्हीं में सदा गोता लगता रहूँ—स्नान कर लिया करूँ और किसी जल से मुझे कोई प्रयोजन न रहे। जब-जब मुझे भूख लगे, आप के मुख से उगले पान के बीड़े का ही मैं भोजन कर लिया करूँ—किसी दूसरे आहार की मुझे आवश्यकता न पड़े। इसी प्रकार जब-जब मुझे प्यास सताये, आप की करुणाभरी मधुर मुसकान तथा चितवन रूपी अमृत का पान करके ही मैं तृप्त हो जाऊँ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अत्यन्त दीन भाव से तीनों समय आप के चरणों में प्रणाम ही मेरी त्रिकालसंध्या हो और विरहजनित ताप और क्लेश में गहरे डूब कर आप के नामों का जोर-जोर से उच्चारण ही जप हो। अस्ताचल को जाते हुए सूर्य रूपी प्रचण्ड अग्नि में दिन भर के वियोगजनित दुख का मैं हवन किया करूँ और आप के पूछने पर प्रियतम श्यामसुन्दर की बात कहना ही मेरे लिये ब्रह्म यज्ञ– वेदों का स्वाध्याय हो। प्रियतम से समागम होने पर सखियों सहित आप के मन में जो महान उल्लास का आविर्भाव होता है, उसे देखने से ही मेरे मन की साध पूरी हो जाती है ! मैं कृतकृत्य हो जाता हूँ। उस समय होने वाली मेरी सम्पूर्ण इन्द्रियों की तृप्ति ही मेरे लिये तर्पण हो। इस प्रकार मेरी जीवन-यात्रा चलती रहे। आप के चरणों से अलग होते ही मेरी मृत्यु हो जाय। इस प्रकार एक मात्र आप का ही मुझे आसरा रहे।' गोस्वामी जी की राधा-भाव-उपासना की यह एक झाँकी है, राधा की उन पर असीम कृपा थी। गोस्वामी विट्ठलनाथ की अट्ठाइस बैठक हैं। उनमें उन्होंने अद्भुत चरित्र प्रकट किये। एक बार वे व्रज में कराहला में थे, रासोली में ललिता का स्वरूप है। गोस्वामी जी उस स्वरूप को एक माला पहनाने लगे, ललिता ने माला ले ली, पहनी नहीं। शाम को दर्शन के लिये फिर पधारने पर ललिता ने कहा कि माला स्वामिनी राधा जी को पहनायी है, उन्होंने प्रसाद दिया है, पहनोगे। गोसाईं जी ने माला पहन ली, अपने सौभाग्य की सराहना की। उनकी उक्ति है कि हे राधे, निकुंज में पुष्पशय्या केलि जन्यश्रमजलबिन्दु मुखकमलश्रीसे सम्पन्न सहज कृपा से माला देने के लिये आप मेरा स्मरण करती हैं, इससे बढ़ कर और क्या है ? गोस्वामी जी को युगल-स्वरूप लीला के दर्शन होते रहते थे। एक बार वे कोटवन में गोविंद स्वामी के साथ थे। उन्होंने उन्हें कदमखण्डी की लीला दिखायी, गोविन्ददास ने देखा कि युगल स्वरूप विहार कर रहे हैं, श्रीकृष्ण ने राधारानी के वक्षस्थल की माला मर्दित कर तोड़ डाली है, मोती भूमि में बिखर गये हैं, उन्हें पोहकर माला पहना रहे हैं। गोविन्ददास का इस लीला के सम्बन्ध में एक पद है :

कदमवन वीथन करत विहार।
मदन मोहन पिय अति रसमाते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तोर्‌यों प्रिया उरहार।
कनक भूमि वियुरे गजमोती
कुंजकुटी के द्वार।
'गोविन्द' प्रभु श्री हस्त सो पोई
सुंदर व्रजराज कुमार।

इन घटनाओं में गोस्वामी विट्ठल नाथ की अचल राधा भक्ति अन्तरस्थ है। पुष्टिमार्ग की उन्नति का श्रेय विट्ठलनाथ जी को ही है। उन्होंने सब को समान रूप से कृष्णभक्ति का उपदेश दिया। वे बहुत बड़ी भागवत विभूति थे, शक्ति थे।

इस धरती पर बहुत दिनों तक भक्ति का प्रचार कर उन्होंने जीवन-लीला-संवरण किया। सम्वत् १६४२ वि. में फाल्गुन कृष्ण अष्टमी को गोवर्धन की एक कन्दरा में प्रवेश कर उन्होंने शरीर-त्याग किया। उनके लीला-प्रवेश के समय अष्टछाप के सन्त चतुर्भुजदास उपस्थित थे। वातावरण करुणरस से संप्लावित था। उन्होंने अमित करुण स्वर से गोस्वामी जी के प्रति श्रद्धांजलि प्रकट की।

'श्री विट्ठलनाथ से प्रभु भये न ह्वै हैं।'
पाछे सुने न देखे आगे, वह संग फिरि न बनै हैं।

* * *

को फिरि नन्दराय को वैभव व्रजवासिनि बिलसै हैं।
श्री वल्लभ सुत दर्शन कारन अब सब कोउ पछितै हैं।
'चतुर्भुजदास' आस इतनी जो सुमिरन जनमु सिरै हैं।

उनका समस्त जीवन भगवान कृष्ण की सौन्दर्य-माधुर्य-लीला के दर्शन-बोध का चिन्मय प्रतीक है। उनकी गोलोकयात्रा के बाद उनकी गद्दी उनके सात पुत्रों में विभाजित हो गयी। लोक-जीवन में लोकोत्तरता और चिन्मयता अथवा अलौकिकता का समावेश पुष्टिमार्ग की विशेषता है और इस मर्म के अप्रतिम मर्मज्ञ गोस्वामी विट्ठल नाथ जी स्वीकार किये जाते हैं। उन्होंने भगवान की कृपा की सरस कालिन्दी में अपने हृदय के वंशीवट पर युगल स्वरूप की लीला-अभिव्यक्ति की, उनका जीवन सर्वथा सफल था।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रचना

विद्वन्मण्डन, निबन्धप्रकाश टीका, सुबोधिनी की टिप्पणी, भक्तिहेतु शृंगाररसमण्डन, भक्ति हंस, विज्ञप्ति आदि विट्ठल नाथ जी की रचनायें हैं।

वाणी

सबके आत्मा रूप से व्याप्त, भगवान व्रजराज श्रीकृष्ण का ही सदैव भजन करना चाहिये, वे ही हम लोगों के लौकिक-पारलौकिक लाभ सिद्ध करेंगे।

दूसरे का आश्रय नहीं लेना चाहिये, वह सर्वथा बाधक होता है, सदा स्वावलम्बी होकर, सब तरह से आत्मभाव का पालन करना चाहिये।

कालादि दोषों को दूर करने वाले भगवान कृष्ण का सदा-सर्वदा सेवन करना चाहिये और दोष-दृष्टि को त्याग कर, श्रद्धापूर्वक उनके भक्तों का संग करना चाहिये।

भगवान कृष्ण में ही सदा अपने मन को लगाये रखना चाहिये, क्योंकि उनके भक्तों को कठिन काल भी बाधा नहीं पहुँचा सकता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्त गोविन्ददास

'सो गोविन्द स्वामी कवीश्वर हते,
सो आप पद करते।'

—अष्टछाप

'सन्त' शब्द भगवान के सत्स्वरूप की विशेष उपाधि है। सन्त का प्राणधन सत्य है। इस सत्य के प्रति विशेष अनुरक्ति ही उपासना के क्षेत्र में भगवत्सम्बन्ध अथवा भक्ति है। सन्त गोविन्ददास भगवान श्री-कृष्ण के विशेष कृपापात्र थे। वे उनकी सखाभाव से भक्ति करते थे। विचित्र बात तो यह है कि श्यामसुन्दर साक्षात् प्रकट होकर उनके भाव के अनुकूल उनके साथ खेला करते थे। दोनों में गहरी छनती थी। श्रीकृष्ण की सख्य-भक्ति के प्रचार में सन्त कवि गोविन्ददास का विशेष हाथ स्वीकार किया जा सकता है। उन्होंने पुष्टिमार्ग के सिद्धान्त के अनुरूप भगवान श्रीकृष्ण की सख्य-भक्ति सिद्ध की। वे वैराग्यराग के रसिक थे, भक्त, सन्त और कवि थे, महान भगवदीय थे।

उनके जीवन-काल में भारत के अधिपति महामुगल अकबर थे। अकबर की उदारता और मेल-जोल की नीति से देश में राजनैतिक शान्ति थी, जनता सुखी और निश्चिंत थी। ऐसे समय में भगवद्भक्ति के प्रचार का पवित्र और शुभ कार्य आरम्भ हुआ। व्रज में श्रीकृष्ण और अवध में राम की भक्ति लहलहा उठी। तत्कालीन साहित्यचेतना भगवद्भक्ति में सरस हो गयी। सन्त गोविंददास की वाणी का इस साहित्य-क्रान्ति में असाधारण सहयोग था। गोस्वामी—गोसाईं विट्ठल-नाथ ने उन्हें 'कवीश्वर' की उपाधि से सम्मानित किया था। गोविंद-दास भगवान कृष्ण के श्रीदाम सखा के स्वरूप स्वीकार किये जाते हैं, वे श्रीकृष्ण के परम अन्तरंगी थे। गोस्वामी विट्ठलनाथ और वृन्दावन में उनकी बड़ी श्रद्धा और भक्ति थी। गोविन्ददास ने बड़ी पवित्रता से आजीवन श्रीकृष्ण की ही लीला गायी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सम्वत् १५६२ वि. के लगभग व्रज के निकट भरतपुर राज्य के अन्तर्गत आन्तरी गांव में एक सनाढ्य ब्राह्मण कुल में गोविन्ददास का जन्म हुआ था। बाल्यावस्था से ही उनमें संसार के प्रति अनासक्ति और वैराग्य के बीज अंकुरित होने लगे। गृहस्थाश्रम में उनका मन नहीं लग सका। उन्होंने संन्यास ले लिया। उन्होंने महावन में निवास स्थिर किया। एक ऊँचे टीले पर बैठ कर शास्त्रीय विधि से संगीत गाया करते थे। वे कुशल कवि थे, यद्यपि उनकी शिक्षा न्यून थी तो भी उनकी सूझ और प्रतिभा निराली तथा अलौकिक थी। वे भगवद्-भक्ति में सने सुन्दर-सुन्दर पद बना कर भगवान को रिझाया करते थे। अकबर बादशाह की राजसभा के संगीतसम्राट तानसेन कभी-कभी उनसे मिलने आया करते थे। तानसेन और उनमें गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के सम्बन्ध में प्रायः बातें हुआ करती थीं। गोसाईं विट्ठलनाथ और गोविंदस्वामी दोनों एक दूसरे के यश और भक्ति-भावना से परिचित थे, यद्यपि उनका कभी साक्षात्कार नहीं हुआ था। तानसेन की प्रेरणा से गोविन्द स्वामी ने गोसाईं विट्ठलनाथ से दीक्षा लेने का निश्चय किया। शिष्य होने के पहले एक दिन वे गोकुल गये। उन्होंने यमुनातट पर गोस्वामी जी को संध्या-वन्दन करते देखा, वे आश्चर्य-चकित हो गये कि भक्ति में कर्मकाण्ड की क्या महत्ता है। मन्दिर में उपस्थित होकर उन्होंने गोसाईं जी के सम्मुख अपनी जिज्ञासा प्रकट की। गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने समाधान किया कि भक्तिमार्ग फूलरूपी है और कर्ममार्ग कांटारूप है। फूल बिना रक्षा के नहीं फूलते हैं इसलिये उनकी चारों ओर वैदिक कर्मकाण्ड का बाड़ा लगा दिया जाता है। कर्म से भक्ति की मर्यादा सुरक्षित होती है। गोसाईं जी के भक्ति और कर्म के समन्वयसिद्धान्त से गोविन्दस्वामी बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने गोसाईं जी से शरणागति की प्रार्थना की। सम्वत् १५९२ वि. में गोसाईं जी ने उन्हें दीक्षा दी। वे गोविन्दस्वामी से गोविन्ददास हो गये। गोसाईं जी के परम कृपापात्र और भक्त हो गये। वे श्रीनाथ जी के कीर्तनकार नियुक्त हुए। दीक्षा के बाद वे आजीवन गुरु और भगवान श्यामसुंदर की सेवा में संलग्न रहे।

वे गोवर्धन के निकट कदम्ब वृक्षों की एक रमणीय बाटिका में रहने लगे, वह स्थान 'गोविन्ददास की कदम खण्डी' के नाम से प्रसिद्ध

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है। वे सरस पदों की रचना कर श्रीनाथ जी की सेवा करने लगे। भगवान नन्दनन्दन के व्रज पर उन्होंने सर्वस्व समर्पित कर दिया। उन्होंने चिन्मय व्रजभूमि में प्रगाढ़ श्रद्धा और निष्ठा प्रकट की है, व्रज की धूलि में उन्हें अपने मदनमोहन श्रीनाथ जी की चिन्मयता प्रतिविम्बित दीख पड़ती थी। व्रज-महिमा के बखान में उनकी उक्ति है कि वैकुण्ठ में जाकर क्या होगा, उसमें कालिन्दी की श्यामता, नन्द-यशोदा के वात्सल्य, श्यामसुन्दर की मुरली-ध्वनि और राधारानी के चरणारविंद का दर्शन ही नहीं हो सकता, इन चिन्मय पदार्थों के दर्शन का सौभाग्य व्रज में ही मिल सकता है, कवि का पद है :

'कहा करों वैकुण्ठे जाइ।
जहाँ नहीं वंसीवट जमुना गिरि गोवर्धन, नन्द की गाइ।
जहाँ नहीं ए कुंज लता द्रुम, मन्द सुगन्ध बाजत नहि वाइ।
कोकिल मोर हंस नहिं कूजत, ताको बसिबो कहा सुहाइ।
जहाँ नहीं वंसी धुनि बाजत कृष्ण न पुरवत अधर लगाइ।
प्रेम पुलक रोमाञ्चय उपजत मन क्रम वच आवत नहिं दाइ।
जहाँ नहिं ए भुववृन्दावन बाबा नन्द जसोमति माइ।
'गोविन्द' प्रभु तजि नन्द सुवन कों व्रज तजि वहाँ वसति बलाइ।'

गोविन्ददास ने मुक्ति का परित्याग कर भक्ति की राजधानी में अपने आप को नीलाम कर दिया। उनके जीवन में अनेक चमत्कारपूर्ण घटनाओं का परिचय मिलता है। ब्रह्मसम्बन्ध लेने के बाद वे गोवर्धन में ही रहने लगे थे। एक बार उनके गाँव के कुछ परिचित व्यक्ति और पूर्वाश्रम के शिष्य उनसे मिलने आये। वे यशोदाघाट पर स्नान कर रहे थे। उन्होंने गाँव वालों को पहचान लिया पर गाँव वाले यह न समझ सके कि गोविन्द स्वामी वे ही हैं। गांव वालों ने गोविन्द स्वामी का पता पूछा तो उन्होंने कहा कि गोविन्द स्वामी की मृत्यु हो गयी।... गोविन्ददास के रूप में उन्हें अपना परिचय दिया। वे वैराग्य के मूर्तिरूप गोविन्ददास का चरण-स्पर्श कर धन्य हो गये।

एक वार अकवर ने गोविन्ददास के दर्शन से अपने आप को धन्य करना चाहा।....यशोदाघाट पर गोविन्ददास जी भैरव राग का अभ्यास कर रहे थे। शीतल मन्द सुगन्धित समीर वह रहा था। प्रातः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

काल का समय था। अत्यन्त शान्त वातावरण था। पशु-पक्षी सब-के-सब गान सुनने में तल्लीन थे। अगणित भक्त उपस्थित थे। गोविन्ददास झूम-झूम कर गा रहे थे :

'आओ मेरे गोविन्द, गोकुल चन्दा।
भइ वड़ी वार खेलत जमुना तट, वदन दिखाइ देहु आनंदा।
गायन कीं आवन की विरियाँ, दिनमनि किरन होति अति मंदा
आये तात, मात छतियाँ लगे, 'गोविन्द' प्रभु व्रज जन सुख कंदा।'

श्रोताओं में तानसेन और उनके साथ साधारण वेश में अकबर ने भी सरस गान का रसास्वादन किया। अकबर के मुख से सहसा 'वाह-वाह' शब्द निकल पड़े। गोविन्ददास से अकबर ने कहा कि मैं बादशाह हूँ। गोविन्ददास ने कहा कि तुम बादशाह हो तो बादशाही करो, इस स्थान पर तुम्हारी आवश्यकता नहीं है। व्रजराज के भक्त के मुख से ऐसी बात सुनकर उदार अकबर को प्रसन्नता हुई। अकबर के जाने के बाद गोविन्ददास ने सोचा कि अकबर की वाह-वाही से भैरव राग अपवित्र हो गया। उन्होंने श्रीनाथ जी के सामने भैरव राग कभी न गाने का नियम लिया और उसे आजीवन निबाहा। इस प्रकार उन्होंने श्रीनाथ जी की शुद्ध भक्ति में अपने समय का सदुपयोग किया। भगवान से सम्बन्ध होने पर लोक का विस्मरण हो जाता है, मन स्वाभाविक रूप से चिन्मय आनन्द में रमण करने लगता है।

श्रीनाथ जी ही उनके सर्वस्व थे। वे कदमखण्डी में अपनी बहन कान्हाबाई, जो गोसाईं विट्ठल नाथ की शिष्या थी, के साथ रहते थे। एक दिन उनकी लड़की गोविन्ददास से मिलने आयी। बहुत दिनों तक उनके साथ रही पर उन्होंने एक दिन भी बात नहीं की। कान्हाबाई के पूछने पर उन्होंने निस्संकोच कहा कि मन एक है, वह श्रीनाथ जी की रूप-माधुरी में आसक्त है इसलिये लड़की से बात करने या उसके प्रति स्नेह प्रकट करने का अवकाश ही नहीं मिलता है, यह थी श्रीनाथ जी के चरणों में उनकी अनन्यता।

वे श्रीनाथ जी को अपना सखा मानते थे। उन्होंने सख्य भक्ति सिद्ध की। श्रीनाथ जी उनके साथ खेलते थे, हँसते थे, सदा उनके संयोग से प्रसन्न होते थे। निस्सन्देह वृन्दावन की पवित्र भूमि धन्य है जिस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पर भगवान कृष्ण भक्तों का मनोरञ्जन करते रहते हैं। एक बार खेल-ही-खेल में उन्होंने श्रीनाथ जी को कंकड़ी मारी। मुखिया ने गोसाईं विट्ठल नाथ जी से शिकायत की। उन्होंने गोविन्ददास से कारण पूछा। उन्होंने कहा कि आप के लाला ने तीन कंकडी मारी थीं, मैंने बदला लिया। गोसाईं जी ने गोविन्ददास के सौभाग्य की सराहना की और भगवान की लीला समझ कर मौन हो गये। गोविन्ददास थे तो श्रीनाथ जी के सखा ही।

श्रीनाथ जी ने गोविन्ददास की मित्रता निबाही। प्रभु की कृपा ही तो है, जिसकी ओर वे एक बार देख कर अपना लेते हैं वह जन्म-जन्म के लिये उन्हीं का हो जाता है, संसार का सम्बन्ध तो टूट जाता है पर भगवत्सम्बन्ध कभी नहीं टूटता है। एक दिन गोविन्ददास आत्म-विभोर होकर श्रीनाथ जी से गुल्ली खेल रहे थे। राजभोग का समय हो गया। बिना दाँव दिये ही भगवान श्यामसुन्दर मन्दिर में चले गये। गोविन्ददास ने उनका पीछा किया। भक्त और भगवान दोनों की लीला विचित्र होती है। दाँव लेने के लिये गोविन्ददास जगमोहन में खड़े हो गये। मुखिया और जलघड़िया आदि ने उनको अपमानित कर मन्दिर से बाहर निकाल दिया, वे उनकी दृष्टि में साधारण जीव थे; गोविन्ददास का यह साहस उनके लिये अक्षम्य था कि वे श्रीनाथ जी की समता करें। गोविन्ददास रूठ कर मन्दिर के सामने रास्ते पर बैठ गये। उन्होंने प्रण किया कि जब श्रीनाथ जी मन्दिर से बाहर खेलने के लिये आयेंगे तब रोक कर दाँव लूंगा। इधर मंदिर में राज-भोग भगवान के सम्मुख रखा गया, भोग स्वीकार नहीं हुआ, नन्दनन्दन के सखा का अपमान हुआ, वे अपने मित्र का अपमान किस तरह सह सकते थे। रास्ते पर सखा अपमानित होकर तथा रूठकर बिना भूख-प्यास की चिंता किये खड़े हों और श्रीनाथ जी भोग स्वीकार करें यह नितान्त असम्भव बात थी। प्रभु की भक्ति-मर्यादा के विपरीत थी। श्रीविट्ठल नाथ जी ने गोविन्ददास की बड़ी मनौती की वे गोसाईं जी के कहने पर मन्दिर में आये। भगवान ने भोग स्वीकार किया। व्रज के रंगीले ठाकुर की रीझ ही तो थी, गोविन्ददास ने भी भोजन किया, मित्रता धन्य हो गयी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एक दिन पुजारी राजभोग की थाली श्रीनाथ जी के लिये ले जा रहा था। गोविन्ददास ने आग्रह किया कि पहले मुझे खिला दो। पुजारी ने गोसाईं जी महाराज से कहा। गोविन्ददास ने विट्ठलनाथ जी से निवेदन किया कि आप के लाला खा-पीकर मुझसे पहले गाय चराने के लिये निकल पड़ते हैं, मैं पीछे रह जाता हूँ। विट्ठलदास जी ने उनके भाव से प्रसन्न होकर श्रीनाथ जी के राजभोग के साथ-साथ नित्य प्रति उनके भोजन और प्रसाद की व्यवस्था कर दी। गोविन्द दास पलमात्र के लिये भी श्रीनाथ जी के सम्पर्क-सुख का रस नहीं छोड़ना चाहते थे।

श्रीनाथ जी उनसे प्रत्यक्ष वात करते थे पर देखने-सुनने वालों की समझ में कुछ भी नहीं आता था। एक वार शृंगार-दर्शन के समय श्रीनाथ जी की पाग मुखिया ने अच्छी तरह नहीं बाँधी थी। गोविन्द-दास ने श्रीनाथ जी से इस सम्बन्ध में निवेदन किया तो भगवान ने आज्ञा दी कि तुम भीतर आकर ठीक कर दो। गोविन्ददास ने मन्दिर में प्रवेश कर पाग अच्छी तरह बाँध दी। मुखिया ने गोसाईं जी से कहा कि श्रीनाथ जी तो छू गये। गोसाईं जी ने तत्काल समाधान किया कि गोविन्ददास परम भगवदीय हैं, श्रीनाथजी के सखा हैं, उनके स्पर्श से श्रीनाथ जी आनन्दित होते हैं।

भगवान भाव के भूखे होते हैं, वे अपने प्रेमियों के पीछे-पीछे घूमा करते हैं। एक बार वे श्यामढाक पर बैठ कर वंशी बजा रहे थे। मन्दिर में उत्थापन का समय हो गया था। गोविन्ददास वृक्ष के नीचे खड़े होकर श्रीनाथ जी का प्रत्यक्ष दर्शन कर रहे थे। गोसाईं जी ने स्नान कर मन्दिर में प्रवेश किया, इधर श्यामसुन्दर वंशी बजाते-बजाते वृक्ष पर से उतावली में कूद कर मन्दिर में चले गये। वृक्ष से कूदते समय बागा फट गया और उसका एक चीर वृक्ष पर लटक गया। मन्दिर का पट खुलने पर गोसाईं जी ने देखा कि श्रीनाथ जी का बागा फटा हुआ है। उन्होंने सोचा कि प्रभु ने आज कोई-न-कोई विचित्र लीला की होगी। गोविन्ददास मन्दिर में आ पहुँचे, उन्होंने विट्ठलनाथ जी महाराज से निवेदन किया कि आप के लाला का बागा वृक्ष से कूदते समय फट गया है, उसका एक चीर वृक्ष पर लटक रहा है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गोसाईं जी वृक्ष पर लटकता चीर देखर कर आश्चर्य में पड़ गये। उन्होंने गोविन्ददास के सख्यभाव की प्रशंसा की, कहा कि ऐसे भगवदीय धरती पर दुर्लभ हैं जिनके साथ श्रीनाथ जी इस तरह का वर्ताव करते हैं। गोविन्ददास को युगलस्वरूप का समय-समय पर दर्शन हुआ करता था। श्रीनाथ जी के वे अभिन्न प्रेमपात्र थे। वे एक बार युगल स्वरूप के शृंगार का वर्णन कर रहे थे, झूम झूम कर कीर्तन गा रहे थे। उनके सामने मदनगोपालदास कायस्थ बैठ कर पद लिख रहे थे। मदनगोपालदास के आने के पहले गोविन्ददास के कहने पर श्रीनाथ जी स्वयं गाने लगे तथा राधारानी ताल देने लगीं। गोविन्द-दास-बीच बीच में 'वाह-वाह' कर उठते थे। मदनगोपालदास ने विस्मित होकर पूछा कि यहाँ तो कोई भी नहीं दीख पड़ता है, आप किसके प्रति वाह-वाह कर रहे हैं। गोविन्ददास ने उत्तर नहीं दिया। विट्ठलनाथ जी महाराज से एक दिन उन्होंने कहा कि श्रीनाथ जी बहुत अच्छा गाते हैं और स्वामिनी जी के ताल देने का ढंग तो अनुपम है। गोसाईं विट्ठलनाथ रसिक सन्त थे, उन्होंने भगवान की कृपा-महिमा का दिग्दर्शन कराया, रहस्य बताया। उनकी काव्यकारिता का स्वरूप भगवान के लिये काव्य करना था, उनकी भक्ति का स्वरूप भगवान श्रीनाथ जी के सख्य सुख को बढ़ाना था और सिद्धान्त था श्री विट्ठलनाथ गोस्वामी-गोसाईं के चरणों में अनन्यभाव से पूर्ण समर्पण। उन्होंने भगवान के प्रति दास्य और दैन्य भाव का कभी वरण नहीं किया, उनके उपास्य तो लोकलोकान्तर के स्वामी सखा श्रीनाथ जी थे, उन्होंने सदा अपने दिव्य मित्र का सख्य गाया, वे संसार और संसार के वस्तुओं के प्रति अनासक्त थे, उनके सर्वस्व रसिकराजेश्वर नन्दनन्दन थे। उन्होंने किसी के भी सामने कभी दीनता का प्रदर्शन नहीं किया, सख्य भाव के आवेश में अपने गुरु गोसाईं विट्ठलनाथ जी से भी अपने मन की बात निस्संकोच कह डालते थे पर ऐसा करते थे वे श्रीनाथ जी की प्रीति के लिये अन्यथा श्री विट्ठलनाथ के चरणों में उनकी अचल भक्ति थी। श्रीभगवान के प्रति वे पूर्ण निष्कपट और नितान्त पवित्र तथा शुद्ध भाव से सम्पन्न थे। उन्होंने श्रीनाथ जी के सम्मुख कीर्तन करते समय कभी अशुद्ध या गलत राग-रागिनी का प्रयोग नहीं किया। उनके मन और हृदय तो शुद्ध थे ही, वाणी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दृष्टि—सब कुछ भगवान के यश-गान और लीला-दर्शन से पवित्र थी। अधिकांश में 'ग्वालभोग' के समय की लीलाओं का अपने पदों में वर्णन किया है। वर्णन में अमित माधुरी है। भगवान के वंशीवादन के चित्रांकन में उनका एक पद है :

'लाल मुख बेनु बाजे मन्द-मन्द कल।
वाम भुजा पर वाम कपोल कुण्डल वलगत भ्रू युग चपल।
मोहन व्योम वितान वनिता खसित नीबी सुधि न अंचल।
'गोविन्द' प्रभु के तरुन मदमाते विघूर्णित लोचन युगल।'

इसी प्रकार उन्होंने निकुंजलीला का भी वर्णन विशेष रस में किया है। कोटि-कोटि काम जिनके शरणागत हैं उन श्रीनाथ का शृंगार गाया है। उनकी गुरुभक्ति उच्च कोटि की थी। उनकी उक्ति है कि मेरे श्रीविट्ठल से बढ़कर और कोई दूसरा नहीं है। गोविन्ददास भक्त थे। उन्होंने भगवत्प्राप्ति के मार्ग प्रेम-भक्ति को ही प्रधानता दी है, उनके लिये ज्ञान और कर्म दोनों गौण थे। प्रियतम की प्राप्ति उन्होंने प्रीति में ही पायी। उनकी उक्ति है :

प्रीतम प्रीति ही तैं पैयें।
जदपि रूप गुन सील सुधरता, इन बातनि न रिझैये।
सत कुल जनम करम सुभलच्छन वेद पुरान पढ़ैये।
'गोविन्द' प्रभु विनु स्नेह सुवालों रसना कहा नचैये।

पुष्टि भक्ति का तो फल ही भगवत्प्रीतिसिद्धि है। जीव का भगवान से प्रेम करना सहज स्वभाव ही है। यही भक्ति है। इस भक्ति के लिये भक्त भगवान से विशेष सम्बन्ध जोड़ लेता है। गोविन्ददास ने सख्य-सम्बन्ध जोड़ा। श्रीनाथ जी प्राकृत बालक की भाँति उनके साथ खेलते रहते थे। गोविन्ददास ने सख्य की रस-सरिता की मध्य धारा में स्नान कर अपने मित्र की परम निगूढ़ लीला गायी है। युगल स्वरूप के विहार का भी उन्होंने अपने पदों में दिग्दर्शन कराया है। कुसुम भवन में कुसुम की सेज पर कुसुमों के परदे में कुसुम के आभूषण पहन कर विराजने वाली युगल जोड़ी का उन्होंने समय-समय पर अद्भुत दर्शन किया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वे बड़े आचारनिष्ठ थे। महाप्रभु वल्लभाचार्य के सिद्धान्त में उनकी गहरी निष्ठा थी, उनका प्रत्येक आचरण पुष्टि-सिद्धान्त के अनुरूप था। श्रीयमुना जी में उनकी बड़ी भक्ति थी। उनकी दृष्टि में यमुना जी साक्षात् स्वामिनी श्री राधाजी ही थीं। उन्होंने कभी यमुना जी में पैर नहीं रखे, न उनमें स्नान किया और न आचमन किया। यमुना-जल पीते थे पर स्नान कूप के जल से ही करते थे। उनके समस्त आचार-विचार पूर्ण रूप से भगवदनुकूल थे।

कलिन्दनन्दिनी के तीर पर कुंजलीला में मग्न राधाकृष्ण का ही उन्होंने आजीवन विहार-दर्शन किया। गोसाईं विट्ठल नाथ जी के लीला-प्रवेश के समय ही सम्वत् १६४२ वि. में कार्तिक कृष्ण सप्तमी को उन्होंने गोलोक की यात्रा की। गोवर्धन की एक कन्दरा के निकट उन्होंने देहत्याग किया।

गोविन्ददास विनोदी स्वभाव के होते हुए भी भक्ति के परम मर्मज्ञ थे। अष्टछाप के कवियों में उनकी आचार-निष्ठा श्रीनाथ जी के प्रति प्रगाढ़ प्रेम देख कर गोसाईं जी ने उनको 'कवीश्वर' की संज्ञा से समलंकृत किया। गोविन्ददास महात्मा, सन्त, भक्त तथा कवि—सब कुछ थे। उनकी करनी-कथनी समान थी।..... भगवान केअनुकूल थी।

रचना

उन्होंने दो सौ बावन लीलासम्बन्धी तथा अनेक फुटकर पदों की रचना की।

पद

बलि बलि आजु की बानिक लाल।
कसूंमी पाग पीत कुलह भरित कुसुम गुलाल।
विश्व मोहन नव केसरि कौ तिलक ललित भाल।
सुन्दर मुख कमलहि लपटात मधुव्रत जाल।
बरुनी पीत विथुरित वन्द सुभग उरसि बिसाल।
गोविन्द प्रभु के परसत नख तरुनि तुलसी माल।

माई हम न भई बड़ भागिनि बाँसुरी।
कर अंबुज में रहति सदाई पल पल पीवत अधर मधुर सुरी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुरली मनोहर नाम यातें कहियत ऐसो और कौन को वढ़ल
जग जसुरी ।
'गोविन्द' वलि हम कहत पियारी माई याही ते विधाता लियो
है हमारो सर्वसुरी ।

कहि न परो हो रसिक कुँवर की कुँवराई।
कोटि मदन नख जोति विलोकत परसत
नव इन्दु किरण की जुन्हाई।
कंकन वलय हार गंज मोती देखियत
अंग अंग में वह झाई।
सुघर सुजान स्वरूप सुलक्षण
'गोविन्द' प्रभु सव विधि सुंदरताई।

वल्लभ-चरन लग्यो चित मेरो।
इन विन और कछू नहिं भावे इन चरननि को चेरो।
इनहिं छाँड़ि जो औरे धावे सो अति मूढ़ घनेरो।
'गोविन्द' इहि निश्चै करि लीनो सोई ज्ञान भलेरो।

ठाढ़े कुंजभवन लटपटी पाग छुटी।
अलकावलि घूमत नयन सोहे अरुन वरन।
कहा कहूँ अंग-अंग की शोभा
निरखत मन मुरझन।
'गोविन्द' प्रभु या छवि निरखत
रतिपति भये हैं सरन।

नैन छबीले तरुन मद माते।
चंचल चपल भ्रकुटि छवि उपजत
अनि अनि अनि मुसकाते।
भक्त-कृपारस सदाई प्रफुलित
मानो कमल दल राते।
'गोविन्द' प्रभु को श्रीमुख निरखत
पान करत न अघाते।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रसिक सन्त नन्ददास

यदपि अगम ते अगमअति, निगम कहत है ताहि।
तदपि रंगीले प्रेम ते निपट निकट प्रभु आहि।

—रूपमञ्जरी

नन्ददास रसिक सन्त थे। वे भगवान के रूप-लावण्य और रस के चिन्तक थे। उनकी कविता भगवद्भक्ति की सरसता की प्रतीक स्वीकार की जा सकती है। उन्होंने आजीवन अपने श्वास-श्वास में रंगीले श्याम-सुन्दर की लीला का ध्यान किया, उन्होंने भगवद्प्रेम प्राप्ति के लिये साधना की। लौकिक रूप-सौन्दर्य से विमुग्ध नयन और वाणी को उन्होंने रूपनिधि, रसचिन्तामणि—प्रेमकल्पतरू श्रीकृष्ण के चरण पर समर्पित कर दिया, उन्होंने लोकजीवन में अलौकिक रस का सृजन किया। महात्मा नन्ददास रससिद्ध कवि थे, अप्रतिम प्रेमी थे, श्रीकृष्ण के चरण-कमल में उनकी प्रगाढ़ आसक्ति और रति थी। पुष्टि साहित्य के काव्यक्षेत्र में सूर और परमानन्ददास के बाद नन्ददास को ही महत्व-पूर्ण स्थान प्राप्त है। वे गोसाईं विट्ठलनाथ के असाधारण प्रेमपात्र थें। अष्टछाप के कवियों में उनको गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। उनके नयनों से सदा प्रभु के प्रेम की जलधारा वहा करती थी। उन्होंने सरसतापूर्ण ढंग से भगवान की लीला गायी। वे लौकिक-अलौकिक रूप-लावण्य में अपने परम प्रेमास्पद श्रीनाथ जी की ही झाँकी देखा करते थे। उन्होंने श्रीराधाकृष्ण के रास-विहार का उत्कृष्ट वर्णन किया है। श्रीमद्भागवत उनकी काव्यकारिता का प्राण है। रासपंचाध्यायी पूर्णतम भगवद्प्रेम की प्रतीक है और उनका भँवरगीत भगवद्विरह का अलौकिक साहित्य है। नन्ददास आनन्दनिधि श्यामसुन्दर के चरणकमल के रसिक थे। प्रभु के प्रेम रंग में वे अनवरत सरावोर रहते थे। वे श्रीकृष्ण के रास-रस के अद्भुत अनुभवी थें। नन्ददास बादशाह अकबर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के समकालीन थे। नन्दनन्दन की रस-राजधानी वृन्दावन में उन्होंने भक्ति-महारानी की छत्र-छाया में लोकजीवन का दिग्धीकरण किया।

मथुरा से उत्तर-पूर्व की ओर रामपुर ग्राम में जीवाराम नाम के सनोढ़िया शुक्ल ब्राह्मण रहते थे। उनका कुल परम पवित्र और वेदमार्गी तथा भगवद्भक्त था। उसी कुल में सम्वत् १५७० वि. के लगभग नन्ददास का जन्म हुआ। जीवाराम उनके पिता और आत्माराम चाचा थे। नन्ददास बचपन से ही विद्या पढ़ने में मन लगाते थे। साधुसन्त की सेवा में उनकी बड़ी रुचि थी। अतिथि को वे भगवान का ही रूप समझते थे। बालक की असाधारण योग्यता और विलक्षण प्रतिभा से प्रसन्न होकर पिता ने अध्ययन के लिये काशी भेज दिया। वहाँ वे रामचरितमानस के प्रणेता सन्तशिरोमणि तुलसीदास के सम्पर्क में आये। तुलसीदास उनके गुरु-भाई थे। दोनों में प्रगाढ़ प्रेम था, नन्ददास उनकी प्रत्येक बात मानते थे, उनकी कृपा से नन्ददास के हृदय में भगवद्भक्ति का उदय होने लगा।

नन्ददास काशी-निवास-काल में ही पूर्ण युवा हो चुके थे। उनका मन तमाशा आदि में बहुत लगता था। वे रंगीले स्वभाव के थे पर हृदय में शुद्ध भगवत्प्रेम था। एक बार काशी से एक वैष्णव-मण्डली रणछोर जी के दर्शन के लिये द्वारका जा रही थी। नन्ददास ने भी द्वारका जाने का निश्चय किया, सोचा कि तीर्थयात्रा और भगवद्दर्शन—दोनों का लाभ होगा। उन्होंने तुलसीदास से आज्ञा माँगी पर वे मौन रहे। नन्ददास के बहुत अनुनय-विनय करने पर उन्होंने द्वारका जाने की आज्ञा दे दी। नन्ददास वैष्णव-मण्डली के साथ मथुरा आये। मथुरा से उन्होंने मण्डली का साथ छोड़ दिया, प्रेमी और रसिक थे, स्वभाव के सीधे थे पर एकान्तप्रिय और स्वच्छन्द थे। वे मथुरा से द्वारका के लिये अकेले चल पड़े। कुरुक्षेत्र के निकट रास्ता भूल कर वे सीहनन्द गाँव में आ पहुँचे। दोपहर का समय था। वे एक क्षत्रिय-परिवार के घर के सामने ठहर गये। एक अत्यन्त रूपवती स्त्री स्नान कर अपने केश सुखा रही थी। वह युवती थी। उसका मुख पीछे था। नन्ददास ने प्रण किया कि यदि उसका मुख नहीं देखूँगा तो अन्न-जल नहीं ग्रहण करूँगा। वह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

घर में चली गयी। नन्ददास शाम तक उसका मुख न देख सके, वे दरवाजे पर खड़े रह गये, लौकिक रूप में उनकी आसक्ति वढ़ गयी। दूसरे दिन भी उसका दर्शन न हो सका। दासी ने घर से वाहर निकल कर उनसे खड़ा रहने का कारण पूछा तो उन्होंने सारी वातें वता दीं, मन में कपट तो था नहीं। सरलता से वह दासी प्रभावित हुई और उसके कहने पर वह रूपवती रमणी वाहर आयी, नन्ददास उसको देख कर चले गये। वे नित्यप्रति उस स्त्री का मुख देखने आया करते थे। स्त्री के पति से नन्ददास ने स्पष्ट कहा कि मैं तो केवल आप की स्त्री का मुख देखने आता हूँ, मुझे और किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है। पति उनके साधु स्वभाव से प्रभावित होकर आगे कुछ न कह सका। गाँव में यह वात धीरे-धीरे फैलने लगी। यह परिवार गोसाईं विट्ठलनाथ का शिष्य था, वैष्णव था, इसलिये सीहनन्द गाँव छोड़कर गोकुल जाने का निश्चय हुआ। नन्ददास भी पीछे-पीछे चल पड़े। परिवार के लोगों ने नाव से यमुना पार किया और मल्लाह को आदेश दिया कि ब्राह्मण को पार मत उतारना। नन्ददास यमुना के किनारे बैठ गये। कलिन्दनन्दिनी की श्यामता और दिव्यता तथा रमणीय चंचलता ने उनका मन मोहित कर लिया, वे उस रमणी का सौन्दर्य भूल गये और मन की कामना पूरी करने के लिये यमुना का स्तवन करने लगे। यमुना के दर्शन से उनके नयनों में रमण करने वाली लौकिक रूप-आसक्ति का नाश हो गया। उन्होंने कालिन्दी से निवेदन किया कि हे देवी, आप भगवद्स्नेहरूपिणी हैं, आप अपने भक्तों की चित्तवृत्ति जानती हैं, आप अपने भक्तों की समस्त कामना पूरी करती हैं: नन्ददास के भक्ति-संस्कार जाग उठे, उनकी वाणी ने यमुना का स्तवन किया:

'नेह कारन श्री यमुना प्रथम आयी।
भक्त के चित्त की वृत्ति सव जानहीं
ताहीं ते अति आतुर जो धाई।
जैसी जाके मन हती अव इच्छा
ताही तैसी साध जो पुराई।
'नन्ददास' प्रभु नाथ ताही पर
रीझत जो श्री यमुना जी के गुन गाई।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इधर नन्ददास स्तुति कर रहे थे, उधर वैष्णव-परिवार गोसाईं जी के पास गोकुल पहुँच गया। गोसाईं जी के मुख से सहसा यह प्रश्न सुन कर कि ब्राह्मण को उस पार क्यों छोड़ आये, रूपवती स्त्री के पति आदि आश्चर्य में पड़ गये। नवनीतप्रिय के राजभोज का समय था। गोसाईं विट्ठलनाथ ने नन्ददास को बुलवाया। गोसाईं जी को देखते ही उनके हृदय में भगवद्भक्ति स्फुटित हो गयी, उनकी रीझ अलौकिक हो गयी, उनकी आसक्ति रससमुद्र श्यामसुन्दर के रूप में हो गयी। वह रमणी खड़ी थी पर सन्त नन्ददास को तो लोक से वैराग्य हो चला था, उन्होंने उसकी ओर देखा तक नहीं। उनका मन तो वृन्दावन के प्रेम देवता के चरणों पर समर्पित हो गया, वे तो भक्ति की विहार-स्थली में थे, वृन्दावन की चिन्मयता उनके नयनों में समा गयी थी। उनका हृदय तो अपने जन्म-जन्म के सखा के दर्शन और आलिंगन के लिये आकुल हो उठा था, माया का बन्धन टूट चुका था। गोसाईं विट्ठलनाथ के चरणों पर वे गिर पड़े, वे परम पुलकित थे। गोसाईं जी की तेजस्विता और अलौकिकता ने उनको मुग्ध कर लिया। कोटि कंदर्प-लावण्य से युक्त गोसाईं जी की दिव्य कान्ति की मुसकान पर उन्होंने अपने आप को अर्पित कर दिया। उन्होंने हाथ जोड़कर निवेदन किया कि आज तक मैंने अनेक पाप किये हैं, भगवान की कृपा से आपकी शरण में आ गया हुँ। मेरा उद्धार कीजिये। मेरी यही इच्छा है कि आपके चरणों के आगे सदा निवास करूँ। गोसाईं जी ने उन्हें यमुना जी में स्नान करने के लिये भेजा। वे पूर्ण पवित्र होकर विट्ठलनाथ जी की सेवा में उपस्थित हुए। गोसाईं जी ने उनको नवनीतप्रिय का दर्शन कराया, दर्शन करते ही वे देहानुसन्धान भूल गये। उन्होंने भागवत रस से उन्मत्त होकर श्रीकृष्ण का रूप-वर्णन किया: पद गाया :

'बाल गोपाल ललन को मोद भरि जसुमति हुलरावति।
मुख चुम्बत देखत सुंदर तन आनन्द भरि-भरि गावति।
कबहूँ पलना मेलि झुलावति कबहूँ अस्तन पान करावतिं।
'नन्ददास' प्रभु गिरिधर की रानी निरखि-निरखि सुख पावति।'

गोसाईं जी ने उनको ब्रह्मसम्बन्ध दिया। नन्ददास धन्य हो गये। उन्होंने तुरन्त प्रार्थना की कि कृपानाथ, मुझे इस योग्य बना दीजिये कि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मैं श्रीकृष्ण के लीला-यश-गान से अपनी वाणी कृतार्थ कर लूँ, सदा आपकी रसमयी अनुपम छवि देखा करूँ। तन, मन, प्रान, सर्वस्व समर्पित कर आपके नाम का रसना से उच्चारण करता रहूँ। उन्होंने गोसाईं जी का स्तवन किया:

'श्रीविट्ठल मंगल रूप निंधान।
कोटि अमृत सम हँस मृदु बोलन, सब के जीवन प्रान।
करुना सिंधु उदार कल्पतरु देत अभय पद दान।
सरन आये की लाज चहूँ दिसि बाजे प्रकट निसान।
तुमरे चरन कमल के मकरन्द मन मधुकर लपटान।
'नन्ददास' प्रभुद्वारे रटत है, रुचत नहीं कछु आन।'

वे गोसाईं जी के साथ गोवर्धन आये, उन्होंने अपने आराध्य श्रीनाथ जी का दर्शन किया। दर्शन करते ही वे प्रेमविभोर हो गये, उन्होंने नटनागर का स्तवन किया:

'सोहत सुरंग दुरंगी पाग कुरंग ललना के से लोयन लोने।'

उनकी व्रज के प्रति भक्ति बढ़ने लगी, कुछ दिन वे गोकुल में रहते थे तो कुछ समय श्रीनाथ जी की सेवा में बिताते थे। उन्होंने व्रज से बाहर न जाने का व्रत ले लिया। उनके गुरु-भाई तुलसीदास जी ने उनको काशी बुलाया पर उन्होंने व्रज छोड़ कर जाना उचित नहीं समझा। तुलसीदास जी ने पत्र लिखा कि तुमने राम ऐसे पति को छोड़ कर दूसरे का कैसे वरण कर लिया। नन्ददास ने उत्तर भेजा कि श्रीराम तो एकपत्नीव्रती हैं पर श्रीकृष्ण अनन्त अबलाओं के स्वामी हैं, तुलसीदास इस उत्तर से बहुत प्रसन्न हुए [और विचार किया कि नन्ददास की व्रजभक्ति निस्सन्देह सराहनीय है, मैं अयोध्या छोड़ कर काशी में रहता हूँ। वे नन्ददास से मिलने व्रज की ओर चल पड़े। दोनों एक दूसरे से मिल कर प्रभावित हुए। उन्होंने नन्ददास से कहा कि यदि इच्छा हो तो चित्रकूट या अयोध्या में रह सकते हो। नन्ददास ने व्रजनिष्ठासम्बन्धी पद गया:

'जो गिरि रुचै तौ बसौ श्रीगोवर्धन,
गाम रुचै तौ बसौ नन्दगाम।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नगर रुचै तौ वसौ श्रीमधुपुरी,
सोभा सागर अति अभिराम।
सरिता रुचै तौ वसौ श्री जमुनातट
सकल मनोरथ पूरनकाम।
'नन्ददास' कानन रुचै तौ
वसौ भूमि वृन्दावनधाम।'

नन्ददास ने कहा कि जब से मेरे कानों ने कृष्ण का नाम सुना है तब से मैं बावला हो चला हूँ, घर भूल गया हूँ, मेरे नयनों से अश्रुपात हो रहा है, चित्त में चैन नहीं है, वाणी मुख से बाहर नहीं आ पा रही है तथा शरीर की दशा और-की-और हो गयी है। जिनके नाम श्रवण से मेरी यह गति है उनकी छवि-माधुरी देखने पर तो न जाने क्या होगा। नन्ददास के साथ तुलसीदास जी गोवर्धन श्रीनाथ जी का दर्शन करने आये और उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर श्रीनाथ जी ने उनको राम-रूप में दर्शन दिया।

नन्ददास ने सम्पूर्ण भागवत ग्रन्थ भाषा में लिखा। ब्राह्मणों ने गोसाईं विट्ठलनाथ से कहा कि, महाराज हमारी जीविका चली जायेगी। नन्ददास ने दशम स्कन्ध को छोड़ कर समस्त अनूदित अंश यमुना में प्रवाहित कर दिया। वे संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे, श्रेष्ठ कवि थे। वे वल्लभ सम्प्रदाय अथवा पुष्टिमार्ग के जयदेव थे।

सन्त सूरदास से उनकी बड़ी घनिष्ठता थी। सूरदास और उनमें एक दूसरे के प्रति प्रगाढ़ प्रेम था। सूरदास ने उनके लिये अपनी प्रसिद्ध रचना 'साहित्यलहरी' का प्रणयन किया। एक दिन उन्होंने नदन्दास से स्पष्ट कह दिया कि अभी आप में वैराग्य का अभाव है इसलिये कुछ दिन घर पर रहना चाहिये। सूरदास की आज्ञा से वे घर चले गये। कमला नामक एक कन्या से विवाह कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया। गाँव का नाम श्यामपुर रखा तथा श्यामसर नामक एक तलाव बनवाया। वे घर पर रह कर भगवान की लीला के पदों की रचना करने लगे। पर उनका मन घर पर न लग सका। श्रीनाथ जी का विरह उनके लिये असह्य हो गया। उन्हें पूर्ण रूप से वैराग्य हो गया और गोवर्धन आकर स्थायी रूप से मानसी गंगा पर रहने लगे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वे श्रीकृष्ण के भक्त थे। उनका विश्वास था कि छोटे-से-छोटा कीडा भी श्रीकृष्ण की कृपा और भक्ति से कृष्णरूप हो जाता है यह आश्चर्य की बात नहीं है, प्रभु अपने भक्तों को अपनी भगवदीयता और महनीयता से समलंकृत कर सदा के लिये अपना बना लेते हैं। भगवद्-कथामृत का रसास्वादन ही नन्ददास ने जीवन का परम ध्येय स्वीकार किया। उनकी उक्ति है :

'अरु पिय तुम्हरी कथा, अमृत सम ताप नसावहि,
अमरामृत को तुच्छ करहि, ब्रह्मादिक गावहि।'

श्री कृष्णचन्द्र की विहार स्थली – वृन्दावन के प्रति उनकी बड़ी आदर-बुद्धि थी। बड़े-बड़े पुण्यों और शुभ कर्मों के फलस्वरूप वृन्दावन के प्रति मन में अनुराग पैदा होता है। जीव को उसकी चिन्मयता का पता चलता है, वृन्दावन सर्वथा दिव्य और चिन्मय है, भगवद् का लीलामंच है, केलि-विग्रह है। वृन्दावन की एक धूलि-कणिका के लिये ब्रह्मा तरसते रहते हैं, सत्पदार्थ कृष्ण का ज्ञान प्राप्त करने पर ही वृन्दावन सूझता है। नन्ददास का कथन है :

'अज अजहूँ रज वांछत सुन्दर वृन्दावन की।
सो तनकहुँ नहिं पावत, सूल मिटत नहिं मनकी।
विन अधिकारी भये, नहिन वृन्दावन सूझै।
रेनु कहाँ ते सूझै जब, लगि वस्तु न बूझै।'

नन्ददास ने भगवद्प्रेम-प्राप्ति का आधार कृष्ण की रूपासक्ति में प्रतिष्ठित किया। कृष्ण की रूपमाधुरी का चिन्तन उन्होंने सर्वश्रेष्ठ कर्तव्य अथवा धर्म स्वीकार किया। कृष्ण की रूप-प्रेम-आसक्ति ही उन्होंने सर्वत्र अनुभव की। उन्होंने कृष्ण को ही परम प्रेमास्पद जाना। कृष्ण प्रेममय हैं, विना कृष्णप्रेम के जीवन की सार्थकता ही नहीं सिद्ध होती है—यह उनकी दृढ़ मान्यता थी।

नन्ददास की साधना कृष्णभक्ति की सिद्धि की प्रतीक थी। उन्होंने गुरु कृपा में ही भगवद्भक्ति रस की अनुभूति की। उनकी उक्ति है :

'रूप प्रेम आनन्दरस, जो कछु जग में आहि।
सो सब गिरिधर देव को, निधरक बरनों ताहि।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कृष्णार्पण का तो वास्तविक अर्थ ही यही है। यह अर्पण गुरु की कृपा से ही सम्भव है—पुष्टि-भक्ति का यही सिद्धान्त है; नन्ददास ने अपनी भगवद्भक्ति इस सिद्धान्त की कसौटी पर कसी थी। निर-मत्सरता पूर्ण प्रेम ही उनके मत—मान्यता से गोपीप्रेम का प्रतीक है, कृष्ण-प्रीति है। नन्ददास का कथन है:

'नास्तिक जे हैं लोग, कहा जानें हितरूपै।
प्रगट भानु को छांड़ि गहैं परछाहीं धूपै।
हम कों विनुवा रूप के और न कछू सुहाय।
ज्यो करतल आभास के, कोटिक ब्रह्म दिखाय।'

गोसाईं विट्ठलनाथ नन्ददास का विशेष आदर करते थे। उन्होंने अष्टछाप में उनको विशिष्ट स्थान देकर उनकी काव्यकारिता की बड़ी सराहना की है। नन्ददास श्रीनाथ जी की शृंगार-झाँकी के कीर्तनकार थे। गोसाईं विट्ठलनाथ जी में उनकी असाधारण श्रद्धा थी, भक्ति थी।

नन्ददास ने मानसी गंगा पर स्थायी निवास स्थिर कर आजीवन श्रीकृष्ण की लीला का गान गाया। उन्होंने नित्य रास, नित्य कृष्ण, नित्य गोपी और नित्य राधा की रसमयता से अपनी वाणी का सौभाग्य सिन्दूर अमर किया। अपने काव्य को भगवद्रस से परिपूर्ण कर दिया। उनके काव्य में आत्माराम श्रीकृष्ण ने प्रेम के वशीभूत होकर अपना रमणरस अभिव्यक्त किया। श्रीकृष्ण के प्रेम साम्राज्य में कामस्वयं मदनमोहन, नवघनश्यामशरीर, नन्दनन्दन का रूप अपना लेता है, वह चिन्मय और भागवत हो उठता है—नन्ददास के काव्य का ऐसा स्पष्टी-करण है। श्रीकृष्ण—प्रेम में रतिपति काम की स्वतन्त्र सत्ता नन्ददास ने मानी ही नहीं। ब्रह्मादिक पर विजय पाने वाले काम का अस्तित्व श्रीकृष्ण के रससाम्राज्य में, रास-विलास में, लीलाक्षेत्र में समाप्त हो जाता है:

नन्ददास की वाणी साक्षी है:

'हरि मन मथ करि मथ्यो, उलटि वा मन्मथ को मन।
मुरझि पर्‌यो तहँ मैन, कहूँ धनु, कहुँ विसिख वर।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निगमागम द्वारा प्रतिपादित व्रज गोपियों के नृत्य, संगीत, लीला-विलास, रासकालीन महाछवि का वर्णन किसी कवि के वश की बात नहीं है– नन्ददास की यह धारणा थी। कृष्ण के रास-रस-वर्णन में सनक, सनन्दन, शारदा, नारद, शिव, शेष आदि समर्थ नहीं हैं, 'परम कान्त एकान्त' रस की अनुभूति तो रसिक जनों के संग से ही मिलती है। नन्ददास की ऐसी उक्ति है :

'यह अद्भुत रसरास, कहत कछु कहि नहिं आवै।
सेस सहस मुख गावै, अजहू अन्त न पावै।
सिव मन-ही-मन ध्यावै, काहू नाहिं जनावै।
सनक सनन्दन सारद नारद अति ही भावै।'

उनकी काव्य-वाणी गोपी-प्रेम की कान्ति से चिर पवित्र और नित्य समृद्ध है। नन्ददास ने अपनें काव्य में रसशेखर कृष्ण की लीला मौलिक और विचित्र ढंग से चित्रित की। उनका कथन है कि शृंगार के श्याम रंग, अनुराग के अरुण रंग और प्रेम के पीत रंग में किसी सौभाग्यशाली की ही रति होती है। उन्होंने गोपी-प्रेम से अपने काव्य का शृंगार किया। गोपियों का तो यह प्रण था, कि यदि हरि का अधरामृत-आस्वादन नहीं मिलता है तो प्राण विरह-अग्नि में भस्म कर देंगी। नन्ददास के काव्य में अलौकिक, दिव्य और परम पवित्र गोपी-प्रेम का वर्णन मिलता है, उन्होंने गोपियों और कृष्ण का उज्ज्वलतम शृंगार गाया : उनकी उक्ति है :

'नाद-अमृत को पंथ रंगीलो सुच्छम भारी
तेहि मग व्रजतिय चलै आनि कोउ नहिं अधिकारी।
सुद्ध प्रेममयरूप पंचभूतनि ते न्यारी।
तिन्हें कहा कोउ कहै, ज्योति सी जगत उज्यारी।'

नन्ददास की उक्ति है कि जिस कविता में हरि के यश का वर्णन नहीं है वह कविता नहीं है। वे उच्चकोटि के भक्ति-मर्मज्ञ थे, प्रेमी और रसिक थे।

नन्ददास ने लोकजीवन को, जन-जीवन को भक्ति-माधुरी से सम्पन्न और समृद्ध किया। सम्राट अकबरने नन्ददास की कविता का मर्म

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समझने के लिये अपनी राजधानी में बुलाया था पर वे व्रज छोड़ कर न जा सके। तानसेन ने अकबर की राजसभा में एक पद गाया था।

'देखो-देखो री नागर नट, निरतत कालिंदी तट
गोपिन के मध्य राजै मुकुट लटक,
काँछिनी किंकनी कटि, पीताम्बर की चटक,
कुंडल की रति, रविरथ की अटक।
तत थेयी, ताता थेयी, सबद करन उघट,
उरप तिरप गति परै पग की पटक।
रास में राधे-राधे, मुरली में एक रट।
नन्ददास गावै, तहँ निपट निकट।'

पद सुनते ही अकबर के रोम-रोम सिहर उठे। उदार हृदय के भावुक सम्राट ने तानसेन से पूछा कि यह बात समझ में नहीं आती है कि नन्ददास भगवान के रास-काल में 'निपट निकट' होकर किस तरह गाते हैं। तानसेन मौन हो गये।...अकबर ने वीरबल को साथ लेकर राज-कार्य से मथुरा-यात्रा की। मानसी गंगा पर बादशाह का अस्थायी निवास था। मानसी गंगा पर नन्ददास रहा करते थे। अकबर ने उनसे 'निपट-निकट' का रहस्य पूछा। बादशाह की सेविका एक वैष्णवी दासी रूपमञ्जरी थी। नन्ददास उसकी भगवद्भक्ति से बहुत प्रसन्न रहा करते थे। 'निपट-निकट' की बात सुनते ही नन्ददास के प्राण उड़ गये, रूपमञ्जरी का भी तत्काल देहान्त हो गया। नन्ददास के नयनों में मस्ती थी, अधरों पर भगवदामृत था: वे मदनमोहन की रूपमाधुरी का पान कर रहे थे: उनकी अन्तिम कामना थी।

'मोहन पिय की मुसकनि, ढलकनि मोरमुकुट की।
सदा बसौ मन मेरे फरकनि पियरे पट की।'

इस प्रकार सम्वत् १६४० वि. के लगभग उन्होंने श्रीकृष्ण-प्रियतम प्राणाधार का चिन्तन करते हुए गोलोक प्राप्त किया। गोसाईं विट्ठल-नाथ ने उनके भक्तिपूर्ण लीला-प्रवेश पर आनन्द प्रकट किया, नन्ददास के भाग्य की सराहना की कि प्रभु ने अपने लीला में उनको स्थान दिया। नन्ददास महान भगवदीय थे, अलौकिक प्राणी और रससिद्ध

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भगवद् कवि तथा परम विरक्त और सन्त थे। उन्होंने भक्ति-साहित्य को कृष्ण का सौन्दर्य-माधुर्य-दान किया। वे व्रजरस के महान ज्ञाता थे। सर्वथा राधाकृष्ण-प्रेम में आत्मविभोर थे।

रचना

भागवत दशम स्कन्ध–पद्यानुवाद, भ्रमर गीत, रासपंचाध्यायी, रूप-मंजरी–विरह मंजरी, रसमंजरी, मानमंजरी, अनेकार्थ मंजरी, दान-लीला तथा अनेक पद उनकी रचनायें हैं।

वाणी

राम-कृष्ण कहिये उठि भोर।
अवध-ईस वे धनुष धरे हैं, यह व्रज-माखन चोर।
उनके छत्र-चँवर सिंहासन, भरत सत्रुहन लछमन जोर।
इनके लकुट मुकुट पीताम्बर, नित गायन-संग नन्दकिसोर।
उन सागर में सिला तराई, इन राख्यौ गिरि नख की कोर।
'नन्ददास' प्रभु सब तजि भजिये, जैसे निरखत चंद चकोर।

ठाढ़ो री खरो माई कौन को किसोर।
साँवरो वरन, मन हरन, वंसी धरन,
काम करन कैसी गति जोर।
पौन परसि जात चपल होत देखि,
पियरे पट को चटकीलो छोर।
सुभग साँवरी छोटी घटा ते निकसि आवै,
छबीली छटा को जैसो छबीलो मोर।
पूछति पाहुनी ग्वारि, हा-हा हो मेरी आली,
कहा नाम, को है चितवन को चोर।
'नन्ददास' जाहि चाहि, चकचौंधी आई जाय
भूल्यो री भवन गमन, भूल्यो रजनी-भोर।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नन्दभवन को भूषन माई।
जसुदा को लाल, वीर हलधर को, राधारमन परम सुखदाई।
सिव को धन, संतन को सरबस, महिमा वेद-पुरानन गाई।
इन्द्र को इन्द्र, देव देवन को, ब्रह्म को ब्रह्म अधिक अधिकाई।
काल को काल, ईस ईसन को, अतिहिं अतुल तोल्यो नहिं जाई।
'नन्ददास' को जीवन गिरिधर गोकुल गाम को कुंवर कन्हाई।

हिंडोरे माई झूलत गिरिधर लाल।
संग राजत वृषभानुनन्दिनी अंग अंग रूप रसाल।
मोर मुकुट मकराकृत कुण्डल औ मुक्ता वनमाल।
रमक-रमक झूलत पिय प्यारी सुख बरसत तिहिं काल।
हँसत परस्पर इत उत चितवत चंचल नयन बिसाल।
'नन्ददास' प्रभु की छवि निरखत, विवश भई ब्रजबाल।

चाँपत चरन मोहन लाल।
कुमरि राधे पलंग पौढ़ी सुन्दरी नववाल।
कबहूँ कर लै नैन लावत कबहूँ छुवावत भाल।
'नन्ददास' प्रभु छवि निहारत प्रीति के प्रतिपाल।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महात्मा छीतस्वामी

'पद बिरचि सेइ श्रीनाथ कहँ विविध गुप्त अनुभव चखे।
श्री छीतस्वामि हरि और गुरु प्रगट एक करि के लखे।'

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

महात्मा छीतस्वामी भगवान श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे। प्रभु की शरण की यह विचित्र महिमा है कि जो प्राणी दैन्य भाव से तथा शुद्ध मन से उनके चरणों में आत्मार्पण कर देता है वह लोक की दृष्टि में अलौकिक हो जाता है, सन्त हो जाता है। छीतस्वामी ने गोसाईं विट्ठलनाथ की कृपा से श्रीनाथ जी के प्रति जिस अनन्य भक्ति का परिचय दिया वह सर्वथा मौलिक तथा महत्वपूर्ण स्वीकार की जाती है। उन्होंने श्रीनाथ जी और गोसाईं विट्ठलनाथ की मर्यादा के विरोध में बोलने वाले बड़े-से-बड़े लौकिक ऐश्वर्यसम्पन्न प्राणी का मुख देखना भी महापाप समझा था, वीरवल अकबर के दाहिने हाथ थे पर छीतस्वामी ने गोसाईं जी की प्रभुता और शक्ति में सन्देह करने पर उनका सम्बंध-विच्छेद कर दिया; वे स्वाभिमानी भागवत थे। वे परम निःस्पृह और त्यागी थे, आर्थिक दैन्य में रह कर भी उन्होंने दूसरे के सामने हाथ पसार कर या दूसरे की सहायता स्वीकार कर अपनी भगवद्भक्ति में कलंक नहीं लगाया, उनकी वैष्णवता निष्कलंक रही। छीतस्वामी अकबर के समकालीन थे और वीरवल के पुरोहित थे, बादशाह अकबर को छीतस्वामी की निष्काम भक्ति का पता था। वे उनका बड़ा सम्मान करते थे। छीतस्वामी अच्छे कवि थे। उनके पद बड़े भावपूर्ण और सरस हैं, उनमें उनके हृदय की पवित्रता और मनकी निष्कपटता का दर्शन होता है।

वल्लभसम्प्रदाय में दीक्षित होने के पूर्व की जीवन-गाथा विचित्र है। छीतस्वामी मथुरा के पण्डा थे, वे छीतू के नाम से विख्यात थे। वे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजा वीरवल के पुरोहित थे। मथुरा के पण्डों में उनकी विशिष्ट ख्याति थी। छीतस्वामी का जन्म संवत् १५७२ वि. में मार्गशीर्ष कृष्ण दशमी को हुआ था। बीस साल की अवस्था तक वे बड़े नटखट थे, अपने असाधु स्वभाव के लिये कुख्यात थे। पर सत्संग और सन्त-दर्शन से शठता चली जाती है, प्रकृति सुधर जाती है और नारकीय जीवन सर्वथा दिव्य हो जाता है। छीतू चौबे परम भागवत सन्तशिरोमणि, रसिकराज श्री गोसाईं विट्ठलनाथ की कृपा से छीतू चौबे से छीतस्वामी हो गये, भगवान श्रीकृष्ण के लीला गायक, महान भगवदीय और कवि हो गये। छीतू चौबे ने सुन रखा था कि गोसाईं जी के पास जो जाता है, वह श्रद्धापूर्वक उन्ही के चरणों में नत हो जाता है, उनका हो जाता है। वे अपने पाँच साथियों को लेकर एक खोटा रूपया और सूखा नारियल भेंट देने के लिये हाथ में रख कर गोकुल की ओर चल पड़े। उस समय छीतस्वामी बीस साल के थे, उनकी उद्दण्डता अपनी पराकाष्ठा पर थी, पर भगवान ने गोकुल पहुँचने पर उनका मंगल किया। उनकी असाधुता साधुता में रूपान्तरित हो गयी। अपने साथियों को बाहर बैठा कर वे गोसाईं जी से एकान्त में मिलने गये, नारियल और रूपये की भेंट दी। वे ही अगुआ थे। गोसाईं जी को देखते ही उनको अपनी करनी पर पश्चात्ताप हुआ कि मैंने यह क्या कर डाला, जान-बूझकर एक महात्मा को धोखा देने चला आया, मैं कितना बड़ा पापी हूँ, हे भगवान, मेरी रक्षा कीजिये। सबसे बड़े आश्चर्य की बात तो यह हुई कि रूपया ठीक निकला और नारियल में गिरी निकल आयी। छीतस्वामी के उद्धार का समय निकट आ गया। वे अमित श्रद्धा और विनम्रता से हाथ जोड़ कर कहने लगे कि आप कृपासागर हैं, मैंने आपके प्रति अमित पापपूर्ण आचरण किया है, आप मुझे क्षमा कीजिये, अपने चरणों में स्थान दीजिये, भगवान ने आत्मकल्याण और भक्ति-प्राप्ति के लिये ही मुझे आपके चरणों में उपस्थित किया है। मैं सांसारिक पाप-ताप से जल रहा हूँ। मुझे असार संसार से पार कीजिये। आप को छोड़ कर मैं आत्मोद्धार के लिये किसी दूसरे से कह भी नहीं सकता, सागर में सरिता मिलने पर प्यासी थोड़े ही रह जाती

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हैं। आप मुझे अपना बना लीजिये। गोसाईं जी उनकी सरलता और निष्कपटता से बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उनको हृदय से लगा लिया और ब्रह्मसम्बन्ध दिया, अपने चरणों में स्थान देकर प्रसिद्ध शैव छीतू चौबे को छीतस्वामी बना कर श्री नाथ जी की भक्ति प्रदान की। छीतस्वामी ने आनन्दमग्न होकर पद गाया :

'भई अब गिरिधर सों पहिचान।
कपट रूप धरि छलिबे आये, पुरुषोत्तम नहिं जान।
छोटौ बड़ौ कछू नहिं जान्यौ, छाय रह्यौ अग्यान।
'छीत स्वामी' देखत अपनायौ, विट्ठल कृपानिधान।'

छीतस्वामी दीक्षित होने के बाद विचारने लगे कि मैं भवसागर में प्रमत्त होकर बहा जा रहा था और गोसाईं जी ने मुझे डूबने से बचा लिया। उन्होंने गोसाईं जी के चरण पकड़ लिये। विट्ठलनाथ जी ने कहा कि तुम यह क्या कर रहे हो, तुम चौबे हो, हमारे लिये परम पूज्य हो। तुम दण्डवत क्यों करते हो? ऐसा नहीं करना चाहिये। छीतस्वामी के नयनों में जल भर उठा, रोम-रोम सिहर उठे, हृदय आनन्दमग्न हो गया, उन्होंने गोसाईं जी के चरणों में भक्ति समर्पित की :

'हौं चरणातपत्र की छैयाँ।
कृपासिंधुश्रीवल्लभनन्दन, वह्यौ जात
राख्यौ गहि बहियाँ।
नख नव सरद-चन्द्रमा-मण्डल,
त्रिविध ताप मेटत छिन महियाँ।
'छीत स्वामी' गिरिधरन श्री विट्ठल,
सुजस बखान सकत श्रुति नहियाँ।'

उन्होंने नवनीतप्रिय का दर्शन किया और गोसाईं जी की आज्ञा से अपने घर आकर भगवान का भजन करने लगे। वे गृहस्थ थे। उनका मन घर पर नहीं लग सका। ठीक ही था, एक बार जो व्रजरस का आस्वादन कर लेता है उसके लिये लौकिक विषय-रस और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अलौकिक पदार्थ आदि सब नीरस हो जाते हैं, श्रीकृष्ण का सौन्दर्य-माधुर्य ही ऐसा है, चिन्मय वृन्दावन का आकर्षण ही ऐसा है। कुछ दिनों के बाद वे गोवर्धन चले आये और पूंछरी स्थानपर श्याम तमाल वृक्ष के नीचे स्थायी रूप से रहने लगे। वे नित्य श्रीनाथ जी की संध्या आरती में विशेष रूप से तथा अन्य झाँकियों में पद रच कर कीर्तन किया करते थे। उनका वैषयिक जीवन अलौकिक हो गया, वे श्यामसुन्दर के रंग में रंग गये। अष्टछाप के प्रमुख कवियों में परिगणित हुए। महात्मा छीतस्वामी का जीवन आनन्दपूर्वक बीतने लगा। वे गोसाईं जी के चरणों में पूर्ण शरणागत हो गये। उन्होंने श्रीनाथ जी और गोसाईं जी में कभी भेदभाव न किया, वे गुरु को साक्षात् लीलानायक पुरुषोत्तम समझते थे। उन्होंने दीक्षित होने के बाद आजीवन श्रीकृष्ण और उनकी रासेश्वरी श्री राधारानी की लीला गायी। अपनी वाणी में भक्ति-माधुरी प्रवाहित की। उनके पदों में राधाकृष्ण के शृंगार और व्रजभूमि के प्रति अनन्य प्रेम का सरस वर्णन मिलता है। उन्होंने भक्ति के कोमलतम भाव में विमुग्ध होकर ब्रह्मा से अंचल पसार कर जन्म-जन्म के लिये व्रज-वास का वरदान माँगा। उनकी उक्ति है :

'एहो विधना तो सों अँचरा पसारि माँगों
जनम जनम दीजो याही व्रजबसिबो।'

वे व्रजरस के बड़े रसिक थे। व्रज-भक्त थे। उन्होंने ब्रह्मा से निवेदन किया कि यदि मेरा जन्म हो तो व्रज की अहीर जाति में जन्म हो और मेरा घर नन्द के घर के समीप हो जिससे मैं अपने श्यामसुन्दर की छवि और मन्द मुसकान का सदा निरन्तर दर्शन करता रहूँ। मदनमोहन नन्दनन्दन के अंग का स्पर्श करता रहूँ तथा उनके परम पवित्र चिन्मय रास-विलास की झाँकी से जन्म सफल करता रहूँ। उन्होंने श्रीकृष्ण की आल्हादिनी महाशक्ति राधारानी का अत्यन्त सुन्दर शृंगार गाया था। एक पद में उनकी उक्ति है कि राधा श्याम-सुन्दर की प्राणप्यारी हैं, उनकी सुषमा पर करोड़ों चन्द्रमा की छवि नीछावर की जा सकती है। श्रीकृष्ण क्षण भर के लिये भी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इनसे अलग नहीं रहते हैं, उनको देख-देख कर अपने सौभाग्य की सराहना किया करते हैं, वे पूर्ण रूप से वृषभानुनन्दिनी के वश में रहते हैं। वे पुष्टिमार्ग के सिद्धान्तों के विशेषज्ञ थे। महाप्रभु वल्लभाचार्य और गोसाईं जी में उनकी बड़ी निष्ठा थी। उन्होंने महाप्रभु श्रीमदाचार्य के सम्बन्ध में उद्‌गार प्रकट किया है: महाप्रभु वल्लभाचार्य मेरे तन-मन में हैं, वे चिंतामणि हैं, सर्वस्व हैं, वे ही मेरे ज्ञान और ध्यान हैं, वे मेरे प्राण और जीवन के सुखनिधान हैं, मैं उनको छोड़ कर किसी दूसरे का भजन नहीं करता हूँ। उनकी उक्ति है:

'श्री वल्लभ तन-मन, श्रीवल्लभ सर्वस्व में,
पाये श्री वल्लभ प्रभु, चिंतामणि मेरे।
श्रीवल्लभ मम ध्यान, ज्ञान, श्रीवल्लभ विनु
भजु न आन, श्रीवल्लभ हैं सुखनिधान
प्राण जीवन केरे।'

आचार्य महाप्रभु की कृपा में उनका अटल विश्वास था, सुदृढ़ आस्था थी, रति थी। उनकी गुरु-निष्ठा अद्‌भुत थी। वे श्री विट्ठलनाथ जी को श्रीनाथ जी का ही स्वरूप समझते थे। वे वीरवल के पुरोहित थे। वार्षिक लेने सीकरी जाया करते थे। एक साल वे बसौंधी लेने गये थे कि वीरवल से चिढ़ कर चले आये। वे श्री गोसाईंजी की प्रशस्ति गा रहे थे:

'जे वसुदेव किये पूरन तप
तेई फल फलित श्री वल्लभ देह।
जो गोपाल हुते गोकुल में
तेई आनि बसे करि गेह।
जे वो गोप वधू हीं व्रज में
तेई अब वेदरिचा भई येह।
'छीत स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल
तेई ऐई ऐई तेई कछु न संदेह।'

वीरवल को सन्देह हुआ कि विट्ठलनाथ जी गिरिधर श्रीकृष्ण के ही रूप किस तरह हो सकते हैं। उन्होंने कहा कि महाराज, यदि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अकबर इस पद को सुन लेंगे तो रुष्ट होंगे, उन्हें विट्ठलनाथ जी और श्रीनाथजी की एकरूपता में संदेह होगा। छीतस्वामी आर्थिक संकट में थे, दीन थे पर उनका दैन्य केवल भगवान में था, संसार के लिये वे दीन नहीं थे; उन्होंने बीरबल से कहा कि बादशाह को सन्देह होगा या नहीं होगा यह तो भविष्य की बात है पर इस समय तो सन्देह तुम्हारे ही मन में है। तुम ने गोसाईं जी की भगवत्ता में अविश्वास प्रकट कर महान् अपराध किया है, तुम्हारा मुख देखना भी पाप है। तुम गोसाईं जी की महिमा नहीं समझ सकते। गोसाईं जी सुखरूप हैं, वेद उनकी पुरुषोत्तमता का बखान करते हैं, उनकी महिमा समझ में नहीं आती है। उन्होंने पाखण्ड और कपट का खण्डन कर पृथ्वीपर भगवत्ता का प्रचार किया है। वे परम पुनीत और तपोनिधि हैं। अपने मुख से श्रीकृष्ण की लीला-कथा कह कर उन्होंने असंख्य जीवों का निस्तार किया है। वे साक्षात् श्रीकृष्ण हैं:

'छीत स्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल,
प्रकट कृष्ण अवतार।'

वे वार्षिक लिये बिना ही गोवर्धन चले आये। उन्होंने श्री गोसाईं की भगवत्ता में संदेह करने वाले संसारी साधारण राजा की भेंट पर लात मार दिया। यह घटना उनके अलौकिक और प्रभुमय जीवन की परिचायिका है। वे आगरा या सीकरी फिर कभी नहीं गये।

वे बड़े त्यागी और निःस्पृह थे। गोसाईं जी ने उनके आर्थिक संकट को दूर करने के लिये पत्र लेकर एक धनी शिष्य के पास उन्हें लाहौर भेजना चाहा। छीतस्वामी ने विनम्रता पूर्वक निवेदन किया कि, कृपानाथ, आप मेरी वैष्णवता की परीक्षा न लीजिये, मैंने इसलिये आप के चरणों पर आत्मसमर्पण नहीं किया है कि अपनी वैष्णवता कलंकित कर दूसरे के सामने हाथ पसारूँ। कृपानाथ, समस्त लौकिक ऐश्वर्य आप के चरणों में नत होकर भगवत्ता की भीख माँग रहे हैं और आप मुझे दूसरे के पास भेज रहे हैं। गोसाईं जी उनकी निष्काम भगवद्भक्ति से बहुत प्रसन्न हुए।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

छीतस्वामी गोसाईं जी के अनन्य प्रेमपात्र थे। गोसाईं जी ने उनको अष्टछाप के कवियों में स्थान दिया था। सम्वत् १६४२ वि॰ में गोसाईं जी के गोलोक-प्रवेश पर एक ही दिन के बाद पूंछरी में ही छीतस्वामी ने देह-त्याग किया। वे अलौकिक प्राणी थे।

रचना

पुष्टिमार्गीय कीर्तन-पद-संग्रह में उनके कुछ पद संग्रहीत हैं।

वाणी

राधिका स्याम सुंदर को प्यारी।
नख सिख अंग अनूप विराजत, कोटि चन्द दुतिवारी।
एकछिन संग न छाँड़त मोहन निरखि निरखि वलिहारी।
'छीत स्वामी' गिरिधर वस जाके सो वृषभानु दुलारी।

वादल झूम झूम वरसन लागे।
दामिनी दमक ते चौक चमक
स्याम घन की गरज सुनि जागे।
गोपी जन द्वार ठाढ़े नारी नर
भीजे मुख देखन कारन अनुरागे।
'छीत स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल
ओतप्रोत रस पागे।

हम तो विट्ठलनाथ उपासी।
सदा सेउँ श्रीवल्लभनन्दन जाइ करौं कहा कासी।
इन्हें छाँड़ि जो और धावै सो कहिये असुरासी।
'छीत स्वामी' गिरिधरन श्री विट्ठल वानी निगम प्रकासी।

अेहो विधिना! तो पै अँचरा पसारि माँगों
जनम-जनम दीजो याही व्रज वसिबो।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अहीर की जाति, समीप नन्दघर,
हेरि-हेरि स्याम सुभग घरी घरी हसिबो।
दधि के दान मिस व्रज की वीथिन
झकझोरन अंग-अंग को परसिबो।
'छीत स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल
सरद रैन रस-रास विलसिबो।

सुखद सरूप श्री विट्ठलेश राय।
वेदविदित पूरन पुरुषोत्तम
श्रीवल्लभ गृह प्रगटे आय।
लटपटी पाग महारस भीने
अति सुंदर मन सहज सुभाय।
'छीत स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल
अगनित महिमा कहिय न जाय।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महात्मा चतुर्भुजदास

निज मुख कुम्भनदास पुत्र पूरो जेहि भाष्यो।
गाइ गाइ पदनवल कृष्न रस नित जिन चाख्यो॥
बिछुरि विरह अनुभवो संग रहि जुगल केलि रस।
सब छिन सोइ रंगरंगे वल्लभी जन के सरबस॥
सेयो श्रीविठ्ठल भाव करि जगत वासना सो विरत।
श्रीदास चतुर्भुज तोक वपु सख्य दास्य दोऊ निरत॥

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

महात्मा चतुर्भुजदास गोसाईं विट्ठल नाथ के आठ दिग्गज कवियों में से एक थे। उन्हें कुम्भनदास ऐसे महाभागवत का पुत्र होने का भगवान श्याम सुन्दर की कृपा से सौभाग्य मिला। उन्होंने श्रीनाथ जी की सेवा में नित्य नवीन-नवीन पद रच कर समर्पित किये। वे श्यामसुन्दर के विरह को पलमात्र के लिये भी नहीं सह सकते थे। वल्लभ सम्प्रदाय में उनकी बड़ी मान्यता और प्रतिष्ठा है। जगत की वासना गृहस्थाश्रम में भी उनके मन का स्पर्श नहीं कर सकी, उनका मन तो भगवानमय था और भगवान उनके मनोमय परम प्रेमास्पद थे। उनमें भगवान के प्रति सख्य भाव का आवेश विशेष था और दास्य रस में भी उनकी प्रगाढ़ निष्ठा थी। वे भगवान राधारमण के परम कृपापात्र थे। उन्होंने श्री गोसाईं जी और श्रीनाथ जी में भेद-दृष्टि नहीं की। उनका जन्म अलौकिक रूप से हुआ, भगवान की कृपा से कुम्भनदास की भक्ति-कल्पलता के वे सरस फल थे। श्रीनाथ जी के शृंगार और विरह के पद लिखने में वे समान रूप से सफल थे। उनकी रचना उनकी भगवद्भक्ति और लीलारसानुभूति की दिव्य प्रतीक स्वीकार की जा सकती है। उनका काव्य पुष्टि-भक्ति का अक्षर अनुवाद है। भगवान अपने भक्तों के आनन्द को बढ़ाने के लिये स्वयं अभिव्यक्त होते हैं और उनसे लीला करते हैं, खेलते हैं। चतुर्भुजदास भगवान के लीलारसिक भक्त थे। गोवर्धन से थोड़ी ही दूर जमुनावतो ग्राम में अष्टछाप के महान सन्त कवि, श्री वल्लभाचार्य के परम कृपापात्र और गोसाईं विट्ठलनाथ जी के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनन्य सेवक महात्मा कुम्भनदास निवास करते थे। उनके सात पुत्र थे। सबसे छोटे पुत्र भक्त चतुर्भुजदास का जीवन भगवदीय रहस्यों और अलौकिक चमत्कारों से परिपूर्ण है। कुम्भनदास जी श्रीनाथ जी में सख्य-भाव से अनुरक्त थे। वे एक दिन श्रीनाथ जी से खेल रहे थे। श्यामसुन्दर ने उनको उस दिन चतुर्भुज रूप में दर्शन दिया और उसी दिन घर में पुत्र पैदा हुआ। कुम्भनदास जी ने गोसाईं विट्ठलनाथ जी की कृपा से और भगवान की प्रसन्नता से नवजात का नाम चतुर्भुज-दास रखा। चतुर्भुजदास सम्वत् १५७५ वि. में जमुनावतो में ही पैदा हुए थे। जन्म के इकतालीसवें दिन शुद्धि-स्नान होने पर कुम्भनदास ने नवजात को गोसाईं जी के समक्ष उपस्थित किया, उन्होंने निवेदन किया कि कृपानाथ, नाम बताइये और शरण में ले लीजिये। कुम्भनदास की बात से चतुर्भुजदास किलकारी मार कर हँस पड़े। गोसाईं जी ने नवजात को ब्रह्मसम्बन्ध देकर चतुर्भुजदास नाम रखा। उन्होंने कुम्भनदास से कहा, 'तुम बहुत भाग्यवान हो, तुम्हारे घर में परम भगवदीय पुत्र ने जन्म लिया है। तुम्हारा कुल पवित्र हो गया।' गोसाईं जी ने चतुर्भुजदास को शरण में ले लिया।

कुम्भनदास ऐसे परम विरक्त त्यागी और भगवद्भक्त महात्मा के सम्पर्क में उनका विकास होने लगा। वे नित्य प्रति अपने पिता के साथ श्रीनाथ जी के दर्शन में आते थे और अष्टछाप के दिग्गजों के कीर्तन और सेवा-भाव ने उनके चरित्र को विशेष रूप से प्रभावित किया था। उनके संत्सग और पदगान का चतुर्भुजदास पर बड़ा प्रभाव पड़ा। वे बाल्यवस्था से ही पद-रचना करने लगे तथा श्रीनाथ जी में उन की आसक्ति नित्य निरन्तर बढ़ती गयी। वे श्रीनाथ जी की गाय भी चराया करते थे। धीरे-धीरे उनका मन श्रीनाथ जी की लीला से तथा कीर्तन और सेवा से जगत के प्रति अनासक्त हो उठा।

चतुर्भुजदास जी पिता कुम्भनदास की ही तरह विरक्त और निस्पृह स्वभाव के थे। प्रभु के चरणों में मन लग जाने पर जगत के प्रति उदासीनता का उदय होना तो स्वाभाविक ही है। वे बड़े सरल और निष्कपट थे। विवाह हो जाने पर भी गृहस्थाश्रम में वे अनासक्त ही रहे। उनके जीवन में अद्भुत सादगी और विचित्र सरसता का

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मिश्रण था। वे खेती करके जीविका चलाते थे। वे कुम्भनदास जी के सबसे छोटे पुत्र थे पर घर में परम भगवदीय भी वे ही थे। कुम्भनदास उनसे बहुत प्रसन्न रहा करते थे। उनकी कृपा से धीरे-धीरे चतुर्भुजदास को नन्दनन्दन की लीला की अनुभूति होने लगी। उनका गृहस्थ-जीवन उनकी भक्ति-भावना के अनुरूप ही था। पिता की देखा-देखी उनके साथ ही श्रीनाथ जी की सेवा में पद रचने लगे। उन्हें काव्य और संगीत की अच्छी शिक्षा पिता से ही मिल गयी। वे संस्कृत और व्रजभाषा के महान पण्डित थे। खेती-बारी के काम में भी वे बड़े कुशल थे। भगवान की सेवा में, लीलानुभूति और कीर्तन में कोई विघ्न न आये, इस दृष्टिकोण से गृहस्थाश्रम का उन्होंने उचित ढंग से उपयोग किया। लौकिक कार्य में भी भगवद्बुद्धि को महत्ता दी। उनका जीवन अलौकिक और भागवत था। श्रीनाथ जी उनके परम उपास्य थे पर वे कभी-कभी गोकुल में नवनीतप्रिय का दर्शन करने जाया करते थे। चतुर्भुजदास पर श्रीनाथ जी की बड़ी कृपा रहती थी, ऐसे तो प्रभु की कृपा सब जीवों पर समान रूप से है पर विशेष भक्त पर वे अपनी विशेषता प्रकट करने में तनिक भी संकोच नहीं करते हैं। उन्हें श्रीनाथ जी की लीलाओं का प्रत्यक्ष दर्शन होता था, उनकी वाणी व्रज-रस में सराबोर थी, उनकी कविता श्रीनाथ जी की सौन्दर्य-माधुरी की प्रतीक थी। एक बार आधी रात के समय जमुनावतो में प्रभु की झाँकी पर विचार करते थे। जमुनावतो से श्रीनाथ जी का मन्दिर दीख पड़ता था। मन्दिर में दीप जल रहे थे। रसिक कुम्भनदास के अधरों पर श्रीनाथ जी का अनुराग थिरक उठा, भक्त कवि ने अपने पुत्र से कहा: श्रीनाथ जी के मन्दिर के झरोखों से दीपक के प्रकाश का निकलना चित्रित किया:

'वे देखो वरत झरोखन दीपक
हरि पौढ़े ऊँची चित्र सारी।'

चतुर्भुजदास जी ने इस वर्णन की सरसता से उन्मत्त होकर भगवद्-लीला की प्रत्यक्ष अनुभूति कर पिता को आश्चर्यचकित कर दिया। भगवान श्रीनाथ जी की परम निगूढ़ केलिलीला के स्तवन में उनकी भागवती वाणी बोल उठी:

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'सुन्दर वदन निहारन कारन
वहुत यतन करि राखे हैं प्यारी।'

श्रीनाथ जी के प्रति उनकी भक्ति सिद्ध थी। प्रभु की लीला विचित्र होती है; जिस प्रकार चतुर्भुजदास प्रभु को देखे विना एक क्षण भी नहीं रह सकते थे उसी प्रकार प्रभु भी उनके साथ खेले विना स्वात्म-सुख का अनुभव नहीं कर पाते थे। यद्यपि वे सर्वशक्तिमान, सर्व-लोकमहेश्वर हैं पर लीला के क्षेत्र में दिव्य प्रकृति और भक्तों के सर्वथा अधीन रहते हैं। श्रीनाथ जी चतुर्भुजदास के साथ नित्य खेला करते थे। प्रत्यक्ष प्रकट होकर उनको धन्य करते थे। चतुर्भुजदास की पत्नी का देहान्त हो गया। सूतक लगने पर भी चतुर्भुजदास खेलने के लिये वन में अकेले वैठ कर प्रभु के आने की राह देखा करते थे और कृपामय श्यामसुन्दर लीलापूर्वक सूतक में स्पर्श हो जाने के भय से उनसे थोड़ी दूर पर स्थित रह कर खेला करते थे। भगवान को सूतक नहीं लग सकता है पर प्रभु तो भक्त की यशवृद्धि के लिये ऐसा स्वांग—लीला करने में परमानन्द का अनुभव करते हैं। चतुर्भुजदास श्रीनाथ जी के अन्तरंग सखा थे और उनका समस्त जीवन श्यामसुंदर के चरणों में पूर्ण रूप से समर्पित था।

श्रीनाथ जी की भक्ति ही उनकी साधना की सिद्धि थी। गोसाईं विट्ठलनाथ जी की कृपा से चतुर्भुजदास को भगवान श्यामसुंदर के अद्भुत शृंगार आदि का प्रत्यक्ष रूप से अनुभव होता रहता था। एक बार श्री गोसाईं जी भगवान का शृंगार कर रहे थे। गोसाईं जी ने दर्पण दिखाया, चतुर्भुजदास श्यामसुन्दर, रसघनमूर्ति, नयनाभिराम का दर्शन कर रहे थे। वे प्रभु के सौन्दर्य से मदोन्मत्त होकर तत्काल गा उठे: उनकी वाणी ने दिव्य आनन्द में मग्न होकर कहा :

'सुभग सिंगार निरखि मोहन कों
लै दर्पन कर पियहि दिखावे।'
'आपनु नेक निहारिये बलि जाऊँ
आज की छवि कछु बरनि न आवे।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रभु का सौन्दर्य उनके नयनों में नवीन, नवीनतर और नवीनतम रूप से बढ़ने लगा। श्यामसुन्दर का दिव्य शृंगार उनके काव्य में थिरक उठा, उन्होंने गाया :

'माई री आज और, कल और,
छिन छिन प्रति और और।'

दर्शन करने वाले के लिये तो भगवान की छवि में निरन्तर सौन्दर्य-अभिवृद्धि होती है, यही तो भगवान के अलौकिक सौन्दर्य का क्षण-क्षण वर्द्धमान वास्तविक स्वरूप है। भक्त इसी सौन्दर्य-माधुरी की निरन्तर अभिवृद्धि से विमुग्ध होते रहते हैं। चतुर्भुजदास नित्य-निरन्तर भगवान की सौन्दर्य-अभिवृद्धि की अनुभूति करते रहते थे। एक बार गोसाईं विट्ठलनाथ जी गोकुल गये हुए थे। गोवर्धन में एक रास-मण्डली आयी। गोसाईं जी के ज्येष्ठ पुत्र श्री गिरिधर की आज्ञा से गोकुलनाथ जी ने परासोली में रासलीला का आयोजन किया। श्रीकृष्ण और स्वामिनी राधाजी का अद्भुत शृंगार हुआ था। श्री श्यामसुन्दर की झाँकी अनुपम थी, राधारानी के अंग-अंग में कोमलता, सौन्दर्य और माधुर्य का रंग निखर रहा था। गोकुलनाथ जी के बड़े अनुरोध से चतुर्भुजदास जी रास-उत्सव में सम्मिलित हुए थे। गोकुलनाथ जी ने चतुर्भुज दास से प्रियाप्रियतम की सेवा में एक पद समर्पण करने के लिये निवेदन किया। वे बड़े धर्म-संकट में पड़ गये। उनका मन अपने आराध्य श्रीनाथजी में लगा हुआ था, वे केवल श्रीनाथ जी के ही सामने गाया करते थे पर गोसाईं विट्ठलनाथ के पुत्र गोकुलनाथ की बात टालने में बड़ा संकोच हो रहा था। गोकुल-नाथ जी ने उनसे कहा कि आप गाइये, मेरा विश्वास कीजियें, श्रीनाथ आपका पद अवश्य सुनेंगे। चतुर्भुजदास ने अपने प्रेमास्पद का संकीर्तन आरम्भ किया; भगवान का तो दृढ़ व्रत है कि भक्त जहाँ गाते हैं वे वहाँ उपस्थित रहते हैं। भक्त बुलाये और भगवान न आयें यह तो असम्भव है। प्रभु तो सदा चाहते हैं कि मुझे सच्चे हृदय से भक्त बुलाये और मैं उसके आलिंगन में आबद्ध होकर धन्य हो जाऊँ। चतुर्भुजदास का पद-गान सुनने के लिये श्रीनाथ जी रासस्थल में प्रकट हो गये। उनका दर्शन उपस्थित जनमण्डली में केवल गोकुलनाथ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जी और चतुर्भुजदास को ही हो सका। चतुर्भुजदास के सामने सातों स्वर, राग-रागिनी आदि प्रकट होकर प्रभु के चरणों में समर्पित होने की प्रतीक्षा करने लगे। भक्त चतुर्भुजदास आनन्दविभोर थे, वे श्रीनाथजी के रासकालीन गूढ़तम सौन्दर्य का दर्शन कर गा उठे।

'अद्भुत नट वेष धरें जमुना तट
स्याम सुंदर गुन निधान,
गिरिवरधरन रासरंग नाचे।'

महात्मा चतुर्भुजदास की भक्ति से रास-आयोजन परम सफल हो गया, भक्तमण्डली रस में मग्न हो उठी। श्रीनाथ जी नित्य प्रत्येक क्षण रास-विलास में ही स्वसुख का अनुभव करते हैं पर भक्तों की भक्ति उनमें विशेष काल में और विशेष स्थान पर विशेष लीला का स्फुरण अभिव्यक्त कर देती है।

एक बार गोसाईं जी की आज्ञा से अप्सरा कुण्ड पर प्रातःकाल फूल लेने गये। उन्हें वृषभानुनन्दिनी श्री राधा सहित श्रीनाथ जी ने दर्शन दिया। चतुर्भुजदास ने युगलस्वरूप का स्तवन किया और पद गाया:

'गोवरधन गिरि सघन कन्दरा,
रैन निवास कियो पिय प्यारी।'

वे लीलारसिक महात्मा थे, भगवद्रसिक सन्त थे। उन्होंने सदा प्रभु के माङ्गलिक रूप का दर्शन किया। प्रभु श्रीनाथ जी के श्याम रंग में पूर्ण रूप से रंग गये थे। वे श्रीनाथ जी के 'संध्या-भोग' के कीर्तनकार थे। गोपीदशा, मुरली-माधुरी, गाय-गोप आदि के लीला-पद गाया करते थे।

एक बार गोसाईं विट्ठलनाथ जी तीर्थयात्रा में थे। गिरिधर जी ने श्रीनाथ जी को अपने निवास-स्थानपर मथुरा में पधराया। चतुर्भुजदास से श्रीनाथ जी का विरह नहीं सहा गया। वे नित्य गोवर्धन पर एकान्त में बैठ कर हिलग और विरह के पद गाया करते थे, श्रीनाथ जी उन्हें शाम को नित्य प्रत्यक्ष दर्शन दिया करते थे। एक दिन शाम को श्रीनाथ जी का विरह उनके लिये असह्य हो गया। वे संध्या समय एक दिन विरहावस्था में मूर्छित हो कर गा रहे थे:

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'श्री गोवर्धनवासी साँवरे लाल
तुम बिन रह्यो न जाइ हो।'

प्रभु ने गीत सुन लिया, गीत उन्हें अर्पित किया गया था। न भक्त भगवान के विना रह सकता है और न भगवान भक्त के विना रह सकते हैं – यह उनके प्रेम-साम्राज्य का अटल और शाश्वत विधान है। प्रभु ने रात में गिरिधर जी को प्रेरणा दी कि कल राजभोग गोवर्धन पर ही सम्पन्न होगा। मंगला आरती के बाद प्रभु को गोवर्धन पधराने की व्यवस्था होने लगी। राजभोग का समय बीत गया। नृसिंह चतुर्दशी थी। प्रभु ने राजभोग और शयन-भोग एक साथ शयन आरती के बाद स्वीकार किये। नृसिंह चतुर्दशी को उसी समय से श्रीनाथजी को दो राजभोग समर्पित करने का नियम अब तक चला आ रहा है। चतुर्भुजदास की प्रसन्नता के लिये इस प्रकार लीला-पूर्वक श्रीनाथ जी गोवर्धन में पधराये गये। भक्तों के सुख का भगवान को निरन्तर ध्यान रहता है। चतुर्भुजदास जी का दृढ़ विश्वास था कि गुरुकृपा और भगवद्भक्ति एक ही वस्तु है। वे महाप्रभु, गोसाईं जी और उनके सात पुत्रों में बड़ी निष्ठा रखते थे। वृद्ध पिता के साथ ही अष्टछाप के कवियों में स्थान प्राप्त करना उनकी गुरुनिष्ठा और भगवद्-भक्ति का प्रत्यक्ष फल है। उन्होंने अपने पदों में श्रीकृष्ण की विभिन्न लीलाओं का चित्रण किया है। महाप्रभु वल्लभाचार्य के प्रति उनकी श्रद्धापूर्ण उक्ति है:

'श्रीवल्लभ सुजस सन्तत नित्य गाऊँ।
मन क्रम वचन छिन एक न विसराऊँ।'

उन्होंने गोसाईं विट्ठलनाथ जी के सम्बन्ध में कहा है कि श्रीवल्लभ-नन्दन और नन्दनन्दन दोनों एक मन और दो रूप हैं:

'चतुर्भुज प्रभु गिरिधरन युग वपु लीला अनूप।
नन्दनन्दन श्रीवल्लभनन्दन एक मन द्वै रूप।'

उनकी दृष्टि में गोसाईं विट्ठलनाथ साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीनाथ जी ही थे। सम्वत् १६४२ वि. में गोसाईं विट्ठलनाथ जी का गोलोक-वास हो गया। वे उनके विरह को नहीं सह सके। वे चिन्तित हो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उठे कि नन्दराय का वैभव अब संसार में दिखलाने वाला दूसरा कोई नहीं रह गया है। गोसाईं जी का दर्शन फिर न मिल सकेगा। उनका स्वास्थ्य बिगड़ता गया और कुछ समय के बाद रुद्र कुण्ड पर एक इमली के वृक्ष के नीचे उनका लीला-प्रवेश हो गया। अन्त समय में उन्होंने गोसाईं जी की स्तुति का एक पद गाया और श्रीनाथ जी का दर्शन किया। निस्सन्देह चतुर्भुजदास महान भगवदीय, रसिक महात्मा, विरक्त गृहस्थ और भक्त सन्त थे।

रचना

श्रीकृष्ण के जन्मोत्सव से लेकर विरह तक के अनेक लीलापूर्ण और दिव्य शृंगारमय पदों की रचना की। चतुर्भुजदास के बालभाव, पालना, शृंगार, रास-लीला और विनय के पद पुष्टिमार्गीय कीर्तन-संग्रह में संकलित हैं।

वाणी

मंगल आरती गोपाल की।
नित उठि मंगल होत निरखि मुख, चितवन नैन बिसाल की।
मंगलरूप स्याम सुंदर कौ, मंगल छवि भृकुटी भाल की।
'चतुर्भुजदास' सदा मंगल निधि, बानिक गिरिधरलाल की।

भूली दधिको मन्थन करिबौ।
देखत रसिक नन्दनन्दन को, डगमगे पग धरिबो।
रह गई चितै चित्र जैसे एक टक, नैन निमेष न धरिबो।
'चतुर्भुज' प्रभु गिरिधरन जनायो नहीं, मैं मन-मानिक हरिबो।

नैन भरि देखो नन्दकुमार।
जसुमति कूख चन्द्रमा प्रगट्यो या व्रज को उजियार।
बन जिनि जाउ आज कोऊगोसुत और गाय गुवार।
अपने अपने भेष सबै मिलि लावो विविध सिंगार।
हरद दूब अच्छत दधि कुंमकुम मण्डित करौ दुवार।
पूरो चौक विविध मुक्ताफल गावौ मंगलाचार।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चहूँ वेद धुनि करत महामुनि होत नछत्र विचार।
उदयो पुण्य को पुंज सांवरो सकल सिद्धि दातार।
गोकुल वधू निरखि आनन्दित सुंदरता को सार।
'दास चतुर्भुज' प्रभु सब सुखनिधि गिरिधर प्रान आधार।

खेलत फाग संग मिलि दोउ आनंद भरि पिय-प्यारी।
नवल किसोर रसिक नन्दनन्दन नव वृषभानुदुलारी।
नव ऋतुराज लता द्रुम फूले वरन वरन छवि न्यारी।
गुंजत मधुप कीर पिक कूजत श्रवन सुनत सुखकारी।
तैसइ सुभग गौर स्यामल तन बनी जोट इक सारी।
कमल नैन पर बूका मेलत हंसि सकुचत सुकुमारी।
भरि अरगजा कनक पिचकारी धाई सब व्रजनारी।
भरत भावते मदन गुपाल बढ़यो रंग अति भारी।
बहुरि मिली दसपांच अली गोविन्द भरे अकवारी।
चोवा चन्दन अगर कुंकुमादियो सीस ते ढारी।
प्रेममगन मोहन मुख निरखत तन सब दसा बिसारी।
'चतुर्भुज' प्रभु सुन नर मुनि मोहे गुननिधान गिरिधारी।

श्री विट्ठल नाथ नैन भरि देखे।
पूरे मनोरथ भये सबकुछ हुती जु जीय अपेखे।
श्रीवल्लभसुत सरन बिना यह लों दिन गये अलेखे।
'दास चतुर्भुज' प्रभु सब सुखनिधि रहिये कृपा विसेखे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संत सिंगा जी

समुझि लेओ रे मना भाई
अंत न होइ कोई अपना।

—संत मनरंगीर

सन्त सिंगा जी मध्यभारत के कबीर स्वीकार किये जा सकते हैं। वे उच्च कोटि के रहस्यवादी सन्त थे, निर्गुण ज्ञानधारा में उनकी अद्भुत पहुँच थी। वे नीमाड़ के मध्यकालीन आध्यात्मिक गुरु थे, उन्होंने अपनी तपस्या और साधना से असंख्य प्राणियों का कल्याण किया। वे तुलसीदास जी महाराज के समकालीन थे। सन्त-साहित्य सिंगा जी के जीवनकाल में अपने उत्कर्ष की चरम सीमा पर था, सगुण और निर्गुण धारा का समन्वय चल रहा था। महात्मा एकनाथ, सूरदास, मीराबाई, गुरु अर्जुनदेव आदि समाज को आध्यात्मिक चिन्तन से प्रभावित कर रहे थे। लोकजीवन में सत्य की शक्ति का सावेग अवतरण हो रहा था, क्रान्ति की शीतल ज्योति फैल रही थी। सन्त सिंगा जी का इस आध्यात्मिक क्रान्ति में विशेष हाथ था। सन्त सिंगा जी के समय में दिल्ली के सिंहासन पर अकबर का आधिपत्य था। देश में धार्मिक उदारता और सामाजिक प्रेम-सम्बन्ध की लहर दौड़ रही थी, वातावरण शान्तिमूलक था। सन्त सिंगा जी ने अपनी परम पवित्र वाणी के द्वारा लोगों को बताया कि संसार और उसके पदार्थ तथा सम्बन्ध सब-के-सब विनश्वर हैं, उनमें से एक भी साथ नहीं देता है इसलिये जीवन में सबसे बड़ा कर्तव्य यही है कि संसार के किसी भी पदार्थ में आसक्त न रहते हुए जीवात्मा निरन्तर भगवान का भजन करे। मालवा प्रदेश में सिंगा जी की वाणी का बड़ा प्रभाव है। उस भूभाग की जनता बड़े आदर और श्रद्धा से उनके स्मरण में कहती है :

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'सिंगा बड़ा अवलिया पीर, जिसको सुमिरे राव अमीर।'

नीमाड़ के किसानों के हृदय में सिंगा जी के लिये महत्वपूर्ण स्थान है। उस प्रदेश के किसान तथा निवासी बड़े-से-बड़े संकट-काल में कहा करते हैं:

'म्हारा सिर पर सिंगा जवरा
गुरु मैं सदा करत हूँ मुजरा।'

सिंगा जी मध्यप्रदेश और विशेषता से नीमाड़ और मालवा की जनता के आध्यात्मिक प्राणधन स्वीकार किये जा सकते हैं।

संत सिंगा जी का जन्म मध्यभारत के बड़वानी राज्य के खजूरी ग्राम में सम्वत् १५७६ वि. को हुआ था। वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी तिथि थी। लगभग आठ बजे दिन को उनकी मा गौर-बाई घर से थोड़ी दूर पर कन्डे थाप रही थी। उसी समय सिंगा जी महाराज का धरती पर प्राकट्य हुआ। लोग उनके जन्म से आनन्दित हो उठे। उनके पिता भीमा जी गौली ने पुत्र उत्पन्न होने के उपलक्ष्य में अनेक दान-पुण्य किये। माता- पिता ने बड़े प्यार से उनका पालन-पोषण किया, उनके वचपन के संस्कार बड़े दिव्य थे।

सिंगा जी के जन्म के पाँच साल के वाद भीमा जी खजूरी ग्राम से हरसूद ग्राम चले आये। वे तीन सौ भैंसों के साथ हरसूद ग्राम में सपरिवार रहने लगे। इस यादव परिवार की निकट के गाँवों में शीघ्र ही प्रसिद्धि हो गयी। सिंगा जी बड़े परिश्रमी और अध्यवसायी थे। यथासमय उनका विवाह हो गया पर गृहस्थाश्रम में उनका मन नहीं लगता था, घर उन्हें काट खाता था, वे अनासक्ति और वैराग्य में विशेष रुचि रखते थे। हरसूद ग्राम से थोड़ी ही दूर पर भामगढ़ राज्य था, सिंगाजी ने भामगढ़ के रावसाहव की नौकरी कर ली। वे रावसाहव की डाक ले जाया करते थे। रावसाहव के वहुत विश्वासपात्र थे, रावसाहव अपने गुप्त-से-गुप्त कार्य उन्हीं के द्वारा करवाते थे। उनका वेतन केवल एक रूपया था। सिंगा जी बड़े संतोषी थे। वे बड़ी सावधानी से हरकारे का कार्य सम्पन्न करते थे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एक दिन विचित्र घटना हुई। सिंगा जी के जीवन में वैराग्य का क्षण उपस्थित हुआ। सिंगा जी रावसाहव की डाक लेकर घोड़े की पीठ पर बैठ कर अल्हड़ता और मस्ती से चले जा रहे थे, घोड़ा बड़ी तेजी से दौड़ रहा था। वे हरसूद से भामगढ़ की राह पर भैंसावा ग्राम में पहुँचते ही ठहर गये, लगाम थाम ली। घोड़ा रुक गया। भैंसावा ग्राम में महात्मा ब्रह्मगिरि महाराज के शिष्य सन्त मनरंगीर जी पद गा रहे थे। सन्त की वाणी थी, सिंगा जी के कान में पड़ ही तो गयी, उनका शरीर रोमाञ्चित हो उठा, वे आत्म विभोर हो गये, मनरंगीर गा रहे थे, भजन कर रहे थे :

'समुझि लेओ रे मना भाई
अन्त न होइ कोई आपना।'

सिंगा जी घोड़े पर से उतर गये, उनका मन शब्द-वाण से विद्ध था। नश्वर संसार उनके नयनों में नाचने लगा, उन्हें ज्ञान हुआ कि शरीर नश्वर है, परिवार से स्वार्थ का सम्बन्ध है, संसार माया का पुतला है, इनमें से कोई भी अन्त समय में साथ न देगा। उनका हृदय वैराग्य से अभिभूत हो उठा। वे संत मनरंगीर के चरणों पर गिर पड़े। उन्होंने कहा कि महाराज मैं आपकी शरण में हूँ; संसार में आसक्त था; मुझे आत्मज्ञान हो गया। आप मुझे अपना बना लीजिये, मेरा उद्धार कीजिये, मन्त्र दीजिये। सन्त मनरंगीर ने उनको अपना शिष्य बना लिया। मन्त्र लेने के बाद सिंगा जी भामगढ़ पहुँच गये। वे बार-बार मन को समझा रहे थे कि अन्त में कोई भी अपना नहीं है। रावसाहव की नौकरी छोड़ दी। उस समय उनका वेतन एक रूपये से तीन रूपये तक पहुँच गया था, रावसाहवने बहुत समझाया पर उनका वैराग्य-मद न उतर सका, वे तो सन्त-वाणी की वारुणी पीकर संसार के चक्र से दूर आ गये थे। वे वीर-हृदय पुरुष थे। संन्यास का वरण कर पीछे पद हटाना उन्होंने उचित नहीं समझा।

सन्त सिंगा जी हरसूद आये। उन्होंने रामनाम की खेती आरम्भ की। जीविका के लिये भैंस चराने का काम अपनाया। वे पीपल्या के जंगल में रह कर भैंस चराने लगे। वे भैंस चराते और साथ-ही-साथ पद-रचना भी करते जाते थे। अपने तीन साल के साधनामय जीवन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

में उन्होंने आठ सौ पदों की रचना की। कुछ समय के बाद वे पीपल्या का जंगल छोड़ कर फीफराड नदी के तट पर फीफराड़ के जंगल में रहने लगे। वे फीफराड़ के जंगल में जीवन के अन्तिम दिन तक रह गये। उन्होंने अपने वैराग्य-काल में निर्गुण ब्रह्म की उपासना की; अनुभूतिपूर्ण ब्रह्मतत्व की अपने पदों में व्याख्या की। उन्होंने घोषणा की :

'जामें मुक्तो लाभ, खेती खेड़ो हरिनाम की।'

सन्त मनरंगीर की उनपर बड़ी कृपा थी। एक दिन गुरु ने उनको अपने पास से अलग कर दिया। कृष्ण जन्माष्टमी की रात थी। मनरंगीर को नींद सता रही थी। उन्होंने संत सिंगा जी को आदेश दिया कि आधी रात में भगवान के जन्म-समय में मुझे जगा देना। इधर सिंगा जी भगवान का भजन करते-करते मस्त हो गये। आधी रात का समय होते ही वे भगवान के स्तवन-पूजन में लग गये। सन्त मनरंगीर गहरी नींद में थे। सिंगा जी ने सोचा कि गुरु सो रहे हैं, उनको जगाने से कहीं उनके प्रति अपराध न हो जाय। भगवान का तो जन्म प्रत्येक वर्ष होता है इसलिये इस वर्ष उत्सव की आरती मैं ही कर लूँ। उन्होंने भगवान की आरती की। मनरंगीर सो कर उठे तो उन्हें बड़ा दुख हुआ, उन्होंने आवेश में सिंगा जी को शाप दिया कि आज से मुझे अपना मुख मत दिखाना। सिंगा जी चले गये और वे गुरु का दर्शन करने कभी न आये। उनकी गुरुनिष्ठा में कमी न आयी। संत सिंगा जी निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा के सन्त थे। वे अखण्ड ब्रह्म-पूजा में आजीवन संलग्न थे। उन्होंने योगपुरुष निरंकार की अखण्ड ज्योति का दर्शन किया। घट-घट में निर्विकार सनातन तत्व का ज्ञानसाक्षात्कार किया। उनकी उक्ति है :

'निर्गुण धाम सिंगा जी जहाँ अखण्ड पूजा लागी।
जहाँ अखण्ड ज्योति भरपूर, जहाँ झिलमिल वरसे नूर॥
जहाँ भरा ज्ञान महमूर, कोई विरला पहुँचे सूर।
वो सोहं सवद इकतार, जहाँ आदि अन्त ओंकार॥
जहाँ पूरि रह्या इकतार, सव घट में श्री ओंकार।
चेतन काया खोजे, खोजे विन कैसे सूझे॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'सूक्ष्म कमल के माहीं, जहँ अनहद नाद सुनाई
'सिंगा' रमि रहे तेहि माहीं, जहँ कटे करम की काई ॥'

सिंगा ने रहस्य-तत्व का ज्ञान प्राप्त किया। वे कबीर की तरह रहस्यवादी सन्त थे।.....वे ज्ञानी महात्मा थे, उनके तत्वान्वेषण में सरसता और परमानन्द की चिन्मय ज्योति की झाँकी मिलती है। उन्होंने समाधि-भाषा में रहस्य-तत्व का बखान किया, अत्यन्त रोचक और सरस भाषा में उनकी उक्ति है :

'विना पींड को तरुवर कहिये
डाल नवी नवी आवे।
बिना पंख को हंसा कहिये
वो आकाश उड़ि उड़ि जावे।'

उन्होंने योग के पंख पर उड़ कर कहा कि जल में कमल है, कमल-कली में निरञ्जन वासुदेव अविनाशी चिन्मय तत्व का निवास है ; उन्होंने कहा कि तीर्थ, व्रत, जप, योग और परमात्मा सब-के-सब अपने आप में ही विद्यमान हैं, उनकी खोज बाहर करने से समय का अपव्यय होता है ; वन-वन में खोजने से वस्तु-तत्व की प्राप्ति नहीं हो सकती है। उनका एक स्थल पर कथन है, सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्व-निरूपण है, रहस्य वस्तु का परिज्ञान है :

'घुरत नगारा सून्य में, ताकी सुधि लीजै।
मोतियन की वरसा बरसे, कोई हरिजन भीजै ॥
राह हमारी वारीक है, हाथी नहीं समाय।
'सिंगा' जी चींटी हुइ रह्या, निरभय आवनो जाय ॥'

उन्होंने कहा कि सुषुम्ना की सेज पर सदा निर्गुण निराकार शून्य विलासी निरञ्जन ब्रह्म झूलता रहता है, आनन्द का रसास्वादन करता रहता है। उन्होंने कहा कि हमारा गुरु वही हो सकता है जिसने पूर्ण रूप से ब्रह्म का निर्मल दर्शन पा लिया है। उनका पूर्ण विश्वास था कि ब्रह्म-प्राप्ति का फल सिवाय गुरु के दूसरा कोई बता ही नहीं सकता है। उनकी चिन्तनशैली उच्च कोटि की थी; उनकी वाणी ऊँचे घाट की है ; एक स्थल पर उनकी विशेष उक्ति है :

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'तत्व-पलंग पर सेज बिछावण
शून्य में डेरा दीजे रे।'

उन्होंने समस्त चराचर में केवल एक परमात्मा की अभिव्यक्ति का अनुभव किया और इसी अनुभव के अनुरूप उन्होंनें अपने सन्तमत की प्राण-प्रतिष्ठा की। उनकी उक्ति है कि मेरे अगम पथ पर ब्रह्म का दर्शन चन्द्रमा और सूर्य भी नहीं कर सकते हैं; योग की भाषा में इसका आशय यह है कि हंस तत्व पर—इडा पिंगला पर स्थित रह कर भी सोऽहं की झाँकी नहीं मिल सकती है, हंस सोऽहं होकर ब्रह्मानुभूति कर सकता है। संत सिंगा ने ज्ञान और भक्ति दोनों का प्रश्रय लिया। राम नाम में उनका बड़ा विश्वास था, भवसागर को पार करने का जहाज उनके मत से राम नाम ही है। उनकी उक्ति है:

'राम नाम को जहाज बनाले, काठ भयो बहुसारा।
कह जन 'सिंगा' सुन भाई साधू मनरंग उतरे पारा॥'

एक पद में उनका कथन है कि मेरे स्वामी की अटारी पर दो दीप जगमगा रहे हैं। अखण्ड स्मृति पहरा दे रही है। मैं नत मस्तक रूपी फल उनके चरणों पर चढ़ाने जाता हूँ पर मेरे स्वामी मुझे ठहरने का आदेश देते हैं। उनकी अस्वीकृति मुझे स्वीकृति से भी अधिक मीठी लगती है। इस उक्ति में ज्ञान और प्रेम-भक्ति का अमित मधुर समन्वय किया है। इस कथन में उनका रहस्यवाद अपने रसराजत्व —पूर्णतम शृंगार पर है, यही सन्त साहित्य को उनकी महत्वपूर्ण देन है। वे कहा करते थे कि जीते रहना मेरी ससुराल है और मरना नैहर है। उनका कथन है:

'ऐसा मरना मरो सन्त भाई,
बहुरि जनम नहिं धरणा रे।'

गुरु ने उन्हें कभी मुख न दिखाने का आदेश दिया था। सिंगा जी ने आदेश का पालन किया। वे अपने जीवन के अन्तिम समय में फिफराड़ के जंगल में भजन कर रहे थे। फिफराड नदी के तट पर सम्वत् १६१६ वि. की श्रावण शुक्ला नवमी को उन्होंने जीवित समाधि ले ली। अपने हाथ से गड्ढ़ा खोदा, कपूर जलाया और समाधिस्थ हो गये। समाधि के समय का वर्णन उनके पौत्र दलुदास ने किया है:

CC-0! Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'ताल पखावज बजे झाँझरी
सिंगा ने ध्यान लगायो।
भान कपूर फूल की आरती
सिंगा ने ज्योति में ज्योति मिलायो।'

समाधि के पश्चात् उनके गुरु मनरंगीर ने अपने शाप पर पश्चाताप किया कि मुझे क्रोधावेश हो गया था, मैंने हाथ का हीरा खो दिया, आनन्दवन में अपने हाथ से आग लगा दी। सिंगा जी की समाधि पर आश्विन मास में बहुत बड़ा मेला लगता है। वे रहस्यवादी सन्त और ज्ञानी महात्मा थे।

रचना

सन्त सिंगा जी ने आठ सौ पद रचे। उनके पदों में निर्गुण ब्रह्म का सरस वर्णन मिलता है।

वाणी

मैं तो जाणूं साईं दूर है, मुझे पाया नेड़ा।
रहणी रही सामरथ भई, मुझे पखवा तेरा॥
तुम सोना हम गहणा, मुझे लागा टाका।
तुम तो बोलो, हम देह धरि बोले कै रंग भाखा॥
तुम चंदा हम चाँदणी, रहणी उजियाला।
तुम तो सूरज हम घामला, सोई चौ जुग पुरिया॥
तुम दरियाव हम मीन है, विश्वास का रहणा।
देह गली मिट्टी भई तेरा तूही में समाणा॥
तुम तरुवर हम पंछीड़ा, बैठे एक ही डाला।
चोच मार फल भाँजिया फल अमृत सारा॥
तुम तो वृक्ष हम वेलड़ी मूल से लपटाना।
कह 'सिंगा' पहचाण ले, पहचाण ठिकाना॥

संगी हमारा चंचला कैसा हाथ जो आवे।
काम क्रोध विष भरि रह्या, तासे दुख पावे॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मट्टी केरा सीघड़ा, पवन रंग भरिया।
पाव पलक घड़ी थिर नहीं बहु फेरा फिरिया॥
आया था हरिनाम को, सो तो नहीं रे बिसाया।
सौदा तो सच्चा नहीं, झूठा संग कीया॥
घुरत नगारा शून्य में, ताकी सुधि लीजे।
मोतियन की बरसा बरसे, कोई हरिजन भीजे॥
राह हमारी बारीक है, हाथी नहीं समाय।
'सिंगा' जी चींटी हुइ रह्या, निरभय आवनो जाय॥

निर्गुण ब्रह्म है न्यारा, कोई समझो समझण हारा।
खोजत ब्रह्मा जनम सिराणा, मुनि जन पार न पाया॥
खोजत खोजत शिव जी थाके, वो ऐसा अपरम्पारा।
सेस सहस मुख रटे निरन्तर, रैन दिवस एक सारा॥
ऋषि मुनि और सिद्ध चौरासी, वो तैंतीस कोटि पचि हारा।
त्रिकुटी महल में अनहद वाजे, होत शवद झनकारा॥
सुकमणि सेज सून्य में झूले, वो सोहं पुरुष हमारा।
वेद कथे अरु कहे निरवाणी, श्रोता कहो विचारा।
काम क्रोध मद मत्सर त्यागो, ये झूठा सकल पसारा;
एक बूंद की रचना सारी, जाका सकल पसारा।
'सिंगा' जी जो भर नजरा देखा, वो ही गुरु हमारा॥

नर-नारी में देखले, सब घर में एक तार।
कहै 'सिंगा' पहचान ले, एक ब्रह्म है सार॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महात्मा जीव गोस्वामी

यावत आछये प्राण, देहे आछे शक्ति
तावत करह कृष्ण पादपद्मे भक्ति।
कृष्ण माता, कृष्ण पिता, कृष्ण प्राणधन,
चरणे धरिया बलि – कृष्ण देह मन।

—चैतन्य भागवत

महात्मा जीव गोस्वामी अतल कृष्णभक्तिसागर की गम्भीरता और अचल चैतन्य-शरणागति की धीरता के समन्वय-प्रतीक थे। वे परम भगवतभक्त और रससिद्ध विद्वान महात्मा थे। जो स्थान वल्लभ-सम्प्रदाय में महामति प्रभुचरण हरिराय जी को प्राप्त है वही जीव गोस्वामी को गौड़ीय सम्प्रदाय में उपलब्ध है। जीव गोस्वामी महात्मा सनातन और रूप के सगे भतीजे थे, चैतन्य चरणारविंद मकरन्द के मुग्ध मधुप थे। जिस समय अकबर सीकरी में ऐश्वर्य और लौकिक वैभव पर शासन कर रहे थे उस समय श्रीकृष्ण की लीलाभूमि व्रज में महात्मा जीव गोस्वामी भगवद्भक्ति और अलौकिक ऐश्वर्य से जीव-मात्र को सचेत कर रहे थे।

जीव गोस्वामी भक्तिशास्त्र के अपूर्व मर्मज्ञ थे। बड़े-बड़े शास्त्र-महारथी और ज्ञानी भक्ति के सम्बन्ध में उनकी सम्मति लिया करते थे। बंगीय वैष्णव विचारधारा के वे आचार्य थे। उन्होंने भक्ति को रस माना और इस परिणाम पर पहुँचे कि वैराग्य वह तत्व है जिसके द्वारा लौकिक वस्तुओं का भगवत्सेवा में अनासक्तिपूर्वक उपयोग हो और श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम बढ़े। उन्होंने श्रीकृष्ण को भगवत्तत्व, राधा को महाभाव स्वरूपिणी और प्रेम को परतत्त्व–महत्तत्व स्वीकार किया जीव गोस्वामी उच्च कोटि के रसोपासक थे। उनकी रस उपासना का मूलभूत आधार श्री राधाकृष्ण विषयक परम प्रेम है। अपने जीवन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के अन्तिम पैंसठ साल उन्होंने श्रीकृष्ण के चरण-चिन्तन और भक्ति ग्रन्थों के प्रणयन में वृन्दावन में बिताये, व्रज से कहीं भी बाहर न जाने का दृढ़ नियम था। निस्सन्देह जीव गोस्वामी सगुण सन्तसाहित्य के विकास की एक बहुत बड़ी भागवती शक्ति थे।

जीव गोस्वामी के पूर्वज परम ऐश्वर्य सम्पन्न और भगवन्निष्ठ थे। वे दक्षिण के कर्णाट प्रान्त के रहने वाले थे। वे भारद्वाज गोत्र के यजुर्वेदी ब्राह्मण थे। विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में जीव गोस्वामी के पूर्वज पद्मनाभ नवहट्ट चले आये और हुसेन शाह के शासन काल में जीव गोस्वामी के पितामह कुमारदेव ने फतेहाबाद में रहना आरम्भ किया। कुमारदेव के तीन पुत्र थे, सनातन, रूप और वल्लभ। सनातन और रूप मालाधर वसु के सम्पर्क से गौड़ के बादशाह हुसेन शाह की राजसभा में प्रधानमन्त्री और निजी सचिव के पद पर क्रमशः प्रतिष्ठित हुए। जीव गोस्वामी अनुपम–वल्लभ के पुत्र थे। उनका जन्म पौष शुक्ल तृतीया को बाकला चन्द्रद्वीप में विक्रम की सोलहवीं सदी के तीसरे चरण की समाप्ति पर और चौथे चरण के आरम्भ में १५९० के पहले हुआ था। सनातन और रूप निस्सन्तान थे इसलिये जीव गोस्वामी को वे बहुत मानते थे। जीव गोस्वामी समस्त परिवार के प्रेमपात्र थे। उनकी शिक्षा-दीक्षा की बड़ी उचित व्यवस्था की गयी थी। ऐसा कहा जाता है कि सनातन और रूप को धन्य तथा कृतार्थ करने के लिये जब महाप्रभु चैतन्य देव का रामकेलिग्राम में पदार्पण हुआ था तब बालक जीव गोस्वामी ने गंगातटीय रमणीय उपवन के पीछे छिप कर महाप्रभु की दिव्य कान्ति से अपने नयन शीतल किये थे, मन-ही-मन अपने आप को उनके चरणदेश में प्रेम के माध्यम से समर्पित कर दिया था।

चैतन्य महाप्रभु के रामकेलि से चले जाने के बाद सनातन और रूप को राजकार्य से तीव्र वैराग्य हो गया। रूप हुसेनशाह से छुट्टी लेकर चैतन्य देव से मिलने के लिये अपने छोटे भाई अनुपम के साथ वृन्दावन की ओर चल पड़े। रूप ने थोड़ा-सा धन जीव गोस्वामी को देकर शेष ब्राह्मणों में बाँट दिया। जीव अधिक रूप में सनातन के ही पास रहते थे पर वे भी बादशाह के कारागार में डाल दिये गये। जीव गोस्वामी का मन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लौकिक ऐश्वर्य-भोग में तनिक भी नहीं लगता था, उनके जीवन-विकास पर सनातन और रूप की भगवन्निष्ठा का बड़ा प्रभाव था। इधर सनातन भी कारागार से निकल कर प्रभु चैतन्य देव से मिलने काशी आ गये। रूप और अनुपम ने प्रयाग में चैतन्य से भेंट की। उनकी आज्ञा से दोनों भाई लुप्त तीर्थों के उद्धार और खोज के लिये वृन्दावन गये, कुछ दिनों के बाद चैतन्य देव के दर्शन के लिये रूप और अनुपम ने नीलाचल की यात्रा की पर मार्ग में ज्वर से अनुपम की मृत्यु हो गयी। जीव गोस्वामी की अवस्था उस समय लगभग बीस साल की थी। पिता की मृत्यु से उनके हृदय पर बड़ा आघात लगा। उनका मन वृन्दावन के लिये आकुल हो गया। सनातन और रूप के साथ वृन्दावन में रह कर श्रीकृष्ण-भक्ति में समय का सदुपयोग करने का उन्होंने निश्चय किया।

एक दिन रात को स्वप्न में उन्हें चैतन्य महाप्रभु और नित्यानन्द का दर्शन हुआ। वे नित्यानन्द के दर्शन के लिये नवद्वीप गये। घर-बार, भोग-ऐश्वर्य पर लात मार कर श्रीकृष्ण के प्रेमी हो गये। उन्होंने आजीवन अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन किया। नित्यानन्द ने उन्हें काशी जा कर विद्याध्ययन करने का आदेश दिया। जीव गोस्वामी काशी चले आये, भगवद्भक्ति को जीवन का ध्येय स्थिर किया। काशी में जीव गोस्वामी ने सार्वभौम भट्टाचार्य के शिष्य मधुसूदन विद्यावाचस्पति से शास्त्रों का अध्ययन किया। वेदान्त और न्याय आदि दर्शनशास्त्रों में वे पूर्ण निष्णात हो गये। काशी-निवास काल में उन्होंने बड़े-बड़े सिद्ध सन्तों और वीतरागी महात्माओं के दर्शन और सत्संग का रसास्वादन किया। वे सनातन और रूप के पास वृन्दावन चले आये। रूप के साथ रहकर भक्ति शास्त्र का अध्ययन करने लगे। सनातन और रूप दोनों उन दिनों वृन्दावन में ही रहते थे। वृन्दावन की चिन्मय सौन्दर्य-माधुरी की उपासना और कृष्णप्रेमप्राप्ति की दिव्य कामना में उनका मन रमण करने लगा। वे आजीवन वृन्दावन में ही रह गये। वृन्दावन उनका प्राणधन हो गया। रूप गोस्वामी ने उन्हें विधिपूर्वक दीक्षा देकर अपने चरणों में आश्रय प्रदान किया। रूप ने दीक्षा देते समय कहा कि तुम वैराग्य का जीवन अपना रहे हो पर रेशमी परिधान शरीर पर समलंकृत है, विषय-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भोग में अब भी आसक्ति शेष है। जीव गोस्वामी ने रेशमी वस्त्र उतार दिया, एक कौपीन धारण कर जमुनातट पर कुटी बना कर रहने लगे। रूप ने उनको समस्त शास्त्र पढ़ाये। कृष्ण-भक्ति का यथाज्ञान् मर्म समझाया और कहा कि भक्ति श्रीकृष्ण की अनुकूलता के अनुशीलन का नाम है, ज्ञान, कर्म, वैराग्य तथा अन्य अभिलाषायें और विषय इसका स्पर्श तक नहीं कर पाते हैं। जीव गोस्वामी ने पूर्ण विरक्ति से अपना सम्बन्ध जोड़ लिया। भगवान की उपासना मधुर भाव से करने लगे। रूप गोस्वामी के 'उज्ज्वल नीलमणि' और 'हरिभक्तिरसामृतसिन्धु' पर टीकायें लिखीं तथा स्वयं अनेक भक्तिविषयक ग्रन्थों के निर्माण में समय का उपयोग किया। जीव गोस्वामी ने 'हरिभक्तिरसामृतसिन्धु' की दुर्गसंगमनी टीका में अपने दीक्षा-गुरु महात्मा रूप गोस्वामी के प्रति श्रद्धा समर्पित करते हुए कहा है, उनकी वाणी है :

'सनातन समो यस्य ज्यायान् श्रीमान् सनातनः।
श्रीवल्लभोऽनुजः सोऽसौ श्रीरूपो जीवसद्गतिः।'

श्री रूप गोस्वामी को उन्होंने अपनी सद्गति का प्रतीक स्वीकार किया है। रूप गोस्वामी ने प्रगाढ़ शास्त्रज्ञता, भक्तिमर्मज्ञता और कृष्णप्रेमरसज्ञता से प्रसन्न होकर उन्हें राधादामोदर भगवद्विग्रह की सेवा सौंप दी। श्री जीव गोस्वामी राधादामोदर की सेवा करते हुए भगवान के भजनानन्द में मग्न हो गये।

जिस समय वृन्दावन में रूप गोस्वामी प्रसिद्ध ग्रंथ 'हरिभक्तिरसामृतसिन्धु' की रचना कर रहे थे उस समय वृन्दावन में वल्लभ भट्ट नामक एक दिग्विजयी पण्डित का आगमन हुआ। वल्लभ भट्ट का रूप गोस्वामी से शास्त्रार्थ हुआ, 'हरिभक्तिरसामृतसिन्धु' के किसी अंश में उन्हें दोष दीख पड़ा। यद्यपि दोष नहीं था तो भी रूप ने उनकी बात मान ली। उन दिनों रूप और सनातन के पाण्डित्य की प्रसिद्धि चारों ओर फैली हुई थी। दिग्विजयी भट्ट महोदय ने घोषणा कर दी कि रूप और सनातन ने जयपत्र लिख दिया है। जीव को इस घोषणा से बड़ी अप्रसन्नता हुई, उन्होंने दिग्विजयी को शास्त्रार्थ में पराजित किया। दूसरे दिन दिग्विजयी पण्डित ने अपनी पराजय स्वीकार करते हुए रूप के सम्मुख जीव गोस्वामी की शास्त्रज्ञता की बड़ी प्रशंसा की। रूप गोस्वामी लज्जा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

से नत हो गये। उन्होंने जीव को अपने आश्रम से बाहर निकाल दिया। जीव निर्जन यमुना तट पर बैठ कर निराहार रह कर दिन बिताने लगे। सात दिन के बाद सनातन गोस्वामी रूप से मिलने आये। सनातन ने रूप गोस्वामी से पूछा कि वैष्णव को जीवमात्र के प्रति कैसा व्यवहार करना चाहिये? रूप ने उत्तर दिया कि दयापूर्ण वर्ताव ही उचित है। सनातन ने कहा कि यदि ऐसी बात है तो तुमने जीव गोस्वामी के प्रति इतना कठोर व्यवहार क्यों किया है? रूप ने बड़े भाई के वचन से प्रभावित होकर तत्काल जीव को बुला भेजा, गले लगाया और आश्रम में रख लिया। इस प्रकार सनातन और रूप ऐसे परम भागवत सन्त तथा गुरु जन की देखरेख में जीव गोस्वामी का जीवन परम संयमित और नियमित था।

एक बार बादशाह अकबर ने महात्मा जीव गोस्वामी को अपनी राजसभा में पधारने के लिये निमन्त्रित किया। उन्हें दिल्लीश्वर के ऐश्वर्य से क्या काम था। उन्होंने जाना अस्वीकार कर दिया। पर अकबर की विशेष प्रार्थना और सहृदयता पर उन्होंने राजसभा में जाना स्वीकार कर लिया। उनके जाने की बात तो निश्चित हो गयी पर लौटना भी उसी दिन था, वे वृन्दावन में ही रात में रहते थे। अकबर ने घोड़ा गाड़ी की व्यवस्था की। उदार और सहृदय अकबर ने उनका विशेष स्वागत-सत्कार किया, प्रश्न किया कि यमुना और गंगा में कौन श्रेष्ठ हैं? जीव गोस्वामी के निर्णय से लोग आश्चर्य चकित हो गये। जीव गोस्वामी ने दोनों के प्रति श्रद्धा प्रकट करते हुए उत्तर दिया कि श्रीगंगा भगवान् का चरणामृत हैं पर श्रीयमुना साक्षात् पटरानी हैं।... महात्मा जीव गोस्वामी उसी दिन वृन्दावन लौट आये।

वे बहुत बड़े त्यागी और असाधारण विरक्त थे। जो कुछ वस्तु भेंट में मिलती थी उसे श्री यमुना जी में डाल दिया करते थे। चित्तौड़ की राजरानी मीरा प्रेममग्न तथा श्रीकृष्ण के रूपरस में प्रमत्त होकर वृन्दावन में भगवल्लीला गा रही थीं, वे एक दिन उनकी कुटिया के पास आ पहुँचीं। महात्मा जीव गोस्वामी स्त्री को दर्शन नहीं देते थे। मीरा को इस नियम का पता नहीं था। उन्होंने दर्शन देने की प्रार्थना की तो जीव गोस्वामी ने शिष्य से कहला दिया कि मैं स्त्री से नहीं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मिलता। मीराबाई ने गोस्वामी जी के पास प्रत्युत्तर भेजा कि मैं तो यह समझती थी कि वृन्दावन में पुरुष केवल श्री कृष्ण हैं पर आज यह पता चला कि कोई और भी हैं। मीरा ऐसी भक्त की वाणी थी, तीर की तरह लग गयी। जीव गोस्वामी आसन से उठ पड़े और मीरा को अपने दर्शन से धन्य ही नहीं किया, उनके दर्शन से स्वयं कृतार्थ हो गये। महात्मा जीव गोस्वामी वैराग्यरसरसिक सन्त थे।

महात्मा जीव गोस्वामी ने भगवद्भक्ति के क्षेत्र में भजनानन्द को स्वरूपानन्द से अधिक श्रेयस्कर स्वीकार किया। भजनानन्द से भगवान की भक्ति मिलती है, स्वरूपानंद ब्रह्मज्ञान प्रदान करता है। उन्होंने स्वीकार किया है कि भक्ति भगवान की ओर ले जाती है पर ज्ञान से ब्रह्मानुभूति की प्राप्ति होती है। भक्ति ज्ञान से श्रेष्ठ है—ऐसी उनकी मान्यता थी। उन्होंने श्रीमद्भागवत पुराण को गौड़ीय वैष्णव-चिन्तन का प्रधान शास्त्र स्वीकार किया। चैतन्य देव के सिद्धान्तों के अनुरूप रूप और सनातन गोस्वामी द्वारा प्रतिपादित भेदाभेद-वाद के अचिंत्य स्वरूप में उन्होंने गोपराजतनय नन्दनन्दन का दर्शन किया। भगवत्संदर्भ में उनकी भगवत्तत्व के सम्बन्ध में उक्ति है:

'स्वरूपाद्यभिन्नत्वेन चिन्तयितुम् शक्यत्वाद् भेदः भिन्नत्वेन चिन्तयितुम् शक्यत्वाद् अभेदश्च प्रतीयते इति शक्तिशक्तिमतोर्भेदाभेदौ अङ्गीकृतौ। तौ च अचिन्त्यौ। स्वमते तु अचिन्त्यभेदाभेदावेव अचिन्त्यशक्तित्वात्।'—श्रीकृष्ण में उनकी स्वरूप आदि शक्तियों से अभिन्न रूप में चिंतन करना अशक्य होने से वह भिन्न प्रतीत होता है और उनसे भिन्न रूप से चिंतन करना अशक्य होने के कारण वह अभिन्न प्रतीत होता है। शक्ति और शक्तिमान में भेद और अभेद दोनों सिद्ध होते हैं, ये दोनों ही अचिंत्य शक्ति होने के कारण अचिंत्य माने जाते हैं।

उन्होंने 'गोपालचम्पू,' 'माधवमहोत्सव' आदि ग्रन्थों में श्रीकृष्ण की विभिन्न वृन्दावनलीला का पूर्ण रूप से वर्णन किया है। चैतन्य महाप्रभु की संतुष्टि के लिये, सुख के लिये उन्होंने 'पूर्वगोपालचम्पू' और 'उत्तरगोपालचम्पू' की रचना में हाथ लगाया, दिव्य गति-प्राप्ति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और सुखमयता ही उनकी रचना की मूलभूमि है: 'उत्तरगोपालचम्पू' में जीव गोस्वामी की स्वीकृति है: स्पष्टीकरण है:

'प्रागारब्धमभूत्तदेतदमलं चम्पूद्वयं यत्कृते
तच्चेदं हृदि शुद्धमाविरभवल्लोकद्वयस्यामृतं,
राधाकृष्णपरस्परव्यतिकरानन्दात्मना येन ते
याता दिव्यगतिं वयं सुखमयं सर्वोर्द्धमध्यास्महे।'

जीव गोस्वामी की भक्तिपूर्ण रचना जगत् के प्रति उपरति और सच्चिदानन्द के प्रति गाढ़ासक्ति का दान करती है। जीव गोस्वामी ने गोपीप्रेम की ही परिपुष्टि की, गोपीप्रेम को ही उन्होंने भक्ति का प्राणधन समझा। जीव गोस्वामी की प्रसिद्ध रचना 'षट्सन्दर्भ' में गौड़ीय वैष्णव-चिन्तन का भागवत रूप विस्तार से वर्णित है। 'षट्सन्दर्भ' में तत्व, भगवत्, परमात्म, श्रीकृष्णभक्ति और प्रीति के तत्व पर विचार किया गया है। पहले तीनों सन्दर्भों को अणुव्याख्या कहा जाता है, उनका नाम सर्वसंवादिनी है। इनमें कृष्णभक्ति पर प्रकाश डाला गया है। कृष्णभक्ति का शास्त्रानुक्रम से वर्णन किया गया है। कृष्ण ही परम उपास्य और आराध्य स्वीकार किये गये हैं। भक्ति सन्दर्भ में अभिधेय तत्व और प्रीति-सन्दर्भ में प्रीति तत्व का विवेचन हुआ है। प्रीति-सन्दर्भ प्रयोजन तत्व का विश्लेषण करता है। तत्व सन्दर्भ में प्रमाण और प्रमेय का वर्णन है। ज्ञान का मूल अधिष्ठान प्रमाण है और ज्ञेयता ही प्रमेय है। जीव की मान्यता के अनुसार श्री भागवत पुराण भगवत्तत्व का सर्वश्रेष्ठ प्रतीक है। भगवत्प्रेम मोक्ष सुख से कहीं अधिक आनन्ददायक और कल्याणस्वरूप है। भगवत्सन्दर्भ में भगवान के स्वरूप पर विचार किया है, यद्यपि तत्व एक है तथापि उपासक, योग्यता और वैशिष्ट्य के रूप में उसका वर्गीकरण किया गया है। परमात्म सन्दर्भ में ईश्वर, जीव और प्रकृति का निरूपण हुआ है। जीव गोस्वामी की उक्ति है कि प्रकृति के सत्व, रज, तम गुणों से जीव बद्ध है पर भगवान परम स्वतन्त्र और निरपेक्ष तथा स्वस्थ और पूर्ण हैं। भागवती शक्ति स्वरूपस्थ, तटस्थ और बहिरङ्ग है। स्वरूप शक्ति परा है, तटस्थ शक्ति जीव है और माया शक्ति बहिरङ्ग है। विष्णु पुराण में क्रम से इन को परा, क्षेत्रज्ञ और अविद्या शक्ति कहा गया है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जीव गोस्वामी ने भगवन्नाम को भगवत्स्वरूप कहा है। उनके मत से 'भगवत्स्वरूप एव नाम' सिद्धान्त की परिपुष्टि होती है। जो भक्ति-पूर्वक भगवान का नाम लेता है वह भगवत्रूपता प्राप्त करता है। नाम भगवान का वर्णअवतार है। कथन मिलता है :

'अवतारान्तरवत् परमेश्वरस्य वर्णरूपेणावतारोऽयं।'

भक्ति से ही भगवान के स्वरूप का ज्ञान होता है – जीव गोस्वामी की यह मान्यता है। मोक्ष और आनन्द उपासना के सम्मुख गौण हैं। जीव गोस्वामी ने कहा कि साधना-भक्ति से ब्रह्मज्ञान मिलता है पर भगवत्प्राप्ति तो प्रेम-भक्ति से होती है। उन्होंने कहा कि मुक्त जीव स्वरूप-शक्ति का अंश है और वैकुण्ठ अथवा गोलोक में वही परिकर कहलाता है। कृष्णसन्दर्भ में भगवान कृष्ण अवतार नहीं पूर्णतम परमात्मा स्वीकार किये गये हैं। भगवत्ता ही कृष्ण है, कृष्णत्व भगवत्ता नहीं है। श्रीकृष्ण केवल लीलावतार ही नहीं–गुणावतार भी हैं – ब्रह्मा, विष्णु और महेश के नियामक हैं। कृष्ण ऐश्वर्य, कारुण्य और माधुर्य से समवेत परमात्मा हैं। जीव गोस्वामी ने रूप गोस्वामी के स्वीकीयवाद और गौड़ीय कृष्णप्रेम के परकीय वाद का समन्वय किया पर उनके साहित्य में प्रधानता परकीयता की ही है। कृष्णदास कविराज ने गौड़ीय वैष्णवभक्ति का मूलाधार परकीय प्रेम माना है। उनका कथन है

'परकीया रसे अति भावेर उल्लास।'

जीव गोस्वामी ने राधा को 'गोपाल-चम्पू' में विशेष रूप से उत्कंठिता निरूपित किया है। पर यह स्मरणीय बात है कि व्रजगोपी श्रीकृष्ण की नित्य प्रेयसी हैं। वे उनकी स्वरूप-शक्ति हैं। शक्तिमान् श्रीकृष्ण सदा उनके साथ विहार किया करते हैं। भक्तिसन्दर्भ में जीव गोस्वामी ने भगवद्भक्ति पर विशेष जोर डाला है। भगवान की कृपा से ही भक्ति का उदय होता है। सन्त-महात्माओं के सत्संग से ही भगवान की कृपा मिलती है। प्रीति-सन्दर्भ में जीव गोस्वामी ने भगवत्प्रेम की महिमा गायी है। भगवत्प्रेम ही जीवन का उत्तम और सर्वश्रेष्ठ प्रयोजन है। भगवत्प्रीति शाश्वत आनन्द का दान करती है। भगवत्प्रीति का आशय निष्काम सेवा–उपासना है। जीव

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गोस्वामी निष्काम भक्त थे। जीव गोस्वामी निरन्तर वृन्दावन में रह कर भगवान श्रीकृष्ण के ऐश्वर्य, सौंदर्य और माधुर्य का रसास्वादन करते रहे। सम्वत् १६७५ वि. के लगभग आश्विन शुक्ल तृतीया को वृन्दावन में ही उन्होंने नित्यधाम में प्रवेश किया। राधादामोदर उनके परम उपास्य थे। उन्होंने आजीवन भगवद्भक्ति के अमृतसागर में अवगाहन कर बड़े प्रेम से श्रीराधाकृष्ण के लीला-चिंतन का व्रत-अनुष्ठान किया। अपनी सरस रचनाओं में सर्वत्र उन्होंने कृष्ण की लीला का अनुभव चित्रित किया है। महात्मा जीव गोस्वामी का नाम भक्ति-साहित्य के इतिहास में अमर है।

रचना

माधवमहोत्सव, गोपाल-चम्पू, हरिनामामृत व्याकरण, षट्सन्दर्भ आदि जीव गोस्वामी की प्रसिद्ध रचनाये हैं। उन्होंने भक्तिसिद्धान्त, गोविन्दविरुदावली उपदेशामृत ग्रन्थ भी लिखे।

वाणी

शृण्वन्ति जिघ्रन्ति विलोकयन्ति
स्पृशन्ति कृष्णं व्रजवासि जीवाः।
अहो चिरात्प्राप्तममुं त एके।
लिहन्त्यपि प्रत्यहमूढ तृष्णाः।

श्री कृष्ण के विलम्ब से आने पर व्रजवासी उनके रूप, रस, स्पर्श और गन्ध आदि से धन्य हो जाते हैं। वे बड़े ध्यान से उनकी बातें सुनते हैं, उन्हें देखते हैं, सूंघते हैं, छूते हैं और बड़ी तृष्णा से उनको चाटते हैं – उनकी कान्ति से तृप्त होते हैं। —गोपालचम्पू

अरुणितलघुशाटीखण्डकम्राधराङ्गी
श्रवणगलवरन्ध्रप्रोतसुस्पर्शसूत्रा।
रजसि निज सखीभिः क्रीडया लोलनेत्रा
मधुरिपुरतिवीजश्रीनिभाभाति राधा। —गोपालचम्पू

लाल रंग की साड़ी पहन कर तथा श्रवण देश में सूत्र धारण कर मधुसूदन की रतिवीज श्री राधा अपनी सखियों के साथ धूलि में लीला करती हुई शोभित हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्त गदाधर भट्ट

इतने गुन जामें सो सन्त।
श्रीभागवत मध्य जस गावत श्रीमुख कमलाकन्त ।।
हरिकौ भजन, साधु की सेवा, सर्व भूत पर दाया।
हिंसा लोभ, दंभ छल त्यागे, विष सम देखे माया।।
सहनसील, आसय उदार अति, धीरज सहित विवेकी।
सत्यवचन सबकों सुखदायक, गहि अनन्यव्रत एकी ।।
इन्द्रीजित, अभिमान न जाके, करे जगत को पावन।
'भगवतरसिक' तासु की संगति तीनहुँ ताप नसावन।

—महात्मा भगवतरसिक

सन्त गदाधर भट्ट भगवान श्रीकृष्णचन्द्र के अनन्य प्रेमी थे, उच्च कोटि के रसिक भगवद्भक्त थे। वे महात्मा जीव गोस्वामी के समकालीन थे तथा गौड़ीय कृष्णभक्ति-पद्धति से अमित प्रभावित थे। उनके जीवनकाल में दिल्ली की राजसत्ता अकबर के हाथ में थी, देश में राजनैतिक उदारता और धार्मिक सहिष्णुता का वातावरण अत्यन्त लाभप्रद और सुखद था। भक्ति अपनी पूर्ण प्रगति पर थी। निर्गुण सन्तों द्वारा प्रतिपादित कर्ममूलक ज्ञानाश्रयी शाखा के रूपान्तरण ने पुरुषोत्तम क्षेत्र, पण्ढरपुर, अयोध्या और वृन्दावन में गौड़ीय, वारकरी रामानन्दी तथा निम्बार्क और वल्लभ सम्प्रदाय के भक्त तथा सन्त वैष्णवों द्वारा सगुण लीला-चिन्तन का रसास्वादन किया। मध्यकालीन सगुण लीला-चिन्तन के क्षेत्र में संत गदाधर भट्ट को एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। वे भगवान श्यामसुन्दर के श्याम रंग के सागर में निमग्न थे। मोरमुकुट नन्दनन्दन की व्रज-माधुरी के चरण देश में जीव गोस्वामी ऐसे विद्वान सन्त को साक्षी बना कर उन्होंने पूर्ण रूप से आत्म समर्पण कर दिया। निस्सन्देह व्रजरस—भगवान की

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लीला का सुख परम सौभाग्य और अपार पुण्यों के उदयस्वरूप ही समझ में आता है तो आ जाता है। गदाधर भट्ट के भागवत लीला-चिन्तन में राधा-कृष्ण का सरस सौन्दर्य अभिव्यक्त मिलता है। गदाधर भट्ट दाक्षिणात्य ब्राह्मण थे। वे सीधे-सादे स्वभाव के गृहस्थ थे। भगवान की लीलाओं का चिन्तन करते थे तथा श्रीमद्भागवत का पारायण उनके दैनिक जीवन का एक कार्यक्रम था। वे श्रीकृष्ण की लीला के पद रच कर अपने आराध्यदेव को रिझाया करते थे। लोकमात्र के प्रति हृदय में सद्भावना थी। प्राणीमात्र को भगवान का स्वरूप मानकर सब को यथोचित आदर प्रदान करते थे। गृहस्थाश्रम उनके लिये संन्यासाश्रम था, वे गृहस्थ के वेष में एक महान रसिक सन्त ही थे। उनके पद लोग बड़े प्रेम से वृन्दावन तथा तीर्थ-क्षेत्रों में गाया करते थे।

एक दिन गौड़ीय सम्प्रदाय के महात्मा, रूप-सनातन के वंशज तथा चैतन्य-चरणारविन्द-मकरन्द-मधुप जीव गोस्वामी ने वृन्दावन में उनका पद सुना, कोई प्रेमी भक्त सरस कंठ से गा रहा था:

सखी, हौं स्याम रंग रंगी।
देखि विकाइ गई वह मूरति सूरति माँहि पगी॥
संग हुतौ अपनौ सपनौ-सो सोइ रही रस खोइ।
जागेहुँ आगें दृष्टि परै सखि नेकु न न्यारो होइ॥
एक जु मेरी अँखियन में निसिद्योस रह्यो करि भौन।
गाय चरावन जात सुन्यो सखि! सो धों कन्हैया कौन॥
कासों कहौं कौन पतियावे, कौन करे बकवाद।
कैसे के कहि जात 'गदाधर' गूँगे को गुड़ स्वाद॥

महात्मा जीव गोस्वामी के नयनों में श्यामरंग में रंगे पदरचयिता की मूर्ति थिरक उठी, परकीया-रस के महान भागवत सन्त की दृष्टि गदाधर को खोजने लगी। वे उनसे मिलने के लिये आकुल हो उठे। उन्होंने अपने दो शिष्यों को गदाधर जी को बुलाने के लिये भेजा और एक पत्र दिया।.....शिष्य दूसरे दिन प्रातःकाल गदाधर जी के ग्राम में पहुँच गये। उन्होंने गदाधर जी से ही उनके घर का पता पूछा और बतलाया कि हम लोग वृन्दावन से आ रहे हैं। गदाधर जी दौंतौन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कर रहे थे। वे वृन्दावन का नाम सुनते ही आनन्दमग्न हो गये। भगवान श्यामसुन्दर की रसराजधानी में भी उनकी पहुँच है – यह जान कर वे आत्मविभोर थे। उन्होंने दोनों सन्तों की चरण-धूलि सिर पर चढ़ा ली और कहा कि आप के आगमन से मैं कृतार्थ हो गया। सन्तों ने उनके हाथ में जीव गोस्वामी का पत्र रख दिया: जीव गोस्वामी ने स्मरण किया है – यह जान कर तो वे प्रेमविह्वल हो गये; उनका कंठ अवरुद्ध हो गया। नयनों से अश्रु-प्रवाह चलने लगा; पत्र में लिखा था:

अनाराध्य राधापदाम्भोजयुग्म-
मनाश्रित्य वृन्दाटवीं तद् पदाङ्कम्।
असंभाष्य तद् भाव गम्भीर चित्तान्
कुतः श्यामसिन्धोः रसस्यावगाहः।

पद पढ़ते ही उनका मन वृन्दावन और जीव गोस्वामी के दर्शन के लिये लालायित हो उठा।

सन्त गदाधर भट्ट ने अपनी सम्पत्ति का दीन-दुखियों में वितरण कर दिया। वे श्याम के रंग में पूर्ण रूप से रंगे जाने के लिये जीव गोस्वामी से मिलने वृन्दावन चल पड़े। गृहस्थी का मोह-बन्धन टूट गया। उन्होंने अपने आराध्य नन्दनन्दन की लीला-भूमि में जीव गोस्वामी के चरणों का आश्रय लिया। जीव गोस्वामी ने उनकी कृष्णभक्ति और श्याम रंगमयता की सराहना की।.....गदाधर भट्ट उनके साथ वृन्दावन में ही रह कर भगवान की लीला का चिन्तन करने लगे और पद रचने लगे। जीव गोस्वामी की कृपा से उन्होंने भक्तिशास्त्र का गम्भीर अध्ययन किया। वे श्रीमद्भागवत की कथा से सन्तों और भक्तों का मनोरञ्जन करने लगे। उनकी कथा में विशाल जनसमूह भागवतरस का आस्वादन करने लगा। गदाधर भट्ट समस्त चराचर को अपने श्यामसुंदर का श्रीविग्रह समझते थे। उनकी समस्त जड़चेतन में भगवद्बुद्धि थी। उन्हें भगवान की लीला-कथा सुनाने में बड़ा आनन्द मिलता था। उनकी भागवत कथा में धनी गरीब सब आते थे। वृन्दावन से थोड़ी ही दूर पर धौरहरा ग्राम के निवासी कल्याण सिंह उनकी कथा के बड़े प्रेमी थे। वे नित्य नियम

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

से उनकी कथा में आते थे। एक दिन उनकी पत्नी ने भट्ट जी को कलंकित करने के लिये एक स्त्री भेजी, वह समझती थी कि स्त्री द्वारा भट्ट जी के कलंकित होने पर उसके पति कथा में जाना बन्द कर देंगे और गदाधर जी के प्रति भी अश्रद्धा करने लगेंगे। स्त्री ने कथा में जाकर भट्टजी से कहा कि आप ने मेरा परित्याग क्यों कर दिया, मैं दो-ही-चार दिनों के बाद मा बनने वाली हूँ। श्रोता यह सुनकर आश्चर्यचकित हो गये, उन्हें ऐसा लगा कि स्त्री किसी के सिखाने-पढ़ाने पर भट्ट जी को कलंकित करने आयी है। वे उसे मारने के लिये तत्पर हो गये। भट्ट जी ने स्त्री का बड़े प्रेम से स्वागत किया। उन्होंने कहा कि आप इतने दिनों तक कहाँ रह गयीं, मैं तो आप की राह देखते-देखते पत्थर-सा हो गया। आप ने मुझ पर बड़ी कृपा की जो इस प्रकार सेवा करने का अवसर प्रदान किया। गदाधर ने स्त्री में अपने श्यामसुन्दर का दर्शन किया, उनके लिये तो वह साक्षात् भगवत्रूप ही थी। स्त्री को अपनी करनी पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ, उसने सारा रहस्य प्रकट कर दिया। कल्याण सिंह ने अपनी पत्नी को मार डालने के लिये तलवार खींच ली। भट्ट जी ने उनको ऐसा करने से रोका और संसार की नश्वरता का रूप समझाया। इस प्रकार कठिन परीक्षा के अवसर पर उन्होंने धैर्य और विवेक से काम लिया।

गदाधर भट्ट दूसरों के दोषों में सद्गुण की खोज किया करते थे। उनकी भागवत कथा में वृन्दावन के प्रायः सभी लोग सम्मिलित हुआ करते थे। एक दिन उनकी कथा में एक वैष्णव महन्त आये। भट्जी ने उनका स्वागत-सत्कार कर आदरपूर्वक बैठाया। कथा आरम्भ होते ही भगवद्गुणानुवाद से लोगों के नयनों से प्रेमाश्रु उमड़ने लगे। महन्त को अपने नयनों में प्रेमाश्रु का अभाव देख कर बड़ी ग्लानि हुई। दूसरे दिन वे अँचले में लाल मिर्च की बुकनी लगा कर आये, बार-बार उसे कथा के मध्य में आँखों से लगा लिया करते थे; दूसरों की तरह उनके नयनों से भी अश्रु उमड़ने लगा। कथा समाप्त होने पर भट्ट जी से एक आदमी ने यह बात कही तो वे तुरन्त महन्त के निवास-स्थान पर पहुँच गये। उन्होंने महन्त को दण्डवत

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रणाम किया और कहा कि आप निस्सन्देह परम वैष्णव हैं, आप ने भगवान की कथा में अश्रु न बहाने वाले नयनों को दण्ड देकर अपना भगवत्प्रेम चरितार्थ कर दिया। महन्त को उन्होंने आलिंगनवद्ध कर लिया। उनकी कृपा से वैष्णव महन्त में भक्ति के दिव्य संस्कार जाग उठे।

सन्त का परम धन सत्य होता है। सन्त के प्रत्येक कार्य, चिंतन और आचरण में सत्य का ही पूरा-पूरा समावेश रहता है। सन्त गदाधर के परम धन भगवान श्रीकृष्ण थे, उन्होंने सत्य को अपनी सम्पत्ति के रूप में स्वीकार किया था। भगवान अपने भक्तों की कड़ी परीक्षा लिया करते हैं। एक दिन गदाधर जी की कुटी में चोर चोरी करने आया। उसने सारा सामान एक गठरी में बाँध लिया; वह भारी थी; उठ नहीं सकी। गदाधर जी चोरी से तनिक भी उद्विग्न न हुए। वे चोर को देख रहे थे। उनका हृदय उसके प्रति दया से द्रवित हो गया। वे उठ कर गठरी उसके सिर पर रखने लगे। सन्त के स्पर्श से चोर में परिवर्तन हुआ। वह आश्चर्यचकित हो गया कि मैं तो इनके घर में चोरी करने आया हूँ और ये मुझे इस प्रकार सहायता दे रहे हैं, हो-न-हो, ये कोई बहुत बड़े महात्मा हैं। उसने नाम पूछा, उन्होंने सहज भाव से अपना नाम बता दिया। नाम सुनते ही चोर उनके चरणों पर गिर पड़ा और कहा कि मेरे ऐसे पापी को भी भव-सागर से पार होने का मार्ग बताइये, मैं महापापी हूँ, अधम और अपराधी हूँ। चोर उनकी कृपा से भगवद्भक्त हो गया। चन्दन ने कुठार में अपनी गन्ध फैला दी।

संत गदाधर की भगवन्निष्ठा उच्च कोटि की थी। वे सदा भगवद्विग्रह की सेवा पूजा में ही लगे रहते थे। एक बार वे भगवान के राजभोग की व्यवस्था कर रहे थे, अपने हाथ से चौका लगा रहे थे कि शिष्य ने एक श्रद्धालु धनी शिष्य के आने की सूचना दी और निवेदन किया कि आप हाथ धो लें मैं चौका लगा दूंगा। गदाधर जी ने अत्यन्त शान्त हो कर कहा कि भगवान के दास्य और परिचर्या को छोड़ कर मैं धनी शिष्य के आगमन से प्रभावित होकर हाथ धो लूं-यह तो असम्भव है। आने वाला आयेगा और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चला जायेगा पर भगवान की सेवा का अवसर फिर नहीं मिलेगा। वे भगवत्सेवा में लगे रहे। शिष्य ने उनसे भगवत्सेवा का मर्म समझा। उनका आचरण भक्तिरस से परिपूर्ण था।

वे गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के सिद्धान्तों के अनुरूप आजीवन ललित पदों की रचना और भगवद्विग्रह की सेवा करते रहे। यही उनकी साधना का अथवा उपासना का रूप है। उनके पदों में अनुपम भगवत्प्रेम, उत्कृष्ट त्याग और विशिष्ट वैराग्य की अनुभूति का दर्शन होता है। उन्होंने कृष्णभक्ति की काव्य-व्याख्या की। उन्होंने निगमागम की पहुँच से परे परम भागवत स्वरूप का निरूपण किया : उनकी उक्ति है

'बरनों कहा जथामति मेरी, वेदहु पार न पावे हो।
भट्ट 'गदाधर' प्रभु की महिमा, गावत ही उर आवे हो।'

वे लीला-गायक सन्त और उपासक थे। वे सदा भगवान कृष्ण और उनकी सौन्दर्य-निधि राधा-रानी की उपासना में दृढ़ निष्ठा से तल्लीन रहते थे। भगवान कृष्ण के वात्सल्य और मधुर रस का समीचीन विवरण उनकी रचनाओं का प्राण है। उनकी वर्णनशैली प्राणमयी और भागवतरस से सर्वथा परिपूर्ण है।

रागानुगाभक्ति की अनुभूति के मूर्तिमान प्रतीक थे भट्ट गदाधर। एक पद में उन्होंने बड़ी सजीवता से यशोदा के दधि-मन्थन का काव्य-चित्र उरेहा है : उनकी वाणी में यशोदा मूर्तिमती हो उठी हैं :

'दधि मथत नन्दनरिंद रानी, करति सुतगुन-गान।
नील नीरद अंग दिव्य दुकूल वर परिधान॥
केस कुसुमनि किरनिमनि ताटंक झलकत कान।
स्वेद-कन गन वदन विधु पर सुधा विन्दु समान॥
नेत करषत हरष वरषत वलय-किंकिन-क्वान।
पय पयोधर स्रवत चातक कृष्ण सिवत निदान॥
सहस आनन कहि सकै नहिं जासु भाग्य बखान।
जगतवंद्य गोविन्द माता 'गदाधर' करि ध्यान॥'

उन्होंने कृष्ण की बाल्यलीला, निकुंजकेलि आदि का समान रूप से अनुभव कर बखान किया है। सन्त गदाधर ने कृष्ण-तत्व की

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दिव्यता का पूर्ण रूप से मर्म समझा था। राधा-रसाकृति परम ब्रह्मानन्द-वृत्ति के वर्णन में भी मध्यकालीन रसिक सन्तों की श्रेणी में उन्हें गौरव-पूर्ण स्थान प्राप्त है। भागवत शृंगार के माध्यम से उन्होंने राधाकृष्ण का जो लीला-दर्शन किया वह मध्यकालीन गौड़ीय साहित्य का सौभाग्य प्रतीक है: गदाधर की सरस वाणी ने गाया:

'देखौ प्यारी, कुंजविहारी मूरतिवंत वसंत।
मौरी तरुनि तरनिजा तन में, मनसिज रस बरसंत॥
अरुन अधर, नव पल्लव सोभा, विहसन कुसुम विकास।
फूले विमल कमल से लोचन, सूचत मन उल्लास॥
चलि चूरन कुन्तल अलि माला, मुरली कोकिल नाद।
देखत गोपी जन बनराई, मदन मुदित उनमाद॥
सहज सुबास स्वास मलयानिल, लागत परम सुहायौ।
श्रीराधा-माधवी 'गदाधर' प्रभु परसत सचु पायौ॥'

उन्होंने प्रकृति की दिव्यता में राधाकृष्ण की लीला का चित्रण किया। भागवतरस के रंगमंच पर भक्त कवि गदाधर ने प्रकृति का दिव्यीकरण किया। गदाधर भट्ट ने राधाकृष्ण के लीलाचिंतन को ही जीवन का परम धर्म स्वीकार किया। भगवान श्रीकृष्ण की मंगलमयी कथा के प्रति अनुरक्ति ही उनकी भगवद्भक्ति का स्वरूप है। उन्होंने अघों का संहार करने वाली, अधर्मों-पापियों को भवसागर से पार उतारने वाली, कलि-काल से तारने वाली, अमित मंगलमयी, प्रेम-रस का दान करने वाली और अनपायिनी भक्तिमयी श्रीकृष्ण की कथा का चिंतन किया। उन्होंने वेद-पुराणसम्मत भागवत कथा में ही परमोत्तम श्रेय स्थिर किया। सन्त गदाधर ने अपने सम-कालीन साहित्य में भक्तिमूलक क्रान्ति की; कहा कि हरि की कथा परम पद सोपान है, इसे छोड़ कर किसी और विषय में समय लगाना अहितकर है। उन्होंने वृन्दावन में ही जीवन-लीला समाप्त की। वे वैष्णव सन्त थे।

रचना

श्री राधाकृष्ण के लीला सम्बन्धी अनेक पदों की गदाधर भट्ट ने रचना की; वे उपलब्ध हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पद

नमो नमो जय श्रीगोविन्द।
आनन्दमय व्रज सरससरोवर, प्रगटित विमल नील अरविंद।
जसुमति-नीर-नेह नित पोषित, नवनव ललित लाड़ सुखकंद
व्रजपति-तरनि-प्रताप प्रफुल्लित, प्रसरित सुजस सुवास अमंद॥
सहचरि-जाल-मराल संग रंग, रसभरि नित खेलत सानन्द।
अलि गोपीजन नैन 'गदाधर' सादर पिवत रूप-मकरन्द॥

हरि हरि हरि हरि रट रसना मम।
पीवति खाति रहति निधरक भई, होत कहा तोको स्रम॥
तैं तो सुनी कथा नहिंमों-से, उधरे अमित महाधम।
ग्यान-ध्यान-जप-तप-तीरथ-व्रत, जोग जाग बिनुसंजम॥
हेमहरन, द्विजद्रोह मानमद, अरु परगुरु-दारागम।
नाम प्रताप प्रवल पावक में होत भसम अघ अमित सलभ सम॥
इहि कलि-काल कराल-व्याल विष-ज्वाल विषम मोये हम।
विनु इहि मंत्र गदाधर कौ क्यों, मिटिहै मोह महातम॥

जयति श्रीराधिके सकल सुखसाधिके
तरुनिमनि-नित्य नवतन किसोरी।
कृष्ण तनु लीन मनरूप की चातकी,
कृष्णमुख-हिम-किरिन की चकोरी॥
कृष्ण-दृग-भृंग-विश्राम हित पद्मिनी,
कृष्ण-दृग-मृगज बन्धन सुडोरी।
कृष्ण-अनुराग-मकरन्द की मधुकरी
कृष्ण गुन-गान रससिंधु-बोरी॥
विमुख परचित ते चित जाकौ सदा,
करत निज नाह की चित चोरी।
प्रकृति यह 'गदाधर' कहत कैसे बने,
अमित महिमा, इतै बुद्धि थोरी॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अघ संहारिनी, अधम उधारिनी,
कलिकाल तारिनी, मधुमथन-गुन-कथा,
मंगल विधायिनी, प्रेमरस दायिनी
भक्ति अनपायिनी होइ जिय सर्वथा।
मथि वेद मथि ग्रन्थ कथि व्यासादि;
अजहुँ आधुनिक तन कहत हैं मति जथा,
परम पद सोपान करि 'गदाधर' पान
आन अलाप ते जात जीवन वृथा॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महात्मा नाभादास

जाको जो स्वरूप सो अनूप लै दिखाय दियो,
कियो यों कवित्त पंटमिही मध्य लाल है।
गुण पै अपार साधु कहै अंक चार ही में
अर्थ विस्तार कविराज टकसाल है॥
सुनि सन्तसभा झूमि रही अलि श्रेणी
मानो घूमि रही कहै यह कहा धौं रसाल है।
सुने हे अगर अब जाने मैं अगर सही,
चोवा भये नाभा सो सुगन्ध भक्तभाल है।

—प्रियादास

महात्मा नाभादास भगवान्, भक्त और सन्त के लीलाचरित्र, भक्ति और साधना के बहुत बड़े मध्यकालीन साहित्यकार थे। उनकी साहित्य-कारिता भगवद्भक्ति रूपी प्राण-संजीवनी से सम्पन्न हो उठी। उन्होंने अपने परम प्रसिद्ध भक्तभाल ग्रन्थ में सत्युग, त्रेता, द्वापर और कलियुग के भक्तों, सन्तों और महात्माओं का बड़ी श्रद्धा से, बड़ी भक्ति और अनुरक्ति से चरित्रांकन किया। वे सन्त शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन थे। भक्ति का इतिहास साक्षी है कि सोलहवीं और सत्रहवीं सदी का मध्यकालीन भारत सगुण भक्ति के स्वर्णयुग से सर्वथा सम्पन्न स्वीकार किया जा सकता है। उस समय नाभादास ऐसे परम भागवत महात्मा की उपस्थिति एक बहुत बड़ी ऐतिहासिक आवश्यकता थी। नाभादास भक्तिशास्त्र के आचार्य थे, बहुत बड़ी भागवती शक्ति के रूप में पृथ्वी पर उनका अवतरण हुआ। किसी युग के विशेष पुण्योदय के फलस्वरूप ऐसे महान आत्मा का धरती पर दर्शन मिलता है। उनका 'भक्तमाल' भक्ति-साहित्य का अविस्मरणीय इतिहास है। उनका 'भक्तमाल' मानवता के लिये मुक्ति, भक्ति और संसार के प्रति पूर्ण अनासक्ति-विरक्ति का चिन्मय वाङ्मय है; भागवती शक्ति की विजयिनी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पताका है। उन्होंने भक्तमाल के रूप में भारत को भागवत साम्राज्य का विधान दिया, भक्तमाल उनकी बहुत बड़ी देन है।

जिस सीमा तक नाभादास जी के जन्मस्थान की ऐतिहासिकता का सम्बन्ध है उसके स्तर पर प्रियादास और मराठी भक्तमाल भक्तविजय ग्रन्थ के रचयिता सन्त महीपति की उक्तियों का आधार लेना पड़ता है। महीपति ने 'भक्तविजय' में स्वीकार किया है कि नाभादास ग्वालियर के रहने वाले नागर ब्राह्मण थे और उनके भक्तमाल ग्रंथ के आधार पर ही मैंने अपने 'भक्तविजय' ग्रन्थ की रचना पूरी की है। भक्तमाल के टीकाकार प्रियादास जी ने उनको दक्षिण के तैलंग प्रान्त—गोदावरी के रामभद्राचल का निवासी और हनुमान वंशीय ब्राह्मण माना है। नाभादास के जन्म, बचपन और पालन-पोषण के सम्बन्ध में प्रियादास ने भक्तमाल की टीका में अलौकिक और चमत्कारपूर्ण कथाओं का उल्लेख किया है। नाभादास ने विक्रमीय सत्रहवीं सदी को अपनी उपस्थिति से धन्य किया।

नाभादास जिस समय पांच साल के थे, उस समय गोदावरी के प्रदेश में भीषण अकाल पड़ा। लोग दाने-दाने के लिये तड़पने लगे। भूख से उनके प्राण छटपटाने लगे। हरे-भरे खेत, वृक्ष तथा सरोवर आदि सूख गये थे। उन्हें देखने पर ऐसा लगता था मानो वे अकाल के कंकाल हैं। पशु-पक्षी तथा असंख्य जीव संत्रस्त थे। ऐसी स्थिति में एक दिन कृष्णदास पयहारी के शिष्य सन्त कील्हदास और अग्रदास तैलंग प्रान्त का परिभ्रमण कर रहे थे। वे राम-नाम के उच्चारण से वनप्रान्त को सरसता और जीवन प्रदान कर रहे थे; प्रचण्ड मार्तण्ड अपने पूर्ण यौवन पर था; दोपहर का समय था। उन्होंने वन में एक घने वृक्ष की शीतल छाया में अल्पवयस्क बालक को रोते देखा। मा ने भूख की ज्वाला से संत्रस्त होकर बालक को वन में छोड़ दिया था। महात्मा अग्रदास ने बालक को अपनी गोद में बैठा लिया, मुख पर जल छिड़का। बालक ने चेतना प्राप्त की। शिशु को जन्मान्ध देख कर अग्रदास का नवनीत के समान हृदय दया से द्रवित हो उठा, उन्होंने पानी छिड़का। बालक के नेत्र खुल गये। दोनों महात्माओं की कृपा से असहाय शिशु ने स्वास्थ्यलाभ किया। अग्रदास के परिचय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पूछने पर बालक ने कहा कि मैं पाँचतत्व के विनश्वर देह का परिचय दूं या आत्मा के सम्बन्ध में बात करूँ। दोनों महात्मा इस कथन से आश्चर्यचकित हो गये। उन्होंने बालक का नाम नारायणदास रखा। नारायणदास ही नाभा जी थे। अग्रदास ने नाभा जी को राममंत्र की दीक्षा दी। अपनी तपोभूमि जयपुर राज्य में स्थित गलता में लाकर उन्होंने नाभादास को सन्तों की सेवा का पवित्र कार्य सौंपा। नाभादास को सन्तों का चरण धोने और उच्छिष्ट पत्तल उठाने का काम मिला। सन्तों के चरणामृत-पान से उनका मन निर्मल हो गया; सेवा से उनकी बुद्धि में भगवद्भक्ति के दिव्य संस्कारों का उदय हुआ। नाभादास की गुरुनिष्ठा उच्च कोटि की थी। वे सदा महात्मा अग्रदास की प्रसन्नता के अनुकूल अपने कर्मों को पूरा करते रहते थे। उन्होंने अपने भक्तमाल ग्रन्थ में गुरु की बड़ी महिमा गायी है।

एक बार महात्मा अग्रदास मानसपूजा में थे। उन्होंने पूजा के समय ही देखा कि उनके एक व्यापारी शिष्य का जहाज समुद्र में डूब रहा है, माल नष्ट हो जाने वाला है, व्यापारी ने उनकी कृपा की शरण ली है। वे पूजा में ही चिंतित हो उठे। इधर महात्मा नाभादासन अपनी दृढ़ गुरुनिष्ठा के कारण अन्तर्प्रेरणा से यह बात जान ली। उन्होंने विचार किया कि इस घटना से गुरु की मानसिक भगवत्पूजा में विघ्न उपस्थित होना चाहता है। इसलिये अपने आराध्य देव भगवान राम से प्रार्थना की कि व्यापारी का जहाज विनष्ट न हो। भगवान की कृपा से उनकी प्रार्थना सफल हो गयी। उन्होंने अन्तर्दृष्टि से देखा कि व्यापारी का जहाज सुरक्षित है; समुद्र शान्त है तथा व्यापारी निश्चित है। उन्होंने महात्मा अग्रदास से सारी बातें कह दीं और प्रार्थना की कि आप अपनी मानसिक पूजा निर्विघ्न समाप्त करें। सन्त अग्रदास नाभादास की गुरुनिष्ठा से बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने सोचा कि जो व्यक्ति एक व्यापारी के जहाज को सागर में विनष्ट होने तथा डूबने से बचा सकता है, निस्सँदेह वह असंख्य प्राणियों को भवसागर पार उतारने में समर्थ है। उन्होंने नाभादास को भगवद्भक्तों और सन्त महात्माओं का चरित्र लिखने की आज्ञा दी। नाभा जी ने गुरु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के चरणों पर विनत होकर कहा कि यह कार्य तो गुरुतम है, मुझे आपके चरण-चिंतन और सन्तों की सेवा में परमानन्द की रसानुभूति होती है। अग्रदास ने उनकी पवित्र भावना की सराहना की पर भक्तमाल की रचना को ही उनके जीवन का श्रेय स्थिर किया। नाभादास ने उनकी कृपा से भक्तमाल की रचना की। उनकी भक्तमाल में उक्ति है :

'अग्रदेव आज्ञा दई, भक्तन को जस गाउ।
भवसागर के तरन को, नाहिन और उपाउ॥'

उन्होंने भवसागर के लिये भक्तमाल के रूप में भक्ति की नौका प्रस्तुत की। भक्ति ने उनको अपने राज्य का नागरिक स्वीकार किया। धीरे-धीरे उनकी प्रसिद्धि बढ़ने लगी। अयोध्या, काशी, जगन्नाथपुरी और वृन्दावन आदि तीर्थस्थानों में उनके नाम की चर्चा होने लगी। नाभादास के हृदय में सन्तों के प्रति सहज अनुराग था। वे सन्तों के दर्शन के लिये समय-समय पर तीर्थयात्रा में जाया करते थे। एक बार वे सन्तशिरोमणि तुलसीदास से मिलने काशी गये। उस समय तुलसीदास जी भगवान के ध्यान में संलग्न थे। नाभादास को उनका दर्शन न हो सका। नाभादास उन दिनों व्रज में ही रहते थे, वे वृन्दावन चले आये। जब तुलसीदास जी महाराज को इस घटना का पता चला, वे बहुत क्षुब्ध हो उठे। नाभा जी से मिलने वे स्वयं वृन्दावन के लिये चल पड़े। नाभादास जी उच्च कोटि के सन्त-पारखी थे। उन्होंने जानबूझ कर तुलसीदास के आगमन की उपेक्षा कर दी। उस समय सन्तों का भण्डारा चल रहा था। खीर परोसने के लिये पात्र नहीं था। गोस्वामी तुलसीदास जी ने एक सन्त की पनही (जूता) उठा कर कहा कि इससे उत्तम पात्र दूसरा क्या हो सकता है। नाभा जी का मन आनन्द से प्रफुल्लित हो उठा, उन्होंने तुलसीदास जी को गले लगा लिया। दोनों सन्तों के मिलने का दृश्य अपूर्व, अलौकिक और परम मंगलमय था। महात्मा नाभादास ने तुलसीदास से कहा कि हे सन्त सम्राट, हे अभिनव वाल्मीकि, हे राघवेन्द्र-पदारविन्द-मकरन्द के मधुप-अधिराज, आज मेरे नेत्र सफल हो गये, आज मेरी सन्त-सेवा साकार हो उठी, मुझे आप के रूप में भगवान् ने भक्तमाल का सुमेरु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रदान कर दिया। नाभादास ने उनको आलिंगनबद्ध कर लिया, भक्त और भक्ति एकाकार हो गये। नाभादास ने भक्तमाल के माध्यम से विभिन्न भक्ति-पद्धतियों, मतों और भागवतधर्म का समन्वय कर साहित्य का दिव्यीकरण किया। उन्होंने अपने गुरु अग्रदास की कृपा से तत्कालीन प्रचलित भक्ति-पद्धतियों पर प्रकाश डाला। उन्होंने समस्त भागवत सम्प्रदाय के सद्सिद्धान्तों का अपने भक्तमाल में मण्डन किया। भक्तमाल में भगवत्ता ही अभिव्यक्त है। नाभादास ने हरि और हरि के दासों का परम पवित्र चरित्र गाया। उन्होंने भगवान् को ही परमाराध्य ठहराया। भक्तमाल में उनका कथन है :

'कविजन करत विचार बड़ो कोउ ताहि भनिज्जै।
कोउ कह अवनी वड़ी, जगत आधार फनिज्जै॥
सो धारीसिर सेस, सेस सिव भूषन कीनो।
सिव आसन कैलास भुजा भरि रावन लीनो॥
रावन जीत्यो वालि पुनि वालि राम इक सर दँडे।
अगर कहै त्रैलोक में हरि उर धारैं ते बड़े॥'

उन्होंने अग्रदास की सीख के अनुसार कहा कि जो लोग अपने हृदय में भगवान को धारण करते हैं वे ही स्तुत्य हैं, उन्हीं का गुणगान करना चाहिये। उन्होंने 'भक्तमाल' के उपसंहार में स्वीकार किया है कि जिन लोगों ने हरिदासों का गुणानुवाद किया है मैंने उनकी कृति के उच्छिष्ट रूप में 'भक्तमाल' प्रस्तुत किया है। नाभा जी ने कहा कि भगवान के दास मंगलरूप हैं, सन्तों ने श्रुति-पुराण और इतिहास आदि का मन्थन कर निश्चय किया है – निर्णय किया है कि भजने के योग्य हरि या हरिदास ही हैं। भक्तों का गुण-गान करने से भगवान् की असंदिग्ध रूप से प्राप्ति होती है– ऐसा उनका दृढ़ मत था। नाभा जी ने आजीवन भगवान का चिन्तन कर तथा भक्तों का गुणगान कर साकेत धाम की यात्रा की; वे परम भागवत सन्त थे।

रचना

नाभादास की अत्यन्त प्रसिद्ध रचना 'भक्तमाल' है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वाणी

भक्त भक्ति भगवन्त गुरु चतुर नाम वपु एक।
इनके पद वन्दन किये नासत विघ्न अनेक॥
मंगल आदिविचारि रहि वस्तु न और अनूप।
हरिजन को जस गावते हरिजन मंगल रूप॥
संतन निरनै कियो मथि श्रुति पुरान इतिहास।
भजिबे को दोई सुघर कै हरि कै हरिदास॥

× × × ×

भक्त जिते भूलोक में कथे कौन पै जायँ।
समुँद पान श्रद्धा करै कहँ चिरि पेट समायँ॥

× × × ×

चारि जुगन में भगत जे तिनके पद की धूरि।
सर्वसु सिर धरि राखिहौं मेरी जीवन मूरि॥

× × × ×

हरि प्रापति की आस है तौ हरिजन गुन गाव।
नतरु सुकृत भुँजे बीज ज्यों जनम-जनम पछिताव॥

× × × ×

अग्रदेव आज्ञा दई भक्तन को जस गाउ।
भवसागर के तरन को नाहिन और उपाउ॥

—'भक्तमाल'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महात्मा एकनाथ

हो का वर्णमाजी अग्रगणी। जो विमुख हरिचरणीं।
त्याहुनि श्वपच श्रेष्ठ मानी। जो भगवद्भजनीं प्रेमळ॥
—कोई सब वर्णोंमें श्रेष्ठ हो और हरि के चरणों से विमुख हो तो
उससे वह श्रेष्ठ है जो भगवान के भजन का प्रेमी है।

—'नाथ भागवत':५।६०

महात्मा एकनाथ ज्ञानी सन्त थे, भगवद्रस के परम मर्मज्ञ थे। वे गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन थे; उनके मराठी संस्करण थे। दोनों की भगवद्प्रियता, तथा जीवन के क्रम आदि में बहुत-कुछ अंशों में समानता पायी जाती है। उन्होंने तुलसीदास जी की ही तरह अपनी भक्ति और भगवद्चरित्र का गान नाना पुराण निगमागम सम्मत रामकथा तथा कृष्णकथा के आधार पर किया। जिस समय वे दक्षिण काशी—पैठण में निर्गुण-सगुण ब्रह्म-चिन्तन का साहित्य प्रस्तुत कर रहे थे उस समय दिल्ली के सिंहासन पर अकबर का आधिपत्य था। निस्संदेह महात्मा एकनाथ विक्रम की सत्रहवीं सदी के भारत की महान आध्यात्मिक शक्ति थे। उन्होंने ज्ञान और कर्मकाण्ड से महत्वपूर्ण भक्ति को ही अधिकाधिक श्रेयस्कर स्वीकार किया। मध्य-कालीन भक्तिमूलक आध्यात्मिक क्रान्ति के नेताओं में से वे एक थे। उनकी महत्ता पर प्रकाश डालते हुए मराठी साहित्य के तुलसीदास महाकवि मोरोपन्त ने स्वीकार किया है कि, एकनाथ महाराज ने रामायण और भागवत पर विस्तार सहित ग्रन्थ लिखें; यदि वे दया-निधि ऐसा न करते तो जड़ जीव किस प्रकार तरते। एकनाथ महाराज का जीवन-चरित्र लिखने वालों में सन्त महीपति और केशवबुवा के नाम अग्रगण्य हैं। महीपति ने अपने 'भक्तविजय' 'भक्तलीलामृत' ग्रन्थ में एकनाथ के चरित्र का विस्तार से वर्णन किया है। एकनाथ महाराज

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ने अपनी भक्ति से मराठी साहित्य को भगवद्रस का दान दिया। ज्ञानेश्वर मराठी साहित्य के आत्मा थे तो एकनाथ निस्सन्देह प्राण थे।

एकनाथ महाराज का जन्म परम भागवत ब्राह्मण कुल में हुआ था। उनके पूर्वज उच्च कोटि के भगवद्भक्त और वैष्णव थे। एकनाथ के प्रपितामह भक्त भानुदास थे। वे दामाजीपन्त के समकालीन थे। वे पण्ढरीनाथ के रंग में रंगे हुए सन्त थे। प्रत्येक आषाढ़ी और कार्तिकी एकादशी को पण्ढरपुर में विट्ठलदेव का दर्शन करने जाया करते थे। एकनाथ महाराज ने अपने 'रुक्मिणी स्वयम्वर' ग्रन्थ में स्वीकार किया है कि मेरा जन्म धन्य वंश में हुआ, इसी से मुझे हरिभक्ति-प्राप्ति हुई और सन्तजन हमारे सम्बन्धी हुए। हमारा वंश श्रीकृष्ण को अर्पित हुआ। निस्सन्देह वह कुल परम पवित्र हो जाता है जिसमें भगवान के भक्त पैदा होते हैं, महात्मा एकनाथ का कुल तो पहले से ही भक्तिपरायण था इसलिये उसमें उनका जन्म होना सोने में सुगन्ध था। एकनाथ महाराज ने अपने भागवत ग्रन्थ के उपोद्घात में परम पूज्य भानुदास का बड़ी श्रद्धा और भक्ति से स्तवन कर अपने कुल की मर्यादा की श्री-वृद्धि की। उनका कथन है कि हम अपने पितामह के पिता भानुदास का वन्दन करते हैं। उनके कारण भगवान को हमारा वंश प्रिय हुआ। उन्होंने बचपन में भानु की सेवा की और उन्हें विट्ठल मूर्ति का दर्शन हुआ।.....मेरा भाग्य धन्य है जो ऐसे वैष्णव कुल में मेरा जन्म हुआ। एकनाथ की भगवद्भक्ति वंशपरंपरागत थी। भानुदास के पुत्र चक्रपाणि थे। चक्रपाणि के पुत्र सूर्यनारायण एकनाथ महाराज के पिता थे, उनकी माता का नाम रुक्मिणी था। सम्वत् १५९० वि. में मूलनक्षत्र में एकनाथ महाराज का जन्म हुआ। जन्म के समय ही उनके पिता का स्वर्गवास हो गया, थोड़े समय के बाद माता ने भी परलोक-गमन किया। एकनाथ के पालन-पोषण का भार उनकी दादी और पितामह चक्रपाणि पर आ पड़ा। दादी ने उन्हें 'एका' के नाम से सम्बोधित करना आरम्भ किया; उनका नाम एकनाथ पड़ गया।

एकनाथ के संस्कार पितामह और पितामही के सम्पर्क में भगवदीय आचरण के अनुकूल थे। चक्रपाणि की देखा-देखी वे नित्य नियम से

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शैशवावस्था में ही भगवच्चिन्तन करते थे, सन्तों और भगवद्कथावाचकों को अमित पूज्य भाव से प्रणाम करते थे। चक्रपाणि को पूजा-पाठ में सहायता देते थे। वे हाथ में वीणा के समान करछुल लेकर तथा छोटे-छोटे पाषाण खण्ड में भगवद्भावना कर आनन्द और प्रेम से कीर्तन करते थे। एक बार उनके पितामह ने उनको इतनी अल्पावस्था में भवन्नामकीर्तन करते देख कर कहा था कि निस्सन्देह एकनाथ भानुदास की हरिपरायणता और भक्तियश का विस्तार पृथ्वी पर करेंगे। छठवें साल की अवस्था में उनका यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न हुआ। अड़ोस-पड़ोस तथा परिवार के लोग एकनाथ को बड़ा प्यार करते थे। नित्य सायंकाल उनके घर पर रामायण अथवा भागवत आदि पुराणों की कथा होती थी। एकनाथ भगवान का यश बड़े ध्यान से सुनते थे। कभी-कभी वे प्रसंग विशेष पर मार्मिक प्रश्न भी पूछ लिया करते थे। इस प्रकार बचपन में ही उनमें सरस तथा मधुर भगवद्-भक्ति के संस्कार परिपुष्ट हुए।

धीरे-धीरे उन्हें गुरु की आवश्यकता प्रतीत हुई जो उनका उचित ढंग से पथ प्रदर्शन कर भगवान की उपासना में उनको लगा देते। एक रात को चौथे पहर के लगभग एक देवालय में बैठ कर वे दिव्योन्माद के राज्य में भगवन्नामकीर्तन कर रहे थे, चारों और भगवद्गुणगान का माधुर्य परिव्याप्त था, ठीक उसी समय आकाशवाणी हुई कि देवगढ़ में जनार्दनपन्त नाम के एक महात्मा रहते हैं, तुम्हें उनसे जाकर दीक्षा लेनी चाहिये। महात्मा एकनाथ ने दो रात तक पैदल चल कर देवगढ़ की यात्रा पूरी की; उन्होंने पन्त का दर्शन किया और उनके शरणागत हो गये। उनकी गुरुनिष्ठा उच्च कोटि की थी, वे सदा पन्त की सुख-सुविधा का पूरा-पूरा ध्यान रखते थे। उन्होंने गुरु की सेवा में किसी भी प्रकार की कमी नहीं आने दी। एक दिन देवगढ़ पर शत्रुओं ने आक्रमण किया, जनार्दन पन्त भगवान के ध्यान में निमग्न थे। एकनाथ महाराज पूजा-गृह के दरवाजे पर खड़े थे, उन्होंने सूचना देने वाले को भीतर नहीं जाने दिया और चार घण्टे तक शत्रुओं का सामना कर उन्हें खदेड़ दिया। ध्यान के बाद जनार्दनपन्त को इस घटना का पता चला। वे एकनाथ के इस आचरण से बहुत प्रसन्न हुए। वे उन पर अधिकाधिक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विश्वास करने लगे। जनार्दन ने उनको हिसाब-किताब का काम सौंप दिया। एक रात को तीन पहर के कठिन परिश्रम के बाद एक पाई की भूल का पता चला, वे आनन्द से उन्मत्त हो उठे। गुरु ने कहा कि एक पाई की भूल से तुम्हें इतना आनन्द हो रहा है, यदि तुम संसार की भूल समझ पाते तो कितने आनन्दित होते। जनार्दनपन्त ने कहा कि भगवान के भजन में ही परमानन्द है। एकनाथ की आँख खुल गयी, वे गुरु के चरण पर नत हो गये, उन्हें वस्तुस्थिति का ज्ञान हो गया। जनार्दनपन्त की प्रसन्नता के फलस्वरूप उन्हें दत्तात्रेय का भी दर्शन हुआ। उन्हें दत्तात्रेय और गुरु में तनिक भी भेद नहीं दीख पड़ता था। उन्हें दत्तात्रेय का प्रायः दर्शन होता रहता था। दत्तात्रेय के प्रति एकनाथ महाराज ने श्रद्धा व्यक्त करते हुए कहा है :

'भीतर-बाहर, चराचर में सर्वत्र दत्त ही विराजमान हैं, उन्होंने मेरा मन हर लिया है, मेरा-तेरा भाव दूर हो गया। सिंहाद्रि पर रहने वाले दत्तात्रेय ने भक्त के मन में निवास किया, एका जनार्दन में जीवित हो उठा।' एक बार मलंग के वेश में दर्शन देकर उन्होंने एकनाथ को आशीर्वाद दिया था कि तुम सहस्रों मनुष्यों को भक्ति के पथ में लगाओगे तथा श्रीमद्भागवत पर अपूर्व ग्रन्थ लिखोगे। वे अपने गुरु से श्रीकृष्ण मन्त्र और उपासना की दीक्षा लेकर शूलभञ्जन पहाड़ पर मार्कण्डेय ऋषि के तपोवन के निकट घोर तप करने लगे। श्रीकृष्ण का नित्य ध्यान करते थे। उन्हें भगवान श्रीकृष्ण का प्रत्यक्ष दर्शन हुआ। इस तप-काल में पहाड़ के ऊपर उनके शरीर से एक साँप लिपट गया पर उनके स्पर्श से उसकी काटने की शक्ति नष्ट हो गयी। वह उनके मस्तक पर फन उठा कर झूमने लगा। एक ग्वाला उनके लिये दूध रखने आया करता था, उसने एकनाथ को इस घटना से अवगत किया। एकनाथ ने कहा कि साँप कृपालु हो गया। देह की सन्देह-बुद्धि मिट गयी। कृष्ण-उपासना का अनुष्ठान पूरा होने पर वे गुरु की आज्ञा से तीर्थयात्रा के लिये निकल पड़े।

उनकी तीर्थयात्रा में जनार्दनपन्त ने नासिक त्र्यम्बकेश्वर तक उनका साथ दिया। उन्होंने गोदावरी के परम पवित्र तट पर चन्द्रभट नामक ब्राह्मण से चतुःश्लोकी भागवत सुना, उस पर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उन्होंने ओवी लिखी। उन्होंने ब्रह्म गिरि की परिक्रमा की। गोदावरी तापती, गंगा और यमुना आदि में स्नान किया। आठों विनायक और बारहों ज्योतिर्लिङ्ग का दर्शन किया। वृन्दावन, काशी, प्रयाग, गया और बदरिकाश्रम की यात्रा की। द्वारिका भी गये। इस प्रकार यात्रा में उन्होंने तेरह साल लगाये। वे पचीस साल की अवस्था में पैठण लौट आये। वे पैठण में पिम्पलेश्वर महादेव के मन्दिर में ठहर गये। दादी और दादा बहुत दिनों से उनकी खोज में थे। चक्रपाणि ने उनको जनार्दनपन्त का आदेश-पत्र दिखलाया कि तीर्थयात्रा से लौट कर तुम गृहस्थाश्रम का वरण करो और विवाह कर गृहस्थ धर्म का पालन करना ही तुम्हारा कर्तव्य है। एकनाथ ने गुरु के आज्ञा-पत्र के अनुसार बिजापुर अथवा वैजापुर की एक ब्राह्मण-कन्या गिरिजा से विवाह किया। उनका गृहस्थ जीवन अत्यन्त सुन्दर था, वे भगवद्भजन और आत्मानुसन्धान में दृढ़तापूर्वक संलग्न थे। गिरिजा से उन्हें आध्यात्मिक साधना में बड़ी सहायता मिल सकी। गृहस्थी में स्वर्ग-सुख उतर आया। वे नित्य नियमपूर्वक भानुदास द्वारा स्थापित विट्ठल मूर्तिके सामने भगवच्चर्चा और 'ज्ञानेश्वरी' आदि की कथा में ही समय का सदुपयोग करते थे। रात में केवल चार घंटे सोते थे। शेष समय भगवान की आराधना में ही बीतता था।

विवाह के बाद दादी का देहावसान हो गया। गृहस्थी का भार एकनाथ-दम्पति ने बड़ी योग्यता से सम्हाला। गिरिजा ने पति-सेवा के माध्यम से परमार्थ की साधना की। एकनाथ ने एक स्थल पर कहा है कि जब स्त्री-पुरुष दोनों की चित्तवृत्ति एक होकर धर्म के अनुकूल होती है तभी परलोक सधता है। एकनाथ दम्पति के तीन सन्तान थीं। इनमें से एक पुत्र था। उसका नाम हरि था और कन्याओं का नाम गोदावरी और गंगा था। एकनाथ आजीवन भगवद्-भजन में ही लगे रहे। उनका जीवन परम संयत और दिव्य था। इनके घर पर नित्य अतिथि आते रहते थे। सन्तों का समागम होता रहता था। एकनाथ का समग्र जीवन भागवत चेतना से परिपूर्ण था। वे गृहस्थ सन्त के असाधारण संस्करण थे। एकनाथ महाराज बड़े सहिष्णु और गम्भीर थे। उनके जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना है। वे नित्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गोदावरी-स्नान करने जाते थे। रास्ते में एक सराय पड़ता था। उसमें एक यवन रहता था। वह एकनाथ महाराज को बहुत तंग किया करता था। महाराज जब स्नान कर लौटते थे तब वह उनके शरीर पर कुल्ला कर दिया करता था। इस प्रकार महाराज को नित्य अनेक बार स्नान करना पड़ता था। एक दिन यवन ने महाराज के शरीर पर एक सौ आठ बार कुल्ला किया और महाराज ने बड़ी प्रसन्नता और शान्ति से एक सौ आठ बार स्नान किया। यवन को अपने दुराचरण पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उसने एकनाथ के चरणों पर विनत होकर क्षमा माँगी। महाराज ने उसको अपना लिया, वह महाराज के प्रति श्रद्धा करने लगा और उसकी कुप्रवृत्ति नष्ट हो गयी। महाराज के चरण-स्पर्श से उसे नया जीवन मिला, वह धन्य हो गया। एकनाथ महाराज शील के समुद्र थे। एक दिन उनके पिता का श्राद्ध था। वे दरवाजे पर खड़े होकर निमन्त्रित ब्राह्मणों की प्रतीक्षा कर रहे थे। तीन चार माहार घर के सामने से यह कहते जा रहे थे कि कितना मधुर और सुगन्धित भोजन बना हुआ है। हम लोगों को ऐसा भोजन भला किस प्रकार मिल सकता है। महाराज का हृदय उनकी उक्ति पर दया से पिघल गया। उन्हें आदरपूर्वक भोजन कराया और उसके बाद ब्राह्मणों के लिये नया भोजन बनवाया। ब्राह्मणों ने भोजन करना अस्वीकार कर दिया, कहा कि श्राद्धान्न हम लोगों के योग्य नहीं है। महाराज ने पितरों का आह्वान किया। उनके पितर भानुदास, चक्रपाणि और सूर्यनारायण ने मूर्तिमान् उपस्थित होकर भोजन किया। ब्राह्मणों को बड़ा पछतावा हुआ। वे महात्मा एकनाथ के चरण देश में नत हो गये। महाकवि मोरोपन्त ने इस घटना को बड़ा महत्व दिया है।

एकनाथ महाराज ने घट-घट में परमात्मा की अनुभूति की। प्राणीमात्र में वे अपने परम प्रभु का दर्शन करते थे। एक बार काशी की यात्रा समाप्त कर वे प्रयाग से गंगाजल लेकर रामेश्वर जा रहे थे। उनके साथ उद्धव आदि थे। एक रेतीले मैदान में एक गदहा प्यास से तड़प रहा था। महाराज का कोमल हृदय द्रवित हो गया। प्यासे गदहे के मुख में गंगाजल डाल देने को ही उन्होंने परम पुण्य स्वीकार किया, उन्होंने कांवर का गंगाजल गदहे को पिला दिया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

साथियों के आपत्ति उठाने पर एकनाथ महाराज ने समाधान किया कि परमात्मा चराचर में व्याप्त हैं। एक बार गदहे को जल पिला कर उसे प्यास से मुक्त करने में करोड़ों बार रामेश्वर पर जल चढ़ाने का पुण्य मिल गया। महाकवि मोरोपन्त की उक्ति है कि एकनाथ महाराज ने ऐसा कर लाख ब्राह्मणों को भोजन कराने का पुण्य कमाया।

पैठण में एक सुंदरी वेश्या रहती थी। वह चंचल और कलामर्मज्ञा थी। वह नित्य श्रीएकनाथ की भागवत कथा में आया करती थी। उसका मन निर्मल हो गया था। उसने एक दिन भागवत का पिंगला-ख्यान सुना, उसका चित्त वैराग्य-रस में सराबोर हो गया, नश्वर शारीरिक सौन्दर्य के प्रति घृणा हो गयी। वह कई दिन घर में पड़ी रही, बाहर नहीं निकल सकी, यही सोचती रहती थी कि एक बार भी यदि एकनाथ महाराज के चरण घर में आ जाते तो मेरा उद्धार हो जाता। महाराज एक दिन गोदावरी-स्नान कर लौट रहे थे कि वेश्या ने दरवाजे पर खड़ी होकर कहा कि महाराज यदि आप क्षण-मात्र के लिये मेरे ऐसी पापिनी के घर में चरण रख देते तो मेरा उद्धार हो जाता, मेरे पाप मिट जाते। महाराज ने कहा कि मेरे लिये तो जीवमात्र प्रभु के अंश हैं, भला मुझे आपत्ति ही किस प्रकार होगी। महाराज ने उसका स्वागत स्वीकार किया, उसे 'राम-कृष्ण' मन्त्र-दान से कृतार्थ किया। वेश्या ने अन्त समय में पूर्ण कृष्णप्रेम में रंग कर देहत्याग किया।

महाराज परोपकार के तो मूर्तिरूप थे। वे नित्य रात को भगवान की कथा करते थे। एक दिन उनकी कथा में चार चोर सम्मिलित हुए। कथा-समाप्ति के बाद महाराज तो भगवान के ध्यान में मग्न हो गये और चोरों ने आधी रात के बाद सामान लेकर भागना चाहा। वे अन्धे हो गये, घर के बाहर नहीं निकल सके। उन्होंने एकनाथ के चरणों में मस्तक रख कर क्षमा माँगी, महाराज ने उन्हें भोजन कराया। उनकी कृपा से चोरों ने चोरी छोड़ दी, उनका जीवन सुधर गया।

एकनाथ महाराज का विट्ठल और रुक्मिणी में प्रगाढ़ अनुराग था। कर्णाटक में एक भगवद्भक्त महाजन रहता था। उसने प्रर्याप्त लागत

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

से रुक्मिणी-विट्ठल की प्रतिमायें बनवायीं। उसे स्वप्न में भगवान ने आदेश दिया कि मुझे पैठण में एकनाथ महाराज के पास पहुँचा दो। महाजन ने पैठण में भव्य मन्दिर का निर्माण कराया, उसमें विट्ठल और रुक्मिणी के श्रीविग्रह पधरा कर एकनाथ महाराज के प्रति भगवत्प्रीत्यर्थ सम्मान प्रकट किया। महाराज भगवान के कृपापात्र थे।

सन्त का सहज स्वभाव होता है कि वह किसी में दोष नहीं देखता है। एकनाथ महाराज उच्च कोटि के सन्त थे। एक दिन पैठण में एक गरीब ब्राह्मण आया। उसे अपने पुत्र के उपनयन के लिये दो सौ रुपयों की आवश्यकता थी। उचक्कों ने कहा कि यदि तुम अपने किसी आचरण से एकनाथ को रुष्ट और अप्रसन्न कर दो, चिढ़ा दो तो तुम्हें हम दो सौ रुपये दे सकते हैं। ब्राह्मण महाराज के घर गया। वे उस समय पूजा कर रहे थे, ब्राह्मण एकनाथ की जाँघ पर पालथी मार कर बैठ गया। महाराज ने ब्राह्मण में अपने प्रभु का दर्शन किया। उन्होंने बड़े सम्मान से ब्राह्मण के इस प्रेम-प्रदर्शन की बड़ी सराहना की, रोष तो मन में नाम-मात्र को भी नहीं था। महाराज के भोजन का समय हो गया। ब्राह्मण भोजन परोसते समय महाराज की पत्नी गिरिजा के कन्धे पर बैठ गया। साध्वी गिरिजा ने महाराज से कहा कि मैं अपने पुत्र को नीचे नहीं गिरने दूंगी। ब्राह्मण अत्यन्त लज्जित हुआ। महाराज के अंग-स्पर्श से उसकी चित्तवृत्ति बदल गयी। उसने एकनाथ जी से मन की बात कह दी। महाराज ने बड़े प्रेम से कहा कि यदि तुमने मुझे पहले ही बताया होता तो मैं चिढ़ कर रोष प्रकट करता और तुम्हें दो सौ रूपयों की प्राप्ति हो जाती। महात्माओं का स्वभाव नितान्त विचित्र होता है, वे अपने प्रति किये गये अपकार को भी उपकार ही समझते हैं।

पैठण में एक ब्राह्मण रहता था। उसके पास दैवयोग से एक पारस पत्थर था। वह तीर्थयात्रा करने जा रहा था। उसने सोचा कि महात्मा एकनाथ को एक पैसे का भी लोभ नहीं है, उनके पास पारस सुरक्षित रहेगा। उसने पारस उनके पास रख दिया। महाराज ने पारस भगवान के सिंहासन के नीचे रखवा दिया। तीर्थ-यात्रा से लौटने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पर उसने महाराज से पारस माँगा, सेवक उद्धव ने कहा कि भगवान के निर्माल्य के साथ गोदावरी में वह गया होगा। ब्राह्मण को एकनाथ पर सन्देह हुआ। महाराज उसे अपने साथ गोदावरी तट पर ले गये। वे गोदावरी में खड़े हो गये, हाथ से छोटे-छोटे पाषाण खण्ड निकाल कर कहा कि इसमें से जो तुम्हारा हो, ले लो। ब्राह्मण ने देखा कि सब-के-सब पारस हैं। उसने एक ले लिया, महाराज ने शेष गोदावरी की धारा में बहा दिये। महात्मा और सन्त के चरित्र में ऐसी विशेषताओं का बाहुल्य रहता है, भगवान स्वयं सन्त के वश में रहते हैं, वे सन्त के मनोनुकूल ही जगत का पालन और संरक्षण करते हैं।

—भगवान स्वयं सेवक अथवा अनुचर के रूप में अभिव्यक्त होकर भक्तों की सेवा और सुख का रसास्वादन करते हैं—ऐसी अनेक कथायें भक्ति के इतिहास में उपलब्ध हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीखण्डिया रूप में अभिव्यक्त होकर एकनाथ महाराज की सेवा कर उनका यश बढ़ाया। वे उनके लिये पूजा का सामान एकत्र करते थे और श्रीखण्ड-चन्दन घिसते थे। महाराज को इस बात का तनिक भी पता नहीं था। द्वारिका में एक ब्राह्मण भगवद्दर्शन के लिये तप कर रहा था। उसे आदेश हुआ 'तुम पैठण जाओ। मैं एकनाथ के घर श्रीखण्डिया के रूप में दर्शन दूंगा।' ब्राह्मण पैठण गया। उसने श्रीखण्डिया को कांवर लेकर जल भरने के लिये जाते देखा पर वह समझ न सका कि उसे साक्षात् श्रीकृष्ण का दर्शन हो रहा है। भगवान अन्तर्धान हो गये। ब्राह्मण ने एकनाथ से श्रीखण्डिया के सम्बन्ध में बात की। महाराज ने रहस्य को जान लिया; उनके नयनों से प्रेमाश्रु छलकने लगा, कण्ठ अवरुद्ध हो गया, हृदय भारी हो गया। महाराज सोचने लगे कि प्रभु ने मेरे लिये इतना कष्ट उठाया। उन्होंने कहा है 'प्रभु, आपने सेवा करके मेरा नाम बढाया, पूजा की सामग्री एकत्र की, चन्दन घिसते रहे। .....मैं अपराधी हूँ, पतित हूँ।' उन्होंने अमित पश्चात्ताप किया। महाराज के समकालीन महामति दासोपन्त ने इस घटना का महत्व स्वीकार किया है। एकनाथ के चरित्रकार महीपति ने भी इसको मान्यता दी है। अमृतराय और मोरोपन्त ने प्रभु की इस उदारता और सेवावृत्ति का बड़ा बखान किया है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एकनाथ महाराज ज्ञानेश्वर के प्रति बड़े अनुरक्त थे। उनके स्वप्नादेश से प्रेरणा प्राप्त कर वे पण्ढरपुर होते हुए आलन्दी गये थे। आलन्दी में ज्ञानेश्वर की समाधि है। उन्होंने समाधि के निकट अजान वृक्ष देखा। ज्ञानेश्वर ने स्वप्न में आदेश दिया था कि मेरे गले में अजान वृक्ष का फन्दा है, उससे मुझे मुक्त करो। एकनाथ महाराज ने ज्ञानेश्वर की समाधि का इस प्रकार पता लगाया। वे समाधि-स्थान पर तीन दिन रहे। उन्होंने समाधि के भीतर जाकर वज्रासनस्थ ज्ञानेश्वर का दर्शन किया। उनके गले में अजान वृक्ष का फन्दा था। उसे निकाला। समाधि का द्वार फिर बन्द कर दिया। आलन्दी में ज्ञानेश्वर की समाधि-भूमि से वे 'ज्ञानेश्वरी' के प्रचार की प्रेरणा लेकर पैठण लौट आये। एकनाथ महाराज ने ज्ञानेश्वरी के सिद्धान्तों की स्पष्ट व्याख्या की; लोगों को भगवद्गीता का ज्ञानेश्वरी के अनुसार मर्म समझाया। महाराज ने ज्ञानेश्वरी के प्रति अगाध श्रद्धा प्रकट की है।

एकनाथ महाराज ने भगवद्भक्ति-साधना के क्षेत्र में सगुण और निर्गुण चिन्तन-पद्धति का अत्यन्त सन्तोषप्रद समन्वय किया है, यह उनके अध्यात्म जीवन की विशिष्टता है, मौलिकता है। उनकी रुचि सगुण उपासना की ओर विशेष रूप से थी; कारण यह था कि तत्कालीन सन्त और महात्मा भगवत्तत्व का अनुसन्धान सगुण भक्ति के माध्यम से कर रहे थे। एकनाथ महाराज ने भक्ति का निरूपण करते हुए कहा है कि सब प्राणियों में भगवान का सप्रेम भजन करने की युक्ति ही भक्ति है। उन्होंने बताया कि भगवत्प्राप्ति उस अपरोक्ष स्थिति का पर्याय है जिसमें निरन्तर भगवत्स्फूर्ति होती रहती है। भगवान के चरणों पर निष्काम भाव से सर्वात्म-समर्पण करने को ही एकनाथ महाराज ने भागवतधर्म स्वीकार किया। रामानन्द और वल्लभाचार्य ने भी अपने भागवतधर्म का मूल सर्वात्म-समर्पण ही कहा था, एकनाथ ने उनकी पद्धति सन्त नामदेव और ज्ञानेश्वर के महाराष्ट्र में ही नहीं, उत्तर-दक्षिण भारत के मध्यभाग में ही नहीं, सारे भागवत भारत में अक्षुण्ण रखी। महाराज ने घोषणा की कि धन्य है नरदेह का मिलना, धन्य है साधुओं का सत्संग, धन्य हैं वे भक्त जो भगवान् की भक्ति के रंग में रंग गये हैं। एकनाथ महाराज ने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सत्य पर बड़ा जोर दिया। उन्होंने कहा कि सत्य के समान कोई तप नहीं है, कोई जप नहीं है। सत्य से सद्रूप की प्राप्ति होती है। सत्य से साधक निष्पाप होता है। उन्होंने भगवान की सगुण भक्ति की बड़ी महिमा गायी है। उनकी उक्ति है कि भगवान के परम पवित्र सगुण चरित्र का ही वर्णन करना चाहिये। सत्संग में अन्तरङ्ग से भगवान का नाम लेना चाहिये। कीर्तन की तरंग में भगवान के समीप आनन्द से झूमना चाहिये। महाराज ने स्वीकार किया है कि हरि-कीर्तन से अन्तःकरण की शुद्धि होती है। महाराज का भगवान के सगुण रूप के सम्बन्ध में कथन है कि जो नित्य सिद्ध सच्चिदानन्द हैं, प्रकृति के परे परमानन्द स्वरूप हैं, वे ही स्वानन्दकन्द अपनी लीला से सगुण हैं। इस प्रकार उन्होंने निर्गुण-सगुण भगवत्तत्त्व के समन्वय से भक्ति की श्रीवृद्धि की। एकनाथ महाराज ने मध्यकालीन सन्तों की ही तरह गुरु में साक्षात् परमेश्वर की अभिव्यक्ति का अनुभव किया। महाराज की वाणी है कि हमारे लिये वेद, शास्त्र, पुराण, योग, तप, कर्म-धर्म सब कुछ जनार्दन हैं। उनका नाममात्र ही हमारा वेदशास्त्र है।

एकनाथ महाराज ने आजीवन अन्नदान और स्वरूप अथवा आत्मा का दान किया। महाराज ने निन्दक और प्रशंसक दोनों का समान रूप से गले लगा कर हित किया। उन्होंने निन्दक के सम्बन्ध में कहा है कि निन्दक आत्माराम का सखा है, वह साक्षात् काशी है, उसकी कृपा से पापों का नाश हो जाता है। वह साक्षात् गुरु है, हमारे मैल धोता है। इस प्रकार महाराज ने सबके प्रति गृहस्थ सन्त के वेष में उदारता का आचरण किया। सम्वत् १६५६ वि. में महाराज ने परलोक की यात्रा की। परमधाम पधारने के पहले उन्होंने अपनी गमन-तिथि की सूचना दे दी थी। चैत कृष्ण षष्ठी को प्रातःकाल महाराज ने गोदावरी में स्नान किया। हरिकीर्तन हो रहा था। बड़े-बड़े सन्त और महात्मा एकत्र थे। एकनाथ ने हरिनाम-ध्वनि से पूर्ण वातावरण में समाधि ली। उनका जीवन परम दिव्य था। वे भगवद्रस के परम ज्ञानी और तत्वज्ञ थे। महाराज की आध्यात्मिकता उच्च कोटि की थी। महात्मा एकनाथ का नाम सन्त-साहित्य में अमर है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रचना

एकनाथ महाराज ने नाथ-भागवत-एकादश स्कन्ध, रुक्मिणी स्वयम्वर, भावार्थरामायण, चिरंजीव पद, स्वात्मबोध और आनन्दलहरी आदि की रचना की।

वाणी

नाम वदताहे वैखरी। चित्त धावे विषयावरी।
कैसें होताहे स्मरण। स्मरणमाजी विस्मरण।
नामरूपा नाहीं मेळ। नुस्ता वाचेचा गोंधळ।
'एका' जनार्दनीं नाम। नामीं प्रगटे आत्माराम॥

मुख से रामनाम कहने और चित्त में विषय का ध्यान करने से कोई लाभ नहीं है। जब तक वाणी से रामस्मरण और मन से राम के ध्यान का संयोग नहीं होता है तब तक नामस्मरण पाखण्ड ही है। दोनों के योग से नाम-स्मरण किया जाय तो साक्षात् ईश्वर की प्राप्ति होती है।

आपुले हृदयींचा चिद्घन। मूर्तिमाजी कीजे आवाहन।
पूजान्तीं करुनि विसर्जन। हृदयीं जाण ठेवावा॥

अपने हृदय में स्थित सच्चिदानन्दघन परमात्मा का पूजा के समय मूर्ति में आवाहन करे और पूजा के बाद विसर्जन कर उनको हृदय में स्थापित कर ले।

आतां ही प्रत्यक्ष प्रमाण। दासाचेनि वचनें जाण।
पाषाणप्रतिमें देवो आपण। आनन्दघन प्रगटे पैं।

भक्तों की प्रार्थना स्वीकार कर भगवान पाषाण-प्रतिमा में प्रत्यक्ष प्रगट होते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मन सांडी विषम गोड़ी । लावी विट्ठलाची गोडी ।
विट्ठल विट्ठल सांवळा । पाहें उघडाची डोळां ॥
विट्ठल विट्ठल निधान । एक मन करी उन्मन ।
'एका' जनार्दनीं शरण । मन झालें विट्ठल पूर्ण ॥

हे मन, विषयों का त्याग कर भगवान विट्ठल से प्रेम करो। आँख खोल कर साँवले विट्ठल का दर्शन कर उनमें अपने आपको पूर्ण रूप से लगा दो । (एकनाथ की उक्ति है) जनार्दन की शरण में जाने पर मन विट्ठल को प्राप्त होगा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संत दादू

दादू सतगुरु बंदिये, सो मेरे सिर-मौर।
सुंदर बहिया जाय था, पकरि लगाया ठौर॥

—महात्मा सुंदरदास

सन्त दादू का प्राकट्य विक्रम की सत्रहवीं सदी के प्रथम चरण में हुआ था। वे सम्राट अकबर के समकालीन थे। उस समय धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में समन्वय का प्रयत्न हो रहा था। लोगों में उदारता के भाव पनप रहे थे, फतहपुर सीकरी इस उदारता का शक्ति-केन्द्र था। मनुष्य वैमनस्य, द्वेष और कलह भूल कर मित्रता, प्रेम और शान्ति के संगम पर अपने जीवन की सार्थकता चरितार्थ कर रहा था। सन्त कबीर द्वारा निर्दिष्ट अध्यात्म-ज्योति समाज को अखण्ड भगवत्ता की ओर ले जाने का बहुत बड़ा साधन थी, उनके बाद सन्त दादू ने उनके शुभ कार्य की पूर्ति की, सत्य का प्रकाश फैलाया। सन्त दादू ने तत्कालीन निर्गुण उपासना पद्धति अथवा ज्ञानाश्रयी चिन्तन-धारा का नेतृत्व किया। उनके प्रमुख शिष्य सन्त रज्जब की उक्ति है:

'आये मेरे पार ब्रह्म के प्यारे।'

रज्जब ने महामुनि और महायोगी के रूप में सन्त दादू का स्मरण किया है। सन्त दादू ने अपने समय की अनेक सामाजिक समस्याओं का आध्यात्मिक समाधान प्रदान किया। उन्होंने प्राणीमात्र को संसार की अनित्यता, ईश्वर की व्यापकता और आत्मबोध का रहस्य समझाया-यह उनकी मौलिकता है। उन्होंने कबीर के विचारों से प्रेरणा प्राप्त की पर उस प्रेरणा का उपयोग दादू ने अधिकांश में निर्माण की ओर किया, वे समन्वयवादी थे। दादू ने खण्डन से अधिक मण्डन को ही श्रेयस्कर समझा। वे निर्गुण सन्तों के तत्कालीन अधिराज थे। दादू के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जन्म-स्थान और पूर्वजों के सम्बन्ध में अनेक मत हैं। ऐसी मान्यता है कि वे जौनपुर में प्रकट हुए थे। वे धुनिया थे। गहरी छानबीन के बाद ऐसा पता चलता है कि उनका प्राकट्य नागर ब्राह्मण कुल में साबरमती नदी के तट पर अहमदाबाद में हुआ था। अहमदाबाद में लोदीराम नाम के एक निस्सन्तान नागर ब्राह्मण रहते थे। वे साबरमती नदी के किनारे-किनारे कहीं जा रहे थे। सम्वत् १६०१ वि. के फाल्गुन शुक्ल अष्टमी गुरुवार का समय था। उन्होंने जल की धारा पर एक सन्दूक बहता हुआ देखा, उत्सुकतापूर्वक सन्दूक को उठा लिया, उसमें उन्होंने एक हँसमुख नवजात शिशु देखा। वे शिशु को घर लाये। बड़े प्रेम से लोदीराम और उनकी पत्नी ने शिशु का पालन-पोषण किया, उनकी पत्नी के स्तनों में भगवान की कृपा से अपने आप दूध आ गया। उन्होंने शिशु का नाम दादू रखा। दादू दयाल बढ़ने लगे। उनका मन वैराग्य की ओर बहुत लगता था। वे साधु-सन्तों को देखते ही आनन्दमग्न हो जाते थे। उनके संस्कार परम दिव्य थे। वे एकान्तप्रिय थे।

एक बार वे कुछ बालकों के साथ खेल रहे थे। उस समय उनकी अवस्था केवल ग्यारह साल की थी। देखने में आकर्षक थे। एक बूढ़े साधु ने दादू को देख कर उनके मुख में अपने मुख के पान की पीक डाल दी। उनसे भिक्षा माँगी। दादू कुछ भी न समझ सके। साधु चले गये। धीरे-धीरे अवस्था बढ़ने के साथ-ही-साथ साधु के दर्शन के प्रभाव से दादू दयाल में संसार के प्रति अनासक्ति का भाव बढ़ने लगा, उन्हें संसार की नश्वरता और अनित्यता का ज्ञान होने लगा। घर उन्हें काट खाता था। उन्होंने घरत्याग का कई बार प्रयत्न किया पर घरवालों के हस्तक्षेप से उन्हें विवश होना पड़ता था और बाहर नहीं जा पाते थे। अठारह साल की अवस्था में उन्हें बूढ़े साधु का फिर दर्शन हुआ। दादू ने उनको पहचान लिया, उनके चरण पर नत हो गये, बड़ी श्रद्धा दिखायी। सन्त ने दादू को चेतावनी दी कि, मैं क्षणमात्र के लिये तुम्हारे दरवाजे पर हूँ और तुम इतनी श्रद्धा-भक्ति से मेरा स्वागत कर रहे हो पर तुम यह नहीं जानते हो कि तुम्हारे जीवन के छोर पर युग-युग से भगवान तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं;

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यदि तुम ईश्वरोन्मुख हो जाओ तो भवसागर से पार हो जाओगे। जन्म-जन्म के वन्धन कट जायेंगे। इतना कह कर बूढ़े सन्त मौन हो गये, उनके नेत्रों से अश्रु-प्रवाह उमड़ पड़ा। दादू ने उनसे निवेदन किया कि महाराज, मेरे लिये आप सर्वस्व हैं, मैं संसार की तमिस्रा से घिर गया हूँ, आप मेरा हाथ पकड़ लीजिये। मेरा उद्धार कीजिये। सन्त ने उन्हें दीक्षा दी। दादू की स्वीकृति है:

'गैब माहिं गुरुदेव मिला, पाया हम परसाद।
मस्तक मेरे कर धर्‌या, दाया अगम अगाध॥'

साधु ने उन्हें गले लगा लिया; दादू के हृदय में परमात्मज्ञान की ज्योति व्याप्त हो उठी, ज्ञान का प्रकाश फैल गया, सन्त ने उनको सन्त होने का पथ वतला दिया; वे दादू दयाल हो उठे। सन्त ने दादू को भवसागर से पार उतार दिया। ऐसा कहा जाता है कि दादू को इस प्रकार दीक्षा देने वाले सन्त कमाल थे; ऐसी भी मान्यता है कि उनके दीक्षा-गुरु कवीर के शिष्य सन्त वुड्ढन थे। दादू ने गुरु की कृपा से आत्मज्ञान का प्रकाश पाया, ईश्वर के रंग में रंग उठे।

घरवालों ने दादू दयाल के मन में वैराग्य का उदय होते देख कर उनका बड़नगर के एक पवित्र ब्राह्मण कुल की कन्या से विवाह कर दिया। पर दादू का मन किसी प्रकार से भी गृहस्थी में न लग सका। उन्हें सन्तान की प्राप्ति हुई। गरीबदास उनके ज्येष्ठ पुत्र थे। सन्त दादू ने घर का त्याग कर दिया। उन्होंने विहार, गौड़-बंगाल, काशी तथा अन्य तीर्थस्थानों की यात्रा की, सन्त-समागम से लाभ उठाया। इस यात्रा के वाद राजस्थान के सांभर स्थान में चले आये। सांभर में उन्होंने निवास स्थिर किया। उन्होंने प्रच्छन्न रूप से जीविका चलाने के लिये रूई धुनने का काम अपनाया। अपनी अध्यात्मसाधना में सदा प्रगतिशील रहे। सन्त कवीर की वाणी से वे बहुत प्रभावित थे। उन्होंने लोगों को सत्संग के द्वारा भगवत्तत्व समझाना आरम्भ किया। उनकी प्रसिद्धि दूर-दूर तक बढ़ने लगी। सन्त-महात्मा उनके सत्संग में आने लगे। वे सांभर में जिस स्थान पर सत्संग का आयोजन करते थे उसका नाम उन्होंने 'अलखदरीवा' अथवा 'चांगान' बताया है; 'अलखदरीबा' में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्तों का सम्मिलन होता था और ब्रह्म पर विचार चलता था। वे छः साल तक सांभर में रहे। उसके बाद सन्त दादू जयपुर की तत्कालीन राजधानी-आमेर में आकर रहने लगे। उनका जीवन निर्गुण ब्रह्म के चिन्तन में सदा निमग्न रहता था। उनकी एक स्थल पर उक्ति है:

'दादू रोजी राम है, राजिक रिजिक हमार।
दादू उस परसाद सूँ, पोष्या सब परिवार।'

उनका जीवन पूर्ण तपोमय था। वे चमत्कार और करामत दिखाने को पाप समझते थे। बादशाह अकबर के निमन्त्रण पर दादू फतहपुर सीकरी भी गये थे। बादशाह ने चालीस दिन तक उनका सत्संग किया था। सीकरी-गमन की ऐतिहासिकता रज्जब की उक्ति से प्रमाणित है।

'अकबर साहि बुलाइया गुरु दादू को आप।
सांच झूठ व्योरो हुओ, रह्यो नाम-परताप॥'

सन्त दादू से अकबर ने पूछा था कि ब्रह्म की जाति क्या है, रूप क्या है तथा रंग क्या है। सन्त दादू ने उत्तर दिया था:

'इसक अलह की जाति है, इसक अलह का अंग।
इसक अलह औजूद है, इसक अलह का रंग॥'

सन्त दादू ने अपने उपदेशों से बादशाह अकबर को बहुत प्रभावित किया। भक्त-हृदय रहीम खानखाना ने सन्त दादू के प्रति बड़ी श्रद्धा और भक्ति दिखायी थी। बादशाह के अनेक नवरत्न सन्त दादू के प्रति पूज्य भाव रखते थे। सीकरी से लौटने पर उन्होंने राजस्थान के भिन्न-भिन्न प्रमुख स्थान द्योसा, मारवाड़, बीकानेर आदि को अपने सत्संग से धन्य किया था।

दादू बड़े क्षमाशील थे। एकबार वे आत्मचिंतन में लीन थे। उन्हें देह की तनिक भी सुधि नहीं थी। कुछ दुष्टों ने उनकी चारों ओर ईंटें रख कर बन्द कर दिया। आँख खुलने पर उन्होंने बाहर निकलने का मार्ग नहीं देखा। उन्होंने आँख मूँद ली और ब्रह्मचिन्तन में फिर लग गये। सज्जनों को जब इस बात का पता चला तो वे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बहुत दुखी हुए। उन्होंने ईंटे हटा कर सन्त दादू की प्राण रक्षा की। महात्मा दादू ने दुष्टों को क्षमादान दिया।

सन्त दादू के प्रधान शिष्य रज्जब, महात्मा गरीबदास, सुंदरदास, जगजीवनदास और वषनाजी आदि थे। उनकी शिष्य-परम्परा में सन्त रज्जब और महात्मा सुंदरदास के नाम विशेष रूप से उल्लेख्य हैं। रज्जब और सुंदरदास दोनों दादू के सिद्धान्तों के साहित्यकार थे; उन्होंने कबीर द्वारा प्रतिपादित और दादू दयाल द्वारा सम्पादित निर्गुण सन्त-सिद्धान्त का विवेचन किया। दादू ने अहंकार को मिटाकर हरि के भजन करने तथा समस्त जीवमात्र से प्रेम करने को ही अपने मत अथवा सिद्धान्त का सार घोषित किया। उन पर स्पष्ट रूप से कबीर के अद्वैतवादसम्वलित सन्तमत और सूफी प्रेम-साधना का प्रभाव था। सन्त दादू ने कबीर के सिद्धान्तों को ही अपना पथ-प्रदर्शक माना। उन्होंने सन्त-सुलभ सहज ज्ञान के माध्यम से कहा-

'आपा मेटै हरि भजै, तन-मन तजै विकार॥
निरबैरी सब जीवसों, 'दादू' यह मत सार॥'

सन्त दादू ने कबीर के एकेश्वरवाद को ही अपनाया। निर्गुण सन्त-परम्परा का प्राण उस समय एकेश्वरवाद ही था। जीव, जगत और माया—सब को उन्होंने एक ईश्वर से परिव्याप्त देखा। वाह्य मन और बुद्धि के परे सहज ज्ञान की अनुभूति से ब्रह्म का दर्शन किया। कबीर की गुरुता पर विश्वास किया :

'जे था कंत कबीर का, सोई वर वरिहूँ
मनसा वाचा करमना, मैं और न करिहूँ॥'

सन्त दादू का सम्प्रदाय 'ब्रह्मसम्प्रदाय' कहलाता है। ऐसे तो इसकी प्रसिद्धि 'दादू पन्थ' के नाम से है पर सुन्दरदास ने इसका 'सम्प्रदाय परब्रह्म' के रूप में उल्लेख किया है। ब्रह्म को ही दादू ने आदि-गुरु, अकल, अविनाशी और अवरण स्वीकार किया। सद्गुरु ही ब्रह्म-रूप में शरीर धारण कर संशय का नाश करते हैं—ऐसी इस सम्प्रदाय में मान्यता है। ब्रह्मानन्द का मूल आधार निर्गुण सन्तों ने उपनिषदों के आत्मवाद में स्थिर किया; दादू ने इसका पूर्ण अनुगमन किया। मध्य-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कालीन निर्गुण धारा के एकेश्वरवादी सन्तों ने उपनिषदों के ब्रह्म और आत्मा के सिद्धान्तों को जनभाषा में व्यक्त किया; यह सन्त-साहित्य की प्रगति की दृष्टि से अमित महत्वपूर्ण कार्य कहा जा सकता है। सन्त दादू ने अपने पन्थ पर प्रकाश डालते हुए स्वीकार किया है :

'भाई रे ऐसा पन्थ हमारा।
द्वै पष रहित पंथ गहि पूरा, अवरण एक अधारा॥
वाद-विवाद काहू सौं नाहीं, याहि जगत थै न्यारा।
समदृष्टी सुभाइ सहज में, आपहि आप विचारा॥
'मैं तैं मेरी' यह मति नाहीं, निरबैरी निरंकारा।
पूरण सबै देखि आपा पर, निरालम्ब निरधारा॥
काहू के संग मोह न ममता, संगी सिरजन हारा।
मन ही मन सौं समझि सयाना, आनंद एक अपारा॥
काम कल्पना कदे न कीजै, पूरण ब्रह्म पियारा।
इहि पंथ पहुँचि पार गहि दादू, सो तत सहज संभारा॥'

सीधी-सादी भाषा में सन्त दादू ने सहज तत्व का निरूपण किया। उनका सहज परम तत्व समस्त विश्व के लिये उपास्य है, सर्वथा निरपेक्ष और निष्पक्ष है। सन्त-विचार-धारा का वास्तविक स्वरूप विश्व-जनीनता ही है। उस पर केवल परमात्मा के प्रेम का ही रंग चढ़ पाता है। निर्गुण, निराकार निर्विकार ब्रह्म का ज्ञानपूर्वक चिन्तन ही सत्सिद्धान्त है, सत्य ज्ञान है। सन्त दादू ने सद्ज्ञान प्रदान किया।

दादू ने निर्गुण ब्रह्म का ही चिन्तन किया। उन्होंने ब्रह्म को परम प्रेममय और सहजमय बतलाया। ब्रह्म और जगत्-जीव की उन्होंने अभिन्नता अथवा एकता सिद्ध की। इस प्रकार उनके निर्गुण चिन्तन का आधार सर्वात्मवाद का ही प्रतीक है। उनका परमतत्व 'सुन्न' और 'सहज' है। दादू की उक्ति है कि सहज सरोवर की प्रेमतरंग के झूले पर आत्मा ब्रह्म के साथ विहार करता है। दादू ने शाश्वत ब्रह्मानन्द-रस की अनुभूति की, जन्म-मरण से रहित निरञ्जन तत्व से परे शून्य-रूपस्थ ब्रह्म के प्रेम का रसास्वादन किया। दादू ने ब्रह्मानन्द रस का अत्यन्त मादक विवरण दिया है :

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'रस ही में रस बरखिहै, धारा कोटि अनन्त।
तहँ मन निहचल राखिये, दादू सदा वसन्त॥'

दादू ने परमात्मा के प्रेम पर कबीर की ही तरह सरस विचार किया है। वे आत्मवादी अथवा उच्च कोटि के रहस्यवादी सन्त थे। दादू के रहस्यवाद ने प्रेम के रंगमंच पर समस्थित होकर घोषणा की:

'आदि अन्त मधि एकरस, टूटै नहिं धागा।
'दादू' एकै रहि गया, तव जाणी जागा॥'

उनकी साधना के मूलाधार ब्रह्मचिन्तन, आत्मानुसंधान और रहस्यमय प्रेम-आचरण हैं। उनकी साधना अनुभूति मूलक है। ब्रह्म-चिन्तन के लिये उन्होंने आत्मप्रकाश का आश्रय लिया।

'मथि करि दीपक कीजिये, सब घट भया प्रकास।
'दादू' दीया हाथ करि, गया निरञ्जन पास॥'

निरञ्जन रूपी नौका पर चढ़े बिना आत्मज्ञान सूझता ही नहीं है, अनेक सूर्य और चन्द्र का प्रकाश निरञ्जन की ज्योति के बिना दो कौड़ी का है – ऐसी दादू की धारणा थी। उन्होंने कहा:

'जन्मै मरै सो जीव है, रमिता राम न होइ।
जन्म-मरण ते रहित है, मेरा साहिब सोइ॥'

उन्होंने साधना के सम्बन्ध में कहा कि जब तक शरीर स्वस्थ है रामनाम संभाल लेना चाहिये, प्रत्येक श्वास में राम का स्मरण करना चाहिये। उन्होंने कहा कि राम ही परम सुख हैं, उनके स्मरण से जो रस मिलता है उसका उल्लेख करना नितान्त असम्भव है। आत्मचिंतन से राम का स्मरण-रस हृदय में उतरता है। यह रस पूर्ण प्रेम में अभिव्यक्त होता है। दादू ने बड़े धैर्य और शान्ति से साधना के मार्ग में आश्वासन दिया:

'दादू' निबहै त्यूं चलै, धीरैं धीरज माहिं।
परसैगा पिय एक दिन, दादू थाकै नाहिं।'

दादू लययोगी थे। उन्हें शब्दयोग का ज्ञान था। उन्होंने अपनी साधना का समस्त श्रेय ओंकार के आश्रित कर दिया। उन्होंने कहा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कि शब्द ब्रह्म-ओंकार ही समस्त सुखों का मूल है। शब्द निर्गुण का अधिष्ठान है, निर्मल ज्ञान है। वे सहजयोगी थे। उन्होंने सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म का अनुभव किया। उन्होंने सच्चे प्रेमी की तरह 'प्रेम-पियाला' पीकर अपने प्रियतम के उपास्य का पद प्राप्त किया था। अपने प्रेमाचरण से सन्त दादू प्रेमास्पद बन गये भगवान के प्रेम-राज्य में—यह उनकी साधना की महती सिद्धि है: सन्त दादू ने कहा:

'भाई रे घर ही में घर पाया।
सहजि समाइ रह्या ता माहीं, सतगुरु खोज बताया॥
ता घर काज सबै फिरि आया, आपै आप लखाया।
खोलि कपाट महल के दीन्हे, थिर अस्थान दिखाया॥
भय और भेद भरम सब भागा, साच सोइ मन लाया।
प्यंड परे जहाँ जिव जावे, तामैं सहज समाया॥
निहचल सदा चलै नहि कबहूँ, देख्या सब में सोई।
ताही सूं मेरा मन लागा, और न दूजा कोई॥
आदि अन्त सोई घर पाया, अब मन अनत न जाई।
'दादू' एक रंगैरंग लागा, तामैं रह्या समाई॥'

दादू ने ब्रह्म-बोध पाया, आत्म-साक्षात्कार से सहज तत्व का दर्शन किया, निरञ्जन की परम ज्योति देखी।

सन्त दादू ने आमेर छोड़ कर जयपुर में रहना आरम्भ किया। वे जयपुर में नव साल तक रहे। और अन्त समय में वे नारायणा की एक पहाड़ी गुफा में रह कर कुछ शिष्यों के साथ एकान्त सेवन और सत्संग करने लगे। सम्वत् १६६० वि. की ज्येष्ठ कृष्ण अष्टमी को नारायणा की गुफा में ही वे ब्रह्म में लीन हो गये। नारायणा अथवा नराने की गुफा में, उनके बाल, तूंबा, चोला और खड़ाऊँ अभी तक सुरक्षित हैं। सन्त दादू विक्रम की सत्रहवीं सदी के भारत की महान् विभूति थे। वे तत्कालीन आध्यात्मिक क्रान्ति-क्षेत्र में सन्त कबीर के प्रतिनिधि थे। वे निष्पक्ष सन्त थे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रचना

सन्त दादू की रचनाओं की संख्या लगभग बीस हजार कही जाती है। सन्त रज्जब ने 'अंग वधू' के नाम से उनकी वाणी का संग्रह किया।

वाणी

सुन्न सरोवर हंस मन मोती आप अनन्त।
'दादू' चुग-चुग चंच भरि, यों जन जीवै सन्त॥
बिरह जगावै दरद को, दरद जगावै जीव।
जीव जगावै सुरति को, पंच पुकारै पीव॥
जागत जगपति देखिये, पूरन परमानंद।
सोवत भी सोई मिले, 'दादू' अति आनन्द॥
प्रेमलहरि की पालकी, आतम बैसे आइ।
'दादू' खेलै पीव सों, यह सुख कहा न जाइ॥
'दादू' पाया प्रेम-रस साधू-संगति माहिं।
फिरि-फिरि देखै लोक सब, यह रस कतहूँ नाहिं॥
समरथ सब विधि साइयाँ, ताकी मैं बलि जाउँ।
अन्तर एक जु सो बसै, औरां चित्त न लाउँ॥
'दादू' आप छिपाइये, जहाँ न देखै कोइ।
पिव कौं देखि दिखाइये, त्यों त्यों आनंद होइ॥
सब घटि माहैं रमि रह्या, विरला बूझै कोइ।
सोई बूझै राम कौ, जो रामसनेही होइ॥
आसिक मासुक ह्वै गया, इसक कहावै सोइ।
'दादू' उस मासूक का, अल्लहि आसिक होइ॥

× × ×

मनाँ भजि राम नाम लीजे।
साध संगति सुमिरि सुमिरि, रसना रस पीजे॥
साधू जन सुमिरन करि, केते जपि जागे।
अगमनिगम अमर किये, काल कोई न लागे॥
नीच ऊँच चिंतन करि, सरणागति लीये।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भगति मुकति अपणी गति, ऐसैं जन कीये॥
केते तिरि तीर लागे, बंधन भव छूटे।
कलिमल विष जुग जुग के, राम नाम खूटे॥
भरम करम सब निवारि, जीवन जपि सोई।
'दादू' दुख दूर करण, दूजा नहिं कोई॥

× × ×

अजहुँ न निकसै प्राण कठोर।
दरसन बिना बहुत दिन बीते, सुंदर प्रीतम मोर॥
चारि पहर चारौं जुग बीते, रैनि गँवाई भोर।
अवधि गई अजहूँ नहिं आए, कतहुँ रहे चितचोर॥
कबहूँ नैन निरखि नहिं देखे, मारग चितवत तोर।
'दादू' ऐसे आतुर बिरहाणि, जैसे चन्द चकोर॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्त रज्जब

जीवन है दिन चारि भजन करि लीजिये।
तन मन धन सब वारि संत पर दीजिये॥
संतहि से सब होइ जो चाहै सो करैं।
अरे हाँ 'पलटू' संग लगे भगवान संत से वे डरैं॥

—सन्त पलटूदास

सन्त अच्युत गोत्रीय होता है। उसकी कोई जाति नहीं होती है, वह सदा सत्य के रंग में सराबोर रह कर परमात्मा का भजन करता है। रज्जब एक भजनानन्दी सन्त थे। वे सन्त दादू के प्रमुख शिष्यों में से एक थे। उन्होंने विक्रमीय सत्रहवीं और अठारहवीं सदी को अपनी उपस्थिति से पावन किया। वे बादशाह अकबर के समकालीन थे। जो गौरवपूर्ण स्थान कबीर की जीवन-लीला-समाप्ति के बाद कबीर-पन्थ में महात्मा धरमदास को मिला वही पद सन्त दादू के बाद दादू-सम्प्रदाय में सन्त रज्जब को मिला। सन्त रज्जब की अनुभूति उच्च कोटि की थी, उन्होंने दादू के सिद्धान्तों का व्यापक प्रचार किया। सन्त रज्जब की मौलिकता यह है कि उन्होंने ब्रह्म चिन्तन के आधार विश्वास अथवा भक्ति में अवस्थित किये, वे केवल ज्ञान-धारा में ही अन्य निर्गुणवादी सन्तों की तरह गोता नहीं लगाते रहे, उन्होंने ज्ञान और भक्ति के समन्वय को ब्रह्मानुभूति का प्रशस्त पथ स्वीकार किया। सन्त रज्जब ने दादू के प्रेमसम्बन्धी पदों में सच्चिदानन्द की रसमयी भक्ति की ज्योति देखी, दादू के शिष्य सुंदरदास ज्ञानमार्गी महात्मा थे तो सन्त रज्जब प्रेममार्गी सन्त थे। रज्जब की उक्ति है :

'जो हिरदै विश्वास ह्वै, तो हरि हिरदा माँहि।
जन रज्जब विश्वास बिन, बाहरि भीतरि नाँहि॥'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्त रज्जब ने अकल, अवरण ब्रह्म को प्रेममय अनुभव किया। वे आजीवन प्रेमसागर की लहरियों में आनन्दमग्न रहे।

सन्त रज्जब का जन्म सम्वत् १६२४ वि. के लगभग जयपुर के निकट सांगानेर में हुआ था। वे पठान थे। बचपन का नाम रज्जब अली था। उनके पिता जयपुर राज्य में अत्यन्त प्रतिष्ठित पद पर नियुक्त थे। उनका पालन पोषण ठाट-बाट से हुआ। घर में किसी वस्तु की कमी नहीं थी। जीवन सुखी था। रज्जब के बचपन के संस्कार अत्यन्त दिव्य और पवित्र थे। उन्हें साधु-सन्तों से विशेष प्रेम था। वे साधुओं की सेवा में बड़ी रुचि दिखाते थे। लोग उनके प्रति सहज स्नेही थे।

सम्वत् १९४४ वि. के लगभग की बात है। पिता ने रज्जब का विवाह सांगानेर से १४–१५ मील की दूरी पर आमेर में निश्चय किया। आमेरकी पहाड़ी में सन्त दादू का आश्रम था। दृश्य अमित रमणीय था। महात्मा दादू अपने कुछ शिष्यों की मण्डली में बैठ कर सत्संग कर रहे थे। वातावरण सरस और सुंदर था। तीसरे पहर का समय था। पहाड़ी के निकट की पगडन्डी से रज्जब की बारात चली जा रही थी। मीठी-मीठी शाहनाई बज रही थी। बारात विशेष ढंग से सजी हुई थी। सन्त के आश्रम का प्रभाव रज्जब पर पड़ चुका था। उनका मन दूल्हे के वेष में भी रह कर सुख और शान्ति से कोसों दूर था। रज्जब ने कीमती जोड़े-जामे पहन रखे थे। सिर पर मौर था। घोड़े पर सवार होकर जीवनसंगिनी का हाथ पकड़ने जा रहे थे। सहसा उनका घोडा आश्रम के सामने ठहर गया। सन्त दादू मस्ती में थे, ब्रह्मानन्द में मग्न थे। रज्जब ने सन्त का आशीर्वाद लेना चाहा, वे घोड़े पर से उतर गये। उन्होंने सन्त की चरण-धूलि सिर पर चढ़ायी ही थी कि जन्म-जन्म के संस्कार जाग उठे। उन्हें ऐसा लगा कि दादू से उनका शाश्वत सम्बन्ध है। नयन चार हुए। दूल्हे रज्जब घोड़े पर चढ़ने ही जा रहे थे, संसार की मञ्जिल पर पैर रखने ही वाले थे कि सन्त दादू के अधर स्पन्दित हो उठे :

'रज्जब तैं गज्जब किया,
सिर पर बांधा मौर।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आया था हरि भजन कूँ।
करै नरक की ठौर ॥'

सन्त दादू के शब्द-बाण ने सीधे कलेजे पर चोट की। सन्त के शब्द थे। निशाना चूकता ही किस तरह। बाराती स्तब्ध हो गये। रज्जब के हृदय में अध्यात्मज्योति का अवतरण हुआ। उन्होंने मौर दादू के चरणों पर रख दिया। विवाह रुक गया। घरवालों ने बहुत समझाया पर उन्होंने किसी की बात नहीं मानी। दादू ने परीक्षा ली, कहा कि तुम गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर भगवान का भजन करो। दादू ने समझाया कि यदि तुम विवाह नहीं करोगे तो आशंका है कि यौवनोन्माद तुम्हें परस्त्री पर दृष्टिपात करने के लिये विवश कर दे। रज्जब ने कहा कि इन नयनों में आप के चरण का सौन्दर्य समा गया है, इन्हें आप का दर्शन करते रहना है, मैंने आप को अपने प्राणेश्वर के रूप में पा लिया, संसार का रंग मुझ पर अब आप की कृपा से कभी नहीं चढ़ सकता है। रज्जब ने कहा:

'रज्जब घर-घरणी तजै,
पर घरणी न सुहाय।
अहि तजि अपनी कंचुकी,
काकी पहिरै जाय ॥'

रज्जब दादू के चरणों पर गिर पड़े। संत दादू ने दूल्हा-वेष में उनका आलिंगन किया। दोनों के प्राण एक हो गये। रज्जब ने सदा दूल्हा-वेष ही धारण किया। वे कहा करते थे कि इस वेष में मुझे प्राणप्रियतम मिल गये। दादू ने उनको शिष्य के रूप में स्वीकार किया, दीक्षा दी; वे उन्हीं के आश्रम में रहने लगे। सन्त के सम्पर्क में वे सन्त हो गये। संत रज्जब ने दादू ऐसे परम गुरु से आत्मज्ञान और सच्चिदानन्द परमात्मा का मर्म समझा। उनकी गुरुनिष्ठा उच्च कोटि की थी। गुरु और ईश्वर में वे तनिक भी भेद-भाव नहीं रखते थे। एक समय की बात है। सन्त दादू अपनी शिष्य-मण्डली के साथ परिभ्रमण कर रहे थे। रास्ते में एक नदी पड़ी। उसमें किनारे पर कीचड़ बहुत था। दादू ने शिष्यों से दो-चार छोटे-छोटे पाषाण-खण्ड

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रखने की आज्ञा दी। शिष्य लोग पत्थर खोज ही रहे थे कि सन्त रज्जब कीचड़ में लम्बे पड़ गये। उन्होंने दादू से विनयपूर्वक कहा कि आप इस देह पर चरण रख कर जाइये। आप के चरण की धूलि-कणिका से यह शरीर भवसागर से पार हो जायेगा। इस देह का इस समय सर्वोत्तम सदुपयोग यही है कि वह आपकी सेवा में लग जाय। सन्त दादू इस घटना से बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने रज्जब को गले लगाकर महती आत्मीयता प्रकट की।

सन्त रज्जब दादू को देखे बिना एक पल भी शान्त नहीं रह सकते थे। सन्त दादू उनके गुरुदेव ही नहीं—प्राण भी थे। सन्त दादू के ब्रह्म में लीन होने पर रज्जब उनके विरह से बहुत दुखी हुये। उनके लिये संसार में जीवन धारण करना दूभर हो गया। गुरु के वियोग में उन्होंने प्रण कर लिया कि भविष्य में किसी दूसरे का मुख नहीं देखूंगा। उन्होंने सदा के लिये आँखों में पट्टी बाँध ली। दादू के समाधिस्थ होने पर रज्जब सांगानेर में आकर तप करने लगे। दादू के प्रिय शिष्य बाल कवि 'छोटे' सुन्दरदास भी इस समय रज्जब के साथ सांगानेर में रहते थे। सन्त रज्जब ने दादू के सिद्धान्तों को क्रियात्मक रूप से अपने आचरण में चरितार्थ किया। सन्त का चरित्र विचित्र होता है। सन्त के जीवन की विचित्रता का पार पाना असम्भव है। सन्त का प्रत्येक आचरण शिक्षाप्रद होता है। एक बार किसी गृहस्थ ने सन्त रज्जब को शिष्यों सहित भोजन पर आमन्त्रित किया। वे शिष्यों के साथ गृहस्थ के घर जा रहे थे कि रास्ते में उनको ब्राह्मण मिला। उसके कपड़े फटे पुराने थे। रज्जब उसे अपने साथ गृहस्थ के घर ले गये। किसी भी साधु ने ब्राह्मण को पास में बैठा कर भोजन कराना स्वीकार नहीं किया। सन्त रज्जब ने उसे अपने पास बैठा लिया। शिष्यों ने व्यङ्ग किया कि आप ने ब्राह्मण को बगल में गद्दी क्यों दी। रज्जब ने सोचा कि शिष्यों को गद्दी का अभिमान है, उन्होंने जान-बूझकर अपनी गद्दी का उत्तराधिकारी उसी ब्राह्मण को बनाया। शिष्यों को यह बात अच्छी न लगी। उन्होंने रज्जब से कहा कि आप ने इस दरिद्र को अच्छी गद्दी दी। सन्त रज्जब ने शाप दिया कि मेरी गद्दी पर सदा दरिद्र ही बैठेंगे। इस प्रकार उन्होंने शिष्यों को सद्ज्ञान का मर्म समझाया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एक बार दादू के शिष्य सन्त वषना जी के घर रज्जव जी गये हुए थे। वषना जी की स्त्री ने रज्जव का सुंदर रूप देखा, वषना जी से उसने कहा कि दादू के ये शिष्य बड़ी सम्पदावाले हैं। इस पर वषना ने उत्तर दिया:

'रज्जव को या सम्पदा
गुरु दादू दीनी आप।
वषना को या आपदा,
था चरणों रा प्रताप॥'

वषना की स्त्री शरमा गयी। सन्त रज्जव वषना जी के उत्तर पर मुसकराने लगे। सन्त रज्जव के मुखमण्डल पर सदा आत्मा की ज्योति झलकती रहती थी। दादू की कृपा में वे पूर्ण विश्वास रखते थे। सन्त रज्जव के अनुयायी रज्जवावत कहलाते हैं। सन्त रज्जव ने अपनी सीख में सदा गुरु द्वारा निर्दिष्ट सत्य-पथ का प्रश्रय लिया।

सन्त रज्जव ने दादू से दीक्षित होने के वाद आजीवन ब्रह्मानन्द का चिंतन किया तथा अपनी तत्सम्वन्धी अनुभूति के अनुसार पद-रचना की। उन्होंने 'अंगवधू' के नाम से दादू के पदों का भी संग्रह किया। उनकी भाषा चलती-फिरती और प्रवाहमयी थी, सव लोगों की समझ में आसानी से आ सकती थी। सन्त रज्जव की उक्ति है:

'वेद सु वाणी कूप जल, दुख सूं प्रापति होइ।
सवद साखि सरवर सलिल, सुख पावै सब कोइ॥
पराकिरत मधि ऊपजै, संसकिरत सब वेद।
अव समझावै, कौन करि, पाया भाषा भेद॥'

रज्जव ने कहा कि जिसके हृदय में हरि का निवास नहीं है वह तो सूने घर के समान है। परमात्मा तो अपना रस देने के लिये, आनन्द-वितरण के लिये सदा उत्सुक रहते हैं। वे आनन्दरस देते थकते ही नहीं हैं और उनका दास-प्रेमी भी उसे लेते-लेते नहीं थकता है। परमात्मा तो रसरसिया हैं, वे युगो-युगों से हमारी रससम्वन्धी प्यास पूरी करते चले आ रहे हैं: रज्जव की वाणी है:

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'साईं देता न थकै, लेता थकै न दास।
रज्जब रसरसिया अमित, जुग-जुग पूरे प्यास॥'

रज्जब ने सचराचर में अपने प्रियतम परमात्मा की व्याप्ति और अभिव्यक्ति का अनुभव किया। रज्जब ने गुरु के प्रति अडिग प्रेम की अभिव्यक्ति करते हुए घोषणा की थी:

'चन्द सूर पाणी पवन, धरती, अरु आकास।
ये साई के कहे में, त्यूं 'रज्जब' गुरुदास॥'

जब उन्होंने गुरु के परलोक-गमन पर आँख में पट्टी बांधी थी तब कहा था कि मेरे ऐसे असहाय से दयामय परमात्मा ने दादू ऐसे परम धन को छीन कर महान दुख दिया है। उन्होंने गरीब की रोजी छीन ली। रज्जब का कथन है:

'दीनदयाल दिनो दुख दीनन,
दादू-सी दौलत हाथ सौ लीनी।
रोष, अतीतन सौं जु कियो हरि,
रोजी जु रंकनि की जग छीनी॥'

दादू की कृपा ने ही उन्हें महान सन्त बनाया। सन्त रज्जब ने परमात्मा के चिन्तन का मूलाधार भजन स्वीकार किया, वे भजन में दृढ़ विश्वास रखते थे। उन्होंने कहा कि ब्रह्म 'अमिल' है, और सब में मिला हुआ भी है, वह 'अकल' और सब में 'सकल' है, उसकी शक्ति से ही समस्त जगत् प्राणमय है। उसकी गति विचित्र है, वह किसी से भी किसी समय अलग नहीं है। रज्जब ने कहा कि ब्रह्म के चिन्तन, स्मरण, भजन और मनन में ही परम सुख सन्निहित है:

'भजन बिन भूलि पर्‌यो संसार।
चाहैं पछिम जात पूरब दिसि, हिरदै नहीं विचार।
बाँछैं ऊरध अरध सूं लागैं, भूले मुगध गंवार।
खाइ हलाहल जीयो चाहैं, परत न लागै बार।
बैठे सिला समुद्रतिरन कूं, सो सब बूड़न हार।
नाम बिना नाहीं निसतारा, कबहूँ न पहुँचै पार।
सुख के काज धसे दीरघ दुख, बहे काल की धार।
जन 'रज्जब' यों जगत बिगूच्यो, इस माया की लार॥'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रज्जब ने निर्गुण-सगुण से परे अवरण, अकल चिन्मय परमात्मा की महिमा का वखान किया। उन्होंने कहा कि मेरे परमात्मा मायारहित हैं, घट-घट में रमने वाले हैं, परम पवित्र हैं, पूर्ण ब्रह्म हैं, निर्गुण और सगुण होकर भी दोनों से परे हैं, उनकी लीला विरले की ही समझ में आती है। उन्होंने कहा कि राम-रस पीते रहना ही साधना का स्वरूप है, इस रस को पान करने वाले सदा सुखी रहते हैं। साधना की सिद्धि तव तक नहीं होती है जव तक जीव कहता है कि मैंने तत्व जान लिया। जानना तो तव होता है जव जाननेवाला ज्ञान की सीमा से परे हो जाय। उन्होंने कहा कि राम का नाम ही भवसागर से पार उतारने में समर्थ है। उन्होंने कथनी की अपेक्षा करनी पर अधिक जोर दिया। उनकी उक्ति है:

'करणी कठिन सुवन्दगी, कहणी सब आसान।
जन 'रज्जव' रहणी विना, कहा मिलै रहिमान॥'

निस्संदेह परमात्मा 'रहणी' से ही प्रसन्न होते हैं।

रज्जब ने मध्यकालीन सन्तों की तरह शब्द से ही सृष्टि की उत्पत्ति स्वीकार की। उन्होंने कहा कि समस्त संसार शब्द का ही 'पसारा' है, घट-घट में शब्द ही विद्यमान है, राम की रचना शब्दमयी है।

'सकल पसारा शब्द का, शब्द सकल घट माहिं।
रज्जव रचना राम की, शब्द सु न्यारी नाहिं॥'

सन्त रज्जव १२२ साल तक जीवित थे। उन्होंने सम्वत् १७४६ वि. के लगभग चोला छोड़ा। जीवन के अन्तिम दिन उन्होंने सांगानेर में ही विताये। सन्त रज्जव का समस्त जीवन-कथनी करनी और रहनी का पवित्र समन्वय था। सरस्वती, गंगा और यमुना के संगम के समान परम पवित्र था। वे अनुभवी सन्त थे, प्रेमी महात्मा थे। उन्होंने अपने जीवन में सदा महती गुरुनिष्ठा और अथाह ईश्वर-प्रेम का रस उतारा। वे निर्गुणधारा के रसिक सन्त थे।

रचना

रज्जव की वाणी की संख्या, १००१३ है। उनकी रचना दो ग्रन्थ-'वाणी!' और 'सर्वांगी' में विभाजित है। रचना में प्रेम और मस्ती का सुंदर समावेश है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वाणी

दादू दरिया राम जल, सकल संत जन मीन।
सुख सागर में सब सुखी, जन 'रज्जब' जे लीन॥
दरद नहीं दीदार का, तालिब नाहीं जीव।
'रज्जब' विरह वियोग बिन, कहाँ मिलै सो पीव॥
'रज्जब' रीती आतमा, जे हिरदै हरि नाहिं।
तहाँ समागम को करै, सूने मंदिर माहिं॥
अब कै जीते जीत है, अब कै हारे हार।
तो 'रज्जब' रामहिं भजो, अलप आयु दिन चार॥
राम रस पीजिये रे, पीये सब सुख होइ।
पीवत ही पातक कटैं, सब संतनि दिसि जोइ॥
निस दिन सुमिरण कीजिये, तनमन प्राण समोइ।
जनम सुफल साईं मिलै, सोइ जपि साधहु होइ॥
सकल पतित पावन किये, जे लागे लै लोइ।
अति उज्ज्वल, अघ ऊतरै, किलविष राखै धोइ॥
यहि रस-रसिया सब सुखी, दुखी न सुनिये कोइ॥
जन 'रज्जब' रस पीजिये, संतनि पीया सोइ॥
राम रंगीले के रंग राती।
परम पुरुष संगि प्राण हमारो, मगन गलित मदमाती॥
लाग्यो नेह नाम निरमल सूँ, गिनत न सीली ताती।
डगमग नहीं, अडिग ह्वै बैठी, सिर धरि करवत काती॥
सब विधि सुखी राम ज्यूं राखै, यहु रसरीति सुहाती।
जन 'रज्जब' धन ध्यान तिहारो, बेर बेर बलि जाती॥
औधू अकल अनूप अकेला।
महापुरुष माहें अरु बाहर, माया मधि न मेला॥
सब गुन रहित रमे घट भीतरि, नाद बिंद ते न्यारा।
परम पवित्र परम गति खेलै, पूरण ब्रह्म पियारा॥
अंजन माहिं निरञ्जन निरमल, गुण अतीत गुण माहीं।
सदा समीप, सकल विधि समरथ, मिले सु मिलि नहिं जाहीं।
सरबंगी समसरि सब ठाहर, काहू लिपित न होई।
जन 'रज्जब' जग पति की लीला, बूझे बिरला कोई॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महात्मा सुंदरदास

गुरु के चरन की रज लै कै, दोउ नैन के बीच अंजन दीया॥
तिमिर मेटि उँजियार हुआ, निरंकार पिया को देख लिया॥
कोटि सुरज तहँ छिपे घने, तीनि लोकधनी धन पाय पिया।
सतगुरुने जो करी किरपा, मरि के यारी जुग जुग जीया॥

—सन्त यारी साहब

महात्मा सुन्दरदास मध्यकाल के उत्तरार्ध की निर्गुण सन्त-विचार-धारा के शंकराचार्य थे। उन्होंने निर्गुण साधना के प्रत्येक अंग पर बड़ी सावधानी और सूक्ष्म दृष्टि से शास्त्रसम्मत प्रकाश डाला तथा आत्मज्ञान से परिपुष्ट किया। वे विद्वान सन्त थे। उन्होंने अपने गुरु दादू से दीक्षित होने पर तथा वैराग्य लेने पर भी अधिक समय तक काशी की विद्वन्मण्डली में निवास कर अध्यात्म विद्या का अध्ययन किया था। उस समय काशी में मधुसूदन सरस्वती ऐसे वेदान्ती और तुलसीदास ऐसे सन्त-शिरोमणि निवास करते थे। सुन्दरदास की रचनाओं में ज्ञान और भक्ति का सम्मिश्रण मिलता है।

महात्मा सुंदरदास अकबर और जहांगीर के समकालीन थे। उन्होंने अपनी शिक्षा-दीक्षा से देश को आध्यात्मिक उदारता प्रदान की; आत्मा की अभेदता और एकरूपता पर जोर दिया। राघवदास ने अपने भक्तमाल ग्रन्थ में लिखा है:

'भक्ति ज्ञान हठ सांखि लौ सर्व शास्त्र पारहि गयो।
संक्राचारय दूसरो दादू के सुंदर भयो॥'

सन्त सुंदरदास की कथनी, करनी और रहनी उच्च कोटि की थी। वे ज्ञानपूर्वक निर्मल ब्रह्मानन्दरस में सदा मग्न रहते थे। उनकी काव्यकारिता सन्त-साहित्य के क्षेत्र में एक विशिष्ट प्रयोग-शैली की प्रतीक स्वीकार की जा सकती है। उन्होंने अपने अनुभवों को विशेष मात्रा में ज्ञान के पलड़े पर तौला पर ऐसा होने पर भी रचना में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हृदय-पक्ष का वल घटने नहीं पाया है। उन्होंने भक्ति और प्रेमसम्बन्धी उक्तियों से सन्त-साहित्य को समृद्ध किया।

सन्तों के चरित्र में विचित्रता और लोकोत्तर घटना का समावेश होता है। सन्त सुंदरदास के सम्बन्ध में अनेक लोकोत्तर घटनाओं का विवरण मिलता है। उनके जन्म के सम्बन्ध में विचित्र कथा का उल्लेख है। सन्त सुन्दरदास के प्राकट्य के कई साल पहले से ही जयपुर तथा अड़ोस पड़ोस के प्रान्तों और सम्पूर्ण उत्तर भारत में दादू का नाम प्रसिद्ध हो चुका था। वे नरायणा की पहाड़ी गुफा में रह कर तप कर रहे थे। उनके शिष्य नित्य निकटस्थ ग्रामों से भिक्षा माँग कर लाया करते थे। सन्त दादू के एक शिष्य जग्गा थे। एक दिन जग्गा आमेर में भिक्षा माँगने गये थे। वे एक वनिये की दूकान के सामने ठहर गये। दूकान पर एक अविवाहित कन्या चरखे पर सूत कात रही थी। जग्गा ने कहा, 'दे माई सूत, ले माई पूत।' कुमारी ने सूत दिया। जग्गा ने सूत हाथ में लेते हुए कहा, 'ले माई पूत।' जग्गा ने आश्रम पर लौट कर इस घटना का वर्णन दादू दयाल से किया। सन्त दादू ने विचार किया कि उस कुमारी के भाग्य में तो पुत्र ही नहीं है। उन्होंने जग्गा से कहा कि तुमने अनर्थ कर डाला। अव तो उपाय यह है कि तुमको उस कुमारी के गर्भ से जन्म लेना होगा। जग्गा ने गुरु की आज्ञा मान ली पर निवेदन किया कि ऐसा वरदान दीजिये कि जन्म लेने पर आप के चरणों का ही आश्रय मिले। सन्त दादू ने कहा कि ऐसा ही होगा। जग्गा कुमारी सती के घर गये। निवेदन किया कि सती का विवाह कर दीजिये और ससुराल में कहला दीजिये कि इसका पुत्र छः साल की अवस्था में वैराग्य ले लेगा। सती के माता-पिता ने द्यौसा के धनी महाजन परमानन्द से विवाह कर दिया। जग्गा ने सुन्दर के रूप में सती के गर्भ से दादू के आशीर्वाद-स्वरूप जन्म लिया। इस प्रकार सुंदरदास का जन्म द्यौसा में सम्वत् १६५३ वि. की चैत शुक्ला नवमी को खण्डेलवाल वैश्य कुल में हुआ था। उनके पिता का नाम चोखा—परमानन्द था और माता सती देवी थीं। उनका पालन-पोषण बड़े अच्छे ढंग से हुआ। वे देखने में बड़े सुंदर थे इसलिये माता-पिता ने उनका नाम सुंदरदास रखा। वे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बचपन से ही दिव्य थे, उनकी प्रतिभा विलक्षण थी। भगवान के नाम-श्रवण से प्रसन्न हो उठते थे। साधु-सन्तों को देख कर पुलकित हो जाते थे। लोग देखते ही उनकी ओर आकृष्ट हो जाते थे।

सम्वत् १६५९ वि. के लगभग दादू द्यौसा गये हुए थे। उस समय सुंदरदास की अवस्था छः साल की थी। सुंदर के पिता बड़े साधुप्रेमी थे। उन्होंने सन्त दादू की गोद में सुंदरदास को रख दिया। दादू ने कहा 'अरे सुन्दर, तुम आ गये।' मानो सुंदर के रूप में उन्होंने जग्गा का ही स्मरण किया हो। उन्होंने सुंदरदास को दीक्षा दी। सुंदरदास की उक्ति है कि स्वामी दादू मेरे गुरु हैं और मैं उनका शिष्य हूँ।

'सुंदर सतगुरु आपु ते किया अनुग्रह आइ।
मोह निसा में सोवतें, हमकौं लिया जगाइ॥
सुंदर सतगुरु हैं सही, सुंदर सिच्छा दीन्ह।
सुंदर वचन सुनाइ कै, सुंदर सुन्दर कीन्ह।'

दादू के स्पर्श से सुंदरदास की अंग कान्ति बढ़ गयी, वे भीतर और बाहर–दोनों ओर सुंदर हो उठे। दादू के साथ उनके समाधि-काल तक नरायणा की गुफा में रह कर सन्तों की सेवा करने लगे। लोग बालसन्त से बहुत प्रसन्न रहते थे। द्यौसा के निकट टहलड़ी में दादू के शिष्य जगजीवनदास का आश्रम था। दादू ने सुंदरदास को उनकी देखरेख में रख दिया। दादू के सम्वत् १६६० वि. में ब्रह्मलीन होने पर सुंदरदास जगजीवनदास के ही संरक्षण में रहने लगे। ग्यारह साल की अवस्था में सुंदरदास जी जगजीवनदास की सम्मति से काशी में विद्या पढ़ने के लिये आये। काशी में उन्होंने अनेक अध्यात्म-शास्त्र और वेदान्त ग्रन्थों का अध्ययन किया। बड़े-बड़े महात्माओं और सन्तों का सत्संग प्राप्त किया। वे अस्सीघाट पर रहते थे। अस्सी घाट पर महात्मा तुलसीदास जी भी रहते थे। यह निश्चित-सी बात है कि सुंदरदास ने तुलसीदास के सत्संग से लाभ उठाया होगा। सम्वत् १६८३ वि. के लगभग सुंदरदास लौट आये। फतहपुर के शेखावटी ग्राम में प्रागदास नाम के एक प्रसिद्ध महात्मा रहते थे। सुंदरदास उन्हीं के पास रहने लगे। उनके आश्रम में सुंदरदास ने पन्द्रह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

साल तक निवास किया। प्रागदास का स्वर्गवास होने पर उन्होंने तीर्थयात्रा की। उत्तरीय भारत, पंजाब, सौराष्ट्र और राजस्थान में स्थान-स्थान पर जाकर उन्होंने सन्त-महात्माओं का दर्शन किया। तीर्थों से लौट कर वे फिर फतहपुर में रह कर तप करने लगे। तप के फल-स्वरूप उनका योगसम्बन्धी अनुभव बढ़ने लगा। फतहपुर में उनका मन अधिक दिनों तक नहीं लग सका। उन दिनों दादू के प्रधान शिष्य सन्त रज्जब जो अधिक वृद्ध हो चुके थे सांगानेर में रहते थे। सुंदरदास उन्हीं के आश्रम में रहने लगे। रज्जब जी उनको बहुत मानते थे और सुंदरदास रज्जब का बहुत सम्मान करते थे।

सम्वत् १७४६ वि. में रज्जब जी का देहावसान हो गया। सांगानेर में जाने पर लोगों ने सुन्दरदास से इस घटना को छिपाने का बहुत प्रयत्न किया। पर सुन्दरदास को कुछ समय के बाद सन्त रज्जब के चोला-त्याग का पता चल गया। वे रज्जब के परलोकगमन से बहुत दुखी हुए। सुन्दरदास के लिये उनका विरह असह्य हो गया। उनके हृदय को बड़ा धक्का लगा।

काशी से लौटने पर प्रागदास और रज्जब ऐसे सन्तों के सम्पर्क में रह कर सुंदरदास ने अध्यात्मपरक ग्रन्थों की रचना की ओर ध्यान दिया। उनकी रचना में अनुभव और शास्त्र ज्ञान का निष्पक्ष समन्वय पाया जाता है। सन्त सुन्दरदास ने अपनी रचनाओं में दादू के सिद्धान्तोंका स्पष्टीकरण किया और साथ-ही-साथ अपनी अनुभूति के रंग में रंगे आध्यात्मिक तथा वैराग्यपरक तत्वों का समीचीन विश्लेषण किया।

सुंदरदास ने दादू के 'सम्प्रदाय परब्रह्म' का अनुगमन किया। दादू के सम्प्रदाय को 'ब्रह्म सम्प्रदाय' भी कहा जाता है। ब्रह्म-चिन्तन ही सुंदरदास का सर्वोत्कृष्ट सिद्धान्त था। उनकी उक्ति है :

'भाई हो हरिदरसन की आस।
कब देखौं मेरा प्रान सनेही, नैन मरत दोऊ प्यास।
पल छिन आध घरी नहिं बिसरौं, सुमिरौ सांस उसांस।
घर-बाहरि मोहिकल न परत है, निसदिन रहत उदास।
यहै सोच सोचत मोहि सजनी, सूके रकत र मास।
सुंदर विरहिन कैसे जीवै, बिरह बिथा तन त्रास।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्त सुंदरदास अद्वैतवादी अथवा वेदान्ती सन्त थे। उन्होंने परम निर्मल ज्ञान की ही बात कही है। ब्रह्म में ही उन्होंने उपासना का श्रेय स्थिर किया।

सन्त सुंदरदास की गुरु-निष्ठा उच्च कोटि की थी। सन्त दादू की कृपा का उन्होंने अपने जीवन में पद-पद पर अनुभव किया। सन्त दादू के सम्प्रदाय में आदि गुरु की स्वीकृति ब्रह्म के रूप में है। परमात्मा ही आदि गुरु हैं। सुन्दर-दास का मत था कि सद्गुरुब्रह्मस्वरूप हैं, वे शरीर धारण कर संशय का नाश करते हैं। उनकी कृपा से अविलम्ब हृदय में ज्ञान का प्रकाश होता है। उन्होंने अनुभव किया कि गुरु की महिमा गोविन्द से अधिक है। गुरु के सम्पर्क में शिष्य दिव्य हो जाता है, उसके शरीर और आत्मा दोनों सुंदर हो जाते हैं।

'सुंदर सतगुरु सहज में कीयै पैली पार।
और उपाय न तिरसकै, भवसागर संसार।।'

सुंदर ने कहा कि असंख्य जीवों को भवसागर से पार उतारने के लिये सर्वसमर्थ गुरु का संसार में आगमन होता है; स्वयं हरि उनको इस महान् कार्य-सम्पादन के लिये पृथ्वी पर भेजते हैं। गुरुद्वारा रामनाम का उपदेश प्राप्त करने पर मन में वैराग्य की भावना दृढ़ होती है। गुरु देव की कृपा से ही मार्ग का पता चलता है; मन में भक्ति दृढ़ होती है; संशय दूर हो जाते हैं; ज्ञान की प्राप्ति होती है; सारे कार्य सिद्ध होते हैं, लोक-वेद दोनों ऐसा ही गाते हैं; वे ही सद्गति प्रदान करते हैं और उनकी कृपा से गोविन्द की प्राप्ति होती है— ऐसा सन्त सुन्दरदास का मत था। सन्त सुंदरदास ने जीव, ब्रह्म और गुरु— सबको सदा एक रूप देखा। दादू के प्रति अगाध भक्ति व्यक्त की है।

सुंदरदास ने ब्रह्म के सहज रूप का ही आजीवन चिन्तन किया— यही उनकी साधना का क्रम है। वास्तविक रूप में वे सिद्ध-साधक सन्त थे, उनकी साधना सर्वथा सिद्ध थी। सत्संग में उनका अपार विश्वास था। सन्तों की चरण-कृपा से भवसागर को पार करना अत्यन्त सरल है – ऐसी उनकी उक्ति है :

'सन्त समागम कीजिये तजिये और उपाइ।
सुंदर बहुते उद्धरे, सतसंगति में आइ।।'

उन्होंने अपनी साधना सरस ढंग से निबाही। एक ओर उन पर वेदान्त का रंग था तो दूसरी ओर सन्त रज्जब के सम्पर्क से वे भगवद्प्रेम-प्रिया प्रियतम भाव से, सूफी साधना-क्रम से सराबोर थे। उन्होंने बरवै छन्द में परमात्मा के प्रति प्रेम का अत्यन्त सुंदर चित्रण किया है :—उनका कथन है :

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

"सब के हू मन भावन सरस वसन्त।
करत सदा कौतूहल कामिनि कन्त।।
झूलत वैसि हिंडोरनि पिय कर संग।
उत्तम चीर विराजल, भूषन अंग।।
निस दिन प्रेम हिंडोलवा दिहल मचाइ।
सेई नारिसभागिनि, झूलइ जाइ।।
सुख निधान परमातम आतम अंस।
मुदित सरोवर महिया क्रीडत हंस।।
एक सेज वर कामिनि लागलि पाइ।
पियकर अंगहि परसत गइल विलाइ।।
रस महिया रस होइहि नीरहि नीर।
आतम मिलि परमातम खीरहिं खीर।।
सरिता मिलइ समुद्रहि भेद न कोइ।
जीव मिलइ परब्रह्मइ ब्रह्मइ होइ।।"

जीव और ब्रह्म और आत्मा और परमात्मा के मिलन की पूर्ण रसमयी सुखानुभूति ही सन्त सुंदरदास की साधना की सिद्धि की प्रतीक है। सन्त सुंदरदास ने ब्रह्मसाक्षात्कार के मूल में ज्ञान और प्रेम दोनों का अस्तित्व समान रूप से स्वीकार किया।

सन्त सुंदरदास की अनुभूति संकेत करती है कि बिना माया का बन्धन छिन्न-भिन्न किये आत्मज्ञान की प्राप्ति असम्भव है। माया का बन्धन आत्मज्ञान का सबसे बड़ा शत्रु है। उन्होंने दृढ़तापूर्वक गर्वोक्ति की :

'स्वपने में मैला भयो, स्वप्नें माहि विछोह।
'सुंदर' जाग्यो स्वप्न तें, नहीं मोह निर्मोह।।'

सुंदरदास ने निर्गुण ज्ञान-धारा के प्रकाश में वेदान्त वेद्य ब्रह्म–परमात्मा-आत्मा के सम्बन्ध में स्पष्ट कहा कि आत्मा अजर है, विजातीय देह विनश्वर है, दीपक नहीं जलता है, तेल और 'बाती' ही जलते हैं। अहं परमानन्दमय है, आत्मज्योति रूप है, ब्रह्म के योग से साक्षात् ब्रह्म ही हो जाता है, इसमें द्वैतभाव का लोप हो जाता है, द्विविधा मिट जाती है। सुन्दरदास की उक्ति है :

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'सुंदर' कहत तातें आतमा चैतन्यरूप
आपको भजन सो तो आपही करतु है।'

संत सुंदरदास ने विवेक की भाषा में सर्वात्मवाद की सीख दी कि देह पंचभूतों से निर्मित है.... एक प्राण सब में समान रूप से विद्यमान है; सबको भूख और प्यास लगती है; मन सदा संकल्प और विकल्प में घूमता रहता है—ऐसा करना उसका स्वभाव है, वह अज्ञानी है; आत्मविचार करने पर केवल आत्मा की ही सत्ता चराचर में दृष्टिगोचर होती है; आत्मा को छोड़कर किसी और की सत्ता नहीं है। उन्होंने चेतावनी दी, परमात्मा के चिन्तन की ओर जीव को उन्मुख किया :

'सोवत सोवत सोइ गयो सठ, रोवत रोवत कै बेर रोयो।
गोवत गोवत गोइ धरयो धन, खोवत खोवत तैं सब खोयो।।
जोवत जोवत बीत गये दिन, बोवत बोवत लै विष बोयो।
'सुंदर'सुंदरराम भज्यो नहीं, ढोवत ढोवत बोझहि ढोयो।।'

सन्त सुंदरदास ने समस्त जगत को ब्रह्ममय देखा। उन्होंने अनुभूति पूर्वक कहा कि एकमात्र विश्वास के साथ जगदीश्वर का ही भजन करना चाहिये;—यही सबसे बड़ा धर्म है, पवित्रतम कर्म है। जगदीश्वर ही एकमात्र प्रियतम हैं, उन्हीं के साथ पातिव्रत निभाना सब प्रकार से श्रेयस्कर है। निरञ्जन ही ध्येय हैं— यही परम ज्ञान है। भक्ति है। उन्होंने सन्तमत को साक्षी बना कर कहा :

'सुंदर और कछू नहीं, एक बिना भगवन्त।
तासौ पतिव्रत राखिये, टेरि कहैं सब सन्त।।'

सन्तों के प्रति सुंदरदास का परम उच्च भाव था। सन्त ही सत्य के आधार होते हैं; सत्य उनकी कृपा से प्राणमय होता रहता है; वे सत्य के कल्पतरु होते हैं। सन्त सुंदरदास का सन्त-महिमा पर एक सुंदर पद है: उन्होंने सन्त-गरिमा की साहित्यकारिता प्रदान की है :

'बलिहारी हूँ उन संत की।
जिनको और ठौर कछु नाहीं, कहैं कथा भगवन्त की।।
सीतल हृदय सदा सुखदाई, दया करैं सब जन्त की।
देखि-देखि कै मुदित होत हैं, लीला आप अनन्त की।।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जिनतें गोप कहूँ कछु नाहीं, जानत आदि'रु अन्त की।
'सुंदरदास' कहै जन तेई, राखत बात सिद्धन्त की॥'

अन्तिम अवस्था में ही नहीं, आजीवन उन्होंने सन्तों के सम्पर्क में परमानन्दरस प्राप्त किया। उनका स्वभाव प्रेममय-मधुर और निर्मल था। सन्त रज्जव के आत्मलीन होने से वे इतने दुखी थे कि उनके लिये जीवन धारण करना कठिन हो गया। वे तिरानबे साल के हो चुके थे। स्वास्थ्य प्रतिदिन गिरता जा रहा था: उनके साथी प्रायः सब-के-सब ब्रह्मलीन हो चुके थे। सुंदरदास का रोग असाध्य होता गया। उन्होंने रामनाम रूपी औषध का ही अन्तिम समय में सेवन किया। उन्होंने बड़े विश्वास के साथ कहा:

'वैद्य हमारे राम जी औषध हू हरिनाम।
'सुंदर' यहै उपाइ अब, सुमिरण आठो जाम॥
सात बरस सौ में घटैं इतने दिन को देह।
'सुंदर' आतम अमर है, देह खेह की खेह॥'

सांगानेर में ही सम्वत् १७४६ वि. में कार्तिक शुक्ला अष्टमी को तीसरे पहर उन्होंने चोला छोड़ दिया। सांगानेर नदी के उत्तर तट पर उनके शव का दाह संस्कार हुआ: सांगानेर में उनकी समाधि है, सांगानेर-शिला लेख में यह उत्कीर्ण है:

'संवत सत्रह सौ छियाला, कातिग सुदी अष्टमी उजियाला।
तीजै पहर वृहस्पति वार, सुंदर मिलिया सुंदर सार॥'

सन्त सुंदरदास का आत्मज्ञान सत्रहवीं सदी के निर्गुण सन्त साहित्य का मूलाधार है। सन्त सुन्दरदास ज्ञानी, भक्त और सन्त के आत्मरूप थे।

रचना

सन्त सुंदरदास के ग्रन्थों की संख्या सैंतीस है। ज्ञानसमुद्र सर्वांग योग, पंचेन्द्रिय चरित, सुख समाधि, स्वप्न प्रबोध, वेदविचार, सहजानन्द, सुंदरविलास आदि प्रसिद्ध रचनायें हैं।

वाणी

प्रीति सहित जे हरि भजैं, तब हरि होहिं प्रसन्न।
'सुंदर' स्वाद न प्रीति बिन, भूख विना ज्यों अन्न॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जब मन देखै जगत कों, जगत रूप ह्वै जाइ।
'सुंदर' देखै ब्रह्म कों, तब मन ब्रह्म अघाइ॥
उहै ब्रह्म गुरु सन्त उह, वस्तु विराजत येक।
वचन विलास विभाग श्रम, वन्दन भाव विवेक॥
सुद्ध हृदय जाकौ भयौ, उहै कृतारथ जान।
सोई जीवन मुक्त है, 'सुंदर' कहत वखान॥
'सुंदर' समरथ राम है, जो कछु करै सु होइ।
जो प्रभु कों कछु कहत है, ता सम वुरा न कोइ॥
एक सही सव के उर अन्तर ता प्रभु कूं कहु काहि न गावे।
संकट माहि सहाय करै पुनि सो अपनी पति क्यूं बिसरावे॥
चारि पदारथ और जहाँ लगि आठहु सिद्धिनवौ निधि पावे।
सुंदर छार परौ तिनके मुख जो हरि कूं तजि आन कूं ध्यावे॥
तू कछु और विचारत है नर तेरो विचार धर्‌यो ही रहैगो।
कोटि उपाय करै धन के हित भाग लिख्यौ तितनोहि लहैगो।
भोर की सांझ घरीपल मांझ सुकाल अचानक आइ गहैगो॥
राम भज्यो न कियो कछुकीरत 'सुंदर' यूं पछिताइ रहैगो॥
जो कोइ जाइ मिलै उनसूं नर होत पवित्र लगै हरि रंगा।
दोष कलंक सबै मिटि जाइसुनीचहु जाइ जु होत उतंगा॥
ज्यूंजल और मलीन महा अति गंगमिल्यो हुइ जातहि गंगा।
'सुंदर' सुद्ध करै ततकाल जु है जग माहिं बड़ो सत संगा॥
नर राम-भजन करि लीजिये।
साध-संगति मिलि हरिगुन गइये, प्रेम मगन रस पीजिये॥
भ्रमत-भ्रमत जग में दुख पायौ, अब काहे को छीजिये।
मनिषा जनम जानि अतिदुरलभ, कारिज अपनो कीजिये॥
सहज समाधि सदा लयलागै, इहि विधि जुग-जुग जीजिये
'सुंदरदास' मिलै अविनासी, दण्ड काल सिर दीजिये॥
संत सुखी, दुखमय संसारा।
संत भजन करि सदा सुखारे, जगत दुखी गृह के विवहारा।
संतन कै हरिनाम सकल निधि, नाम सजीवनि नाम अधारा॥
जगत अनेक उपाइ कष्ट करि उदर पूरना करै दुखारा॥
सतंनि को चिंता कछु नाहीं, जगत सोच करि करि मुख कारा॥
'सुंदरदास' संत हरि सनमुख, जगत विमुख पचि मरै गँवारा॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संत मलूकदास

'जो काया कंचनमयी, रतनों जड़िया चाम।
'दरिया' कहै किस कामका, जो मुख नाहीं राम॥'

—सन्त दरिया साहब मारवाड़ी

सन्त मलूकदास विक्रमीय सत्रहवीं और अठारहवीं सदी के महान सन्तों में से एक थे। वे सिद्ध सन्त थे। उनकी सबसे बड़ी मौलिकता यह है कि उन्होंने निर्गुणधारा-चिन्तन में आत्माराम निरञ्जन साहब परमात्मा के प्रति ज्ञान के साथ सुदृढ़ विश्वास का भी पक्ष लिया। उन्होंने राम के चरण पर सम्पूर्ण निर्भरता अथवा शरणागति की निर्गुण ज्ञान धारा के माध्यम से सीख दी। वे शाहजहाँ और औरंगजेब के समकालीन थे। बादशाह औरंगजेब ने उनके चमत्कारों और सिद्धियों से प्रभावित होकर उनके प्रति बड़े पूज्यभाव व्यक्त किये थे। सन्त मलूकदास का मौलिक आत्मचिंतन सन्त-साहित्य की समृद्धि में एक बहुत बड़ा योग – देन स्वीकार किया जा सकता है। कड़ा, जयपुर सौराष्ट्र, मुलतान, नैपाल, काबुल आदि में उनकी शिष्य-परम्परा उनके जीवन काल से ही प्रचलित और प्रतिष्ठित होती आ रही है। निस्सन्देह सन्त मलूकदास उच्चकोटि के सन्त थे।

उत्तर भारत में प्रयाग जनपद में कड़ा एक अत्यन्त इतिहासप्रसिद्ध स्थान है। कड़ा ग्राम में विक्रमीय सत्रहवीं सदी के द्वितीय चरण में एक प्रतिष्ठित खत्री-वंश का बड़ा नाम था। इसी वंश में सम्वत् १६३१ वि. की वैशाख कृष्ण पंचमी को सन्त मलूकदास का जन्म हुआ था। उनके पिता का नाम सुंदरदास था। पितामह जठरमल और प्रपितामह वेणीराम थे। मलूकदास बचपन से ही बड़े कोमल स्वभाव के थे। दया और परोपकार के भाव उनमें कूट-कूट कर भरे हुए थे। उनके संस्कार बड़े दिव्य थे। वे सदा गम्भीरतापूर्वक कुछ-न-कुछ सोचा करते थे। साधु सन्तों के प्रति उनके हृदय में स्वाभाविक आकर्षण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

था। पांच साल की अवस्था में वे अपने समवयस्कों के साथ गलियों में खेला करते थे। यदि रास्ते पर कंकड़ दीख पड़ते थे तो उन्हें हटा देते थे जिससे दूसरों के पैरों में न गड़ जायें। लोग उनकी ऐसी चित्त-वृत्ति देख कर आश्चर्यचकित हो जाते थे। उनको आजानुबाहु देख कर एक सन्त ने कहा था कि यातो ये महाराजा होंगे या बहुत बडे साधु होंगे।

साधु-सन्तों को देखते ही मलूक दास के मन में प्रसन्नता की लहर दौड़ उठती थी, उन्हें ऐसा लगता था कि अपने परम आत्मीय का दर्शन हो गया है। एक दिन घर पर एक सन्त-मण्डली आयी। सन्तो ने भोजन मांगा। घरवालों ने कहा कि भोजन की व्यवस्था नहीं हो सकती है। इस उत्तर से मलूकदास बहुत क्षुब्ध हुए। उन्होंने सोचा कि भण्डार में भोजन की सामग्री तो है ही, यदि वह सन्त-सेवा में न लगेगी तो उसका उपयोग ही क्या है। उन्होंने कहा कि हम लोग भले ही भूखे रहें पर सन्त दरवाजे से भूखे नहीं जा सकते हैं। मलूकदास ने भण्डार घर में सेंध लगायी, भोजन की सामग्री का सन्तों की सेवा में उपयोग किया। सन्तों ने उन्हें आशीर्वाद दिया और उनकी सेवा वृत्ति की सराहना की। माने देखा कि भण्डार में कुछ भी सामग्री नहीं है, मलूकदास को बहुत फटकारा, मलूक माता के साथ भण्डार घर में गये, सारी सामग्री भरी-पड़ी थी।

मलूकदास के पिता साधारण गृहस्थ थे। छोटा-मोटा व्यापार कर घरवालों का पालन-पोषण करते थे। वे कम्बल बेचा करते थे। पिता की आज्ञा से मलूकदास बाजार में कम्बल बेचने जाया करते थे। कभी-कभी बाजार से लौटते समय साधु-सन्तों के मिलने पर उन्हें सारे पैसे दे दिया करते थे। एक दिन वे बाजार कम्बल बेचने गये हुए थे। दैवयोग से वे एक भी कम्बल न बेच सके। बाजार उठने पर वे घर के लिये चल पड़े। मन में तनिक भी निराशा नहीं थी, भगवान का विधान ही ऐसा था। सिर पर गठरी लिये वे चले जा रहे थे। गठरी भारी थी। ग्यारह साल की अवस्था वाले बालक के लिये उसको लेकर चलना नितान्त कठिन था। भगवान सर्वत्र परिव्याप्त हैं, वे दयामय मलूक की दशा पर द्रवीभूत हो गये। प्रल्हाद के लिये नृसिंह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वेष उन्होंने ही धारण किया था, ध्रुव को उन्होंने ही आश्वासन दिया था, बालक नामदेव के हाथ से दूध उन्होंने ही पिया था। शंख चक्र गदा पद्म छोड़ कर पीताम्बर उतार कर भगवान अपने भक्त की रक्षा के लिये मजदूर वेष में प्रकट हो गये। उन्होंने बड़े स्नेह से कहा कि यदि तुम मुझे एक पैसा मजदूरी दे दो तो कम्बल की गठरी तुम्हारे घर पर पहुँचा सकता हूँ। मलूकदास ने स्वीकार कर लिया। मजदूर वेष धारी भगवान ने गठरी सिर पर रख ली। वे वेग से चल पड़े। मलूक से पहले ही घर पर पहुँच गये। मलूक दास की माता को मजदूर पर सन्देह हुआ। मजदूर को कोठरी में बन्द कर एक रोटी का टुकड़ा खाने के लिये दे दिया, घर पहुँचने पर मलूकदास को फटकारा कि किसी अनजाने व्यक्ति के हाथ में इस तरह माल नहीं सौंप देना चाहिये। कोठरी खोली गयी पर मजदूर का कहीं पता न था। भगवान् की लीला विचित्र होती है, भक्त की गठरी घर पर आ गयी, केवल इसी लिये तो प्रभु ने मजदूर का बाना अपनाया था। मलूकदास ने अपनी माता के भाग्य की सराहना की कि भगवान ने दर्शन दिया। वे स्वयं उसी कोठरी में तीन दिन बिना खाये-पीये पड़े रहे। भगवान ने उनको अपने दर्शन से धन्य किया। मलूकदास को संसार से वैराग्य हो गया, वे रात-दिन भगवच्चिन्तन में लगे रहते थे। दूर-दूर से लोग उनका सत्संग करने के लिये आने लगे।

सन्त मलूकदास के दीक्षागुरु द्रविड़ देश के महात्मा विट्ठलदास थे। ऐसा कहा जाता है कि महात्मा देवनाथ ने उन्हें दीक्षा दी थी। उनके आध्यात्मिक जीवन पर सन्त मुरार स्वामी का बड़ा प्रभाव था। उन्होंने अपनी रचना में बड़ी श्रद्धा और भक्ति से मुरार स्वामी का स्मरण किया है :

'दीन दयाल सुने जब तें तब तें मन में कुछ ऐसी बसी है।
तेरो कहाय के जाऊँ कहाँ तुम्हरे हित की पट खैंचि कसी है।
तेरो ही आसरो एक मलूक नहीं प्रभु सों कोउ दूजो जसी है।
ए हो मुरार पुकार कहौं अब मेरी हँसी नहिं तेरी हँसी है॥'

सन्त मुरार के साथ मलूकदास महात्मा तुलसी दास से भी मिलने गये थे—ऐसा उल्लेख 'मूल गोसाईं चरित' ग्रन्थ में किया गया है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'देव मुरारी भेंट मिलि सहित मलूकादास।
पहुँचे कासी में रिषय, किये अखण्ड निवास॥'

सन्त मलूकदास की गुरु में बड़ी निष्ठा थी। उनकी उक्ति है कि मैंने माया-मोह का निवारण कर गुरु के प्रताप से वाजी जीत ली। मैं भवसागर से पार हो गया। माया के मोहनी वेष से मैंने कहा कि मैं गुरु की शरण में हूँ, तुम मेरा कुछ भी नहीं विगाड़ सकती।

'जीती वाजी गुरुप्रतापतें, माया मोह निवार।
कह 'मलूक' गुरु कृपा तें, उतरा भवजल पार॥'

एक बार अकाल पड़ने पर सारी खेती नष्ट हो गयी। प्रजा भूख से मरने लगी। मलूकदास पानी बरसाने के लिये मैदान में निकल पड़े। उनकी कृपा से और उनके शिष्य लालदास के अनुष्ठान से पानी बरसने पर अकाल का उत्पात शान्त हो गया।

एक बार बादशाह औरंगजेब ने उनको आदरपूर्वक आगरे बुलाया था। कड़ा से वे सत्संग में ही अदृश्य होकर वादशाह के सामने जाकर महल में खड़े हुए और उसी रात को सिद्धि के वल से कड़ा लौट आये। वादशाह उनके क्षण मात्र के सत्संग से वहुत प्रभावित हुआ था। उसने कड़ा के हिन्दुओं पर से जजिया कर उठा लिया और प्रजा को अनेक सुविधायें दीं। आगरे से रात को लौटते समय सन्त मलूकदास ने वादशाह को आदेश दिया कि जिन दो व्यक्तियों को तुमने मुझे बुलाने के लिये भेजा था उन्हें सूवेदार वना दो तथा मुझे पत्र लिख कर दे दो कि अव भविष्य में कभी आगरे नहीं बुलाओगे। वादशाह ने उनके आदेश का पालन किया। इधर सत्संग के लिये भक्तों और सन्तों की भीड़ उनके घर पर एकत्र थी। मलूक ने प्रकट होकर लोगों से कहा कि अव अधिक समय हो चुका है, अपने-अपने निवास-स्थान पर जाओ। दूसरे दिन प्रातःकाल उन्होंने औरंगजेब के दोनों सेवकों को बादशाह का पत्र दिखाया। उनमें से एक तो सूवेदारी करने के लिये लौट आया, दूसरे ने सन्त मलूक के चरण की शरण ली, सूबेदारी का मोह छोड़ दिया। कड़ा में वावा मलूकदास की समाधि के निकट उसकी समाधि है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पत्नी और कन्या का स्वर्गवास होने पर गृहस्थ सन्त मलूकदास पूर्णरूप से वैराग्य के रंग में रंग गये। उनके दिन भगवद्भजन और सत्संग में बीतने लगे।

तीनों लोक के सिरताज परमात्मा राम ही सन्त मलूकदास के उपास्य थे। उनकी उक्ति है कि परमात्मा की रीझ निराली है, उनकी प्राप्ति का एकमात्र उपाय यही है कि मन में भजन का भाव रखे, समस्त प्राणी मात्र पर दया करे तथा सुख-दुख में तटस्थ रहे:

'दाया करै धरम मन राखै, घर में रहै उदासी।
अपना सा दुख सब का जाने, ताहि मिलै अविनासी।'

हरिगुणगान पर ही उन्होंने विशेष जोर दिया। उनका दृढ़ मत था कि भगवान के भजन के लिये ही मनुष्य-शरीर मिलता है। जिस देश में 'राम-राम' नाम का उच्चारण नहीं होता है उस देश में पानी तक नहीं पीना चाहिये। उन्होंने भगवान से निवेदन किया कि हे राम, आप मुझे अपनी शरण में लीजिये, मैं सदा सन्तों की सेवा करूँ तथा आप मुझे पारिश्रमिक के रूप में अपनी भक्ति दीजिये। मलूकदास की उक्ति है:

'कहत मलूकदास छोड़ दे परायी आस,
राम धनी पाइ के अब काकी सरन जाइये।'

सन्त मलूकदास ने कहा कि बड़े सौभाग्य और पुण्योदय से ही निर्गुण ब्रह्म के चिन्तन का अवसर मिलता है: जिस प्राणी पर भगवान की महती कृपा होती है वही निर्गुण रस के चिन्तन का अधिकारी हो पाता है, आत्मबोध, वैराग्य और प्रेम से ही निर्गुण का रहस्य समझ में आता है:

'रस रे निरगुन राग से, गावै कोई जागरत जोगी।
अलग रहै संसार से, सो रस का भोगी।
भरम करम सब छाँड़, अनूठा यह मत पूरा।
सहजै धुन लागी रहै, बाजै अनहद तूरा॥
लहरैं उठती ज्ञान की, बरसै रिमझिम मोती।
गगन गुफा में बैठ के, देखै जगमग जोती॥
सिवनगरी आसन किया, सुन ध्यान लगाया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तीनों दसा विसार के, चौथा पद पाया॥
अनुभव उपजा, भय गया, हद तज बेहद लागा।
घट उजियारा होइ रहा, जब आतम जागा॥
सब रंग खेलै सम रहै, दुविधा मनहिं न आने।
कहैं मलूक सोइ रावला, मेरा मन मानै॥'

निरन्तर आत्मज्योति का साक्षात्कार करते रहने को उन्होंने साधना का स्वरूप निश्चित किया। उन्होंने काम-विजय पर बहुत जोर दिया, कहा कि जिस स्थिति में राम की प्राप्ति होती है उसमें विरले ही पहुँचते हैं इसलिये रास्ते का सबसे बड़ा काम यह है कि कामनाओं का अन्त हो जाय। मन में किसी भी प्रकार की विषय-वासना ही न रह जाय।

मलूकदास ने अपनी अनुभूतिपूर्ण उक्तियों से सन्त-साहित्य को समृद्ध किया। उन्होंने समाज को शुद्ध सन्तज्ञान प्रदान किया, आत्मप्रकाश दिया। शरीर छोड़ने के छः मास पहले ही उन्होंने अपनी अन्तिम तिथि अपने भतीजे रामस्नेही को बता दी थी। उन्हें अपनी गद्दी का उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। अन्तिम तिथि को उन्होंने लोगों से कह दिया था कि आज मेरा चोला छूट जायेगा, जब आप लोगों को अन्तर में शंख और घंटे का नाद सुन पड़े तब समझ लीजियेगा कि प्राण ने शरीर छोड़ दिया, मेरे शव को गंगा में प्रवाहित कर दीजियेगा। इस प्रकार एक सौ आठ साल की अवस्था में सम्वत् १७३९ वि. में वैशाख कृष्ण चतुर्दशी को वे ब्रह्म में लीन हो गये। लोगों ने कड़ा में उनकी समाधि बनायी। ऐसा कहा जाता है कि उनका शव प्रयाग और काशी होते हुए जगन्नाथपुरी में समुद्रतट पर लगा, जगन्नाथ के आदेश से पण्डों ने शव मन्दिर में रखा, पट बन्द हो गये। मलूकदास ने जगन्नाथ जी से निवेदन किया कि मेरे विश्राम के लिये पनाले के पास स्थान मिले तथा भोजन के लिये आप के भोग के चावल-दाल के कन से बने रोट की व्यवस्था रहे।

सन्त मलूकदास का स्थान जगन्नाथ जी के मन्दिर के पनाले के सामने अब तक है और उनके नाम का रोट भगवान के महाप्रसाद के साथ यात्रियों को दिया जाता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निस्सन्देह मध्यकाल के सन्तों में मलूक दास उच्च कोटि के महात्मा स्वीकार किये जाते हैं। उन्होंने घट-घट में आत्माराम ब्रह्म का दर्शन किया। प्राणीमात्र को भगवद्भजन, आत्मचिंतन और परोपकार की सीख दी। यदि सूर तथा तुलसीदास सगुण चिन्तनधारा में उच्च कोटि के भगवद्विश्वासी सन्त थे तो दादू और मलूक निर्गुण धारा के क्षेत्र में परम आत्मनिष्ठ और परमात्मा के अनुरागी थे। सन्त मलूकदास ज्ञानी, प्रेमी और विरक्त महात्मा थे।

रचना

ज्ञान वोध, रतनखान, पुरुषविलास, दसरत्न ग्रन्थ, गुरुप्रताप आदि मलूकदास की प्रसिद्ध रचनायें हैं।

वाणी

पेम नेम जिन ना कियो, जीतो नाहीं मैन।
अलख पुरुष जिन ना लख्यो, छार परो तेहि नैन॥
देहीं होय न आपनी, समुझि परी है मोहिं।
अव हीं ते तजि राख तूं, आखिर तजि है तोहिं॥
अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम।
दास मलूका यों कहै, सव के दाता राम॥
जीवहुँ ते प्यारे अधिक लागैं मोही राम।
विन हरिनाम नहीं मुझे, और किसी से काम॥
जो तेरे घट प्रेम है, तो कहि कहि न सुनाव।
अंतरजामी जानि है, अन्तरगत का भाव॥
दया धरम हिरदै वसै, बोलै अमरित बैन।
तेई ऊँचे जानिये, जिनके नीचे नैन॥
राम-राम के नाम को जहाँ नहीं लवलेस।
पानी तहाँ न पीजिये, परिहरिये सो देस॥
औरहिं चिन्ता करन दे, तू मत मारे आह।
जाके मोदी राम से, ताहि कहा परवाह॥
राम राय असरन सरन, मोहिं आपन करि लेहु।
संतन संग सेवा करौं, भगति मजूरी देहु॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अब तेरी सरन आयों राम।
जबे सुनिया साधु के मुख, पतित पावन नाम॥
यही जान पुकार कीनी, अति सतायो काम।
विषय सेती भयो आजिज, कह मलूक गुलाम॥

सोते सोते जनम गँवाया।
माया मोह में सानि पड़ो सो, राम नाम नहिं पाया॥
मीठी नींद सोये सुख अपने, कबहूँ नहिं अलसाने।
गाफिल होके महल में सोये, फिर पाछे पछिताने॥
अजहूँ उठो कहाँ तुम बैठे, बिनती सुनो हमारी।
चहूँ ओर मैं आहट पाया, बहुत भई भुइँ भारी॥
बन्दी छोर रहत घट भीतर, खबर न काहू पाई।
कहत मलूक राम के पहरा, जागो मेरे भाई॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रसिक सन्त हरिराय

रसिक नाम सौ ग्रन्थ रचे भाषा के भारे।
नाम राखि हरिदास तथा संस्कृत के न्यारे॥
परम गुप्त रस प्रगट विरह अनुभव जिन कीनो।
सेवा महँ सब त्यागि सदा हरि को चित दीनो॥
हरि इच्छालखि बिनु समयहू मंदिर इन खुलवाइयो।
श्री श्री हरिराय स्वभक्तिबल नाथहि फिर बुलवाइयो॥

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

प्रभुचरण हरिराय उच्च कोटि के रसिक सन्त थे। वे महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य द्वारा प्रवर्तित पुष्टि मार्ग के जयदेव स्वीकार किये जा सकते हैं। उन्होंने श्रीकृष्ण की भक्ति-माधुरी से केवल पुष्टिसम्प्रदाय को ही नहीं, समस्त मध्यकालीन भारतीय साहित्य-क्षेत्र को प्रभावित किया। कृष्ण की भक्ति-मर्यादा से समाज का कल्याण किया। विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी में तथा अठारहवीं शताब्दी में उन्होंने श्रीकृष्ण के प्रेम का महामांगलिक गान गाया। प्रेम और प्रमाण के मार्गों का समन्वय किया।

रसिक सन्त हरिराय के जीवन-काल में मुगल साम्राज्य अपने पूर्ण वैभव पर था। शाहजहाँ और औरंगजेब के प्रयत्नों से उसका विस्तार दक्षिण भारत तक पहुँच चुका था। साथ-ही-साथ मेवाड़ के अधिपति महाराणा राजसिंह और दक्षिण में शिवाजी हिन्दू राजसत्ता के संरक्षण के लिये आकाश-पाताल एक कर रहे थे। औरंगजेब की अनुदारता पूर्ण राजनीति से भारतीय संस्कृति के संरक्षक धर्म और साहित्य तथा राजनीति के क्षेत्र में पूर्ण जागरूक हो चुके थे। हरिराय जी ने अपनी श्रीकृष्णचरणविज्ञप्ति रचना में तत्कालीन दशा का विवरण देते हुए कहा है :

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'यवनारण्यसञ्जातवह्निभीता विशेषतः।
कृपादृग्वर्षणेनैव निजाः कार्या अमीयतः॥'

हरिराय जी अपने समय की महत्तम विभूतियों में से एक थे, परम रसिक और अद्भुत भगवद्विरही थे। वे सदा राधाकृष्ण के केलि-स्वरूप-चिंतन में उन्मत्त रहते थे। उन्होंने अमित श्रद्धापूर्वक अपने पूर्वज श्रीमहाप्रभु वल्लभाचार्य और गोसाईं विट्ठलनाथ द्वारा समर्थित कृष्ण-भक्ति के सिद्धान्त का अनुगमन किया। हरिराय जी ने कहा कि श्रीकृष्ण परम प्रेममय और रसमय हैं। उनकी प्राप्ति भावनागत है। स्वरूपभावना, लीलाभावना और भाव-भावना द्वारा ही उनका तत्व समझ में उन्हीं की कृपा से आता है। स्वरूप भावना अनुभव और श्रवण से सिद्ध होती है। श्रीकृष्ण की लीला भावना से भक्त उनके लीला-चिन्तन से लीलास्वरूप हो जाता है, उसके बाद उसकी समस्त क्रियायें भाव-भावनागत हो जाती हैं। श्रीहरिराय जी ने आचार्य और गोसाईं जीके चरणाश्रय, भगवान की मानसी सेवा तथा ब्रह्मसम्बन्ध और श्रीमद्-भागवत पर विशेष जोर दिया, यही उनके चरित्र की मौलिकता है। वे महान भगवदीय और परम वल्लभीय थे। उन्होंने श्रीकृष्ण की रसरूपात्मक भक्ति सिद्ध की।

श्रीहरिराय का जन्म सम्वत् १६४७ वि. में भाद्रपद कृष्ण पंचमी को हुआ था। वे परम भागवत गोसाईं विट्ठलनाथ जी के पुत्र गोविन्द राय जी के पौत्र और कल्याण राय जी के पुत्र थे। कल्याण राय जी उच्च कोटि के भगवद्भक्त थे, उनकी भक्ति और पवित्र चित्तवृत्तियों का हरिराय जी महाराज के संवर्धन और पालन-पोषण पर विशेष प्रभाव पड़ा था। वल्लभ कुल के ईश्वरीय ऐश्वर्य और पिता कल्याण राय के पवित्र संस्कार—दोनों ने हरिराय जी को सदा भागवत वातावरण में ही संरक्षित किया। बचपन से ही हरिराय जी के नयन भगवान के विरह-सागर में मग्न रहते थे, वे श्रीकृष्ण का ही रात-दिन प्रेमपूर्वक चिंतन किया करते थे।

श्री हरिराय जी महाराज का प्रारम्भिक जीवन गोकुल में ही बीता। वे सम्वत् १७२६ वि. तक गोकुल में ही रह कर भगवान का भजन और भक्तिपरक ग्रन्थों का प्रणयन करते रहे। उनका अधि-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कांश समय श्रीवल्लभाचार्य और गोसाईं विट्ठलनाथ जी द्वारा प्रणीत ग्रन्थों के अवलोकन में ही वीतता था; इसका परिणाम यह हुआ कि भगवत्सेवावृत्ति वढ़ने के साथ-ही-साथ उनकी अनुभूति भी विशेष रूप से समृद्ध होने लगी। गोकुलनाथ जी महाराज के वे वड़े कृपापात्र थे। गोकुलनाथ जी विट्ठलेश्वर के चौथे पुत्र थे। उच्च कोटि के विद्वान और महात्मा थे। पुष्टि भक्तिरस के परम मर्मज्ञ थे। उनके सन्निधान में ही उनका ब्रह्मसम्वन्ध सम्पन्न हुआ था। श्रीनाथ जी उनके परम उपास्य थे। श्री हरिराय जी को उनकी परिचर्या और सेवा में ही परम सुख मिलता था। भगवान श्रीनाथजी के प्रेम में वे सदा आत्मविभोर रहते थे। गोवर्धन से श्रीनाथ जी का मेवाड़-गमन हरिराय जी के जीवन की एक महत्वपूर्ग घटना है।.....तत्कालीन यवनशासन से श्रीनाथ जी की सेवा और पूजा में विघ्न उपस्थित होने की आशंका से चिंतित होकर गोविन्दराय जी ने मेवाड़ के एकच्छत्र अधिपति महाराणा राजसिंह की प्रसन्नता से अपने आराध्यदेव को मेवाड़ में पधराया। श्री हरिराय जी श्रीनाथ जी के वियोग को पलभर के लिये नहीं सह सकते थे। इस-लिये १७२८ वि. में श्रीनाथ जी के श्रीनाथद्वारा पधारने पर उन्होंने भी गोकुल-निवास का परित्याग कर दिया। वे मेवाड़ आकर श्रीनाथ जी की पूजा में सुवोधिनी में वर्णित रहस्यरूप गोपीभाव से सदा भावित होकर समय सार्थक करने लगे। सवसे वड़ी वात तो यह थी कि यदि श्रीनाथ जी की सेवा में मुखिया से किसी प्रकार की भूल हो जाती थी तो वे हरिराय जी को स्वप्न में आदेश देते थे कि ऐसी भूल हो गयी है और हरिराय जी किसी भी समय मन्दिर का पट खुलवा कर सेवा-विधि सम्पन्न किया करते थे।

एक समय की वात है। भगवान वड़े लीलामय हैं। वे भक्तों को अपने लीला-रस का आस्वादन कराने के लिये सदा समुत्सुक रहते हैं। उनके लिये कुछ भी असम्भव नहीं है। श्रीनाथ जी की राजभोग-आरती सम्पन्न होने पर पट वन्द कर दिया गया पर 'पेंड़े की गादी' नहीं विछायी गयी। राजभोग के वाद उनके पधारने के लिये गद्दी विछायी जाती है। उस समय हरिराय जी खीमनेर की वैठक में विराज-मान थे। लीलामय श्रीकृष्ण की सेवा में चूक हो गयी, भूल हो गयी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रभु राजभोग के बाद खड़े-के-खड़े ही रह गये। गद्दी बिछायी नहीं गयी थी इसलिये कोमल चरण आगे नहीं बढ़ सके, उनके चरणों की मृदुता का बखान वाणी के वश की बात नहीं है। हरिराय जी को श्रीनाथ जी ने स्वप्न में आदेश दिया कि राजभोग के बाद खड़ा हूँ, गद्दी नहीं बिछायी गयी है। किस प्रकार चलूँ। जो चरण गज के लिये नंगे दौड़ पड़े थे, जिन चरणों के प्रताप से शिलामयी अहिल्या स्वरूपगत हो गयी, जिन्होंने चित्रकूट के कंकड़ीले-पथरीले सघन बनों में पर्यटन किया वे लीला करने के लिये, भगवद्सेवा का रसपान करने के लिये गद्दी के अभाव में आगे नहीं बढ़ सके। भगवान की प्रेरणा से हरिराय जी अविलम्ब श्रीनाथद्वारा पहुँच गये। स्नान आदि से निवृत्त होकर पट खुलवाये, गद्दी बिछायी। प्रभु सिंहासन पर पधार गये।... वल्लभ जी ने हरिराय जी से पूछा कि श्रीनाथ जी जब व्रज में पधारते हैं तब गद्दी की व्यवस्था तो नहीं रहती है। इतना सुनते ही हरिरायजी के रोम-रोम सिहर उठे। उनके नयनों में प्रेमाश्रु छलक उठा। उन्होंने कहा कि व्रज की भूमि तो दिव्य है, नवनीत से भी कोमल है। व्रज में तो भगवान के चरण नहीं—चरण के भाव का विलास रहता है, सात्विक भाव जागता है।

श्रीनाथजी की रंगीली रसमयी रीझ जिस प्राणी पर हो जाये उसका सौभाग्य-वर्णन नितान्त असम्भव है। हरिराय जी तो प्रभु के विशेष कृपापात्र ही थे। एक दिन सूरत के पुरुषोत्तम जी महाराज दक्षिण यात्रा पूरी कर श्रीनाथद्वारा पधारे हुए थे। वे अपने साथ बहुत सुन्दर मोजा लाये हुए थे। उन्होंने दाऊ जी से प्रार्थना की कि श्रीनाथ जी को शृंगार में केवल चार घड़ी के लिये मोजा पहना दिया जाय। दाऊ जी ने उनकी बात मान ली। गरमी का समय था पर पुरुषोत्तम जी की बड़ी इच्छा थी कि मोजा श्रीनाथ जी के पैरों में से उतारा न जाय, उन्होंने मुखिया को मना लिया। मन्दिर का पट बन्द कर दिया गया। कोटि-कोटि सूर्यों पर शासन करने वाले भगवान पसीने से तर हो गये। वसन्त, ग्रीष्म, हेमन्त आदि की अधिष्ठात्री प्रकृति के स्वामी गरमी से विकल हो गये। उन्होंने लीलारस के आस्वादन के लिये हरिराय जी को प्रेरणा दी कि मैं गरमी और पसीने से विकल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हो रहा हूँ। हरिराय जी अविलम्ब खीमनोर से चल पड़े। मुखिया से चाभी लेकर पट खोला और मोजे उतार दिये। भगवत्सेवा का ऐसा सौभाग्य लीलामय भगवान की कृपा से ही प्राप्त होता है।

श्री हरिराय जी खीमनोर में प्रवचन और श्रीमद्भागवत की कथा किया करते थे। उनकी कथा में एक राजकुमारी सम्मिलित हुआ करती थी। वह रूप और यौवन से समृद्ध थी। उसने एक दिन हरिराय जी महाराज से एकान्त में सत्संग करने का निवेदन किया। हरिराय जी देखने में बड़े सुंदर थे। राजकुमारी उन पर आसक्त थी पर आश्चर्य की बात यह हुई कि एकान्त में सत्संग के लिये आने पर हरिराय जी उसे हरिराय के रूप में न दीख पड़े। भगवान की कृपा से हरिराय जी उसे एक स्त्री के रूप में दीख पड़े, राजकुमारी ने देखा कि एक सुकुमार शिशु गोद में बैठ कर स्तन्य-पान कर रहा है। इस प्रकार यशोदारूप में उनका दर्शन कर वह धन्य हो गयी, उसकी कामासक्ति मिट गयी, हृदय में वात्सल्य का भाव जाग उठा। वह उनके चरणों पर गिर पड़ी। नारीमात्र को माता के रूप में देखने वाले हरिराय जी ने राजकुमारी से कहा कि आप तो मेरी माता के समान हैं। आप अपने आप को मेरे उपास्य देव श्रीकृष्ण की माता यशोदा के भाव से भावित देखिये। हरिराय जी ने गोसाईं विट्ठल नाथ की मान्यता का स्मरण किया :

'जानीत परम तत्वं यशोदोत्संगलालितम्।
तदन्यदिति ये प्राहुरासुरांस्तान् हो बुधा:॥'

हरिराय जी सदा भगवत्कृपा का अनुभव किया करते थे। श्री भगवान की कृपा से ही वे 'रसिकराज' की उपाधि से विभूषित हुए। उनकी भागवत कथा में श्रीनाथद्वारा से भक्तगण नित्य खीमनोर आया करते थे। रात में लौटते समय रास्ते के एक चबूतरे पर बैठ कर वे भगवन्नाम का कीर्तन किया करते थे; कथा में सुनी हुई लीला का गान कर नृत्य किया करते थे। लोगों ने हरिराय जी से निवेदन किया कि इस नाच-कूद से हमारी नींद में बाधा उपस्थित होती है। कथा-समाप्ति के बाद हरिराय जी एक दिन स्वयं गये। उन्होंने भक्तों को नाचते-गाते देखा, और आश्चर्य की बात तो यह थी कि साक्षात्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीनाथजी प्रकट होकर भक्तों के सुख की समृद्धि में योग दे रहे थे। हरिराय जी को भक्तमण्डली के मध्य में साक्षात् श्रीनाथजी का दर्शन हो गया। वे अपने आप को सम्हाल न सके। कहाँ तो वे भक्तों को समझाने गये थे और कहाँ स्वयं उनकी मण्डली में सम्मिलित होकर भगवल्लीला का गान करने लगे। जो लोग साथ गये थे वे इस दृश्य को देख कर चकित हो गये: हरिराय जी ने गाया :

'हौं वारी इन वल्लभियन पर।
मेरे तन को करो बिछौना सीस धरों इनके चरणन पर॥
भावभरी देखो इन अंखियन मण्डल मध्य विराजत गिरिधर।
वे तो मेरे प्राण-जीवन-धन दान दिये रैं श्रीवल्लभ वर॥
पुष्टि मारग प्रगट करिवे कों प्रकटे श्रीविट्ठल द्विजवपुधर।
'दास रसिक' वलैया ले ले वल्लभियन की चरनरज अनुसर॥'

वे वल्लभीय भक्तों की दशा पर मुग्ध हो गये। उन्होंने कहा कि ये लोग धन्य हैं, इनसे प्रभु को असाधारण सुख मिलता है। मैं तो इनकी चरण धूलि का अनुसरण करने में ही अपना परम सौभाग्य मानता हूँ। उन्होंने उन भक्तों को प्रेमपूर्वक गले लगाया और खीमनोर लौट आये। इस प्रकार हरिराय जी का सम्पूर्ण जीवन श्रीनाथ जी के चरणों में समर्पित था। वे दैन्य भाव के तो सम्राट थे, रसिकराज थे। वार्ताग्रन्थ में हरिराय जी महाप्रभु के सात बैठकों का विवरण मिलता है। उन्होंने गुजरात और राजस्थान में यात्रा कर भागवतधर्म का प्रचार किया था। अपनी विभिन्न बैठकों में श्रीमद्भागवत के सप्ताह-यज्ञ द्वारा असंख्य जीवों को भगवद्भक्ति-नौका पर समासीन कर भवसागर के पार उतारा था। उनकी पहली बैठक गोकुल में विट्ठलनाथ जी के मन्दिर में थी। हरिजीवनदास वैष्णव से इस बैठक में बैठ कर वे भगवद्-वार्ता में रस लिया करते थे। उनकी दूसरी बैठक श्रीनाथ द्वारा में विट्ठलनाथ जी के मन्दिरमें थी। इस में वे नित्य श्रीमद्भागवत की कथा कहते थे। एक वार हरिजीवनदास ने कथा के बीच में 'वेणुगीत' का प्रसङ्ग छेड़ दिया। हरिराय जी ने उस पर बहुत देर तक प्रवचन किया वे तीन दिन, तीन रात तक रसावेश में विभोर रहे। तीसरी बैठक-खीमनोर में सदा घोड़े, सुखपाल, हाथी और घोड़वेल उनकी सवारी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के लिये प्रस्तुत रहते थे। न जाने कब श्रीनाथजी की प्रेरणा से उन्हें श्रीनाथ द्वारा जाना पड़े– इस विचार से उनके लिये सवारी का प्रत्येक समय प्रबन्ध रहता था। चौथी बैठक– जैसलमेर में उनके पिता कल्याण-राय जी के सेव्य गिरिधारी जी विराजमान थे। हरिराय जी महाराज ने अपने यात्रा-काल में जैलसलमेर में भागवत का प्रवचन किया तथा उस नगर के राजा ने उनका शिष्यत्व ग्रहण कर लिया। उनकी पाँचवीं बैठक गोमती नदी के तट पर डाकोर में थी। डाकोर पहुँचने पर हरिराय जी महाप्रभु ने भगवती गोमती में स्नान किया, भोजन के बाद मीठी-मीठी नींद आ गयी। डाकोर में एक छप्पर में श्रीरणछोड़-राय भगवान का विग्रह था। रणछोड़राय ने स्वप्न में हरिराय जी को आदेश दिया कि मैं एक छप्पर में पड़ा हुआ हूँ, एक ब्राह्मण नित्य एक लोटा जल समर्पित कर जाता है, मन्दिर बनवा कर मेरी प्रतिष्ठा कीजिये। भगवान के लिये तो लोक-लोकान्तर ही मन्दिर हैं पर भक्त के सुख-संवर्धन के लिये प्रभु ऐसी लीला में रस लिया करते हैं। हरिराय जी ने डाकोर में रणछोड़राय का मन्दिर बनवा कर भगवद् आदेश का पालन किया तथा कुछ दिनों तक निवास कर श्रीभागवत के कथामृत का वितरण किया। इसी प्रकार छठीं और सातवीं बैठक–सांवली और जम्बुसर में कुछ दिन रह कर श्रीमद्-भागवत की कथा की और उसके बाद श्रीनाथ द्वारा लौट आये।

श्रीमदाचार्य वल्लभ और श्रीगोसाईं विट्ठलनाथ में उनकी बड़ी श्रद्धा और निष्ठा थी। वल्लभाचार्य जी के अलौकिक स्वरूप में उनकी बड़ी प्रीति थी। उनकी उक्ति है कि मेरा मन सदा श्रीवल्लभ के प्रेम में आसक्त रहे। उनके चरण-चिंतन में ही हमारी मति हो, रति हो। उनमें हमारी स्थिति हो। उन्होंने बड़ी श्रद्धा से निवेदन किया है:

'श्री वल्लभ सदा वसो मन मेरे।
धरम-करम कछु नाहीं समझत जैसे-तैसे तेरे॥
दानव्रतादिक ते कछु नाहीं होत पुष्टि की भक्ति।
तिहारी कृपा-कटाक्ष-वृष्टि ते होत रे हरि आसक्ति॥
तुम बिन तत्व कछु नहीं जग में यह निश्चय मन कीनो।
श्रीहरिवदन अनल आनन्दनिधि बखाने कीनो॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भटक-भटक हू हार्‌यो हा-हा करु पकरो मेरी बाहँ।
बुरो-भलो हरिदास तिहारो, राखो चरनन छाहँ॥'

उन्होंने कहा कि श्रीवल्लभ ही मेरे सब कुछ हैं, वे अन्तरयामी हैं, मेरे मन की बात जानते हैं; वे दीनदयाल हैं और मैं कामी हूँ, मैं तो उनके ही चरणों में प्रणाम करता हूँ। श्री वल्लभ के ही चरणों का भजन करना चाहिये। वे सारे पतितों को भवसागर से पार उतारने की नौका हैं। उनकी चरण-कृपा से भगवान की भक्ति प्राप्त होती है। अष्टपदी में हरिराय जी ने श्रीवल्लभ के चरणों की महिमा गाते हुए कहा है :

'वर्णये वल्लभाधीशचरणम्।
सकलसाधनविमुखमुख्यफलफलनम्,
संसारसरिदीशगोचरणकरणम्।'

हरिराय जी महाप्रभु का कथन है कि जिसने भगवान गोपाल का गुणगान नहीं किया, उनकी रसाल लीला में अपनी चित्तवृत्ति नहीं लगायी, सुबोधिनी नहीं सुनी, साधु संग नहीं किया, भगवद्‌रस का एक घड़ी-आधी घड़ी के लिये आस्वादन नहीं किया, रसना से कृष्ण नाम का जाप नहीं किया, श्री वल्लभ और गोसाईं विट्‌ठलनाथजी की शरण में जाकर दैन्य भाव से क्षण मात्र के लिये भी मस्तक नहीं नत किया, उसे लज्जा का अनुभव करना चाहिये, उसने मनुष्य-जन्म पाकर कुछ भी परमार्थ नहीं कमाया। श्रीहरिराय जी महाप्रभु व्रजभाषा, गुजराती और संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। उन्होंने संस्कृत और व्रजभाषा में बहुत से पद लिखे, वार्ताग्रन्थ उन्हीं के परिश्रम का फल है। पुष्टि-सिद्धान्तों का प्रचार ही उनका महान कार्य स्वीकार किया जा सकता है। वे अपने आप को भगवान् का एकमात्र दास मानते थे। उनकी दृढ़ धारणा थी :

'भावो भावनया सिद्धः साधनं नान्यदिष्यते।'

उन्होंने शुद्धाद्वैत सिद्धान्त के चिन्तन-माध्यम से शृंगाररसात्मक ब्रह्म के विरह भाव की श्रेष्ठता स्वीकार की। हरिराय जी महाप्रभु का सबसे बड़ा कार्य यह था कि श्रीवल्लभचार्य के समय से गोस्वामी गोकुल-नाथ जी महाराज के जीवनकाल तक प्रचलित संभोगात्मक भगवत्सेवा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

को उन्होंने विरहात्मक रूप प्रदान किया। वे रात-दिन भगवद्विरह में निमग्न होकर प्रेम का रसास्वादन किया करते थे : उनकी उक्ति है :

'नाश्रितो वल्लभाधीशो न च दृष्टा सुबोधिनी।
नाराधिराधिकानाथो वृथा तज्जन्म भूतले।'

उन्होंने स्वीकार किया कि श्रीकृष्ण की कृपा से ही उनकी भक्ति मिलती है, यह किसी भी दशा में साधनरूपा नहीं है, नितान्त फल-रूपा है : हरिराय जी की वाणी है :

'भक्तित्वेन पुष्टिः निश्चीयते।'

भक्तिभाव से ही भगवान की कृपा का निश्चय किया जाता है। भक्तित्व ही कृष्णतत्व है। सच्चे स्नेही तो श्रीकृष्ण ही हैं, दुःख-सुख में सदा वे ही अपनी भक्ति-मर्यादा निभाते हैं। मनुष्य का तो जीव को भरोसा ही नहीं करना चाहिये। उसके चित्त और वचन क्षण-क्षण में बदला करते हैं। माता-पिता, भगिनी सुत और दारा में प्रेम कभी एक-समान नहीं निबाहा जा सकता है। श्रीकृष्ण ही सदा एकरस प्रेम का निर्वाह करते हैं इसलिये उनकी ही भक्ति जीवन का ध्येय है। वे ही संसार-सागरसे पार उतारने में सर्वथा समर्थ हैं। वे सदा श्रीकृष्ण की लीला-भावना में ही दत्तचित्त रहते थे। वृन्दावन की मधुर-मधुर मनोरम झांकी और गोविन्द की रमणीय केलि में ही वे मग्न रहते थे। एक अष्टपदी में उनकी रसमयी उक्ति है :

'अवलोकय सखि मंजुल कुंजे।
रमयति श्री गोकुलरमणीरिह गोकुलपतिरतिकोकिलपुंजे।
माधविकालतिकारतिकारिणि रागिणि रुचिर वसन्ते।
त्रिविधपवनकृतविरहवधूजनमदननृपति सामंते॥
किंशुककुसुमसमीकृतदयिताधररसपानविनोदे।
मधुप समाहृत वकुल मुकुल मधुविकसित सरसामोदे॥
नवनव मंजु रसाल मंजरी बोधित युवजनमदने।
दयितारदनसमद्युतिमुकुलितकुंदचिरस्मृत वदने॥
युवतिजनमानसगत मान महा मत्त गजमृगराजे।
कोकिलकुलकूजित विरहानलतापित पथिकसमाजे॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विततपरागकुसुम संवेधि सदा गति वासित गहने।
कुसुमित किंशुककैतव विस्तृत विरहगहनवनदहने ॥
पल्लवकुसुम समेतविपिनविस्मारित युवजनगेहे।
मदनदहनदीपनविद्रावित विरहि दीन जनदेहे ॥
जगति समान शीततदितर विरचित रुचिराकारे ॥
वनिताजनसंयोगसेविजनजनितानन्दकुमारे ॥
इति हितकारिवचनमति मानिनि मानय गोकुल वासे।
कुरु रति मतिशय करुणारसवति वितर मतिं हरिदासे ॥'

इस प्रकार उन्होंने राधाकृष्ण की रसमयी कुंजकेलि के सम्बन्ध में अनेक विरहात्मक अष्टपदियों की रचना कर कृष्ण-रस, भगवदमृत का विस्तार किया। हरिराय जी भगवान के रसरूप के व्याख्याकार थे। हरिराय जी की भक्ति विरहमूलक थी, वे प्रोषितपतिका की तरह रात-दिन भगवन्नाम, स्वरूप और लीला का ही स्मरण किया करते थे। उनका दृढ़ सिद्धान्त था:

'हरिः सेव्यो, हरिर्ज्ञेयो, हरिर्ध्येयो निरन्तरम्।
हरिः श्राव्यो, हरिर्गेयो, हरिर्मेवाप्नुयात्तदा ॥'

उनके साहित्य का एकमात्र उद्देश्य भगवान की भक्ति को प्रकट करना था। हरिराय जी की घोषणा है कि भक्ति दो प्रकार की है; श्रवणकीर्तनमयी तथा प्रेममयी है। एक का मुख्य सम्बन्ध तो नारद आदि से है और दूसरे का आचार्यत्व गोपियों के सौभाग्य की बात है जो रात-दिन भगवान की भावभावना रूपा और विरहानुभवात्मिका स्वीकार की जाती हैं। हरिराय जी की गर्वोक्ति है:

प्रभुर्नन्दकुमारो मे स्वामिनी वृषभानुजा।

अपनी विरहात्मिका रसमयी भक्तिपद्धति से उन्होंने पुष्टि-साहित्य के विकास में महान योग दिया। वार्ता-साहित्य का संकलन उनका अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य स्वीकार किया जाता है। उन्होंने चौरासी और दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता को स्पष्ट करने के लिये 'भावप्रकाश' टिप्पण लिखा। गोकुलनाथ जी महाराज के वचनों और उपदेशों के बहुत बड़े व्याख्याकार और सम्पादक थे। व्रजभाषा गद्य के महान्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लेखक थे। भगवदीय साहित्यकार थे। श्री हरिराय जी महाप्रभु के हरिदास, रसिकराय, प्रभुचरण आदि उपनाम थे। वे पृथ्वी पर एक सौ पचीस साल तक विद्यमान रहे। सम्वत् १७७२ वि. के लगभग उन्होंने गोलोक प्राप्त किया। उनकी कृतियों में 'शिक्षापत्र' बहुत प्रसिद्ध है, इसमें उन्होंने भगवद्भक्ति का स्वरूप समझाया है। आजीवन उन्होंने श्रीकृष्ण के चरणों पर सर्वसमर्पण कर भक्ति–रस का आस्वादन करते रहने की ही सीख दी। वे रसाचार्य थे, भागवतरस के परम अनुभवी सन्त थे। पुष्टि-मार्ग की वे बहुत बड़ी आवश्यकता थे। उनका जीवन निष्पक्ष, निरपेक्ष और पूर्णरूप से श्रीकृष्णमय था।

रचना

वार्ता-साहित्य पर भावप्रकाश टिप्पण, शिक्षापत्र तथा निरूपण, निश्चय, निराकरण, रहस्य, तात्पर्य, विवेक, विवेचन, विवृति लक्षणसम्बन्धी ग्रन्थों की हरिराय जी ने रचना की।

वाणी

गायो न गोपाल मन लीयो न रसाल लीला,
सुनी न सुबोधिनी न साधु संग पायो रे।
सेव्यो न स्वाद करी घड़ी हु न अध घड़ी,
कबहु न कृष्ण-नाम रसना रटायो रे॥
श्रीवल्लभ श्रीविट्ठलेश प्रभु की शरन जाय,
दीन होय मति छिन शीशहुँ न नायो रे।
'रसिक' कहे बार-बार लाजहु न आवे तोय
मनुष्य जनम पाय के कहावो कमायो रे॥

अहो हरि दीन के जु दयाल।
कब देखोगे दिशा हमारी ग्रसित हु कलिकाल।
कहा सुमिरन करु तिहारो पड्यो अति जंजाल।
सकल साधन रहित मोसम और नहीं गोपाल।
करत अति विपरीत साधन चलत चाल कुचाल।
काढ़य कु नाही समरथ तुम बिना नन्दलाल।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तुम बिन और कौन सु कहिये यही हमारो हाल।
हँसो कहा जु हरो आरत 'रसिक' करो निहाल॥

साँचो सनेही नन्दकुमार।
और नहीं कोइ दुख को वेली, सब मतलब को यार॥
मनुष्य जाति को नाहिं भरोसो, छिनु विहार छिनु पार।
चित्त वचन को नाहिं ठिकानो, क्षण क्षण पृथक विचार।
मात-पिता भगिनी सुतदारा, रतिन निभत एक तार।
सदा एकरस तुमही निभावो; 'रसिक' प्रीतम प्रतिपाल।

नाथ हाहा मोहि दरस दीजै।
सहज करुणा करो दोष जिन जिय धरो,
विना साधन मोहि दास कीजै॥
दुखित तन होत तो दरस देखे बिना,
रैन-दिन तपत कहो कैसे जीजै।
कहो धीरज हिय राखिये कौन विधि
रहत नाहीं चैन तन छेह दीजै॥
लेत जब श्वास उर में न समात,
जब लों निश्चित दृग भर न पीजै।
रूप लावण्य अमृत रसिक पीवत सदा
विना पान तन कैसे भीजै॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्त अखा

'नीतिज्ञा निर्यातज्ञा वेदज्ञा अपि भवन्ति शास्त्रज्ञा।
ब्रह्मज्ञा अपि लभ्याः स्वाज्ञानज्ञानिनो विरला ः।।'

संसार में नीति, भविष्य, वेद और शास्त्र तथा ब्रह्म के जाननेवाले मिल सकते हैं पर अपने अज्ञान के जाननेवाले मनुष्य विरले ही हैं।

—अप्पय्यदीक्षित

वेदान्ती सन्त अखा परम भगवद्भक्त, उच्च कोटि के विरक्त और अनुभवी आत्मज्ञानी थे। गुजराती साहित्य में और विशेषतया संत-साहित्य की प्रगति में वे एक महान शक्ति स्वीकार किये जाते हैं। नरसिंह मेहता की पवित्र भागवत वाणी से सरस गुजरात के कण-कण में उन्होंने विक्रम की सत्रहवीं सदी में अध्यात्म ज्ञान की ज्योति का विस्तार किया। गुजरात में घर-घर में उनका नाम बड़ी श्रद्धा और आदर से लिया जाता है। उनकी वाणी में आत्मानुभूति की रसमयी स्निग्धता और ब्रह्मानन्द की दिव्य रमणीयता का दर्शन होता है। समस्त भारतीय सन्त साहित्य में, दक्षिण, बंगाल, आसाम, विहार और उत्तर भारत में सगुण और निर्गुण ब्रह्म के चिन्तन का समन्वय प्रयत्नगत था। नवद्वीप, काशी, अयोध्या, पण्ढरपुर, श्रीरंग, द्वारिका और वृन्दावन में इस विशिष्टता का आधिपत्य था। अखा ने शुद्ध वेदान्तब्रह्म का चिन्तन कर इस महत्वपूर्ण प्रयास में बहुत बड़ा योग दिया।

अखा के जीवन-काल में भारत के राजकीय वैभव के संरक्षक महामुगल जहाँगीर और शाहजहाँ थे। गुजरात उस समय मुगलों की राजसत्ता के अन्तर्गत एक प्रान्त था। देश में शान्ति और उदारता का वातावरण छाया हुआ था,। ऐसे समय में अखा ने समाज और साहित्य को सर्वात्मबोध का दान किया। वे महाराष्ट्र के वामन पण्डित और उत्तर भारत के कबीर स्वीकार किये जा सकते हैं। आध्यात्मिक क्रान्ति के स्रष्टा थे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अहमदाबाद जनपद में जेतलपुर ग्राम में सम्वत् १६७१ वि. में अखा का जन्म हुआ था। कुछ लोगों के मत से उनका जन्म सम्वत् १६४९ वि. है। वे स्वर्णकार का काम करते थे। अपनी ईमानदारी और सदाचारपूर्ण जीवन के लिये वे दूर-दूर तक प्रसिद्ध थे। अखा के पिता का नाम रहियो था। जब वे छोटे बालक थे तभी उनकी माता का स्वर्गवास हो गया। पिता ने उनका विवाह बचपन में ही कर दिया था। पिता का देहान्त हो गया। केवल बहिन ही साथ रह गयी। अखा माता-पिता के देहान्त से बहुत प्रभावित हुए, संसार के प्रति उनकी ममता और आसक्ति कम होने लगी। वे पन्द्रह साल की अवस्था में जेतलपुर से अहमदाबाद चले आये। अहमदाबाद में सुनार का काम करने लगे। उनका पूरा नाम अखेराय था। लोग उनमें बहुत विश्वास करते थे। उनकी समृद्धि और प्रसिद्धि ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती थी त्यों-त्यों उनके मन में अनासक्ति के भाव का उदय होता रहता था।

गृहस्थ जीवन में उन्हें कभी सुख की अनुभूति नहीं हुई। गृहस्थी के प्रपंचों से उनका मन कोसों दूर भागता था। पत्नी के देहावसान के बाद तो चित्त और भी अनासक्त हो गया। लोगों के बहुत समझाने-बुझाने पर गृहस्थ-धर्म के पालन के लिये अखा ने दूसरा विवाह किया पर उन्हें शान्ति नहीं मिल सकी, वे तो चिरन्तन शाश्वत आत्मशान्ति के प्यासे थे, शारीरिक सम्बन्ध में तो उनकी सुख-भावना ही नहीं थी। उनका मन रात-दिन किसी बहुत बड़ी कमी का अनुभव किया करता था; अखा सदा सत्पदार्थ—वस्तुतत्व का चिन्तन करते हुए सुनार का काम पूरा करते थे।

छोटी-से-छोटी घटना भी जीवन को महान बना देती है। एक दिन अखा के जीवन में महान परिवर्तन देखा गया। कुछ दिन पहले एक स्त्री ने अखा के पास तीन सौ रूपये धरोहर में रख दिये। अखा में उसका बड़ा विश्वास था। उसने अखा से कहा कि इन रूपयों से सोने की एक कंठमाला बना दीजिये। अखा उस स्त्री को अपनी बहिन के समान मानते थे, बड़ा स्नेह करते थे। आत्मीयता के नाते उन्होंने उस कंठमाला में सौ रूपये का सोना अपनी ओर से मिलाकर स्त्री को दे दी।.....कंठमाले का तौल अधिक था, बहिन को अखा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

की नीयत पर सन्देह हुआ। उसने सोचा कि अखा हैं तो सुनार ही, चोरी तो उनकी वृत्ति ही है। वह कंठमाला एक दूसरे सुनार के पास ले गयी। सुनार ने उसको तौल में ठीक बताया और कहा कि इसमें शुद्ध सोना मिलाया गया है। बहिन ने अखा से भेद प्रकट कर दिया। सन्त अखा रोमाञ्चित हो उठे। उनकी आँखों के सामने अंधेरा छा गया। उन्हें संसार की नश्वरता का ज्ञान हो गया। उन्होंने मन में विचार किया कि उस बहिन का इस प्रकार सोचने-समझने में तनिक भी दोष नहीं है। संसार का रूप ही ऐसा है—कहा तो मैंने उसकी प्रसन्नता के लिये सौ रूपये अपनी ओर से मिलाये और कहाँ उसने मेरे इस कार्य में दोष देख लिया। उन्हें संसार के सम्बन्ध से घृणा हो गयी, चित्त में निर्मल वैराग्य का रस उमड़ पड़ा। उन्होंने सुनार के धन्धे का परित्याग कर दिया, औजार कुएँ में फेंक दिये, साधु-सन्त की खोज में तीर्थयात्रा के लिये निकल पड़े। आत्मा और परमात्मा—वस्तुतत्व के परिज्ञान और अनुसंधान के लिये उन्होंने स्थान-स्थान की खाक छानी; साधु-सन्तों का सत्संग किया। संसार उन्हें एक जलती-सी भट्टी के, समान दीख पड़ा, वे उसकी लाल-लाल कराल लपटों से पीछा छुड़ाने के लिये ब्रह्मानन्द के समुद्रतट पर विचरने लगे।

आश्चर्य की बात तो यह थी कि उन्हें आत्मबोध और सत्शोध का रहस्य बताने वाले सन्त न मिल सके। उन्हें भगवान और आत्मा की ओट लेकर शिष्यों और दूसरे गृहस्थों का धन अपहरण करने वाले ही अधिकांश मिले। उन्हें ऐसे लोगों से घृणा हो गयी। वे जयपुर गये। गोकुलनाथ नामक महात्मा से उन्होंने दीक्षा ली पर वे भी उनके मन को शान्ति न प्रदान कर सके। उनका मन जयपुर में न लग सका। एक दिन उन्होंने साधारण वेश बदल कर मन्दिर में प्रवेश किया; उन्हें आश्चर्य हुआ कि धनी-मानी सज्जनों की ही उसमें पूछ है। उन्होंने अन्तरस्थित भगवान को नमस्कार किया और निवेदन किया कि हे देव, आप मुझे सत्य का प्रकाश दिखाइये, आप का नाम लेकर प्रकाश दिखाने वाले माया-ममता के अन्धकार में भूले हुए हैं, अन्धकार में रहते हुए भी वे दूसरों को ठगने के लिये कहते हैं कि हमें भगवद्-ज्ञान प्राप्त है, प्रभु ऐसे धूर्तों और ठगों से मेरी रक्षा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कीजिये। वे आत्म-प्रकाश के सहारे–प्रभु के विश्वास के भरोसे काशी की ओर बढ़ने लगे।

काशी में उन दिनों ब्रह्मानन्द स्वामी नाम के एक वेदान्ती महात्मा की पर्याप्त प्रसिद्धि थी। उनके असंख्य शिष्य थे। वे आत्मज्ञानी और शास्त्रमर्मज्ञ थे। ब्रह्मानन्द स्वामी केवल रात को ही एकान्त में शिष्यों को उपदेश देते थे। काशी में बहुत दिनों तक भटकने के बाद एक दिन अखा ने दैवयोग से ब्रह्मानन्द स्वामी का वेदान्तपरक उपदेश सुन लिया। उन्हें आत्मा का अमृत प्राप्त हो गया। वे उनके वचनामृत से निहाल हो गये। उस समय वर्णाश्रम धर्म के नियम अमित कड़े थे। ऐसी स्थिति में ब्रह्मानन्द जी सुनार अखा को अपना शिष्य बनाने में आपत्ति करते। गुप्त रूप से अखा उनके प्रवचन में नित्य रात को सम्मिलित होने लगे। गुरु ब्रह्मानन्द जी को पता चला कि अखा सुनार हैं पर उनके संस्कार ब्राह्मण के-से देखकर उन्होंने अखा को शिष्य रूप में स्वीकार कर लिया। अखा को उनके सामीप्य में परम शान्ति मिल सकी, वे आत्मज्ञान और सत्य के प्रकाश से सम्पन्न हो गये। उन्होंने ब्रह्मानन्द जी की कृपा से वेद, उपनिषद तथा अन्य वेदान्तपरक अध्यात्म शास्त्रों का अध्ययन किया। काशी से वे जयपुर लौट आये। गोकुलनाथ जी के साथ रह कर उन्होंने वेदान्त शास्त्र का अभ्यास किया, उनकी चंचल चित्तवृत्ति शान्त हो गयी, दौड़ना-धूपना बन्द हो गया वे सद् चित्स्वरूप में तल्लीन रह कर सच्चिदानन्द ब्रह्म का ही चिंतन, करने लगे। वे आध्यात्मिक जीवन से समृद्ध हो गये, संसार में उन्हें ब्रह्म की सत्ता परिव्याप्त दीख पड़ी, उन्होंने विवेकपूर्वक संन्यास और वैराग्य का आलिंगन किया।

अखा का सबसे बड़ा कार्य यह था कि गुरु से आत्मज्योति पाकर उन्होंने आध्यात्मिक क्रान्ति की। गुरुप्रदत्त ज्ञान का उन्हें पूरा भरोसा था। उन्होंने कहा कि वस्तुतत्व रूपी कागज को तो बाँचने वाले केवल गुरु ही हैं। ब्रह्मतत्व को जानना आसान नहीं है। वेद-पुराण पढ़-पढ़कर पण्डित थक गये पर एक अक्षर भी उनकी समझ में नहीं आया, जानने वाले सुजान थक गये। गुरु की कृपा से अन्धा वस्तुतत्व को पढ़ सकता है, बहरा सुन सकता है, गूंगा कह सकता है। काशी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

से लौटने के बाद अखा ने आजीवन वेदान्त संवेद्य ब्रह्म-तत्व का ही चिंतन किया। उनकी उक्ति है कि आत्मा की प्राप्ति की इच्छा हो तो शुद्ध मन से संतों की सेवा करनी चाहिये, भवरोग ऐसा करने से मिट जाता है, आरोग्य-लाभ होता है। सन्तों की चाल तो उलटी होती है, इस कला से वे ब्रह्म-साक्षात्कार करते हैं, पंख बढ़ने पर पक्षी इसी प्रकार उड़ता है– ऐसा ज्ञान मन में समझ पड़ता है। ज्ञान, वैराग्य, प्रेम-आतुरता आदि तो नवधा भक्ति के अंग ही हैं पर आत्मप्राप्ति का रहस्य तो गुरु की कृपा से ही समझ में आ पाता है, नहीं तो गुरुरूपी कुञ्जी–चाभी के बिना आत्मज्ञान ताले में बन्द रहता है। यदि परब्रह्म को पाने की मन में उत्सुकता और चाह हो तो शुद्ध संग का सेवन करना चाहिये। ऐसा सत्संग करना चाहिये कि अपने अंग में आत्मज्योति चमक उठे, प्रकाशित हो उठे। उन्होंने कहा कि यदि परम पद पाने की इच्छा हो, जगत् के जंजाल से निकलने की चाह है, शुद्ध जीवन समझने की कामना है, जीवन्मुक्त स्थिति प्राप्त करनी है तो हरिगुरु की सेवा करनी चाहिये; उनकी कृपा से ही ऐसा सम्भव है। विरक्त और त्यागी ही ब्रह्म-रस का पान कर सकते हैं। उन्होंने सन्त कबीर की तरह छल, दम्भ और पाखंड का खंडन कर समाज को शुद्ध अध्यात्म-तत्व, आत्मज्ञान, अद्वैत ब्रह्म-चिन्तन, निर्गुण भजन प्रदान किये। समाज का आध्यात्मिक स्तर उन्नत और विकसित किया। उनकी भाषा काव्यगुणों से– माधुर्य और प्रसाद से रहित होने पर भी मर्मवेधनी और प्रभावमयी है, कबीर की वाणी की तरह सत्य की ज्योति से सम्पन्न और तेजोमयी है।

'सेवो हरि गुरुसन्त ने'-अखा के पारमार्थिक जीवन का सम्बल था। अखा ने अपने उच्च कोटि के आध्यात्मिक जीवन से गुजराती साहित्य को मध्यकालीन निर्गुण ज्ञानधारा से समृद्ध किया। नरसिंह मेहता, भालण और अखा मध्यकालीन गुजराती साहित्य के आध्यात्मिक स्तम्भ स्वीकार किये जा सकते हैं। अखा की बुद्धि प्रखर, शुद्ध और सत्यदर्शी थी। उनके साहित्य सृजन में अलौकिक प्रवाह है, गति है। वे लोकसन्त थे, जन- प्रिय, थे लोग उनका सम्मान करते थे, उनकी कथनी-करनी में विश्वास करते थे। समस्त जगत में सन्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अखा ने अपने हृदयस्थ परमात्मा का दर्शन किया, घट-घट में आत्माराम–शुद्ध सच्चिदानन्द घन परब्रह्म की परिव्याप्ति पायी।

अखा लगभग उनसठ साल तक पृथ्वी पर विद्यमान रहे। सम्वत् १७३० वि. के लगभग वे ब्रह्मलीन हो गये। अहमदाबाद की देशाई पोल में 'अखाना ओरडो' अखा के घर के नाम से एक मकान अब भी विद्यमान है। अखा परमात्मा के बहुत बड़े भक्त थे, आत्मज्ञानी महात्मा थे। अखा सत्य के उपासक थे, महान सन्त थे।

रचना

गीता, अनुभव विन्दु अखा सन्त की सम्मानित रचनायें हैं। उन्होंने गुरुमाहात्म्य, गुरु गोविन्द एकता, मायानुं स्वरूप, भक्ति ज्ञान - वैराग्यनुं माहात्म्य, सर्वात्मभाव, प्रेमलक्षण, जीवन्मुक्तदशा, वितण्डावादो नुं वर्णन षड्दर्शनचिकित्सा, ब्रह्मवस्तु निरूपण, ब्रह्मईश्वरजीवनी एकता, सत्संग महत्ता ग्रंथ रचे।

वाणी

अद्भुत आनन्द आया, अब मोहि अद्भुत आनन्द आया।
किया कराया कछु भी नाहीं, सेज पिया कुं पाया॥
देशन छोड़्या, वेशन छोड़्या, ना छोड़्या संसारा।
भर-निद्रा से जग पड़ा तो मिट गया सपना सारा॥
भला कहे कोई, बुरा कहे कोई, अपनी मति अनुसारा।
'अखा' लोह कुं पारस परसा, सोना भया सोनारा॥
आतमा पामवा कोई इच्छा करे, संतने सेववा मन शुद्धे।
भवरोग वामवा भेख भावे लहे, आरोग तां आवे जेम साकरद्धे॥
सुलभ मारग ते संत केरी कला, ऊपरे जाय ऊवाट वाटे।
पांखने बले जेम पंखीडां परवरे, अेम समज आवे ज्ञान घाटे॥
ज्ञान वैराग्य न प्रेम आतूरता, नवधा केरु, मांई समज न्याहं।
पूरी ते समजणो पूरा गुरु थकी, नहि तो कूंची बिनारंध्युं तालुं॥
हजी हटकटा होइ परिब्रह्मनी, तो प्रथम परवर जे शुद्ध संगे।
सत्संग कर तो अेवो कर जे 'अखा' प्रगटे प्राणनाथ ते आप अंगे॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समर्थ रामदास

'...ईश्वर की उपासना करनी चाहिये। सब के लिये उपासना ही बहुत बड़ा आसरा है इस के बिना सब निराश्रय हैं।.....उठते-बैठते ईश्वर का भजन करना चाहिये। भजन, साधन और अभ्यास से ही परलोक मिलता है— मन में इस बात का विश्वास रखना चाहिये।'

—दासबोध

सन्त समर्थ रामदास का भागवती शक्ति के मध्यकालीन व्याख्याकारों में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने महाराष्ट्र में आध्यात्मिकता का— निर्गुण ब्रह्म और सगुण लीलामय ब्रह्म के समन्वय की चेतना का राष्ट्रीयकरण किया। उन्होंने स्वराज्य का, सन्त सम्मतशासन-परम्परा का शुद्ध तथा परम निर्मल स्वरूप समझाकर प्राणीमात्र को परमात्मा की ओर उन्मुख किया। महाराष्ट्र में हनुमान के अवतार के रूप में घर-घर में उनकी पूजा होती है, वे दशरथनन्दन राघव राजाराम के परम भक्त थे, उन्होंने राम का मौलिक ढंग से चिंतन किया।

जिस समय देवदुर्लभ परम पवित्र भारत-भूमि में विदेशी शासकों की धार्मिक कट्टरता अपनी पराकाष्टा पर थी, कुराज्य का बोल-बाला था, भारतीय संस्कृति का गौरवमय भविष्य अन्धकार के सीकचों में तड़प रहा था, उस समय महाराष्ट्र में भागवत दूत के रूप में, ईश्वरीय सन्देश का प्रचार करने के लिये, धरतीपर रामराज्य की भूमिका प्रस्तुत करने के लिये समर्थ रामदास का प्राकट्य हुआ। उन्होंने स्वराज्य के संस्थापक महाराज छत्रपति शिवाजी से तथा भारतीय जनता से कहा कि जब धर्म का अन्त हो जाय तब जीने की अपेक्षा मर जाना अच्छा है। धर्म के समाप्त होने पर जीवित रहने का कोई अर्थ ही नहीं है। उन्होंने महाराज शिवाजी से कहा, 'मराठों को एकत्र कीजिये, धर्म को फिर जीवित कीजिये, हमारे पूर्वज, पितर स्वर्ग से हमारे ऊपर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हँस रहे हैं।' समर्थ रामदास ने समस्त भारत भूमि को उस समय धर्म-दान किया, धर्म राज्य की स्थापना का शुभ सन्देश दिया।

सन्तसमर्थ ने प्राणों की बाजी लगा कर स्वदेश और स्वधर्म तथा स्वराज्य पर सर्वस्व निछावर करने का पाठ पढ़ाया। समर्थ रामदास का उदय-काल विक्रम की सत्रहवीं सदी का तीसरा चरण था, उस समय दिल्ली के सिंहासन पर औरंगजेब का आधिपत्य था। रामदास ने धार्मिक क्रान्ति का सृजन किया। उन्होंने कहा कि धर्म के लिये मरो, मरते-मरते भी शत्रुओं का संहार करो, कर्तव्यच्युत होने पर उपहासपात्र होना पड़ेगा। समर्थ रामदास का धर्म ईश्वरीय धर्म था, सद्धर्म था। समर्थ युग-पुरुष थे, उनके सत्प्रयत्नों से भारतीय संस्कृति यथास्थान रह सकी, समर्थ रामदास को धार्मिक या आध्यात्मिक क्रान्ति करनी नहीं पड़ी, वह अपने आप हो गयी। उन्होंने सामाजिक और धार्मिक रीति-नीति में संतुलन सम्भव किया। उन्होंने दोनों का वैष्णवीकरण किया, वैष्णव धर्म और वैष्णव समाज को मान्यता दी।

सन्त समर्थ रामदास के पूर्वज बड़े भगवन्निष्ठ और धर्मपरायण थे। उनका कुल परम भागवत था। हैदराबाद के औरंगाबाद जनपद के आवन्द नामक मण्डल के जाम्ब गांव में उनके मूल पुरुष कृष्णाजी पन्त आकर बस गये थे। समर्थ रामदास के पिता सूर्याजीपन्त थे वे भगवान सूर्य के भक्त थे। उनकी माता रेणुबाई भी सतीसाध्वी और धर्म में अमित रुचि रखने वाली थीं। सूर्याजी पन्त ने छत्तीस साल तक भगवान सूर्य की उपासना की थी, उनके वरदान से उन्हें दो पुत्र हुए। पहले पुत्र का नाम गंगाधर-रामी रामदास था। दूसरे पुत्र ने सम्वत् १६६५ वि. में चैत रामनवमी को ठीक दोपहर के समय जन्म लिया, उनका नाम नारायण रखा गया, वे ही चरितनायक रामदास के रूप में प्रसिद्ध हुए।

एक बार उनके माता-पिता उन्हें महात्मा एकनाथ का दर्शन कराने के लिये पैठण ले गये। एकनाथ ने देखते ही कहा कि ये हनुमान के अंश से प्रकट हुए हैं, बहुत बड़े महात्मा होंगे।

समर्थ रामदास का पालन-पोषण धार्मिक वातावरण में हुआ। वे बचपन में बड़े चंचल स्वभाव के थे। खेल-कूद में ही इनका अधिकांश

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समय बीतता था। नदी के तट पर घूमना, पहाड़ के शिलाखण्डों से चढ़ना-उतरना, वृक्ष पर झूला झूलना ही इनका काम था। पांच साल की अवस्था में उनका उपनयन संस्कार हो गया, पिता की मृत्यु हो गई। शिक्षा-दीक्षा पर रेणुवाई ने बड़ा ध्यान रखा। उनकी कृपा से रामदास में शील, संयम और सदाचार आदि बढ़ने लगे। सूर्यदेव को वे नित्य दो हजार नमस्कार करते थे। हनुमान जी के प्रति उनके मन में सहज अनुराग था। उनका निश्चय था कि हनुमान जी ही मेरे गुरु हों। वे अपने गांव के हनुमान-मन्दिर में जाकर ध्यान करने लगे, उनका दृढ़ व्रत था कि जब तक हनुमान जी का दर्शन नहीं होगा, मैं अन्न-जल कुछ भी नहीं ग्रहण करूँगा। हनुमान जी ने उनकी निष्ठा से प्रसन्न होकर दर्शन दिया, स्वयं राम ने भी दर्शन दिया और वरदान दिया कि धर्म का प्रचार करो, लोक-कल्याण करो। राम ने उनका नाम नारायण से रामदास रखा।

जब (रामदास) नारायण की अवस्था बारह साल की हुई, मा ने उनका विवाह करने का निश्चय किया। विवाह की बात सुनते ही वे उदास हो जाते थे। एक दिन तो विवाह की चर्चा छिड़ते ही घर से भाग निकले और दो-तीन दिन तक कहीं छिपे रहे। माता के समझाने पर कहा कि बड़े भाई ने तो विवाह कर ही लिया है, वंश चलते रहने का निश्चय हो ही गया है, अब मेरे लिये विवाह की आवश्यकता ही नहीं रह गयी है। बहुत कहने-सुनने पर वे प्रस्तुत हो गये। मा ने कहा कि जब तक अन्तरपट का संस्कार न समाप्त हो जाय तब तक विवाह से इन्कार मत करना। रामदास ने बात मान ली। उनका विवाह आसन नामक गाँव में निश्चित हो गया। वे सजकर मण्डप में बैठे थे। ब्राह्मणों ने वर-वधू के बीच अन्तरपटवाला विधान सम्पन्न करना चाहा। उसके समाप्त होते ही पण्डितों ने कहा 'शिवमंगल सावधान।' रामदास के अन्तः चक्षु खुल गये। उन्होंने सोचा कि मैं तो सावधान हूँ ही पर यदि ब्राह्मण सावधान होने की चेतावनी देते हैं तो इसका कोई-न-कोई विशेष अर्थ अवश्य है। उन्होंने ब्राह्मणों से रहस्य पूछा तो वे बोल उठे कि अब तुम गृहस्थी की बेड़ी में जकड़ गये। इसलिये सावधान हो जाओ। रामदास सावधान हो गये। वे उसी समय विवाह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मण्डप से भाग चले। गोदावरी के तट पर पहुँच कर कहा कि मा, मुझे अपनी गोद में लेकर उस पार उतार दीजिये, आप पुण्यसलिला हैं, पापताप-संहारिणी हैं, असहाय की रक्षा कीजिये। वे गोदावरी की धारा में कूद पड़े, तैर कर उस पार राघवेन्द्र और सीता की तपो-भूमि पंचवटी में पहुँच गये। पंचवटी में उन्हें श्रीराम का साक्षात् दर्शन हुआ, उन्होंने करुणापूर्ण मार्मिक वाणी में भगवान का स्तवन किया। इस घटना के बाद उन्होंने तपस्या का जीवन आरंभ किया। गोदावरी और नन्दिनी के संगम वाले तट पर टाकली नामक गांव की एक गुफा में निवास कर तप करने लगे। वे रात के पिछले पहर से ही उठ कर श्रीराम का चिन्तन करते थे। दोपहर तक नदी में स्थिर होकर 'श्रीराम जय राम जय जय राम' मन्त्र का अनुष्ठान करते थे। अड़ोस-पड़ोस से मधुकरी मांग कर भगवान को समर्पित करके प्रसाद पाते थे। तप से उनका शरीर तेजोमय हो उठा, मुखमण्डल पर दिव्य प्रकाश छा गया। उन्होंने टाकली में तीन साल तक कठोर तप किया। एक दिन वे संगम पर अनुष्ठान कर रहे थे। एक युवती ने उनको प्रणाम किया। सन्त ने 'अष्टपुत्र सौभाग्यवती भव' आशी-र्वाद दिया। स्त्री आश्चर्यचकित हो गयी। उसने कहा कि महाराज मैं तो विधवा हूँ, मेरे पति की मृत्यु हो गयी है। मैं सती होने जा रही हूँ। कुलपरम्परा के अनुसार चिता में चढ़ने के पहले आप से आशीर्वाद लेने आयी थी। सन्त समर्थ ने स्त्री के पति के शव पर गोदावरी का पवित्र जल छिड़का, राम नाम का स्मरण किया; वह जीवित हो उठा। उसने उनकी चरणधूलि मस्तक पर चढ़ा कर कहा कि मैं आप के दर्शन से धन्य हो गया। आप ने मुझे मृत्यु के हाथ से छुड़ा लिया। मेरा नाम गिरिधर पन्त है, यह मेरी पत्नी अन्नपूर्णा बाई है। समर्थ ने कहा कि पहले मैंने आठ सन्तान होने की बात कही थी, भगवान की कृपा से दस सन्तान की प्राप्ति होगी। गिरिधर पन्त ने अपने पहले पुत्र उद्धव गोस्वामी को समर्थ के चरणों पर समर्पित किया था। वे उनके प्रधान शिष्य थे। सन्त समर्थ ने बारह साल तक टाकली में तप किया, उसके बाद भगवान श्रीराम के आदेश से वे तीर्थयात्रा और भागवतधर्म के प्रचार के लिये निकल पड़े।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उन्होंने काशी, अयोध्या, गोकुल, वृन्दावन, मथुरा, द्वारका, श्रीनगर, बदरीनारायण, केदारेश्वर, उत्तरमानस, जगन्नाथपुरी, रामेश्वर आदि की यात्रा की। सन्तों का समागम किया। गोकर्ण, महाबलेश्वर, शेषाचल, शैलमल्लिकार्जुन, पञ्चमहालिङ्ग, किष्किधा, पम्पासरोवर, परशुराम क्षेत्र तथा पण्ढरपुर होते हुए वे पंचवटी पहुँच गये। इस यात्रा-काल में अनेक मठ स्थापित किये, राम और हनुमान के मन्दिरों का निर्माण कराया। इस प्रकार बारह साल की तीर्थयात्रा में उन्होंने देश–काल की परिस्थिति का अनुभव कर आध्यात्मिक और सांस्कृतिक अभ्युत्थान का महामन्त्र जगाया। उन्होंने धर्म का सारतत्व समझा कर देश को राघवेन्द्र के राज्यादर्श का मर्म बताया, धर्माचरण का सदेश दिया।

उन्होंने गोदावरी की परिक्रमा आरम्भ की। एक दिन एकनाथ महाराज की समाधि का दर्शन करने पैठण गये। लोगों ने उनको पहचान लिया, कहा कि आप की माता की नेत्र-ज्योति चली गयी। वे आपको देखने के लिये रोते-रोते अन्धी हो गयी हैं। समर्थ माता के दर्शन के लिये चल पड़े। जाम्ब में अपने द्वार पर पहुँचते ही उन्होंने 'जय जय रघुवीर समर्थ' की आवाज लगायी। भावज भिक्षा देने आयी तो सन्त समर्थ ने कहा कि यह साधु केवल भिक्षा लेकर ही लौटने वाला नहीं है। माता ने उनकी आवाज पहचान ली। वे 'नारायण नारायण' पुकारती बाहर आ गयीं। माता की चरण-धूलि लेने के बाद समर्थ ने उनके नेत्रों पर हाथ फेरा, ज्योति लौट आयी। मा ने पूछा कि तुमने किस जादूगर को वश में किया है। समर्थ ने कहा कि मा, मैंने अयोध्या और मथुरा में–वृन्दावन में लीला करने वाले को वश में किया है। घर में आनन्द छा गया। बड़े भाई ने उनको देखते ही गले लगा लिया। माता के आग्रह से वे कुछ दिन घर पर ठहर गये। चलते समय उन्होंने मा को कपिल गीता सुनायी, जो कपिल ने देवहूति को सुनायी थी। इस प्रकार आत्मबोध देकर वे गोदावरी की परिक्रमा में प्रवृत्त हुए। उसके बाद पंचवटी आकर रामचन्द्र का दर्शन किया। उन्होंने टाकली की यात्रा की, टाकली में उनसे उद्धव गोस्वामी मिले। इस प्रकार बारह साल तपस्या में और बारह साल यात्रा में लगा कर वे कृष्णा नदी के तट पर आ गये। कृष्णा नदी के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उद्गममहाबलेश्वर क्षेत्र में रह कर उन्होंने धर्म-प्रचार किया। चार मास के बाद वे कृष्णा और वेणा नदी के संगम पर माहुली क्षेत्र में आकर रहने लगे। बड़े-बड़े साधु सन्त उनका सत्संग करने लगे। उनके शिष्यों की संख्या वेग से बढ़ने लगी। तुकाराम जी महाराज का उनसे सत्संग हुआ। कुछ दिनों के बाद वे शाहपुर के निकट एक पहाड़ी गुफा में एकान्त-सेवन करने लगे। बड़े-बड़े सामन्तों और राजाओं ने अपने आप को उनके चरणों में समर्पित कर दिया।

सन्त समर्थ अधिकांश रूप में चाफल में रहते थे। कभी-कभी देश के विभिन्न भागों में परिभ्रमण भी कर लिया करते थे। सन्त समर्थ और छत्रपति शिवाजी का मिलन तत्कालीन भारतीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है। उस समय महाराष्ट्र में सन्त तुकाराम की प्रसिद्धि बहुत बढ़ रही थी। शिवाजी महाराज ने तुकाराम को अपना गुरु बनाना चाहा था पर उन्होंने बड़ी विनम्रता से रामदास के लिये सम्मति दी। शिवाजी सन्त समर्थ के दर्शन के लिये बड़े उत्सुक थे। सन्त समर्थ का दर्शन अत्यन्त दुर्लभ था। वे एक स्थान पर कभी स्थायी रूप से नहीं थे। इधर-उधर घूमते रहते थे। महाराज ने उनको एक पत्र लिख कर पथ-प्रदर्शन करने का आग्रह किया था। सम्वत् १७०६ वि. के लगभग चाफल के समीप शिंगणवाड़ी में एक गूलर के पेड़ के नीचे बैठे हुए सन्त समर्थ का शिवाजी को दर्शन हुआ। वे उस समय उन्हीं का पत्र पढ़ रहे थे। रामदास ने शिवाजी की विशेष श्रद्धा देखकर उनको शिष्य रूप में स्वीकार कर लिया और धर्मपूर्वक राज्य करने का सदुपदेश दिया। इस घटना के बाद समर्थ रामदास ने कुछ दिनों तक पार्ली में निवास किया, पार्ली का नाम सज्जनगढ़ हो गया। सम्वत् १७१२ वि. के लगभग महाराज शिवाजी सतारा के किले में निवास कर रहे थे। एक दिन कुछ शिष्यों के साथ भिक्षा मांगते हुए समर्थ सतारा में पहुँच गये। किले के द्वार पर पहुँचते ही उन्होंने 'जय-जय समर्थ रघुवीर' का जयघोष किया। महाराज शिवाजी ने एक पत्र लिखा कर उनकी झोली में डाल दिया। पत्र में लिखा था कि आज से मेरा समस्त राज्य गुरु देव का है। सन्त समर्थ ने शिवाजी की परीक्षा ली कि आप क्या करेंगे? उन्होंने कहा कि म आप के पीछे-पीछे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

घूमूंगा। शिवाजी ने उनके साथ कन्धे पर झोली रख कर भिक्षा मांगी। समर्थ ने समझाया कि आप का धर्म है राजकार्य करना। शिवाजी ने सिंहासन पर गुरुदेव की चरण पादुका रख कर राज्य करना आरम्भ किया, धर्मराज्य की स्थापना हुई। उन्होंने गुरु के प्रति आदर दिखाने के लिये ध्वजा का भगवा रंग कर दिया। शिवाजीने उनकी छत्रछाया में वैष्णव धर्म स्वीकार कर स्वराज्यव्रत का पालन किया। सन्त समर्थ ने समझाया कि देव मन्दिर विदेशी शासन द्वारा भ्रष्ट हो रहे हैं, सज्जन उत्पीड़ित किये जा रहे हैं, धर्म और संस्कृति खतरे में हैं, हे वीर, भारत भूमि का संरक्षण कीजिये। आप धर्म को बचाइये, भारतीय संस्कृति आप की ही ओर देख रही है, उसकी रक्षा कीजिये। ईश्वर के भक्तों की सदा विजय होती है। समर्थ रामदास के संकेत पर शिवाजी सर्वस्व की बाजी लगा देने में आत्मगौरव समझते थे। सन्त समर्थ ने जनता को आत्मबोध प्रदान किया कि स्वराज्य का वास्तविक रूप क्या है, और उसके अनुसार राष्ट्र का जीवन कैसा होना चाहिये। वे अच्छी तरह समझते थे कि 'स्व' पर राज्य करने के लिये सात्विकता और धर्माचरण की बड़ी आवश्यकता है। उन्होंने अच्छी तरह समझ लिया कि भारतीय स्वराज्य और धर्म का संरक्षण सन्त ही कर सकते हैं। सन्त समर्थ की कृपा से लोगों की आत्म चेतना जागरित हो उठी। समर्थ रामदास ने लगभग सात सौ मठों की स्थापना कर देश को आत्म ज्योति, सांस्कृतिक गौरव और धर्मराज्य से सम्पन्न किया। समर्थ रामदास ने जनता को संतमत का सत्स्वरूप समझाया, राम की भक्ति दी। उन्होंने कहा कि जिसने मद, मत्सर और स्वार्थ का त्याग कर दिया है, जिसे सांसारिक बन्धन नहीं है, जिसकी वाणी नम्र और मधुर है वही राम का सच्चा सेवक है, पृथ्वी पर उसका जीवन धन्य है। उन्होंने श्रीरामचन्द्र की भक्ति को ही सर्वश्रेष्ठ और परम श्रेयस्कर स्वीकार किया; आत्मस्वरूपस्थ रहने की ही सीख दी। 'मनाचेश्लोक' में उनकी सरस उक्ति है:

घनश्याम हा राम लावण्य रूपी।
महाधीर गम्भीर पूर्ण प्रतापी॥
करी संकटीं सेवकांचा कुडावा।
प्रभाते मनीं राम चिंतीत जावा॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीराम नीले बादल के समान सुन्दर हैं, वे बड़े गम्भीर, धीर और प्रतापी हैं, संकट काल में भक्त की रक्षा करते हैं, हे मन, प्रभात काल में उनका ही स्मरण करो। राम ही को उन्होंने परम शक्तिमान स्वीकार किया, सन्तों का उपास्य बताया। उन्होंने कहा कि जिस मनुष्य के मुख से रामनाम मंत्र का उच्चारण नहीं होता है वह संसार में बहुत बड़ी हानि उठाता है; जिसका जीवन व्यर्थ है उसी को रामनाम में रस नहीं मिलता है, भगवन्नाम ही परमश्रेष्ठ है, यह वेद और शास्त्र तथा व्यास जी का मत है। हमें इसी का आश्रय लेना चाहिये। यह सर्वथा सत्य है। सन्त समर्थ ने वर्णाश्रम धर्म में बड़ी निष्ठा प्रकट की। पर ऐसा करके भी उन्होंने प्राणीमात्र को अपने राम का स्वरूप मान कर ही नहीं, समझ कर भी उपास्य बताया, आदरास्पद कहा। आत्मकल्याण और लोकहित को सत्य की आत्माकी ज्योति से समृद्ध कर समर्थ रामदास ने अपने सन्तत्व की रक्षा की। उन्होंने भगवान राम की भक्ति के बल पर सत्य-धर्म का संरक्षण किया, सन्त का कर्तव्य निबाहा। उन्होंने भगवद्भक्ति की व्याख्या में कहा कि भगवच्चरण की शरणागति ही श्रेय है, मृत्यु पर विजय कर अमरता का वरण करना ही आत्मचिंतन का परम रहस्य है। आत्मचिंतन से ही भगवान प्रसन्न होते हैं, समाज का कल्याण होता है; प्राणियों को सुख मिलता है। उन्होंने आत्मज्ञान के प्रकाश में संकेत किया: मनाचे-श्लोक प्रमाण है:

नभासारिखें रूप या राघवाचें।
मनीं चिंतितां मूल तूटे भवाचें॥
तया पाहतां देहबुद्धि उरेना।
सदा सर्वदा आर्त पोटीं पुरेना॥

राम राघव का रूप आकाश के समान है। उनके रूप का चिंतन करते रहने से भव का जड़ोन्मूलन हो जाता है, संसार का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। देह भाव मिट जाता है। मन उन्हीं को सदा देखना चाहता है, उसे कभी तृप्ति मिलती ही नहीं है। सन्त समर्थ ने रामभक्ति को ही परम गति स्वीकार किया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्त समर्थ ने भगवान की भक्ति सुदृढ़ करने के लिये शास्त्रों को मथ कर तथा आत्मानुभूति का प्रश्रय लेकर 'दासबोध' 'मनाचेश्लोक' आदि के रूप में भागवत वाङ्मय, दिव्य अध्यात्म साहित्य प्रदान किया। उन्होंने गृहस्थ, संन्यासी, विरक्त और भक्त के लिये भक्ति का ही मार्ग उत्तम बताया। उन्होंने स्पष्ट कहा कि धर्म भगवद्भक्ति से ही सुरक्षित रह सकता है, भक्ति ही आत्मा का धर्म है, इसलिये प्राणीमात्र के लिये भगवान ही—राम ही सेव्य हैं; उपास्य और आराध्य हैं। समर्थ रामदास का दासबोध भक्तिशास्त्र है, स्वराज्य का साहित्य है, आत्मा का भागवत काव्य है। दासबोध के अक्षर-अक्षर में परमात्मा की भक्ति अंकित है। उसमें राष्ट्रीय जागरण के महामन्त्र की— स्वराज्य मन्त्र की व्याख्या सन्त वाणी में की गयी है। दासबोध मध्यकालीन सन्त-साहित्य के उज्ज्वलतम रूप के परिचायकों में से एक है।

सन्त समर्थ रामदास ने राष्ट्रीय जागरण का मूलाधार परमात्मा के अन्वेषण में—सत्य के अनुसन्धान में स्थिर किया। उन्होंने कहा: मनाचेश्लोक में उनका कथन है:

जगीं पाहतां साच तें काय आहे।
अती आदरें सत्य शोधूनि पाहे ॥
पुढें पाहतां पाहतां देव जोडे।
भ्रम-भ्रान्ति अज्ञान हें सर्व मोडे॥

संसार में बड़ी सावधानी से सत्य की खोज करनी चाहिये। ऐसा करने पर ईश्वर की प्राप्ति होती है, भ्रम-भ्रान्ति और अज्ञान का अन्त हो जाता है।

सन्त समर्थ के सहस्रों शिष्य थे। उनमें कल्याण स्वामी और उद्धव गोस्वामी प्रधान थे। कल्याण स्वामी प्रायः उन्हीं के साथ रहा करते थे। उनके बनाये लेख, भजन, तथा उपदेश लिपिबद्ध कर लिया करते थे। दत्त, अकाबाई और वेनुबाई की गणना विशेष शिष्यों में ही होती है।

सन्त रामदास की ईश्वर में पूर्ण निष्ठा थी, उनकी शक्ति के सामने वे जगत का मस्तक नत देखना चाहते थे। एक दिन सज्जन गढ़ का किला बनवाते समय शिवाजी महाराज को अपनी शक्ति पर बड़ा अभिमान हुआ। उन्होंने सोचा कि मेरे द्वारा नित्य सहस्रों व्यक्तियों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

का भरण-पोषण होता है। इतने में दैवयोग से रामदास जी महाराज आ पहुँचे। उन्होंने एक मजदूर से पत्थर का एक टुकड़ा तोड़ने का संकेत किया, उसके भीतर एक छोटा-सा मेढ़क था, थोडा-सा पानी था। महाराज ने शिवाजी से कहा कि आप बड़े शक्तिशाली हैं, आपके सिवा जगत के जीवों का पालन-पोषण दूसरा कौन कर ही सकता है! शिवाजी को अपनी भूल समझ में आ गयी। वे गुरुदेव के चरणों मर गिर पड़े। क्षमा मांगी।

इसी प्रकार 'मनाचे श्लोक' की रचना के सम्बन्ध की एक घटना का उल्लेख सन्त समर्थ के जीवन-चरित्र का आवश्यक अंग सा प्रतीत होता है। रामदास जी महाराज चाफल निवास-काल में प्रत्येक वर्ष रामनवमी का उत्सव धूम-धाम से करते थे। शिष्य भिक्षा मांग कर उत्सव किया करते थे। शिवाजी महाराज ने बाद में उत्सव के लिये अपनी ओर से सामग्री भेजना आरम्भ किया। एक साल उनकी ओर से किसी कारण सामग्री समय पर न आ सकी। उत्सव में केवल पन्द्रह दिन रह गये थे। शिष्यों ने आग्रह किया कि शिवाजी के पास पत्र लिख कर सामग्री मंगा ली जाय। महाराज ने प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। उन्होंने कहा कि भगवान सर्वसमर्थ हैं, वे सामग्री भेज देंगे। महाराज ने रात को कल्याण स्वामी को अपने पास बैठाकर दो सौ पांच श्लोक लिखा दिये, तप करने चले गये। दूसरे दिन कल्याण स्वामी की प्रेरणा से महाराज के शिष्यों ने घर-घर घूम कर उन श्लोकों का गान किया। भिक्षा में अमित सामग्री की प्राप्ति हुई, उत्सव विधिपूर्वक महाराज के आने पर सम्पन्न हुआ। उन्होंने सिद्ध कर दिया कि सन्त की वाणी में जो शक्ति है वह राजा की सत्ता में नाममात्र को नहीं है। इस प्रकार 'मनाचेश्लोक' की रचना कर सन्त समर्थ रामदास ने अपनी भगवन्निष्ठा की सत्यता चरितार्थ की। सन्त समर्थ का सम्पूर्ण जीवन वैराग्य और त्यागमय था।

सम्वत् १७३७ वि. में उनके प्रिय शिष्य शिवाजी महाराज का स्वर्ग-वास हो गया। उनकी मृत्यु से समर्थ रामदास को बड़ा धक्का लगा। उन्होंने अन्न का त्याग कर दिया, केवल दूध पर रहने लगे। लोगों को दर्शन देना बन्द कर दिया। कभी मढ़ी से बाहर नहीं निकलते थे। महा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राष्ट्र पर औरंगजेब के उत्पात आरम्भ हो गये, शम्भाजी शक्तिहीन थे। ऐसी परस्थिति में समर्थ चिंता से विकल हो गये। सम्वत् १७३९ वि. की माघ कृष्ण नवमी को उन्होंने महाप्रयाण किया। उनके मुख से 'हर-हर' का उच्चारण होने के बाद रामनाम का जयघोष हुआ, उसके बाद उनके मुख से एक ज्योति निकल कर राम के विग्रह में समा गयी। अन्तिम समय सज्जनगढ़ में ही उपस्थित हुआ। शिष्यों ने उनके आदेश के अनुसार शरीर का दाह-संस्कार कर दिया। समर्थ ने अन्तिम समय में कहा था कि 'दासबोध' और 'आत्माराम' ग्रन्थ में मेरी आत्मा का निवास है उसी का पाठ करना चाहिये। वे समर्थ सन्त थे।

रचना

दासबोध, आत्माराम, मनाचे श्लोक, रामायण, पंचमान, मानपंचक पंचीकरणयोग, करुणाष्टक आदि समर्थ रामदास की प्रसिद्ध रचनायें हैं।

वाणी

मना सज्जना भक्ति पंथेंचि जावें। तरी श्रीहरी पाविजे तो स्वभावें।
जनीं निंद्य तें सर्व सोडूनि द्यावें। जनी वंद्य ते सर्वभावें करावें॥

हे मन, तुम भक्तिमार्ग स्वीकार करो, इससे सुगमता से भगवान की प्राप्ति होगी। जन समाज में जो निन्दनीय है, उसका त्याग करो; जो वन्दनीय है, उसे ग्रहण करो। —मनाचे श्लोक

मना सर्वथा सत्य सोडूं नको रे। मना सर्वथा मिथ्य मांडूं नको रे॥
मना सत्य तें सत्य वाचे वदावें। मना मिथ्य तें मिथ्य सोडूनि द्यावें॥

मन! सत्य का त्याग किसी भी स्थिति में मत करो, असत्य का पक्ष मत लो। वाणी से वही बोलो जो सत्य है; असत्य का, असत्य समझकर परित्याग करो। —मनाचे श्लोक

मुखीं राम विश्राम तेथेंचि आहे। सदानंद आनंद सेऊनि राहे॥
तयावीण तो शीण संदेह कारी। निजधाम हें नाम शोकापहारी॥

जिसके मुखमें राम रहते हैं उसे उन्हीं में विश्राम मिलता है। वह अखण्ड आनन्दस्वरूप आनन्द का भागी होता है। राम नाम के सिवा सबकुछ संशयजनक और थकावट देने वाला है। नाम दुखहारी परमात्मा का धाम है। —मनाचे श्लोक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हरी कीर्तनीं प्रीति रामीं धरावी । देहेबुद्धि निरूपणीं वीसरावी ।।
परद्रव्य आणीक कांता परावी । यदर्थीं मना सांडिजीवीं करावीं ।।

मन, भगवत्कीर्तन में राम का प्रेम धारण करना चाहिये । निरूपण करते समय देह का विस्मरण कर देना चाहिये । परस्त्री और परधन की कामना का परित्याग करना चाहिये ।

—मनाचे श्लोक

मही निर्मिली देव तो ओलखावा । जया पाहतां मोक्ष तत्काल जीवा ।।
तया निर्गुणालागिं गूणीं पहावें । परी संग सोडूनि सूखें रहावें ।।

जिन ईश्वर ने पृथ्वी का निर्माण किया उनको पहचानना चाहिये । उनकी पहचान होते ही जीव मुक्त हो जाता है । उन निर्गुण ईश्वर को सगुण रूप में देखना चाहिये और असंग होकर आत्मानंद में मग्न रहना चाहिये ।

—मनाचे श्लोक

मना संग हा सर्व संगांस तोडी । मना संग हा मोक्ष तत्काल जोड़ी ।।
मना संग हा साधकां शीघ्र सोडी । मना संग हा द्वैत निःशेष मोडी ।।

हे मन, सत्संग से संसार की आसक्ति छूट जाती है । मोक्ष मिलता है । साधक भवसागर से पार उतर जाता है; सत्संग द्वैत भावना का समूल नाश करता है । —मनाचे श्लोक

जिन लोगों के पास पूर्व जन्म की संचित की हुई यथेष्ट पुण्य-सामग्री होती है, वही लोग भगवान की भक्ति कर सकते हैं । जो जैसा करता है, वह वैसा फल पाता है ।

—दासबोध

साधु का मुख्य लक्षण यह है कि वह सदा अपने स्वरूप का अनुसंधान करता रहता है और सब लोगों में रहकर भी उनसे अलग रहता है । ज्यों ही उसकी दृष्टि स्वरूप पर पड़ती है, त्यों ही उसकी सांसारिक चिन्तायें नष्ट हो जाती हैं और अध्यात्म-निरूपण के प्रति ममता उत्पन्न होती है । —दासबोध

निराकार आत्मा ही शाश्वत तथा सत्य है । उस आत्मा का किसी को पता नहीं चलता है, और बिना ज्ञान के उसका आकलन नहीं होता है । इसलिये उसके सम्बन्ध में संतों से पूछना चाहिये । —दासबोध

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्त तुकाराम

रवं वायुमग्निं सलिलं महीं च
ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं
यत्किञ्च भूतं प्रणमेदनन्यः॥

आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, नक्षत्र, जीवजन्तु, दिशायें वृक्ष, नदी, समुद्र तथा और भी जो कुछ भूतजात हैं, वे सब हरि के ही तो शरीर हैं, इसलिये सभी को अनन्य भाव से प्रेम करना चाहिये, प्रणाम करना चाहिये।

—(श्रीमद्भागवत ११।२।४१)

सन्त तुकाराम अभिनव नामदेव थे। विक्रम की सत्रहवीं सदी के महाराष्ट्र ने एकनाथ, रामदास और तुकाराम के रूप में भारतीय इतिहास को परम पवित्र देन से समलंकृत किया है। तुकाराम महाराज ने अपनी वाणी से महाराष्ट्र में पण्ढरीनाथ पाण्डुरंग विट्ठलेश्वर की भक्ति की गंगा प्रवाहित कर दी। उन्होंने सन्त साहित्य की समृद्धि-वृद्धि में महान योग दिया।

जिस समय महाराष्ट्र में ही नहीं, समस्त भारत भूमि में परधर्मियों द्वारा देवमन्दिर विध्वंस और नष्ट किये जा रहे थे, संस्कृति और धर्म पर बड़ी-से-बड़ी विपत्ति पड़ने की आशंका थी, उस समय तुकाराम और रामदास ने जन्म लेकर भारतीय अध्यात्म क्षेत्र को, ज्ञानेश्वर नामदेव और एकनाथ के परम पवित्र महाराष्ट्र को, राजसिंह के चित्तौड़ और शिवाजी के सिंहगढ़ को तथा गोविन्दसिंह के पंजाब को राष्ट्रीय चेतना से जागृत किया। तुकाराम महाराज की भगवद्भक्ति का केन्द्र पण्ढरपुर था, उन्होंने विट्ठल की कृपा से आत्मज्योति प्राप्त की। विदेशियों के आतंक से पीड़ित देश को आश्वासन प्रदान करने में मध्यकाल में सन्त शिरोमणि तुलसीदास, समर्थ सन्त रामदास और तुकाराम महाराज अग्रगण्य स्वीकार किये जा सकते हैं। तुकाराम जी महाराज ने साधा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रण गृहस्थ के वेष में रह कर भी सन्त-जगत में जो नाम कमाया वह नितान्त मौलिक और अनुपम माना जा सकता है। उनके वैराग्यपूर्ण तपोमय जीवन की मराठी वाङ्मय के नाभादास सन्त महीपति ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। उनका काव्य भागवत प्रेम का पूर्ण प्रतीक है, वे रहस्यवादी संत थे, उनकी रचना में उच्चकोटि के रहस्यपरक साहित्य का दर्शन होता है। उन्होंने मध्यकालीन धार्मिक जागृति का महाराष्ट्र में नेतृत्व किया। प्राणीमात्र को भगवान की भक्ति करने का अधिकार है —उन्होंने ऐसी घोषणा कर शुद्ध भागवत धर्म का प्रचार किया, तत्कालीन सन्तों द्वारा प्रवर्तित इस प्रकार का धर्म भागवत धर्म कहलाता है, सन्तों ने अपने आत्मा के स्वर को भक्ति रस में सराबोर कर दिया। संत तुकाराम का भागवत धर्म सब जातियों के लिये था, उसमें वर्णाश्रम-विचार की ओर दृष्टिपात नहीं किया गया। समस्त वर्णों को भगवत्सेवा का अधिकार है – इस तथ्य को मान्यता दी गयी। तुकाराम ने अपने भागवत धर्म का मूल आधार भगवन्नाम संकीर्तन घोषित किया। उन्होंने कहा :

'पवित्र तें कुल पावन तो देश।
जेथें हरिचे दास जन्म घेती।।'

वह कुल पवित्र है, देश पावन है जिसमें हरि के दास उत्पन्न होते हैं। उन्होंने अपने भागवतधर्म को निर्गुण और सगुण, ब्रह्मवेदान्त संवेद्य और भक्त द्वारा उपास्य भगवान के समन्वय से सरस बनाया। उन्होंने कहा कि निर्गुण ब्रह्म की ही लीलारस के आस्वादन के लिये सगुण रूप में अभिव्यक्ति होती है। उन्होंने आजीवन भगवान के मधुर नाम का कीर्तन किया।

आलन्दी से छः कोस की दूरी पर पूना के निकट भगवती इन्द्रायणी के तट पर परम पुनीत देहू ग्राम में सम्वत् १६६५ वि. में एक भागवत कुल में तुकाराम जी महाराज का जन्म हुआ था। उनके पूर्वज बड़े भगवद्भक्त थे, पाण्डुरंग विट्ठल की उनके कुल पर बड़ी कृपा थी। उनके एक पूर्वज विश्वम्भर की भक्ति से प्रसन्न होकर विट्ठल ने देहू के निकट ही अम्बिकावन में उन्हें अपनी उपस्थिति से धन्य किया था। तुकाराम के माता-पिता भी पाण्डुरंग के बड़े भक्त थे। उनके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पिता बोलोजी और माता कनकावाई दोनों बड़े सन्तोष से गृहस्थी के कार्य में रत थे। तुकाराम जी के बड़े भाई का नाम सावजी था, वे स्वभाव से ही विरक्त थे, विवाह होने के कुछ ही दिनों के बाद उन्होंने वैराग्य ले लिया; छोटे भाई का नाम कान्हजी था। पिता वैश्य का काम करते थे। व्यापार से ही परिवार की जीविका चलती थी। पिता के काम में तुकाराम सहायता करते रहते थे।

जब तुकाराम तेरह साल के हुए, उनका विवाह रखुमाई नाम की कन्या से कर दिया गया पर यह जान कर कि उसे दमे का रोग है, पिता ने उनका दूसरा विवाह जिजाबाई से कर दिया। गृहस्थी विधि पूर्वक चलने लगी। पिता बूढ़े हो चले थे इसलिये उन्होंने कामकाज तुकाराम के हाथ में सौंप दिया। बड़े भाई की काम में तनिक भी रुचि नहीं थी, पूरे परिवार के पालन-पोषण का भार तुकाराम जी के ही कन्धों पर आ पड़ा। थोड़े समय के बाद पिता-माता का स्वर्ग वास हो गया। तुकाराम जी के बड़े भाई सावजी की स्त्री का देहान्त हो गया। वे तीर्थयात्रा के लिये निकल गये। तुकाराम असहाय हो गये पर विट्ठल की कृपा से उन्होंने साहस से काम लिया, अपने कर्तव्य में दृढ़ रहे।

भगवान जिन्हें अपनी भक्ति प्रदान करते हैं उनकी गृहस्थी पर चोट आती है, उन्हें अनेक कष्ट झेलने पड़ते हैं। तुकाराम जी महाराज को भी अनेक विघ्न-बाधाओं का सामना करना पड़ा पर उनकी विट्ठल-निष्ठा में किसी प्रकार की भी कमी न आ सकी। तुकाराम की दूकानदारी दिन-प्रति-दिन गिरने लगी। उन्होंने धन कमाने की चेष्टा की पर सदा असफलता ही हाथ रही। गृहस्थी उनके लिये भयंकर नरक के रूप में परिणत हो गयी। उनकी पहली स्त्री सुशील थी पर दूसरी तो रह-रह कर काट खाती थी। इस प्रकार गृह की अस्तव्यस्तता और पारिवारिक संकट तथा आर्थिक हानि में ही उनके दिन बीतने लगे। एक बार कुछ आत्मीयों और सम्बन्धियों की सहायता से कुछ रुपये लेकर मिर्चा खरीदकर कोंकण में बेचा, परन्तु ठगों ने रुपया ले लिया। वे इतने सरल थे कि लोगों के भुलावे में आसानी से आ जाते थे। कोंकण से घर लौटते समय महाराज को एक ठग ने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पीतल के कड़े दिखाये, उन पर सोने का पानी चढ़ाया गया था। महाराज ने सब रुपये उसे दे दिये, पीतल के कड़े लेकर घर गये। इस प्रकार अभाग्य ने उनका पीछा किया पर वे कभी हतोत्साह न हुए, अग्नि-परीक्षा में सदा सफल ही होते रहे।

महाराज अमित क्षमाशील थे। एक बार घर में कुछ खाने को नहीं था। खेत में गन्ने थे। तुकाराम महाराज गन्ने का बोझ सिर पर रख कर घर आ रहे थे। रास्ते में मांगने वालों ने गन्ने माँग लिये। केवल एक गन्ना लेकर घर आये। उनकी पत्नी भूखी थी। वह क्रोध से महाराज पर टूट पड़ी। उनकी पीठ की उसने उसी गन्ने से मरम्मत की। गन्ना टूट गया। महाराज ने तनिक भी क्रोध नहीं किया। केवल इतना ही कहा कि तुमने गन्ने के दो टुकड़े कर मेरा काम हलका कर दिया, नहीं तो तुम्हारे और अपने चूसने के लिये मुझे इसके टुकड़े करने ही पड़ते।

महाराज का गृहस्थ जीवन उदार, सात्विक और दयापूर्ण था। एक बार उनकी पत्नी जिजाबाई ने व्यापार के लिये दो सो रुपयों का प्रबन्ध किया। महाराज ने नमक खरीद कर ढाई सौ रुपये पैदा किये पर बालीघाट से घर आते समय रास्ते में एक गरीब के मांगने पर उन्होंने सहायतास्वरूप सारे रुपये दे डाले। उन दिनों भीषण अकाल पड़ा हुआ था, लोग दाने-दाने के लिये मर रहे थे। इस परिस्थिति में भी महाराज ने रुपयों का लोभ नहीं किया। इसी बीच में उनकी पहली पत्नी का स्वर्गवास हो गया, बेटा भी चल बसा पर महाराज तुकाराम भगवान के भरोसे दृढ़ रहे। वे संकट में अचल रहे।

इस समय तुकाराम की अवस्था लगभग बीस साल की थी। महाराज के जीवन ने वैराग्य के निष्कंटक राज्य में प्रवेश किया। उन्होंने तपस्या आरम्भ की, घरगृहस्थी के विनश्वर रूप के प्रति वे अनासक्त हो उठे। महाराज ने अपने पिता के जीवन-काल में लिखे गये रुपयों के रुक्के एकत्र किये, उनमें से आधे उन्होंने अपने छोटे भाई को दे दिये और शेष इन्द्रायणी में प्रवाहित कर दिये। महाराज का मन घर पर नहीं लगता था इसलिये वे एकान्त-सेवन के लिये कभी भागनाथ तो कभी भण्डारा के पर्वत पर जाकर भगवान पाण्डुरंग का स्मरण किया करते थे। उनकी पत्नी ठीक समय पर भोजन आदि की व्यवस्था कर दिया करती थी। महा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राज ने स्वयं अपने ही हाथ से अपने पूर्वज विश्वम्भर द्वारा निर्मित विट्ठल मन्दिर का जीर्णोद्धार किया, इस कार्य में भगवत्प्रेरणा से उन्हें महादजी नामक एक सज्जन ने सहायता दी थी। महाराज आषाढ़ और कार्तिक की एकादशी को पण्ढरीनाथ के दर्शन के लिये पण्ढरपुर जाया करते थे। एकादशी व्रत और विट्ठल के मधुर नाम-उच्चारण में उनकी बड़ी निष्ठा थी। तप के फलस्वरूप भगवान की कृपा से उन्हें काव्य-स्फूर्ति प्राप्त हुई। इस घटना के सम्बन्ध में एक उल्लेख है। महाराज को विट्ठल ने नामदेव को साथ लेकर स्वप्न में दर्शन दिया। भगवान ने आदेश दिया कि नामदेव ने मेरी स्तुति में असंख्य पद रचे हैं, जो शेष रह गये हों उनकी पूर्ति तुम करो। तुकाराम ने भगवान के आदेश का पालन किया। तुकाराम ने अपने अभंगों में बड़ी श्रद्धा से इस स्वप्न का विवरण दिया है। बड़े-बड़े सन्त महात्मा उनकी भागवत काव्य-शक्ति के चरणों पर नत हो गये। उनकी कीर्ति शरदपूर्णिमा के समान परम दिव्य हो उठी।

तुकाराम भगवान के अनन्य भक्त थे और पण्ढरीनाथ विठोबा भी उनके प्रति विशेषरूप से अनुरक्त थे। उन्होंने भगवान के आदेश के अनुसार अभंगों की रचना अत्यन्त ललित मराठी-भाषा में आरम्भ की, उनमें श्रुति का सार भरा रहता था, वैदिक रहस्य का माधुर्य विलास करता था। भक्ति पक्ष पर विशेष जोर था। ज्ञान और कर्म-काण्ड की महत्ता का नाममात्र विवरण भी उन अभंगों में न था। पूना से नव मील की दूरी पर बाघोली ग्राम में रामेश्वर भट्ट नाम के एक शास्त्रज्ञ कर्मकाण्डी ब्राह्मण रहते थे। उन्होंने मराठी भाषा में रचे गये अभंगों की उपेक्षा की और कहा कि इस प्रकार की रचना से देववाणी और शास्त्रज्ञान का अपमान होता है। पर आश्चर्य तो यह था कि चारों वर्ण के लोग तुकाराम महाराज के अभंगों को गाते-फिरते थे। रामेश्वर भट्ट के लिये यह बात असह्य थी। उन्होंने देहू के राजाधिकारी से प्रार्थना की कि तुकाराम का देहू से निष्कासन हो जाय। तुकाराम तो दैन्य की मूर्ति थे। वे रामेश्वर भट्ट से मिलने गये। उन्होंने बड़ी विनम्रता से कहा कि महाराज मैं तो विट्ठल की ही प्रेरणा से मराठी में अभंगों की रचना करता हूँ पर यदि आप ऐसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महान वेदज्ञ की सम्मति नहीं है तो मैं रचना नहीं करूँगा पर इतना और बता दीजिये कि जो अभंग अब तक रचे गये हैं उनके सम्बन्ध में क्या करूँ। भट्ट ने कहा कि इन्हें इन्द्रायणी की धारा में डुबा दीजिये, यदि भगवान की कृपा से ये तेरहवें दिन के बाद सुरक्षित मिल जायेंगे तो मैं मान्यता प्रदान करूँगा। सन्त तुकाराम ने भट्ट की आज्ञा का पालन किया पर अभंगों को इस प्रकार इन्द्रायणी में प्रवाहित कर देने पर उन्हें बड़ा दुख हुआ। वे मन्दिर के प्रमुख द्वार पर बिना अन्न जल ग्रहण किये पड़े रहे। भगवान के भक्तों का विनाश असम्भव है, उनकी कीर्ति अमर और अटल है। पाण्डुरंग ने देहू ग्राम के निवासियों को स्वप्न में आदेश दिया कि तुकाराम के अभंग इन्द्रायणी के धरातल पर सुरक्षित हैं, उन्हें लाकर तुकाराम को दे दो। इधर तेरहवें दिन प्रभु ने बालरूप में तुकाराम को अपने दर्शन से धन्य किया और अभंगों के सुरक्षित होने की बात बतायी। रामेश्वर तुकाराम के चरणों पर गिर पड़े, महाराज ने प्रेम से उनका आलिंगन किया, कहा कि मैं शूद्र हूँ, मुझे अपने चरणों की धूलि लेने दीजिये। रामेश्वर भट्ट तुकाराम महाराज के शिष्य हो गये। उनकी एक स्थल पर उक्ति है :

ऊँच नीच वर्णन म्हणावा कोणी। जेकां नारायणीं प्रिय झाले ॥
चहूंवर्णासी हा असे अधिकार। करितां नमस्कार दोष नाहीं ॥

जो नारायण के प्रिय पात्र हैं उनके उत्तम-कनिष्ठ वर्ण के विचार का कुछ भी महत्व नहीं है। चारों वर्णों का यह अधिकार है, उन्हें नमस्कार करने में तनिक भी दोष नहीं है। रामेश्वर भट्ट की गणना महाराज के प्रधान शिष्यों में है।

महाराज के जीवन-चरित्र में अनेक विचित्र घटनाओं का उल्लेख पाया जाता है। एक बार वे एक मन्दिर में भगवन्नाम का कीर्तन कर रहे थे। एक ताम्रकार-ठठेर भी उनके कीर्तन में सम्मिलित हुआ। ठठेर की स्त्री ने उसे कीर्तन में जाने से रोका था। पर वह स्त्री की बात न मान सका। ठठेर का छोटा बच्चा इसी बीच में मर गया। उसकी पत्नी ने मृत बच्चे को कीर्तन के मध्य में रख दिया। उसने तुकाराम से कहा कि महाराज आप ने तो मेरा घर ही उजाड़ दिया,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हरि का नाम हमारे परिवार के लिये लाभदायक नहीं सिद्ध हुआ। महाराज ने कहा कि हरि का नाम तो अमृत से भी बढ़ कर लाभदायक है। वे 'विट्ठल-विट्ठल' कह कर कीर्तन करने लगे। श्रोताओं ने भी जोर-जोर से कीर्तन करना आरम्भ किया। हरिनाम के प्रताप से बच्चा जी उठा। कीर्तन-मण्डली में प्रसन्नता छा गयी, चारों ओर तुकाराम की जयध्वनि सुन पड़ने लगी।

एक बार एक वेदान्ती ने महाराज को वेदान्तपरक नया रचा हुआ ग्रन्थ सुनाना चाहा, पहले तो महाराज ने बड़ी चेष्टा की कि किसी प्रकार पीछा छूटे पर अन्त में वेदान्ती ने पढ़ना आरम्भ किया। महाराज ने सिर से पैर तक समस्त शरीर कम्बल से ढक लिया था। वे भगवान का स्मरण करने लगे। वेदान्ती को बड़ा आश्चर्य हुआ कि महाराज कुछ बोल ही नहीं रहे हैं। उसने कम्बल खींचा देखा कि महाराज दोनों कानों पर हाथ रख कर ध्यानस्थ हैं। महाराज ने कहा कि ब्रह्म-ज्ञान होना एक बात है और ब्रह्म की शक्ति को पाना दूसरी बात है, मनुष्य ब्रह्म-ज्ञानी हो सकता है पर वह ब्रह्म के समान शक्तिमान नहीं हो सकता है, इसलिये भक्ति का पथ ही वरणीय है। भगवान की भक्ति ही श्रेयस्कर है, उसी की प्राप्ति के लये ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिये। भगवान की कृपा से ही भक्ति मिलती है।

प्रभु अपने भक्तों के यश-विस्तार के लिये लीला किया करते हैं। एक बार की घटना है। तुकाराम महाराज उन दिनों कठिन तप कर रहे थे, उनकी पत्नी उनकी भक्ति से वश में हो गयी थी, वह महाराज की आज्ञा के अनुसार सारे कार्य करती थी। एक बार महाराज ने समझाया कि भगवान हम लोगों के योग-क्षेम का ध्यान रखते हैं, अपने पास जो कुछ भी हो, दीन-दुखियों की सेवा में लगा देना चाहिये। पत्नी ने सब कुछ ब्राह्मणों और कंगालों को दे दिया। पहनने के लिये एक साड़ी ही रह गयी थी। महाराज से एक ब्राह्मणी ने साड़ी मांगी, पत्नी उस समय स्नान कर रही थी, तुकाराम ने साड़ी दे दी। बाद में पत्नी को बड़ा दुख हुआ। उसने हाथ में पत्थर का एक टुकड़ा ले लिया, वह मन्दिर में गयी, भगवान के चरणों पर प्रहार करना चाहती थी, लीलापति थर-थर कांपने लगे। भक्त की पत्नी का कोप

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देख कर रुक्मिणी ने कहा कि भाग चलिये। विट्ठल ने कहा कि मेरे भाग जाने से भक्ति की मर्यादा का लोप हो जायेगा, भक्त की साख मिट जायेगी। पत्नी ने यह घटना महाराज को सुनायी तो वे प्रभु से क्षमा मांगने के लिये मन्दिर के द्वारपर पहुँच गये। पत्नी मन्दिर में चली गयी, मन्दिर के पट अपने आप वन्द हो गये, तुकाराम वाहर ही खड़े रह गये, पश्चात्ताप करने लगे। इधर रुक्मिणी ने उनकी पत्नी को वहुत से रुपये दिये, पहनने का वस्त्र प्रदान किया। पट खुल गये। इस प्रकार विट्ठल देव ने तुकाराम महाराज की भक्ति और श्रद्धा का लीलापूर्वक रसास्वादन किया। भगवान सदा अपने भक्त का संरक्षण करते हैं।

शिवाजी उन दिनों स्वराज्य की संस्थापना में संलग्न थे; वे स्वधर्म और स्वराज्य का संरक्षण कर रहे थे। साधु-सन्तों में उनकी स्वाभाविक निष्ठा थी। तुकाराम जी महाराज से वे वहुत प्रभावित थे। वे उनका दर्शन करने के लिये लोहगांव भी गये थे। उन्होंने महाराज को अपना गुरु वनाना चाहा पर सन्त तुकाराम ने समर्थ रामदास को गुरु वनाने की सम्मति दी। शिवाजी महाराज की वड़ी इच्छा थी कि एक वार महाराज उनकी राजसभा को अपनी उपस्थिति से पवित्र करें, उन्होंने महाराज को ठाट-वाट से लाने के लिये वहुत से सैनिक अधिकारी भेजे, उपहार में अनेक कीमती वस्तुएँ भेजीं पर महाराज ने किसी भी दशा में जाना स्वीकार नहीं किया। उन्होंने शिवाजी को पत्र लिखा कि आप की राजसभा में उपस्थित होने में मेरा क्या लाभ है। भिक्षा और वस्त्र तो वहुत से मिल जायेंगे। शिलाखण्ड ही मेरा विस्तरा है, आसमान मेरा ओढ़ना है। यदि आप की राजसभा में मुझे सम्मान मिलेगा तो क्या इससे शान्ति की प्राप्ति हो सकेगी। भिक्षुक होने में ही परमानन्द है, तपस्या और त्याग से वढ़कर कीमती वस्तु संसार में कुछ भी नहीं है। धनी तो वासनाओं के वन्धन में सदा दुखी रहते हैं। भगवान के भक्त राजाओं से कहीं अधिक भाग्यशाली होते हैं। आप असहायों की रक्षा कीजिये। सचराचर में परमात्मा का दर्शन कीजिये, समर्थ रामदास के चरण का आश्रय ग्रहण कीजिये, आप का जीवन पृथ्वी पर धन्य है: तुकाराम ने बताया:

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'आम्हीं तेणें सुखी । म्हणा विट्ठल विट्ठल मुखीं ।
कंठीं मिरवा तुलसी । व्रत करा एकादशी ।।'

मुझे तो इसी में सुख है कि आप 'विट्ठल-विट्ठल कहिये, कंठ में तुलसी की माला धारण कीजिये और एकादशी व्रत का पालन कीजिये।.... एक बार पण्ढरपुर में संतों की बहुत बड़ी सभा हुई थी। देश के कोने-कोने से सन्तों और भक्तों का आगमन हुआ। सारा प्रबन्ध शिवाजी की ओर से था। शिवाजी इस सम्मेलन में स्वयं उपस्थित थे। समर्थ रामदास और तुकाराम ने अपने कथा-कीर्तन से इस सम्मेलन को सफल बनाकर भगवद्भक्ति का सन्देश फैलाया।

एक बार एक मन्दिर में तुकाराम महाराज हरिकीर्तन कर रहे थे। दैव योग से शिवाजी महाराज इस समारोह में उपस्थित थे। शत्रुओं को उनकी उपस्थिति का पता चल गया पर वे कीर्तन से न उठे, उनका पूरा-पूरा विश्वास था कि सन्त तुकाराम की कृपा तथा भगवान की प्रसन्नता से उनका बाल नहीं बांका होगा। तुकाराम महाराज के कीर्तन-अमृत का परित्याग कर नश्वर देह को बचाने के लिये भागना उन्होंने उचित नहीं समझा। चाँदनी रात थी, हवा ठन्डी-ठन्डी चल रही थी। शत्रुओं को शिवाजी के ही रूपवाले सौ व्यक्ति दीख पड़े। भगवत्प्रेरणा से शत्रु जंगल की ओर भाग गये और कीर्तन अबाध गति से रात भर चलता रहा। महाराज ने कहा कि उसका जीवन पृथ्वी पर सफल है जो अपनी वाणी का उपयोग भगवान के कीर्तन-भजन में करता है:

'तुका म्हणे वाणी। सुखे वेंचा नारायणीं।'

सन्त तुकाराम ने तत्कालीन महाराष्ट्र को ही नहीं सम्पूर्ण भारतीय राष्ट्र को आत्मदर्शन-भगवद्दर्शन प्रदान किया। वे भक्त सन्त थे।

सन्त तुकाराम का सबसे बड़ा काम यह था कि लोगों में उन्होंने भगवद्विश्वास की ज्योति फैलायी, सगुण और निर्गुण ब्रह्म के चिंतन का समन्वयात्मक रूप प्रदान किया। उन्होंने गांव-गांव तथा नगर-नगर में घूम कर भगवन्नाम-संकीर्तन, भजन और हरिकथा का प्रचार किया। महाराज ने निर्मल ब्रह्म ज्ञान, शुद्ध भगवत्तत्व की खोज की। उन्होंने प्रण किया था कि भिखारी भले ही हो जाऊँ पर पण्ढरी का वारकरी—भक्त वैष्णव बना रहूँगा। मुख में विट्ठल का नाम रहे, बस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यही मेरा नियम है, धर्म है। विट्ठल ही मेरे भगवान हैं। महाराज की उक्ति है :

'पण्ढरीची वारी आहे माझे घरीं। आणिक न करीं तीर्थव्रत।।
व्रत एकादशी करीन उपवासी। गाईन अहर्निशी मुखीं नाम।।'

पण्ढरी की यात्रा करने का नियम मेरे घर में चला आता है, मैं वही करता हूँ, तीर्थव्रत मेरे लिये सब कुछ वही है। उपवासपूर्वक एकादशी व्रत करूँगा और रात-दिन मुख से भगवन्नाम का कीर्तन करूँगा। महाराज ने आजीवन इस उक्ति को जीवन में चरितार्थ किया।

तुकाराम की भगवद्भक्ति उच्च कोटि की थी। महाराज ने अपने ढंग से भगवान के स्वरूप का चिंतन किया। वे एक बार पण्ढरपुर नहीं जा सके। उन्होंने अभंग रच कर भक्तों को दे दिये। देहू के वारकरियों ने भीमा में स्नान कर पाण्डुरंग के सम्मुख कीर्तन करना आरम्भ किया। विट्ठल ने तुकाराम को पण्ढरी लाने के लिये गरुड़ भेजा पर महाराज ने भगवान के वाहन पर बैठ कर जाना अस्वीकार कर दिया। स्वयं विट्ठल ने रुक्मिणी सहित महाराज को देहू में दर्शन दिया, उन्होंने मोरमुकुट, मकराकृत कुण्डल, पीताम्बर, कौस्तुभमणि, नूपुर आदि धारण किये थे। तुकाराम ने उनसे परम पद-अभय पद-भक्ति की ही याचना की। तुकाराम ने प्रेमस्वरूप भगवान की उपासना की। उनके भगवत्प्रेम का मूलाधार मानस-उपासना है। हृदय का उनके चरणों पर समर्पण ही उच्च कोटि की भक्ति है — महाराज की यह मान्यता थी। भगवान भक्ति और प्रेम से ही प्रसन्न होते हैं—ऐसा उनका अटल विश्वास था। वे भगवान की कृपा शक्ति पर ही सदा निर्भर रहते थे। तुकाराम ने कहा कि कीर्तन से शरीर पवित्र होता है, भगवत्प्रेम की प्राप्ति होती है। उन्होंने कहा कि साधक में सद्भाव होना परम आवश्यक है, भगवान के सम्मुख भाव का ही बल चलता है। चित्त शुद्ध करके भावपूर्वक भगवान का भजन ही उच्च कोटि की साधना है। सन्त-चरण पर मस्तक नत करने से ईश्वर की प्राप्ति होती है। महाराज ने एक अभंग में कहा है :

'तो या दाखवील वाटा। जया पाहिजे त्या नीटा।
कृपावंत मोठा। पाहिजे तो कलवला।।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भगवान स्वयं ही उचित और ठीक मार्ग दिखा देते हैं; वे दयालु हैं, हृदय में भाव होना चाहिये। महाराज ने अपनी विवशता के सम्बंध में कहा कि इतनी आयु नहीं है कि समस्त ग्रन्थ पढ़ सकूं। विठोबा सब कुछ करा लेंगे। उनकी कृपा से जो ज्ञान प्राप्त होगा उसे हृदय में रख लूँगा।

महाराज ने स्पष्ट कहा कि मुझे आत्मस्थित ब्रह्मज्ञान की आवश्यकता नहीं है। मैं तो सदा भक्त ही की स्थिति में भक्तिरस का आस्वादन करना चाहता हूँ। मुझे तो गोपिकारमण भगवान श्यामसुंदर के ही दर्शन की आवश्यकता है। तुकाराम महाराज ने एक अभंग में भगवान से आत्मनिवेदन किया कि मेरी जाति हीन है पर सन्त जन मेरी स्तुति करते हैं। मेरा अभिमान बढ़ रहा है, मेरा जीवन व्यर्थ होना चाहता है, प्रभु मेरी रक्षा कीजिये, नहीं तो, मैं कहीं का भी नहीं रह जाऊँगा। महाराज ने सगुण-निर्गुण ब्रह्म के समन्वय-माध्यम से कहा:

'सगुण निर्गुण जयाचीं हीं अंगें।
तेचि आम्हां संगें क्रीड़ा करी॥'

सगुण-निर्गुण जिनके अंग हैं वे ही नारायण हमारे साथ क्रीड़ा किया करते हैं। भगवान की कृपा से उनको निर्मल सच्चिदानन्द तत्व का बोध था।

महाराज ने सदा भगवत्तत्व की ही विवेचना की। जीवन को पूर्ण-रूप से भगवद्मय बनाना ही उनकी साधना का स्वरूप था। इस सम्बन्ध में उनके द्वारा रचे गये अभंग भक्ति-जगत् और संत-साहित्य को बहुत बड़ी देन हैं। उनका समस्त आचरण भगवान के चरणों पर समर्पित था, भागवतधर्म—वैष्णवधर्म के विस्तार में निस्सन्देह महाराज ने अद्भुत योग दिया। उनके अभंगों में प्रभु की कृपा और रूप-सौन्दर्य माधुर्य का पुष्कल वर्णन मिलता है।

महाराज की सन्त वचन और पुराणों में अमित आस्था थी। महाराज ने गुरु शिष्य के सम्बन्ध में एक अनोखी बात कही:

'गुरु शिष्य पण। हें तों अधम लक्षण॥
भूतीं नारायण खरा। आप तैसाचि दूसरा॥'

CC-0. Mumukṣhu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गुरु बनना और चेला बनाना अधमता है। भूतमात्र में नारायण हैं—यह बात सच हैं, इसलिये हमारे और दूसरे में क्या अन्तर है।

महाराज गृहस्थ सन्त थे। अन्त समय में उनके दो पुत्र महादेव और विठोबा तथा तीन कन्या काशी, भागीरथी और गंगा उपस्थित थे। सम्वत् १७०६ वि. की चैत कृष्ण द्वितीया को तुकाराम महाराज ने सदेह स्वर्ग की यात्रा की, मयूर कवि की वाणी है कि जिस प्रकार भगवान् राम सदेह स्वर्ग गये उसी प्रकार तुकाराम महाराज ने शरीर से ही वैकुण्ठ की यात्रा की। देहू में उनके अभंगों की पूजा होती है। उनके वैकुण्ठ-गमन के बाद शिवाजी देहू आये थे, उन्होंने चार गांव जागीर के रूप में उनके वंशजों को प्रदान किये। संत तुकाराम सन्त कवि और महान भक्त थे।

रचना

तुकाराम ने अनेक अभंगों की रचना की।

वाणी

कथा त्रिवेणी संगम। देव भक्त आणि नाम॥
तेथीं चें उत्तम। चरण रज वन्दितां॥
जलती दोषां चे डोंगर। शुद्ध होती नारी नर॥
गाती ऐकंती सादर। जे पवित्र हरिकथा॥

हरि-कीर्तन में भगवान, भक्त और नाम का त्रिवेणी-संगम होता है। वहाँ की उत्तम पदरज वन्दनीय हैं। दोषों के पहाड़ जल जाते हैं, जो हरिकथा गाते और सुनते हैं वे नारी-नर पवित्र और शुद्ध हो जाते हैं।

× × ×

पण्डित तो भला। नित्य भजे जो विट्ठला॥
अवघें सम ब्रह्म पाहे। सर्वा भूतीं विट्ठल आहे॥

सच्चा पण्डित वह है जो नित्य विट्ठल का भजन करता है। देखता है कि सम्पूर्ण समब्रह्म है, चराचर में विट्ठल हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धर्म भूताची ते दया। संत कारण ऐसिया।
नव्हे माझें मत। साक्षी करूनि सांगे संत॥

प्राणी मात्र पर दया करना ही धर्म है। यह सन्त का लक्षण है, यह मेरा ही मत नहीं है, साक्षी करके संत ऐसा कहते हैं।

आधीं होता संतसंग। तुका झाला पाण्डुरंग॥
त्याचें भजन राही ना। मूल स्वभाव जाइना॥

पहले सत्संग था, पीछे तुका पाण्डुरंग हो गया, इस अवस्था में भी भजन नही छूटता है, मूल स्वभाव रहता ही है।

× × ×

वेद पुरुष नारायण। योगियांचे ब्रह्म शून्य॥
मुक्तां आत्मा परिपूर्ण। तुका म्हणे सगुण भोलयां आम्हां।

वेदों के लिये जो नारायण पुरुष हैं, योगियों के शून्य ब्रह्म हैं, मुक्त के लिये परिपूर्ण आत्मा हैं, हमारे ऐसे भोले-भाले लोगों के लिये वे ही नारायण सगुण हैं।

ऐक रे जना। तुझ्या स्वहिताच्या खुणा॥
पण्ढरी चा राणा। मना माजी स्मरावा॥
सकल शास्त्रांचे हें सार। हें वेदाचे गव्हर।
पाहतां विचार। हाचि करिती पुराणें॥

हे जीव, सुनो। अपने हित की पहचान सुनो। पण्ढरी के राणा को मन में स्मरण करो। सब शास्त्रों का यही सार है, वेद का यही रहस्य है, पुराण का यही विचार है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महात्मा तैलंग स्वामी

सन्त आनन्दाचें स्थल । संत सुखचि केवल ॥
नाना संतोषाचें मूल। तें हे सन्त ॥

सन्त आनन्द और सुख की निधि प्रदान करते हैं, वे संतोष के मूल अधिष्ठान होते हैं। —सन्त समर्थ रामदास

भारत भूमि परम पवित्र है, इसमें उतरने के लिये देवता तरसते रहते हैं। इस भूमि में समय-समय पर भगवान ने अनेक अवतारों में आत्मसृजन कर लीलारस का आस्वादन किया है। सन्त, परमहंस, योगियों और अवधूतों ने इस भूमि को सदा गौरव प्रदान किया है। लगभग तीन सौ साल पहले की बात है, जब देश विदेशी प्रभुता से आक्रान्त था, महात्मा तैलंग स्वामी ने पृथ्वी पर जन्म लेकर तत्वज्ञान के अनुसन्धान से, भगवत्तत्व की छानबीन से मानवीय चेतना को सम्पन्न कर दिव्य और समुत्थित किया था। वे बहुत बड़े अवधूत, अप्रतिम तपस्वी, महान योगी और विलक्षण सन्त थे। लगातार तीन-तीन दिन तक गंगाजी में खड़े रहते थे, आकाश और पृथ्वी के मध्य में निराधार स्थित रहते थे। बिना प्रश्न किये ही वे लोगों के मन की बात जान लेते थे और उनकी जिज्ञासा की निवृत्ति हो जाती थी। महात्मा तैलंग स्वामी के जीवन में अनेक चमत्कारपूर्ण घटनाओं का उल्लेख मिलता है जो आस्तिकता की कड़ी कसौटी पर खरी उतरती हैं। निस्सन्देह वे आजीवन अनेक प्रकार की सिद्धियों पर शासन करते रहे। देखने में वे बड़े रूपवान और सुंदर थे, लोग सहज में ही उनकी ओर आकृष्ट हो जाया करते थे। वे बहुत बड़े आत्मज्ञानी थे, अपनी योग-साधना, तपस्या और अलौकिक सिद्धियों के प्रचार से वे बहुत दूर भागते थे। उनमें गम्भीरता और सरलता, महत्ता और विनम्रता तथा विरक्ति और लोकसेवा का बड़ा सुन्दर समन्वय था। वे अध्यात्मक्षेत्र की महती शक्तियों में से एक थे। दक्षिण भारत के विजना—विजियाना

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जनपद में होलिया ग्राम में नृसिंहधर नाम के एक धनी भूमिपति रहते थे। वे ब्राह्मण थे। उनके घर में किसी प्रकार के ऐश्वर्य और वैभव की कमी नहीं थी, उनका परिवार अत्यन्त समृद्ध और सुखी था। नृसिंहधर ने दो विवाह किये थे। उनकी पहली पत्नी का नाम विद्यावती था। विद्यावती में सद्गुण भरे-पड़े थे, वे स्वभाव से बड़ी सुशील, शिष्ट और सौम्य थीं। बड़ी सीधी-सादी थीं। भगवान और देवी-देवता में उनकी बड़ी निष्ठा थी पर सन्तान का अभाव उन्हें बहुत खटकता था। उन्होंने पुत्र-प्राप्ति के लिये अनेक अनुष्ठान किये। उनके तपोपूर्ण जीवन के परिणामस्वरूप सम्वत् १६६४ वि. के पौष मास में उन्हें एक पुत्ररत्न प्राप्त हुआ। उन्होंने अपने पुत्र का नाम तैलंगधर रखा और बड़े प्यार से उनका पालन-पोषण किया। उनके पैदा होते ही घर में आनन्द का राज्य उतर आया। नृसिंहधर ने दीन-दुखियों और असहायों को मुँहमांगा दान दिया, ब्राह्मणों को बड़ी-बड़ी दक्षिणा देकर प्रसन्न किया। तैलंगधर की विमाता ने भी इसी बीच में एक पुत्र को जन्म दिया, उनका नाम श्रीधर था। नृसिंहधर की गृहस्थी ठाट-बाट से चल रही थी।

ज्यों-ज्यों तैलंगधर अवस्था में बढ़ने लगे त्यों-त्यों सती साध्वी मा के सम्पर्क में उनके हृदय में भगवान के प्रति प्रेम का उदय होने लगा, संसार के प्रति अनासक्ति बढ़ने लगी। परिवार में उनका मन तनिक भी नहीं लगता था। वे एकान्त में बैठ कर मा की सीख के अनुसार भगवान के स्वरूप का चिंतन किया करते थे। पिता ने घर के प्रति उदासीन होते देख कर उनके सामने विवाह का प्रस्ताव रखा पर तैलंगधर ने विवाह के प्रति अरुचि प्रकट की, उन्होंने पिता से कहा कि आप जानबूझ कर मुझे नश्वर सम्बन्ध में क्यों जकड़ना चाहते हैं। मैं अविनाशी आत्मतत्व का इस जीवन में अनुसंधान करना चाहता हूँ, आप का कर्तव्य है कि इस महत्वपूर्ण कार्य में मेरा योग दीजिये। नृसिंहधर पुत्र की बात से बहुत क्षुब्ध हुए। वे रात-दिन चिंता में विकल रहते थे। विद्यावती ने पति को समझाया कि बड़े भाग्य से तैलंगधर ऐसे पुत्ररत्न की हमें प्राप्त हुई है। यदि वे आत्मतत्व का अनुसंधान करना चाहते हैं तो हमें इस पुनीत कार्य में उनका उत्साह बढ़ाना चाहिये। यदि आप वंश-वृद्धि के लिये चिंतित हों तो श्रीधर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

का विवाह कर देना चाहिये। पिता ने विद्यावती की सम्मति से श्रीधर का विवाह कर दिया, परिवार में अनेक प्रकार के आमोद-प्रमोद मनाये गये। इस प्रकार विद्यावती के स्नेह से तैलंगधर अध्यात्म-पथ में तेजी से गति करने लगे। मा विद्यावती पुत्र को सदा सुमार्ग पर चलने की सीख देती रहती थीं, वे आदर्श माता थीं।

कुछ दिनों के बाद नृसिंहधर का स्वर्गवास हो गया। पिता के देहान्त से तैलंगधर तनिक भी क्षुब्ध न हुए, उनके लिये तो जीवन-मरण दोनों समान थे, वे तो उनसे ऊपर उठे हुए थे। इस घटना के बाद उनके भगवच्चिंतन का क्रम बढ़ गया। दैवी गुणों से वे सम्पन्न हो गये। माता उन्हें मदालसा की तरह निर्मल ब्रह्मज्ञान का उपदेश देती थीं। वे बहुत बड़े मातृभक्त थे। पिता के देहान्त के बारह साल बाद विद्यावती ने भी देहत्याग कर दिया। पींजड़े में बद्ध पक्षी अब एकदम स्वतन्त्र हो गया, मुक्त हो गया। उनके जीवन में वैराग्य परिव्याप्त हो उठा। वे माता के वियोग से बहुत दुखी हुए। जिस स्थान पर विद्यावती का दाहसंस्कार हुआ था, उसी स्थान पर निवास कर उन्होंने घोर तप करना आरम्भ किया। उन्होंने सोचा कि वैराग्य की साधना करने का सर्वोत्तम स्थान श्मशान ही है, संसार की विनश्वरता का पूर्ण ज्ञान इसी स्थान पर प्राप्त हो सकता है। वे रात-दिन श्मशान में ही रहने लगे। घर जाना बन्द कर दिया। उनके भाई श्रीधर ने बड़ी चेष्टा की पर वे घर न लौट सके। श्रीधर सगे-सम्बन्धियों को लेकर उन्हें लौटाने गये। तैलंगधर ने उन लोगों को समझा-बुझा कर आदरपूर्वक विदा किया, श्रीधर से कहा कि, भैया, मैं पाप-संसार में नहीं जाऊँगा, मेरी इसी बात में प्रसन्नता है कि तुम पैतृक सम्पत्ति का बुद्धिमानी से उपभोग करो, समस्त परिवार का पालन करते हुए गृहस्थ धर्म में तत्पर रहो। श्रीधर ने तैलंगधर के रहने के लिये श्मशान में ही एक अच्छी-सी कुटी बनवा दी। इस प्रकार तैलंगधर अपने गांव में ही विरक्त की तरह रहने लगे। उन्होंने बीस साल तक कठिन तप किया।

एक बार उनके आश्रम में पंजाब प्रान्त के एक योगी आये। उनका नाम भगीरथ स्वामी था। वे अनुभवी योगी थे। कुछ दिनों तक तैलंग-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

घर ने उनका सत्संग किया, योगी के प्रति उनके मन में सात्विक श्रद्धा का उदय हुआ। वे उनके साथ तीर्थयात्रा के लिये निकल पड़े। पुष्कर क्षेत्र में पहुँच कर उन्होंने भगीरथ स्वामी को गुरु बनाया। दो साल के बाद उनके चोला छोड़ने पर योगानुभव प्राप्त करने के लिये उन्होंने तीर्थयात्रा आरम्भ की। पहले वे रामेश्वर गये, उसके बाद सुदामापुरी आये, सुदामापुरी से तैलंग स्वामी (गुरुदत्त नाम गणपति स्वामी) नैपाल आये। वे नैपाल के वन में तप करने लगे। एक दिन विचित्र घटना हुई। नैपाल-नरेश कुछ सैनिकों के साथ वन में मृगया के लिये निकले थे। सेनाध्यक्ष ने एक बाघ का पीछा किया। थोड़ी ही दूर पर तैलंग स्वामी का आश्रम था। बाघ प्राण बचाने के लिये उनके आश्रम पर पहुँच गया, तैलंग स्वामी के चरण में उसने मस्तक टेक दिया, तैलंग उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगे, इतने ही में बाघ का पीछा करते हुए सेनाध्यक्ष आ पहुँचा, वह इस दृश्य को देख कर भयभीत हो उठा। तैलंग स्वामी ने उसको बड़े प्रेम से अपने पास बुलाया, अहिंसा का महत्व समझाया। .....थोड़ी ही देर में सेनाध्यक्ष नैपाल-नरेश के साथ दर्शन के लिये आया। नैपाल-नरेश ने स्वामीजी के चरणों पर पुष्कल द्रव्य चढ़ाया, उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक लौटा दिया और राजा को समझाया कि जिसके पास भगवद्रत्न हैं उसे सांसारिक धन की तनिक भी अपेक्षा नहीं है।....नैपाल में योगानुभव प्राप्त करने के बाद तैलंग स्वामी मानसरोवर गये। उसके बाद वे नर्मदा नदी के तट पर मार्कण्डेय ऋषि के आश्रम में आकर तप करने लगे। इस स्थान पर दूर-दूर से साधु-महात्मा उनके दर्शन के लिये आने लगे। एकान्त-चिन्तन में बाधा उपस्थित होते देख कर उन्होंने प्रयाग की ओर प्रयाण किया। प्रयाग में वे कुछ दिन निवास कर तप करने लगे। एक दिन उन्होंने लोगों को एक अद्भुतघटना से आश्चर्य चकित कर दिया। वे गंगा तट पर खड़े थे। लोगों ने समझा कि उस पार जाने के लिये स्वामी जी नौका की प्रतीक्षा कर रहे हैं। इसी बीच में एक नौका मध्य धारा में प्रवेश कर रही थी, उस पर बहुत से यात्री बैठे हुए थे। आकाश में काली-काली घटा छा गयी, बिजली चमकने लगी, पवन का वेग बढ़ गया। मूसलाधार वृष्टि होने लगी। महाराज ने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कहा कि नौका डूबने वाली है, यदि मैं नहीं बचाऊँगा तो अनेक लोगों के प्राण चले जायेंगे। लोगों के देखते ही देखते अदृश्य हो गये। नौका डूब गयी, थोड़ी देर में नौका किनारे लगी, लोग सुरक्षित थे, यात्रियों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उन्होंने नौका पर से एक नये व्यक्ति को उतरते देखा, वे तैलंगस्वामी थे। इस प्रकार उन्होंने अपने योगानुभव से लोगों को मुग्ध कर लिया। स्वामी जी प्रयाग से काशी चले आये।

काशी में असी घाट पर तुलसीदास के बाग में, वेदव्यास के आश्रम में, तथा दशाश्वमेघ घाट पर क्रमशः तप करते रहे। वे अवधूत के वेष में रहते थे। यदि कुछ भिक्षा मिल जाती थी तो प्रसन्न मन से खा लेते थे, नहीं तो समस्त समय भगवान के चिंतन में ही बीतता था। एक बार एक मजिस्ट्रेट ने हथकड़ी-बेड़ी पहनवा कर कैद में डाल दिया, ताला बन्द था पर स्वामी जी बाहर टहल रहे थे। पूछने पर उन्होंने कहा कि ताला से शरीर रोका थोड़े ही जा सकता है, यदि ऐसा ही होता तो लोग मृत्यु उपस्थित होने पर शरीर को ताले में बन्द कर दिया करते। मजिस्ट्रेट ने स्वामी जी से क्षमा माँगी।

आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द का एक बार काशी में आगमन हुआ था। वे मूर्ति-पूजा और देवी-देवता की उपासना का खण्डन कर रहे थे। तैलंग स्वामी योगी थे, परम ब्रह्मज्ञानी थे पर देवी-देवता की उपासना में उनकी आस्था थी। शिष्यों द्वारा मूर्ति पूजा के खण्डन की बात सुनने पर उन्होंनें कागज के टुकड़े पर कुछ लिखकर दयानन्द जी के पास भेज दिया। स्वामी दयानन्द ने पत्र पढ़ कर काशी से प्रस्थान किया। उसमें क्या लिखा हुआ था इसका पता न चल सका।.....आचरण की पवित्रता पर तैलंग स्वामी बहुत जोर देते थे। तैलंग स्वामी बड़े क्षमाशील थे। एक बार एक कुटिल व्यक्ति ने दूध में अधिकमात्रा में अफीम घोल कर पिला दिया। स्वामी जी ने जानबूझ कर सारा-का-सारा दूध पी लिया और जल-त्याग के द्वारा विष का प्रकोप शान्त कर दिया। कुटिल व्यक्ति उनके चरणों पर गिर पड़ा। तैलंग स्वामी ने उसे क्षमा प्रदान की।

काशी में निवास-काल का जीवन पूर्ण तपोमय था। उनके अन्तिम दिन काशी में ही बीते। दशाश्वमेघ से पंच-गंगा घाट पर विन्दमाधव

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के निकट रहने लगे। उन्होंने कठोर मौन व्रत ले रखा था। कभी-कभी शिष्यों द्वारा धर्म जिज्ञासा की बात चलाने पर वे बोल दिया करते थे। उन्होंने आजीवन अनुभव किया कि ईश्वर से भिन्न संसार में कुछ भी नहीं है। वे उच्चकोटि के परमहंस थे, उन्होंने परमात्मा में सत्य-योग का अनुभव प्राप्त किया था। उन्होंने कहा कि संसार में भगवद्-भक्ति ही श्रेय है, ईश्वर को प्राप्त करने के लिये साधना और भक्ति, तपस्या और ज्ञान, वैराग्य और प्रेम की आवश्यकता है। प्रत्येक प्राणी में ईश्वर विद्यमान हैं, हृदय-चक्षु से उनका दर्शन हो सकता है। उन्होंने जीवन के अन्तिम दिनों में अयाचित वृत्ति का ही वरण किया था। शीत के दिनों में वे लगातर कई दिनों तक गंगा जी में ही स्थित रहते थे, ग्रीष्म की दोपहरी में शिलाखण्डों पर सोते थे। वे लययोगी हठ योगी और ज्ञानयोगी सब कुछ थे। उन्होंने आजीवन लोककल्याण किया, प्राणीमात्र की दुःख-निवृत्ति की ही ओर ध्यान दिया। उनका जीवन साधनसिद्ध था। परब्रह्म ही उनके उपास्य थे। जगत के सुख-दुख से सदा उदासीन रहते थे। जीवन्मुक्त महात्मा थे। उन्होंने परमात्मा के निर्गुण भाव की अभिव्यक्ति के लिये सगुण अथवा प्रतीक उपासना का आश्रय लेने की सीख दी। सदा प्रेमोन्मत्त रहते थे।

चोला-त्याग के दो साल पहले पचगंगा घाट पर अपने आश्रम में शिवलिंग की स्थापना की। सम्वत् १९४४ वि. की पौष मास की शुक्ला एकादशी को दौ सौ अस्सी वर्ष की आयु में उन्होंने महाप्रयाण किया। उनकी अन्तिम इच्छा के अनुसार उनके शरीर को एक सन्दूक में बन्द कर नौका के द्वारा असी होते हुए वरुणा में परिक्रमा करायी गयी। उसके बाद पंचगंगा घाट पर गंगा में प्रवाहित कर दिया गया। तैलंग स्वामी सिद्ध पुरुष थे, महायोगी और परमहंस थे।

रचना

'महावाक्य रत्नावलि' तैलंग स्वामी का प्रसिद्ध ग्रंथ है।

वचन

हमारी चारों ओर, भीतर और बाहर जो नित्य निरवच्छिन्न भाव से विद्यमान हैं, जिनके संकेत मात्र से ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, चन्द्र

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सूर्य, वायु और वरुणादि अपने-अपने कर्तव्य-पालन में तत्पर हैं, जिनकी सत्ता से हम लोग जीवित हैं, जो चरणशून्य होकर भी सर्वत्र गमन करते हैं, कर्णहीन होकर भी मन की सारी बातें जान लेते हैं, नेत्रहीन होकर भी सारी बातों को प्रत्यक्ष देखते हैं, जो हमें देखते हैं पर जिन्हें हम नहीं देख पाते हैं, काम क्रोध लोभ, दुराशा, विषय वासना आदि जिनसे भयभीत हो जाते हैं, ज्ञान जिनके स्वरूप का निर्णय करने में अक्षम है, कल्पनातीत हैं, मन आत्मा जिनके निकट जाने पर तल्लीन हो जाते हैं, माया जिन्हें आवरित नहीं कर पाती है, वाक्य जिनकी व्याख्या नहीं कर सकते हैं, वे ही ईश्वर हैं।

यदि ईश्वर को जानने और पाने की इच्छा है, तो उपासना करना आवश्यक है, जिनमें यह इच्छा नहीं है उनके लिये उपासना भी आवश्यक नहीं है। ईश्वर किसी की प्रशंसा के भूखे नहीं हैं, समस्त जीवों में वे समान रूप से दया करते हैं। उपासना अथवा आराधना उत्कोच नहीं है, यह तो ईश्वर का विशुद्ध शक्तिजाल है, आकर्षणयन्त्र है, जिस पथ का अवलम्बन कर ईश्वर को जानने की विवेचना की जाती है और जिससे वे जाने जाते हैं उसी का नाम उपासना है।

× × ×

यदि हम अपने आप को नहीं जान सकते हैं, तो ईश्वर को भी नहीं जान सकते हैं। जितने दिन तक हम अपने आप को नहीं जानते हैं उतने दिन तक चेष्टा करने पर भी ईश्वर को नहीं जान सकते हैं।'...आत्मा सर्वगत होने पर भी सर्वत्र प्रकाशित नहीं है, वह तो केवल निर्मल बुद्धि में ही प्रकाशित होता है।

× × ×

धन, पुत्र, सुख, दुख, विषय सम्पत्ति आदि को अपना कहने पर जब इतना आह्लाद होता है तो भक्तिभाव से उनको, जिनका सारा ब्रह्माण्ड ही है, अपना कहने पर कितना आनंद होता होगा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्त दरिया साहब

आई गवनवां की सारी, उमिरि, अवहीं मोरी बारी ॥
साज समाज पिया लै आये, और कहरिया चारी।
बम्हना बेदरदी अँचरा पकरि कै, जोरत गंठिया हमारी ॥
सखी सब पारत गारी ॥
विधि गति बाम कछु समझ परतना, बैरी भई महतारी।
रोय रोय अंखिया मोर पोंछत, घरवां से देत निकारी ॥
भई सब कौ हम भारी ॥
गवन कराय पिया लै चाले, इत उत बाट निहारी।
छूटत गांव नगर से नाता, छूटै महल अटारी ॥
करम गति टरै न टारी ॥
नदिया किनारे बलम मोररसिया, दीन्ह घुंघट पट टारी।
थरथराय तन कांपन लागे, काहू न देखि हमारी ॥
पिया लै आये गोहारी ॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, यह पद लेहु बिचारी।
अब के गौना बहुरि नहिं औना, करिले भेंट अंकवारी ॥
एक बेर मिलि ले प्यारी ॥

—सन्त कबीर

सन्त दरिया साहब बड़े अनुभवी सन्त थे। वे कबीर की ज्ञान-धारा से विशेष रूप से प्रभावित थे। संत कबीर की ही तरह उन्होंने निर्गुण, निरञ्जन, प्रियतम का चिंतन किया। सन्त दरिया साहब के जीवन-काल में भारत की केन्द्रीय राजसत्ता विशृंखल हो रही थी। औरंगजेब की कट्टर धार्मिक नीति और उदारतारहित शासन प्रणाली से मुगल राजसत्ता को बहुत बड़ा धक्का लगा था। बंगाल और बिहार के प्रान्तों में अंग्रेजी कम्पनी का षड्यन्त्र सफल हो चुका था। प्लासी के युद्ध में सिराजुद्दौला घर के ही फूट के कारण हार गये थे, उनके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत्तराधिकारी मीर जाफर अंग्रेजों के किराये के टट्टू थे। मीरजाफर की कायरता से बंगाल और बिहार में अराजकता का बोल बाला था। मीर जाफर के बाद नवाब मीर कासिम ने अंग्रेजों को बाहर निकालने की बड़ी चेष्टा की। ऐसे विचित्र राजनैतिक वातावरण में बिहार में दरिया साहब ने बड़ी शान्ति और उदारता से सन्त मत का विस्तार किया, लोगों को सत्य-चिंतन से प्रभावित कर परमात्मा का प्रेमी बनाया। विक्रम की अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी के द्वितीय चरण में वे बिहार के सन्त साहित्य के क्षेत्र में बहुत बड़ी आध्यात्मिक शक्ति थे। उन्होंने आध्यात्मिक ज्ञान के प्रकाश में समाजको नवनिर्माण का सन्देश दिया।

सन्त दरिया के पूर्वज उज्जैन के क्षत्रिय थे। वे किसी राजनैतिक कारण से मालवा से बिहार चले आये। बिहार के जगदीशपुर राज्य में वे बस गये। दरिया साहब के पिता का नाम पृथुदेव सिंह था। ऐसा कहा जाता है कि अपने भाई का प्राण बचाने के लिये उन्होंने औरंगजेब की एक बेगम् की दरजिनकी कन्या से विवाह कर इस्लाम मत स्वीकार किया था, उनका नाम पीरनशाह हो गया। दरिया साहब की माता का ईश्वर में बड़ा अनुराग था।

बिहार प्रान्त के आरा जनपद में धरकन्धा गांव में सम्वत् १६९१ वि. की कार्तिक पूर्णिमा को दरिया साहब ने जन्म लिया था। उनके जन्म का सम्वत् १७३१ वि. भी कहा जाता है। उनके जन्म से घर के लोग तथा गांव वाले बहुत आनन्दित हुए।

दरिया साहब के जन्म के एक मास के बाद एक विचित्र घटना हुई। वे एक दिन अपनी मा की गोद में विराजमान थे। उसी समय एक अलौकिक पुरुष सत्गुरु ने उनको दर्शन दिया और उनका नाम दरियाशाह अथवा दरियादास रखा। दरिया को कबीर का अवतार माना जाता है।

जब दरिया नव साल के थे तभी उनका विवाह कर दिया गया। दरिया सदा एकान्त में बैठ कर आत्मा-परमात्मा का चिंतन किया करते थे। संसार के पदार्थों के प्रति उनके मन में स्वाभाविक रूप से घृणा थी। विवाहित जीवन उनके लिये सुख कर नहीं सिद्ध हुआ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्तों के सत्संग और आध्यात्मिक प्यास से उन्होंने विवाहित होने पर भी पन्द्रह साल की अवस्था में वैराग्य ले लिया। पाँच साल के बाद उनमें महान सन्त होने के सम्पूर्ण लक्षण दीख पड़े। उनकी प्रसिद्धि से आकृष्ट होकर बड़े-बड़े सन्त-महात्मा उनके सत्संग में सम्मिलित होने लगे। तीस साल की अवस्था में उन्होंने गद्दी पर बैठ कर सन्तों, साधुओं तथा शिष्यों को आध्यात्मिक उपदेश देना आरम्भ कर दिया। दिन-प्रति-दिन उनकी साधना सिद्धि की ओर बढ़ती गयी। वे अपने सीधे-सादे जीवन्न में जो कुछ भी अनुभव करते थे उसे पदों और साखियों में व्यक्त करते थे। धीरे-धीरे शिष्यों की संख्या बढ़ने लगी। बिहार के सूबेदार नवाव मीर कासिम दरिया साहब से बहुत प्रभावित थे। वे स्वदेश प्रेमी शासक थे। उन्होंने दरिया-साहब को धरकन्धा में ही १०१ बीघा जमीन दी। धरकन्धा दरिया साहब का ननिहाल था। वे आजीवन धरकन्धा में ही रह कर साधना और तपस्या करते रहे। सबसे बड़े आश्चर्य की वात तो यह है कि आजीवन गृहस्थ रह कर भी सन्त दरिया ने अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन किया। उनके धर्म-पुत्र का नाम टेकदास था।

कभी-कभी दरिया साहव तीर्थयात्रा भी किया करते थे। सन्तों की तपोभूमि का दर्शन ही उनके लिये तीर्थयात्रा का फल था। मगहर, काशी, बाईसी (गाजीपुर) आदि पवित्र क्षेत्रों में जाकर वे सत्संग करते तथा लोगों को भगवान के भजन का मार्ग बता कर संसार की नश्वरता का रूप समझाते थे।

संत दरिया साहब पर सत्तनामी सम्प्रदाय, कबीर पन्थ और सूफी साधना का बहुत प्रभाव पड़ा था। कबीर में उनकी बड़ी आस्था थी। उन्होंने एक स्थल पर कहा है कि कबीर दास ने जो कुछ भी कहा है उसी के अनुसार जीवन बना कर मैंने, आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त किया है। उनकी उक्ति है: कबीर के प्रति आभार-प्रदर्शन है:

'सोइ कहो जो कहहि कबीरा
दरियादास पद पायो हीरा।'

कबीर का अन्तिम ध्येय सत्तलोक था, दरिया साहब ने उसे छप लोक के रूप में व्यक्त किया है। सत्तलोक और 'छप लोक' में तनिक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भी अन्तर नहीं है। दरिया साहब ने उसका नाम अमरपुर अथवा अभय लोक भी कहा है; उनकी उक्ति है कि तीन लोक के ऊपर अभय लोक है, उसमें सदा, नित्य, निरन्तर 'सत्तपुरुष' का निवास है। दरिया साहब का 'छपलोक' परम गुह्यतम ब्रह्मपद है। वह रहस्य लोक अथवा परम दिव्य, चिन्मय ब्राह्मी स्थिति है। उस लोक में पहुँच कर ब्रह्मानन्द-अमृत का पान करने पर युग-युग, जन्म जन्म की भूख शान्त हो जाती है, जीव भगवान के परमानन्द लोक में– छप लोक में पहुँच कर चिर तृप्त हो जाता है– दरिया साहब की ऐसी मान्यता दीख पड़ती है। छप लोक की प्राप्ति ही दरिया साहब के मत से साधना का अन्त है– सिद्धि है। उनका कथन है :

'अति सुख पावहि हंसा, करहि को ताहल जाय।
छप लोक अमृत पिये, जुग-जुग छुधा बुताय॥'

ब्रह्म की प्राप्ति जीव में ही सुलभ है, संत दरिया ने सीख दी कि ब्रह्म पद का अनुसन्धान जीव में ही करना चाहिये। 'खोजो जीव, ब्रह्म मिलि जाई'– में उनका अटल विश्वास था। दरिया साहब ने सन्तमत के अनुसार अनुभव किया कि सत्तपुरुष अभय लोक में हैं, जीव बार-बार शरीर पाता है। उन्होंने अपने 'ज्ञान स्वरोदय' ग्रन्थ में कहा है कि मैं अभय लोक से आया हूँ। साहब ही मेरे सत्गुरु हैं। उन्होंने कहा कि जिस पद की खोज कबीर साहब ने की उसी का अनुसंधान करना हमारा कर्तव्य है; मैं सोच-विचार कर कहता हूँ सारे जीवमात्र साहब-परमात्मा के ही अंश हैं; परमात्मा की प्राप्ति का एक मात्र मार्ग निर्मल प्रेम है, साहब प्रेमसिद्ध हैं। दरिया का कथन है कि हे परमात्मा, आप मेरे स्वामी हैं, मैं आप का दास हूँ, मेरा चित्त आप के चरण कमल की ही सेवा में स्वस्थ रहता है; मैं निरन्तर आप का नाम-स्मरण करता हूँ। संत दरिया की वाणी है :

'हंस नाम अमृत नहिं चाखेव, नहिं पाये पैसार।
कह दरिया जग अरुझेव, इकनाम बिना संसार॥'

उन्होंने कहा कि संसार में ब्रह्म की ज्योति की अभिव्यक्ति होती है, वह समस्त दुष्टदल का नाश करती है, परमात्मा परम ज्योतिर्मय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हैं। प्रेमतत्वज्ञ ही उनकी अपार ज्योति का वर्णन कर सकता है:: दरिया का कथन है:

'सोभा अगम अपार, हंस वंस सुख पावहीं।
कोई ज्ञानी करै विचार, प्रेमतत्त जाके बसे॥'

परमात्मा को संत दरिया ने प्रेमसाध्य बतलाया, उनके भगवच्चिंतन का मूलाधार प्रेमसाधना है। संत दरिया ने संत-साहित्य की समृद्धि-वृद्धि में बड़ा योग दिया। हिंदी और फारसी का उन्हें अच्छा ज्ञान था।

दरिया साहब के प्रधान शिष्य छत्तीस थे। उनकी चार गद्दी बहुत प्रसिद्ध हैं, वे तेलपा, दंशी, मिरजापुर (छपरा), और मनुवां चौकी (मुजफ्फरपुर) में हैं। दरिया-पंथ का प्रत्येक साधु तम्बाकू पीने का हुक्का और पानी पीने का भरूका-पात्र रखता है, दोनों मिट्टी, के बने होते हैं, हुक्का 'रखना' कहलाता है। दरियासाहब के अनुयायी संख्या में अधिक हैं।

सम्वत् १८३७ वि. की भाद्र कृष्ण चौथ को उन्होंने चोला छोड़ा। दरिया-सागर में उल्लेख है:

'भादों बदी चौथ वार शुक, गवन कियो छपलोक।
जो जन सब्द विवेकिया, मेटेउ सकल सब शोक॥
संवत अठारह सौ सैंतीस, भादों चौथ अंधार।
सवा जाम जब रैनिगो, दरिया गौन विचार॥'

अभय लोक में गमन करने के पहले ही उन्होंने गुणीदास को अपनी गद्दी का उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था। संत दरिया साहब आजीवन गृहस्थ वेष में ही रहे। उनकी वाणी अनुभूतिमूलक है, वे पहुँचे हुए सन्त थे।

रचना

दरिया साहब ने ज्ञान स्वरोदय, प्रेममूल, दरियासागर, भक्तिहेत, ज्ञानरत्न, विवेकसागर, ज्ञान दीपक, ब्रह्मविवेक, दरियानामा, ज्ञान मूल, निर्भय ज्ञान, अमरसार, बीजक, सतसई तथा कालचरित्र आदि ग्रंथों की रचना की।

वाणी

सत्त नाम निजुसार है, सन्तहिं करो विचार।
जो 'दरिया' गुरु गहि रहै तो मिलै शब्द निजुसार॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'दरिया' भवजलअगम है, सतगुरु करहु जहाज।
तेहि पर हंस चढ़ाइ कै, जाइ करहु, सुखराज॥
मात-पिता-सुत-बंधवा, सब मिलि करैं पुकार।
अकेल हंस चलि जात है, कोइ नहिं संग तोहार॥
कह 'दरिया' एक नाम है, मिरथा यह संसार।
प्रेम-भगति जब ऊपजै, उतरि जाय भवपार॥
कोठा महल अटारिया, सुनेउ स्रवन बहुराग।
सतगुरु सब्द चीन्हें बिना, ज्यों पंछिन महँ काग॥
बुध जन, चलहु अगम पथ भारी।
तुमतें कहौं समुझ जो आवै, अबरि के बार सम्हारी॥
कांट कूस पाहन नहीं तहवाँ, नाहिं विटप वन झारी।
वेद कितेब पण्डित नहिं तहवाँ, बिनु मसि अंक संवारी॥
नहिं तहँ सरिता समुद न गंगा, ग्यान के गमि उँजियारी।
नहिं तहँ गनपति फनपति ब्रह्मा, नहिं तह सृष्टि संवारी॥
सरग पताल मृत लोक के बाहर, तहवां पुरुष भुवारी।
कहै 'दरिया' तहँ दरसन सत है, संतन लेहु विचारी॥
मैं कुलवन्ती खसमपियारी, जाँचत तूलै दीपक बारी।
गंध-सुगंध थारिभरि लीना, चन्दन चरचित आरति कीन्हा।
फूलन सेज सुगंध बिछायों आपन पिया पलंग पौढ़ायों।
सेवत चरन रैनि गइ बीती, प्रेम प्रीति तुमहीं सो रीती।
कह 'दरिया' ऐसो चितलागा, भई सुलछनि प्रेम अनुरागा।
बिहंगम, कौन दिसा उड़ि जैहौ।
नाम बिहूना सो परहीना, भरमि भरमि भौ रहि हौ॥
गुरु निन्दक बड़े संत के द्रोही, निन्दे जनम गवैहौ।
परदारा परसंग परस्पर कहहु कौन गुन लहिहौ॥
मद पी माति मदन तन व्यापेउ, अमृत तजि विष खैहौ।
समुझहु नहिं वा दिन की बातें, पल पल घात लगैहौ॥
चरन कँवल बिनु सो नर बूड़ेउ, उभि चुभि थाहन पैहौ।
कहै 'दरिया' सतनाम भजन बिनु, रोइ रोइ जनम गवैहौ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महात्मा धरनीदास

देह गेह में नेह निवारे दीजिये,
राजी जासें राम, काम सोइ कीजिये।
रह्या न बेसी कोय रंक अरु राव रे!
कर ले अपना काज, बन्या हद दाव रे॥

—सन्त बाजिन्द।

राम-रस का आस्वादन वे ही करते हैं जो बड़े भाग्यशाली होते हैं। राम के नाम में प्रेम हो जाना बड़े सौभाग्य की बात है। राम-नाम का मर्म बिरले संत ही समझते हैं और उसे समझ लेने के बाद संसार और संसार के नश्वर पदार्थों तथा स्वार्थी व्यक्तियों के प्रति घृणा हो जाती है, अनासक्ति और वैराग्य का उदय होता है। बाबा धरनीदास जी महाराज रामनाम के प्रेमी महात्मा थे। उन्होंने राम-रस का मर्म समझ लेने पर, घट-घट व्यापी निरञ्जन ब्रह्म—आत्माराम परमेश्वर का ज्ञान-साक्षात्कार कर लेने पर संसार के बड़े-से-बड़े प्रलोभन का परित्याग कर परमानन्द सागर में गोता लगाया।

सन्त धरनी दास का प्राकट्य औरंगजेब बादशाह के शासन-काल में हुआ था। उस समय शाहजहाँ के पुत्रों में दिल्ली का सिंहासन प्राप्त करने के लिये युद्ध हो रहा था। राजनैतिक परिस्थिति अस्थिर थी। ऐसा कथन मिलता है:

'कबिरा पुनि धरनी भयो
शाहजहाँ के राज।'

इसका आशय यह है कि शाहजहाँ और औरंगजेब के शासन काल में महात्मा धरनी दास ने तपस्या और साधना कर सन्त कबीर के बताये रास्ते पर चल कर समाज को रामनामामृत और आत्मसम्पत्ति अथवा सत्य की सत्ता से परिचित कराया। वे आत्मदर्शी, सत्यप्रेमी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और निर्गुणवादी महात्मा थे। उनकी रचनाओं में भगवत्प्रेम तत्व पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है, उन्होंने जो कुछ भी कहा है उसको पहले अनुभव और साधना की कसौटी पर कस लिया है।

विहार प्रान्त के छपरा जनपद में भगवती सरयूनदी के उत्तर तट पर विक्रम की सत्रहवीं सदी के चौथे चरण में श्रीवास्तव कायस्थ कुल में माँझी नामक गाँव में धरनी दास का जन्म हुआ था। धरनीदास के परदादा का नाम टिकइतराय या टिकइतदास था। ऐसा कहा जाता है कि इतिहास प्रसिद्ध टिकइतराय ही मुसलमानी आक्रमण से भयभीत होकर मांझी में आकर वस गये थे। धरनी दास के पिता परशुराम दास की माँझी के राजा के यहाँ अच्छी पहुँच थी। माँझी के राजा उनको वहुत मानते थे। धरनीदास का कुल अत्यन्त प्रतिष्ठित था। उनकी शिक्षा-दिक्षा की व्यवस्था उचित ढंग की थी। इधर उनकी माता विरमा देवी के कोमल और धार्मिक स्वभाव ने धरनी दास की उन्नति में बड़ा योग दिया।....धरनी दास बचपन से ही आध्यात्मिक प्रवृत्ति के थे पर वे इतने सीधे-सादे और छिपे हुए थे कि देखने वालों के मन में यह बात बैठती ही न थी कि वे एक सिद्ध सन्त के रूप में लोक-कल्याण करेंगे तथा असंख्य जीवों को भवसागर से पार उतारने में सहायक होंगे। परशुराम दास ने उनको माँझी के जमींदार के यहाँ दीवान पद पर नियुक्त करा दिया। धरनीदास ने बड़ी योग्यता से दीवान का काम सम्हाला, माँझी के राजा उनका बड़ा विश्वास करते थे; सारा कार्य उनके हाथ में सौंप कर निश्चित हो गये। धरनीदास की आध्यात्मिक साधना निरन्तर तेजी से आगे वढ़ रही थी। यथासमय चकिया ग्राम में एक प्रतिष्ठित कायस्थ कुल की कन्या से उनका विवाह कर दिया गया, उनकी गृहस्थी सुख और शान्ति से चलने लगी। आन्तरिक वैराग्य और ईश्वर-चिंतन से प्रति दिन उनका गाम्भीर्य बढ़ता गया, आध्यात्मिक ज्योति प्रस्फुटित होती गयी।

सम्वत् १७१३ वि. में उनके पिता का देहांत हुआ। यह वर्ष धरनी दास के लिये अत्यन्त कल्याणप्रद सिद्ध हुआ। इसी साल उन्होंने पूर्ण वैराग्य का वरण किया, सांसारिक प्रपंचों और नश्वर सम्बन्धों से नाता तोड़ कर राम के चरणों में आत्मार्पण कर दिया। एक दिन वे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

माँझी के राजा के कार्यालय में बैठ कर खाता-बही लिख रहे थे। इतने में वे ध्यानमग्न हो गये। समीप ही जल से भरा एक लोटा रखा हुआ था। उन्होंने लोटे का जल वही पर उढ़ेल दिया। लोगों ने कारण पूंछा तो मौन हो गये। राजा ने इस दृश्य को देख कर उनको पागल बताया। धरनीदास ने रहस्य प्रकट कर दिया कि आरती के समय जगन्नाथ जी के वस्त्र में आग लग गयी थी, इसलिये लोटे का पानी उढ़ेल कर मैंने आग बुझा दी। जगन्नाथ पुरी में घटना का पता लगाने के लिये राजा ने अपने आदमी भेजे, बात ठीक निकली। पुजारी ने बताया कि इस प्रकार के रूप वाले एक व्यक्ति ने आग बुझायी है। राजा को इसका पता चलने पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ, वे महात्मा धरनी दास के चरणों पर गिर पड़े, क्षमा माँगी, उनको प्रसन्न करने के लिये जमींदारी देनी चाही पर धरनीदास ने स्वीकार नहीं की, उन्होंने राजा का कार्य छोड़ दिया, दीवान-पद से त्यागपत्र दे दिया, समझाने पर कहा:

'लिखनी नाहिं करूँ रे भाई,
मोहि राम-नाम-सुधि आई।'

ठीक ही है, राम-नाम का स्मरण होने पर संसार का हिसाब भूल जाता है, मन वैराग्य के मानसरोवर में स्नान कर राम-नाम के अमृत का आस्वादन करने लगता है। धरनी दास इस घटना से प्रभावित होकर क्षणमात्र में अपने प्रियतम राम के लिये आकुल हो उठे। उनकी वाणी ने कहा:

'कन्त दरस बिनु बावरी।
मो तन व्यापै पीर प्रीतम की, मूरुख जानै आवरी।
पसरि गयो तरु प्रेम साखा सखि, बिसरि गयो चितचावरी।
भोजन भवन सिंगार न भावै, कुल करतूति अभाव री।
खिन-खिन उठि-उठि पंथ निहारो, बारबार पछितावँरी।
नैनन अंजन नींद न लागै, लागै दिवस बिभावरी।
देहदसा कछु कहत न आवै, जस जल ओछेनावरी।'
'धरनी' धनी अजहुँ पिय पाओं, तौ सहजै अनन्द बधावरी।

उन्हें पूर्ण वैराग्य हो गया। वे घर से थोड़ी ही दूर पर एक झोपड़ी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

में निवास कर तप करने लगे। 'सत्त गुरु' परमात्मा के चरण-चिंतन में उनका मन लग गया। गृहस्थी की याद मिट गयी, वे हंस की तरह निर्मल हो गये। प्रेम-गगन में स्वच्छन्द होकर उड़ने लगे। गृहस्थाश्रम में उन्होंने चन्द्रदास साधु से मन्त्र लिया था पर वैराग्य-वेष धारण करने पर धरनीदास ने सेवानन्द को गुरु बनाया, उनसे दीक्षा ली। उनके गुरु का नाम विनोदानन्द भी बताया जाता है। उन्होंने अपनी गुरु-प्रणाली में स्वामी रामानन्द का आदि गुरु के रूप में स्मरण किया है विनोदानन्द से दीक्षा लेने के बाद वे माँझी में ही नियमपूर्वक साधना करने लगे। उनका गंगा-स्नान का नित्य का नियम था। माँझी से छः मील की दूरी पर ब्रह्म पुर में वे गंगा-स्नान करने जाया करते थे। वे सदा मन को समझाते रहते थे कि हे मन ! तुम समस्त प्रपंचों का त्याग कर हरि का भजन करो। विमल वैराग्य धारण कर परमात्मा के अनुरागी बन जाओ। उन्होंने कहा है कि कायस्थ जाति में मेरा जन्म हुआ है, परमार्थ ही मेरा ओहदा अथवा पद है, माला, तिलक और दुशाले से मैंने अपना वेष सजाया है, गुरु के चरणों में मैंने आनन्द का जाप किया है, मेरे खजाने में भगवन्नामरूपी रत्न भरा हुआ है, मैंने यत्न से उसको हृदय में धारण किया है। उन्होंने साधना के क्षेत्र में बड़े-बड़े अनुभव प्राप्त किये थे।

संत धरनीदास पर प्रेममार्ग अथवा सूफी सिद्धान्त का भी बहुत प्रभाव था। अपने 'प्रेम-प्रकाश' ग्रन्थ में उन्होंने आत्मा और परमात्मा के प्रेममय मिलन पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। प्रियतम के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए उन्होंने एक स्थल पर कहा है :

'पिय बड़ सुंदर सखि, बनि गैला सहज सनेह ॥
जे-जे सुन्दरी देखन आवै, ताकर हरि ले ज्ञान।
तीन भुवन के रूप तुलै नहिं, कैसे क करउँ बरवान ॥
जे अगुआ अस कइल धतुरई ताहि नेवछावरि जाव।
जे बाह्मन अस लगन बिचारल, तासु चरन लपटावँ ॥
चारिउ ओर जहाँ तहँ चरचा, आन कै नांव न लेइ।
ताहि सखी की बलि-बलि जैहौं, जे मोरी साइत देइ ॥
झलमल झलमल झलकत देखो, रोम रोम मन मान ॥
'धरनी' हरषित गुन गन गावै, जुग जुग ह्वैजनि आन ॥'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धरनीदास ने भगवच्चिंतन के स्तर से कहा कि भगवत्प्रेम का मद मतवाले जन ही पीते हैं। राम-नाम का निरन्तर स्मरण करते रहने पर ही परम पद की प्राप्ति होती है। उन्होंने राम के दरवाजे पर ध्यानस्थ रहने को ही सबसे बड़ा साधन माना और ईश्वर की कृपा पर सदा निर्भर रहे। धरनीदास ने निस्संकोच कहा :

'मैं निरगुनिया गुन नहिं जाना,
एक धनी के हाथ बिकाना।'

उन्होंने पूर्णात्पूर्ण परमात्मा का ही भजन किया। वे भगवान् के पूर्ण शरणागत थे। उन्होंने हरि के भक्तों को ही पतिव्रता कहा, दूसरों को व्यभिचारी बताया; उनका जीवन व्यर्थ माना जो हरिनाम का विस्मरण कर देते हैं। पूर्ण शरणागति की भाषा में उनका ब्रह्म निरूपण है :

'सोई प्रभु पक्का मैं अति कच्चा,
मैं झूंठा मेरा साहब सच्चा।
मैं ओछा मेरा साहब पूरा,
मैं कायर मेरा साहब सूरा।
मैं मूरख मेरा प्रभु ज्ञाता,
मैं किरपिन मेरा साहब दाता।
'धरनी' मन मानों इक ठाऊँ
सो प्रभु जीवो मैं मरि जाऊँ॥'

उनका जीवन प्रभु के चरणों में पूर्ण समर्पित था। उनके जीवन में अनेक अलौकिक घटनाओं का विवरण मिलता है। कहा जाता है कि एक बार कुछ चोर चोरी करने जा रहे थे, रास्ते में धरनीदास के आश्रम में थोड़ी देर ठहर चोरों ने उनसे गीत गाने के लिये कहा।... चोरी करके लौटते समय वे अंधे हो गये। सन्त धरनीदास ने अपने शिष्य सदानन्द को चोरों को आश्रम पर ले आने के लिये भेजा, आश्रम पर आते ही सन्त की कृपा से वे देखने लग गये। चोरों ने धरनीदास से क्षमा माँगी और उनके शिष्य हो गये, उनका जीवन सुधर गया, हृदय पवित्र हो गया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उन्होंने अनेक चमत्कार भी दिखाये, यद्यपि वे चमत्कार आदि से बहुत दूर रहते थे। आश्रम पर साधुओं की एक मण्डली आयी। धरनीदास ने उनके भोजन आदि की व्यवस्था कर दी। कुछ साधुओं ने कहा कि आप कायस्थ हैं, आप की बाँह पर द्वारिकाधीश की छाप नहीं है, आप का अन्न शुद्ध नहीं है इस लिये हम ठाकुर जी के राजभोग में उसका उपयोग नहीं कर सकते हैं। धरनीदास ने अपनी कुटी में प्रवेश किया, थोड़ी देर के बाद बाहर आये, उनकी बाह पर द्वारिकाधीश की छाप देख कर साधु आश्चर्यचकित हो गये।

वे आजीवन माँझी में ही रहे। अन्त समय में वे सरयू और गंगा के संगम पर चादर बिछा कर बैठ गये, थोड़ी देर में शिष्योंने उनको प्रकाश के रूप में परिवर्तित होते देखा, वे अदृश्य हो गये। सारे वातावरण में उनके शब्द व्याप्त हो उठे:

'अवचक आइ गइलै पिया के सनेसवा
ताखन उठलिउँ जागि रे।
राम-राम करि घर से निकसलिउँ,
जे जहँ से तहँ त्यागि रे।
सत के सिंघोरा कर पर मोरा,
प्रेम पटम्बर पागि रे।
बाजन लाग चपल चौघरिया,
चित्त चतुरता भागि रे।
पूर परी कुररवेतहि चढलिउँ
जन परिजन से बागि रे।
करमभरम कर चिता सजावल
ब्रह्म अगिन तेहिं लागि रे।
धरनी धनि तहँ भक्ति भौंवरी
चित अनुभव अनुरागि रे।
अब की गवना बहुरि नहिं अवना,
बोलहु राम सुभागि रे।'

उनके परलोक-गमन का सम्वत् अज्ञात है। उत्तर भारत में धरनीदास के अनुयायी अधिक संख्या में मिलते हैं। धरनीदास उच्च कोटि के निर्गुणवादी संत थे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रचना

'प्रेम प्रकाश', 'शब्द प्रकाश', 'रत्नावली', धरनीदास की प्रसिद्ध रचनायें हैं।

वाणी

'धरनी' जहँ लौं देखिये, तहँ लौ सबै भिरवारि।
दाता केवल सतगुरु, देत न मानै हारि॥
'धरनी' धोख न लाइये, कबहीं अपनी ओर।
प्रभु सों प्रीति निवाहिये, जीवन है जग थोर॥
'धरनी' पलक परै नहीं, पिय की झलक सोहाय।
पुनि-पुनि पीवत परम रस, तबहूँ प्यास न जाय॥
दामिनि ऐसी कामिनी, फांसी ऐसो दाम।
'धरनी' दुइ तेबाँचिये, कृपा करै जो राम॥
धूवाँ कैधवरेहरा, और धूरि को धाम।
ऐसे जीवन जगत में, विगुगुरु विनु हरिनाम॥
हित करि हरि नामहिं लाग रे।
घरी घरी घरियाल पुकारै, का सोवै उठि जाग रे।
चोआ चंदन चुपड़ तेलना, औ अलबेली पाग रे।
सो तन जरे खड़े जग देखो, गूद निकारत काग रे।
मात-पिता परिवार सुतासुत बंधु त्रिया रस त्याग रे।
साधु के संगति सुमिर सुचित होइ, जो सिर मोटे भाग रे।
सम्वत जरै बरै नहिं जब लगि, तब लगि खेलहु फागरे।
'धरनीदास' तासु बलिहारी, जहँ उपजै अनुराग रे॥
एक धनी धन मोरा हो॥
काहू के धन सोना रूपा, काहू के हाथी घोरा हो।
काहू के मनि मानिक मोती, एक धनी धन मोरा हो॥
राज न हरै जरै न अगिन तें, कैसहु पाय न चोरा हो।
खरचत खात सिरात कबहिं नहिं, घाट-बाट नहिं छोरा हो॥
नहिं संदूक नहि भुंइ खनि गाड़ी, नहिं पट घालि मरोरा हो।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नैन के ओझल पलक न राखों, सांझदिवस निसि भोरा हो॥
जब धन लै मनि बेचन चाहे, तीनि हाट टकटोरा हो।
कोई वस्तु नाहिं ओहि जोगे, जो मोलउँ सो थोरा हो॥
जा धन तें जन भये धनी बहु, हिंदु तुरुक करोरा हो।
सो धन 'धरनी' सहजहिं पाया, केवल सतगुरु के निहोरा हो॥
अजहु न गुरु चरनन चित दैहौ।
नाना जोनि भटकि भ्रम आये, अब कब प्रेमतीरथहिं न्हैहौ।
बड़ कुल विभव भरम जनि भूलो, प्रभु पैहौ जब दास कहैहौ।
यह संगति दिन दस की दसा है, कथि कथि पढ़ि पढ़ि पारन पैहौ।
करम भार सिर तें नहि उतरे, खंड खंड महिं मण्डल धैहौ।
बिन सतगुरु सत लोकन सूझै, जनमि जनमि मरि मरि पछितैहौ।
'धरनी' ह्वै हो तबही सांचे, सतगुरु नाम हृदय ठहरैहौ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संत जगजीवन साहब

देखो पिया काली घटा मो पैं भारी।
सूनी सेज भयावन लागी, मरों विरह की जारी॥
प्रेम प्रीति यह रीति चरनलगु, पल छिन नाहिं बिसारी।
चितवत पन्थ अन्त नहिं पायो, जन बुल्ला बलिहारी॥

—बुल्लासाहब

संत जगजीवन साहब सत्तनामी परम्परा के एक प्रमुख स्तम्भ थे। इस परम्परा के महात्माओं ने सत्स्वरूप निर्गुण परमात्मा की उपासना अनुभूति, ज्ञान और प्रेम के माध्यम से की। प्रेम के क्षेत्र में प्रवेश कर उन्होंने ब्रह्म के सगुण रूप का भी वर्णन किया पर इस वर्णन का रूप अनुभूतिगम्य है, पौराणिक नहीं है। विक्रम की अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में सत्तनामी विचार-धारा ने सन्त साहित्य के क्षेत्र को प्रभावित किया। बावरी साहब, बीरूसाहब, यारी साहब, बुल्लासाहब, जगजीवन साहब तथा गुलालसाहब, भीखा साहब, दूलन दास, गोविन्द-साहब और पलटू साहब आदि इस मत में उच्च कोटि के संत हो गये हैं। इन महात्माओं ने अपनी-अपनी खोज और अनुभूति के अनुसार घट-घट में व्याप्त ज्योति स्वरूप ब्रह्म के आनन्द का रसास्वादन किया। सत्तनामी पन्थ को बावरी पन्थ भी कहा जाता है।

उत्तर भारत के बाराबंकी जनपद में भगवती सरयू नदी के परम पवित्र तट पर सरदहा नामक गाँव में सम्वत् १७२७ वि. में माघ शुक्ल सप्तमी, मंगलवार को जगजीवन साहब का जन्म हुआ था। वे चन्देल क्षत्रिय थे। उनके पिता साधारण किसान थे। घर पर खेती का काम होता था। जगजीवन साहब बचपन से ही गम्भीर स्वभाव के थे। वे भगवान् का चिंतन किया करते थे, उनकी कीर्तन-कथाओं में रस लेते थे तथा साधु-सन्तों को देखते ही उनका हृदय-कमल प्रसन्नता से खिल जाया करता था। वे बड़े संतोषी और विनम्र थे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पिता की देखा-देखी जगजीवन साहब भी खेती आदि के काम में लगे रहते थे। पिता ने उनको गाय-भैंस चराने का काम सौंपा था। वे गाँव के बाहर नदीतट पर तथा निर्जन वनों में घूम-घूम कर गाय चराते रहते थे। एक दिन वे गांव के निकट ही गाय-भैंस चरा रहे थे। इतने में उन्हें दो महात्मा दीख पड़े। वे बुल्लासाहब और गोविन्दसाहब थे। जगजीवन का मन पवित्र श्रद्धा से परिपूर्ण हो उठा, उन्होंने दोनों सन्तों की चरणधूलि बड़े भक्तिभाव से मस्तक पर चढ़ा ली। सन्तों ने आशीर्वाद दिया। चिलम के लिये आग माँगी। जगजीवन साहब आग लाने के लिये घर दौड़ गये। उन्होंने सोचा कि सन्तों की सेवा के लिये थोड़ा-सा दूध भी लेता चलूं। आग और दूध लेकर सन्तों की सेवा में चल पड़े। बुल्ला साहब ने कहा कि तुम डरो मत, दूध घर में बढ़ गया होगा, हमारे पीने से घटेगा नहीं। सन्त की वाणी थी, ठीक ही निकली। जगजीवन साहब ने घर जाकर बरतन को दूध से परिपूर्ण देखा। उन्हें संत का संग तो प्राप्त ही हो चुका था, सत्संग की बात तो कान में समा ही गयी थी, क्षणमात्र में चित्त-वृत्ति बदल गयी। संसार का सम्बन्ध टूट गया। वे सन्तों की ओर दौड़ पड़े बढ़े चले जा रहे थे कि कहीं ऐसा न हो कि सन्त चले जायें। मन संत-मिलन के लिये व्याकुल था, रोम-रोम सिहर रहे थे, नयनों से अश्रु का प्रवाह चल रहा था, हृदय धड़क रहा था। बुल्ला साहब प्रेममग्न होकर गा रहे थे। उनके स्वर से जगजीवन साहब आश्वास्त हुए कि सन्तों का दर्शन मिल जायेगा, बुल्ला साहब का स्वर वातावरण को वैराग्य का संदेश दे रहा था :

'मातल मनुवा घटहिं समैबों हो।
जौने गैले सन्त गैले, तौने जइबों हो॥
सहज सरूपे लिहले, हरि गुन गइबों हो।
तीरथ तिरवेनी नहइबों, गगन में जइबों हो॥
अनहद धुनि सुनि, दीपक बरइबों हो॥
बारि दीया देखो हीया, सुन उजियारो हो।
यारी सतगुरु पूरो, निज भेदहि सारो हो।।
देखि दरस मन तनहिं, छाड़ि दीया हो।
जन 'बुल्ला' बानी बोलै, मरि फिरि जीया हो॥'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जगजीवन साहब सन्त बुल्ला के चरणों पर गिर पड़े; कहा कि मैं भवसागर में डूब रहा हूँ, मेरा मन माया-मोह के अन्धकार में सत्यका पथ भूल गया है, संसार के बन्धनों से मुक्त कर आप मेरा उद्धार कीजिये। बुल्ला साहब ने जगजीवन साहब की पीठ ठोकी, कहा कि हम लोग तो इसी आशय से सरदहा ग्राम में आये हुए हैं। तुम पूर्व जन्म में पहुँचे हुए महात्मा थे, इसी बात का स्मरण कराने के लिये ही मैंने तुम से भेंट की। उन्होंने जगजीवन साहब को दीक्षा दी। वे बुल्ला साहब से कुछ चिह्न देने के लिये आग्रह करने लगे। बुल्ला साहब ने हुक्के का एक काला धागा प्रदान किया। गोविन्द साहब ने सफेद धागा दिया। दोनों धागों को जगजीवन साहब ने अपनी दाहिनी कलाई पर बाँध लिया। आगे चल कर सत्तनामी सम्प्रदाय का चिह्न दोरंग धागा हो गया जो 'आंदू' कहलाता है। ऐसा भी कहा जाता है कि उनके दीक्षा-गुरु काशी के प्रसिद्ध महात्मा विश्वेश्वर पुरी थे।

संत जगजीवन साहब के सत्संग में दूर-दूर से लोग आने लगे। उनकी कीर्ति फैलने लगी। वे अपने गुरु बुल्ला साहब के आदेश के अनुसार आठों पहर भगवान के चिंतन में लग गये। देह, गेह और संसार के प्रति पूर्ण अनासक्त होकर वैराग्य के स्वराज्य में प्रवेश किया। सत्संगियों की संख्या प्रति दिन बढ़ने लगी। गाँव के कुछ लोग ईर्ष्यावश जगजीवन साहब को तंग करने लगे। जगजीवन साहब ने सरदहा गाँव का परित्याग कर दिया। वे कोटवा ग्राम में कुटी बना कर तपस्या और साधना करने लगे। जगजीवन साहब गृहस्थ संत थे। ऐसा कहा जाता है कि उनके सरदहा छोड़ते ही सरयू में बाढ़ आयी और गाँव वह गया। सन्तों की महिमा विचित्र होती है, सन्त के प्रति अपराध करना महान पाप समझा जाता है। सन्त और भगवान दोनों ही परम पूज्य स्वीकार किये गये हैं, भगवान का प्रत्येक कार्य सन्तों की इच्छा के अनुकूल होता है।

कोटवा में निवास कर उन्होंने असंख्य जीवों को सत्संग का सुख दिया। संत जगजीवन साहब आजीवन गृहस्थ वेष में ही रहे। कोटवा में उनकी गद्दी है। उनके स्वभाव में दैन्य, विनम्रता, उदारता, सहनशीलता आदि सदगुणों का पूरा-पूरा समावेश था। सदा परमात्मा के प्रेम में मग्न रहते थे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जगजीवन साहब ने गुरुतत्त्व और भगवत्तत्व में तनिक भी भेद-भाव नहीं किया। मध्यकालीन सन्त साहित्य की एक मौलिकता गुरु और भगवान की अभेदता है। जगजीवन साहब तथा सत्तनामी सम्प्रदाय के अन्य सन्तों ने अपनी साधना में इस मौलिकता का निर्वाह बड़ी सावधानी से किया है। जगजीवन ने मन को समझाया है कि हे मन इस जगत में जन्म लेकर जिन्होंने हरिनाम का स्मरण नहीं किया उन्होंने अपना काम बिगाड़ डाला। जिन्होंने तनिक भी अभिमान किया वे काल के गाल में समा गये। इसलिये सर्वोत्तम यही है कि जागतिक प्रपंच भूल कर सत्संग में लग जाय, सत्गुरु की कृपा से सब कुछ सुधर जायेगा। जगजीवन साहब की उक्ति है:

'नैना चरनन राखहुँ लाय।
केती रूप अनूपम आहे, देऊँ सब बिसराय।
राति-दिना औ सोवत जागत, मोंही इहै सोहाय।
नहीं पल पल तजों कबहूँ, अनत नाहीं जाय।
मोरिबस कछुनाहिं है, जब देत तुमहिं बहाय।
चहत खैंचि के ऐंचि राखत, रहत हौं ठहराय।
दियो नाथ सनाथ करि, अब, कहत अहौं सुनाय।
'जगजीवन' के सतगुरू तुम, सदा रहहु सहाय।'

जगजीवन साहब ने साधना-क्षेत्र में गुरु को बहुत बड़ी शक्ति स्वीकार किया। भगवान को प्राप्त करने के दो ही मार्ग हैं—प्रेम और विरह। उन मार्गों के प्रकाश ज्ञान, भक्ति और तपस्या अथवा पवित्र कर्म हैं— ऐसा उन्होंने अपनी वाणी में निरुपण किया है। उनकी वाणी में अनुभूतिमयी वास्तविक विरह का दर्शन होता है। जगजीवन की उक्ति है कि मेरे नयनों ने वैराग्य ले लिया, समस्त आभूषण त्याग कर मैंने योगिनी का भेष धारण कर लिया, पीड़ा सह-सहकर मैंने तन-मन जला डाले पर प्रियतम ने मेरी वेदना का अनुभव ही नहीं किया। मेरे नयनों में नींद नहीं है, रात-दिन प्रेमाश्रु बहता रहता है, मैं दर्शन की याचना करता हूँ, प्रियतम के चरण कमल-रस में ही मेरी तृप्ति है। उनका पद है:

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'उनहीं सो कहियो मोरी जाय॥
ए सखि पैयाँ परि मैं विनवौं, काहे हमें डारिन विसराय।
मैं का करों मोर वस नाहीं, दीन्ह्यो अहै मोहिभटकाय॥
ए सखि साईं मोहिं मिलावहु, देखि दरस मोर नैन जुड़ाय।
'जगजीवन' मन मगन होउं मैं, रहौं चरन कमल लपटाय॥'

सन्त जगजीवन साहव ने निर्गुण भक्ति में प्रेम का पौराणिक भागवत रूप– साकार अथवा सगुण ब्रह्म - सम्बन्ध का समन्वय किया। सत्तनाम के भजन को ही उन्होंने परमात्मा की साधना का रूप दिया। उनका विश्वास था कि सत्तनाम का रसामृत पीकर सदा मग्न रहने वाले ही वास्तविक भगवत्प्रेमी हैं, सन्त अथवा भक्त हैं। उन्होंने साधना का क्रम बताया है:

'सत्त नाम भजि गुप्तहि रहे, भेदन आपन परगट कहे।
परगट कहै सुखित नहिं होई, सतमत ज्ञान जात सब खोई।'

उन्होंने भगवान से निवेदन किया कि मुझे केवल आप का ही भरोसा है। आप ही मेरा निस्तार करते हैं, मैं तो अज्ञानी हूँ, बुद्धिहीन हूँ, आप के सम्बन्ध में विचार ही क्या कर सकता हूँ? मैंने आप के चरणों की शरण ली है, हे सर्वसमर्थ, मुझे आप का ही बल है। भगवद् भक्ति का निरूपण करते हुए सन्त जगजीवन साहव ने अत्यन्त सरस भाषा में कहा:

'गगरिया मोरी चितसों उतरि न जाय।
इक कर करवा इक कर उबहनि, बतियाँ कहौ अरथाय॥
सास-ननद घर दारून आहै, तासों जियरा डेराय।
जो चित छूटै गागर फूटै, घर मोरि सासु रिसाय॥
'जगजीवन' अस भगती मारग, कहत अहौं गोहराय॥'

सन्त जगजीवन साहब की साधना उच्च कोटि की थी। वे सिद्ध सन्त थे। निस्सन्देह पहुँचे हुए महात्मा थे। उन्होंने अपनी निर्गुण भक्ति की सिद्धि के लिये भागवत लीला के प्रतीकों को अपनी साधना में महत्वपूर्ण स्थान दिया है। मुरली बजाने वाले भगवान के सम्बन्ध में कहा है:

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'कहा गयो मुरली को वजइया, कहाँ गयो रे ।
एक समय जब मुरली बजायो, सब सुनि मोहिरह्योरे।'

इसी प्रकार उन्होंने एक पद में कहा है कि हे सखी, मेरे प्रियतम वंशी बजाकर कहाँ चले गये। मुझे तो घर का रास्ता भूल गया, वस्त्र और आभूषण का तनिक भी ध्यान नहीं है। मैंने उनके लिये लोक-लज्जा और कुल की मर्यादा का भी विस्मरण कर दिया, उनकी छवि भूलती ही नहीं है। सन्त जगजीवन ज्ञानमार्गी निर्गुणवादी प्रेमी सन्त थे। सम्वत् १८१८ वि. में वैशाख कृष्णसप्तमी को उन्होंने चोला छोड़ा। कोटवा में उनकी समाधि है। वे प्रेमी, ज्ञानी और भक्त सब कुछ थे।

रचना

'महाप्रलय' और 'ज्ञान प्रकाश' जगजीवन साहब की दो प्रसिद्ध रचनायें हैं।

वाणी

सखि बाँसुरी बजाय कहाँ गयो प्यारो॥
घर की गैल बिसरिगइ मोहिंतें, अंग न वस्तु संभारो।
चलत पाँव डगमगत धरनि पर, जैसे चलत मतवारो॥
घर आंगन मोहिं नीक न लागै, सबद बान हिये मारो।
लागि लगन मैं मगन वहाँ सों, लोक लाज कुल कानि बिसारो।
सुरत दिखाय मोर मन लीन्ह्यो, मैं तो चहों होय नहिं न्यारो।
'जगजीवन' छवि बिसरत नाहीं, तुम से कहौं सोइहै पुकारो॥
प्रभु जी का वस अहै हमारी।
जब चाहत तब भजन करावत, चाहत देत बिसारी॥
चाहत पल छिन छूटत नाहीं, बहुत होत हितकारी।
चाहत डारि सूखि पल डारत, डारि देत संहारी॥
कहँ लहि विनय सुनावौं तुम तैं, मैं तौ अहौं अनारी।
'जगजीवन' दास पास रहे चरनन, कबहूँ करहुन न्यारी॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आइ जग काहे मन बौराना।
जौन कौल करि ह्वांते आयो, समुझि देखु वह ज्ञाना॥
तकि माया वश भूलि परेसि तैं, सत्त नाम नहिं जाना।
जो उपजा सो बिनसि जायेगा, होइ है, अन्त चलाना॥
सब चलि जाइ अचल नहिं कोई, सचरअचर ससि भाना।
'जगजीवन' सतगुरु समरथ के, चरन रहौ लपटाना॥
दुनिया जानि-बूझि बौरानी।
झूठे कहै कपट चतुराई, मनहिं न आनहि कानी॥
नहि डरपत है सत्तनाम कहँ, ऐसे हहिं अभिमानी।
है विवाद, निंदा कहि भाषहिं, तेही पाप ते आगे हानी।
जानत हैं मन मानत नाहीं, बड़े कहावत ज्ञानी।
नवहिं नहिं, न साधु ते दीनता, बूड़ि मुए बिनु पानी॥
'मैं-तैं' त्यागि अन्तर में सुमिरे, परगट कहौं बखानी।
'जग जीवन' साधन ते नयचलु, इहै सुख कै रवानी॥
हम तें चूकि परत बहुतेरी।
मैं तो दास अहों चरनन का, हम हूँ तन हरि हेरी॥
बाल ज्ञान प्रभु अहै हमारा, झूंठ सांच बहुतेरी।
सो औगुन गुन का कहों तुमतें, भौसागर ते निबेरी॥
भव ते भागि आये तुवसरने, कहत अहौं अस टेरी।
'जगजीवन' की बिनती सुनिये, राखो पत जन केरी॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्त दूलनदास

जगत सनेही जीव है, राम सनेही साध।
तन मन धन तजि हर भजैं, जिनका मता अगाध ।।

—दयाबाई

सन्त दूलनदास जगजीवन साहब के शिष्य थे। बड़े भावुक महात्मा थे। उनकी वाणी में ज्ञान और प्रेम का समीचीन समन्वय हुआ है। सत्तनाम के महान खोजी थे। उनका जीवन-काल अठारहवीं शती के प्रथम चरण से उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक पड़ता है। वे रामनाम के प्रेमी सन्त थे। उनकी उक्ति है कि जिसके मुख में रामनाम के अक्षर रहते हैं उसके समान जग में कोई दूसरा नहीं है। उनकी एक पद में उक्ति है:

'कोई विरला यहि विधि नाम कहै।
मन्त्र अमोल नाम दुइ अच्छर, बिनु रसना रट लागि रहै।
होठ न डोलै जीभ न बोलै, सुरति धरनि दिढाइ गहै।
दिन औ राति रहै सुधि लागी, यहि माला यहि सुमिरन है।
जन 'दूलन' सतगुरन बतायो, ताकी नाव पार निवहै ।।'

दूलनदास नाममार्गी थे। भगवन्नाम के संबंध में उन्होंने उच्च कोटि के सरस पद रचे हैं जिनमें उनकी सहृदयता, दैन्य और सरलता तथा गहरी अनुभूति का दर्शन होता है।

उत्तरभारत के लखनऊ जनपद के समेसी गांव में सम्वत् १७१७ वि. में सोमवंशी छत्रिय कुल में सन्त दूलन दास का जन्म हुआ था। उनके पालन-पोषण में बड़ी सावधानी रखी गयी। उनके पिता रामसिंह साधारण गृहस्थ थे पर बड़े सरल स्वभाव के थे। अध्यात्म में उनकी बड़ी रुचि थी। दूलनदास के विकास पर पिता के सरल और आध्यात्मिक स्वभाव का बड़ा प्रभाव पड़ा था। दूलनदास का मन भगवान का

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नाम सुनने पर आनन्द विभोर हो जाता था। वे साधु-सन्तों की सेवा और दर्शन से बड़े प्रसन्न होते थे। उनके मन में वैराग्य की भावना उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी।

उन दिनों सत्तनामी सन्त जगजीवन साहब बाराबंकी जनपद के सरदहा ग्राम में निवास कर लोगों को सत्संग का लाभ प्रदान कर रहे थे। दूलनदास उनसे मिलने के लिये बड़े व्याकुल थे। उन्हें कोई गुप्त शक्ति बार-बार जगजीवन साहब के पास जाने के लिये प्रेरित कर रही थी। वे उनसे मिलने के लिये चल पड़े। सरदहा में पहुँच कर जगजीवन साहब को देख कर वे आनन्दमग्न हो गये। उनके रोम-रोम सिहर उठे। जगजीवन साहब के चरणों पर गिर पड़े। नयनों में अश्रुका प्रवाह उमड़ पड़ा। संसार का बन्धन टूट गया। उन्होंने जगजीवन साहब के चरणों में आत्मसमर्पण कर कहा :

'सुनहु दयाल मोहिं अपनावहु।
जनमन लगन सुधारन साईं मोरि बनै जो तुमहिं बनावहु।
इत उत चित्त न जाइ हमारा, सूरत चरन कमल लपटावहु।
तव हूँ अव मैं दास तुम्हारा, अब जिनि बिसरो जिनि विसरावहु।
'दूलनदास' के साई जगजीवन, हमहूँ कौं भक्तन माँ लावहु।।'

जगजीवन साहब ने उनको हृदय से लगा लिया। उनकी भावुकता, निष्कपट श्रद्धा और प्रेम-भक्ति से मुग्ध हो गये। उन्होंने दूलन दास को दीक्षा दी। दीक्षा के बाद ही दूलनदास का नाता घर-गृहस्थी से टूट गया। वे गुरुधाम में ही रह कर साधना और तपस्या करने लगे। जगजीवन साहब के साथ कोटवा में वे बहुत दिनों तक रहे। सरदहा से जगजीवन साहब कोटवा चले आये थे। कोटवा सरदहा से थोड़ी दूर पर एक गाँव है। कोटवा-निवास-काल में दूलनदास की गुरुभक्ति की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैल गयी। कुछ दिनों के बाद गुरु की आज्ञा से दूलनदास रायबरेली जनपद के धर्मे गाँव में आकर तपस्या करने लगे। ऐसा कहा जाता है कि धर्मे गाँव दूलनदास ने ही बसाया था।

सन्त दूलनदास सिद्ध महात्मा थे। उनकी सिद्धि के सम्बन्ध में एक विचित्र घटना का उल्लेख मिलता है जो नितान्त वास्तविक ही है। सन्त सर्वसमर्थ होते हैं, वे असम्भव को सम्भव कर सकते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हैं। बाराबंकी जनपद के उमापुर गाँव में नवलदास नाम के एक महात्मा रहते थे। उनके साथ एक फकीर रहता था। नवलदास ने भविष्यवाणी की कि अमुक तिथि को तुम्हारा शरीर छूट जायेगा। फकीर ने विचार किया कि जब तक जीवन के दिन शेष हैं तब तक महात्मा जगजीवनदास की गद्दियों की परिक्रमा कर लूँ। वह अन्त समय में महात्मा दूलनदास के पास पहुँचा। दूलनदास से उसने अपने अन्तिम समय की बात बतायी। दूलनदास ने कहा कि तुम्हारे दारिद्रच का कागज फट गया है, तुम्हारा समय शेष है और मरण-तिथि को अपने पास ही रहने का आदेश दिया। फकीर के प्राणों की रक्षा हो गयी। सन्त दूलनदास के पास ही रह कर वह भगवान का भजन करने लगा।

उनका सिद्धान्त निर्गुणवाद था, उनकी साधना का रूप निर्गुण ब्रह्म का निर्मल, मायातीत चिंतन था। उन्होंने एक स्थल पर कहा है :

मैं निगुनी गुन एकौ नाहीं
माँझधार नहि कोऊ अपना।
दिहेउँ सीस सतगुरु-चरना
नाम-अधार है दूलन जना।

उनकी साधना का स्वरूप यह था कि वे प्रियतम परमात्मा के दर्शन और मिलन के लिये सदा प्रतीक्षा में रहते थे। उन्होंने स्वीकार किया है कि मैंने प्रियतम का दर्शन अपने ही भीतर किया है। उनकी उक्ति है कि मैंने साईं– प्राणाधार परमात्मा की सेज को देख लिया है, सतगुरु का पथ जान लिया है। शब्द का ताला है, शब्द की ही कुञ्जी और जंजीर है। मैंने शब्द ब्रह्म के चरण में मस्तक रख दिया। शब्द ही ओढ़ना है, शब्द ही बिछौना है, शब्द की ही रंगमयी चटक चूनरी है। जगजीवन साहब की कृपा से मैंनें परमात्मा का साक्षात्कार कर लिया है। दूलनदास शब्द-मार्गी थे। उन्होंने अपनी रचनाओं में शब्द-साधना का विस्तार से निरूपण किया है। भगवत्प्राप्ति के मार्ग में उन्होंने एक अत्यन्त लाभदायक उपाय की ओर संकेत किया है :

'दया धरम हिरदे में राखहु, घर में रहहु उदासी।
आन के जीव आपन करिजानहु तब मिलि है अविनासी।।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भगवन्नाम में उनकी अद्भुत निष्ठा थी। दूलन दास ने निरन्तर राम-नाम रटते रहने को ही जीवन का परम साफल्य स्वीकार किया है: रामनाम से हृदय में परमानन्दमयी ज्योति प्रकाशित हो उठती है, अभिव्यक्त हो उठती है, ऐसा उनका कथन है। महात्मा दूलन-दास की सन्तों में स्वाभाविक निष्ठा थी। सन्त के आतिथ्य को वे परम सौभाग्य का विषय समझते थे। इसी प्रकार उनकी गुरु-निष्ठा भी उच्च कोटि की थी। उन्होंने अपने गुरु जग जीवन साहब से सत्दर्शन की ही सदा याचना की। उन्होंने भवसागर से पार उतारने की ही आजीवन प्रार्थना की।

सन्त दूलनदासने आजीवन गृहस्थ वेष में ही रह कर सत्तनाम का चिन्तन किया। सम्वत् १८३५ वि. में आश्विन कृष्ण पंचमी रविवार को उन्होंने चोला-त्याग किया। सन्त दूलनदास ने सन्त-साहित्य की श्रीवृद्धि में मौलिक योग दिया। शब्दमार्गी सन्तों में उन्हें विशिष्ट स्थान प्राप्त है, वे आत्मज्ञानी सन्त थे।

रचना

भ्रम विनांश, शब्दावली, दोहावली, मंगल गीत आदि दूलनदास की रचनाओं के विशेष अंग हैं।

वाणी

जोगी चेत नगर में रहो रे ॥
प्रेम रंग रस ओढ़ चदरिया, मन तसबीह गहो रे।
अंतर लाओ नामहिं की धुनि, करम मरम सबधो रे॥
सूरत साधि गहो सतमारग, भेद न प्रकट कहो रे।
'दूलनदास' के साईं जगजीवन, भवजल पार करो रे॥

जब गज अरध नाम गुहरायो।
जब लगि आवै दूसर अच्छर, तब लगि आपुहि धायो॥
पाँय पियादे भे करूनामय, गरुड़ासन बिसरायो।
धाय गजंद गोद प्रभु लीन्हो, आपनि भक्ति दिढ़ायो॥
मीरा को विष अमृत कीन्हो, बिमल सुजस जग छायो।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नामदेव हित कारन प्रभु तुम, मृतक गाय जिवायो ॥
भक्त हेत तुम जुग जुग जनमेउ, तुमहि सदा यह भायो ।
वलि-वलि 'दूलनदास' नाम की, नामहिं ते चित लायो ॥
साहिब अपने पास हो कोई दरद सुनावे ।
साहिब जल थल घट-घट व्यापत, धरती पवन अकास हो ॥
नीची अटरिया की ऊँची दुआरिया, दियना बरत अकास हो ।
सखिया एक पैठी जल भीतर, रटत पियास पियास हो ॥
मुख नहि पीवे चिरुआ नहिं पीए, नैननिपियत हुलास हो ।
साईं सखर साईं जगजीवन, चरनन 'दूलनदास' हो ॥
पिया-मिलन कब होइ अँदेसवा लागि रही ।
जग लगि तेल दिया में बाती, सूझ परै सब कोइ ।
जरिगा तेल, निपटि गइ बाती, 'लैचलु, लैचलु' होइ ।
बिन गुरु मारग कौन बतावे, करिये कौन उपाय ।
बिना गुरु के माला फैरें, जनम आकारथ जाय ।
सब संतन मिलि एकमत कीजै, चलिये पिय के देस ।
पिया मिलैं तो बड़े भाग से, नहिं तो कठिन कलेस ।
या जग ढूँढू वा जग ढूँढू, पाऊँ अपने पास ।
सब संतन के चरन-वन्दगी, गावै, 'दूलनदास' ।
'दूलन' यह जग जनमि के हरदम रटना नाम ।
केवल नाम सनेह विनु, जनम समूह हराम ॥
राम नाम दुइ अच्छरै, रटै निरन्तर कोइ ।
'दूलन' दीपक वरि उठै, मन परतीति जो होइ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महात्मा चरणदास

चरणदास के चरण पर सहजो वारे प्रान।
जगत व्याध सूं काढ़ि करि राख्यो पदनिरबान॥

—सहजोबाई

महात्मा चरणदास विद्वान सन्त थे, आत्मज्ञानी, भगवद्भक्त और प्रेमी महात्मा थे। ऐसा कहने में तनिक भी संकोच नहीं होता है कि उन्होंने सन्त साहित्य के क्षेत्र में कबीर के अद्वैतवाद, दादू के ज्ञानमूलक प्रेमवाद और सगुणोपासक मध्यकालीन सन्तों के भक्तिवाद का समन्वय किया। उनकी भक्तिसागरादि रचनायें इस कथन का सत्य चरितार्थ करती हैं। परम ज्ञानी महात्मा सुंदर दास की ही तरह उन्होंने अपनी रचनाओं में ज्ञानमूलक अनुभूति उढ़ेल दी है। उनकी साधना उच्च स्तर की थी, वे तपस्वी सन्त थे। यह नितान्त सच है कि अपने समय की एक महान ऐतिहासिक विभूति थे। महात्मा चरणदास के जीवन-काल में दिल्ली की राजसत्ता कमजोर हो चुकी थी। मुहम्मद शाह का शासन था। महाराष्ट्र में प्रधानामात्य बाजीराव की तूती बोल रही थी। सम्वत् १७९५ वि. के लगभग वे दिल्ली तक चढ़ आये; सम्वत् १७९६ वि. में नादिरशाह का आक्रमण हुआ था, लूट-पाट और विध्वंस के बाद नादिरशाह ने अपने देश के लिये प्रस्थान किया। मुहम्मद शाह के बाद अहमदशाह और शाहआलम दिल्ली के सिंहासन पर आरूढ़ हुए। दिल्ली पर प्रत्येक समय शत्रु के आक्रमण का भय छाया रहता था। ऐसे विकट ऐतिहासिक समय में महात्मा चरणदास ने उत्तर भारत में सन्तमत का प्रचार किया, लोगों के हृदय में सत्य की ज्योति फैलाई परमात्मा के भजन और चिंतन की सीख दी।

महात्मा चरणदास का जन्म सम्वत् १७६० वि. में भादों शुक्ला तीज को अलवर राज्य के मेंवात प्रदेश के डेहरा ग्राम में हुआ था।

 CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वे भार्गव ब्राह्मण कुल में पैदा हुए थे। उनके पिता मुरलीधर विरक्त स्वभाव के थे, वैराग्य और त्याग में उनकी स्वाभाविक रुचि थी। संसार के विनश्वर पदार्थों में वे तनिक भी आसक्त नहीं थे। इसी प्रकार उनकी माता कुंजोदेवी का भी हृदय वैराग्यमय था। चरणदास के बचपन का नाम रणजीत था। उनके पालनपोषण पर माता-पिता के वैराग्यजन्य चरित्र का बड़ा प्रभाव पड़ा था। वे बाल्यकाल से ही आध्यात्मिक वातावरण में रहे। चरणदास की प्रधान शिष्या सहजोबाई ने बड़ी श्रद्धा और भक्ति से अपने गुरु के प्राकट्य का विवरण दिया है उनकी युक्ति है :

'सखी री, आज धन धरती धन देसा।
धन डेहरा मेवात मंझारे, हरि आये जन भेसा।
धन भादों, धन तीज सुदी है, धन दिन मंगलकारी।
धन ढूसर कुल बालक जनम्यो, फुलित भये नर नारी।
धन धन माई कुंजो रानी, धन मुरली धर ताता।
अगले दत्तव अब फल पाये, जिनके सुत भयो ज्ञाता।।'

ऐसा कहा जाता है कि महात्मा चरणदास ढूसर वैश्य थे। उनकी जाति जो भी रही हो, महत्ता तो है उनके सन्तपन की। .... पांच साल की अवस्था में डेहरा ग्राम में नदी किनारे शुकदेव जी ने उनको अपने दर्शन से धन्य किया था। जब रणजीत—चरणदास केवल सात साल के थे तब एक दिन उनके पिता भजन करने के लिये जंगल में गये और अदृश्य हो गये। यह भगवान की कृपा ही थी। चरणदास अपनी माँ के साथ नाना के घर दिल्ली चले आये। वे भगवान के भजन-चिंतन में लग गये। भगवान के दर्शन के लिये रोते-कल्पते रहते थे। युवावस्था में प्रवेश करते ही उनका जीवन पूर्ण रूप से साधना और तपस्या का प्रतीक हो उठा। उनमें भगवद्विरह का समय-समय पर आवेश होता था।

एक बार वे भगवान के विरह में विशेष रूप से व्याकुल हो गये अपने प्राणाधार को खोज रहे थे। उन्हें व्यास के पुत्र नित्य किशोर परम भागवत शुकदेव ने दर्शन दिया और मन्त्र-दीक्षा दी। रणजीत के स्थान पर चरणदास नाम रखा। उन्होंने गुरु के चरणों में निवेदन किया :

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'हमारो नैना दरस पियासा हो।
तन गयो सूखि हाय हिये बाढ़ी, जीवत हूँ वोहि आसा हो।
बिछुरन थारो मरन हमारो, मुख में चलै न ग्रासा हो।
नींद न आवै रैनि बिहावै, तारे गिनत अकासा हो॥
भये कठोर दरस नाहिं जाने, तुम कूं नेक न सांसा हो।
हमरी गति दिन-दिन औरे ही, विरह वियोग उदासा हो॥
सुकदेव प्यारे, रहु मत न्यारे, आनि करो उरवासा हो।
'रनजीता' अपनो करि जानी, निज करि चरननदासा हो॥'

उन्होंने अपने गुरुदेव से दैन्य मांगा और कहा कि ऐसी कृपा कीजिये कि मेरा अहंकार नष्ट हो जाय। ऐसा कहा जाता है कि उनके गुरु मुजफ्फर नगर जनपद में शूकर ताल गांव में रहनेवाले संत सुखानन्द या सुखदेव जी थे। महात्मा चरणदास ने अपनी रचनाओं में बड़ी श्रद्धा से शुकदेव जी को ही अपना गुरु स्वीकार किया है: 'भक्तिसागर' में उनकी स्वीकृति है:

'श्री व्यास को पुत्र तासु को दास कहाऊँ।
सदा रहूँ हरिशरण, और न शीश नवाऊँ॥'

शुकदेव जी के दर्शन के बाद वे दिल्ली में ही कठिन तप करने लगे, विकट योगाभ्यास में लग गये। अष्टांग योग की साधना की। चौदह साल तक निरन्तर समाधि में रह कर योगाभ्यास करने पर भी उन्हें वास्तविक शान्ति की अनुभूति नहीं हुई। वे तो भक्तिरसिक महात्मा थे। उनका मन वृन्दावन जाने के लिये विकल हो उठा। वे रासेश्वर नन्दनन्दन के दर्शन के लिये वृन्दावन की ओर चल पड़े। उन्होंने सेवाकुंज में श्यामसुन्दर का दर्शन किया, भगवान की रूप-माधुरी ने उनका मन मुग्ध कर लिया। उन्हें रासविलास की अनुभूति प्रदान की। एक दिन तो महात्मा चरणदास वंशीवट पर भगवान के विरह में व्याकुल हो उठे, वे उन्हें पुकारने लगे: चरणदास ऐसे निर्गुण योगी के नयन कृष्ण को देखने के लिये तरस रहे थे, उनकी वाणी भगवान के स्तवन के लिये उत्सुक थी, उन्होंने याचना की:

'तुम बिन कैसे जीऊँ प्यारे नन्दलाल।
भूख-प्यास कछु लागत नाहीं, तन की सुधि न संभाल॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कल न परत पल-पल अकुलावों, छिन छिन छिन बेहाल।
विरह व्यथा को रोग बढ़ो है, पीर महा विकराल॥
कहरी करूँ कितैजाऊँरी, सजनी कौन मेटै जंजाल।
लटक चलन वाकी चितवन की चुभत कलेजे भाल॥
भइ ऐसे यह देह दूबरी, सूझ परो नस जाल।
तलफत हू हिय मैं दौ लागी, नैना बरत मसाल॥
चरणदास यह सखी तिहारी हो शुकदेव दयाल।
आप कृपा करि दरसन दीजै, कीजै बेगि निहाल॥'

शुकदेव जी का उन्हें फिर दर्शन हुआ, वे आश्वास्त और संतुष्ट हुए। वृन्दावन की विकराल वियोग-वेदना का अनुभव करते हुए श्री शुकदेव की आज्ञा से वे दिल्ली चले आये। दिल्ली में निवास कर उन्होंने लोगों को ज्ञान और भक्ति का उपदेश देना आरम्भ किया। शुकसम्प्रदाय की स्थापना की और अनेक शिष्य बनाये। उनके शिष्यों में बावन प्रमुख थे। सहजो बाई और दयाबाई दो प्रधान शिष्या थीं। दोनों उच्च कोटि की योगिनी थीं। सन्त-साहित्य की प्रगति में सहजो बाई और दयाबाई ने असाधारण योग दिया है। दोनों परम गुरुनिष्ठ थीं। दया बाई ने बड़ी श्रद्धा से चरणदास की महिमा का बखान किया है, उनकी उक्ति है:

'चरनदास गुरुदेव जू, ब्रह्म रूप सुखधाम।
ताप हरन, सब सुखकरन, 'दया' करत परनाम॥'

इसी प्रकार सहजो बाई ने भी उनकी बड़ी महिमा गायी है। दया बाई और सहजो बाई दोनों ने चरणदास के चरण में अगाध अनुरक्ति प्रकट की है।

चरणदास की प्रसिद्धि बढ़ने लगी। बादशाह मुहम्मदशाह उनमें बड़ी श्रद्धा रखता था, वह उनके सत्संग में जाया करता था। नादिरशाह के आक्रमण की सूचना चरणदास ने मुहम्मद शाह को छः माह पहले ही दे दी थी। जब नादिरशाह को इस बात का पता लगा तो वह उनसे मिलने आया। चरणदास ने उसे युद्ध समाप्त कर लौट जाने की सम्मति दी। कहा जाता है कि किसी बात से चिढ़ कर उसने उनको कैद में डाल दिया था पर वे बाहर निकल आये और योग बल से

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नादिरशाह के शयनकक्ष में प्रवेश कर उसे लात मार कर जगाया सावधान किया; उसने क्षमा मांगी। अपने देश लौट गया।

हरिभक्ति और साधु-संगति को ही उन्होंने अपनी साधना का श्रेय स्वीकार किया। उन्होंने कहा है कि चाहे मुझे कोई आग में जला दे, चाहे सागर में डुबा दे, चाहे मेरे तन के टुकड़े कर डाले पर शुकदेव की कृपा से मैं हरि की भक्ति और साधु के संग का परित्याग नहीं कर सकता। भगवान के भजन में सुदृढ़ रहना ही हमारा सिद्धान्त है, साधुओं के साथ जीवन बिताना ही हमारा व्यवहार है; धर्म और कर्म है।

उनका कथन है:

'चारवेद किये व्यास ने, अरथ विचार-विचार।
तामें निकसी भक्ति ही, राम नाम ततसार॥'

महात्मा चरणदास ने सन्त कबीर की ही तरह बाह्याडम्बर और ढोंग तथा पाखण्ड और दम्भ का खण्डन किया, सत्य और धर्म की प्राणप्रतिष्ठा कर भगवद्भक्ति का उपदेश दिया। उन्होंने गुरु शुक देव के प्रति अप्रतिम श्रद्धा प्रकट करते हुए उन्हीं के नाम से अपने सम्प्रदाय को समलंकृत किया। उनकी अनुभूति है कि संसार में परम हित गुरु हैं, उनका नाम लेने से असंख्य पाप नष्ट हो जाते हैं तथा भगवान दर्शन देते हैं और जीव ब्रह्मरूप हो जाता है।

महात्मा चरणदास ज्ञानी सन्त थे, सत्यवेत्ता थे, विद्वान थे। उन्होंने सन्त मत को सत्य की ज्योति से समलंकृत किया, यही उनका सन्तपन है; सन्त साहित्य की श्री वृद्धि में उनका मौलिक योग है। सन्त-महिमा के चित्रण में उनकी उक्ति है:

'प्रभु अपने मुख सूँ कहेव, साधू मेरी देह।
उनके चरनन की मुझे, प्यारी लागे खेह॥'

साधु का निश्चय अटल होता है, सन्त वीरात्मा होता है, वह राजाधिराज की तरह जीवन के युद्ध में निरन्तर तल्लीन रहता है, सन्त पैर आगे रख कर पीछे कभी नहीं हटाता है, शस्त्र-अस्त्र का सामना करता है, संत का बाना वन्दनीय है– ऐसी चरणदास की सन्त-स्वभाव के प्रति उक्ति ह।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्त चरणदास ने निर्गुण-सगुण ब्रह्मतत्व का समान रूप से विवेचन किया। उन्होंने निर्गुण योगी की तरह आत्मतत्व और परमात्मा के रहस्य की खोज की, रसिक भक्त की तरह वृन्दावन के कुंज-कुंज में रासेश्वर की रसमयी लीला की अनुभूति प्राप्त की। यही उनका साधना के पथ में मौलिक, अपूर्व और अद्भुत चरित्र-वैचित्र्य है। इस आचरण का निर्वाह उन्होंने आजीवन किया।

चरणदास ने भगवद्चिंतन के क्षेत्र में प्रेम को सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया। उनका वचन है:

'सब मत अधिक प्रेम बतावें, जोग जुगत सूंबड़ा दिखावें।
प्रेमहि सूं उपजै वैराग्य, प्रेमहि सूं उपजै मन त्याग॥'

उन्होंने कहा कि पतिव्रता वह है जो अपने प्रियतम के रंग में सदा रंगी रहती है। उन्होंने बताया कि हमारे पति तो एकमात्र परमाराध्य राम हैं, उनके प्रति अटल विश्वास रखने में ही हमारा कल्याण है। उन्होंने राम के सम्बन्ध में कहा:

'बिन दरसन कल ना परे, मनुआ धरे न धीर।
'चरनदास' की राम बिन, कौन मिटावे पीर॥'

सत्संग उनकी साधना का मूलाधार था। उनका निश्चय था कि जब-जब राम का दर्शन मिलेगा, भक्ति और सत्संग की ही याचना करूँगा, सत्संग ही सार तत्व है। उन्होंने मन को समझाया।

'अरे मन करो ऐसो जाप।
कटे संकट कोटि तेरे मिटै सगरे पाप।
चेत चेतन खोज कर ले देख आपा आप।
काग सों जब हंस होवे नाम के परताप।
ध्यान आतम सुरति राखौ, छुटै तिरगुण ताप।
सुरति माला सुमिर हिरदै छोड़ सकल संताप।
पराभक्ति अगाध अद्भुत विमल अरु निष्काम।
'चरण-दास' शुकदेव कहिया, बसै निजपुर धाम॥'

भक्ति-पथ को उन्होंने अगम और परम कठिन बताया। भगवद्चिंतन और आत्मपूजा—आत्म साक्षात्कार में ही पूर्ण मुक्ति की अनुभूति की।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सम्वत् १८३९ वि. में अगहन शुक्ल चौथ को दिल्ली में ही उन्होंने योगबलसे समाधि ली। चरणदास सिद्ध महात्मा थे, अनुभवी योगी और भागवत संत थे। उन्होंने आध्यात्मिक क्रान्ति की; सत्यज्ञान दिया।

रचना

व्रज चरित्र, अष्टांग योग वर्णन, भक्ति पदार्थ वर्णन, ब्रह्मज्ञानसागर, धर्मजहाज, ज्ञान स्वरोदय, शब्द और भक्तिसागर आदि चरणदास की प्रसिद्ध रचनायें हैं।

वाणी

जाप करै तो पीव का, ध्यान करै तो पीव।
पिव बिरहिन का जीव है, जिव बिरहिन का पीव॥
जो बोलै तो हरिकथा, मौन गहै तो ध्यान।
'चरनदास' यह धारना, धारै सो सग्यान॥
जब लग जीवै राम कहु, रामहि सेती नेह।
जीव मिलैगो राम में, पड़ी रहैगी देह॥
पिछले पहरे जाग करि, भजन करै चित लाइ।
'चरनदास' वा जीव की निसचै गति होइ जाइ॥
जब लग जागै राम कहु, तन मन सू यहि चीत।
चरनदास यह कहत है, हरि बिन और न मीत॥
पतित उधारन विरद तिहारो।
जो यह बात सांच है हरि जू, तो तुम हमकूं पार उतारो॥
बालपने औ तरुन अवस्था, और बुढ़ापे माहीं।
हम से भई सभी तुम जानो, तुम से नेक छिपानी नाहीं॥
अनगिन पाप भये मन माने, नखसिख औगुन धारी।
हिरि फिरि कै तुम सरनै आयौ, अब तुमको है लाज हमारी॥
सुभ करमन को मारग छूटो, आलस निद्रा घेरो।
एकहिं बात भली बनि आई, जग में कहायो तेरो चेरो॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राखो जी लाज गरीबनिवाज।
तुम बिन हमरे कौन संवारे, सबही बिगरे काज॥
भगत बछल हरिनाम कहावो, पतित उधारन हार।
करो मनोरथ पूरन जन की, सीतल दृष्टि निहार॥
तुम जहाज मैं काग तिहारो, तुम तज अंत न जाऊँ।
जो तुम हरि जू मारि निकासो, और ठौर नहिं पाऊँ॥
चरनदास प्रभु सरन तिहारी, जानत सब संसार॥
मेरी हँसी सो हँसी तिहारी, तुम हूँ देखु विचार॥
भाई रे अवधि बीती जात।
अंजुली जल घटत जैसे, तारे ज्यों परभात।
स्वास पूंजी गांठि तेरे, सो घटत दिन रात।
साधु संगति पैंठ लागी, ले लगै सोइ हाथ।
वड़ो सौदा हरि संभारो, सुमिरि लीजै प्रात।
काम क्रोध दलाल हैं, मत बनिज कर इन साथ।
लोभ मोह बजाज ठगिया, लगै हैं तेरि घात।
शवद गुरु को राखिहिरदय, तो दगा नहिं खात।
आपनी चतुराई बुधि पर, मत फिरै इतरात।
चरनदास सुकदेव चरननि परसि, तजि कुल जात॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परम भक्त मोरोपंत

सुस्वर कंठें रसिकें आर्या गातां मयूर बाबाची।
वेधी सुजन मनातें, न तशी धुन ऐकतां रबाबाची॥

'सुस्वर कंठवाले रसिकों द्वारा गायी गयी मोरोपंत की आर्या सुजनों का मन मुग्ध कर लेती है, मधुर रबाब की ध्वनि से उसकी तुलना ही नहीं है।'

—राम बड़वे

परम भागवत मोरोपन्त ने अपनी भक्तिमयी; परम रसमयी सुमधुर वाणी से केवल अपनी जन्मभूमि—महाराष्ट्र को ही नहीं, समस्त भारतकी सगुण भगवद्भक्ति-चेतना को प्राणान्वित कर परम पुण्य कमाया। वे बंगाल के कृतिवास थे, रामचरित मानस के रचयिता गोस्वामी तुलसीदास के पुण्यमय मराठी संस्करण थे। उनका समस्त जीवन अध्यात्मपरक था, वे गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी परम विरक्त सन्त थे। उनके स्थूल शरीर, गौर वर्ण और शान्तिमय मुखमण्डल देखते ही लोग उनके वश में हो जाते थे। वे स्वभाव से ही दयालु और विनम्र थे। मोरोपन्त इतिहासप्रसिद्ध वाजीराव पेशवा और अहिल्याबाई के समकालीन थे। मराठा शक्तिसंघ उन दिनों अपनी चरम सीमा पर था। दिल्ली की केन्द्रीय राजसत्ता कुप्रबन्ध, विदेशी आक्रमणों तथा राजनैतिक असावधानी से शिथिल होती जा रही थी। बाजीराव पेशवा अपनी प्रभुता की पराकाष्ठा पर थे, ऐसे ऐतिहासिक समय में परम दयामय मोरोपन्त ने अपनी पवित्र वाणी से लोगों को भगवान की भक्ति की ओर आकृष्ट किया। मोरोपन्त के जीवन काल में महाराष्ट्र के आलन्दी आदि क्षेत्रों में भगवत्प्रेमी सन्तों द्वारा भागवत धर्मका प्रचार हो रहा था। बड़े-बड़े रसिक भक्त उस समय विद्यमान थे। मोरोपन्त की रसवती वाणी ने भागवत धर्म के पुनरुत्थान में महान योग दिया, उन्होंने हिन्दुत्व का संरक्षण किया। महाराष्ट्र के समस्त समकालीन कीर्तनकार उनकी आर्याओं का उपयोग किया करते थे। उनके मित्र राम बड़वे की उक्ति है कि रसिक जन उनकी आर्या का सुमधुर स्वर से गान करते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मोरोपन्त का काव्यजीवन परम सरल और सरस था; उसमें भगवान की भक्ति का विलास था। उन्होंने अखण्ड रूप से ईश्वर की उपासना की। भगवत् महिमा से अपने काव्य-साहित्य की श्रीवृद्धि की। मोरोपन्त पहले भगवद्भक्त और बाद में कवि माने जाते हैं। भगवद्भक्त कवि ही भगवान की महिमा का विस्तार करते हैं। रामायण, महाभारत और भागवत रूप कल्पलताओं की छाया में मोरोपन्त ने आजीवन विश्राम किया। वे सरस बादल की तरह इन महासागरों से अमृत खींच कर काव्यरसिकों को जीवन-दान दिया करते थे, इन तीन महा-ग्रन्थों पर उन्होंने अपनी काव्य-सम्पत्ति निछावर कर दी।

मोरोपन्त के पूर्वज महाराष्ट्र के रत्नागिरी जनपद के राजापुर प्रान्त के सौदल गांव में निवास करते थे। मोरोपन्त के मूल पुरुष सोनोपन्त थे। उनके पिता का नाम रामजी पन्त था। मोरोपन्त का प्राकट्य जामदग्न्य गोत्र में हुआ था। उनके कुलस्वामी भैरव देव थे। महाभागवत मोरोपन्त का जन्म सम्वत् १७८६ वि. में पन्हाल गढ़ में हुआ था। पन्हाल गढ़ पराशर ऋषि की तपो-भूमि है, वह अत्यन्त रमणीय स्थान है। मोरोपन्त के पिता रामजी पन्त और माता लक्ष्मी बाई के धार्मिक आचार-विचार और भक्तिभाव ने मोरोपन्त के चरित्र-विकास पर बड़ा प्रभाव डाला। उनका कुल परम पवित्र था; भगवान के सगुण रूप का चिंतन करनेवाले महाभागवतों ने समय-समय पर उसमें जन्म लिया था।

मोरोपन्त के प्रारम्भिक तेइस-चौबीस साल पन्हाल गढ़ में ही व्यतीत हुए। उसके बाद वे सपरिवार बारामती चले आये। उनका बाल्यावस्था से ही रामभक्ति और दिव्य काव्यज्ञान में अनुराग था। शास्त्र, साहित्य और काव्यग्रन्थों की प्रतिलिपि करने में उनकी विशेष अभिरुचि थी। जिस किसी भी ग्रन्थ में भगवान की लीला-कथा मिल जाती उसे वे अपना प्राणधन समझते थे।..... उनका गृहस्थ-जीवन परम सुखमय और सरस था। मोरोपन्त की स्त्री रमाबाई अत्यन्त सती, साध्वी, सुशीला और सद्गुण सम्पन्न थीं।

मोरोपन्त का स्वभाव प्रेममय, कोमल और मधुर था। उनका परिवार बहुत बड़ा था। उनके ऐसे प्रेमी, सात्विकवृत्तिसम्पन्न पुरुष ही उतने बड़े परिवार का भरण-पोषण कर सकते थे। उन्होंने काशी की भी एक बार यात्रा की थी, काशी के पण्डितों ने उनकी कविता और भगवद्भक्ति को मान्यता दी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उनकी लोकप्रियता वढ़ गयी। काशी से लौटते समय रास्ते में उन्होंने इन्दौर की महारानी अहल्याबाई से उनके शिविर में भेंट की।

मोरोपन्त का जीवन अलौकिक घटनाओं और चमत्कारों से परिपूर्ण था। उनके उपास्य भगवान श्रीराम थे। पहले वे शालिग्राम की पूजा करते थे। अहमदनगर में एक रामभक्त महात्मा थे। उनके पास रामपंचायतन मूर्ति थी। भगवान श्रीराम ने उन्हें रात में स्वप्न में आदेश दिया कि मूर्ति की पूजा के अधिकारी वारामती-निवासी परम भक्त मोरोपन्त हैं। उनके पास मूर्ति पहुँचा दी जाय। महात्मा ने मोरोपन्त के पास मूर्ति पहुँचा दी। इस घटना से उनकी असाधारण रामभक्ति का पता चलता है।

मोरोपन्त बड़े उदार, स्नेही और गुणग्राही थे। परम कृष्णभक्त रसिक-कवि रामजोशी से उनका मिलन मराठी साहित्य के इतिहास की एक मौलिक घटना है। दोनों एक-दूसरे की काव्यवाणी के रसिक थे, रामजोशी की हार्दिक इच्छा थी कि महाभागवत मोरोपन्त मुझे अपने दर्शन से कृतार्थ करें। भगवान की कृपा से ऐसा अवसर एक समय उपस्थित ही हो गया। रामजोशी महाराष्ट्र के शोलापुर के निवासी थे, वे कृष्णलीला के सम्बन्ध में काव्य-रचना किया करते थे। उनकी रसिकताकी प्रसिद्धि से मोरोपन्त उनसे मिलने के लिये विवश हो गये। उन्होंने पत्र लिखा –'शोलापुर के राजश्री कविवर रामजोशी को साष्टांग नमस्कार। भेंट कीजिये, ऐसी विनती है।' एक दिन दोनों मिल ही गये। रामजोशी देवमन्दिर में लावनी गा रहे थे, झूमझूम कर कविता की भाषा में श्रीराधाकृष्ण के लीला-सौन्दर्य का शब्दांकन कर रहे थे। दर्शकों के सरस नयनों में कालिन्दी का चल अंचल आन्दोलित था। विमल नवनीतोपम शारदीय ज्योत्स्ना में धोयी वालुका पर श्री कृष्ण रास कर रहे थे। सैकड़ों भक्तजन भागवत माधुर्य में सम्मोहित होकर कीर्तन कर रहे थे। जनता आश्चर्य में पड़ गयी, मन्दिर के उस दरवाजे पर गौरवर्ण के महापुरुष खड़े थे, रामजोशी का कीर्तन सुन रहे थे, भीड़ में खलबली मच गयी। 'महाकवि परम भक्त मोरोपन्त, जनता की रसना पर ये शब्द थिरक उठे। मोरोपन्त जोशी का कीर्तन सुनने के लिये अपने आप चले आये। रामजोशी का आलिंगन करने के लिये उनके वेष में साक्षात् राम भक्ति ही चली आयी। मोरोपन्त ने रामजोशी को गले लगाया। उन्होंने मांगलिक वचन कहे कि 'ऐसी अमृतमयी मधुर वाणी जनता को विषय-कीच से बाहर निकालने में समर्थ है। तुम्हारा जन्म पृथ्वी पर सार्थक हो गया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तुम्हारी विद्वता असाधारण कोटि की है। तुम कविवर हो। रामजोशी ने मोरोपन्त की चरणधूलि सिरपर चढ़ाली। मोरोपन्त ने उनको धन्य कर दिया।

मोरोपन्त ने आजीवन भगवान और उनके भक्तों का चरित्र गाया। मराठी भाषा में उन्होंने लाखों पदों की रचना की। राम-भक्ति के साहित्य का सागर उड़ेल दिया। जनता को सीधी-सादी भाषा में भगवत्सेवाका मर्म बताया। वे भगवद्भक्त और कर्मनिष्ठ समान रूप से थे। वे सगुणोपासक और अद्वैतवादी दोनों थे। विनय के तो मूर्त रूप थे। स्वयं सन्त थे पर सन्तों और भगवद्भक्तों की चरण-धूलि में उनकी अनुपम निष्ठा थी। कवीश्वर थे पर अपने आप को कवियों का सेवक मानते थे। महाबुद्धिमान थे पर अपने आप को मतिमन्द कहने में ही गौरव की अनुभूति करते थे। बड़े पुण्यशाली थे पर अपने आप को सदा अति लघु समझते थे। वे परमार्थ के बहुत बड़े साधक थे, हरिभक्ति रसायन से उन्होंने अपना ही नहीं, अनेक जीवों का भवरोग समाप्त कर दिया।

भगवान राम के चरणों में उन्होंने अचल निष्ठा प्रकट की है। एक स्थल पर उनकी उक्ति है कि हे भगवान मेरी बड़ी इच्छा है कि आपके ही चरणों की सेवा में सदा मेरी रति बनी रहे :

'मन हेंचि फार इच्छी कि आतां सेवणें तुझे पाय।
तुजवांचुनि इतराच्यां भजनीं मजलागिं होय फल काय।'

मोरोपन्त सूर और तुलसी के मराठी समन्वय-संस्करण थे। उन्होंने अपनी काव्यकारिता को राम और कृष्ण दोनों की अविचल भक्ति से गौरवान्वित किया है। उन्होंने अपने काव्य के एक पात्र-अंगद के मुख से रावण के प्रति अचल राम भक्ति की सीख दी है। दयासागर राम की भक्ति से मोरोपन्त ने अपना समस्त काव्य दिव्य बना डाला। मंत्र रामायण में मोरोपंत ने जीव, जड़ और जङ्गम को राम के विरह-दुख में निमग्न कर दिया; जिस समय लीला मानव मर्यादा-वेश में जानकी का अन्वेषण कर रहे थे, उस समय पम्पा सरोवर पर राम के आने पर जीव जड़ शोकग्रस्त हो गये। प्रकृति की सहानुभूति का सुन्दर दिग्दर्शन उनकी उक्ति में हो सका है। भगवान राम की बालछवि के वर्णन में उनकी एक स्थल पर उक्ति है :

'पीतां स्तनांतें क्षणमात्र राहणें
महादरें मातृमुखासि पाहणें!

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वक्त्रांत तें दुग्ध तसेचि वाहणें।
तेणेंचि फुत्कार करुनि नाहणे।
मुखांतुनी दुग्ध गले सुनिर्मल,
उरावरीं ये अति शुभ्र वोगल।
मन्दाकिनीचा गगनीं प्रवाह तो,
चन्द्रप्रभा पांडुर काय वाहतो।
वैसोनि हर्षे जननीचि या कड़े,
विलोकुनी तन्मुख नीरजा कड़े।
स्मितामृता पूरित बोल बोवड़े,
बोले तदा ब्रह्म सुख स्वयें दडे।'

उन्होंने कृष्ण लीला-कथा का भी विस्तार अपने काव्य में अत्यन्त उचित शैली में किया है। लक्ष्मी पति, दयामृतघन, रसमूर्ति श्रीकृष्ण का अपने 'कृष्ण विजय' ग्रन्थ में साढ़े तीन हजार पदों में उन्होंने यशोगान किया है। मोरोपन्त ने अपने काव्य को भगवच्चिंतन के मधुर रगमंच पर प्रतिष्ठित कर जो भक्तिदान महाराष्ट्र और भारत को दिया वह एकनाथ और ज्ञानेश्वर के भागवत और गीता-विवृत्ति के दान से कम महत्वपूर्ण नहीं है। मोरोपंत की असाधारण मान्यता थी –पूर्ण विश्वास था कि नर अपनी करनी से नारायण हो जाता है, दिव्य हो जाता है।

महाराष्ट्र के चण्डीदास रंगीले कवि राम जोशी ने मोरोपन्त की वाणी के प्रति जो सम्मान प्रकट किया है उससे उनके काव्यमाधुर्य का साक्षात्कार होता है। उनकी प्रत्येक आर्या और पदावली में नित्य नवीन रस का आस्वादन-सुख मिलता है। मोरोपंत की काव्यप्रतिभा महर्षि व्यास और वाल्मीकि के काव्यदान की आभारी थी। उनकी कोमल काव्य-साधना की पीठ पर एकनाथी भागवत का हाथ था। मोरोपन्त ने शुद्ध ,सरल, प्रौढ़ और अत्यन्त रसाल वाणी से समलंकृत कवितावधू को श्रीभगवान के चरणों पर समर्पित कर दिया। उनका काव्य उनकी भगवद्भक्ति का फल है, भगवान का उपासना-वाङ्मय है। उनके काव्य-मानव ने सदा भगवान से भक्ति की याचना की। काव्य कारिता और भगवान की भक्ति दोनों एकात्मा के रूप में, जगत की मंगल दात्री के रूप में दीख पड़ीं। भारतीय काव्य परम्परा ने सदा रामायण, महाभारत और भागवत को ही अपनाया है। भागवत तो इसका सौन्दर्य-माधुर्य-रूप है, साक्षात्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नन्दनन्दन का चिन्मय साहित्य-विग्रह है। मोरोपन्त ने मन्त्र भागवत की रचना की। मोरोपन्ती महाभारत, रामायण, हरिवंश, कृष्ण विजय आदि ग्रन्थों में मोरोपन्त की अद्भुत काव्य-शक्ति का दर्शन होता है। उनका सावित्री-गीत अत्यन्त मंजुल और सरस है। कवि ने सावित्री के पातिव्रत का सुन्दर ढंग से करुण रस में उत्तम विवेचन किया है। उनके शृंगारपरक काव्यों में राधाविलास, रुक्मिणी विलास आदि अग्रगन्य हैं। उनकी काव्य भाषा ज्योत्सना और दूध की धवलिमा की तरह परम पवित्र और मनोहारिणी है। वात्सल्य रस के वर्णन में उनकी ओजस्विनी भाषा का मधुर प्रवाह अत्यन्त मनोरम हो उठा है। मराठी के तुलसीदास—महामति मोरोपन्त ने राम की बाललीला का वर्णन अत्यन्त सरस और सरल ढंग से किया है।

भारतीय सन्त-साहित्य के इतिहास में उन्हें अमित गौरव पूर्ण पद प्राप्त है। उन्होंने अपने समकालीन महाराष्ट्र का ही नहीं, भागवती चेतना से जाग्रत समस्त भरतखण्ड का कालिदास और तुलसीदास की तरह साहित्य में नेतृत्व किया। उनके मित्रमण्डल में तत्कालीन महाराष्ट्र के बड़े बड़े रसिक कवि, प्रख्यात साहित्यसेवी और उच्चकोटि के सन्त तथा श्रद्धास्पद भगवद्भक्त थे। पन्त के शिष्यतुल्य स्नेही रसिकवर रामजोशी, मैराल बोवा, विठोवा, तुकाविप्र और रामबड़वे आदि ने अपने अनुपम साहचर्य से उनके काव्य की श्रीवृद्धि की। महाराष्ट्र के समस्त कीर्तनकार उनकी आर्या का कीर्तन करते थे। सागर के हरिदास बोवा, नाशिक के त्र्यम्बक बोवा, गोविन्द बोवा आदि ने उनके पदों का कीर्तन में प्रचार किया। सुमधुर काव्यमयी भगवद्भक्ति के रस से महाराष्ट्र के कण-कण सिक्त हो उठे, सराबोर हो उठे। मोरोपन्त महाराष्ट्र में गणेश के अवतार माने जाते थे; समस्त महाराष्ट्र मोरोपन्त की कविता का भक्त था। मोरोपन्त ने अपने काव्य में अपने मित्रमण्डल के प्रति अगाध स्नेह प्रकट किया है। रसिकों, कवियों और भगवद्भक्तों की प्रसन्नता को वे अपने काव्य राज्य की मुकुट-मणि मानते थे। मोरोपन्त की काव्य कारिता की आधार शिला रामायण, महाभारत तथा भागवत आदि हैं। उनका काव्य भारतीय आर्ष ग्रन्थों का सारतत्व है। मन्त्र रामायण में परम भागवत मोरोपन्त की उक्ति है :—

'वाल्मीकि विप्रोत्तम काव्यपद्म
श्रीराम लीला मकरन्द सद्म।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तेथें मयूरेश्वर भृंग झाला,
सेवावया नित्य सुखें रसाला।'

इसी प्रकार महाभारत के सम्बन्ध में उनकी विज्ञप्ति है कि भगवान व्यास ने श्रुति, स्मृति, शास्त्र-पुराण आदि को महाभारत में भर दिया है, शब्दब्रह्म सागर का मन्थन कर इतिहासकलश में अमृत भर कर जड़ता रोग को हरने के लिये उन्होंने सन्तों को दे दिया। भागवत के विषय में उन्होंने कहा कि यह मोह हरता है, जीवन्मुक्ति प्रदान करता है तथा हरिकी महिमा से परिपूर्ण है।

मोरोपन्त आदर्श गृहस्थ, परम भगवद्भक्त और महान सन्त थे। सन्त-महात्माओं के प्रति उनमें बड़ी पूज्य बुद्धि थी, अपने मित्रों के प्रति प्रेम था, परिवार वालों के लिये सेवा-भाव था तथा जीवमात्र के प्रति स्वाभाविक रूप से वे दयालु थे। बारामती-निवासी बाबूजी नाइक से उनकी बहुत पटती थी, दोनों एक दूसरे के प्रति विशेष रूप से अनुरक्त थे। मोरोपन्त ने अपने महाभारत के कर्णपर्व में बाबूजी नाइक के सद्गुणों की बड़ी प्रशंसा की है। बाबूजी नाइक को उन्होंने 'प्रभुज्ञानी' विशेषण से समलंकृत किया है।

मोरोपन्त संसार के प्रतिपूर्ण विरक्त थे। वे भागवत कवि थे, उनकी अन्तरात्मा राममयी थी। भगवद्भक्ति ही उनकी वास्तविक सम्पत्ति थी। वे परमसज्जन और रामभक्ति के विशेषज्ञ थे।

सम्वत् १८५१ वि. में चैत्र की रामनवमी को उन्होंने धूमधाम से श्रीराम का जन्मोत्सव किया। एकादशी को उन्हें ज्वर आया; धीरे-धीरे ज्वर बढ़ने लगा। मोरोपन्त के प्रेमी जन तथा परिवार के लोग एकत्र हो गये। मंगलवार था। चैत्र पूर्णिमा के शुभ अवसर पर मोरोपन्त ने अत्यन्त हृदयद्रावक काव्य भाषा में गोमाता, भूमाता, तुलसी, गंगा माता और रामनाम तथा आप्त जनों और भक्तों का स्मरण किया। बस, कुछ ही समय में अत्यन्त आस्तिकता के वातावरण में उनके प्राण देह से बाहर हो गये। जनता की ओर से उनके भक्त पाण्डुरंग नाइक ने एक विशाल राममन्दिर का निर्माण उनके शुभ स्मरण के प्रतीक स्वरूप कराया। मोरोपन्त अपने समय की बहुत बड़ी काव्यशक्ति थे। भक्ति के प्रचारक और राम के महान भक्त थे।

रचना

मन्त्र भागवत, महाभारत, रामायण, हरिवंश, कृष्णविजय, कुशलवा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ख्यान, मदालसाचरित्र, दुर्गासप्तशती, सावित्री गीत, राधाविलास, रुक्मिणी विलास आदि मोरोपन्त की प्रसिद्ध कृति हैं।

वाणी

मन हे चि फार इच्छी की आतां सेवणें तुझे पाय।
तुज वांचुनि इतरांच्या भजनीं मजलागि होय फल काय।

मेरे मन की बड़ी इच्छा है कि अब आपके चरणों का सेवन करूँ। हे भगवान, आपके बिना दूसरों की सेवा करने में मुझे किस फल की प्राप्ति हो सकती है!

श्रीरामातें गावें, श्रीरामा तें ध्यावें।
श्रीरामातें भावें। आठवावें॥
रामाचे चरित, अमृत भरित।
सेवावें त्वरित, सर्वांनीं ही॥
श्रीराम दयेचा मेघ त्या समोर।
प्रेमें दास मोर, नाचताती॥

श्रीराम का ही यश गाना चाहिये। उन्हीं का ध्यान करना चाहिये; राम के ही चिन्तन और स्मरण में तत्पर रहना चाहिये। उनके चरित्र अमृत मय हैं, सब को उनका सेवन करना चाहिये। श्रीराम दयाघन हैं, उनके सामने (मोरोपन्त) मैं प्रेम से नाचता हूँ।

दयामृत घन श्रीमानकृष्ण लक्ष्मीपती हरी।
करी भक्तमयूरातें सुखी हृत्ताप संहरी।

लक्ष्मीपति हरि श्रीकृष्ण भगवान दयामृत घन हैं। उन्होंने मेरे हृदय का संताप हर लिया, मैं उनकी कृपा से सुखी हो गया।

मुखी हरि! वसो तुझी कुशलधामनामावली।
क्षणांत पुरवील जी सकल कामना मावली॥
कृपा करिशि तूं जगत्रय निवास दासावरी।
तशी प्रगट हे निजाश्रित जनां सदा सांवरी॥

हे भगवान! मेरे मुख में आपकी मंगलमयी नामावली का निवास हो, जिससे क्षणमात्र में मेरी सकल कामनायें फलवती हो जायें। जिस प्रकार आप

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तीनों लोक के दासों पर कृपा करते हैं, उसी प्रकार, हे श्यामसुन्दर आप मुझ पर कृपा करें, मैंने आप का आश्रय ले रखा है।

मेघाचें प्रतिविम्ब पाहुनि सुखें नाचेंचिलागे भुले।
मानो सर्वमनोरथ द्रुम फलीं ओथंबले आपुले॥
ऐसा भक्त मयूर चातकहि जो नेणे दुजीं भावुकें।
तो साक्षात् घन दर्शनीं किती सुखी तें प्रेमला ठावुकें॥

मेघ के प्रतिविम्ब को देखकर आत्मविमोर होकर सुख से मन नाच उठता है मानों अपने सकल मनोरथों का द्रुम फल से परिपूर्ण हो उठा है। भाव से भरे ऐसे मुझ चातंक रूपी मोरोपन्त को साक्षात् घन–भगवान के दर्शन से कितना सुख मिलता है, यह केवल मैं ही जानता हूँ।

———

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्त सोहिरोबा नाथ

निरबैरी सब जीव सूं, संत जना सोई।
दादू एकै आतमा, बैरी नहिं कोई॥
काहे कूं दुख दीजिये, घट-घट आतमराम।
दादू सब संतोषिये, यहु साधू का काम॥

—संत दादू

सन्त सोहिरोबा नाथ की परिगणना महाराष्ट्र के प्रसिद्ध सन्तों में की जाती है। अभी दो सौ साल पहले की बात है, उन्होंने अपनी अखण्ड साधना और तपस्या से महाराष्ट्रीय सन्त-साहित्य-क्षेत्र में जो नाम कमाया उसका उल्लेख मध्यकालीन भारतीय इतिहास की एक महती घटना है। जिस समय मुगल राजसत्ता का सूर्य तीसरे पहर पर था, विदेशी प्रभुता के ग्रहण से स्वराज्य स्वधर्म और स्वदेश आतंक-ग्रस्त होने वाला ही था, महाराज शिवाजी की शासन-परम्परा को जीवित रखने के लिये आमात्य प्रधान—पेशवा की ओर से एड़ी-चोटी का पसीना एक किया जा रहा था; भोंसले, सिंधिया, होलकर और गायकवाड का महाराष्ट्रीय राजसंघ अपनी प्रभुता की पराकाष्टा पर था, उस समय सोहिरोबा नाथ ने अपने आध्यात्मिक ऐश्वर्य और आत्मज्ञान के प्रकाश से जनता को सत्य का सन्देश दिया, घर-घर में भगवद्भक्ति का प्रचार किया। मराठी साहित्य में सन्त सोहिरोबा बहुत बड़ी आध्यात्मिक शक्ति स्वीकार किये जाते हैं। उनका समग्र जीवन पवित्रता और पुण्य का अप्रतिम प्रतीक था।

सोहिरोबा नाथ सारस्वत ब्राह्मण थे। उनके पूर्वज गोवा प्रान्त के रहने वाले थे। वे परम धर्मनिष्ठ और सदाचारी थे। श्रीभगवान के स्मरण-चिन्तन में सम्पूर्ण परिवार की पूरी-पूरी निष्ठा थी। उद्योग-धन्धे के सम्बन्ध में उनके पूर्वज गोवा से सावंतवाड़ी चले आये। सावंत वाड़ी के लब्ध प्रतिष्ठ लोगों से इस परिवार का थोड़े ही समय में घनिष्ठ परिचय हो गया। राजकीय प्रतिष्ठा ने भी सोहिरोबा के पूर्व पुरुषों का आलिंगन किया। सावंतवाड़ी से

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चार कोस की दूरी पर वांदे अथवा एदिलाबाद ग्राम में ही उनके पूर्वजों ने अपना निवास स्थिर किया था। सम्वत् १७७१ वि. में एदिलाबाद में ही सोहिरोबा नाथ का जन्म हुआ था। उनके प्रकट होते ही केवल घर में ही नहीं, समस्त ग्राम में अलौकिक प्रकाश का अवतरण हुआ। वातावरण उनके जन्म की दिव्यता से प्रभावित हुआ।..... धीरे-धीरे उनकी अवस्था बढ़ने लगी, उनकी शिक्षा-दीक्षा का समुचित प्रबन्ध था। साधु सन्तों की सेवा, गुरुजनों के आज्ञा-पालन और प्राणीमात्र के प्रति सहजरूप से अपनत्व प्रकट करने में उनको बड़ी प्रसन्नता होती थी।... बड़े होने पर उन्होंने पूर्व पुरुषों की ही तरह कुलकर्णी का कार्य सम्हाला। वे बड़ी पवित्रता और निष्पक्ष बुद्धि से अपना कार्य-सम्पादन करते थे। उनके जीवनका पूर्वार्ध कुलकर्णी का कार्य करते ही बीता। सावंतवाड़ी के शासक उन दिनों खेम सावंत थे, उनकी अवस्था अल्प थी, उनकी अल्पवयस्कता में राजकार्य उनके चाचा सोम सावंत ने सम्हाला। सोमसावन्त-आवा साहेब बड़े व्यसनी, विलासी और अनुदार शासक थे। उनके अत्याचार और कुप्रबन्ध से जनता अमित अशान्त और उत्पीड़ित थी। सोम सावन्त ने कर उगाहने में बड़ी निर्दयता का परिचय दिया। कुलकर्णी उनकी नीति से सदा आतंकित रहते थे। कर-प्राप्ति के सम्बन्ध में सोम सावन्त ने सोहिरोबा नाथ को भी बुला भेजा। एक ईश्वरोपासक के रूप में सोहिरोबा की विशेष प्रसिद्धि थी। सोम सावन्त ने धमकी दी कि ईश्वर का दर्शन कराओ नहीं तो मृत्यु के मुख में जाना पड़ेगा। सोहिरोबा उनकी धमकी से तनिक भी विचलित नहीं हुए। थोड़ी देर में एक ज्वाला -सी दीख पड़ी। सोहिरोबा ने विनम्रता-पूर्वक निवेदन किया कि यह ज्वाला ईश्वर के कोप के रूप में प्रकट हुई है, बहुत बड़ा अनर्थ होगा।... कुछ दिनों के बाद आग में जलने पर आबा साहेब का प्राणान्त हो गया, सन्त को उत्पीड़ित करने के समान दूसरा पातक ही नहीं है; इस पाप का प्रायश्चित-विधान ही नहीं है; सन्त की कृपा और क्षमा से ही इस पाप-ताप का परिशमन होता है तो हो जाता है।.. इस घटना से सोहिरोबा का मन वैराग्य से परिपूर्ण हो उठा, उनका ईश्वर-विश्वास बढ़ गया तथा संसार के नश्वर रूप के प्रति अनासक्त हो उठे।

संसार की किसी भी वस्तु में उनका राग नहीं रह गया। सन्त-महात्माओं के दर्शन की भूख निरन्तर बढ़ने लगी। भगवान और सन्त की कृपा अधिकारी जीवको अनायास ही मिलती है। एक समय की बात है, सोहिरोबा नाथ एक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वन के मध्य से कहीं जा रहे थे। चारों ओर विचित्र और निर्जन उदासी छायी हुई थी। समस्त वनप्रान्त भयंकर साँय-साँय कर रहा था। सोहिरोबा नाथ को बड़ी भूख लगी थी, उनके पास एक कटहर था, वे उसे फोड़ कर खाने ही वाले थे कि इसी बीच में उनके कान में शब्द पड़े—'बाबू, मुझे कुछ देता है।' सोहिरोबा सावधान हो गये। उन्हें एक महात्मा दीख पड़े, सोहिरोबा ने सम्पूर्ण कटहर सन्त के हाथ में रख दिया और विनम्रता पूर्वक निवेदन किया कि इस समय सेवक के पास आपके भोजन के लिये यही पदार्थ है। सन्त उनकी मनोदशा से बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कटहर फोड़ कर चार कोवे सोहिरोबा को प्रसाद रूप में दिये। सन्त का प्रसाद था। उसे ग्रहण करते ही सोहिरोबा की चित्तवृत्ति वैराग्यमयी हो गयी, अध्यात्म की स्फटिक निर्झरिणी उनकी चेतना में रमणशील हो उठी, वे जागरुक हो गये। उन्होंने संतचरण की धूलि-भागीरथी में अवगाहन कर परम पुण्य कमाया। महाराष्ट्र में ऐसी मान्यता है कि नाथ सम्प्रदाय के परम योगी गहिनी नाथ ने ही उन्हें कृपापूर्वक दर्शन देकर वैराग्य-मार्ग पर लगाया था; वे ही सन्त सोहिरोबा नाथ के दीक्षा-गुरु थे। इस समय सोहिरोबा की अवस्था पैंतीस साल की थीं। उन्होंने कुलकर्णी के पद से त्यागपत्र दे दिया और भगवान के भजन-पूजन में लग गये। थोड़े ही समय में सोहिरोबा नाथ बहुत बड़े योगसिद्ध महात्मा के रूप में प्रसिद्ध हुए।

भारतीय जीवन में तीर्थयात्रा का बहुत बड़ा महत्व स्वीकार किया जाता है। संत और गृहस्थ-सब के सब इस विषय में एक मत हैं। सोहिरोबा नाथ ने तीर्थ-यात्रा का विचार किया। घर पर पुत्र वधू थी। वह विधवा थी। उस समय उसका पुत्र मरणासन्न था। उसने सोहिरोबा के चरणों में निवेदन किया कि इस समय असहाय अवस्था में मुझे घर पर अकेली छोड़ कर आप तीर्थ यात्रा न आरंभ कीजिये। सन्त पुत्रवधू की प्रार्थना पर द्रवित हो उठे। वे ठहर गये। भगवान की कृपा से कुछ दिनों में मरणासन्न पौत्र स्वस्थ हो गया।.. सोहिरोबा घरवालों के पालन पोषण का कार्य-भार भगवान के चरणों में समर्पित कर तीर्थयात्रा के लिये निकल पड़े। तीर्थयात्रा ने सोहिरोबा की दैवी सम्पत्ति-वृद्धि में महान योगदान किया।

तीर्थ यात्रा-काल में ही वे ग्वालियर गये। महादजी सिंधिया उस समय के प्रभावशाली मराठा शासक थे। ग्वालियर की राजसभा में सोहिरोबा को पधारने का निमन्त्रण मिला। महादजी के सेनापति जिवबा दादा सोहिरोबा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नाथ से अमित प्रभावित थे। उनकी साधुवृत्ति से परम मुग्ध थे। उनकी हार्दिक इच्छा था कि सोहिरोवा को ग्वालियर दरबार में महती ख्याति प्राप्त हो पर सन्त के जीवन में लोक-ऐश्वर्य का कोई महत्व ही नहीं है; सन्त-महात्मा तो आत्मानन्द के सागर में सदा मगन रहते हैं। जिववा दादा ने सोहिरोबा से प्रार्थना की कि सिंधिया एक अच्छे कवि हैं, वे आपको अपनी कविता दिखायेंगे, आप उनकी प्रशंसा करेंगे तो वे बहुत प्रसन्न होंगे। सोहिरोबा ने मौन-धारण कर लिया। वे राजसभा में उपस्थित हुए। सिंधिया ने अपनी कविता दिखायी। सोहिरोबा को राजप्रभाव अपने वश में नहीं कर सका। उन्होंने स्पष्ट कहा कि यह कविता मुझे तनिक भी पसन्द नहीं है; जिस कविता में भगवान का यश-वर्णन नहीं रहता है वह नितान्त तुच्छ, हेय और उपेक्षा की वस्तु है, वह वाणी असार और अपवित्र है जिसमें भगवद्रस नहीं रहता है। समस्त राजसभा सन्त सोहिरोबा की स्पष्ट और निर्भय उक्तिसे आश्चर्यचकित हो गयी। महादजी सिन्धिया अप्रसन्न हो उठे पर सोहिरोवा के कथन के विरुद्ध कुछ भी कहने की उनमें शक्ति नहीं थी, उनका राजमद उतर गया, वे पराजित हो गये। सोहिरोवा ने स्पष्ट कहा कि लोक-ऐश्वर्य से मुझे तनिक भी भय नहीं है, मेरी एक मात्र सम्पत्ति भगवान की परम ज्योतिमयी कृपा-दृष्टि है। सोहिरोबा नाथ ग्वालियर से उज्जैन गये; एक मठ की स्थापना कर उज्जैन में ही एकान्त-सेवन और भगवद्-भजन करने लगे।

सन्त सोहिरोबा नाथ महाराष्ट्र की बहुत बड़ी अध्यात्म-शक्ति स्वीकार किये जाते हैं। उन्होंने सन्तमत की विजयिनी पताका फहरायी। गोविन्द के नामरसामृत-दान से उन्होंने असंख्य प्राणियों का सद्गति-विधान किया। उन्होंने कहा कि वाणी का शृंगार भगवान के नाम का स्मरण है। भगवान का नाम संकीर्तन भवभय का नाश कर देता है। भगवान का यश-चिंतन विजय पद और आत्मानन्द प्रदान करता है। उनकी वाणी में ज्ञान और भक्ति का समीचीन समन्वय हुआ है, निर्गुण और सगुण परमात्म-चिंतन से उन्होंने मराठी सन्तसाहित्य की विशेष रूप से श्रीवृद्धि की। उनके परमात्मा सर्वव्यापक होकर भी उनके हृदयदेवतारूप में अपना विशेष व्यक्तित्व रखते हैं – ऐसा उनकी भक्तिमयी वाणी से पता चलता है। उन्होंने राधा-कृष्ण के लीला-सम्बन्धी सरस शृंगारपूर्ण पदों की भी रचना की थी, एक पद में उनकी उक्ति है :

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'आनन्दे नाचे हा श्रीरंग।
वाजवी अनाहत सारंग॥
मोठा होताहे गजर।
नादें दुमदुमलें अंबर॥'

भगवल्लीला का चिंतन ही उनकी साधना का स्वरूप था। भगवन्नाम में उनका दृढ़ विश्वास था, अपरिमित श्रद्धा थी। उनकी उक्ति है कि निरन्तर अपने इष्ट राम के नाम का जप करना चाहिये, इससे स्वपद की प्राप्ति होती है और थकावट मिट जाती है, भक्ति, मुक्ति और विरक्ति में मन रमण करने लगता है, जगत के समस्त पदार्थों में मन अनासक्त हो उठता है, हृदय में निष्कामता आती है, अपने आपकी पहचान होती है, राम के नाम से ही आराम मिलता है। उन्होंने कहा कि हे भगवान, आप को छोड़ कर दूसरा कुछ भी अच्छा नहीं लगता है। विषय-सुख में रस नहीं है।

सोहिरोबा नाथ विद्वान सन्त थे पर साथ ही-साथ उनका अनुभव भी उच्च कोटि का था। उन्होंने वैराग्य परक अनेक ग्रन्थों की रचना की। उन्होंने अपने भीतर परम प्रकाशक सत्ता की खोज की। स्वयमेव साक्षीभूत परमात्मा के निरन्तर स्मरण पर उन्होंने अमित जोर दिया। उन्होंने कहा कि परमात्मा की परिव्याप्ति से शून्य यह शरीर केवल शवमात्र है, परमात्मा ही शरीर के चेतन अथवा प्राणतत्व हैं। इस लिये उनकी भक्ति जीव का स्वाभाविक धर्म ह। एक पद में उनकी स्वीकृति है:

'विसरूँ नको तो देव।'
जो साक्षीभूत स्वयमेव।'
.....
'म्हणे सोहिरा त्यावांचुनि हें शरीर केवल शव।
स्वयं प्रकाशक सत्ता ज्याची चालवि हे अवयव॥'

सोहिरोबा की वाणी में काव्यसौष्ठव और ब्रह्मानन्द का दिव्य दर्शन होता है। वे वाग्सिद्ध महात्मा थे। ..उनकी बहिन भी उनकी कृपा से मोक्षाधिकारिणी हो गयीं। उन्होंने सोहिरोबा के मुख से निकले पदों को लिपिबद्ध करने का भार अपने हाथ में लिया था।... उनकी श्रममयी तपस्या से सोहिरोबा की काव्यकृति का दर्शन सुलभ हो सका।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समाधिस्थ होने के तीन साल पहले ही वे अदृश्य होकर तपोमय जीवन बिताने लगे। सम्वत् १८४९ वि. की रामनवमी को वे ब्रह्मलीन हो गये। उस समय उनकी आयु अठहत्तर साल की थी। अन्तसमय में उनके दिव्य विचार थे कि हे भगवान, अनन्य भाव से मैं आप के ध्यान में संलग्न रहूँ, आप के ही रूप का रसिक होकर आप के स्वरूपभूत हो जाऊँ, आपके नामका सदा संकीर्तन कर परमानन्द रस में निमग्न रहूँ। सन्त सोहिरोबा अनुभवसिद्ध सन्त थे, विद्वान महात्मा और ज्ञानी तपस्वी थे।

रचना

अक्षय बोध में समाधिराज योग, अद्वैतयोग, वैराग्य योग और ज्ञान योग, सद्विवेक योग, विवेक योग, वोधलक्षण योग तथा मुक्तलक्षण योग का विवेचन है। महदनुभवेश्वरी, पूर्णाक्षरी, अद्वयानन्द और सिद्धान्त संहिता–सिद्धान्त सविता सन्त सोहिराबा के अन्य प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं।

वाणी

बोल रे नाम गोविंदाचें।
तनु मनधन ते जाणुनि अंतरी।
घोष करी कां निशिदिनि वाचे।
नाम़स्मरणीं भवभय हरणीं।
विजय पद निज सुखाचें।
सोहिरा म्हणे नाहीं मीतूं पण।
हरेल भान विषयसुखाचें॥

भगवान गोविन्द का नाम बोलिये। तन, मन और धन से अपने हृदय में निरन्तर इसी का विचार करना चाहिये, इसी को सर्वस्व समझिये। व्यर्थ रात-दिन बक-बक करने से कुछ भी लाभ नहीं है; भगवान का नाम-स्मरण करने से भवभय मिट जाता है। समस्त सुख-विभूति मिलती है। केवल मुझे ही नहीं, आपको भी इसी भगवन्नाम का आश्रय ग्रहण करना चाहिये, इससे सांसारिक विषय-सुख का मिथ्या मान नष्ट हो जाता है।

वंदियला भगवन्त।
तो म्यां वंदियला भगवन्त॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भवसिंधु तारक निजसुख कारक।
सकलां आदि अंत॥
सज्जन-रञ्जन अलख निरञ्जन।
भक्तजनां कृपावंत॥
वेद झाले मुके, शेष न स्तवूं शके।
ज्याचें स्वरूप अनंत॥
नव्हे नरनारी, गैबी सूत्रधारी।
हालवि जो जीव जंत॥
सोहिरा म्हणे अनुभवीं। पाहणें चित्सुखवप्रवसंत॥

मैंने भगवान की वन्दना की। भगवान भवसिंधु से तार देते हैं, आत्मानन्द प्रदान करते हैं। वे ही सब के आदि अन्त हैं। सज्जनों का रञ्जन करनेवाले अलखनिरञ्जन हैं। भक्तों पर कृपा करते हैं, वेद उनके यशवर्णन में मूक हो जाते हैं, शेष स्तुति करने में असमर्थ हैं। वे अनन्त हैं। गुरु गहिनी नाथ को प्रणाम कीजिये। सोहिरा का अनुभव है कि भगवान दिव्य आनंद देते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्त सहजोबाई

सुंदर सतगुरु यों कह्या, सकल सिरोमनि नाम।
ताकों निसुदिन सुमरिये, सुख सागर सुखधाम॥

—सन्त सुन्दरदास

सन्त सहजोबाई महात्मा चरणदास के सन्तमत, ज्ञान-भक्ति-वैराग्य-मूलक सिद्धान्त की व्याख्याकार थीं। उन्होंने आजीवन अपने गुरु के पदचिह्नों पर चल कर प्रेममय परम तत्व—परमात्मा की उपासना की। सहजो बाई ने गुरु-भक्ति का अपनी रचनाओं में बहुत सुन्दर आदर्श उपस्थित किया है। अपने सहज प्रकाश ग्रन्थ में उन्होंने गुरुतत्व की जो व्याख्या की है, गुरु के प्रति जो निष्ठा प्रकट की है वह मौलिक और नितान्त मर्मस्पर्शी है। सन्त साहित्य में मीरा की ही तरह नारीसन्तों में उन्हें अमित महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। उनका जीवन पूर्ण वैराग्यमय था, वे ब्रह्मज्ञानी थीं, ज्ञानयोगिनी थीं।

वे विक्रम की अठराहवीं शती में वर्तमान थीं। ऐसा कहा जाता है कि उनका जन्म सम्वत् १७४० वि. के लगभग हुआ था। चरणदास की ही तरह उनका भी जन्म ढूसर कुल में हुआ था। उनके पिता का नाम हरिदास था। वे भगवद्-भक्त और सीधे-सादे स्वभाव वाले गृहस्थ थे। पिता के सद्गुणों तथा विनम्रता से ही सहजोबाई का जीवन अध्यात्म की ओर बढ़ने लगा। बचपन से ही उनमें वैराग्य का उदय हुआ। विवाह का प्रस्ताव उपस्थित होने पर उन्होंने स्पष्ट कहा कि मैं विवाह नहीं करूँगी। भगवान की कृपा से यह शरीर मुझे हरि-भजन के लिये मिला है। उन्होंने आजीवन कुमारी रह कर ब्रह्मचर्यमय जीवन बिताने का संकल्प किया। वे बहुत दिनों तक अपने जन्म स्थान— राजस्थान के मेवात प्रान्त के डेहरा ग्राम में ही निवास करती रहीं। उनके समकालीन सन्त चरणदास जी महाराज उन दिनों दिल्ली में निवास कर लोगों को सत्संग और भगवद्भक्ति का सुख प्रदान कर रहे थे। चरणदास सहजोबाई के जन्म-स्थान डेहरा के ही रहने वाले थे। सहजोबाई को कोई अदृश्य शक्ति बार-बार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दिल्ली जाकर चरणदास के चरण में सर्वस्व-समर्पण कर देने के लिये प्रेरित कर रही थी। वे उनके दर्शन के लिये चल पड़ीं। उनका मन बार-बार यही सोच रहा था—उनकी उक्ति है, कि जिसे लोक-परलोक की वासना नहीं है वह ब्रह्म स्वरूप है; जिस प्रकार लहर को सागर में ही समाना पड़ता है इसी प्रकार आत्मा परमात्मा में लीन हो जाता है। वे अपने सद्गुरु से मिलने जा रही थीं;

'जाकी गुरु में वासना सो पावै भगवान।
सहजो चौथे पद वसे, गावत वेद-पुरान॥'

उन्होंने महात्मा चरणदास के चरण पर मस्तक नत कर कहा कि मुझे भवसागर से पार उतारिये, मेरा इस संसार में आप के सिवा कोई नहीं है। चरणदास जी महाराज के आश्रम में रह कर साधना करने लगीं। वे सदा अपने गुरु के सम्मुख निवेदन करती रहती थीं।

'अब तुम अपनी ओर निहारो।
हमरे औगुन पै नहिं जावो, तुमहीं अपना बिरदसम्हारो॥
जुग-जुग साख तुम्हारी ऐसी, वेद-पुरानन गाई।
पतित उधारन नाम तिहारो, यह सुन के मन दृढ़ता आई॥
मैं अजान तुम सब कछु जानो, घट घट अंतर जामी।
मैं तो चरन तिहारे लागी, हौकिरपाल दयालहि स्वामी॥
हाथ जोरि के अरज करत हौं, अपनाओ गहि बाँहीं।
द्वार तिहारे आय परी हौं, पौरुष गुन मोमें कछु नाहीं॥
चरनदास सहजिया तेरी, दरसन की निधि पाऊँ।
लगन लगी और प्रान अड़े हैं, तुमको छोड़ि कहो कित जाऊँ॥'

महात्मा चरणदास सहजोबाई की निष्ठा से बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने मन्त्र दिया, उनको दीक्षित कर शिष्य रूप में स्वीकार कर लिया। सहजोबाई ने स्वीकार किया है कि कान में मन्त्र का शब्द पड़ते ही अज्ञान मिट गया, हृदय में प्रकाश आ गया, संसार का नश्वर रूप समझ में आ गया। मुझे सद्गुरु ने तत्व का दर्शन करा दिया। मैंने आत्मज्ञान के सहारे ब्रह्मानन्द में, परमात्मा के प्रेम-राज्य में प्रवेश किया।

वे आत्मानुसंधान में लग गयीं, यही उनका सबसे बड़ा काम था। उन्हें ज्ञान हो गया कि यह शरीर पानी के बुलबुले के समान है इसलिये प्रियतम

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परमात्मा से मिलने का उपाय कर लेना ही जीवन की सार्थकता है। भगवान के भजन में ही परम सुख है। उन्होंने अनुभव किया :

'सब घट व्यापक राम हैं, देही नाना भेष।
राव रंक चाण्डाल घर, सहजो दीपक एक।'

सहजोबाई ने सचराचर में अपने आराध्य की छवि देखी, ज्योति पायी। सहजोबाई ने भगवच्चिंतन का स्वरूप प्रेममय स्वीकार किया, भगवत्प्रेम की उपलब्धि उन्होंने आत्मज्ञान अथवा आत्मसाक्षात्कार के द्वारा सुलभ बतायी। निर्गुण-सगुण दोनों पक्ष पर उन्होंने पद रचे। दोनों की उपासना परम मधुर और रसमयी समझी। अपने गुरु चरणदास की ही तरह वृन्दावन-विलासी श्रीकृष्ण में उनकी बड़ी भक्ति थी, वे श्रीकृष्ण की मधुर लीलाओं की गायिका थीं, उन्होंने उनकी लीलाओं का चिंतन प्रेम और ज्ञान दोनों के स्तर पर किया उन्होंने बताया :

'नाम नहीं, औ नाम सब, रूप नहीं, सब रूप।
सहजो सब कुछ ब्रह्म है, हरि परगट हरि गूप॥'

अपने गुरु की कृपा से उन्होंने जीवन में अनेक बार भगवान की लीलाओं का साक्षात्कार किया। उनकी उक्ति है कि नन्द और यशोदा के भाग्य धन्य हैं, वृन्दावन की भूमि परम सौभाग्यवती है कि निरञ्जन ब्रह्म ने ग्वाल वेष में उन को धन्य किया।

'धन्य जसोदा, नन्दधन, धन ब्रजमण्डल देस।
आदि निरञ्जन सहजिया, भयो ग्वाल के भेस॥'

भगवान कृष्ण के रास का भी उन्होंने सजीव वर्णन किया है, उनके मुकुट की लटक, नृत्य, चाल, नूपुरध्वनि आदि में उन्होंने परमानंद रस की अनुभूति की।

सहजोबाई के जीवन में गुरुनिष्ठा का अद्भुत प्रभाव था। उनकी गुरु-भक्ति असाधारण थी। उन्होंने कहा है कि यदि मुझे हरि को छोड़ना पड़े तो मैं बड़ी प्रसन्नता से छोड़ सकती हूँ पर गुरु का त्याग मेरे लिये किसी भी स्थिति में सम्भव नहीं है। हरि तो जन्म देते हैं पर गुरु जन्म-मरण से मुक्त कर देते हैं। गुरुने मुझे आत्मदीपक दिया और मैंने उस दीपक के प्रकाश में आत्म साक्षात्कार कर लिया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गुरुनिष्ठा और भगवद्रस-अनुभूति के गान में ही उनकी साधना का दर्शन होता है। सहजो बाई ने सन्त साहित्य की श्रीवृद्धि में महान योग दिया। उनका 'सहज प्रकाश' ग्रन्थ संत-साहित्य को एक बहुत बड़ी देन है, यह ईश्वर की कृपा से ही विस्तार पा सका। सहजो बाई ने सम्वत् १८०० वि. में इसकी रचना की, उनकी उक्ति है:

'फाग महीना अष्टमी, सुकल पाख बुधवार।
संवत अठारह सै हुते, सहजो कियो विचार॥
गुरु अस्तुति के करन कूं, बाढ्यो अधिक हुलास।
होते होते हो गई, पोथी 'सहज प्रकास'॥'

'सहज प्रकाश' में गुरुनिष्ठा, आत्मचिंतन और भगवद्भक्ति तथा साधना के विभिन्न अंगों पर प्रकाश डाला गया है। दयाबाई एक उच्च कोटि की योगिनी थीं, चरणदास की शिष्य थीं, सहजो बाई से उनका घनिष्ठ सम्पर्क था। दोनों एक दूसरे की साधना से प्रभावित थीं। सम्वत् १८२० वि. के लगभग सहजो बाई ने चोला छोड़ा। उनका जीवन धन्य था, वे ज्ञानयोगिनी थीं, प्रेमोपासिका थीं।

रचना

'सहज प्रकाश' सहजो बाई की प्रसिद्ध रचना है।

वाणी

परमेसुर सू गुरु बड़े, गावत वेद पुरान।
'सहजो' हरि के मुकति है, गुरु के घर भगवान॥
गुरु आज्ञा मानै नहीं, गुरुहि लगावै दोष।
गुरु निन्दक जग में दुखी, मुए न पावै मोष॥
चिउँटी जहाँ न चढ़ि सकै, सरसों ना ठहराय।
सहजो कूं वा देस में, सतगुरु दई बसाय॥
जो आवै सतसंग में जाति बरन कुल खोय।
सहजो मैल कुचैल जल, मिलै सु गंगा होय।
साध असंगी संग तजै, आतम ही को संग॥
बोध रूप आनन्द में, पियै सहज को रंग॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हरि हरि जपलेनी, औसर बीतो जाय।
जो दिन गये सो फिरि नहिं आवैं, कर विचार मन लाय॥
या जग बाजी साँच न जानो, तामें मत भरमाय।
कोई किसी का है नहिं बौरे, नाहक लियो लगाय॥
अंत समय कोई काम न आवै, जब जम लेहि बोलाय।
चरनदास कहैं सहजो बाई, सत संगत सरनाय॥

जग में कहा कियो तुम आय।
स्वान जैसो पेट भरि के, सोयो जनम गँवाय।
पहर पछिले नाहिं जागो, कियो न सुभ करम।
आन मारग जाय लागो, लियो न गुरु धरम।
जप न कीयो तप न साधो, दियो न तैं दान।
बहुत उरझे मोह-मद में, आपु काया मान।
देह घर है मौत का रे, आन काढ़े तोहि।
एक छिन नहिं रहन पावै, कहा कैसो होहि।
रैन दिन आराम ना, काटै जो तेरी आव।
चरनदास कहैं सुन सहजिया, करौ भजन उपाव॥

परो मन हरि गुन गावन बान।
बिनु गोपाल और जो भाखो, तो तोहिं गुरु की आन।
वेद माहिं ब्रह्मा मुनि गावैं, शंकर सींगी माहिं।
शेष सहस मुख निसदिन गावें, समय विचारत नाहिं।
वीण लिये नारद मुनि गावैं, गावें व्यास विचारि।
गणपति सारद गान करत हैं, गन्धरब सभी पुकारि।
गुणानुवाद गावत प्रभु-दरसन बढ़ै भगति को भाव।
सुखदेव गावत चरणदास ही, सहजो को भी चाव॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्त गुलाल साहब

करैं अब कौन बहाना, गवन हमरा नगिचाना ।।
सब सखियन मेरी चूनरमैली, दूजे पिया-घर जाना ।
तीजे डर मोहिं सास-ननद का, चौथे पिया दैहे ताना ।।
प्रेम नगर की राह कठिन है, वहाँ रंगरेज सियाना ।
एक बोर दे दियो चुनरी में, तासों पिय पहिचाना ।।
राह चलत सतगुरु मिले 'बहजन', उनका है नाम बखाना ।
मेहर भई उनकी जब मोपर, तब ही लगी ठिकाना ।।

—संत बहजन

सत्तनामी सन्तों में गुलाल साहब की परिगणना बड़े आदर और श्रद्धा से की जाती है। उन्होंने अपनी साधनामयी अनुभूतियों का बड़े रोचक ढंग से सरस भाषा में वर्णन किया है। वे विक्रम की अठारहवीं शती के उत्तरार्ध में विद्यमान थे। उस समय दिल्ली में औरंगजेब तथा उसके उत्तराधिकारी सिंहासनारूढ़ थे। गुलाल साहब ने शान्ति और प्रेम का सन्देश दिया, आत्मज्ञान का दीपक प्रज्वलित कर अध्यात्म पथ पर चलने वालों को प्रकाश प्रदान किया। राजनैतिक और ऐतिहासिक दृष्टि से समय अशान्तिमय था पर सन्तों ने तथा तत्कालीन महात्माओं ने जनता को संतुष्ट, शान्त और सुखी रखने का सत्प्रयत्न किया। गुलाब साहब ने घोषणा की कि बिना हरि-भजन के भवसागर से पार उतरना कठिन है, सुर, नर, मुनि, नाग सबके लिये भगवद्भजन की आवश्यकता है। उनकी उक्ति है:

'सुर नर नाग मनुष औतार, बिनु हरि भजन न पावहिं पार।'

गुलाल साहब ने कहा कि अपने भीतर ही राम हैं, उनका दर्शन अपने आप में ही करने की आवश्यकता है। राम ही परमानन्द-सागर और कल्याण कल्पतरु हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत्तर भारत के गाजीपुर जनपद के बँसहरि मण्डल के भुरकुड़ा ग्राम में एक प्रतिष्ठित क्षत्रिय कुल में सम्वत् १७५० वि. में महात्मा गुलाल साहब ने जन्म लिया था। वे साधारण जमींदार थे, खेती से गृहस्थी चलाते थे। साधु-सन्तों की सेवा में बड़ी निष्ठा थी।

उनको बुलाकी राम एक हलवाहे ने अध्यात्म के पथ में लगाया। बुलाकी राम उनके घर पर खेती करते थे। एक दिन वे खेत में हल चला रहे थे। गुलाल साहब उनके कार्य का निरीक्षण करने गये हुए थे। उन्होंने देखा कि बुलाकी राम ने खेत जोतना बन्द कर दिया है, बैल खेत में हल में नधे खड़े हैं। उन्होंने बुलाकी राम को आवाज दी पर वे ध्यानमग्न थे। गुलाल साहब ने समझा कि काम से जी चुरा कर बुलाकी राम मेड़पर बैठ कर आराम कर रहे हैं, उनकी पीठ पर जोर से लात मारी, बुलाकी राम का ध्यान भंग हो गया, गुलाल साहब ने देखा कि बुलाकी राम के हाथ से दही मेड़ पर छलक गया है; वे आश्चर्य चकित हो गये। उन्होंने बुलाकी राम से कारण पूछा। बुलाकी राम ने भयभीत होकर कहा कि मालिक! भूल हो गयी, काम रुक गया, भविष्य में ऐसा फिर कभी नहीं होगा। मैं सन्तों की सेवा में लग गया था, सब सामग्री यथास्थान रख दी थी; दही परोस रहा था तब तक आप आ गये। गुलाल साहब बुलाकी राम के चरणों पर गिर पड़े। उनके रोम-रोम सिहर उठे। उन्होंने कहा कि अब इस खेती को छोड़ कर अध्यात्म की खेती का तरीका बताइये। गुलाल साहब ने कहा कि मैं आप से यही वरदान माँगता हूँ कि संत के चरण में मेरी भक्ति हो। बुलाकी राम ने उनको दीक्षित कर अपना शिष्य बना लिया, गुरुतत्व का बोध कराया। गुलाल साहब की उक्ति है:

'अविगत जागल हो सजनी।
खोजत-खोजत सतगुरु पावल, ताहिचरनवाँ चितवा लागल हो सजनी।
साँझि समय उठि दीपक बारल, कटल करमवामनुवाँ पागल हो सजनी।
चललि उबटि-बाट छुटलि सकलघाट, गरजि गगनवा अनहद बाजल हो सजनी॥
गइली अनंदपुर भइली अगमसूर, जितली मैदनवाँ नेजवा गाड़ल हो सजनी।
कहै 'गुलाल' हम प्रभु जी पावल, फरल लिलखा पपवा भागल हो सजनी॥'

बुलाकी राम ही प्रसिद्ध संत बुल्ला साहब थे। उन्होंने भुरकुड़ा में रह कर गुलाल साहब आदि शिष्यों को भगवन्नाम की महिमा तथा सत्संग आदि का तत्व समझाना आरम्भ किया। गुलाल साहब गृहस्थ -भेष में ही रह कर साधना

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करने लगे। उन्होंने सन्त सद्गुरु की कृपा प्राप्त की, संसार की आसक्ति मिट गयी, मन स्वस्थ हो गया। गुलाल साहब अपना सर्वस्व गुरु के चरणों पर समर्पित कर निश्चिंत हो गये। उनकी उक्ति है:

'सतगुरु किरपा अगम भयो हो, हिरदय बिसराम।
अब हम सब बिसरावल हो, निस्चय मन राम॥'

उन्होंने स्वीकार किया है कि भयंकर नदी के किनारे मैं नाव पर चढ़कर पार उतरना चाहता था, वातावरण मेरे अनुकूल नहीं था पर सत्गुरु ने कृपा की, उन्होंने मुझे परम प्रेमास्पद परमात्मा के चरण तक पहुँचा दिया। सन्त गुलाल साहब नाम मार्गी थे, उनकी रचनाओं में नाम-महिमा भरी पड़ी है।

बुल्ला साहब के प्रसिद्ध शिष्य जगजीवन साहब ने सत्तनाम का प्रचार किया; उनके दूसरे गुरुमुख शिष्य गुलाल साहब ने भुरकुड़ा में शान्ति और सत्य की शीतल ज्योत्सना में भगवान के प्रेम की मन्दाकिनी प्रवाहित की। बुल्ला साहब के मूलसिद्धान्त-नामसाधना का प्रचार करना ही उनके जीवन का मुख्य उद्देश्य अथवा ध्येय था। गुलाल साहब की उक्ति है:

'गगन, मगन धुनि गाजे हो, देखि अधर अकास।
जन 'गुलाल' बँसहरिया हो, तहँ करहि निवास॥'

उन्होंने सदा अपने मन को राम-नाम का स्मरण करने की ही सीख दी। उनके लिये भगवन्नाम ही भगवत्तत्व था। भगवान के नाम का जप ही गुलाल साहब के भगवच्चिंतन का स्वरूप स्वीकार किया जा सकता है। उन्होंने भगवत्तत्व के सम्बन्ध में कहा है कि भगवान न तो 'उपजते' पैदा होते हैं, न उनका विनाश ही होता है; उन्हें चौरासी लाख योनि में चक्कर नहीं करना पड़ता है। वे नितान्त एक हैं; सत्गुरु हैं; अजर-अमर और अविनाशी हैं। न उनके बाप है; न माता है; उन्हें मोह-माया का बन्धन नहीं सताता है; न उनके भोग हैं, न योग हैं; वे कहीं आते-जाते नहीं है। गुलाल साहब ने अनुभवी योगी की तरह सच्चिदानन्दघन ब्रह्मतत्व का आत्मदृष्टि से समीचीन विश्लेषण किया; भगवान के सत्स्वरूप की साधना में वे निरन्तर लगे रहते थे। उनका एक अत्यन्त मार्मिक पद है:

'लागलि नेह हमारी, पिया मोर॥
चुनि-चुनि कलियाँ सेज बिछावों, करों मैं मंगलाचार।
एकौ घरी पिया नहिं अइलैं, होइला मोहिं धिरकार॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आठो जाम रैन-दिन जोहौं, नेक न हिरदय बिसार।
तीन लोक कै साहब अपने, फरलहिं मोर लिलार॥
सत्त सरूप सदा ही निरखों, संतन प्रान-अधार।
कहैं 'गुलाल' पायों भरिपूरन, मौजे-मौज हमार॥'

निर्मल ज्ञान का विचार ही उनकी साधना का उन्नत क्रम था। उन्होंने अखण्ड ब्रह्म स्वरूप की दिव्यता की अनुभूति की। सन्त-साहित्य में गुलाल साहब को विशिष्ट स्थान प्राप्त है। उनकी वाणी परम मधुर, सतमयी और प्रेमतत्व से परिपूर्ण है। सन्तों में उनकी बड़ी निष्ठा थी। उनका कथन है कि संत-चरण-कमल की महिमा का बखान करना मेरे वश की बात नहीं है। सन्त और भगवान में तनिक भी अन्तर नहीं है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश सन्त के पीछे-पीछे चलते रहते हैं। सन्त के संग से नीच परम पद प्राप्त करता है।

सम्वत् १८१६ वि. में उन्होंने चोला-त्याग किया। सन्त गुलाल साहब अन्तिम समय तक लोगों को संसार का विनश्वर रूप समझाते रहे। वे परम गुरुभक्त, महान भगवन्निष्ठ और असाधारण तत्वज्ञानी थे।

रचना

गुलाल साहब की वाणी का एक संग्रह पाया जाता है।

वाणी

जनम सफल भैलो हो हम धन पिया की पियारी॥
सोरहो सिंगार संपूरन पहिरल, देखल रूप निहारी।
तंत्त तिलक दे मांग संवारल, बिनवल अंचरा पंसारी॥
आठ पहर धुनि नौबत बाजे, सहज उठै झनकारी।
रीझि-रीझि निवछावर वारों, मुक्ता भरि-भरि थारी॥
गगन मण्डल में परम पद पावल, जमहिं कइल धरि छारी।
जन 'गुलाल' सुहागिन पिय संग, मिललो भुजा पसारी॥

नदिया भयावनी, कैसे चढ़ौ मैं बेरे।
घाट न चलत, बाट नहिं पायों, संगी सुभग घनेरे।
दरब नहीं कछु हासिल देना, उतरल चहों सबेरे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुमिरों चरन सतगुरु गोविन्द, प्रेम-प्रीति हिय लेरे।
ठौर-ठौर घटवार ठिकाने, केलि गयो डेरे।
पायों घर मेटी सब संसा, संगी सकल छुटे रे।
दास 'गुलाल' दया सतगुरु की, निरभय है पद नेरे।

जो पै कोई प्रेम को गाहक होई।
त्याग करै जो मन की कामना, सीस दान दै सोई॥
और अमल की दर जो छोड़ै, आपु अपन गति जोई।
हरदम हाजिर प्रेम पियाला, पुलकि-पुलकि रस लेई॥
जीव पीव महँ पीव जीव महँ, बानी बोलत सोई।
सोई सभन महँ हम सबहन महँ, बूझत बिरला कोई॥
वा की गती कहा कोइ जानै, जो जिय साँचा होई।
कह 'गुलाल' वे नाम समाने, मल भूले नर लोई।

सो दिन लेखे जादिन संत मिलाहिं।
संत के चरन-कमल की महिमा, मोरे बूते बरनि न जाहिं॥
जल-तरंग जल ही ते उपजैं, फिर जल माहिं समाहिं।
हरि में साध, साध में हरि हैं, साध से अन्तर नाहिं॥
ब्रह्मा बिसुन महेस साध संग, पाछे लागे जाहिं।
दास 'गुलाल' साध की संगति, नीच परम पद पाहिं॥

राम के काम मोकाम नहिं करत नर, फिर संसार चहुँ ओर धाया।
करत संताप सब पाप सिर पर लिये,
साध और संत नहिं नेह लाया॥
बांधि है काल जंजाल जमजाल में, रहत नहिं चेत सब सुधि हेराया।
कहै 'गुलाल' जो नाम को जानि है, जीति है काल सोइ ज्ञान पाया॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्त भीखा साहब

राम भजहु लवलाइ प्रेम पद पाइया।
सफल मनोरथ होइ सत्तगुन गाइया॥
संत साध सों नेह न काहु सताइया।
कह 'गुलाल' हरिनाम तबहिं नर पाइया॥

—संत गुलाल साहब

सन्त के संग, शब्द और दृष्टि में अद्‌भुत आकर्षण होता है; एक बार क्षण भर के लिये भी जो प्राणी संत के सम्पर्क में आ जाता है उसका जीवन पुण्य मय हो उठता है; एक बार भी जिसका हृदय सन्त के शब्द -बाण से घायल हो जाता है वह परमात्मा के रस का आस्वादन करने में समर्थ हो जाता है, सन्त की दृष्टि यदि किसी पर पल भर के लिये भी पड़ जाती है तो उसका सांसारिक बन्धन टूट जाता है। सन्त भीखा साहब का जीवन इसी प्रकार गुलाल साहब के संग, शब्द और दृष्टि से बदल गया था। भीखा साहब उच्च कोटि के अनुभवी संत थे, उन्होंने आजीवन रामनाम की उपासना की। वे विक्रम की अठारहवीं सदी के उत्तरार्ध और उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्ध में विद्यमान थे। उन दिनों दिल्ली में मुगलों की राजसत्ता थी। औरंगजेब और उसके उत्तराधिकारियों का समय था। राजनैतिक स्थिति संतोष जनक नहीं थी। केन्द्रीय राजशक्ति दिन-प्रति-दिन कम जोर होती जा रही थी। ऐसे वातावरण में भीखा साहब ने रामनाम के प्रकाश से लोगों को चैतन्य और सावधान किया। इस समय के साहित्य-महारथी भी रीतिकारिता और शृंगार का ही वरण कर रहे थे, केवल सन्त-आन्दोलन ही लोगों को घोर निराशा के अन्धकार से बाहर कर आध्यात्मिक क्रांति की ओर ले जा रहा था। सत्तनामी सन्तों, जगजीवन, गुलाल, भीखा आदि ने इस पुण्य कार्य के सम्पादन में असाधारण योग्यता दिखायी। भीखा साहब ने सन्त-मत का प्रचार किया सन्त भीखा साहब का जन्म सम्वत् १७७० वि. के लगभग उत्तर भारत के आजमगढ़ जनपद के मुहमदाबाद मण्डल के खानपुर बोहना

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ग्राम में चौबे ब्राह्मण कुल में हुआ था। वे बचपन से ही सरल स्वभाव के थे, खेल-कूद में उनका मन तनिक भी नहीं लगता था। गाँव में साधु-सन्त आते थे तो उन्हीं के पीछे लग जाते थे। सात-आठ साल की ही अवस्था से उन्हें सन्तों का संग सुलभ होने लगा। धीरे-धीरे उनके मन में वैराग्य की भावना दृढ़ होने लगी। बारह साल की अवस्था में उनका उपनयन-संस्कार सम्पन्न हुआ। माता-पिता ने उनको गृहस्थाश्रम में बाँधने की बड़ी चेष्टा की पर उन्हें तनिक भी सफलता नहीं मिली। उनके सम्मुख विवाह का प्रस्ताव रखा, वे मौन रहे, लोगों ने समझा कि वे विवाह के लिये प्रस्तुत हैं। तिलक-उत्सव के दिन बाजा बजने लगा, घर में मंगल-गान होने लगा, लोग रंग-बिरंगे कपड़े पहन कर आमोद-प्रमोद में मग्न हो रहे थे। भीखानन्द सोच रहे थे कि संसारवाले मेरे पैरों में बेड़ी-डालने जा रहे हैं, भाग निकलना ही मेरे लिये मांगलिक और हितकर है। वे बिना किसी को बताये घर से निकल पड़े। रामनाम में उनकी प्रीति बढ़ गयी। वे सतगुरु की खोज में काशी के लिये चल पड़े। उन्होंने काशी में निवास कर कुछ दिनों तक विद्याध्ययन किया पर उनकी आध्यात्मिक प्यास नहीं मिट सकी, गुरु नहीं मिल सके। अध्ययन समाप्त कर वे घर लौट रहे थे। वे भगवान से मन ही-मन प्रार्थना कर रहे थे कि मुझे सद्गुरु की प्राप्ति हो जाय।

उस समय गाजीपुर जनपद के भुरकुड़ा ग्राम में सन्त गुलाल साहब लोगों को अपने सत्संग से लाभ पहुँचा रहे थे। वे उच्च कोटि के महात्मा थे। उनका पद लोग बड़े प्रेम से गाया करते थे। दैवयोग से लौटते समय भीखानन्द चौबे भुरकुड़ा के निकट अमुआरा ग्राम में ठहर गये, उस गाँव के देव मन्दिर में वे दर्शन करने गये थे, उन्होंने गुलाल साहब का एक पद सुना, कोई व्यक्ति प्रेम से गा रहा था, सन्त के शब्द थे, भीखानन्द पद सुनते ही मुग्ध हो गये। उनके हृदय में गुलाल साहब के शब्द-बाण चुभ गये। वे उनसे मिलने के लिये भुरकुड़ा की ओर चल पड़े। उस समय गुलाल साहब सत्संग कर रहे थे। नयन चार हुए। दोनों एक दूसरे की ओर आकृष्ट हो गये। भीखानन्द ने निवेदन किया :

'मोहि राखो जी अपनी सरन ॥
अपरम्पार पार नहिं तेरो, काह कहौं का करन।
मन क्रम वचन आस इक तेरी, होउ जनम या मरन ॥
अविरल भक्ति के कारन तुम पर, ह्वै बाम्हन देउं धरन।
जन 'भीखा' अभिलाख इही, नहिं चहौं मुक्ति गति तरन ॥'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गुलाल साहब ने उनको मन्त्र देकर शिष्य बना लिया; भीखानन्द संत भीखा साहब के नाम से प्रसिद्ध हुए। वे भुरकुड़ा में गुरु गुलाल साहब के ही पास रह कर साधना करने लगे। धीरे-धीरे उनकी प्रसिद्धि बढ़ने लगी। गुलाल साहब के चोला-त्याग के बाद भीखा साहब ही उनके उत्तराधिकारी हुए।

वे आजीवन राम-नाम की माला फेरते रहे। उनकी चितवृत्ति उत्तरोत्तर अन्तर्मुखी होती गयी। सिद्धि उनके चरणों की परिक्रमा करने लगीं। बड़े-बड़े सन्त-महात्मा उनके सत्संग में सम्मिलित होने लगे। भुरकुड़ा उनकी कृपा से सन्तों के लिये तीर्थक्षेत्र बन गया।

भीखा साहब सिद्ध सन्त थे। एक बार उनके आश्रम में एक साधु आया। उसने भीखा साहब से जलपान के लिये मथुरा का पेड़ा और त्रिवेणी का जल माँगा। भीखा साहब उसकी बात सुन कर मौन हो गये। साधु ने चमत्कार दिखाया, उसने उपस्थित लोगों को मथुरा के पेड़े खिलाये और त्रिवेणी का जल पिलाया। भीखा साहब ने अपने लिये माँगा, साधु चेष्टा करते-करते थक गया, उसकी सिद्धि निष्फल हो गयी, वह उन्हें नहीं दे सका और लज्जित होकर चरणों पर गिर कर क्षमा माँगी।

उनके समकालीन प्रसिद्ध औघड़ सन्त कीनाराम भी उनसे मिलने भुरकुड़ा आये थे। उन्होंने भीखा साहब पर अपनी सिद्धियों का प्रभाव डालना चाहा पर वे भी निष्फल ही रहे। ऐसा कहा जाता है कि औघड़ कीनाराम ने भीखा साहब से मदिरा माँगी, सन्त भीखा साहब ने अस्वीकार किया, औघड़ ने पानी को मदिरा बना दिया पर भीखा साहब ने जब स्वयं जल पीना चाहा तो उन्हें स्वच्छ जल मिला, उनकी सिद्धि ने सन्त के सामने पराजय स्वीकार कर ली। सन्त तो सिद्धियों से दूर भागते हैं, वे तो परमात्मा के भजन को ही समस्त सिद्धियों का मूल समझते हैं।

भीखा साहब का सबसे बड़ा सिद्धान्त यह था कि जो राम का भजन नहीं करता है उसे कालरूप समझना चाहिये। उनका पद है :

'प्रीति की यह रीति बखानो ॥
कितनो दुख, सुख परै देह पर, चरन-कमल ध्यानो।
हो चैतन्य बिचारि तजो भ्रम, खाड़ धूरि जनि सानो ॥
जैसे चातक स्वाति-बूंद बिनु, प्रान समरपन ठानो।
'भीखा' जेहि तन राम-भजन नहिं, कालरूप तेहि जानो ॥'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हरिनाम में उनका अटल विश्वास था, नामचिंतन ही उनकी साधना का स्वरूप स्वीकार किया जाता है। आत्मा-राम को ही उन्होंने अपना प्रेमास्पद समझा, धनधाम और सुख-दुख की अनासक्ति के त्याग का आजीवन उपदेश दिया। उन्होंने सीख दी:

'भीखा' सबते छोट होइ, रहै चरन लवलीन।
रामरूप को सो लखै, जो जन परम प्रबीन॥'

उन्होंने आत्मस्थ परमात्मा की पूजा को ही सर्वश्रेष्ठ धर्म बताया। उन्होंने कहा कि आत्मारामब्रह्म ही घट-घट में व्याप्त है। भीखा साहब की स्वीकृति है:

'राम भजै सो धन्य, धन्य वपु मंगलकारी।
रामचरनअनुराग परम पद को अधिकारी॥'

भगवान के चरणों में उनकी दास्यभक्ति थी। भीखा साहब ने सीधी-सादी रसमयी भाषा में जीवात्मा, जगत, ब्रह्म, परमात्मा आदि के स्वरूप का अपनी रचनाओं में विश्लेषण किया है। भीखा साहब के शिष्यों में गोविंद साहब प्रमुख थे। उत्तर प्रदेश के पूर्वी जनपदों में उनके अनुयायी अधिक संख्या में पाये जाते हैं।

सन्त भीखा साहब ने सम्वत् १८२० वि. में चोला-त्याग किया। उनकी स्मृति में विजयादशमी को भुरकुड़ा में बहुत बड़ा उत्सव मनाया जाता है। वे अनुभवी सन्त और आत्मज्ञानी थे।

रचना

'राम जहाज', 'राम राग', राम सबद', आदि संत भीखा साहब की प्रसिद्ध रचनायें हैं।

वाणी

मन तुम रामनाम चित धारो।
जो निज कर अपनी भल चाहो, ममता मोह बिसारो॥
अंदर में परपंच बसायो, बाहर भेख संवारो।
बहु विपरीति कपट चतुराई, बिन हरि भजन बिकारो॥
जप तप मख करि विधि विधान, जत तत उदवेग निवारो।
बिन गुरु लच्छ सुदृष्टि न आवे, जनम मरन दुख भारो॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ग्यान ध्यान उर करहु धरहु दृढ़, सवद सरूप बिचारो।
कह 'भीखा' लवलीन रहो उत, इत मति सुरति उतारो॥

देखो प्रभु, मन कर अजगूता।
राम को नाम सुधासम छोड़त विषयारस ले सूता॥
जैसे प्रीति किसान खेत सों दारा धन औ पूता।
ऐसी गति जो प्रभु पद लावै सोई परम अवधूता॥
सोई जोग जोगेसुर कहिये जा हिये हरि हरि हूता।
'भीखा' नीच ऊँच पद चाहत, मिलै कवन करतूता॥

अस करिये साहब दाया॥
कृपा कटाच्छ होइ जेहितें प्रभु, छूटि जाय मन-माया।
सोवत मोह-निसा निस-बासर, तुमही मोहिं जगाया॥
जनमत मरत अनेक बार, तुम सतगुरु होय लखाया।
'भीखा' केवल एक रूप हरि, व्यापक त्रिभुवन राया॥

प्रभु जी करहु अपनो चेर।
मैं तो सदा जनम को रिनिया, लेहु लिखि मोहिं केर॥
काम क्रोध मद मोह लोभ यह, करत सबहिन जेर।
सुरनर मुनि सब पचि पचि हारे, परे करम के फेर॥
सिव सनकादि आदि ब्रह्मादिक, ऐसे-ऐसे ढेर।
खोजत सहज समाधि लगाये, प्रभु को लाम न नेर॥
अपरम्पार अपार है साहिब, ह्वै अधीन तन हेर।
गुरु प्रताप साध की संगति, छूटे सो काल अहेर॥
त्राहि त्राहि सरनागत आयो, प्रभु देखो यहि बेर।
जन भीखा को उरिन कीजिये, अब कागद जिनि हेर॥

मन में आनन्द फाग उठोरी।
इंगला पिंगला तारी देवै, सुख मन गावत होरी।
बाजत अनहद डंक तहाँ धुनि, गगन में ताल परो री।
सत संगति चोवा अबीरकरि, दृष्टि रूप लै घोरी।
गुरु गुलाल जी रंग चढ़ायो, भीखा नूर भरो री।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रसिक सन्त नागरीदास

मोहन चोर, पकरि कैसे पाऊँ।
देखति हौं दृग भरि-भरि सजनी, परसन को रहि-रहि ललचाऊँ॥
दुर्‌यो निकुञ्जलता वन वीथिन, निपट निकट में कहाँ बताऊँ।
'ललित माधुरी' ही मैं जी संग, चित चौरे हौं आनि मिलाऊँ॥

--संत ललितमाधुरी

नागरीदास परम रसिक सन्त थे। उन्होंने राजवैभव, ऐश्वर्य और सुख को तिलाञ्जलि देकर रसस्वरूप नन्द-नन्दन की केलिका आनन्द प्राप्त किया। विशाल राज्य पर लात मार कर रस-भूमि वृन्दावन में राधा-कृष्ण की लीला का गान किया। वे रससिद्ध सन्त थे, अलौकिक कवि थे, महान भगवद्भक्त थे। भगवान श्रीकृष्ण के चरणों में उनका उच्च कोटि का अनुराग था।

राजस्थान प्रान्त का कृष्णगढ़ राज्य इतिहासप्रसिद्ध है। इस राज्य की स्थापना सम्वत् १६६८ वि. में जोधपुर नरेश उदयसिंह के पुत्र कृष्णसिंह ने की थी। इस राज्य का संबन्ध दिल्ली की तत्कालीन केन्द्रीय राजसत्ता से बहुत घनिष्ठ था। कृष्ण गढ़ के राजाओं का मुगल बादशाह बड़ा सम्मान करते थे। कृष्णगढ़ के प्रायः सभी नरेश भगवद्भक्त थे। उनमें से अधिकांश वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी थे। ऐसे इतिहासप्रसिद्ध भगवदीय राजपरिवार में जन्म लेकर महाराज सावन्त सिंह अथवा नागरीदास ने व्रजरस का आस्वादन किया। उन्होंने अपनी समकालीन जन-चेतना को भागवत प्रेमतत्व से विशेष रूप से समृद्ध किया, उनकी उक्ति है:

रेलगनि को पैंड्यो न्यारो।
चातक स्वांति बूंद रुचि मानै, सरसरिता जल खारो।
नेह नगर की डगरन पावै नेमी अंध विचारो।
'नागरीदास' सीस बकसीसै तऊ नाहिं निखारो॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महाराज नागरीदास कृष्ण-भक्ति के विलक्षण मर्मज्ञ थे। उन्होंने कृष्ण-भक्तिरस की साधना की। मध्य काल के अन्तिम चरण के समस्त कृष्ण भक्ति के आचार्यों और सन्तों तथा महात्माओं के प्रति उन्होंने प्रगाढ़ निष्ठा का परिचय दिया। वे युगल-रूप-माधुरी के विशेषज्ञ थे।

महाराज नागरीदास का जन्म कृष्णगढ़ में सम्वत् १७५६ वि. में पौष कृष्ण द्वादशी को हुआ था। उनके पिता राजसिंह बड़े वीर और भगवद्भक्त थे। उनके उदात्त चरित्र का नागरीदास के पालन-पोषण पर बड़ा प्रभाव पड़ा। नागरीदास के पूर्वाश्रम का नाम सावन्तसिंह था। बचपन से ही वे विलक्षण प्रतिभा और वीरता से सम्पन्न थे। अपने कुलदेव कल्याणराय और नृत्य गोपाल के श्रीविग्रहों में उनकी विशेष अनुरक्ति थी। साधु-सन्तों को देखते ही हृदय प्रफुल्लित हो जाता था।

युवावस्था में प्रवेश करते ही भानगढ़ राज्य की राजकन्या से उनका विवाह कर दिया गया। गृहस्थाश्रम के सुख और राजवैभव में उनका मन तनिक भी नहीं लगता था। मृगया आदि से उनकी रुचि घटने लगी। वे कभी-कभी दिल्ली दरबार में भी जाया करते थे। बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं से उनका परिचय हो गया था पर राजसुख उन्हें कण्टक की तरह चुभता था।

उनका चित्त सदा वृन्दावन का चिंतन किया करता था। वे रात-दिन यही सोचा करते थे कि मैं नन्दनन्दन की केलि-भूमि—वृन्दावन का दर्शन कब करूँगा। उनकी कामना थी:

'कब वृन्दावन धरनि में, चरन परेंगे जाय।
लोटि धूरि धरि सीस पर, कछु मुखहूँ में खाय।'

उनके रोम-रोम से ध्वनि निकलती थी कि श्याम सुन्दर ने मेरा मन मोहित कर लिया। नयनों से नयन मिलते ही मैं उनका हो गया। अब उनके बिना कल ही नहीं पड़ता है, खान-पान में रुचि ही नहीं रह गयी है। प्रीति की वेदना बड़ी भयंकर होती है, कोई समझ ही नहीं पाता है।

महात्मा नागरीदास के पूर्वज रूपसिंह गोस्वामी विठ्ठल नाथ के पुत्र गिरिधर जी के तीसरे आत्मज गोपीनाथ जी के शिष्य थे। गोपीनाथ जी के पौत्र रणछोड़ जी नागरीदास के गुरु थे। नागरीदास की गुरुनिष्ठा उच्च कोटि की थी पर साथ ही-साथ वे हितहरिवंश और हरिदास स्वामी आदि के भक्ति-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सिद्धान्तों से भी प्रभावित थे। नागरीदास यात्रा आदि के समय अपने सेव्य 'नृत्यगोपाल' की प्रतिमा साथ रखते थे। वृन्दावन-निवास के पहले युद्ध -यात्रा में सदा भगवान श्रीकृष्ण की आराधना-उपासना का ध्यान रखते थे। कृष्ण के चरण का चिंतन ही उनका सर्वश्रेष्ठ और परम पवित्र कर्म था।

सम्वत् १८०४ वि. में वे दिल्ली गये हुए थे। बादशाह मुहम्मद शाह उनकी वीरता से बहुत प्रभावित हुए थे। बादशाह के निज सचिव घनानन्द जो बहुत बड़े रसिक कवि और कृष्णभक्त थे उनके घनिष्ट मित्र हो गये।

नागरीदास ने तीर्थयात्रा की। तीर्थयात्रा में उन्होंने बड़े-बड़े सन्त महात्माओं का दर्शन किया। तीर्थयात्रा में उनकी वृन्दावन के प्रति विशेष अनुरक्ति बढ़ गयी। सम्वत् १८०९ वि. के लगभग वे कमाऊँ के युद्ध से लौट रहे थे। वृन्दावन होते हुए कृष्ण गढ़ लौटना उन्होंने उचित समझा। यमुना तट पर पहुँचते-पहुँचते रात हो गयी। चारों ओर घोर अन्धकार छाया था। नदी पार कर वृन्दावन जाने के लिये कोई उपाय न दीख पड़ा। नाववाले घर चले गये थे। उधर भगवान की आरती हो रही थी। महाराज सावन्तसिंह नागरीदास ने विचार किया कि शरीर तो क्षणभंगुर है, प्राण के जाने का समय भी निश्चित नहीं है, इसलिये यदि शरीर और प्राण का भगवान श्रीकृष्ण के दर्शन के लिये उपयोग हो तो कितना अच्छा है। वे भगवान की आरती का दर्शन करने के लिये इतने आतुर हो गये कि यमुना में कूद कर पार होना ही उन्हें सुगम दीख पड़ा। वे क्षणमात्र में कालिन्दीकी धारा में कूद पड़े और भगवान की कृपा से उनकी आरती का दर्शन किया। व्रज से नागरीदास कृष्ण गढ़ लौट गये। व्रज के रसिक सन्तों के सत्संग से वे इतने मुग्ध हुए कि उन्होंने राजकार्य का परित्याग कर वृंदावन में ही रहने का निश्चय किया।

नागरीदास की अनुपस्थिति में उनके भाई बहादुरसिंह ने राज्य पर अधिकार कर लिया था। नागरीदास ने मरहठों की सहायता से कृष्णगढ़ राज्य को अपने अधीन कर लिया पर अपने भाई के विश्वासघात से वे इतने क्षुब्ध हो गये थे कि राज्य के प्रति उनकी आसक्ति समाप्त हो गयी। उन्होंने अपने पुत्र सरदारसिंह को राज्य प्रदान कर व्रज के लिये प्रस्थान किया। उनकी चित्तवृत्ति गृहकलह से अशान्त हो गयी थी। उन्होंने विचार किया कि कलह सुख के लिये शूल है, कलह का मूल राज्य है। इस प्रकार राज्य का परित्याग कर उन्होंने कृष्णभक्ति के साम्राज्य–प्रेमराज्य वृन्दावन में प्रवेश किया। उन्होंने अपनी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मनोदशा का वर्णन करते हुए कहा है कि मैं अपने मूढ़ मन से रात-दिन भयभीत रहता हूँ कि कहीं ऐसा न हो कि वह वृन्दावन से विमुख हो जाय। वृन्दावन में उनकी उपपत्नी बनीठनी–'रसिकविहारिणी' विरक्त भाव से साथ थीं। पहले सन्तों ने सुना कि कृष्णगढ़-नरेश सावन्तसिंह का आगमन हुआ है तो उन्होंने उदासीनता का वरण किया पर जब बाद में उन्होंने जाना कि सावन्तसिंह ने राजकार्य से वैराग्य लेकर नागरीदास के रूप में व्रज में निवास स्थिर किया है तब वे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने महात्मा नागरीदास को हृदय से लगा लिया। मन्दिर-मन्दिर में उनके पदों का गान होने लगा, स्थान-स्थान पर, कुंज-कुंज में उत्सव होने लगे। महात्मा नागरीदास की रसिकता व्रज के कण-कण में परिव्याप्त हो उठी। बड़े-बड़े महात्मा उनसे मिल कर अपने आपको धन्य मानने लगे। उल्लेख मिलता है :

इक मिलत भुजनि भरि दौरि दौरि,
इक टेरि बुलावत औरि औरि।
केउ चले जात सहजै सुभाय,
पद गाय उठत भोगहिं सुनाय।
जे परे धूरि मधि मत्त चित्त
तेऊ मिलत दौरि तजि रीति नित्त।
अतिसय विरक्त तिनके सुभाव
ते गनत न राजा रंक-राव।
वे सिमिट सिमिट सब आय आय,
फिर छाड़त पद पढ़वाय गाय।

वृन्दावन में उनकी प्रसिद्धि बढ़ने लगी। वृन्दावन में सन्त-महात्माओं के सम्मान के लिये उन्होंने क्षेत्र और आश्रम की स्थापना की। उन्होंने अपने उपास्य देव भगवान नागरबिहारी के मन्दिर का निर्माण कराया तथा उसमें उनकी स्थापना की। उनका समय राधाकृष्ण के लीलाचिंतन में बीतने लगा। व्रजरस में पूर्ण रूप से विभोर हो गये। उनकी सरसउक्ति है, व्रजरस की महिमा का बखान है :

हम तो वृन्दावन रस अटके।
जब लगि इहि रस अटके नाहीं
तब लगि बहु विधि भटके।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भये मगन सुख सिन्धु माँझ ह्यां
सब तजि के जग पटके।
अब विलासरस-रासहि निरखत,
नागरि नागर नटके।

वृन्दावन में उनके परम मित्र घनानन्द भी उस समय निवास करते थे। राजकीय अशांति से क्षुब्ध हो कर उन्होंने वैराग्य ग्रहण कर लिया था। दोनों व्रजरस के महान प्रेमी थे, एक-दूसरे के सत्संग से प्रभावित थे। नागरीदास रससिद्ध सन्त थे, घनानन्द वैराग्यसिद्ध रसिक थे, दोनों उच्च कोटि के भागवत कवि थे। महात्मा नागरीदास ने व्रजवास का फिर कभी त्याग नहीं किया।

नागरीदास भजनानन्दी महात्मा थे। गुरु की कृपा से भगवद् रस की प्राप्ति होती है—ऐसी उनकी मान्यता दीख पड़ती है। अपने समकालीन वृन्दावन के समस्त भक्ति-सम्प्रदायों के प्रति उन्होंने अपनी रचनाओं में सम्मान प्रकट किया है। पुष्टिमार्ग की महत्ता के बरवान में उनकी उक्ति है:

परम पुष्टि रस जल अमित, उर्मी प्रेमावेस।
नागरि प्रगट आनन्दनिधि, वल्लभसुत विठलेस।

वल्लभ सम्प्रदाय में उनकी असाधारण निष्ठा थी। राधावल्लभ सम्प्रदाय के सिद्धान्त की भी उन्होंने बड़ी सराहना की है। हितहरिवंश रसमार्गी महात्मा थे, नागरीदास ने कहा है कि उनके पथ पर चलना आसान बात नहीं है:

'बड़ोई कठिन है भजन ढिग ढरिबो।
तमकि सिन्दूर मेलि माथे पर साहससिद्ध सती कैसी जरिबो॥
रणके चाय घायल ज्यों घूमै, मुरै न गरूर सूर कैसे लरिबो।
'नागरीदास' सुलभ जिनि जानो, हितहरिवंश पंथ पग धरिबो॥'

नागरीदास के भगवच्चिंतन का मूलाधार रस कहा जाता है। उनकी साधना में परम दिव्य भागवत रस की ही प्रधानता थी। वे सदा यही सोचा करते थे कि नन्दनन्दन किस प्रकार मिलेंगे, उनका दर्शन कहाँ होगा? उन्होंने राधा और कृष्ण की कुंजकेलि तथा अन्य रसमयी लीलाओं की अनुभूति की तथा भक्तिपूर्वक उनके सम्बन्ध में पद लिखे। श्रीराधा में उनकी बड़ी पूज्य भावना थी, उनका विश्वास था कि कृष्ण प्रेम के स्तर पर पूर्ण रूप से श्रीराधा के ही अधीन रहते हैं। उनके नयनों में सदा श्रीराधा-कृष्ण की दिव्य केलि का

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रमणीय चित्र आलोड़ित होता रहता था। एक पद में उन्होंने युगल स्वरूप माधुरी का परम पवित्र ध्यान किया है: काव्य-दर्शन किया है:

'ह्वै गई भेंट अचानक वन में
गहवर ठौर विपम मग माई।
गिरि तरु सघन सांझ अंधियारो
तहँ दोउ लपटाने भुज भरनि सुहाई।
सुपनों समुझि नैन मूंदि रहै
इत-उत छुटत न अंकमाल सुधि बिसराई।
अति आसक्त अमल मूछित मन
कंपित देह सिथिल सियराई।
आय सखी संभराय निवारे
तव लोक लाज गुरुजन सुधि आई।
'नागरिया' चले चितवति फिरि-फिरि
लगनि अगाधा राधा कुँवर कन्हाई।।'

नागरीदास की साधना का उत्कृष्ट स्वरूप श्रीराधा-कृष्ण का प्रकट और अप्रकट विहार-दर्शन ही था। वे लीलारसिक थे। नागरीदास ने राधा-कृष्ण के लीला सम्बन्धी सरस साहित्य का निर्माण किया। सम्वत् १८२१ वि. के लगभग उन्होंने नश्वर शरीर का त्याग कर श्रीराधा-कृष्ण के नित्य लीला धाम में प्रवेश किया। व्रज साहित्य में उनको गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। वे उच्च कोटि के कवि, असाधारण महात्मा और आदर्श रसिक थे। उनका सम्पूर्ण जीवन सरस भक्ति से सम्पन्न था।

रचना

मनोरथ मंजरी, रसिक रत्नावली, विहार-चन्द्रिका, निकुंज विलास, व्रजयात्रा, भक्तिसार, पारायणविधि प्रकाश, गोपीप्रेम प्रकाश, और वनजन प्रशंसा आदि नागरीदास की रचनायें हैं।

वाणी

तरुवर छाँह तीर जमुनाकी, कीर पढ़ावत डोलै।
रूपरासि कोउ नवल किसोरी, मोहन कहि-कहि बोलै।।
झमकि झुकावत डारि कुंज की बेनी पीठ भुजंग कलोलै।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'नागरीदास' ध्यान रस माती मूँदि-मूँदि दृग खोलै ॥
एरी आली सुंदर नन्दकुमार, ठाढ़ो ललित कदम्ब तरे;
जमुनातट नवघन स्याम सरीर।
सोहत है बनमाल मोहित, महकि मालती रही चहूँ दिसि
भई भँवरन की भीर।
चलि री चलि बलि आजुनैननि, रूप अमीरस पान करहिं
किन हरहिं विरह-उर-पीर।
तू गोरी वे स्याम जोरी, जगतविभूषन नवल 'नागरी',
बसिये धीर समीर।
मोको गयो री ठगि ग्वार।
कटि तट पीत पिछौरी बाँधे सांवरे अंग सुढार ॥
मद्दन मंत्र से बैन बोलि कछु नैना बंक निहार।
'नागरीदास' मिलै फिरि मोहीं, करि राखों उर हार ॥
राजति दोउ दीने गरबाहीं।
रही छाय निसि सरद जुन्हैया नव निकुंज के माहीं ॥
अरुझि रहे तन-मन आनन्द में आधी रात द्रुमन की छाहीं।
'नागरीदास' लता रंध्रनि लखि रीझि-रीझि बलि जाहीं ॥
हो मेरो मन मोहि लियो स्याम सुजान।
नैननि नैन मिलाय भाय सों चितवनि करि सनमान ॥
तब तैं कल न परत व्याकुल नित, भावत खान न पान।
'नागरीदास' प्रीति की वेदनि जानैं न लोग अजान ॥
जो मेरे तन होते दोय।
मैं काहू तें कछु नहिं कहतो, मोतें, कछु कहतो नहिं कोय ॥
एक जु तन हरि बिमुखन केसंग रहतो देस-बिदेस।
विविध भाँति के जग दुख सुख जहं, नहीं भगति लवलेस ॥
एक जु तन सत्संग रंग रंगि रहतो अति सुख पूर।
जनम सफल करि लेतो व्रजबसि, जहं व्रजजीवन—मूर ॥
द्वैतन बिनु द्वैकाज न ह्वै हैं, आयुसु छिन छिन छीजै।
'नागरीदास' एक तन ते अब कहौ, कहा करि लीजै ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्त महीपति

महीपतिच्या वाणी तें सेवुनि तरतात जेंवि गंगे तें।
विषयांत रंगले जे जनमानस सद्यसींच रंगे तें।

—मोरोपन्त

सन्त-चरित्र के वखान का अवसर अनेक जन्म के पुण्यों का उदय होने पर ही मिलता है तो मिल जाता है। सन्त की महिमा का वर्णन असम्भव है। सन्तों की चरण रज-गंगा का अवगाहन—स्नान परम आनन्दप्रद होता है, निर्मल भगवद्भक्ति, सरस विरक्ति और अचल मुक्ति का दान करता है। सन्तों के चरण-दर्शन से कोटि-कोटि जन्म के पाप का क्षय होता है। यह निश्चित बात है कि यदि सन्त की कृपा से जीवन सम्पन्न हो जाय तो भवसागर से पार होकर वह वैराग्य के साम्राज्य में परमपद पर अधिष्ठित होता है। सन्त महीपति महाभागवत सन्त थे, उन्होंने सन्तों की, भगवद्भक्तों की चरण-रज-गंगा में अवगाहन तो किया ही, अनेक प्राणियों को भी ऐसा करने का अवसर दिया। वे निस्सन्देह मराठी सन्त-साहित्य के नाभादास स्वीकार किये जा सकते हैं; अपनी रचनाओं में उन्होंने भगवान के भक्तोंका चरितामृत-सागर उढ़ेल दिया है। सन्त महीपति भगवान के भक्ति -राज्य के नागरिक थे, पृथ्वी पर भागवती ज्योति के प्राकट्य के लिये ही उन्होंने जन्म लिया था।

महीपति के पूर्वज बड़े सात्विक और भगवद्भक्त थे। भगवान पण्ढरी-नाथ की भक्ति उनकी पैतृक सम्पत्ति थी। महीपति का जन्म सम्वत् १७७२ वि. में महाराष्ट्र प्रदेश के ताहराबाद नगर में हुआ था। वे ऋग्वेदीय वासिष्ट गोत्रीय ब्राह्मण थे। महीपति के पिता दादो जी पन्त पहले मुगल शासक की सेवा में थे पर किसी विशेष सुविधा से आकृष्ट होकर उन्होंने अहमदनगर जनपद के ताहराबाद के मुसलमान शासक की प्रसन्नता से मुगलों से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया और ताहराबाद में आकर बस गये। वे नियम से भगवान पाण्डुरंग का दर्शन करने के लिये पण्ढरपुर जाया करते थे; श्री विट्ठल पाण्डुरंग की कृपा से

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ही उन्हें महीपति ऐसे महाभागवैत पुत्र की प्राप्त हुई। बचपन में महीपति भी अपने माता-पिता के साथ पण्ढरपुर की यात्रा में जाया करते थे। धीरे-धीरे उनमें भगवद्भक्ति बढ़ने लगी। उनकी माता गंगाबाई सदा उन्हें सन्तों और महात्माओं की महिमा बताया करती थीं। महीपति बचपन में अपने माता-पिता की देखा-देखी भगवान के पूजन और भजन में लगे रहते थे। उन्हें अच्छी तरह शिक्षा दी गयी। उनका स्वभाव कोमल, मधुर और प्रेममय था। उन्हें संस्कृत, हिंदी, गुजराती, कनाड़ी आदि भाषाओंका अच्छा ज्ञान था।

महीपति ने सोलह साल की अवस्था में पण्ढरपुरकी यात्रा की। इसी समय उनके पिता का देहान्त हो गया। घर और परिवार की संभाल और भरण-पोषण का भार उनके कन्धों पर आ पड़ा। वे कभी-कभी ताहराबाद के शासक की राजसभा में भी जाया करते थे। उनका जीवन एक विशेष घटना से प्रभावित हुआ। वे कुलकर्णी का काम करते थे । एक दिन वे ताहराबाद के जागीरदार की कचहरी से समय से पहले आकर भगवत्पूजा में लग गये। थोड़ा-सा काम शेष रह गया था। जागीरदार का सिपाही आया। महीपति भगवान के ध्यान और चिंतन में संलग्न थे। भगवत्पूजा के समय व्यवधान होते देख कर उनके मन में बड़ा दु ख हुआ पर उन्होंने किसी से कुछ नहीं कहा। जागीरदार की कचहरी में जा कर शेष कार्य पूरा कर दिया। घर आकर उन्होंने अपने आपको धिक्कारा और प्रतिज्ञा की कि आज से कुलकर्णीका काम नहीं करूँगा। भगवत्गुणानुवाद के लिये ही अपनी लेखनी का सदुपयोग करूँगा। वे भगवान पाण्डुरंग के भक्तिरंग में पूर्ण रूप से रंग गये। उन्होंने सन्तों और भक्तों का गुणानुवाद आरम्भ किया। ऐसी मान्यता है कि उनके दीक्षागुरु सन्त तुकाराम थे। ऐसा कहा जाता है कि महीपति को सन्त तुकाराम ने स्वप्न में दर्शन देकर दीक्षित किया था। तुकाराम ने उनसे कहा कि मैंने अपने जीवन काल में नामदेव के अभंग-पदों की रचना का शेष कार्य पूरा किया था, आप सन्तों और भक्तों के चरित्र का वर्णन कीजिये। सन्त तुकाराम की कृपा से उन्हें काव्य-स्फूर्ति प्राप्त हुई। महीपति ने सन्त तुकाराम की वन्दना में कहा है: उनका 'भक्ति-विजय' ग्रन्थ प्रमाण है:

'नमूं सद्गुरु तुकाराम, जेणे निरसिल भवभ्रम।
आपुले नामी देऊनि प्रेम, भवबन्धन निरसिले॥'

अपने 'सन्तलीलामृत' और 'भक्तलीलामृत' में भी उन्होंने तुकाराम को बड़ी श्रद्धा और भक्ति से प्रणाम किया है। सन्त महीपति ने भगवान के भक्तों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के चरित्र-लेखन को ही स्वधर्म स्वीकार किया। उनकी भगवद्भक्ति निरन्तर बढ़ने लगी।

सन्त महीपति उच्च कोटि के त्यागी थे। परोपकार और सेवा में वे सदा लगे रहते थे। एक बार महाराष्ट्र में भीषण अकाल का प्रकोप हुआ। महीपति ने अपने लिये केवल तुलसीपत्र रख कर अपना समस्त धन और अन्न अकाल पीड़ितों को दे दिया। भिक्षा मांग कर दिन बिताने लगे। कुछ दिनोंके बाद उन्होंने अयाचक-वृति स्वीकार कर ली, वे विट्ठल के मन्दिर में रह कर सन्तों के चरित्र लिखने लगे। योग-क्षेम का भार प्रभु सम्हाल ही लेंगे, ऐसा उनका अटल विश्वास था। रुक्मिणीनाथ विट्ठल की कृपा से उन्होंने मराठी भक्ति-साहित्य में जो श्री-वृद्धि की वह मौलिक और परम महत्वपूर्ण है। उन्होंने महाराष्ट्र को भक्ति-गंगा में स्नान करने का अवसर देकर असंख्य पुण्य कमाये। महीपति भगवान पाण्डुरंग के बड़े भक्त थे। आषाढ़ कृष्ण दशमी से अमावास्या तक पाण्डुरंग का उत्सव मनाने की प्रणाली उन्होंने ही प्रचलित की थी। भगवद्-भक्ति के प्रचार में उनकी बड़ी रुचि थी। भक्तिको भगवान का ही स्वरूप मानते थे। भगवान के स्वरूप-चिंतन की भक्ति -भूमिपर उन्होंने कहा कि जो परम उदार हैं, जिनके गुणों का वर्णन शेष करते हैं, जिनका सदाशिव ध्यान करते हैं, वे जगजीवन हैं। जो ब्रह्मा के पिता हैं, चराचर की सृष्टि करने वाले हैं, मायापर नियन्त्रण करनेवाले हैं वे ही पाण्डुरंग हैं; जो काल के शासक हैं, भव के श्रम को हरनेवाले हैं, अपने भक्तों के प्रति गौरव बुद्धि वाले हैं, स्वाभिमानी हैं, वे ही जगदात्मा पाण्डुरंग हैं; पुराण जिनका वर्णन करते हैं, वेद जिनके सम्बन्ध में मौन धारण कर लेते हैं, जिनका सनक आदि ध्यान करते हैं, वे ही जगजीवन श्रीहरि हैं; जो भक्तों के कार्य करनेवाले हैं, जिन्होंने पाण्डवों की सहायता की, जो विश्वलीला सूत्रको धारण करनेवाले हैं वे ही पण्ढरपुर में खड़े हैं।

महीपति ने भक्ति-साहित्य का निर्माण किया। सन्त-साहित्य के क्षेत्र में उनको विशिष्ट स्थान प्राप्त है। उन्होंने भक्त-चरित्र-लेखन के लिये नाभादास और ऊधव चिद्घन के ग्रन्थों का आश्रय लिया। उनकी रचनामें सन्त मत और वैष्णव धर्म का समीचीन प्रतिपादन हुआ है। महीपति ने स्वीकार किया कि सन्तों और भक्तों के चरित्र-श्रवण से सत्वगुण—सद्गुण और भगवद्भक्ति का

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उदय होता है, तमो गुण का क्षय होता है। जिन की हरिभक्तों के चरित्र में रुचि होती है वे ही वास्तविक परमार्थी हैं। ऐसे लोगों को पण्ढरीनाथ अपने प्राण से भी अधिक चाहते हैं—प्रेम करते हैं। महीपति ने कहा कि मैंने भक्त-चरित्र की रचना स्वयं नहीं की, यह तो पाण्डुरंग की कृपा का फल है, उनकी कृति है। उनकी स्वीकृति है:

'ते वि ग्रन्थ वदविता पण्ढरीनाथ, हे जाणवे निश्चित।
ग्रन्थकर्ता पण्ढरीनाथ, प्रेमल भक्त जाणती॥'

महीपति ने अपने ग्रन्थों में अपनी अपार कवित्व-शक्ति का परिचय दिया है। उन्होंने अपनी पुण्यमयी कृति में शास्त्र की मर्यादा अक्षुण्ण रखी है। महीपति सगुणोपासक और अद्वैतवादी सन्त थे। महाभागवत मोरोपन्त ने महीपति के ग्रन्थों की बड़ी प्रशंसा की है। वे उनकी उक्तियों से बहुत प्रभावित थे।

सन्त महीपति ने पचहत्तर साल की अवस्था में सम्वत् १८४७ वि. श्रावण कृष्ण द्वादशी को समाधि ली। उनका जीवन भगवद्भक्ति का दर्पण था, वे परम भागवत थे।

रचना

'भक्त विजय', कथासारामृत, भक्तलीलामृत और संतलीलामृत सन्त महीपति की प्रसिद्धि रचनायें हैं।

वाणी

भगवद्प्रिय व्यक्ति ही सौभाग्यवान हैं। उनका सौभाग्य असीम और अपार है। उनके पूर्वजन्म धन्य हैं। उनका यह जन्म सफल और धन्य है। उनका कुटुम्ब धन्य है, जाति धन्य है, संसार में जन्म ग्रहण करना धन्य है। जो श्रीहरि के शरणागत हैं उनका ज्ञान धन्य है, जन्म धन्य है। वे प्राणी धन्य हैं जो अनन्य भाव से हरि की शरण में हैं; उन्होंने अपनें पूर्वजों का उद्धार कर दिया और असंख्य प्राणियों को भवसागर के पार कर दिया। भगवान के भक्त बड़े पुण्यशाली होते हैं, उनका दर्शन करने से लोग भवसागर से तर जाते हैं। वेद और शास्त्रों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

में वर्णन मिलता है कि भक्तों के लिये भवसागर मृगजल के समान है। इन्द्र और ब्रह्मा भी भगवान के भक्त की महिमा नहीं कह सकते हैं, वे पुरुषोत्तम नारायण के प्रियपात्र हैं और वैकुण्ठ-लोक में जाते हैं। वे वैकुण्ठ में निवास करते हैं और हृषीकेश के निकट रहते हैं। ऐसे महाभाग्यशाली हैं वे। ऐसे सन्तों के चरण पर मेरा मस्तक नत है।

हे नाथ ! चित्त में वासना है। आप के नाम में सिद्धि है। मैं अपंग और अनाथ हूँ। आप अनाथों के नाथ हैं। आप सिद्धि-नामी हैं, मेरी सम्हाल कीजिये। मैं असहाय हूँ। मुझ पर करुणा कीजिये।

भक्तों के चरित्र में पाण्डुरंग की बड़ी रुचि है। उन चरित्रों का श्रवण करने वाले भवसागर से पार हो जाते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्त गरीबदास

दादू एकै आतमा, साहिब है सब माहिं।
साहिब के नाते मिलै, भेष-पन्थ के नाहिं॥

—सन्त दादू

मध्यकालीन भारतीय सन्त-साहित्य ने समत्वयोग की सीख दी। घट-घट में परिव्याप्त आत्मसत्य का नारायणीकरण किया। सन्त कबीर ने इस दिशा में उचित पथ-प्रदर्शन किया। सन्त गरीबदास ने इस प्रकार की आत्मसाधना और अनुभूति की प्रगति में बड़ा योग दिया। सचराचर में एक ही दिव्य चेतनता के परिलक्षण की ओर ध्यान आकृष्ट करना मध्यकालीन सन्तमत-परम्परा की मौलिकता है। सन्त गरीबदास ने अपनी पुण्यमयी साधना के बल पर कहा कि यह चारों युगों का प्रमाण है कि सन्त जो कुछ भी करते हैं वही सच है, भगवान उनकी आज्ञा का पालन करने के लिये सदा तत्पर रहते हैं। वे दिन-रात सन्तों के पीछे-पीछे चलते रहते हैं। भगवान संत के अधीन रहते हैं।

सन्त गरीबदास यारी साहब की चिंतन-धारा से प्रभावित थे पर उनकी शिष्यपरम्परा से अलग थे। उनके जीवन काल में दिल्ली में मुगलों का आधिपत्य था। राजनैतिक शक्तिहीनता धीरे-धीरे बढ़ती जा रही थी। विदेशी आक्रमण की आशंका प्रत्येक क्षण बनी रहती थी। ऐसे अशान्तिपूर्ण समय में सन्त गरीब-दास ने सत्यनाम की ज्योति फैलायी, निर्गुण धारा की भक्तिगंगा में लोगों को स्नान कराया, आश्वासन दिया। उन्होंने सत्य का संरक्षण किया: घोषणा की, जनता को विश्वास दिलाया

'राम कहै मेरे साधु को, दुख मत दीजै कोय।
साधु दुखावै मैं दुखी, मेरा आपा भी दुख होय।'

उन्होंने बताया कि प्राणीमात्र का परम धर्मकर्तव्य भगवान का चिंतन ही है, परमात्मा के भजन के लिये ही जीवन मिलता है; उसका दुरुपयोग माया-मोह में कभी नहीं करना चाहिये; सत्य का आचरण करना चाहिये।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महात्मा गरीबदास का जन्म सम्वत् १७७४ वि. में वैशाख पूर्णिमा को पंजाब प्रान्त के रोहतक जनपद के छुड़ानी गाँव में हुआ था। उनके पिता साधारण गृहस्थ थे। गरीबदास ने जाट कुल को समलंकृत किया था। बचपन में उनका मन काम-काज में नहीं लगता था। उनकी चित्तवृत्ति किसी रहस्यमय तत्व की खोजमें लगी रहती थी। साधु-सन्तों के दर्शन से वे बहुत प्रसन्न होते थे, यदि कभी सन्त-सेवा का अवसर मिल जाता था तो अपने आपको बड़ा सौभाग्यशाली मानते थे। उनकी प्रतिभा विलक्षण थी।

ऐसा कहा जाता है कि जब वे केवल बारह साल के थे तभी जंगल में भैंस चराते समय उन्हें संत कबीर का दर्शन हुआ। कबीर ने एक भैंस की ओर संकेत कर दूध लाने को कहा। गरीबदास ने कहा कि यह भैंस दूध नहीं देती है पर कबीर की आज्ञा से वे भैंस के थन से दूध लेने गये। थनसे दूध निकलते देख कर वे आश्चर्य-चकित हो गये। उनके पैरों पर गिर पड़े और उनको अपना गुरु स्वीकार किया। कबीर उन्हें मन्त्र देकर अदृश्य हो गये। ऐसा भी मत है कि संत कबीर ने उन्हें स्वप्न में दर्शन देकर गुरुमन्त्र प्रदान किया था। यह नितान्त असंदिग्ध है कि वे कबीर की वाणी से प्रभावित थे। गरीबदास ने अपनी रचनाओं में उनके प्रति बड़ी श्रद्धा प्रकट की है। उनके सिद्धान्तों को स्वीकार किया है। उनकी उक्ति है:

'ऐसा सतगुरु हम मिला, तेज पुंज के अंग।
झिलमिल नूर जहूर है, रूप रेख नहि रंग।।'

उन्होंने कहा कि 'शब्द' गुरु है, चित्त चेला है। मुझे कबीरदास ने भक्ति प्रदान की। उन्होंने घोषणा की कि ऐसे सद्गुरुकी शरण में जाना चाहिये जो 'शब्द' में समा गया हो, भवसागर में डूबने से सद्गुरु की कृपा ही बचा सकती है।

धीरे-धीरे उनकी प्रसिद्धि बढ़ने लगी; लोग दूर-दूर से उनके सत्संग में आने लगे।... एक बार भीषण अकाल पड़ा। जनता भूख से तड़प-तड़प कर मरने लगी। गरीबदास से जनता की दशा देखी न गयी, उनकी दया से अनावृष्टि समाप्त हो गयी।... रात-दिन उनके सामने दर्शनार्थियों और सत्संगियों की भीड़ लगी रहती थी, ऐसी स्थिति में एकान्त में बाधा उपस्थित होते देख कर उन्होंने छुड़ानी गाँव छोड़ देने का निश्चय किया पर ठीक इसी समय देश पर विदेशी आक्रमण हुआ। दिल्ली के मुगल बादशाह ने आक्रमण रोकने के लिये

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उन्हें बुला भेजा। बहुत-से हाथी, घोड़े और सिपाही भेजे गये। पहले तो संत गरीबदास ने जाना अस्वीकार कर दिया पर विशेष आग्रह होने पर एक घोड़ी पर सवार होकर तथा पाँच शिष्यों को साथ लेकर वे दिल्ली के लिये चल पड़े। उन्होंने चरणदास सन्त के आश्रम में निवास किया, तत्कालीन बादशाह को समझाया कि ईश्वर की कृपा में विश्वास करना चाहिये, आक्रमण का भय मिट जायेगा। बादशाह से उन्होंने कहा कि यदि तुम भोग-विलास और मदिरा-पान का परित्याग कर दोगे तो आक्रमण का संकट निस्सन्देह दूर हो जायेगा। बादशाह को उनके कथन पर संतोष न हुआ। वे कारागार में डाल दिये गये पर अपनी योगसिद्धि के बल पर वे छुड़ानी पहुँच गये। कारागार के फाटक और ताले अपने आप खुल गये। बादशाह ने उनको दिल्ली आने का निमन्त्रण दिया पर वे नहीं गये, पांच गाँव की जागीर दी पर सन्त गरीबदास ने उसे अस्वीकार कर दी।

सन्त गरीबदास के सम्बन्ध में बहुत से चमत्कारपूर्ण कथा-विवरण मिलते हैं। एक घटना है कि आसोध गाँव के एक बनिये का पुत्र जिसका नाम संतोष दास था उनका शिष्य हो गया। वह साधु-स्वभाव का व्यक्ति था। एक दिन उसके पिताने सत्संग में आकर गरीबदास से कहा कि महाराज आपकी बहिन घर पर क्या करेगी। गरीब दास ने इस व्यंग का समाधान किया कि भैया यदि तुम संतोषदास की पत्नी को मेरी बहिन कहते हो तो यह बात ठीक ही है, तुम देखोगे कि मेरी बहिन भी आश्रम पर ही आकर रहने लगी। दूसरे दिन संतोषदास की पत्नी ने किसी अदृश्य शक्ति की प्रेरणा से हाथ की चूड़ी फोड़ डाली, गृहस्थी से नाता तोड़ लिया, वैराग्य लेकर गरीबदास के आश्रम पर चली आयी। वह उनकी शिष्या हो गयी और अपने पति के साथ गरीबदास के निवास स्थान पर रहने लगी। सन्तों को किसी बात के लिये चुनौती देना महापाप है, उनकी कृपा से क्षणमात्र में, न जाने, क्या से क्या हो सकता है, वे पूर्ण समर्थ होते हैं। सन्त गरीबदास आजीवन गृहस्थ वेष में ही रहे। भगवान के भजन और चिन्तन में लगे रहना ही उनका सबसे बड़ा काम था; लोगों को सत्संग में चेतनता प्रदान करना उनका सबसे बड़ा धर्म था। उन्होंने निर्गुण-सगुण से परे—अतीत अगाध रहस्यमय तत्व शब्द ब्रह्म की साधना की, कबीरदास की ही तरह साहब की उपासना की। उन्होंने सदा आत्मसाक्षात्कार की ही सीख दी। उन्होंने कहा कि सुरत, निरत, मन और पवन के द्वारा ही शिव तत्व की कृपा से चौदहों भवन दीख पड़ते हैं, इन चारों पदार्थों के एकीकरण से गगन-मण्डल तक पहुँच हो पाती

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है। भगवन्नाम में उनका बड़ा विश्वास था। वे नाममार्गी महात्मा थे। उन्होंने सदा अपने 'पन्थ' के सम्बन्ध में कहा:

'दास गरीब कबीर का चेरा।
सत्त लोक अमरापुर डेरा॥'

कबीर में उनकी असाधारण निष्ठा थी। उन्होंने बताया कि मैं 'उस' देश की अकथ कहानी किस प्रकार कहूँ, मैं तो प्रेमोन्मत्त हूँ। वे भक्त और सन्त दोनों के विचित्र समन्वय थे। उन्होंने कहा कि भजन करना ही कर्तव्य है, इसी के लिये नर-देह की प्राप्ति होती है। सद्गुरु के शरणागत होकर भजन करने से भवसागर तरना सुलभ हो जाता है। सन्त साहित्य में गरीबदास को गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। उन्होंने बाईस साल की ही अवस्था में असंख्य साखी लिख डालीं आजीवन अपनी अनुभूतियों का वर्णन करते रहे। उनकी सन्त अथवा साधु के सम्बन्ध में उक्ति है:

'धन जननी, धन भूमि धन, धन नगरी, धन देस।
धन करनी धन सुकुल धन जहाँ साध-परवेस॥'

उन्होंने कहा कि परमात्मा अपने भक्तों को धन्य कर देते हैं; सेन नाई दो कौड़ी के जीव थे पर ईश्वर की कृपा से वे उच्च कोटि के सन्त हो गये, पीपा ऐसे महाराजा को भी उन्होंने—ईश्वर ने प्रसन्न होकर उच्च कोटि का सन्तपद प्रदान किया। इसी प्रकार गरीबदास ने संत कबीर की प्रशंसा की है, उनकें पदों में नामदेव-नरसीभगत, मीराबाई, तथा रैदास आदि के सम्बन्ध में पूज्य भावना का दर्शन होता है; उन्होंने बड़ी श्रद्धा से उन सन्तों का स्मरण किया है। गरीबदास ने कहा कि सन्त की सबसे बड़ी पहिचान यह है कि वे सत्यवादी होते हैं। उन्होंने कहा कि सन्तों का पंथ आदि और सनातन होता है।

गरीबदास ने आजीवन गृहस्थ वेष में रह कर असंख्य प्राणियों को सत्य का प्रकाश दिया। सम्वत् १८३५ वि. में इकसठ साल की अवस्था में भादों शुक्ल द्वितीया को उन्होंने चोला का त्याग कर परम धाम की यात्रा की। वे पहुँचे हुए सन्त थे, योगी और महात्मा थे।

रचना

अन्तिम समय में चौबीस हजार पदों का संग्रह 'हिरखबोध' छोड़ गये जिनमें सत्तरह हजार पद गरीबदास के ही हैं। एक बीजक का भी पता चलता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वाणी

नाम रसायन पीजिये, यहि औसर यहि दाव।
फिर पीछे पछतायगा, चला-चली हो जाव॥
साहब सेती दोसती, संतों सेती प्यार।
तिन्ह को संका है नहीं, धरमराय दरबार॥
नाम रटत नहिं ढील कर, हरदम नाम उचार।
अमी महारस पीजिये, बहुतक बारम्बार॥
पीछे-पीछे हरि फिरैं, आगे संत सुजान।
संत करै सोइ सांच है, चारों जुग परमान॥
इस माटी के महल में, मगन भया क्यों मूढ़।
कर साहब की बन्दगी, उस साईं कूं ढूंढ॥
नंगा आया जगत में, नंगा ही तू जाय।
बिच कर ख्वाबी ख्याल है, मन माया भरमाय॥

सुनिये संत सुजान गरब नहिं करना रे॥
चार दिना की चहर बनी है, आखिर तो कूँ मरना रे।
तू जाने मेरी ऐसी निभेगी, हरदम लेखा भरना रे॥
खायले पीले बिलस ले हंसा, जोड़-जोड़ नहिं धरना रे।
'दासगरीब' सकल में साहब, नहीं किसी सूं अड़ना रे॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्त नागा निरंकारी

जगतां कोटि लक्षेषु यावन्तः परमाणवः।
तेषामेकैकशोऽन्तः स्थान्सर्गान् पश्यत्यसङ्गधीः॥

जिसकी बुद्धि सर्वथा माया से अलिप्त है वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों को अपने भीतर उसी प्रकार देखता है जिस प्रकार अनेक कोटि ब्रह्माण्डों में परमाणु होते हैं।

—योगवासिष्ठ मु. प्र. १८।२७

सन्तों और महात्माओं की महिमा का बखान करना बड़े सौभाग्य और परम पुण्य की बात है। सन्त नागा निरंकारी परम अवधूत थे। उन्होंने लोक-लोकान्तरों के आत्मरहस्य को जन्मजन्मान्तर से समझा था। प्रत्येक लोक में अपनी महती साधना-शक्ति के द्वारा वे निर्विरोध आ-जा सकते थे, यह उनके चरित्र-वैचित्र्य के सम्बन्ध में अतिशयोक्ति नहीं— वास्तविकता है। नागा निरंकारी के अनुयायियों में यह मान्यता है कि वे महाभारतकालीन दिव्य जन्मधारी परमदानी महात्मा कर्ण के अवतार थे, इस मान्यता की परिपुष्टि उनके (नागा निरंकारी महाराजके) उद्‌गार से भी होती है; समय-समय पर उन्होंने बड़े ऐतिहासिक और अधिकारपूर्ण ढंग से इस रहस्य की ओर स्पष्ट संकेत भी किया था। महाभारत के बाद उन्होंने अनेक जन्म लिये पर सदा निवृत्ति मार्ग में ही रहे, उन्होंने कभी विषय भोग में रह कर प्रवृत्तिपरायणता का परिचय नहीं दिया। नागा निरंकारी के वेष में शरीर धारण करने का समय विक्रमीय सोलहवीं या सत्तरहवीं शताब्दी में पड़ सकता है, उनकी अवस्था का अनुमान लगाना सहज नहीं है पर यह कहना सम्भव दीख पड़ता है कि उनकी आयु लगभग तीन सौ साल की रही होगी और महान आश्चर्य तो यह है कि उनके शरीर में कभी विकृति-परिवर्तन का दर्शन नहीं हुआ, वे परम हृष्ट पुष्ट और स्वस्थ न जाने कितने समय से एक आकार-प्रकार में दीख पड़ते-से चले आ रहे थे, वे दिव्य शक्ति के पुञ्जीभूत चेतन रूप थे। उनकी प्रसिद्ध रचना ब्रह्मवाणी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के कुछ पदों से स्पष्ट सिद्ध होता है कि जिस समय मुगलों का शासन अपने मध्याह्न पर था उस समय वे सिद्धावस्था प्राप्त कर आत्मानुभूति से एकान्त में स्वस्थ होकर लोक-कल्याण में लीन थे। सन्त कबीर और नानक के सम्बन्ध में उनकी अद्भुत उक्ति ब्रह्मवाणी में मिलती है तथा यवन-कालीन ऐतिहासिक विवरण का चित्र-सा आभासित होता है। ऐसा लगता है कि उन्होंने नानक को देखा था, सिखों में दस नानक की मान्यता है, गुरुनानक से गोविन्द सिंह महाराज तक दस नानक की परिगणना होती है। उन्होंने नानक को फेरी लगाते देख कर उनके सम्बन्ध में ब्रह्मवाणी में पद-रचना की है। गोविन्दसिंह के बाद गुरु-परम्परा का अन्त हो गया; वे अन्तिम नानक थे। ऐसी स्थिति में यह स्पष्ट हो जाता है कि संत नागा निरंकारी या तो उनके पहले थे या उनके समकालीन थे। यह सम्भव है कि वे पंचम नानक गुरू अर्जुन देव के समकालीन रहे हों। ब्रह्म वाणी में उनका पद है :

'भजले श्रीनागा निखान दीवाने मन।
जागो श्याम अब भोर हुआ है,
गुरु नानक करते फेरी-दीवाने मन।'

ब्रह्मवाणी के इस पदांश के अतिरिक्त यह भी प्रमाणित है कि उनके तप का प्रारम्भिक काल पंजाब में ही बीता; उन्होंने विक्रमीय बीसवीं शती के अन्त में समाधि ली, इस लिये इतनी लम्बी आयु में तप के प्रारम्भिक काल में पंजाब में पंचम नानक को फेरी लगाते देखना नागा निरंकारी के जीवन चरित्र का औचित्य स्वीकार किया जा सकता है। उन्होंने अपनी ब्रह्मवाणी में एक ऐसे पद की भी रचना की है जिसमें मध्यकालीन युद्ध-परम्परा पर प्रकाश पड़ता है, युद्ध के सम्बन्ध में उनका यह संस्मरण संकेत करता है कि उन्होंने उसे आँख से देखा था : पद इस प्रकार है :

'चढ़ा है नागा लसगर बादशाह लेकर,
फौजे तम्बू साथ में हैं;
रावटी, तम्बू, निसान गोला दीद में गड़े हैं॥
चारों ओर से फौज चढ़ी है,
होन लगा मैदान बीच में बादशाह खड़ा है।
अब लड़े हैं दोनों बादशाह, युद्ध हुआ है बड़ा घोर,
अब उखड़े हैं झंडा निशान,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नागा लई उड़ारी झण्डा गड़ा मैदान॥
तोप खजाना लूट लिये हैं, वादशाह है नादान ;
आगे खजाना सूना पड़ा है, लूटे चतुर सुजान।
नागा कहैं सुनो भाई सन्तो,
सव पक्षी उड़ गये हैं, तू मूरख ले जान॥'

सन्त वाणी में इस पद का क्या रहस्य है यह तो सन्त की कृपा से ही समझा जा सकता है पर लोक वाणी में इसकी ऐतिहासिकता सिद्ध करती है रचयिता की मध्यकालीन उपस्थिति।

सन्त नागा निरंकारी नाम रूप के आवरण से सत्स्वरूपस्थ महात्मा थे। उन्हें अपने द्वापरयुगीन जन्म की घटनाओं और सम्बन्धियों का समीचीन स्मरण था। उनको इस वात का भी पता था कि इस जन्म में उनके तत्कालीन जीवन से सम्बद्ध कौन-कौन-से व्यक्ति किन नामरूपों में हैं। वे अपने व्रत और नियमों के बड़े पक्के थे। अन्न छोड़ा तो कई वर्षों तक अन्न के त्यागी ही बने रहे, वस्त्र छोड़ कर नंगे फिरते रहने का संकल्प किया तो नागा वेष में ही विचरते रह गये। इसी प्रकार किसी स्थान विशेष में तप आरम्भ किया तो कई सालों तक उस स्थान पर ही ठहर गये। उनका जीवन-चरित्र उच्च-उच्चतर और उच्चतम संकल्पों का क्रियात्मक रूप कहा जा सकता है। संत नागा निरंकारी ध्यान में लोक-लोकान्तर में विचरण करते थे और अपने निकटवर्तियों से उन स्थानों की विचित्र घटनाओं का वर्णन किया करते थे। एक बार उन्होंने अपने अत्यन्त निकटवर्ती और प्रिय तथा ज्ञानी शिष्य सन्त पलक निधि 'पथिक' जी महाराज से कहा था कि 'हमें ध्यान में श्री लक्ष्मी जी ने सर्वत्र विजयी होने का वरदान दिया है। हमारे हाथ में लक्ष्मीजी की दी हुई छाप है। इस छाप को देख कर कोई भी शक्ति हमें कहीं जाने से रोक नहीं सकती। साथ ही हमें भगवान की ओर से अमृत का प्याला पिलाया गया, इसी से हम किसी के मारे नहीं—स्वेच्छा से मर सकते हैं।' कैलाश लोक के नीचे के समस्त लोकों के अधिपतियों ने उनको अपने ऐश्वर्य की महिमा दिखा कर रोकना चाहा पर वे कहीं भी रुक न सके। उनके शिष्यों में यह मान्यता चली आती है कि उन्हें कैलाश धाम की प्राप्ति में परम गुरु शुक्राचार्य ने सहायता दी थी। सन्त नागा निरंकारी अपने इस जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में हरनामदास, रामदास, नागा,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नागागिरिधारी, नागा बाबा और नागा निरंकारी आदि नामों से प्रसिद्ध हुए। वे पहुँचे हुए उच्च कोटि के अवधूत थे।

विक्रमीय अठारहवीं शताब्दी के प्रथम चरण की बात है। पंजाब प्रान्त में भगवती राबी नदी के तट पर अठीलपुर नगरमें, जिसका इस समय पता नहीं चलता है, एक समृद्ध राजपरिवार था। उस राज्य की रानी सन्तानहीन थीं। एक बार राजप्रासाद में एक सन्त का आगमन हुआ। रानी ने सन्तान-प्राप्ति की कामना प्रकट की। सन्त ने आशीर्वाद दिया कि एक पुत्र पैदा होगा पर स्मरण रहे कि उसके सिर पर छूड़ा न फिरे नहीं तो वह घर को छोड़ कर वैराग्य ग्रहण करेगा। कुछ समय के बाद सन्त के आशीर्वादरूप में अठीलपुर के राजप्रासाद में नागा निरंकारी का जन्म हुआ, चारों ओर आनन्द ही आनन्द छा गया। शहनाई की मधुरिम ध्वनि वातावरण के कण-कण में व्याप्त हो उठी, अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे, राजकर्मचारी फूले नहीं समाते थे, असंख्य असहायों, कंगालों और सुपात्र ब्राह्मणों को दान दिया गया; अनेक प्रकार के रत्न और स्वर्ण आभूषणों से याचकों को संतुष्ट किया गया। नवजात का जन्मोत्सव धूमधाम से मनाया गया। राजनगरी विशेष ढंग से सजायी गयी। प्रजाने आमोदप्रमोद मनाये। जन्मकाल में नवजात का शरीर अत्यन्त छोटा था, उनके पिता और पितामह को बड़ी चिन्ता हुई कि इतने छोटे शरीर वाली सन्तान से किस प्रकार राजकार्य-सम्पादन होगा पर माता की ममता ने सन्तोष किया कि मेरी सन्तान जीवित रहेगी, यही क्या कम है! राजमाता पूर्व की अनेक सन्तानें मृत्यु के मुख से बाहर न निकाल सकी थीं। माता ने अपने पति से कहा कि यदि मेरे बालक में राजकार्य चलाने की क्षमता नहीं होगी तो फकीरी करने की शक्ति तो रहेगी ही।

नागा निरंकारी का पालन-पोषण बड़ी समृद्धि और सुखभोग के वातावरण में हुआ। वे ज्यों-ज्यों बड़े हो रहे थे त्यों-त्यों जन्म-जन्म के पुण्य और दान के फलस्वरूप प्राप्त गम्भीरता और दैवी सम्पत्ति में भी अभिवृद्धि हो रही थी। राजप्रासाद के पीछे एक रमणीय सरोवर था। नागा निरंकारी ने अपनी शैशव अवस्था के अनेक क्षण गम्भीर चिन्तन में उसी सरोवर के तट पर बैठ कर बिताये। कभी कभी बालमण्डली में बैठकर क्रीड़ा करते थे। माता उन्हें बहुत मानती थीं, पिता की अपेक्षा उनका स्नेह अपनी प्यारी सन्तान पर अधिक था। माता उन्हें बहुमूल्य अलंकारों से सजाकर बाहर खेलने के लिये

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भेजा करती थीं। एक वार वे कीमती हीरक अंगूठी पहन कर राजप्रासाद के वाहर खेलने जा रहे थे। दैव योग से उन्होंने एक भिक्षुक देखा, दया से उनके मन में दानशीलता का भाव जाग उठा, वे परमदानी के अवतार थे ही; उन्होंने विना मांगे ही अपनी अंगुली की अंगूठी उतार कर भिक्षुक को दे दी। इसी प्रकार. एक कीमती शाल खेल के समय में ही वे कहीं वाहर भूल आये। सांसारिक पदार्थों में उनकी तनिक भी आसक्ति या रुचि नहीं थी।

जव वे केवल दस-वारह साल के ही थे पंजाव पर मुसलमानों का भयंकर आक्रमण हुआ। उनके पिता को शत्रुओं से लड़ने रण में जाना पड़ा। वे युद्ध क्षेत्र में मारे गये। कुलपरम्परा के अनुसार नागा निरंकारी की मा सती हो गयीं। सती होने के पहले उन्होंने अपने पुत्र का प्यार किया, पीठ पर हाथ फेरा और ममता भरी दृष्टि से उन्हें देख कर परलोक में पति से मिलने चली गयीं। नागा निरंकारी ने पिता और माता के स्वर्ग पधारने पर राजप्रासाद का परित्याग कर दिया। वे एक सन्त के आश्रम में पहुँच गये। तेजस्वी वालरूप में नागा निरंकारी को देख कर सन्त वहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उनका नाम हरनाम दास रखा। सन्त किसी औषधि के प्रयोग से चाँदी वना कर अपने शिष्यों की तथा अपनी जीविका चलाते थे। नागा निरंकारी इस कार्य से वहुत दूर रह कर वाल क्रीड़ा में मग्न रहते थे। कुछ दिनों के बाद आश्रम का परित्याग कर वे तप करने के लिये निकल पड़े।

वे वाल-अवधूत के रूप में निर्जन स्थानों में निवास कर तप करने लगे। वे तप के पहले वारह साल की अवधि में मौन रहे। नंग-धड़ंग दिगम्बर वेष में भ्रमण करते देखकर लोगों ने उनको नागा बाबा की संज्ञा से विभूषित किया। वे बालकों के ही साथ खेलते रहते थे। वारह साल के बाद मौन-व्रत भंग करने पर उन्होंने वाणी प्रतिध्वनि-व्रत का आचरण किया। उनसे मिलने पर या उन्हें देख कर जो व्यक्ति जैसा वचन बोलता था, नागा निरंकारी उसे वैसा ही दोहरा दिया करते थे, चाहे वह प्रिय होता या अप्रिय होता। इस प्रकार के तप में उनके जीवन के अनेक साल बीत गये। वे अनेक स्थानों में भ्रमण कर तप करते रहे। बालकों के साथ खेलना ही उनकी साधना का स्वरूप था। इस प्रकार की साधना के निगूढ़ भाव का अनुभव उनकी कृपा से ही सम्भव है। बालक खेलते-खेलते उन्हें जिस स्थान पर छोड़ कर चले जाते थे वे वहीं तव तक बैठे रहते थे, या खड़े रहते थे जब तक साथ में खेलने वाले बालक उनका हाथ पकड़ कर दूसरे स्थान

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पर न ले जाते। उन्हें भूख प्यास की तनिक भी चिंता नहीं रहती थी। यदि कोई खिला-पिला देता तो खा-पी लेते थे। इस प्रकार घोर तप में उनके जीवन का अधिकाधिक समय बीतने लगा। वे पूरी अवधूत-वृति में थे।

सन्त नागा निरंकारी ने अनेक प्रान्तों में भ्रमण कर तप किया पर सदा वे गुप्त रूप से ही विचरते रहते थे। उनके तपोमय जीवन का अधिकांश प्रयाग और कानपुर के बीच के जनपदों में बीता। उत्तर प्रदेश के फतहपुर जनपद में असोथर नामक उपनगर के निकटवर्ती वन में उन्होंने घोर तप किया। इसके पहले अयोध्या में उन्होंने तप करते अपने जीवन का आधा भाग बिताया था। असोथर एक प्राचीन ऐतिहासिक नगर है, इतिहासप्रसिद्ध भगवन्तराय की पूर्व काल में यह नगरी राजधानी थी। यह स्थान महाभारत प्रसिद्ध अमर अश्वत्थामा के नाम से भी सम्बद्ध है। नगर से थोड़ी दूर पर अश्वत्थामा के मठ का ध्वंशावशेष अवस्थित है। मठ से लगी हुई एक अत्यन्त प्राचीन और निर्जन कन्दरा में सन्त नागा निरंकारी तप करने लगे। फतहपुर जनपद के प्रसिद्ध सन्त मगनानन्द स्वामी ने भविष्य वाणी की थी कि मेरे ब्रह्मलीन होने के बाद दो पंजाब प्रान्तीय महात्मा आकर तप करेंगे, वे परम सम्मान्य सन्त हैं। उनकी भविष्य-वाणी की पूर्ति के रूप में ही नागा निरंकारी का आगमन हुआ। उनके साथ एक और सन्त भी आये थे, कुछ समय तक गंगा तट पर निवास करने के बाद वे समाधिस्थ हो गये। नागा निरंकारी मौन व्रत ग्रहण कर असोथर-वाली कन्दरा में तप करते रहे। वे परम दिगम्बर और महामौनी थे। परम सौभाग्य का उदय होने पर व्यक्ति विशेष को उनका दर्शन हो जाया करता था। असोथर के एक साधारण गृहस्थ शिवमंगल सिंह (बचना) को उन्होंने अपनी सेवा का सौभाग्य प्रदान किया था। धीरे-धीरे निकटवर्ती नगरों में उनकी कीर्ति फैलने लगी, वे 'नागा बाबा असोथर' के नाम से प्रसिद्ध हो गये। तत्कालीन राजरानी उनके चरणों में असाधारण श्रद्धा रखती थीं।

उनमें दीर्घकालीन तप के परिणाम स्वरूप वाच्योक्ति का आरंभ हो रहा था, पर वाच्यज्ञान नहीं था। किसी की बात सुन कर उसी प्रकार दोहरा दिया करते थे। यदि कोई कहता था—'बाबा जी बैठो', तो वे भी कह पड़ते थे? 'बाबा जी बैठो।' लोग उन्हें अपने-अपने घर ले जाने लगे, उनकी चरण-धूलि से अपना घर पवित्र कराने लगे। साथ में बालकों की मण्डली रहती थी, वे परमहंसवृत्ति से बालकों के साथ खेला करते थे। असोथर-निवास के प्रति उनका अनुराग

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महाभारत काल में कर्ण के रूप में अश्वत्थामा से उनकी मैत्री का प्रतीक था। ऐसा कहा जाता है कि असोथर–अश्वत्थामा पुरीकी अश्वत्थामाने स्थापना की थी। असोथर के निवासियों ने पहले तो उनकी अवधूत-वृत्ति देख कर पागल समझा पर बाद में उनकी महत्ता के चरणदेश में वे नतमस्तक हो गये। असोथर में उन्होंने घोरतम तप किया। असोथर-निवास काल में एक बार वे विचरण कर रहे थे। संयोग से उनकी एक थानेदार से भेंट हो गई। नागाजी के साथ खेलनेवाली बालमण्डली भी थी। थानेदार ने पूछा, 'तुम इस तरह नंगे क्यों घूमते हो।' नागा ने उसकी बात दोहरायी, 'तुम इस तरह नंगे क्यों घूमते हो।' थानेदार ने कहा कि ठीक तरह जवाब दो। नागा बाबा ने उसकी बात फिर दोहरायी। इसी समय कुछ लोगों ने थानेदार से निवेदन किया कि ये सन्त पुरुष हैं, इन्हें छेड़ना नहीं चाहिए। थानेदार नागा बाबा को प्रणाम कर चला गया। इसी प्रकार असोथर के थानेदार को उनके पागल होने का भ्रम हो गया था। उसने बाबा को अस्थायी कारागार में डाल दिया। रात को नागा बाबा ने जोर-जोर से 'अलख' का उच्चारण आरम्भ किया। रानी साहब उनकी आवाज पहचानती थीं। असोथर की राजरानी ने थानेदार को कड़ी धमकी दी और नागा बाबा कारामुक्त हो गये।

सन्त नागा निरंकारी बालकों के साथ खेलते और भ्रमण करते समय अपने आप को पूर्ण रूप से उन्हीं की चेष्टाओं पर निर्भर कर देते थे। बालक बुलाते थे तो बोलते थे, खिलाते थे तो खाते थे, चाहे बालक उन्हें पानी में गिरा दे, चाहे उनको बालू में सुला दे, चाहे ढकेल दे, उन्हें उनकी प्रत्येक चेष्टा मान्य थी। कभी-कभी तो बालमण्डली के कारण उनके प्राण संकट में पड़ जाते थे, पर बाल-शक्ति के रूप में अदृश्य भगवत्शक्ति ही उनकी ऐसे अवसरों पर रक्षा करती थी। बालक जहाँ रात को लिटा देते, वहीं लेट जाते थे, कोई कुछ उढ़ा देता था तो ओढ़ लेते थे, यदि ओढ़ने का वस्त्र नीचे गिर जाता या खिसक जाता तो उसे फिर नहीं उठाते थे। इस प्रकार उन्होंने अवधूत व्रत का पालन किया।

एक बार वे यमुना के किनारे बालकों के साथ खेल रहे थे। जिस गाँव के वे बालक थे, वह यमुना-तट से थोड़ी दूर पर था। नागा बाबा एक कगार पर खड़े थे। यमुना का वेग अत्यन्त तीव्र था। बालकों ने उनको यमुना में ढकेल दिया। वे प्रवाह के साथ बहते-बहते कोसों दूर चले आये। एक ग्राम तट के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निकट था। कुछ बालक खेल रहे थे। नागा बाबा बाहर निकल कर उनके साथ पहले की ही तरह खेलने लगे।

एक बार उन्होंने यह धारणा बना ली थी कि जिस दिशा की ओर पैर बढ़ें उसी ओर चलते रहना चाहिये, पीछे नहीं लौटना चाहिये। उत्तर दिशा की ओर चलने पर नैपाल जा पहुँचे, नैपाल से तिब्बत और तिब्बत से चीन पहुँच गये। चीन में वे किसी की भाषा नहीं समझ पाते थे। यदि कोई खाने-पीने को दे देता तो प्रसन्नता से खा लिया करते थे। किसी से कुछ माँगने की वृति तो थी ही नहीं। चीन में वे एक अंग्रेज के बगीचे में जा पहुँचे, जब तक वे चीन में थे, उसी बाग में उन्होंने निवास किया। अंग्रेज सज्जन ने उनको भारतीय संत समझ कर अनुकूल भोजन आदि का प्रबन्ध कर दिया, बड़ी सेवा की। चीन से आसाम, तथा ब्रह्मदेश में विचरते हुए भारत में प्रवेश किया।

संत नागा निरंकारी की तपोभूमि के प्रतीक रूप में उत्तरप्रदेश के कानपुर जनपद का पालीराज्य तथा प्रयाग जनपद का अटसराय स्थान स्मरणीय हैं। उन्होंने पाली में इस जीवन के अन्तिम दिनों में निवासकर अपनी आत्मानुभूति से असंख्य प्राणियों का कल्याण किया। वे पाली-निवास काल में अपनी सहजावस्था में थे। पाली के कण-कण में उनकी दिव्य अभिव्यक्ति का दर्शन होता है। पाली राज्य की राजमाता-सती साध्वी गिरिराज कुमारी और उनके पुत्र अमरनाथ ने नागा बाबा के चरणों में असीम श्रद्धा प्रकट कर उनकी महती सेवा का अधिकार प्राप्त किया।

अवधूत नागा के जीवन में बहुत सी अलौकिक और चमत्कार पूर्ण घटनायें घटी थीं। एक समय आसुरी प्रकृति के कुछ व्यक्तियों ने उनकी योग शक्ति की कड़ी परीक्षा ली। उन्हें नग्न वेष में विचरण करते तथा बालकों के साथ खेलते देखकर उन लोगों ने समझा कि नागा बाबा ढोंग कर रहे हैं। नागा बाबा कानपुर जनपद के बरई ग्राम में बालकों के साथ खेलते हुए भ्रमण कर रहे थे। रात होते ही एक कमरे में विश्राम के लिये उनको रख दिया तथा उनके ब्रह्मचर्य और योग शक्ति की कड़ी परीक्षा के लिये समझा-बुझा कर एक वेश्या को भीतर भेज कर बाहर से ताला लगा दिया।...दूसरे दिन सबेरे ताला खोलने पर वे कमरे में नहीं थे, अदृश्य हो गये थे। वेश्या अर्धविक्षिप्त दशामें थी। उसने चेत होने पर कहा कि मैंने बाबा का आलिंगन करना चाहा पर वे मुझे स्त्री के रूप में दीख पड़े और तत्काल अदृश्य हो गये। कुछ दिनों के बाद उस वेश्या का

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्राणान्त हो गया। इस प्रकार परीक्षा की कसौटी पर सन्त नागा निरंकारी खरे निकले।

एक बार संक्रान्ति पर्व के अवसर पर नागा निरंकारी पाली के भक्त राजपरिवार के साथ जाजमऊ नामक स्थान पर गंगा-स्नान करने गये थे। वे गंगा की रेती में बैठ कर भोजन कर रहे थे, अचानक 'बच गया' शब्द उनके मुख से निकल पड़ा। पूछने पर उन्होंने कहा कि गंगा-यमुना के संगम पर एक नाव भँवर में फँस रही थी, एक व्यक्ति डूबने वाला था पर बच गया। नागा बाबा इतना कहने के बाद मौन हो गये। किसी ने घटना के सम्बन्ध में कुछ पूछने का साहस नहीं किया। बाद में पता चला कि संक्रान्ति पर्व पर संगम-स्नान करने के लिये नागा निरंकारी का एक भक्त नाव पर स्नान करने जा रहा था। थोड़ी देर में नाव भँवर में फँस गयी। डूबने ही वाली थी कि भक्त ने प्राणरक्षा के लिये अपने गुरुदेव नागा निरंकारी का स्मरण किया। उसे तत्क्षण अनुभव हुआ कि एक अदृश्य शक्ति ने धक्का देकर नाव को भँवर से बाहर निकाल लिया। यही कारण था कि जाजमऊ में नागा बाबा के मुख से 'बच गया!' शब्द अचानक निकल पड़ा था। उनकी महती कृपा-शक्ति का वर्णन करना साधारण काम नहीं है।

संत नागा निरंकारी उच्चकोटि के सिद्ध-पुरुष और परम भगवद्विश्वासी थे। वे कहा करते थे कि प्रत्येक अवस्था में भगवान पर निर्भर रहना चाहिये, यही सबसे बड़ी आस्तिकता है। एक समय वे भ्रमण करते-करते एक लम्बे और सघन बन में पहुँच गये। कोसों तक बस्ती का नाम नहीं था। वे तीन-चार दिन के भूखे-प्यासे थे। वन में उन्हें एक सती की समाधि दीख पड़ी। वे ध्यानस्थ होकर बैठ गये। थोड़े समय के बाद सती थाली में भोजन तथा मेवे, मिष्ठान्न और फल लेकर प्रकट हो गयीं। नागा निरंकारी ने भोजन किया, सती अदृश्य हो गयीं, इस प्रकार एक रहस्यमयी—भागवती शक्ति सदा उनकी रक्षा में तत्पर थी।

एक बार वे बदरीनारायण की यात्रा कर रहे थे। साथ में दो व्यक्ति और थे। सन्त नागा निरंकारी लक्ष्मण झूला के मध्य-भाग से गंगा में कूद पड़े, गंगाजी उस स्थान पर बहुत गहरी हैं, धारा अमित तेज है। साथ के व्यक्तियों ने सोचा कि वे स्नान करने के लिये कूद पड़े पर बात कुछ और थी। लक्ष्मण झूला वाली घटना की कानपुर के किसी शिष्यको तार द्वारा सूचना देकर दोनों व्यक्ति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आगे बढ़े। कुछ समय के बाद फतहपुर जनपद में बालमण्डली के साथ उनको खेलते और विचरते देख कर लोग आश्चर्यचकित हो गये। इस घटना के सम्बन्ध में उन्होंने बताया था कि जब मैं लक्ष्मण झूला पर था, मुझे ऐसा लगा कि गंगाजी के नीचे ऋषिमण्डली हैं, मैं मण्डली में सम्मिलित होने के लिये कूद पड़ा। बात ठीक थी। ऋषि मण्डली में पहुँचने पर मेरा पैर एक चक्र में पड़ गया, ऋषियों को मेरी उपस्थिति से बड़ा आश्चर्य हुआ, उनसे बात कर मैं लौट आया। इस घटना से उनकी योगशक्ति का पता चलता है।

सन्त नागा निरंकारी ध्यानयोगी थे। वे कहा करते थे कि ध्यान योग की बड़ी महिमा है। ध्यान योग से मैंने लक्ष्मी जी का दर्शन किया था और सती जी से भिक्षा प्राप्त की थी। ध्यान में मुझे लक्ष्मी जी ने दर्शन देकर मेरे दाहिने हाथ पर अपने हाथ के अंगूठे की छाप लगा दी, कहा था कि 'तुमको भगवान के पास जाने में कोई नहीं रोक सकता। उस छाप की सहायता से मैं भगवद्धाम में गया, हनुमान जी ने रोकने की चेष्टा की पर छाप देख कर विवश हो गये, इसी प्रकार जय-विजय का भी प्रयत्न विफल हो गया। मैंने भगवान का परम दिव्य रूप देखा, उनके क्रीट, कुण्डल और मुकुट बड़े दिव्य थे। ध्यानयोग में मुझे एक ऋषि-मण्डली में भी उपस्थिति होना पड़ा, अमृत बँट रहा था, मैंने शुक्राचार्य के संकेत से अमृत पी लिया, जन्म और मरण के बन्धन से मुक्त हो गया। सन्त नागा निरंकारी के जीवन की इन दिव्य घटनाओं का श्रद्धा और विश्वास के प्रकाश में दर्शन किया जा सकता है। नागा निरंकारी ने अपनी ब्रह्मवाणी-रचना में ध्यान योग की दिव्य घटनाओं का वर्णन किया है।

सन्त नागा निरंकारी संकल्प-विकल्पों से परे थे, सदा भगवद् आनन्दके पारावार में निमग्न रहते थे। एक समय उन्होंने असोथर राज्य के कुँवर चन्द्र-भूषण सिंह के विशेष आग्रह पर उनके राजप्रासाद को अपनी चरण-धूलि से पवित्र किया। कुँवर महोदय ने उनके शरीर पर एक कीमती दुशाला डाल दिया। उनकी इस चेष्टा का महादानी कर्ण के अभिनवरूप नागा निरंकारी पर तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा। वे बाल-मण्डली के साथ खेलते-खेलते अपनी कुटी पर पहुँच गये। शाम का समय था। धूनी जल रही थी। धूनी के सामने बैठ गये। दुशाला धूनी में गिर कर जल गया। विरक्ति के हिमालय पर अवस्थित नागा निरंकारी ने लोभ की ज्वालामुखी पर हाथ नहीं रखा। वे लोभ-मोह तथा माया से नितान्त परे थे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वे परम तपस्वी थे। उनमें अपार आत्म तेज था। बदरीनारायण की यात्रा करते समय वे एक दिन एक चट्टी-विश्रामालय में विश्राम कर रहे थे। उनके साथ त्यागी जी उनके शिष्य थे। सन्त नागा ध्यान में लीन थे। त्यागी जी ने देखा कि साँप के आकार-प्रकार का एक लम्बा तेजोमय प्रकाश नागा जी के सामने आकर अदृश्य हो गया। ध्यान के बाद त्यागी जी ने इस घटना के सम्बन्ध में बात की। वे मुसकराने लगे। उनके उठने पर आसन के नीचे कुछ भी न दीख पड़ा। ... सन्त नागा निरंकारी ने इस घटना के सम्बन्ध में बतलाया था कि साक्षात् बदरी नारायण अपने परम तेजोमय रूप में उन्हें दर्शन देने आये थे।

सन्त नागा निरंकारी परमात्मा के विराट रूप के अखण्ड ध्यान में तल्लीन रहते थे। उनकी विभूति – धूनी की राख परम शक्तिमती थी। उसके प्रयोग से सूखे वृक्ष हरे हो जाते थे, बीमारों का स्वास्थ्य लौट आता था और कुएँ का खारा जल पीने योग्य मीठा हो जाता था। यह केवल विश्वास या मान्यता ही नहीं है, परख और जानकारी की कड़ी कसौटी पर श्रद्धालुओं द्वारा कसी गयी बात है। सन्त नागा निरंकारी माया से परम अलिप्त होकर आजीवन आत्मराज्य में स्वस्थ थे। वे प्रदर्शन और चमत्कार से सदा दूर रहते थे। भगवन्नाम-जप पर वे बड़ा जोर देते थे। जप और ध्यान योग में ही उन्होंने अपनी तपोमयी साधना का परम स्वरूप स्थिर किया। उनकी सदा सहज समाधि लगी रहती थी, उनका प्रत्येक कार्य समाधि-अवस्था में ही सम्पादित होता रहता था। वे परम-हंस-पद में प्रतिष्ठित होकर अपनी दिव्य, अलौकिक दृष्टि से विश्वमय विश्वा-धार सत्स्वरूप परमात्मा का अनवरत दर्शन करते रहते थे। वे जन्म-जन्मान्तर से वैराग्य के अभय राज्य में विचरते हुए कुटीचक, बहूदक, हंस, परमहंस, तुरीयातीत तथा अवधूत–छः अवस्थाओं को पार कर कैलाश-विजय अथवा परमशिवमय तत्व की पूर्ण प्राप्ति के लिये नागा-निरंकारी रूप में अभिव्यक्त हुए थे। अवधूत-अवस्था उनकी अन्तिम स्थिति थी। कर्मभोग से ऊपर उठने का एक मात्र उपाय उन्होंने परमात्मा का भजन बताया। उन्होंने निर्गुण निराकार। चिन्मय परमात्मा तत्व का ही स्तवन किया। ध्यानस्थ होने पर वे भगवान के विभिन्न स्वरूप का दर्शन करते रहते थे। ध्यान में उन्हें लोक-लोकान्तर के दृश्य दीख पड़ते थे। एक बार उन्होंने अपने परम विश्वास पात्र एक शिष्य से ध्यानावस्था में ही कहा 'देखो, आकाश-मार्ग से रथ जा रहा है, उसमें दो मातायें अलौकिक शृंगार से समलंकृत हैं, वे इन्द्र के अखाड़े की देवियाँ हैं, एक माता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दूसरी देवी से मेरे विषय मे संकेत कर रही हैं।' इसी प्रकार उन्हें ध्यान मे ही शिव, विष्णु आदि का दर्शन होता रहता था। सन्त नागा निरंकारी कहा करते थे 'तत्वज्ञान भीतर से होगा, भजन करो, जप करो, ध्यान करो, जो कुछ भी करो उसे मन से करो। सब जीव परब्रह्म में ही रहते हैं, पर ब्रह्म की खोज अपने भीतर करो। अपने को परम ब्रह्म में ही अनुभव करो।' उन्होंने अपने साहब, परब्रह्मका अपनी प्रसिद्ध रचना ब्रह्मवाणी में बड़ी विलक्षणता से बखान किया है। सन्त नागा निरंकारी की उक्ति है:

'भजले श्रीनागा निरवान गुरु जी।।
साहव मेरा निरंकार है श्री में तेज प्रकाश गुरु जी।
गंगा सीस पर जटा जूट है, अखण्ड श्रीनारायण गुरुजी।।
मूरति देव अखण्ड ध्यान है, पार ब्रह्म निरंकार गुरुजी।
आदि जोति प्रकाश शक्ति की, परे पारब्रह्म गुरुजी।।
अखण्ड पूजा अखण्ड भभूत है, बैठे धर्मराज गुरुजी।
'नागा' कहैं सुनो भाई संतो, परे तत्व पहिचान गुरुजी।।"

उन्होंने अखण्ड, निर्विकार परम चेतन तत्व परमात्मा का भजन किया। इसी भजन के सहारे कैलाश-लोक की विजय की। नागा निरंकारी का कैलाश लोक परम दिव्य लोक है जिसमें सनातनं सत्य सत्ता का अखण्ड अधिवास है। इस दिव्य लोक में जीव की परम गति हो जाती है; वह योगस्थ-स्वस्थ हो जाता है।उन्होंने ध्यान योग में कैलाश का दर्शन भी किया था, उसमें अलख गंगा बहती है, उसमें संत जन स्नान करते हैं, शिव जी 'अलख-अलख' का उच्चारण करते हैं। कैलाश में ही उन्होंने गुरु नानक को भी देखा। उनकी उक्ति है, ब्रह्मवाणीसाक्षी है:

'अब चले कैलाश दीवाने मन।
ऊँची कैलाश शिव जटा फटकार दिवाने मन।
आगे उनके झूला पड़ा है,
नानक नजर निहाल दिवाने मन।
गुरु जी की मण्डली में जा पहुँचे,
दर्शन अगम अपार दिवाने मन।।'

इस प्रकार सन्त नागा-निरंकारी ध्यान में ही दिव्य लोक-लोकान्तरों मे विचरते रहते थे। ध्यान में ही उन्होंने सुमेरू पर्वत को भी देखा था, सुमेरु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पर्वत को उन्होंने सिद्धों का स्थान बताया है। वे इन्द्र लोक में भी गये थे। उन्होंने इन्द्रलोक का अनुभवपूर्ण वर्णन किया है, उनका पद है;

'भजले श्रीनागा निखान गुरुजी।
इन्द्र लोक में नागा गये हैं, छवि वरनी नहि जावे गुरुजी॥
इन्द्र कीलगी कचहरी, कवच कुण्डल कान में सोहै,
सीस पै मुकुट विराजे गुरु जी।
श्रीनागा जी बैठे सिंहासन देव दर्शन को आये गुरुजी॥
लगी कचहरी राम नाम की परियाँ शब्द सुनावें गुरुजी।
'नागा' कहैं सुनो भाई संतो दर्शन अगम अपार गुरुजी॥'

सन्त वाणी परम अनुभूतिमयी होती है, उसमें अविश्वास का प्रश्न ही नहीं उठता है। सन्त नागा निरंकारी के प्रत्येक शब्द उतने ही सत्य हैं जितने सत्य परब्रह्म परमात्मा हैं।

सन्त-साहित्य उनकी महती देन—ब्रह्मवाणी के लिये सदा आभारी रहेगा। नागानिरंकारी की ब्रह्मवाणी सन्त जगत की आलौकिक वस्तु है। नागा निरंकारी की उक्ति है कि पुस्तक पढ़ने से सत्य ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती है, मन लगा कर भजन करने से हृदय निर्मल होने पर सत्य ज्ञान का उदय होता है तथा परम शान्ति मिलती है।

उन्होंने अपनी रचनाओं में सन्त कबीर और नानक के प्रति अमित श्रद्धा व्यक्त की है, उनके प्रति नागा जी के बड़े पूज्य भाव थे। उन्होंने ध्यान में सन्त कबीर का भी दर्शन किया था।

वे जीव मात्र के प्रति दयालु थे, अपने लिये परम तपस्वी और सहनशील थे। दीन-दुखियों और अभाव पीड़ितों की सेवा और पापियों के समुद्धार के लिये ही उन्होंने शरीर धारण किया था। वे किसी की निन्दा-स्तुति के फेर में कभी नहीं आते थे। परम करुणामय थे।

उन्होंने अपने परम-धाम-कैलाश-लोक-गमन की बात बहुत पहले ही कह दी थी। पाली की कुटी के सामने चने का एक खेत था। नागा जी ने कहा कि हमने ध्यान में देखा है कि इसी चने के खेत में लोग हमारे शरीर को चिता में जला रहे हैं। उन्होंने संकेत कर दिया कि इसी स्थान पर मेरा समाधि-मन्दिर बनेगा। अपने ही कथन के अनुरूप सम्वत् १९९३ वि. की कार्तिक शुक्ल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चतुर्दशी को उन्होंने रात में शिव लोक-कैलाशधाम की प्राप्ति की। उनके शरीर का दाह-संस्कार कानपुर जनपद के पाली राज्य के उसी चने के खेत में विधि-पूर्वक सम्पन्न हुआ। उस स्थान पर उनका भव्य समाधि-मन्दिर जगत को सत्य, शान्ति और प्रेम का सन्देश देता हुआ अवस्थित है, वह उनकी तपस्या का दिव्य भौम स्मारक है, समाधि के दर्शनमात्र से मन शान्ति के गम्भीर सागर में निमग्न होकर दिव्य, शाश्वत अखण्ड सत्यामृत का रसास्वादन करता है। नागा निरंकारी की समाधि की दिव्यता और नीखता से सहसा मन मुग्ध हो उठता है। वे ब्रह्म-योगी थे, परम अवधूत और महान संत थे।

रचना

'ब्रह्मवाणी' उनकी प्रसिद्ध रचना है। जिसमें नागा निरंकारीने अपने अनुभवों को पदबद्ध किया है।

वाणी

पारब्रह्म निरंकार।
बैठे सिंहासन गुरुजी कृपाल, गगन ध्यान सुंनकार॥
ब्रह्म ध्यान ओंकार, तीन लोक में तेज अपार।
अनेक जोति प्रकाश, पार ब्रह्म निरंकार॥

अब तो चेत मुसाफिर भाई॥
बार-बार पाहरू जगावत, छोड़त नहिं अलसाई।
अब तो मिलना कठिन पियाका, उलटी भसम रमाई॥
घर है दूर मेरे साई को, जीव जंत सब उड़ि जाई।
'नागा' कहैं सुनो भाई संतो, सत्य नामकी करो दुहाई॥

पड़ी मेरी नइया विकट मँझधार।
यह भारी अथाह भवसागर, तुम प्रभु करो सहार।
आँधी चलत उड़त झराझर, मेघ-नीर-बौछार।
झाँझर नइया भरी भारसे, केवट है मतवार॥
किहि प्रकार प्रभु लगूं किनारे, हेरो दया दीदार।
तुम समान को पर उपकारी, हो आला सरकार॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

खुले कपाट-यंत्रिका हिय के, जहँ देखूं निरविकार।
'नागा' कहैं सुनो भाई संतो, सत्य नाम करतार॥

भजले सत्य नाम गुरु जी।
यहाँ कोई न आवे काम गुरुजी॥
नदी अथाह प्रवाह बहत है, केवट है वेपीर गुरुजी।
नइया के ऊपर केवट वैठा, गहरा बाँस लगाओ गुरुजी॥
नइया पड़ गई मंझधार में, ऊपर तम्बू तान गुरुजी।
चारों ओर से पवन चलत है, नइया बहुत उड़ान गुरुजी॥
नइया जाके लगी किनारे, ऊपर डोरी तान गुरुजी।
'नागा' कहैं सुनो भाई संतो दर्शन आठो याम गुरुजी॥

तू गोरिया बड़ी मूरख गँवारी॥
खेलत फिरत सखिन के संग यों नंगे-बदन कुमारी।
अब छतियन में यौवन उमगे मत तू खेल दुलारी॥
व्याह के वाजे वाजन लागे, करत हैं लोग तयारी।
पिया तुम्हारी वांह गहेंगे, लै जै हैं ससुरारी॥
आगे चलि है सइया का घोड़वा पीछे से डोलिया तुम्हारी।
माई बाप घर रोय मरेंगे, कहा करैं हितकारी॥
सब सिंगार सजन पड़ी तुम का नई रसूम संचारी।
पांच पचीस मिलि मंगल गावैं गौने की देख तयारी॥
थर थर कांपै क्यों जिय डरपै सेज की ओर निहारी।
सत्य नाम आशा तुव पूरी कह नागा गिरिधारी॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्त रामप्रसाद

देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद, प्रसीद, मातर्जगतोऽखिलस्य।
प्रसीद विश्वेश्वरिपाहि विश्वं, त्वमीश्वरीदेवि चराचरस्य॥

शरणागत की पीड़ा का हरण करनेवाली देवी! आप प्रसन्न हों। अखिल जगत की जननी! प्रसन हों। विश्वेश्वरि, विश्व की रक्षा करें। देवि! आप चराचर की अधीश्वरी हैं।

—दुर्गासप्तशती

मृदुता की सौन्दर्यराशि—बंगभूमि की भावनाप्रधान कोमल गरिमा अमित आनन्दमयी है; बंगभूमि ने बड़े-बड़े सन्त महात्माओं, भक्तों और महापुरुषों को जन्म दिया है। उसकी पवित्र गोद में— कनक मयी धूलि-धवलिमा में अभिनव कृष्ण चैतन्य महाप्रभु ने जिस मधुर और परम दिव्य लीला का परिचय दिया वह भगवत्ता के इतिहास की एक विशेषता है। चैतन्य महाप्रभु की जीवन-लीला की परिसमाप्ति के लगभग तीन सौ साल बाद बंगभूमि ने शाक्त सन्त रामप्रसाद सेन का दर्शन किया। बंगाल के गाँव-गाँव में रामप्रसाद की शक्ति-भक्ति माधुरी से सम्पन्न गीत लोगों के कण्ठों के अलंकार हैं। खेत में काम करने वाले किसान, सड़क पीटने वाले मजदूर, गाय-भैंस चराने वाले लोग और अन्य कार्यों में लगे जन जिस समय राम प्रसाद के गीत-पद गाने लगते हैं उस समय ऐसा लगता है कि साक्षात् हिमाचलनन्दिनी ने साहित्य-अवतार लिया है— जन-जन के जीवन में काली का भक्ति-विग्रह अवतरित हुआ है। वंगीय शाक्त-साहित्य में ही नहीं—भारतीय सन्त साहित्य में सन्त रामप्रसाद का नाम अमर और अमिट है। रामप्रसाद लोकगायक सन्त थे। पढ़े-अनपढ़े सब-के-सब उनके गीतों को समझ लेते हैं— यह उनकी लोकप्रियता का बहुत बड़ा कारण है। उन्होंने आजीवन शक्ति की उपासना की।

सन्त रामप्रसाद वंगाल प्रान्त के प्रसिद्ध शासक नवाब सिराजुद्दौला के समकालीन थे। उन दिनों ईस्ट इण्डिया कम्पनी सिराज को राज्यच्युत कर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अंग्रेजी प्रभुता स्थापित करने का प्रयत्न कर रही थी। भारत में धीरे-धीरे अंग्रेजों की शक्ति बढ़ रही थी और मुगल राजसत्ता का द्रुत गति से ह्रास हो रहा था। समय राजनैतिक उथल-पुथल का था, ऐसी विकट परिस्थिति में रामप्रसाद ने जन्म लेकर बंगीय समाज को शक्ति की भक्ति से समृद्ध किया। उन्होंने शाक्त योग की साधना की। उन्होंने दुर्गा-भक्ति के समुद्र में पूर्ण अवगाहन कर अपना जीवन सफल और धन्य कर लिया। वे देवी के परम भक्त थे।

बंगाल के घर-घर में शक्तिपूजा परम्परागत है। सन्त रामप्रसाद का परिवार भी शाक्त ही था। उनके पूर्वज साधारण गृहस्थ थे। सन्त रामप्रसाद ने बंगाल प्रान्त के हालीशहर के निकट कुमारहट्ट गाँव में सम्वत् १७७५ वि. में जन्म लिया। उनके पिता रामराम सेन थे। उनकी आयु बहुत कम थी। रामप्रसाद सेन का बचपन बड़ी गरीबी में बीता। बाल्यावस्था से ही उन्होंने दुर्गा में भक्ति और अध्ययन में रुचि का परिचय दिया। उन्हें बंगला, संस्कृत, फारसी और हिंदी का अच्छा ज्ञान था। जवान होने पर रामप्रसाद कलकत्ता चले आये। कलकत्ता में उनके परिचित बकुलचन्द्र घोषालने जो किसी राज्य के दीवान थे, बहीखाता लिखने के लिये उनको नियुक्त कर लिया। रामप्रसाद ने बही पर देवी के सम्बन्ध में अनेक पद रचकर लिख दिये। वही में उन्होंने एक स्थान पर जगज्जननी से प्रार्थना की थी कि हे माता, मुझे वही खाता लिखने में तनिक भी आनन्द नहीं आता है, आप कृपापूर्वक मुझे अपने चरणों की भक्ति प्रदान कीजिये, आप ही मेरे लिये सब कुछ हैं, आप ही मेरी अक्षय निधि हैं।

आमाय देउ मा तबिलदारी।
आमि निमकहराम नइ शंकरी।
पदरत्नभाण्डार सबाइ लुटे, इहा आमि सइते नारि।
भाण्डार जिम्मा आछे जार से ये भोला त्रिपुरारि।
शिव आशुतोष स्वभावदाता तबु जिम्मा राख तारि।
अर्द्ध अंग जायगीर तबुशिवेर माइना भारि।
आमि बिना माइनेर चाकर, केवल चरणधूलार अधिकारि।
यदि तोमार बापेर धाराधर, तबे बटे आमि हारि।
यदि आमार बापेर धाराधर, तबे ते मा पेते पारि।
'प्रसाद' बले एमन पदेर बालाइ लये आमि मरि।
पदेर मत पद पाइतो से पद लये विपद सारि।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बही पर यह पद अंकित देख कर मालिक चकित हो गया और मा के कृपापात्र को साधारण पद पर रखना ठीक नही समझा।

उनका मन नौकरी से उदासीन हो गया, दीवान ने बड़ा प्रयत्न किया कि वे अपने काम में लगे रहें पर रामप्रसाद का मन तो देवी के चरण-कमल-परिमल का रसास्वादन कर चुका था। दीवान ने उनकी जीविका के लिये बीस रूपये की वृत्ति की व्यवस्था कर दी। कृष्णनगर (नदिया) के राजा कृष्णचन्द्र की राज-सभा में उनका परिचय कराया, कृष्णचन्द्र, शाक्तों और बंगीय जनता ने उनको कविरञ्जन की उपाधि से विभूषित किया। राजा कृष्णचन्द्र ने जीविका के लिये उन्हें सौ बीघा जमीन दी। रामप्रसाद ने जागतिक माया-बन्धन तोड़ कर शक्ति के भक्ति-राज्य में प्रवेश किया। उन्होंने कहा कि काली का नाम-उच्चारण करना चाहिये। लोग कहेंगे पागल हो गया है, वे गाली देंगे पर इसकी तनिक भी चिंता नहीं करनी चाहिये। संसार में भले बुरे दोनों हैं। भला–अच्छा कार्य करना ही श्रेयस्कर है। काली की नामरूपी तलवार से माया और सांसारिक बन्धन को काट डालना चाहिये। जगत के प्रपंच और माया ही विनाश के कारण हैं। रामप्रसाद को संसार से वैराग्य हो गया। वे देवी की उपासना में लग गये। रात-दिन काली के पदका चिंतन ही उनका प्रधान कार्य हो गया– धर्म हो गया। उन्होंने साधना के क्षेत्र में प्रवेश कर जगद्धात्री अम्बिका के चरणों में आत्मनिवेदन समर्पित किया कि क्या मातृत्व केवल कथन-मात्र के ही लिये है? केवल जन्म देना ही मातृत्व नहीं है। मा तो अपने शिशु की वेदना का ज्ञान रखती हैं। जन्म देनेवाली माता दसमाह और दस दिन तक गर्भ की वेदना का सहन करती हैं। पर मेरी मा पूछती तक नहीं हैं कि मैं कहा हूँ। बच्चे से भूल-चूक या अपराध हो जाने पर सांसारिक माता-पिता उसे सही रास्ता बतलाते हैं। पर मा, आप देखती हैं कि मृत्यु मुझे मारने के लिये कितने वेग से बढ़ती चली आ रही है पर आप निश्चिंत हैं। आप ने ऐसा आचरण कहाँ सीखा? यदि आप भी अपने बाप-हिमाचल की ही तरह कठोरता का वरण करती हैं तो जगज्जननी नाम धारण करने का श्रेय छोड़ दीजिये। सन्त राम-प्रसाद के गुरु श्रीनाथ दत्त थे। गुरु के चरण कमलों में उनका दृढ़ अनुराग था। उन्होंने मन को समझाया कि तुम सांसारिक वैभव का परित्याग कर मृत्युञ्जय की शरण में अभय प्राप्त करो–भवरोग की यही औषध है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एक बार गंगा की मध्यधारा पर बंगाल के तत्कालीन नवाब सिराजुद्दौला से उनकी भेंट हुई थी। ग्रीष्म ऋतु का समय था। राजनौका द्रुत वेगसे भागीरथी के जल में कल-कल, छप-छप ध्वनि करती चली जा रही थी। राजनौका के ठीक सामने थोड़ी दूर पर एक साधारण नौका में सन्त रामप्रसाद सितार के तार छेड़ कर मधुर राग-रागिनी में काली का मनोरञ्जन कर रहे थे। नवाब ने रामप्रसाद के दर्शन को अपना परम सौभाग्य समझा, राजनौका पर सन्त का आवाहन किया। बंगाल का समग्र राजवैभव उनके चरणों पर नत हो गया। नवाब ने पद सुनाने की प्रार्थना की। उन्होंने शास्त्रीय संगीत गाना आरम्भ किया। नवाब सिराज ने विनम्रता पूर्वक कहा कि महाराज, मुझे शास्त्रीय संगीत में तनिक भी स्वाद नहीं मिल रहा है, मुझे तो आपके हृदय प्रदेश से निकले कालीमहाशक्ति के स्तवात्मक पद सुनने की लालसा है। सन्त रामप्रसाद ने पद-गान आरम्भ किया। समस्त वातावरण जगज्जननी जगदम्बा के भक्तिपरक स्तवन से परिव्याप्त हो उठा। नवाब सिराजुद्दौला उनसे बहुत प्रभावित हुए। वे उनकी निष्कपटता और सरलता से मुग्ध हो गये।

एक समय की बात है, रामप्रसाद बेड़ा बांध रहे थे। उनकी कन्या का नाम जगदीश्वरी था। भगवतीने जगदीश्वरी के रूप में प्रकट होकर बेड़ा बांधा, उनके अदृश्य होने पर पता चला कि जगदीश्वरी तो किसी और काम में व्यस्त थी, रामप्रसाद की वाणी बड़ी करुण ध्वनि से वातावरण. में परिव्याप्त हो उठी :

मन केन मार चरण छाड़ा।
ओमन भाव शक्ति पाबे मुक्ति।
बांधो दिया भक्ति दड़ा।
समय थाकते ना देखले मन
के मन तोमार कपाल पोड़ा।
मा भक्ते छलिते, तनया रूपे तें
बँधेन आसि घरेर बेडा।
जेइ ध्याबे एकमने
सेइ पाबे कालिका तारा।
ताई देखो कन्या रूपे
रामप्रसादेर बाँध छे बेड़ा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्त रामप्रसाद का सबसे बड़ा कार्य शक्ति-भक्ति का पवित्र प्रचार था। जगदम्बा के चरणों में सर्वात्मभाव से समर्पण ही उनका सिद्धान्त अथवा उपासनाक्रम था। वे कालिका के पूर्ण भक्त थे। उनका समग्र जीवन असाधारण रूप से शक्तिमय था। उनकी जगदम्बा के प्रति उक्ति है कि हे माता, आप का विस्मरण होने पर मैं मन-ही-मन वेदना की जलन सहता रहता हूँ। माँ, मेरी प्रबल इच्छा यही है कि मैं आप के अभयप्रद चरणों की धूलि हो जाऊँ। सन्त रामप्रसाद के पथ प्रदर्शक गुरु थे, शास्त्र ही उनके लिये दीपक था, साधना का मार्ग ही उनका विश्वास था—धर्म था। उन्होंने भगवती जगदम्बा के चिन्तामणि-क्षेत्र की प्राप्ति को ही अपने जीवन का ध्येय स्वीकार किया। मन, वचन और कर्म से वे शाक्त थे, माँ के रूप में उन्होंने परमात्मा का दर्शन किया, शक्ति में ही उनके आत्मराज्य की परमेश्वरी शक्ति प्रतिष्ठित हो उठी। शक्ति-चिंतन ही उनके साधनागत भक्तिमय जीवन का मूलाधार था। उन्होंने करुण स्वर में जगत् के अविद्या-माया-अन्धकार से आक्रान्त होकर माँ काली का आवाहन किया कि माँ, मैं घोर विपत्ति में हूँ, चारों ओर अन्धकार है, अंधेरी रात है। आप कठोर हैं। मैं तो कहीं का नहीं रहा, मानों चकोर को सुधा मिली ही नहीं; मेरे भाग्य का बंधन ऐसा क्रूर है कि मैं करना कुछ चाहता हूँ पर कर बैठता हूँ कुछ; मेरा मन ऐसी संघर्षमयी परिस्थिति में विक्षिप्त सा हो गया है। उनकी भक्ति के अधर महाकाली के चरणदेश में स्पन्दित हो उठे कि माँ, मैंने क्या दोष किया है कि, आपने मुझे बन्धन में बाँध दिया है। 'माँ' शब्द तो ममता का प्रतीक है, बालक के रोने पर माँ अपनी गोद में बैठा लेती है। संसार की यही रीति है, सब मातायें ऐसा ही करती हैं। तो क्या मैं संसार से अलग हूँ। आप माँ होकर भी मुझे प्यार नहीं करती हैं। मा, एक बार मेरी आँख की पट्टी हटा लीजिये, मुझे अपने श्रीचरणों का दर्शन करने दीजिये। एक स्थल पर राम प्रसाद की बड़ी विचित्र उक्ति है, माँ काली के प्रति एक व्यङ्गोक्ति है: 'माँ, जिन चरणों की अभिलाषा स्वयं भगवान शिव किया करते हैं उनको भय से आपने महिषासुर को दे डाला है। सच है, जिसके हाथ में तलवार है आप उसी की बात सुनती हैं। प्राण बचाने के लिये आप महिषासुर की अक्षय और शाश्वत शरणगति हो गयीं।'

सन्त रामप्रसाद ने शक्ति-उपासना का कठिन पथ स्वीकार किया। उनकी उपासना में तपोबल का आधिक्य है। उन्होंने काली को उलाहना देते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हुए एक पद में उनकी कृपा की याचना की। उनका कथन है कि माता, मैं तो गृहस्थ था पर आप ने संन्यासी बना दिया। ..... माँ, रात-दिन मैं भयंकर दुख की आग में जल रहा हूँ। उन्होंने भगवती से मुक्ति माँगी। उन्होंने अपनी मनोदशा का परिचय देते हुए कहा कि मैं काशी जाकर क्या करूँगा, उस महा-नगरी में निवास करने से क्या होगा? मेरे पिता शिव जो मेरी विमाता को अपने सिर पर धारण करते हैं श्मशान में निवास करते हैं। उन्होंने आत्मपरिचय के स्वर में बताया कि हे माता, मैं टूटे-फूटे घर में रहता हूँ, मैं भयभीत होकर आपको पुकार रहा हूँ। ... मैं छः तस्करों से भयभीत हूँ जो कच्ची दीवार को पार कर भीतर आ जाते हैं।

सन्त रामप्रसाद ने भारतीय सन्त-साहित्य की समृद्धि-वृद्धि में बड़ा योग दिया। उनकी वाणी में शक्ति के सौन्दर्य, माधुर्य और ऐश्वर्य का अद्भुत चित्रांकन हुआ है। उनकी वाणी भक्तिरस से सनी लोकवाणी है। भगवती भागीरथी के तट पर जनता की अपार भीड़ उत्सुकतापूर्वक उनके कंठसे निकली काव्य धारा में अवगाहन कर अपना जीवन सफल मानती थी। उनके समकालीन कवि कमलाकान्त भट्टाचार्य उनकी वाणी से बहुत प्रभावित थे। सन्त रामप्रसाद मध्यकालीन शाक्त साहित्य के प्रमुख उन्नायकों में से एक थे। उन्होंने अपनी आत्मा के स्वर को भगवती महाकाली की चरण-भक्ति में सराबोर कर दिया। मधुर मालश्री रागिनी में भक्तिपूर्ण पद रचकर रामप्रसाद ने आध्यात्मिक क्षेत्र में क्रान्ति प्रस्तुत की। उन्होंने प्रत्येक पद में, प्रत्येक शब्द और अक्षर में माता जगदम्बा के ऐश्वर्य का दर्शन किया। साहित्य और साधना के क्षेत्र में उनके जीवन कालमें ही उनकी प्रसिद्धि दिन-दूनी, रात-चौगुनी बढ़ने लगी। उनका समग्र जीवन जगदम्बा की भक्ति का निर्मल दर्पण था। सन्त रामप्रसाद पर भगवती की असाधारण कृपा थी। वे नित्य गंगास्नान करने जाया करते थे। एक दिन रास्ते में उनसे एक स्त्री ने पद गाने के लिये कहा। रामप्रसाद ने कहा कि आप मेरे घर चलिये, मैं अभी गंगा-स्नान से लौट कर आऊँगा, आप को पद सुना दूँगा। गंगा-स्नान कर लौटने पर उन्होंने स्त्री की खोज की पर कहीं पता न चलने पर वे बहुत दुःखी हुए। वे मन्दिर गये। मन्दिर में उन्हें पता चला कि साक्षात दुर्गा ने ही काशी से आकर उन्हें दर्शन दिया। वे जगज्जननी के आदेश से काशी की ओर चल पड़े। मन में श्रद्धा और भक्ति उमड़ रही थी, रसना पर माता के गुणानुवाद का माधुर्य था और नयनों से अश्रु प्रवाहित

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हो रहा था। रास्ते में वे बीमार पड़ गये। उन्होंने पद गाया कि 'हे माता, मैं काशी नहीं जा सकता, आपके चरण ही मेरी काशी हैं।' स्वस्थ होने पर आगे बढ़ना चाहा पर रोगग्रस्त हो गये, स्वप्न में उन्हें भगवती ने दर्शन दिया। रामप्रसाद ने कहा कि मेरे लिये काशी का उपयोग ही क्या है, माँ के चरण-कमल ही मेरे लिये तीर्थक्षेत्र हैं, उनका ध्यान करने पर मैं आनन्द-सागर में निमग्न हो जाता हूँ। काली का नाम लेते ही पापों का क्षय हो जाता है। उन्होंने कहा कि मैं शक्कर नहीं बनना चाहता हूँ, मैं शक्कर खाना चाहता हूँ। आशय यह है कि उन्होंने अद्वैत मत का खण्डन कर भगवती की भक्ति का रसास्वादन करने का ही पक्ष दृढ़ किया। उन्होंने काली के चरणों में यही प्रार्थना की कि अन्त समय में मेरे प्राण आप के ही चरणों में अवस्थित हों।

सम्वत् १८३२ वि. में उन्होंने नश्वर शरीर त्याग दिया। मृत्यु के पहले उन्होंने काली की विधिपूर्वक पूजा की और तत्पश्चात् पद-गान करते हुए माँ के धाम में प्रवेश किया।

वल देखि भाइ कि हय मोले।
एइ वादानुवाद करे सकले।
केउ वले भूत प्रेत हवि, केउ बले तुइ स्वर्गे जावि।
केउ वले सालोक्य पाबि, केउ बले सायुज्य मेले।
वेदेर आभास तुइ घटाकास, घटेर नाश के मरण बले।
उरे शून्ये ते पाप-पुण्य गण्यमाण्य करे सब खोयाले।
एक घरे ते बास करि छे, पंच जने मिले जुले।
से ये समय हले आपना आपनि जे जेखाने जावे जावे चले।
'प्रसाद' वले या छिल भाइ हरि रे निदान काले।
जेमन जलेर विम्व जले उदय लये हये मिशाय जले।

ऐसी मान्यता है कि काली-प्रतिमा का विसर्जन होते समय वे गंगा में विरह-कातर होकर कूद पड़े और दूसरे लोक में चले गये। अन्तिम समय में उन्होंने कहा कि सावधान! नौका डूब रही है, हे असावधान मन, समय बीतता चला जा रहा है पर तुमने काली की भक्ति नहीं की। तुमने नौका पर अनुपयोगी पदार्थ रख कर उसको बोझिल बना दिया। दिन भर तुमने घाट पर प्रतीक्षा की, शाम को तुम धारा के पार हो जाओगे। तुमने अपनी पुरानी नौका पापों से लाद दी है; यदि तुम संसार-सागर को पार करना चाहते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हो तो केवट मल्लाह रूपी परमात्मा का स्मरण करो। भीषण और उत्तुंग लोल लहरियों से भयभीत होकर छः मल्लाह–पांच कर्मेन्द्रिय और चित्त ने साथ छोड़ दिया है। परमात्मा ही पार लगायेंगे, विश्वास रखो। भगवती दुर्गा-परमात्मा शक्ति में उनका अटल विश्वास था, दृढ़ निष्ठा और भक्ति थी। उनकी भक्ति मौलिक थी। उन्होंने मृत्यु से कहा कि तुम क्षण भर के लिये ठहर जाओ। मुझे जोर-जोर से मा का नाम-उच्चारण कर लेने दो। यद्यपि तुम मुझे ले ही जाओगे तो भी मुझे इस बात की तनिक भी चिंता नहीं है। क्या मैंने अपने गले में देवी के नाम की माला व्यर्थ पहनी है? महेश्वरी ही मेरी मालिक–जमींदार हैं और मैं उनका सेवक हूँ– किसान हूँ। यद्यपि मैं स्वतन्त्र हूँ, मुक्त हूँ फिर भी मैंने उनका सारा-का-सारा कर दे डाला है, कुछ भी देना शेष नहीं है। क्या मा के जीवन-नाटक को दूसरे लोग समझ सकते हैं? जब त्रिलोचन– साक्षात् शिव उनकी महिमा नहीं समझ पाते हैं, तब क्या मैं उनका रहस्य जान सकता हूँ।.... दुर्गा का नाम ही मेरे लिये अमृतमय मुक्ति-क्षेत्र है। अन्तिम श्वास तोड़ते समय उन्होंने करुणाभरी आवाज में कहा कि मा, मेरे जीवन का खेल समाप्त हो गया, अयि आनन्दमयी मा, समाप्त हो गया। खेल के लिये ही मैंने पृथ्वी पर जन्म लिया था। मैंने पृथ्वी की धूलि में अपना जीवन-खेल खेला। अयि, हिमाचलनन्दिनी! इस समय काल मेरे सिर पर नाच रहा है, मुझे मृत्यु का भय सता रहा है। बचपन के दिन मैंने खेल-कूद में नष्ट कर दिये, मुझे सारा समय प्रार्थना में लगाना चाहिये था। मा, अब मैं शक्तिहीन और वृद्ध हूँ, मुझे बताइये कि क्या करना चाहिये। मा, आप शक्तिस्वरूपा हैं, मुझे भक्ति प्रदान कीजिये, मुक्ति के सागर में अवस्थित कर दीजिये। इस प्रकार शक्ति-उपासना का दीप जला कर उन्होंने मा के धाम की यात्रा की। वे उच्च कोटि के सन्त थे।

रचना

उन्होंने अनेक शक्ति-सम्बन्धी पद रचे। दुर्गाभक्ति चिंतामणि विद्या-सुंदर, काली कीर्तन, शिव संकीर्तन, कृष्ण कीर्तन आदि रामप्रसाद की रचनायें हैं।

वाणी

मा आमाय घुराबे कत।
कलुर चोख-ढाका बलदेर मत।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भवेर गाछे जुड़े दिये मा पाक दिते छे अविरत।
तुमि कि दोषे करिले आमाय छटा कलुरं अनुगत।
मा शब्द ममता युत कांदले कोले करे सुत।
देखि ब्रह्माण्ड रइ एइ रीति मा आमि कि छाडा जगत।
दुर्गा दुर्गा दुर्गा वले तरे गेल पापी कत।
एक वार खुले दे मा चोखेर ठुलि देखि श्रीपद मनेर मत।

मा! कोल्हू के बैल की तरह अब मुझे और कब तक घुमायेंगी। संसार वृक्ष में बांध कर निरन्तर ऐंठन दे रही हैं। मैंने क्या दोष किया है कि आप ने मुझे इस तरह बांध दिया है। 'मा' शब्द तो ममतापूर्ण है, बालक के रोने पर मा उसे अपनी गोद में बैठा लेती हैं। संसार की यही रीति है, सब मातायें ऐसा ही करती हैं। क्या मैं संसार से अलग हूँ।'दुर्गा-दुर्गा' उच्चारण कर असंख्य पापी तर गये। मा, एक बार मेरी आखों पर से पट्टी हटा लीजिये जिससे मैं आप के चरणों का दर्शन कर सकूं।

एमन दिन कि हवे तारा,
जवे तारा तारा तारा बले
तारा बये पड़बे धारा,
हृदि पद्म उठबे फुटे, मनेर आंधार जाबे छुटे।
तखन धरातले पड़ब लुटे, तारा बले हब सारा।
तयाजिब सब भेदाभेद, घुचे जाबे मनेर खेद।
ओरे शत शत सत्यवेद, तारा आमार निराकार।
रामप्रसाद रटे, मा विराजे सर्व घटे।
ओरे आखि अन्ध, देख माके, तिमिरे तिमिर-हरा।

मा तारा! क्या ऐसा भी दिन आयेगा जब 'तारा तारा' पुकारते आँखों में आँसू की धारा उमड़ पड़ेगी, हृदय-कमल खिल उठेगा, अन्धकार नष्ट हो जायेगा और मैं धरती पर लोट कर आप का नाम जपते-जपते धन्य हो जाऊँगा; भेदभाव छोड़ दूंगा तथा मन का खेद मिट जायेगा। हे वेद, मेरी मा तारा निराकार हैं, वे घट-घट में विराजमान हैं। हे आँख के अन्धो, देखो, वे अन्धकार का नाश कर अन्धकार में ज्योतिमान हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संत रवि साहब

रवि साहब गुरु सूरमा, काटी भवजञ्जीर।
कादर अपनो जानिके, ले गये भवजल-तीर॥

—संत कादर साहब

संत रवि साहब का नाम गुजरात के निर्गुण संत-साहित्य में स्वर्णाक्षरों में अंकित है। उनकी वाणी में संतमत प्रतिपादित यौगिक साधना तथा तपस्या और अद्वैत ब्रह्म–निर्गुण निर्विकार राम के नाम-चिंतन का विलक्षण और दिव्य चित्रांकन सुलभ है। रवि साहब ने विक्रम की अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण और उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध को अपनी मौलिक विचारधारा से प्रभावित किया। वे अनुभवी और उच्च कोटि के ज्ञानी थे। उन्होंने गुजराती साहित्य को परमात्मा के सत्यरूप-चिंतन से समृद्ध बनाने में बड़ा योग दिया। उन्होंने उस समय के गुजराती जन-समाज को आध्यात्मिक क्रान्ति से सचेत और सावधान किया। रवि साहब के जीवन-काल में दिल्ली की केन्द्रीय मुगलराज सत्ता तीसरे पहर में प्रवेश कर रही थी। देश के भीतर पुर्तगाल, फ्रान्स और इंगलैंड तथा हालैण्ड की व्यापारिक कम्पनियाँ अपने पैर जमाने की चेष्टा कर रही थीं। मध्य भारत में शिवाजी महाराज के वंशजों से संरक्षित और पेशवा–पन्त आमात्य द्वारा प्रतिष्ठित महाराष्ट्रीय शक्ति दिल्ली तक अपने आतंक का विस्तार कर रही थी, बंगाल के नवाब और दक्षिण के प्रान्तीय तथा स्वतन्त्र शासक उस महाशक्ति से आतंकित थे। राजनीति करवट ले रही थी। राजस्थान अपनी मेवाड़ी स्वतन्त्र सत्ता के बल पर अडिग था। ऐसे महत्वपूर्ण ऐतिहासिक समय में सन्त रविसाहब ने सत्य, प्रेम और शांति के प्रचार के लिये शरीर धारण किया। अपने सन्तसद्गुरु देव महात्मा भाणसाहब की कृपा, आशीर्वाद और प्रसाद से उन्होंने असंख्य प्राणियों को भवसागर से पार उतार दिया। वे मस्त सन्त थे।

संत रवि साहब का जन्म गुजरात के आमोद मण्डल के तणछा ग्राम में सम्वत् १७८३ वि. में हुआ था। वे जाति के वैश्य–श्रीमाली थे। उनके पिता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मनछा राम बड़े सात्विक स्वभाव के व्यक्ति थे। इसी प्रकार उनकी माता इच्छा-बाई भी परम सती-साध्वी थीं। दोनों के प्रभाव से रविदास– रविसाहब की रुचि वचपन से ही अध्यात्म की ओर थी। साधु-सन्तों के प्रति हृदय में सहज अनुराग था, वे उनकी सेवा के लिये सदा इच्छुक रहते थे। धीरे-धीरे उनके मन में वैराग्य का उदय होने लगा और वे एक सद्गुरु की खोज में लग गये।

उन दिनों गुजरात, कच्छ और सौराष्ट्र में सन्त भाण साहब का नाम बहुत प्रसिद्ध था। उन्हें संत कबीर और दत्तात्रेय का अवतार माना जाता है। वे उच्चकोटि के सन्त और सिद्ध महात्मा थे। उनकी सरस वाणी में परमात्मा के निर्गुण स्वरूप का अत्यन्त सफल चित्रण हुआ है। रविसाहब उनकी वाणी और साधना-पद्धति से बहुत प्रभावित थे। उन्होंने उनको अपना गुरु बनाने की इच्छा प्रकट की। वे भाण साहब के शरणागत हुए। गुरु ने समझाया कि परमात्मा का ही नाम सच्चा है, अन्य आश्रय का त्याग कर परमात्मा का भजन करने से ही परम गति की प्राप्ति होती है। उनके चरणाश्रय में रवि साहब ने परम ज्योति का साक्षात्कार किया, उनके सामने से माया और अविद्या का परदा हट गया, अन्धकार मिट गया, वे गुरुतत्व के सहारे सच्चिदानन्द का रसास्वादन करने लगे। अपने गुरु देव के साथ रहने लगे तथा संसार और प्रपंच का परित्याग कर उन्होंने साधन और भजन तथा तप में अपने समय का सदुपयोग करना आरम्भ किया। गुरु के प्रति उनके हृदय में असाधारण निष्ठा थी, उन्होंने पद-पद पर उनकी कृपा का अनुभव किया। उनके लिये गुरु का क्षणिक वियोग भी असह्य था। एक बार भाण साहब ने उनको साधना का रहस्य बताया, अध्यात्म तत्व के सम्बन्ध में उपदेश दिया। उन दिनों वे गुरु के साथ शेडखी में रहते थे। भाण साहब ने उनको शेडखीं में ही रहने का आदेश देकर स्वयं घोड़े पर सवार होकर कमिजड़ा के लिये प्रस्थान किया। भाण साहव उन्हें अपने साथ न ले गये। वे जानते थे कि रवि साहब उनके वियोग का दुख सह न सकेंगे। इसलिये कमिजड़ा में रवि साहव की अनुपस्थिति में ही उन्होंने जीवित समाधि ले ली। भाण साहब के महाप्रस्थान का समाचार पाते ही रवि साहब परम विरहापन्न हो उठे। वे बड़े दुखी हुए। उन्होंने गुरु के उपदेश के अनुसार स्थान-स्थान में घूम-घूम कर प्राणियों को आध्यात्मिक चेतना प्रदान करने तथा भगवद्-भजन में लगाने का दृढ़ व्रत लिया। उन्होंने सोचा कि मेरे इस कार्य से गुरु की आत्मा को शांति मिलेगी। भाण साहब के पुत्र खीम साहब थे। वे भी एक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अच्छे महात्मा थे। पिता की मृत्यु से वे भी बहुत चिंतित हुए। रवि साहब ने उनको अपना शिष्य स्वीकार कर आत्मज्ञान का उपदेश दिया। रवि साहब ने खीम साहब को समुद्र तट पर सायर स्थान में रहने का आदेश दिया। खीम साहब उच्च कोटि के सिद्ध सन्त थे।

अपने गुरु भाण साहब के ब्रह्मलीन होने पर सन्त रवि साहब ने गाँव-गाँव में घूम कर भगवद् भक्ति-प्रचार करने का व्रत लिया। भाण साहब लोहाणा जाति के थे इसलिये लोहाणों की उनमें बड़ी निष्ठा थी। सात हजार लोहाणों ने रवि साहब के शरणागत होकर उनके उपदेशामृत से अपना जीवन कृतार्थ किया। इसके बाद रवि साहब, अपने शिष्यों के साथ भ्रमण करने लगे। कुछ दिन तक सूरत में ठहर कर उन्होंने लोगों को सत्संग-लाभ का भागी बनाया। तत्पश्चात् शेखड़ी में चले आये और संतवाणी की रचना करने लगे।

अपने भ्रमण काल में उन्होंने गुजरात के भक्त कवि प्रीतमदास से भी भेंट की थी। शेखडी पहुँचने के पहले वे कुछ दिन के लिये लखारा गाँव में ठहर गये थे। प्रीतस दास ने रवि साहब का आगमन सुना, वे हर्षित होकर उनसे लखारा गाँव में मिलने आये। कुछ दिनों तक दोनों साथ-साथ गंगा-यमुना के संगम की तरह रह कर एक-दूसरे के सत्संग का रसास्वादन करते रहे। शेखड़ी में रवि साहब ने अधिक दिनों तक ठहरना उचित नहीं समझा। उन्होंने गिरिनार की यात्रा की। गिरिनार पर्वत पर तप करते समय उन्हे दत्तात्रेय और योगसिद्ध गुरु गोरखनाथ जी महाराज का दर्शन हुआ। कच्छ में उन्हें प्रसिद्ध सन्त निर्भय राम का समागम प्राप्त हुआ। इसी यात्रा में उन्होंने खीम साहब के पुत्र गंगा-साहब को अपना शिष्य स्वीकार किया। इस भ्रमण में उन्होंने 'विमल संत वाणी' की रचना पूरी की। संत रवि साहब के जीवन का सबसे बड़ा कार्य और सिद्धान्त था भगवान की भक्ति का प्रचार। भाण साहब के तत्व ज्ञान की दो शाखायें हो गयीं। सन्त रवि साहब ने जिस शाखाको चलाया उसका नाम 'नाद' है। दूसरी शाखा का नाम 'बुन्द' है जो खीम साहब से संरक्षित कही जाती है। रवि साहब ने राम-नाम की साधना पर बड़ा जोर दिया। भगवन्नाम में उनका अटल विश्वास था। उन्होंने कहा कि समस्त साधनों को छोड़ कर राम-नाम का ही उच्चारण करना चाहिये, सन्तों ने सदा राम के नाम की ही शरण ली है। नाम-साधना ही उनके भगवच्चिंतन का स्वरूप है। उन्होंने बताया कि राम निरञ्जन देव हैं, उनका भेद भगवान शिव शंकर जानते हैं, वे रात-दिन बड़े

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रेम से उनका नाम जपते रहते हैं। राम नाम ही सार तत्व है, सबका मूल है। राम अखिल रूप आनन्द हैं। बिना राम नाम के यह जगत एक महाजाल है, फन्दा है। उन्होंने कहा :

'रग-रग राम रमि रह्यो, निरगुन अगुन के रूप।
राम श्याम रवि एक ही, सुंदर सगुन सरूप॥'

उन्होंने अपनी वाणी में राम के निर्गुण और सगुण रूप का सरस समन्वय किया। साधना के स्तर पर रविसाहव ने संक्षेप में केवल इतना ही कहा कि जीभ से रामनाम का उच्चारण, कान से रामनाम का श्रवण, नयन से राम का दर्शन करना चाहिये, प्राणिमात्र का इतना ही कार्य है। ऐसा करने से ही लोक-हित तथा आत्महित संभव है। सन्त-साहित्य में रवि साहब को अमित गौरव-पूर्ण स्थान प्राप्त है। उन्होंने सीख दी कि मनुष्य का जन्म बार-बार नहीं मिलता है, हरि के भजन बिना जीवन धिक्कार है। उन्हीं का भजन करना श्रेयस्कर है। नश्वर संसार के बन्धन में नहीं पड़ना चाहिये।

रवि साहब के अगणित शिष्य थे। उनमें खीम साहब, गंग साहब, कादर साहव तथा मुरार साहव आदि बहुत प्रसिद्ध थे। मुरार साहब मारवाड़ के थराड नामक राज्य के राजकुमार थे। उन्होंने वड़ौदा मण्डल के शेडखी ग्राम में आकर रवि साहब से दीक्षा ली और उनके आदेश से जामनगर के खंभालिया गाँव में एक मन्दिर बना कर भगवान का भजन करने लगे। रवि साहब ने उनको वचन दिया था कि मैं अन्तिम काल में खंभलिया में ही रहूँगा और वहीं समाधि लूँगा। यात्रा-काल में सम्वत् १८६० वि. के लगभग बाँकानेर में रविसाहब के प्राण निकल गये पर उन्होंने मुरार साहब को वचन दिया था कि मैं चोला-त्याग खंभालिया में ही करूँगा। गुरु की—रविसाहव ऐसे सिद्ध सन्त की वाणी असत्य नहीं हो सकती, इसका मुरार साहब के मन म पूरा-पूरा विश्वास था। वे खंभालिया से बाँकानेर के लिये चल पड़े। वे गुरु के वियोग से व्याकुल थे। वे उनकी देह पालकी में पधरा कर खम्भालिया ले जाने लगे। पालकी जोर से चल रही थी। सन्त के चरित्र का प्रत्येक अंग विचित्रता से पूर्ण रहता है। उनके अद्भुत चरित्र में जो विश्वास नहीं करते हैं वे अभागे होते हैं। पालकी के भीतर से आवाज आयी 'मुरार धीरे-धीरे ले चलो।' मुरार ने भीतर देखा, रवि साब ने करवट बदली। मुरार आश्चर्य चकित हो गये। रवि साहब ने उपदेश दिया तथा खंभालिया में समाधि लेने का वचन पूरा किया। इस प्रकार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१८६० वि. सम्वत् में रवि साहव ने खंभालिया में समाधि ली। रवि साहवने सन्त मत का सम्पूर्ण संरक्षण किया, वे सिद्ध, सन्त, योगी सब कुछ थे।

रचना

रवि साहव ने 'ग्रन्था चिंतामणि' और 'विमल संत-वाणी' की रचना की। उनके अनेक पद और भजन मिलते हैं।

वाणी

राम भजन विना नहिं निस्तारा रे।
जाग-जाग मन क्यों सोता।
जागत नगरी में चोर न लूटे, झख मारे जमदूता।
जप-तप करता कोटि जतन कर कासी जाइ करवत लेता।
मुवा पीछे तेरी होय न मुकती ले जायेगा जमदूता।
जोगी होकर बसे जंगलमें अंग लगावे भभूता।
दमड़ी कारण देह जलावे, ये जोगी नहि रे जगधूता।
जाकी सूरत लगी राम से काम क्रोध गरदन लेता।
अधर तख्त पै आसन लगावै ये जोगी ने जग जीता॥
ऊँध्या नर सो गया चौरासी जाग्या सो नर जग जीता।
कह 'रविदास' भाण परतापे अनुभविद्या अनुभव पोता॥

राम निरञ्जन देव भेद जाणें शिव शंकर।
रात दिवस लवलाय रटत रामहिं निज अक्षर॥
उनहिं दिया उपदेश रह्या कवहूँ नहिं शूला।
राम-नाम इकसार तत्व सबहीं का मूला।
रामा रघुवंशी सकल अखिल रूप आनन्द है।
'रविदास' एक श्रीनाम बिनसकल जगत यह फन्द है॥

देखो ने माया महाबलवन्ती रे, पण्डित परगट कर जोड़े॥
राजा रंक फकीर जोगी रे, माया देखि सब कोई दौड़े।
ज्ञानी ध्यानी सबही माहीं, सबहि लिया चढ़ते घोड़े॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अबोल बुनि आसन बैठे रे, देखि महोर मुखहिं मोड़े।
धन आया जब धीरज भागी, अैसे तान माया तोड़े॥
सुंदर नारी स्वरूपवंतीरे, कामी ने मारे कोड़े।
कई नरपति ने नजरो मां लूटया, लई खप्पर मां बालोड़े॥
सद्गुरु ना अे बालक सबला, माया जाल तुरत तोड़े।
कहे रविदास सो सत्त शिरोमणि, जो भव का बंधन छोड़े॥

लोचनियुं काजल बिना सूनुं, हृदय सूनुं हरिनाम बिना।
दीपक बिना जेम मन्दिर सूनुं, रजनी सूनी जेम चन्द्रबिना॥
दशरथ बिना आयोध्या सूनी, भरत सूना श्रीराम विना।
स्नेह बिना जेम सगपण सूनुं, परिवार सूनो सहु पुत्र बिना॥
जल बिना जेम पोयणी सूनी, भ्रमर सूनो जेम कमल बिना।
भणे रविदास सुण सारंग पाणि, निर्धनिया हरिनाम बिना॥

संत अनेकन जे भये, कीन्हीं राम पुकार।
'रवीदास' सब छोड़ि के, रामहिं राम उचार॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्त नजीर

निसि दिन जो हरि का गुनगायरे,
बिगड़ी बात वाकी सब बन जाय रे।
लाख कहूँ, मानै नहि एकहु,
अब कहो, कब लग हम समझाय रे।
सोच विचार करो कछु 'यकरंग'
आखिर बनत-बनत बन जाय रे।

—यकरंग

नजीर थे तो गृहस्थ पर उनके जीवन में जिस सन्त सुलभ अल्हड़ता—मस्ती का दर्शन होता है वह उनकी विशेषता का प्रमुख स्तम्भ है। उन्होंने राजा-राव—किसी को भी कुछ नहीं समझा, परमात्मा की महत्ता और संसार के नश्वर स्वरूप के चिंतन में लगे रहना ही उनका दैनिक कार्यक्रम था। थे मुसलमान पर हिन्दू और मुसलमान के भेदभाव से बहुत ऊपर उठे हुए थे। रहीम और रसखान की तरह उन्होंने भगवान कृष्ण तथा अन्य हिन्दू देवी-देवताओं के प्रति श्रद्धा प्रकट की तथा उनके अलौकिक चरित्र का चिंतन किया। वे अद्वैतवादी सन्त थे। सूफी मत तथा प्रेम-साधना से उनकी वाणी प्रभावित है। वे स्वाभिमानी थे, अपने सुख-दुख का निवेदन उन्होंने केवल परमात्मा से किया, किसी भी वस्तु के लिये उन्होंने किसी के सामने हाथ नहीं पसारा। वे परोपकार और दीन-दुखियों की सहायता में यथाशक्ति तत्पर रहते थे। उनके हृदय की विशालता और सहृदयता तथा सरसता का पता उनकी दानशीलता से चलता है। सन्त नजीर प्रतिभाशाली महापुरुष थे। उनकी रचना में मानवता और आध्यात्मिकता का समीचीन समन्वय हुआ है। उनके नयनों में सदा हृदय-देवता-सौन्दर्यराशि परम प्रियतम भगवान की रमणीय रूप-माधुरी आलोड़ित रहती थी तथा रसना में प्रियतम का गुणानुवाद विहारशील रहता था। नजीर की वाणी में अध्यात्म-रस का अत्यन्त सफल चित्रण हुआ है। वे निस्सन्देह मानवतावादी सन्त थे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नजीर ने विक्रमीय उन्नीसवीं शताब्दी को सुशोभित किया था। उनके जीवन काल में दिल्ली की वादशाही और अवध की नवावी का सितारा धीरे-धीरे डूब रहा था। भारत का मानचित्र लाल रंग से चित्रित होता जा रहा था, अंग्रेजी प्रभुता अपने परवने फैला रही थी। ऐसी स्थिति में सम्वत् १७९२ वि. में दिल्ली में सन्त नजीर का जन्म हुआ था। ऐसा कहा जाता है कि उनका जन्म-स्थान आगरा था। नजीर के पिता मुहम्मद फारुक की गणना दिल्ली के धनी-मानी व्यक्तियों में होती थी। उन्होंने नजीर के पालन-पोषण में किसी भी प्रकार की कभी नहीं आने दी। नजीर के बचपन का नाम वली मुहम्मद था। वे देखने में बड़े सुंदर और प्रतिभा सम्पन्न थे। बाल्यावस्था से ही राह चलते कविता वनाया करते थे। उन्हें देखने पर लोग कहा करते थे कि आगे चल कर वे महापुरुप होंगे। यद्यपि खेल-कूद में उनका मन वहुत लगता था तो भी उनके अन्तर में एक शक्ति उन्हें किसी अलौकिक अपार्थिव लोक के रहस्यों के चिंतन की ओर सदा प्रेरित करती रहती थी। सम्वत् १८१८ वि. के लगभग अहमदशाह अब्दाली का आक्रमण होने पर नजीर आगरे चले आये और वहीं रहने लगे। लोगों ने उन्हें अधिकाधिक सम्मान प्रदान किया, प्रतिष्ठा दी। उस समय नजीर पूर्ण युवावस्था में थे। वे सन्त कवि के रूप में प्रसिद्ध ही चुके थे। पर भाग्य ने पलटा खाया। विधि ने मस्तक की रेखा दूसरी ही तरह अंकित की थी। सुख के दिन चले गये, अभाग्य का आक्रमण हुआ। सम्वत् १८२६ वि. के लगभग जाटों ने आगरा लूट लिया, इस लूट में नजीर भी लुट गये, वे गरीब हो गये। वे मकतव पढ़ा कर जीविका चलाने लगे तथा साथ-ही-साथ परमात्मा का भजन करने लगे। संसार के प्रति पूर्ण रूप से अनासक्त हो गये। विलास राय नामक एक खत्री सज्जन से उनकी मित्रता हो गयी जिसके परिणामस्वरूप वे समय-समय पर सन्त नजीर की सहायता करते थे। नजीर का परमात्मा में पूर्ण विश्वास था, वे अच्छी तरह समझते थे कि परमात्मा जो कुछ भी करते हैं ठीक ही करते हैं। संसार के सुख-दुख नजीर को उल्लासित और उदविग्न नहीं कर सके, वे उनके प्रति सदैव उदासीन ही रहे। उन दिनों पेशवा आगरे में कैद थे, नजीर उनके लड़के को पढ़ाने जाया करते थे। सन्त संसार के सम्मान और अपमान से सुखीदुखी नहीं होते हैं, वे तो नितान्त सरल होते हैं। पेशवा ने उन्हें चढ़ने के लिये घोड़ी दी थी। नजीर उसी पर बैठ कर पढ़ाने आया करते थे। रास्ते में लड़कों का झुण्ड उन्हें तंग

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करता तो वे मुसकरा देते थे। नजीर को हिंदी, फारसी और अरबी का अच्छा ज्ञान था। उन्होंने इस ज्ञान का सदुपयोग भगवद्भजन और जीविका-निर्वाह में किया। उन्होंने एक पद में कहा है कि वीरात्मा वह है जो प्रत्येक परिस्थिति को परमात्मा की देन समझ कर उसी में सुखी और संतुष्ट रहता है, यदि परमात्मा ने सोने के लिये चारपाई दी तो वह उसी पर सोता है, यदि हाट-बाट में सोना पड़े तो भी उसे चिंता नहीं सताती है, वह टाट पर भी सोकर रात काट लेता है। सन्त नजीर के समग्र जीवन में सरलता और उच्च चिंतन का दर्शन होता है। निस्सन्देह वे तत्कालीन मानवता को परमात्मा की एक बहुत बड़ी देन थे। वैराग्य के तो वे मूर्तिमान रूप ही थे। अपनी रचनाओं में उन्होंने जो कुछ भी कहा है उसका मूलाधार उनकी अनुभूति ही है। सन्त नजीर के जीवन से हमें निष्पक्ष भगवद्प्रेम की शिक्षा मिलती है।

सन्त नजीर बड़े उदार और दानवीर थे। एक बार माह पूरा हो जाने पर उन्हें वेतन मिला। वे मकतब से वेतन लिये जा रहे थे कि रास्ते में एक दीन हीन व्यक्ति ने निवेदन किया कि मेरी लड़की के विवाहके लिये कुछ रुपयों की आवश्यकता है; बड़ी कृपा होगी, यदि आप सहायता रूप में कुछ दे दें। नजीर ने कहा कि इसमें कृपा की बात ही क्या है, भाई, आप की आवश्यकता मेरी आवश्यकता से कहीं बड़ी है। ऐसी स्थिति में मेरे पास जो कुछ भी हैं उसका आपको ही उपयोग करना चाहिये ईश्वर की ऐसी ही इच्छा है। उन्होंने पूरा वेतन उस असहाय व्यक्ति को दे दिया और घर की ओर चलते बने। गरीब ने उनको हार्दिक धन्यवाद दिया और उनकी साधुता की भूरि-भूरि प्रशंसा की। वे मन-ही-मन यह सोच कर प्रसन्न थे कि :

'दौलत जो तेरे पास है रख याद तू ये बात।
खा तू भी और अल्लाह की कर राह में खैरात॥'

सन्त नजीर अपने नियम और निश्चय के बड़े कड़े थे। वे टट्टू पर सवार होकर मकतब में विद्यार्थियों को पढ़ाने जाया करते थे। एक दिन जा रहे थे कि टट्टू को धीरे-धीरे चलने पर चाबुक मारा। चाबुक टट्टू को न लग कर किसी राहचलने वाले की पीठ पर पड़ गया। इस घटना से संत नजीर बहुत दुखी हुए। उन्होंने चाबुक लेकर टट्टू पर कभी न बैठने का निश्चय किया। इस नियम का पालन उन्होंने आजीवन किया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्त नजीर ने कभी किसी के सामने हाथ नहीं पसारा। वे परमात्मा के दृढ़ भक्त थे। जो कुछ आवश्यक होता था उसकी माँग परमात्मा से ही करने में वे गौरव समझते थे। उन दिनों लखनऊ की गद्दी पर इतिहासप्रसिद्ध नवाब वाजिद अली शाह विराजमान थे। वे बड़े कला प्रेमी और काव्य में रुचि रखने वाले थे। वे सन्त नजीर की वाणी से बहुत प्रभावित थे। उन्होंने नजीरको लखनऊ बुलाने की बड़ी चेष्टा की पर असफल रहे। वाजिद अली शाह ने उनको प्रसन्न करने के लिये रुपये भेजे। रात में सन्त नजीर को उन रुपयों की चिंता में नींद न आयी। दूसरे दिन सवेरे रुपये लौटाने के बाद वे निश्चिंत हुए। उन्हें जागतिक वैभव परिभ्रमित नहीं कर सका।

सन्त नजीर ने अच्छी करनी पर बड़ा जोर दिया। सांसारिक पदार्थों की नश्वरता पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा कि ऊँचे महल, रुपये-पैसे, आभूषण, ठाट, बाट, हाथी-घोड़े सब-के-सब पड़े रह जायेंगे, बनजारा जब लाद कर चलने लगेगा तब ये सब यहीं रह जायेंगे, इसी लिये नेकी करना ही श्रेयस्कर है। उन्होंने चेतावनी दी :

'सब ठाट पड़ा रह जावेगा जब लाद चलेगा बनजारा।'

वे रात दिन परमात्मा की याद करते थे। परमात्मा का स्मरण ही उनके जीवन का प्रमुख कार्य था, उन्हीं के विरह में वे दीवाने बने रहते थे। उनकी उक्ति है :

'रात-दिन हिज्र में जोगी सा बना फिरता हूँ।
बेकरारी से तेरे नाम की जपता सुमरन॥'

वे वेष से गृहस्थ थे पर हृदय भगवद्भक्ति के अमिट रंग में पूर्ण रूप से रंगा हुआ था। उन्होंने तन-मन से परमात्मा को ही चाहा था; ऐसा नहीं था कि मन ने परमात्मा से प्रेम किया और तन आराम में रह गया;— इस स्थिति को नजीर ने बहुत बड़ा विश्वासघात बतलाया है। वे आत्माराम ब्रह्म के उपासक थे पर सूफी प्रेम साधना में आस्था रखते थे।

सन्त नजीर की रचनाओं में पवित्र और निर्मल भगवत्प्रेम का सुंदर चित्रण हुआ है। उन्होंने भगवान कृष्ण के बचपन की लीला का गान मौलिक ढंग से किया है, उनकी मुरलीवादन-माधुरी की सरस अनुभूति की है। भगवान के प्रेम में सराबोर होकर सन्त नजीर ने कहा कि प्रियतम का रूप देखे बिना मेरे प्राण विरह में कलप रहे हैं, कितनी विचित्रता है कि शलभ तो जल-जलकर प्राण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समर्पित कर रहा है, और दीपक की रुचि का पता ही नहीं चलता है: उनकी उक्ति है :

'ना मेरे पंख न पाँव बल, मैं अपंख पिय दूर।
उड़ न सकूं गिर गिर पड़ूं रहूँ बिसूर बिसूर।
प्रीतम या मन मोहिके, कीन्हो मान गुमान।
बिन देखे वा रूप के, मेरे कलपत प्रान॥
आह दई कैसी भई, अनचाहत को संग।
दीपक के भावे नहीं, जल-जल मरत पतंग॥'

सन्त नजीर ने हरि के भजन को ही सर्वश्रेष्ठ कर्म स्वीकार किया और बताया कि हरि का ही भजन करना चाहिये , जो हरि का ध्यान करते हैं, हरि से ही किसी वस्तु की आशा करते हैं उनकी आवश्यकता की पूर्ति भगवान स्वयं करते हैं : नजीर की वाणी है :

'नित हरि भज हरि भज रे बाज़ा;
जो हरि से ध्यान लगाते हैं,
जो हरि से आशा रखते हैं,
हरि उनकी आस बजाते हैं।'

उन्होंने कृष्ण की लीलाओं के वर्णन में बड़ी रोचकता का अंकन किया। भगवान की चित्तहरण-वंशी-ध्वनि की जय बोल कर नजीर ने सन्त कवि रहीम और रसखान की परम्परा अक्षुण्ण रखी, उन्होंने श्रीकृष्ण के बालपन में पूर्ण अलौकिकता का दर्शन किया, एक स्थल पर उनकी उक्ति है :

'सब मिल के यारो, कृष्ण मुरारी की बोलो जै।
गोविंद-कुंज छैल-बिहारी की बोलो जै॥
दधि चोर गोपीनाथ, बिहारी की बोलो जै।
तुम भी 'नजीर' कृष्ण मुरारी की बोलो जै॥
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन।
क्या-क्या कहूँ मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन॥'

सन्त साहित्य के इतिहास में सन्त नजीरका नाम अमर है। नानक साहब आदि सन्तों का स्मरण उन्होंने अपनी रचनाओं में बड़ी श्रद्धा से किया है। उनकी उक्तियाँ सन्त साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं: उनकी एक स्थल पर स्वभावोक्ति है :

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'जा पड़ें याद में उस शोख की जिस बस्ती में।
वही गोकुल है हमें और वही वृन्दावन॥'

सन्त नजीर निस्सन्देह योगसिद्ध पुरुष थे, हिन्दू-मुसलमान—सब के सब समान रूप से उनका आदर करते थे। उन्होंने लोगों को मृत्यु से सदा सावधान रहने की सीख दी। उनकी रचनाओं में उनका जीवन-चित्र स्पष्ट देखने को मिलता है। उन्होंने अनुभव के स्वर में गाया :

'सर कांपा चाँदी बाल हुए मुंह पीला पलकें आन झुकीं।
कद टेढ़ा, कान हुए बहरे और आँखें भी चुंधियाय गयीं।
सुख-नीद गयी और भूख घटी दिल सुस्त हुआ आवाज महीं।
जो होनी थी सो हो गुजरी अब चलने में कुछ देर नहीं।
तन सूख कूबड़ी पीठ हुई घोड़े पर जीन धरो बाबा।
अब मौत नकारा बाज चुका चलने की फिक्र करो बाबा॥'

उन्होंने सीख दी कि संसार क्षणभंगुर है, जीव एक अतिथि की तरह कुछ दिन के लिये इसमें आता है और भोग विलास कर चला जाता है। इस लिये सावधानी से भगवान का नाम लेते रहना चाहिये।

सन्त नज़ीर ने आजीवन अन्तरात्मा के आदेश के अनुसार आचरण किया, उनका अन्तरसत्य में अडिग विश्वास था। सम्वत् १८८७ वि. में नजीर का देहावसान हो गया। उनकी शव-यात्रा में असंख्य हिंदू और मुसलमान सम्मिलित थे। उनकी लोकप्रियता आगरे में इतनी बढ़ी-चढ़ी थी कि मरने के बाद प्रत्येक वर्ष होली के अवसर पर उनकी समाधि पर बहुत बड़ा मेला लगा करता था।

सन्त नजीर उदार, सहनशील, दानवीर और मस्त स्वभाव के सिद्ध फकीर थे। अपने जीवन के प्रत्येक क्षण को उन्होंने परहित-चिन्तन में ही लगाया, उनमें आत्मबलिदान और त्याग की बड़ी ऊँची भावना थी।

रचना

सन्त नजीर ने भगवान कृष्ण की बाल्य कालीन लीला के अगणित पद लिखे। उनकी रचनाओं में संसार की नश्वरता पर भी प्रकाश डाला गया है। अनेक संग्रह प्रकाशित हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वाणी

जब मुरलीधरने मुरली को अपने अधर धरी,
क्या-क्या परेम-प्रीति भरी उसमें धुन भरी।
लै उसमें 'राधे-राधे' की हरदम भरी खरी,
लहराई धुन जो उसकी इधर और उधर जरी।
सब सुनने वाले कह उठे जै जै हरी हरी,
ऐसी बजाई कृष्ण कन्हैया ने बाँसुरी।
यारो, सुनो य दधि के लुटैया का बालपन,
औ मधुपुरी नगर के बसैया का बालपन।
मोहनसरूप नृत्य-करैया का बालपन,
बन-बन के ग्वाल गौवें चरैया का बालपन।
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन,
क्या-क्या कहूँ मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन॥
हम चाकर जिसके हुस्न के हैं,
वह दिलवर सबसे आला है।
उसने ही हमको जी बख्शा
उसने ही हमको पाला है।
दिल अपना भोला-भाला है,
और इश्क बड़ा मतवाला है।
क्या कहिये और नजीर आगे,
अब कौन समझने वाला है।
हर आन हँसी, हर आन खुशी
हर वक्त अमीरी है बाबा।
जब आशिक मस्त फकीर हुए
फिर क्या दिलगीरी है बाबा॥
दुनिया में अपना जी कोई बहला के मर गया।
दिल तंगियों से और कोई उकता के मर गया।
आकिल था वो तो आप को समझा के मर गया।
बे अक्ल छाती पीट के घबरा के मर गया।
दुख पाके मर गया कोई सुख पाके मर गया।
जीता रहा न कोई हर एक आके मर गया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्त काठिया बाबा

'गृहे पर्यन्तस्थे द्रविणकणमोषं श्रुतवता
स्ववेश्मन्यारक्षा क्रियत इति मार्गो ऽयमुचितः।
नरान्गेहाद्गेहात् प्रतिदिवसमाकृष्य नयतः,
कृतान्तात् किं शङ्का न हि भवति रे जागृत जनाः॥'

पड़ोस के घर में चोरी होने की बात सुन कर अपने घर का प्रबन्ध किया जाता है, यह उचित ही है पर घर-घर से प्रति दिन मनुष्यों को पकड़ कर ले जाते हुए काल से, हे जागृत जनो, क्या भय नहीं लगता।

—शान्तिशतक

रामदास काठिया बाबा के स्मरण मात्र से नयनों में एक ऐसे सन्त का विचित्र चित्र अभिव्यक्त हो उठता है जिनकी सघन भूरी भूरी जटायें हैं; शरीर अम्बरहीन है तथा भस्मलेप के शीतल सौन्दर्य से ओत प्रोत है; वक्षस्थल तक लम्बी दाढ़ी फहर रही है और जननेन्द्रियमें काठ की लंगोटी तथा हाथ में विशाल कमण्डलु है;— कितना महिमामय दिव्य चित्रण है, कठियाबाबा के सन्तवेषका। वे मूर्तिमान तप और वैराग्य थे, उनके जीवन का प्रत्येक अंग सिद्धि-सम्पन्न था। उन्होंने आजीवन संन्यास कमाया। सन्तों के प्रति असाधारण अनुराग और सेवाभाव का उनमें असीम सम्मिश्रण था। उनकी ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि वे विक्रमीय सम्वत् १९१४ के प्रथम स्वाधीनता संग्राम के समय उपस्थित थे और उस समय भी उनकी अवस्था का अनुमान कठिनता से लग पाता था। यह बात निश्चित-सी लगती ह कि उन्होंने कम-से-कम पौने दो सौ साल की अवस्था में शरीर छोड़ा। वे वज्र से भी कड़े थे साधना, तपस्या और नियम के क्षेत्र में; वे कुसुम से भी कोमल थे सन्त-सेवा और जीवमात्र के प्रति दया के भाव-साम्राज्य में। निस्सन्देह वे उच्च कोटि के महात्मा थे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दो सौ साल पहले की बात है। पंजाब प्रान्त के अमृतसर जनपद में लोना-चमारी ग्राम के सन्निकट एक ग्राम में रामदास काठिया बाबा ने सम्वत् १८०३ वि. के लगभग जन्म लिया था। उनके पिता बड़े सदाचारी और भगवन्निष्ठ ब्राह्मण थे। उनका स्वभाव अत्यन्त धार्मिक था। एक दिन अत्यन्त आश्चर्य-मयी घटना से घर वाले चकित हो गये। उस गाँव में एक परमहंस रहते थे, वे एक पेड़ के नीचे बैठ कर भगवान का भजन करते थे। काठिया बाबा उस समय केवल चार साल के थे। वे खेलते-खेलते परमहंस जी के पास पहुँच गये। परमहंस जी ने बड़े ध्यान से उनकी ओर देख कर कहा, 'राम-नाम का भजन करो। राम का नाम लेने से मनुष्य बड़ा बनता है। रामनाम से सुख और शान्ति की प्राप्ति होती है।' परमहंस जी के कथन का चार साल के बालक पर अमित प्रभाव पड़ा। वे उनके कथन के अनुसार राम-नाम का एकान्त में बैठ कर नित्य-जप करने लगे। मातापिता ने सन्तान की भक्तिमयी रुचि पर बड़ा संतोष प्रकट किया, वे पालन-पोषण बड़े प्यार से करने लगे। काठिया बाबा में बचपन से ही साधु-सन्तों के प्रति अनुराग का उदय होने लगा। जब वे केवल सात साल के थे तब अपने घर की भैंस चराया करते थे। अभी उनका उपनयन-संस्कार नहीं सम्पन्न हुआ था कि एक दिन भैंस चराते समय उन्हें एक महात्मा का दर्शन हुआ। महात्मा बड़े भूखे थे। उन्होंने काठिया बाबा के किसी प्रारब्ध वश उनसे कुछ खाने के लिये माँगा, घर से बात-की-बात में आटा और घी लाकर उन्होंने साधु की आज्ञा का पालन किया। महात्मा ने आशीर्वाद दिया कि तुम बहुत बड़े योगी होगे, जीवमात्र को सन्मार्गपर लगाओगे। उपनयन-संस्कार हो जाने पर पिता ने उनको ग्राम से थोड़ी दूर पर एक विद्यालय में अध्ययन करने के लिये भेजा। काठियाबाबा शिक्षा-काल में राम-नाम की जप-संख्या बढ़ाते गये। उनमें वैराग्य का उदय होने लगा। अठारह साल की अवस्था में शिक्षा पूरी कर घर लौटने पर माता-पिता ने उनके विवाह का विचार किया। काठियाबाबा ने विनम्रता और सरलता से प्रार्थना की कि वैवाहिक जीवन में मेरा मन तनिक भी नहीं लगेगा, मुझे राम-नाम के जप में जो रस मिलता है उसकी प्राप्ति भोगा-वस्था में किंचित् मात्र भी सुलभ नहीं है। माता-पिता को इस विचार से बड़ी प्रसन्नता हुई। विवाह का प्रस्ताव टल गया। काठियाबाबा का समय साधन-भजन में लगने लगा, संसार के प्रति आसक्ति मिट गयी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

काठिया बाबा की गायत्री मन्त्र में बड़ी श्रद्धा थी। उन्होंने मन्त्र का जप आरम्भ किया। उनकी श्रद्धा और भक्ति से प्रसन्न तथा संतुष्ट होकर गायत्री माता ने उनको दर्शन दिया। गायत्रीने उनको ज्वालामुखी जाकर शेष पचीस हजार मन्त्रों के जप का आदेश दिया। वे ज्वालामुखी गये और गायत्री माता के आदेश का पालन किया। ज्वालामुखी के रास्ते में उनकी एक बड़े सिद्ध महात्मा से भेंट हुई। वे निम्बकि सम्प्रदाय के सन्त थे। उनका नाम देवदास था। काठिया बाबा पर उन्होंने कृपा की, उनको संन्यासाश्रम में दीक्षित कर लिया। वे वैराग्यपूर्वक अपने गुरु के पास रह कर भजन करने लगे। इस समाचार से उनके माता-पिता बहुत क्षुब्ध हुए। पिता ने देवदास के चरण में निवेदन किया कि मेरी पत्नी के प्राणाधार एकमात्र ये ही हैं, इनको आप घर पर ही रह कर भजन करने का आदेश दे दीजिये। गुरु की आज्ञा से संन्यासी काठियाबाबा घर पर ही रह कर तप और साधना करने लगे पर माता की ममता और वात्सल्यमयी विकलता को उन्होंने अपने साधन-पथ में बहुत बड़ा विघ्न समझा। वे घर से थोड़ी दूर पर एक पेड़ के नीचे रह कर भजन करने लगे, उनका मन घर पर नहीं लग सका, वे शेष बन्धन काट कर पींजड़े में बन्द पक्षीकी तरह उड़ने के लिये उत्सुक हो उठे। वे घर-घर भिक्षा माँग कर जीवन-निर्वाह करते थे और भगवान की भक्ति में लगे रहते थे। एक दिन वे सहसा अपने घर के सामने थे, दरवाजे पर खड़े होकर उन्होंने भिक्षा माँगी। माता ने भिक्षा लेकर बाहर आते ही संन्यासी पुत्र को देखा, नयनों से अश्रु की धारा प्रवाहित हो उठी, कंठ अवरुद्ध हो गया। किसी तरह माता से भिक्षा लेकर रामदास काठिया बाबा वटवृक्ष के नीचे आये, उन्होंने गाँव छोड़ देने का दृढ़ निश्चय कर लिया। एक घटना से वे बहुत क्षुब्ध हुए। संन्यस्त जीवन में सबसे बड़ा विघ्न कामिनी और कंचन से होता है, इसलिये महात्मा और सन्त इन दोनों की ओर कभी आँख उठा कर भी नहीं देखते हैं; निस्सन्देह दोनों पतन की ओर ले जाते ही हैं। वटवृक्ष के नीचे एक युवती कुलवधू कभी-कभी उनका दर्शन करने आया करती थी। महाराज के प्रति वह इतनी आकृष्ट हो गयी कि रात में भी आना आरम्भ किया। महाराज ने आने की मनाही की। पर वह किसी भी तरह मानती ही न थी। काठिया बाबा सावधान हो गये, उन्होंने उसको समझाया कि एकान्त में युवती स्त्री का साधु से मिलना प्रत्येक दृष्टि से परम निषिद्ध है, यह कदापि उचित नहीं है। एक दिन अचानक ही महाराज गाँव से बाहर हो गये और फिर कभी न आये; वे संयम-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नियम के बड़े कड़े थे। वे अपने गुरुदेव के सन्निकट गये और उन्हीं की शरण में रह कर तप करने लगे। एक बार उनके गुरुदेव उत्तराखण्ड में तप कर रहे थे। वे कुटी में थे और काठिया बाबा बाहर धूनी तापते थे। गुरु ने उनकी बड़ी कड़ी परीक्षा ली। एक दिन रात को बर्फ गिरने से धूनी की आग ठंडी हो गयी। रामदास काठियाबाबा ने गुरु के तप में विघ्न नहीं उपस्थित करना चाहा, वे कुटी के सामने खड़े हो गये। भयानक शीतकाल था, उनका शरीर ठन्डक से काँप रहा था, गुरु देव उनकी निष्ठा से बहुत प्रसन्न हुए। धूनी जलाने के लिये आग लेकर वे अपने स्थान पर चले आये तथा भजन करने लगे।

एक बार गुरु ने परीक्षा लेने के लिये कहा कि तुम पहाड़ से कूद पड़ो, काठिया बाबा प्रसन्नतापूर्वक प्रस्तुत हो गये, गुरुदेव ने उनकी इस वृत्ति की बड़ी सराहना की। इसी प्रकार एक दिन आदेश दिया कि मैं एक स्थान पर जा रहा हूँ। मैं जब तक लौट न आऊँ तुम इसी आसन पर बैठे रहना, कहीं बाहर मत जाना। दैवयोग से महात्मा देवदास आठ दिन के बाद लौट सके। काठिया बाबा को उसी आसन पर अडिग देख कर बहुत प्रसन्न हुए और कहा कि तुम्हें इस निष्ठा के फलस्वरूप किसी-न-किसी दिन इसी जीवन में भगवान का साक्षात्कार अवश्य होगा।

वे अपने गुरु के आदेश से द्वारका गये। द्वारका से लौटने पर अपने गुरुदेव के अन्तर्धान होने की बात सुन कर वे बहुत चिंतित हुए। गुरुदेव ने एक दिन उनको प्रत्यक्ष दर्शन देकर कहा कि मैंने चोला नहीं छोड़ा है। आत्मगोपन किया है, मैं नर्मदा के तट पर किसी विशेष कारण से निवास कर तप कर रहा हूँ। समय-समय पर तुम्हें दर्शन होता रहेगा।

गुरु साक्षात् भगवान के ज्ञान-विग्रह हैं, उनकी कृपा से क्षणमात्र में जीव संसारसागर के पार हो जाता है। गुरुभक्ति में बड़ी शक्ति होती है, किसी सौभाग्यशाली को ही गुरु के ज्ञानस्वरूप का दर्शन होता है। रामदास काठिया बाबा गुरु-कृपा के विशेष पात्र थे। उन्होंने गुरु के अन्तर्धान होने के बाद समस्त भारत के तीर्थों की अनेक बार पैदल-यात्रा की। गुरुदेव ने उनको आशीष दिया था कि तुम्हें भगवान का साक्षात्कार होगा। उनके आशीर्वाद के फलस्वरूप उन्हें भरतपुर राज्य के सैलानी कुण्ड पर भगवान का दर्शन हुआ; काठिया बाबा की इस सम्बंध में स्वीकृति है, संत-क्वन है :

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'रामदास को राम मिले हैं, सैलानी के कुंडा।
संत सदा यह सच्ची मानें, झूठी मानें गुंडा॥'

सन्त की पहिचान सूक्ष्म वुद्धि से भी नहीं होती है; यह तो उनकी प्रसन्नता और कृपा से होती है, उनकी प्रसन्नता और अप्रसन्नता दोनों में हित की महती भावना रहती है। एक बार वे एक राज्य में भिक्षा माँगने गये। उस राज्य में एक युवती विधवा रानी थी, वह परम रूपवती थी, उसके सौन्दर्य ने महाराज को आकृष्ट करना चाहा पर वे सावधान हो गये और उसके माया-जाल से भाग निकले।

भारतीय स्वाधीनता के प्रथम संग्राम का समय था। सम्वत् १९१४ वि. की बात है। काठिया बाबा यमुना के तट पर विचरण करते हुए आगरा जा रहे थे। गोरे सिपाहियों ने समझा कि कोई विद्रोही वेष बदल कर भाग रहा है। उन्होंने दो बार गोली चलायी, महाराज बच गये। तीसरी बार गोली चलाते समय वन्दूक हाथ से नीचे गिर पड़ी। सिपाहियों ने उनको सिद्ध पुरुष समझ कर चरण-धूलि ली, महाराज अपने विचरण में मस्त थे। इस घटना का उन पर कुछ प्रभाव ही न पड़ा।

रामदास काठिया बाबा का जीवन तपस्याप्रधान था। एक बार उन्होंने पंचाग्नि तापने की इच्छा प्रकट की! एक साधु ने ईर्ष्यावश उनकी चारों ओर हजार कण्डे जला दिये। लोग घवड़ा गये कि इस भयंकर पंचाग्नि का क्या परिणाम होगा पर काठियाबाबाने भगवत्कृपा से पंचाग्नितप की परीक्षा में भी सफलता प्राप्त की।

गुरु की शरणागति पर वे अधिक जोर देते थे, वे कहा करते थे कि गुरु के चरणाश्रय से अन्तःकरण शुद्ध होता है, माया और अविद्या के अन्धकार का नाश होता है, हृदय में भागवत्प्रकाश का उदय होता है। सद्गुरु की कृपा में विश्वास ही उनको साधना का स्वरूप था, तप को उन्होंने साधना के क्षेत्र में बड़ा महत्व दिया। भगवान का भजन ही जीवन का श्रेय है। यह उनका सुदृढ़ सिद्धान्त था। भरतपुर सैलानी कुण्ड पर कुछ दिनों तक तप करने के बाद वे वृन्दावन में आकर भगवान का भजन करने लगे। साधु-महात्माओं की सेवा में उनको बड़ा रस मिलता था। वे दानावानल कुण्ड पर रह कर तपोमयी साधना में लग गये। नित्य जंगल से तीन -चार मन लकड़ी काट लाते थे और उसे सन्तों की सेवा में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लगाते थे। वे यमुना के तट पर एकान्त स्थान में रह कर भजन करने में परमानन्द का अनुभव करते थे। बंगाल के प्रसिद्ध महात्मा विजयकृष्ण गोस्वामी वृन्दावन-निवास काल में कभी कभी उनके दर्शन और सत्संग के लिये आते रहते थे। वृन्दावन के महात्माओं में काठिया बाबा 'व्रजविदेही' नाम से प्रसिद्ध थे। सम्वत् १८६३ वि. में यमुनाके तट पर वे योगासन से समाधिस्थ हो गये। रामदास काठिया बाबा तपस्या और भिक्ति के अप्रतिम प्रतीक थे, परम तपस्वी सन्त थे।

रचना

उनके उपदेश ही अमर कृति के रूप में प्राप्य हैं।

वाणी

रात के चौथे पहर में निद्रा का परित्याग कर भगवान का भजन करना चाहिये। निंदा और स्तुति से परे रह कर सत्कर्म में लगे रहना चाहिये।

सद्गुरु की कृपा से ही मुक्ति प्राप्त होती है। सद्गुरुजी की कृपा के विना जीव मुक्त हो नहीं सकता है।

भगवान सदा छाया की तरह साथ रह कर भक्तों की रक्षा करते हैं।

आलस्य छोड़ कर भगवान के विग्रह और साधु-सन्तों की सेवा करनी चाहिये। गृहस्थ और संन्यासी दोनों समान रूप से भगवत्प्राप्ति के अधिकारी हैं।....भगवद्दर्शन केवल गुरु की कृपा से ही होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'मीठ वहुत सतनाम है पियत निकारै जान ।।
पियत निकारै जान मरै की करै तयारी ।
सो वह प्याला पियै सीस को धरै उतारी ।।
आँख मूँदि कै पियै जियन की आसा त्यागै ।
फिरि वह होवै अमर मुए पर उठ कै जागै ।।
हरि से वे हैं वड़े पियो जिनि हरि रस जाई ।
ब्रह्मा विस्नुमहेस पियत कै रहै डेराई ।।
पलटू मेरे बचन को ले जिज्ञासू मान ।
मीठ वहुत सतनाम है पियत निकारै जान ।।'

सन्त-साहित्य में पलटूदास को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। उन्होंने परिष्कृत और प्राञ्जल भाषा में अपनी अनुभूति अभिव्यक्त की। उन्होंने संत की महिमा के सम्वन्ध में मौलिक ढंग से विचार किया है। संत-स्वभाव पर उनकी उक्ति है कि संत चन्दन और चन्द्रमा की तरह शीतल होते हैं, वे संसार का ताप शांत करते हैं, जो जलता हुआ आता है उसे मधुर वचन सुनाते हैं, उनमें अपार धैर्य, शील और क्षमा का संगम होता है। अपने कोमल वचन से वे वज्र को पानी बना देते हैं।...उनके दर्शन से तीनों तापों का शमन हो जाता है। उदर की ज्वाला शान्त हो जाती है। पलटू ने अपनी सन्त-वाणी में उस समय की बात का निरूपण किया है, जब चन्द्रमा, सूर्य, पानी, पवन, दिन और रात तथा संसार की उत्पत्ति नहीं हुई थी। ब्रह्मा, विष्णु और महेश ने सृष्टि का प्रसार नहीं किया था, आदि ज्योति, वैकुण्ठ, शून्य, कैलाश, शेष, कमठ, दिग्पाल, धरती, अकाश, लोक और वेद आदि का अभाव था। उनकी उक्ति है :

'लोक वेद पलटू नहीं कहौ मैं तबकी बात ।
चाँद सुरज पानी पवन नहीं दिवस नहिं रात ।।'

सन्त कवीर की ही तरह पलटू साहव भी उक्ति-वैचित्र्य में बहुत सफल हुए हैं। उन्होंने वतलाया कि जिन-जिन लोगों ने वस्तु-तत्व की प्राप्ति की उन्होंने उसको छिपाने की ही चेष्टा की। एक स्थल पर उन्होंने परमात्म-तत्व का विचित्र ढंग से निरूपण किया है, उनकी उक्ति है :

'उलटा कूवा गगन में तिस में जरै चिराग ।
तिसमें जरै चिराग विना रोगन बिन वाती ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

छः रितु बारह मास रहत जरतै दिन राती।
सतगुरु मिला जो होय ताहि की नजर में आवै।
बिन सतगुरु कोउ होय नहीं वाको दरसावै।
निकसै एक अवाज चिराग की जोतिहि माहीं।
ज्ञान समाधी सुनै और कोउ सुनता नाहीं।
पलटू जो कोई सुनै ताके पूरे भाग।
उलटा कूवा गगन में तिस में जर चिराग॥'

उन्होंने आजीवन लोगों को जगाते रहने की ही यथाशक्ति चेष्टा की। उन्होंने कहा कि स्वार्थ-सिद्धि के लिये, सब जागते हैं पर दूसरे के स्वार्थ के लिये वे जागते हैं जिन पर गुरु की कृपा होती है। जागने से परलोक बनता है और सोने से बड़ा दुख मिलता है। मैं ज्ञान की तलवार लिये जाग रहा हूँ, जो कुछ होना होगा, होगा।... सुन्दर शरीर पाकर राम का भजन करना ही जीवन का सदुपयोग है। भजन में तनिक भी विलम्ब नहीं करना चाहिये। पलटूदास खरे आलोचक थे, उन्होंने साधना सम्बन्धी दोषों की टीका-टिप्पिणी की। अयोध्या के कुछ साधु उनकी प्रसिद्धि से ईर्ष्या करने लगे। उन्होंने सन्त पलटू साहब को जीते जी जला दिया। सत्य के व्यापारियों को ऐसी यातना तो सहनी ही पड़ती है, सुकरात, ईसा, सरमद आदि को भी इसी प्रकार के पुरस्कार जनता की ओर से दिये गये। ऐसा कहा जाता है कि जलाये जाने के बाद वे अपने आराध्य जगन्नाथ के लीलाधाम पुरी में प्रकट हुए। एक दोहा प्रचलित है:

'अवध पुरी में जरि मुए, दुष्टन दिया जराइ।
जगन्नाथ की गोद में पलटू सूते जाइ॥'

आशय यह है कि जलाये जाने के बाद उन्होंने जगन्नाथ के चरणों में शाश्वत विश्राम प्राप्त किया। निस्सन्देह वे उच्च कोटि के ज्ञानी सन्त थे।

रचना

सन्त पलटूदास ने बहुत से अरिल्ल, छन्द, कुण्डलिया तथा अगणित पदों और दोहों की रचना की।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वाणी

प्रेम बान जोगी मारल हो कसकै हिया मोर।
जोगिया कै लालि लालि अंखियाँ हो जस कँवल के फूल॥
हमरी सुरुख चुनरिया हो दूनों भये तूल।
जोगिया कै लेउ मिरगछलवा हो आपन पट चीर॥
दूनौं कै सियब गुदरिया हो होइ जावै फकीर।
गगना में सिंगिया बजाइन्हि हो ताकिन्हि मोरी ओर।
चितवन में मन हरि लियो है, जोगिया बड़ चोर॥
गंग जमुन के बिचवाँ हो, बहै झिरहिर नीर॥
तेहिं ठैयाँ जोरल सनेहिया हो, हरि लै गयो पीर॥
जोगिया अमर मरै नहिं हो पुजवल मोरी आस॥
कर लिखा बर पावल हो, गावै पलटूदास॥
मितऊ देहला न जगाय, निंदिया वैरिन भैली॥
की तो जागै रोगी, की चाकर की चोर॥
की तो जागै सन्त बिरहिया, भजन गुरु के होय॥
स्वारथ लाय सबै मिलि जागै, बिन स्वारथ न कोय।
पर स्वारथ को वह नर जागै, किरपा गुरु की होय॥
जागे से परलोक बनतु है, सोये बड़ दुख होय।
ज्ञान खरग लिये पलटू जागै, होनी होय सो होय॥
संतन के सिर ताज है, सोइ संत होइ जाय॥
सोइ संत होइ जाय, रहै जो ऐसी रहनी।
मुख से बोलै साच करै कछु उज्जल करनी॥
एक भरोसा करे, नाहिं काहू से माँगे।
मन में करै संतोष, तनिक ना कबहूँ लागे॥
भली बुरी कोउ कहै ताहि सुन नहिं मन माखे।
आठ पहर दिन रात नाम की चरचा राखे॥
पलटू रहे गरीब होय, भूखे को दे खाय॥
संतन के सिर ताज है, सोइ संत होइ जाय॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

केतिक जुग गये बीति माला के फेरते।
छाला परि गये जीभ राम के टेरते।
माला दीजै डारि मनै को फेरना।
अरे हाँ पलटु मुहँ के कहै न मिलै, दिलै बिच हेरना॥
जो दिन गया सो जानि दे, मूरख अबहूँ चेत।
कहता पलटूदास है, करिले हरि से हेत॥
पलटू लिखा नसीब का, संत देत है फेर।
साँच नहीं दिल आपना, तासे लागै देर॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्त त्यागराज

ब्रह्माम्भोधिसमुद्भवं कलिमलप्रध्वंसनं चाव्ययं
श्रीमच्छम्भुमुखेन्दुसुंदरवरं संशोभितं सर्वदा।
संसारामयभेषजं सुमधुरं श्रीजानकीजीवनं
धन्यास्ते कृतिनः पिबन्ति सततं श्रीरामनामामृतम्॥

जो ब्रह्म रूपी समुद्र से उत्पन्न हुआ है, कलि-कल्मष को ध्वंस करने वाला है, अव्यय है, सदा महादेव के मुख में सुशोभित है, संसाररोग की औषध है, मधुर है तथा जानकी का जीवनाधार है उस रामनाम रूपी अमृत का निरन्तर पान करने वाले धन्य हैं।

—रामचरितमानस

सन्त की महिमा अनन्त, अलौकिक और अपार होती है, सन्त की प्रसन्नता और अनुकूलता परमात्मा की सत्ता और भक्ति से भी अधिक महान और श्रेयस्कर परिगणित होती है। सन्त देश, काल और सम्प्रदाय से परे होते हैं। वे सत्य, शान्ति और आनन्द का दान देकर जीव-जड़-जङ्गम का सदा भला मानाते रहते हैं। वह देश और कुल तथा जनसमूह परम पवित्र हो जाता है जिसमें संत लीलामृत की गंगा बहती रहती है। भारतीय इतिहास ही नहीं, विश्व के इतिहास का मध्यकाल बड़े-बड़े सन्तों का दर्शन कर सका। भारत में संत कबीर, नानक, रैदास, तुलसीदास, ज्ञानेश्वर, एकनाथ, बसवेश्वर आदि ने आदिकालीन सनातन परम्परा की सन्तधारा की जो अविच्छिन्नता प्रतिष्ठित की उससे हिमालय का ऐश्वर्य बढ़ गया, गंगा की पवित्र शान्ति की आयु में विशेष अभिवृद्धि हुई, विंध्याचल की शक्ति में जनता की भक्ति बलवती हो गयी। गोदावरी, कृष्णा और कावेरी के तट पर पुण्य के दिव्य तीर्थ उतर आये। रामेश्वर में भारतीय महासागर का गाम्भीर्य अधिकाधिक गौरवशाली हो उठा। समस्त देश ने राम और कृष्ण की भक्ति का वरण कर भागवत धर्म की विजयिनी पताका फहरायी।..... दक्षिण भारत के तुलसीदास महामति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संत त्यागराजने कावेरी के पवित्र भूमि-भाग में इसी अविच्छिन्न परम्परा का अनुगमन कर राम का यश-गान किया; अनार्यत्व का विनाश कर शुद्ध आर्यत्व का विजय-सन्देश दिया। उन्होंने मध्यकाल के उत्तरार्ध को राममय कर दिया, यही उनकी ऐतिहासिकता, विशिष्टता और मौलिकता है। सन्त त्यागराजने रामभक्ति की चन्द्रिका में स्नान कर पाप-ताप से जलते जीवों को शीतल शान्ति से परितृप्त किया। भक्ति-संसार ने उनके भागवत कंठ से नारद की वीणा का मधुर स्वर-संदेश सुना।

सन्त त्यागराजकी रामभक्ति उत्तर और दक्षिण भारत की सांस्कृतिक, सामाजिक, साहित्यिक, धार्मिक और आध्यात्मिक अभेदता की प्रतीक है। अवधपति राम के अनादि और परम प्रकाशक स्वरूप का ज्ञान कराया, वे तुलसीदास के अभिनव संस्करण थे। सन्त त्यागराज के लिये यह कहने का साहस होता है कि रामचरित मानस के रचयिता ने दक्षिण भारत में अवतार लेकर त्यागराज की आकृति में रामकथा का माधुर्य फैलाया तभी तो त्यागराज की वाणी राममयी, भक्तिमयी, मधुमयी और दिव्य तथा अलौकिक हो उठी। त्यागराज रामचरित मानस के साहित्य-अवतार थे। तुलसीदास के शब्दों में उन्होंने राम की शरणागति की महिमा में कहा कि राम की ही शरण में जाने से सबका भला है, राम ही परम पुरुष परमात्मा हैं; आकाश, पाताल और मृत्युलोक के मंगलों के साक्षात् अधिष्ठाता हैं। संत त्यागराज कवि त्यागराज थे और कवि त्यागराज रामभक्त त्यागराज थे, उनकी कविता ही उनकी भक्ति की लावण्यमूर्ति थी। रावणरूपी भौतिकता पर–आसुरी सम्पत्ति पर उन्होंने आध्यात्मिकता–दैवी सम्पत्ति और राम भक्ति की विजयिनी पताका फहरायी। असुर का अन्त ही उनके रामयशगायन का श्रेय था। राम-भक्ति में उन्होंने सच्चिदानंद के अखण्ड सौन्दर्य की दिव्य झाँकी देखी, वे राम-कथा, रामभक्ति और राम-अनुरक्ति की पवित्र त्रिवेणी में विदेह हो उठे। वे रामके परम भक्त थे पर शास्त्रानुमोदित देवताओं के समन्वय में उनकी अपूर्व भक्ति–आस्था थी, उन्होंने रामभक्ति की प्राप्ति के साधनरूप में देवताओं के पूजन में विश्वास प्रकट किया।

सन्तों का सन्त होना ही उनका परम पवित्र परिचय है। सन्त त्यागराज ने राम के यशवर्णन से भारतीय इतिहास के भक्तिपक्ष को जो सहयोग दिया वह उनके समकालीन भारत के लिये परम गौरवशाली स्वीकार किया जा सकता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है। दक्षिण भारत के चोल प्रदेश में परम भाग्य सम्पन्न कावेरी के तट पर भगवान महेश्वर के लीला-क्षेत्र कमलाल्य (तिरुवरोर नगर) में भरद्वाज कुलभूषण, पण्डितवर, परम तपस्वी, शास्त्रवेत्ता, संगीतज्ञ और महान भक्त तेलुगु ब्राह्मण गिरिराज के ज्येष्ठ पुत्र रामब्रह्म रहते थे, उनकी सौभाग्यवती स्त्री शान्ता ने त्यागराज को सम्वत् १८१६ वि. में. जन्म दिया। रामब्रह्म की आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय थी, जप्पेश और त्यागराज दोनों भाइयों का पालन-पोषण उनके लिये एक जटिल और गम्भीर प्रश्न था, उन्होंने सपरिवार पंचनद क्षेत्र की शरण ली। उन्होंने संगीत-शिक्षण को जीविका-साधन बनाया और अवकाश में भगवद्भजन करते थे। धीरे-धीरे रामब्रह्म की ख्याति दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ने लगी। तत्कालीन तञ्जोर नरेश ने उनको अपने राज्य में रहने के लिये प्रोत्साहित किया, राम-ब्रह्मने राजाश्रय का त्याग करना उचित नहीं समझा। वेद-वेदाङ्ग के अध्ययन के लिये उन्होंने दोनों पुत्रों को पाठ-शाला भेज दिया। त्यागराज आत्मा और जीव तथा ईश्वर के सम्बन्ध के प्रश्न में अधिक रुचि रखते थे, राम का नाम सुनते ही प्रेमानन्द में मग्न हो जाते थे? ईश्वरभक्ति में उनकी श्रद्धा और आस्था उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। राम ब्रह्मने त्यागराज को वीणा-वादन में पारंगत भक्त शान्ति वेंकटारमन अय्यर के चरणों पर सौंप दिया। उन्होंने गानविद्या में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। त्यागराज का जीवन साधनामय होता गया। तेलुगु और संस्कृत का उन्हें बहुत अच्छा ज्ञान था।

त्यागराज का विवाह कर दिया गया। गृहस्थाश्रम उनके लिये पूर्ण रूप से राममय हो गया। पिता के जीवन-काल में भी वे घरमें एक एकान्त कमरे में कुलदेवता भगवान राम की उपासना किया करते थे। घर के कामकाज में उनका मन तनिक भी नहीं लगता था। वे संसार से पूर्ण अनासक्त हो गये। पिता का देहान्त होने पर दोनों भाइयों में बटवारा हो गया। पिता की आराध्य राम-मूर्ति त्यागराज के भाग्य में पड़ी, प्रभु ने दिखलाया कि त्यागराज को मैं नहीं छोड़ सकता। त्यागराज तप-साधना में लग गये। वे अपनी पत्नी के साथ दक्षिण कैलाश के मन्दिर में जाया करते थे, वे नित्य एक लाख अस्सी हजार रामनाम का जप करते थे। उनके जीवन में दिव्य आनन्द का सागर उमड़ने लगा। उनके ज्येष्ठ भ्राता ने राम की प्रतिमा नदी में फेंक दी। त्यागराज के मन पर इस घटना का बड़ा प्रभाव पड़ा। वे कई दिन तक भूखे पड़े रहे और नयनों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

से गंगा और कालिन्दी की अविराम लहरें प्रवाहित होती रहीं। करुणामय प्रभु की दया में बाढ़ आ गयी, उनकी भक्ति ने करवट ली, उनका श्रीविग्रह नदी की मध्यधारा से अचानक तट-प्रदेश पर आ गया। त्यागराज प्रभु के प्रेम में मुग्ध हो उठे। उन्होंने 'राम राम' की नामध्वनि के साथ राम के विग्रह को अंक में भर लिया।..... उनके जन्म-जन्म के पुण्य सफल हो गये। समस्त नगर-निवासियों ने त्यागराज की चरण-धूलि मस्तक पर चढ़ायी, सरिता-तट से उनके घर तक शोभा-यात्रा निकाल कर उन्हें भक्तराज की उपाधि से समलंकृत कर अपनी प्रगाढ़ भक्ति का परिचय दिया, त्यागराज के जयनाद ने धरती और गगन को प्रकम्पित कर दिया। राम ही उनके परम धन थे, उनका दृढ़ विश्वास था कि राम की प्राप्ति समस्त अभावों का अभाव कर देती है। वे राम के विग्रह के सम्मुख बैठ कर सितार बजा-बजा कर स्वरचित पद गाया करते थे। उन्होंने राम के सम्बन्ध में बीस हजार पद लिखने का संकल्प किया; ऐसा कहा जाता है कि गणेश ने साक्षात् दर्शन देकर कहा था कि यह संकल्प अवश्य पूरा होगा। संत त्यागराज गलियों में घूम-घूम कर राम का मधुर यश-गान करते थे, भीख में जो कुछ भी मिल जाता था उसी से जीविका चलाते थे।

एक बार तञ्जोर के महाराजा शर्भोजी ने उन्हें भेंटस्वरूप अधिकाधिक धन देना चाहा, धन लेने की बात तो दूर रही उन्होंने राजा की सभा में जाना तक अस्वीकार कर दिया। उन्होंने राजा के पास कहला भेजा, 'धिक्कार है भूमि या स्वर्णादि द्रव्य को। यदि उन्हें ही मैं मूल्यवान समझता होता तो राम की सोने की मूर्ति बेच कर मैं धनी हो गया होता। दुनिया के सुख-भोग मेरे करतलगत हो जाते। मेरा मन ऊपर के सुनहले रंग पर नही रींझ सकता। वह तो रीझा है भीतर के सौन्दर्य पर। इन्हीं प्यारे राम के मोह में फंस कर मैंने उनकी मूर्ति नही बेची। उन्हें छोड़ कर मैं किसी भी धनाभिमानी राजाको नही प्रसन्न कर सकता।' तञ्जोर-नरेश बड़े कलाप्रिय थे। वे त्यागराज का संगीत सुनने के लिये बड़े उत्सुक थे, त्यागराज के अस्वीकार करने पर उन्होंने बलपूर्वक ले आने के लिये अपने कर्मचारी भेजे; राजा के पेट में घोर पीड़ा उत्पन्न हुई, मन्त्री की सहायता से उन्होंने सन्त त्यागराज से क्षमा माँगी। एक बार उनका संगीत सुनने के लिये राजा अंधेरी रात में त्यागराज के घर पर आ गये, छत में सूराख कर गाना सुनने लगे। त्यागराज ने मन को समझाते हुए गाया कि हे मन, सुन्दरराज मार्ग रहते हुए तुम गलियों में क्यों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

घूमते हो। मुक्ति के लिये भक्ति मार्ग सुलभ है, फिर कुमार्ग में क्यों नष्ट होते हो? राजा ने समझा 'हे सुन्दर राज, मार्ग रहते हुए तुम छिप कर रहस्य मार्ग से क्यों घरमें आते हो? राजा शाप से भयभीत होकर उनके सामने आये और क्षमा माँगी। त्यागराजने उनकी निष्ठा से प्रसन्न होकर अनेक गीत सुनाये तथा भगवद्भक्ति प्रदान की।

सन्त त्यागराज संन्यास और त्याग के मूर्तिमान स्वरूप थे। भगवान के कीर्तन और भजन में ही उनका सारा समय बीतता था। जन्म से ही उन्हें राम-भक्ति सिद्ध थी। कांचीपुर से आकर एक संन्यासी ने उन्हें राम तारक मन्त्र की बचपन में ही शिक्षा दी थी, त्यागराज ने आजीवन उसी महामन्त्र का जप किया। ऐसा कहा जाता है कि संन्यासी के रूप में साक्षात् नारद जी ही थे और उन्होंने त्यागराजको एक स्वरार्णव नाम का ग्रन्थ भी प्रदान किया था। उन्हें सीता और लक्ष्मण सहित भगवान राम ने दर्शन देकर धन्य किया था। सन्त त्यागराज ने अपने आराध्य के चरण-कमल नयनों की अपार जल राशि से पखवारे थे। त्याग-राजकी जीवन-गाथा अलौकिक और दिव्य चमत्कारों से सर्वथा सम्पन्न है।

त्यागराज के संगीतों में विलक्षण माधुरी थी। एक बार त्रिवेन्द्रम के राजकुमार स्वाती तिरुनाल के सामने त्यागराज के शिष्य कन्हैया भागवत ने उनके कुछ गीत गाये। राजकुमार के मन पर उन भक्तिपरक गीतों का बड़ा प्रभाव पड़ा। उन्होंने अपनी राजसभा के गायक वादिवेलु को उन्हें लाने के लिये भेजा, राजवैभव त्यागराज को आकृष्ट न कर सका, रामभक्त सन्त ने राजभक्ति के सामने मस्तक नत नहीं किया, वे त्रिवेन्द्रम नहीं जा सके। त्यागराज ने कहलाया, 'पदवी तो सद्भक्ति ही है। भगवान के चरणों में अनुराग ही परमपद है। उनके चरणों से जिसकी बुद्धि विचलित नही होती, जिसका मन नही डिगता, वही प्रशंसनीय है। पद और सम्मान तो उसी के हैं जिसका पवित्र-निर्लेप भाव भगवान में है : अपनी पदवी आप फेर लें, मुझे इसकी चिन्ता नहीं है।'

एक बार राममंगलम ग्राम के प्रसिद्ध गायक गोविन्द मरार ने उनसे भेंट करने की इच्छा प्रकट की, पहले कुछ कारणोंसे यह बात संभव न हो सकी। सम्वत् १८९५ वि. में त्यागराज के काशी जाते समय उन्होंने भेंट की, उन्होंने त्यागराज से पद गाने के लिये कहा पर इच्छा पूरी न होते देखकर वे स्वयं वीणा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लेकर गाने लगे। त्यागराज ने उनकी गान-शैली से प्रसन्न होकर स्वयं गाना आरंभ किया, पाँच गीत गाये जो 'पंचरत्न' के नाम से प्रसिद्ध हैं।

त्यागराज अपनी साधना में सदा संतुष्ट रहते थे। एकबार वालजापेट के वंकटरमन की प्रार्थना स्वीकार कर उन्होंने उनके ग्राम की यात्रा की, रास्ते में तिरूपति के मन्दिर में भी गये। मन्दिर में भगवान की प्रतिमा और उनके बीच में एक परदा लटक रहा था। उनके नयन हरि-दर्शन के लिये आकुल हो रहे थे; उन्होंने कहा कि यह परदा ही पाप का पट है, माया का जाल है जो मुझे श्रीभगवान का दर्शन नहीं करने देता है, उनका उर-अन्तर विरह-वेदना से तड़प उठा। वे करुण रागिनी का आवाहन कर प्रभु के चरणों में संगीत समर्पित करने लगे। भगवान भक्त का विरह अधिक देर तक न सह सके। उनकी कृपा से परदा गिर पड़ा और त्यागराज के प्यासे नयनों में घनश्याम समा गये।

त्यागराज ने ऊषाकाल में तिरुपति मंदिर के निकटस्थ भाग से एक अत्यन्त करुण स्वर सुना। उन्होंने एक स्त्री को रोते देखा जिसका पति तिरुपति-मन्दिर के कूप में कूद पड़ा था। त्यागराज का हृदय दया से पिघल उठा, पाषाण से अहल्या की सृष्टि करने वाले राम के स्तवन में उन्होंने पद गाया, ब्राह्मण जी उठा। तिरुपति से लौटते समय वे अपने शिष्य सुंदरेश मुदालियर की विशेष प्रार्थना पर कोवूर में भी थोड़े समय के लिये रुक गये। शिष्य ने श्रद्धा और भक्ति से उन्हें प्रसन्न कर चलते समय बहुत-सा धन देना चाहा पर वे तो थे त्यागराज ही, उन्होंने कुछ भी न लेने में ही अपनी पूर्ण प्रसन्नता का परिचय दिया। शिष्य ने उनसे छिपा कर कुछ धन पालकी में रख दिया। जिस समय पालकी जंगल के मध्य में थी, डाकुओं ने आक्रमण किया; त्यागराज को इस घटना का कुछ भी पता नहीं था; पालकी ले चलने वालों ने देखा कि कुछ सैनिक उनके पीछे आ रहे थे। और कुछ आगे जा रहे थे, उनके विस्मय का अंत न रहा; वे रक्षक थे या लुटेरे थे– केवल इसी का विवेचन करते वे आगे बढ़ रहे थे। पालकी ज्यों ही जंगल से बाहर हुई कि डाकुओं के सरदारने उसे रोक ली और त्यागराज से निवेदन किया कि मैं तो आप को लूटना चाहता था पर दो राज-कुमारों ने जिनके हाथों में धनुष-वाण थे, हमारे दल का सामना किया और पराजय दी। त्यागराज ने डाकू को गले लगा कर कहा कि तुम्हारा कुल परम पवित्र है, तुम परम भागवत हो, तुमने राम और लक्ष्मण का दर्शन पाकर अपनी कीर्ति अमर कर ली। त्यागराज के नयनों से अश्रु की धारा बरसने लगी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

डाकू ने कहा कि महाराज मैं तो आप पर पत्थर की वृष्टि कर रहा था और आपने बदले में फूल समान बचनों से हमारा पाप-ताप से संतप्त हृदय शान्त किया, उसने त्यागराज की चरण-धूलि मस्तक पर चढ़ा कर साष्टांग दण्डवत-प्रणाम किया। त्यागराज आत्मस्थ हो गये, उनके मुखमण्डल पर शान्ति का साम्राज्य था। राम के परम भक्त होते हुए भी त्यागराज की निष्ठा अन्य देवी-देवताओं में समान रूप से थी, वे उन्हें अपने आराध्य राम का ही स्वरूप समझते थे। वे भगवती अम्बिका धर्म संबंधिनीके बड़े भक्त थे। उनके मन्दिर में जाया करते थे। एक दिन उन्होंने अपनी पत्नी को घरमें किसी से बात करते सुना; आश्चर्य चकित हो गये कि घर में है कोई नहीं और वे बात किससे कर रही हैं? उन्होंने देखा कि उनकी पत्नी एक परम सुन्दरी रमणी से बातें कर रही हैं, बात-की-बात में रमणी अदृश्य हो गयी। त्यागराज को पूछने पर पता लगा कि साक्षात अम्बिका ही उनके घर आयी थीं। पत्नी ने कहा कि देवी मुझे बुलाने आयी थीं। इस घटना के कुछ ही दिनों के बाद उनकी पत्नी का देहावसान हो गया। वे अम्बिका के चरणों में लीन हो गयीं। त्यागराज के वैराग्य ने अपना पूरा रूप प्रकट किया, भगवान के भजन के सिवा उनके लिये अब और दूसरा महत्वपूर्ण कार्य ही नहीं रह गया। उन्होंने अपनी कन्या सीतालक्ष्मी को ससुराल भेज दिया और पूर्ण निष्ठा से भगवद्भक्ति में लग गये।

अठ्ठासी साल की अवस्था में राम ने त्यागराज को दर्शन दिया। राम ने कहा कि इस पृथ्वी पर तुम्हें दस दिन और रहना है, दूसरे जन्म में तुम जीवन-मरण के बंधन से मुक्त हो जाओगे। प्रभु इतना कह कर अन्तर्धान हो गये। त्यागराज ने विचार किया कि दूसरा जन्म तो इसी समय हो सकता है, संन्यास ही दूसरा जन्म है। उन्होंने गृहस्थाश्रम के शेष बन्धनों को तोड़ कर अखण्ड भगवद्भक्ति-पूर्ण राममयी मुक्ति प्राप्त करने के लिये संन्यास का वरण कर लिया। सम्वत् १९०४ की पौष कृष्ण पंचमी को उन्होंने चोला छोड़ कर साकेत धाम की यात्रा की। अन्तिम दिन उन्होंने निर्जल रह कर कावेरी के तट पर राम-नाम का जप किया, कीर्तन किया। प्राण निकलते समय सिर फट गया और उसमें से एक दिव्य तेज निकल कर आसमान की ओर चला गया। उनका समाधि-मन्दिर कावेरी सरिता के पवित्र तट पर अवस्थित है।

त्यागराज दक्षिण भारत के नादब्रह्म थे। संगीत-सन्त थे। उनकी सन्त-परम्परा ने वैदिक धर्मका खण्डन नहीं, मण्डन किया। उन्होंने तेलुगु साहित्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

में राम काव्य का कनकाभिषेक किया। वे भक्त और सन्त होने के साथ-ही-साथ उच्च कोटि के कवि थे। वे राम के कथाकार थे। उन्होंने तेलुगु सन्त-साहित्य को रामभक्ति का रस प्रदान किया। हरिनाम की अनमोल सम्पत्ति दी। वे महान भगवदीय थे, सन्त थे।

रचना

नौका-चरित, दिव्य नामावली, रागरत्नमालिका, भक्त विजय, प्रह्लाद चरित तथा 'गीतपंचरत्न' आदि त्यागराज की प्रसिद्ध रचनायें हैं।

वाणी

हे मन! सुन्दर राज-मार्ग रहते हुए तुम क्यों गलियों में घूमते हो। मुक्ति के लिये भक्ति-मार्ग सुलभ है, कुमार्ग में पड़ कर क्यों नष्ट होते हो।

हे मन! सुख किसमें है—धन कमाने में या राम की सेवा करने में? रामचन्द्र के सेवकों—भक्तों का भला राजाओं की सभा में क्या काम है?

राम, आप कालहरण क्यों कर रहें हैं। सीताराम! यह कालयापन कैसा है! हे सुगुणजाल! करुणामय, प्रभो, जिस प्रकार दिन भर घूम-घाम कर पक्षी संध्या को वृक्ष की खोज करता है उसी प्रकार जन्म लेते ही आप के चरण पकड़ने वाले मुझ दास को उबारने में कालहरण क्यों करते हैं। दिन-प्रतिदिन दुनिया में भ्रमण कर मैंने आप के चरण में शरण ली है, तनमन-धन आप को अर्पित हैं। आप क्यों कालहरण कर रहे हैं।

रे मन! नादसुधारस ही पृथ्वी पर नराकृति ले बैठा है। यह निगमागम तथा पुराण और शास्त्र का आधार है।...अपूर्व कोदंडधारी नाद का, भंजन बड़े भाग्य का विषय है...इसमें स्वयं शंकरजी मग्न रहते हैं।

हे भगवान! मुझे ज्ञान दीजिये। यही उपयुक्त समय है। मुझसे इस संसार में नहीं रहा जाता है। मुझे अपने सन्निधान में ले चलिये।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महात्मा वनखण्डी

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भ परित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः।

जो पुरुष अपेक्षारहित, निर्मल, उदासीन और व्यथासे परे है तथा समस्त आरम्भोंका त्यागी है वह मुझे प्रिय है।

—भगवद्गीता १२।१६

महात्मा वनखण्डी तपस्वी और ज्ञानी सन्त थे। उदासीन सम्प्रदाय के महात्माओं में आचार्य श्रीचन्द्र की परम्परा में उनका नाम विशेष महत्व रखता है। उन्होंने सिन्ध प्रान्त के सक्खर नगर में सप्त सिन्धु-गंगा के संगम क्षेत्र में पवित्र साधुवेला तीर्थ की स्थापना कर सनातन धर्म की मर्यादा अक्षुण्ण रखने में जो श्रम किया वह उनके तपोमय विरक्त जीवन का विशिष्ट अंग स्वीकार किया जा सकता है। माया-ममता से परे होकर उन्होंने ज्ञान-स्वरूप परमात्म-ज्योति की अखण्ड धूनी जलाकर मानवता को आध्यात्मिक समृद्धि प्रदान की। परब्रह्म अलख निरञ्जन का चिंतन कर उन्होंने असंख्य प्राणियों को भवसागर से पार उतारकर महान पुण्य-संचय किया। महात्मा वनखण्डी ने माया-मोह में जकड़े जीव को सचेत किया कि नरजन्म दुर्लभ है, इस क्षणभंगुर संसार में उसे पाकर जो ज्ञानपूर्वक मोक्ष का भागी नहीं होता है वह अभागा है। ऐसे तो उदासीन सम्प्रदाय अनादि है, वेद, उपनिषद, भागवत तथा गीता आदि शास्त्रों में उदासीन प्रवृति का समीचीन चित्रांकन हुआ है पर ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अध्ययन करने पर पता चलता है कि सन्त नानक के आत्मज आचार्य श्रीचन्द्र ने इसका लगभग चार सौ साल पहले पुनरुत्थान किया। महात्मा वनखण्डी के जीवन-काल में देश की राजनैतिक सत्ता का धीरे-धीरे ह्रास हो रहा था। योरपीयों का आगमन आरम्भ हो गया था, योरपीय कम्पनियों की ओर से अपनी अपनी प्रभुता की स्थापना का प्रयत्न हो रहा था। नादिरशाह और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणों के फलस्वरूप भारतीय राज शक्ति जर्जर हो चुकी थी। पानीपत की तीसरी लड़ाई में भारत की पराजय हो चुकी थी। बंगाल और विहार में अंग्रेजी शक्ति बढ़ रही थी, वारेन हेस्टिंग्ज अपने कुचक्र में प्रयत्नशील थे, उत्तर प्रदेश में अवध के नवाब, महाराष्ट्र में पेशवा और दक्षिण में हैदरअली और टीपू सुलतान को नीचा दिखला कर अंग्रेज शासक भारत के मानचित्र को लाल रंग से रंग देने की चेष्टा में संलग्न थे। सिन्ध प्रान्त पर भी अंग्रेजों की वक्र दृष्टि पड़ चुकी थी। ऐसे आतंकपूर्ण काल में महात्मा वनखण्डी ने उदासीनाचार्य श्रीचन्द्र की तपस्या के मूर्तिमान रूप में प्रकट हो कर सिन्ध में ही नहीं, सम्पूर्ण भारत में सत्य, शान्ति और प्रेम का विस्तार किया, लोगों को आत्मनिर्भरता के उपदेश से सावधान कर भारत की आध्यात्मिकता का संरक्षण किया, यही उनके प्राकटच की ऐतिहासिकता है। सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा की भक्ति प्रदान करने का संकल्प लिया और भगवान की कृपा से उन्होंने अपने संकल्प को चरितार्थ करने में जो सफलता प्राप्त की उससे सनातन धर्म का, भारतीयता का मस्तक उन्नत हो गया। देश उनकी आध्यात्मिक शक्ति के चरणों पर नत हो गया।

विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में इतिहास प्रसिद्ध कुरुक्षेत्र नगर में रामचन्द्र नाम के एक गौड़ ब्राह्मण रहते थे। वे बड़े धर्मनिष्ठ और सात्विक प्रवृति के गृहस्थ थे। उनकी पत्नी मनोरमा देवी बड़ी सती-साध्वी थीं। दम्पति का साधु-सन्तों की सेवा में बड़ा मन लगता था। उन दिनों उत्तर भारत में मण्डलेश्वर उदासीन साधु मेलाराम सौ साधुओं के साथ नगर-नगर में भ्रमण कर भगवद्भक्ति का प्रचार कर रहे थे। एक बार वे कुरुक्षेत्र आये। उनके आशीर्वाद से मनोरमा देवी ने चैत शुक्ल सप्तमी को सम्वत् १८२० वि. में एक दिव्य बालक को जन्म दिया। बालक का नाम भालचन्द्र रखा गया। भालचन्द्र ही महात्मा वनखण्डी के नाम से प्रसिद्ध हुए। भालचन्द्र धीरे-धीरे बढ़ने लगे। वे बड़े गम्भीर और शान्त स्वाभाव के थे। एकान्त में रहना उन्हें अधिक प्रिय था। माता-पिता—दोनों को ऐसा लगता था कि भालचन्द्र संन्यासी न हो जाय। उन्होंने उदासीन महात्मा मेलाराम को वचन दिया था कि अपनी पहली सन्तान हम आपको सौंप देंगे। दस साल की अवस्था में पूर्वसंकल्प के अनुसार उन्होंने भालचन्द्र को महात्मा मेलाराम के हाथों में सौंप दिया। उन दिनों मेला राम जी पटियाला राज्य के फुलैली ग्राम में थे। भालचन्द्र उनकी प्रसिद्धि से

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रभावित होकर घर पर बिना किसी को बताये उनका शिष्यत्व ग्रहण करने के लिये निकल पड़े थे। माता-पिता को इस बात का जब पता लगा तब उन्होंने फुलैली पहुँच कर तथा हृदय कड़ा कर अपने पुत्र को मेलाराम के शरणागत कर दिया। मेलाराम ने भालचन्द्र को दीक्षित कर उनका नाम वनखण्डी रखा। इस प्रकार दस साल की अवस्थामें वे उदासीन सम्प्रदाय में दीक्षित हो गये। वनखण्डी तो जन्मजात उदासीन थे, संसार के पदार्थों और सम्बन्धों में उनकी तनिक भी आसक्ति नहीं थी। उन्होंने अपने गुरु की देख-रेख में योगाभ्यास प्रारम्भ किया और धीरे-धीरे यौगिक सिद्धियों पर अधिकार पाने लगे। फुलैली के वन में आखेट खेलते हुए तत्कालीन पटियाला नरेश महाराजा अमर सिंह मेलाराम जी का दर्शन करने आये। उन्होंने वनखण्डी महाराज को देखा। उनके सौन्दर्य और मुखमण्डल की प्रदीप्ति से वे आश्चर्यचकित हो गये। उन्होंने मेलाराम जी से निवेदन किया कि मैं इनको अपने राजमहल में ले जाना चाहता हूँ, शाम को आप के पास पहुँचा जाऊँगा। गुरु की आज्ञा से ग्यारह साल के बाल योगी वनखण्डी महाराज पटियाला नरेश के साथ उनके राजभवन में गये। रानियों का मन मुग्ध हो गया। उन्होंने वनखण्डी महाराज को रात में रोकना चाहा पर शाम होते ही वे राजप्रासाद से बाहर आकर एक वृक्ष के नीचे समाधिस्थ हो गये। वे तो वनवासी योगी थे, उनका मन राजभवन में लगता ही किस तरह? दूतों ने पटियाला नरेश को सूचना दी तो वे स्वयं उनके पास गये और साथ लेकर मेलाराम जी के आश्रम में पहुँचा दिया। वनखण्डी महाराज को राज महल की माया अपनी ओर आकृष्ट न कर सकी। भगवान की कृपा से उनका वैराग्य अक्षुण्ण रहा। मेलाराम जी उनके इस आचरण से बहुत प्रसन्न हुए।

बहुत दिनों तक योगाभ्यास करने के बाद गुरुकी आज्ञा से उन्होंने हरिद्वार, मथुरा, अयोध्या, प्रयाग, काशी, नैपाल, वैद्यनाथ, गंगा सागर, कामाक्षा, जगन्नाथ, द्वारिका, रामेश्वर आदि पुण्यक्षेत्रों की यात्रा की। उन्होंने सोलह साल की अवस्था में तीर्थाटन आरम्भ किया। साढ़े तीन साल की यात्रा पूरी कर वे अपने गुरु के पास लौट आये। योग-साधना का उन्होंने विशेष अभ्यास किया।

दक्षिण भारत के तीर्थ-भ्रमण काल में उन्हें एक विचित्र परिस्थिति का सामना करना पड़ा। जिस समय वे मदुरा में पहुँचे, उन्हें पता चला कि देवी के मन्दिर में राजा की ओर से नरबलि चढ़ाने की व्यवस्था नित्य होती रहती है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजा के वन्दीगृह में बहुत-से साधु-सन्त और स्त्रियों का समूह था जिनकी बलि चढ़ायी जाने वाली थी। वनखण्डी महाराज ने योग-बल से बन्दीगृह के दरवाजे खोल कर लोगों को मुक्त कर दिया। मदुरा-नरेश ने उनके चरणों पर मस्तक नत कर नरबलि बन्द कर देने का वचन दिया। यात्रा-समाप्त कर वनखण्डी महाराज ने बम्बई में अपनी धूनी जलायी। साधु-सन्त और भक्त-दर्शनार्थी जन उनका दर्शन करने के लिये एकत्र होने लगे। बम्बई में साधुबेला तीर्थ की स्थापना कर उन्होंने सिन्ध प्रान्त में प्रवेश किया। ठट्ठा नगर में श्रीचन्द्र आचार्य की धूनी को प्रणाम किया। उन्होंने साधुबेला तीर्थ की स्थापना की। उस सुरम्य प्रदेश में निवास कर वे तप करने लगे। उनकी तपस्या से साधुबेला तीर्थ सिन्ध प्रान्त में काशी क्षेत्र बन गया। साधु-सन्तों के समागम, सदान्नत, दान, हरिकथा और कीर्तन से साधुबेला के कण-कण में पवित्रता और दिव्यता परिव्याप्त हो उठी।

लगभग तीन साल तक साधुबेला में योगाभ्यास और तप करने के बाद वनखण्डी महाराज ने एक बार फिर तीर्थयात्रा आरम्भ की। वे अमरनाथ गये। अमरनाथ में शिवलिंग का दर्शन कर वे साधुबेला लौट आये।

सनक-सनन्दन-सनत्कुमार के आदि सम्प्रदाय के उदासीन वृत्तिपरक सिद्धान्तों के प्रचार में महात्मा वनखण्डी आजीवन लगे रहे। सदा भगवद्ध्यान में तल्लीन रहना ही उनके जीवन का दैनिक कार्यक्रम था; वे सनातन धर्म के बहुत बड़े संरक्षक थे। गुरु में उनकी बड़ी निष्ठा थी। उनकी सेवा को वे साधनगत प्रगति की आधारशिला स्वीकार करते थे। गुरु के प्रसाद से ज्ञान होने पर अज्ञान मिट जाता है—ऐसी उनकी स्वीकृति है। उनकी वाणी है:

'गुरुप्रसाद सुने जब ज्ञान, गुरु प्रसाद मिटे अज्ञान।
गुरुप्रसाद शास्त्र को सार, 'वनखण्डी' गुरु कृपा धार॥'

उन्होंने सनातन वैदिक धर्म को ही मान्यता दी। उन्होंने कहा कि वेद साक्षात् परमेश्वर की आज्ञा है, वेदवचन के अनुसार आचरण करने पर मुक्ति की प्राप्ति होती है, जो वेदों में श्रद्धा रखता है उसका संसार-सागर से उद्धार हो जाता है। उन्होंने बताया कि भक्तों और सन्तों के कल्याण के लिये परमात्मा निराकार से साकार हो जाते हैं, ऐसे कृपामय प्रभु का नित्य-प्रत्येक क्षण स्मरण करते रहना ही जीवन की सार्थकता है। भगवान् ही जगत हैं और जगत भगवान्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

का स्वरूप है—इस रहस्य को जानने वाला कभी शोकग्रस्त और भयभीत नहीं होता है, सदा ब्रह्मानन्द में निमग्न रहता है। उनकी उक्ति है :

'हरी जगत हैं, जगतहरि, हरि जग को नहिं भेद।
जो जानै यह ज्ञान तिहिं 'वनखण्डी' नहिं खेद॥'

आत्मसाक्षात्कार को ही उन्होंने साधना का अन्त माना, सिद्धि का प्रतीक बताया, भगवद्प्राप्ति स्वीकार किया। आत्मा और परमात्मा की अभिन्नता ही जीवद्वारा शिवबोध है— ऐसा उनका कथन है।

'स्वस्वरूप को भूल के, भजो आप यह जीव।
जब जाने मैं भिन्न नहिं, 'वनखण्डी' यह शीव॥'

आत्ममग्न होने पर ही अखण्ड आनन्द की प्राप्ति होती है, सहज नाम से समाधि लग जाती है और मोक्ष धाम का पथ मिल जाता है — ऐसा वनखण्डी महाराज का विश्वास था। रामनाम में उनकी सुदृढ़ श्रद्धा थी, रामनाम को उन्होंने मन्त्रराज कहा। रामनाम का उच्चारण करने वाला संसार से तर जाता है — ऐसा उनका कथन है : 'जो जन बोलै राम हरे, 'वनखण्डी' संसृति से तरे।' विक्रम की उन्नीसवीं सदी के उदासीन सन्तों के वे शिरोमणि थे। सन्त और परमेश्वर की एकरूपता में उन्होंने आस्था प्रकट की। स्पष्ट कहा :

'सन्त ईस के नित अवतार, करे संग होवे भवपार।
सन्त ईस में भेद न माने, 'वनखण्डी' भेद हि को भाने॥'

उनका सन्तत्व निस्सन्देह उच्चकोटि का था। वे सत्य के अन्वेषक ही नहीं, अनुभवी भी थे।

अंग्रेजों की सिन्ध-विजय के बाद शिकारपुरका पहला अंग्रेज अधिकारी फ्रैंक विल्स था। एक दिन सिन्धु नदी में नाव पर घूमते-घूमते साधु-बेला तीर्थ के सामने जा पहुँचा। स्थान की रमणीयता और स्वच्छता ने उसका मन मोहित कर लिया। महात्मा वनखण्डी के आश्रम को नष्ट कर वह अपना बंगला बनवाना चाहता था। उसने इस कार्य के लिये कुछ मजदूर नियुक्त किये पर दिन भर जो भी काम हुआ था, वह रात में किसी अदृश्य शक्ति द्वारा नष्ट हो जाता था। दो-तीन दिनों तक यही क्रम रहा। विल्स महोदय ने आदेश पत्र निकाला कि महात्मा वनखण्डी को इस द्वीप से बाहर निकाल दिया जाय। महात्मा वनखण्डी अन्तर्धान हो गये। रात को विल्स के उदर में भयंकर शूल उठा, उसे विश्वास

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हो गया कि सन्त के प्रति मेरे दुराचरण का ही यह परिणाम है। उसने नतमस्तक होकर क्षमा माँगी, साधुबेला तीर्थ सदा के लिये उनको सौंप दिया।

महात्मा वनखण्डी देखने में नित्य किशोरसे लगते थे। उनके अंग-अंग दिव्य और चित्ताकर्षक थे। वे चोंगा और लम्बासा टोपा पहनते थे। रंग-विरंगी एक गुदड़ी भी धारण करते थे। उसका नाम उन्होंने योगगुदड़ी रखा था। जीवन के अन्तिम दिनों में उन्होंने साधुबेला तीर्थ में ही निवास कर योगाभ्यास, सत्संग और तपका क्रम चलाया।

सम्वत् १९२० वि. में आषाढ़ कृष्ण द्वितीया को दो बजे रात में 'शिवोऽहं' का विशेष योगध्वनि से उच्चारण कर उन्होंने महाप्रयाण किया। सिन्धु-नदी में उन्हें जल समाधि दी गयी। ब्रह्म-निर्वाण के समय असंख्य भक्त और संत उपस्थित थे।

रचना

वनखण्डी महाराज के वचन और उपदेश ही अमर कृति हैं।

वाणी

ओम सच्चिदानन्द प्रभु, अकल कला भरपूर।
व्यापक जग करता हरि, 'वनखण्डी', जगदूर॥
मोक्ष ज्ञान से होत है, गुरु से होवे ज्ञान।
यही वेद सिद्धान्त है, 'वन खण्डी' तू जान॥
सत चिद आनन्द ईस है, नाम रूप संसार।
मिलि पाँचो यह जग बन्यो, 'वनखण्डी' नहिं पार॥
नाम रूप को छोड़ के, सत चिद आनन्द जोय।
अविनासी अज स्वयंभू, 'वनखण्डी' तू सोय॥
गुरु-ईस में भेद न जाने, गुरु उपदेश वेद हम माने।
वेद सत गुरु कर विश्वास, 'वनखण्डी' हो ज्ञान प्रकास॥
हरि से भये लीन हरि माहिं, मध्य हरी जगमिथ्या आहि।
करि विचार यों निश्चय करे, 'वनखण्डी' भवसागर तरे॥
सब से प्रथम नाम में प्रेम, नाम जपन को लेवे नेम।
कलि युग में है नाम प्रताप, 'वनखण्डी' निसिदिन आलाप॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बाबा कीनाराम

सिपाही मन दूर खेलन मत जैये ॥
घटही में गंगा घट ही में जमुना तेहि बिच पैठि नहैये।
अछेहो बिरिछ की शीतल छहिया तेहि तरे बैठि छहैये ॥
माता-पिता तेरे घट ही में, नित उठि दरसन पैये।
'शिवनारायण' कहि समुझावे, गुरु के सबद हिये कैये ॥

—संत शिवनारायण

सत् असत् के विकार से अतीत होकर, परमानन्द पद में तल्लीन होकर, आत्मचिंतन के अथाह और अपार सागर में चित्तवृत्तिनिरोध कर रमणशील हो जाना ही सन्त का अवधूत स्वरूप है। ऐसे अवधूत के लिये गुणअवगुण रूप में अधिष्ठित जगत आत्मरूप हो जाता है; वह प्रियता और अप्रियता के बन्धन से स्वतन्त्र होकर आत्मविज्ञान में समस्थिर हो जाता है। इसी तरह के अवधूत बाबा कीनाराम थे, वे सिद्ध अघोर सन्त थे। आत्मविज्ञान में रमण करनेवाले परम विरक्त महात्मा थे। बाबा कीनाराम की एक स्थल पर उक्ति है कि मैं देवालय और देवता तथा पूजा और पूजारी हूँ...मैंने ही वृन्दावन में कृष्ण रूप में गोपी और ग्वालों के साथ नृत्य किया। मैंने ही हनुमान के रूप में राम का हितकार्य-सम्पादन किया। यह उक्ति उनकी एकरसता– एकात्मबोध की परिचायिका है। बाबा कीनाराम निर्मल उपाधिरहित निरञ्जन-चिन्मय सत्य के उपासक थे; संत कबीर की वाणी और विचारों का उन पर विशेष प्रभाव पड़ा था, उन्होंने खरा सत्य कहा। उन्होंने कहा कि यह बड़े आश्चर्य की बात है कि सत्य तत्व अपन आप में परिपूर्ण है पर बताने वाले उसे अपने से अलग और अप्रकट बतलाते हैं। उनकी उक्ति है :

"अंधहि अंधा डगर बतावत,
बहिरहि बहिरा बानी।
'रामकिना' सतगुरु सेवा बिनु,
भूलि मरयो अज्ञानी।"

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बाबा कीनाराम पहुँचे हुए संत थे; उनकी सिद्धि उच्च कोटि की थी। काशी के निकटस्थ चंदौली मण्डल में वाणगंगा नदी के तट पर स्थित रामगढ़ गाँव में सम्वत् १६८४ वि. के चैत मास में बाबा कीनाराम ने जन्म लिया था। उनके पिता अकबरसिंह बड़े सुशील गृहस्थ थे, उन्होंने अपने पुत्र का पालन-पोषण बड़े प्यार से किया; शिक्षा-दीक्षा की भी समुचित व्यवस्था थी। कीनाराम अपने तीन भाइयों में सबसे बड़े थे; परिवार और गृहस्थी की सारी आशा उन्हीं पर केन्द्रित थी। माता-पिता समझते थे कि बड़ा होने पर कीनाराम घर सम्हाल लेंगे पर कीनाराम तो समस्त जगत के माता-पिता के घर को आत्मज्ञान के आलोक से प्रकाशित करने आये थे। बचपन से ही उनमें आध्यात्मिकता के प्रति सहज आकर्षण था। वे जन्मजात संत थे। अल्पवयस्क होने पर भी वे अपने साथियों से रामनाम का उच्चारण करवाते थे। राम नामामृत कान में पड़ते ही प्रसन्नता से नाच उठते थे। जब वे छोटे थे तभी उनका विवाह कर दिया गया। लगभग तेरह साल की अवस्था में उनके गौने की तिथि निश्चित की गयी। नाच-बाजे की तैयारी होने लगी। घर में आनन्द मनाया जाने लगा। निकट के सगे-सम्बन्धियों को निमंत्रित किया गया। एक दिन पहले ही बरात की तैयारी देख कर मा से कीनाराम ने कहा कि मैं दूध-भात खाना चाहता हूँ। मा ने समझाया कि शुभ अवसर पर दूध-भात खाने का निषेध है; गौने के समय इस तरह के अमांगलिक भोजन की माँग अनुचित है। कीनाराम नें मा का कहना नहीं माना; उन्होंने हठपूर्वक दूध-भात खा कर ही सांस ली। दूसरे दिन कीनाराम की बरात जाने ही वाली थी कि तत्काल ससुराल से समाचार आया कि वधू का देहान्त हो गया है, अन्त्येष्टि के लिये शव सैदपुर घाट पर लाया गया है। कीनाराम के दूधभात खाने का रहस्य लोगों को विदित हो गया। इस घटना के बाद वे अधिक दिनों तक घर पर नहीं ठहर सके।

उन दिनों कारों नामक स्थान में रामानुजी सम्प्रदायक के एक प्रसिद्ध महात्मा बाबा शिवाराम जी रहते थे। रामकीना के मन में उनके प्रति बड़ी श्रद्धा थी। वे उनके दरबार में उपस्थित हुए। शिवाराम जी महाराज की सेवा में लग गये। उन्होंने निवेदन किया कि मुझे शिष्य रूप में स्वीकार कर मेरा भवबन्धन काट दीजिये। शिवाराम जी महाराज ने उनको शिष्य रूप में ग्रहण करना स्वीकार नहीं किया। एक दिन विचित्र घटना हुई; शिवाराम जी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के साथ कीनाराम गंगातट पर खड़े थे, शिवाराम ने पूजन का सामान और बाघम्बर देकर जल में स्नान करने के लिये प्रवेश किया, उन्होंने देखा कि गंगाजल बढ़ कर तट पर खड़ें कीनाराम के चरण का स्पर्श कर रहा है। वे चकित हो गये, उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से कीनाराम को मन्त्र देकर अपनी शरण में ले लिया। कीनाराम ने उनके स्तवन में एक स्थल पर कहा है :

"कल्पन हूँ के कल्पतरु गुरु दयाल जिय जानि।
शिवाराम है नाम शुचि रामकिना पहिचानि॥"

वे अधिक दिनों तक शिवाराम जी के पास न रह सके ; परिस्थिति से विवश होकर बाबा कीनाराम ने कारो छोड़ दिया। वे भ्रमण के लिये चल पड़े। उन्होंने आसन उठा लिया, नैगडीह गाँव में आये, वहाँ एक बुढ़िया को रोते देख कर रोने का कारण पूछा।

'बाबा, तुम अपनी राह जाओ।' बुढ़िया ने इतना कहा ही था कि बाबा ठहर गये। अन्त में बूढ़ी स्त्री ने कहा कि जमींदार का कर बाकी है; वह उसे उगाहने के लिये मेरे लड़के को बलात् पकड़ ले गया है। बाबा बुढ़िया के साथ जमींदार के घर गये, लड़का कड़ाके की धूप में खड़ा किया गया था। बाबा कीनाराम ने जमींदार से कहा कि इसे छोड़ दो पर वह टस-से-मस न हो सका। उसने बाबा से कहा कि भिक्षा चाहते हो तो लेकर अपनी राह पकड़ो। यदि मन न मानता हो तो सारा कर तुम्हीं दे दो। महाराज को यह बात लग गयी। उन्होंने लड़के से उस स्थान से हट जाने को कहा और जमींदार से कहा कि इस स्थान को खोदने पर रुपया मिलेगा, जितना मन हो ले लो। जमीन खोदी गयी, रुपया देखकर जमींदार ने उनके चरणों पर गिर कर क्षमा-याचना की।

'अपना लड़का ले जा,' महाराज ने बुढ़िया को आदेश दिया।

बुढ़िया ने कहा, 'कृपानाथ, यह पुत्र आप का है।' उसने उसको महाराज के चरण में समर्पित कर दिया, बाबा ने उसका नाम बीजाराम रखा; बीजाराम की गणना कीनाराम के प्रसिद्ध और मुख्य शिष्यों में की जाती है। बाबा नये शिष्य के साथ तीर्थ-भ्रमण करने लगे। कई सालों के बाद वे लौट कर गाँव आये; गाँव के दक्षिण वाणगंगा सरिता के निकट ही एक जंगल में वट वृक्ष के नीचे आसन लगाया। भजन करने लगे। धीरे-धीरे दर्शनार्थियों की भीड़ बढ़ने लगी। बाबा कीनाराम ने एक कुआँ बनवाया जो पक्का था। इसी प्रकार उस स्थान पर उन्होंने एक पक्का बरामदा बनवाया पर उसकी छत को उपलों से पटवा दिया

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और कहा कि तुम पक्की हो जा। उनके ऐसा कहते ही छत पक्की हो गयी, कुआँ रामसागर नाम से प्रसिद्ध है; इस तपोभूमि के निकट ही कीनेश्वर महादेव का मन्दिर भी है। बाबा दर्शन करने वालों की भीड़ से उकता कर तीर्थ-भ्रमण के लिये निकल पड़े।....वे जूनागढ़ आये। नगर के बाहर आसन लगा दिया। बीजाराम को केवल तीन घर से भिक्षा माँगने का आदेश था।...नगर में भिक्षा के लिये प्रवेश करते ही सिपाहियों ने उनको जेल में डाल दिया; बहुत-से साधु-पुरुष जेल में बन्द थे; उनके पीसने के लिये ९८१ चक्कियाँ थीं।...इधर बीजाराम के आने में विलम्ब देख कर उन्होंने ध्यान में ही सारी घटना समझ ली। नगर में स्वयं भिक्षा माँगने आये। उन्हें भी जेल में डाल दिया गया और आटा पीसने का आदेश मिला। बाबा ने चक्की पर एक दंडा मारा और वह चलने लगी; उसी की तरह अन्य चक्कियाँ भी चलने लगीं। नगर में यह बात बिजली की तरह फैल गयी। नवाब ने बाबा कीनाराम से क्षमा माँगी और हीरे-मोती से भरी थाल भेंट में दी, बाबा ने दो-चार हीरे-मोती मुख में रख कर बाहर फेंक दिया, उपेक्षा दृष्टि से कहा कि न तो ये खट्टे हैं, न मीठे हैं। नवाब ने भेंट स्वीकार करने की प्रार्थना की; बाबा ने कहा कि मेरी सबसे बड़ी भेंट यही है कि तुम्हारे नगर में जितने यति-संन्यासी आयें उतने लोगों को ढाई-ढाई पाव आटा दिलाने की व्यवस्था हो जाय। नवाब ने उनकी आज्ञा शिरपर धारण की और ऐसे सिद्ध सन्त के दर्शन से अपने आप को कृतार्थ और धन्य माना। जूनागढ़ से बाबा कीनाराम गिरनार पहुँचे, उन्हें उस स्थान पर परम अवधूत भगवान दत्तात्रेय का दर्शन हुआ। बाबा कीनाराम ने उनसे मन्त्र-दीक्षा ली। इस घटना के सम्बन्ध में बाबा कीनाराम की उक्ति है :

पुरी द्वारिका गोमती गंगा सागर-तीर।
दतात्रय मोहि कहँ मिले हरनमहा भवपीर।
मोहि प्रबोधे विविध विधि त्रिकालज्ञ भगवान।
अंतरहित होते भये बानी सत्य प्रमान॥

यह सन्त वाणी है; सिद्ध महात्मा की यथार्थ उक्ति है कि उन्हें दत्तात्रेय का साक्षात्कार हुआ था, इस तरह के कथन में संशय के लिये तनिक भी स्थान नहीं है।

तीर्थ-भ्रमण के बाद बाबा कीनाराम ने काशी में आकर केदार घाट श्मशान पर डेरा डाला; प्रसिद्ध अघोरी सन्त कालू राम से उनकी भेंट हो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गयी। कालूराम सिद्ध सन्त थे; कीनाराम देखा कि कालूराम शव की खोपड़ी को तट पर बुला कर चना खिला रहे हैं। कीनाराम ने कहा कि यह कैसा खेल कर रहे हैं, स्थान पर चलिये।...थोड़ी दूर पर गंगा में एक शव बहता चला आ रहा था। कालूराम ने कहा कि मुर्दा आ रहा है। कीनाराम ने कहा कि यह तो जिन्दा है। कालूराम उनकी बात सुनकर आश्चर्य में पड़ गये। देखते-ही-देखते बाबा कीनाराम ने मुर्दे से कहा कि इधर आओ और वह खड़ा होकर घाट पर आ गया। घर जाने पर लोग मुद को जीवित लौटते देख कर आश्चर्य में पड़ गये। माता ने अपने जीवित पुत्र को बाबा कीनाराम के चरणों में सदा के लिये समर्पित कर दिया। बाबा ने उसका नाम रामजियावन रखा।.....कालूराम इस तरह की अनेक सिद्धियों से प्रसन्न होकर बाबा कीनाराम को अघोर मन्त्र प्रदान कर अदृश्य हो गये। इस घटना के सम्बन्ध में लिखा है।

"कीना कीना सब कहै कालू कहै न कोय।
कालू कीना एक भये, राम करै सो होय।"

ऐसी मान्यता है कि कालूराम के वेष में भगवान दत्तात्रेय ने ही उनको दर्शन देकर धन्य किया था। कालूराम के गुप्त होने पर बाबा काशी में ही कृमि-कुण्ड पर रहने लगे। उनकी सिद्धि से आकृष्ट होकर लोग अधिकाधिक संख्या में उनके अनुयायी बनने लगे।

बाबा कीनाराम का सिद्धान्त यह था कि अत्यन्त अगाध और अगम निर्वाण पद की प्राप्ति गुरु की कृपा से ही सम्भव है। उनकी दृष्टि में ऊँ मन्त्र की सिद्धिभूमि रामनाम में ही प्रतिष्ठित थी। रामनाम उनका प्राणमंत्र था। बाबा कीनाराम का वचन है:

'अमर बीज विज्ञान को कह्यौं समुझि कर लेहु।
ऊँ सो मन्त्र विचारि कै रामनाम चित देहु।'

उनका तत्वनिरूपण सीधी सादी और हृदय को पिघला देने वाली भाषा में है। उन्होंने बतलाया कि सत्य पुरुष सत्य नाम में स्थित है, रूप-रेख से नितांत अतीत है। उन्होंने सर्वत्र व्याप्त चिदानन्द सुखधाम आत्माराम की ही वन्दना की। बाबा कीनाराम ने अनुभव के सहारे कहा:

'व्यापक व्याप्य प्रकाश महँ चिदानन्द सुखधाम।
बहिरंतर जहँ तहँ प्रगट बन्दौं आत्माराम॥'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बाबा ने अनुभव किया कि मैं ही योगी, युक्ति और मुक्ति तथा आत्मा का ज्ञाता हूँ। तरुवरमूल तथा फल-फूल-सब में मेरा ही अधिवास है, अभेद और भेद सब कुछ मेरी ही सत्ता में स्थित है। मैं ही खोटा खरा तथा खेदगत और खेदरहित हूँ। मैं ही परम सत्य हूँ, जगत में मुझसे परे किञ्चित मात्र भी नहीं है। उनका शब्द है :

'शब्द का रूप सांचो जगतपुरुष है,
शब्द का भेद कोई संत जानै।
शब्द अज अमर अद्वितीय व्यापक पुरुष,
संत गुरु शब्द सुविचार आनै॥
चंद में जोति है जोति में चंद है
अरथ अनुभव करै एक मानै।
'राम किना' राह यह अगम वांकी निपट,
निकट को छांडि के प्रीति ठानै॥'

सत्य के यौगिक निरूपण के स्तर पर कितना मार्मिक रहस्यवाद इस कथन में अभिव्यक्त है!

उनकी विवेकसार पुस्तक आध्यात्मिक तत्वज्ञान से परिपूर्ण है; इसमें शिष्य और गुरु के सम्वाद-माध्यम से अलौकिक जीवन की गतिविधि पर प्रकाश डाला गया है। इसमें वर्णित है कि रज, तम, सत, जल, अग्नि, पवन, गगन, पृथ्वी,—समस्त सृष्टि सत्यपुरुष की शक्ति से सृजित और परिव्याप्त है। समझने पर ज्ञान और न समझने पर अज्ञान की उपलब्धि होती है, समझते-समझते जीवात्मा विज्ञान कक्ष में पहुँच जाता है। बाबा कीनाराम ने उपदेश की भाषा में कहा :

'साँच कहिय साँचो सुनिय साँचो करिय विचार।
साँच समान न और कछु साँचो संग सम्हार॥'

बाबा ने कहा कि रामनाम समस्त भगवन्नाम की मौलि है, उसे सम्हाल कर रखना चाहिये। सद्गुरु चरण में आश्रय लेने से जीवात्मा अभय हो जाता है। गुरु के स्वरूप-चिंतन में बाबा कीनारामका वचन है :

'ब्रह्मानन्द सुबोधमय आतम अनघ अकाम।
छंदरहित आकाशवत अलख निरञ्जन नाम॥'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उन्होंने कहा कि समस्त ब्रह्माण्ड का दर्शन पिण्ड में सम्भव है, भगवत्-तत्व के साक्षात्कार के लिये दूर नहीं जाना पड़ता है; वह तो अपने आप में ही परिव्याप्त है। प्रेम-तत्व पर बाबा ने बड़ा ज़ोर दिया। प्रेम की गली अमित 'अटपटी' है– ऐसी उनकी स्वीकृति है।

बाबा कीनाराम ने मारुफपुर, रामगढ़, देवल, हरिहरपुर, आदि स्थानों में अपनी गद्दी स्थापित की। काशी नरेश महाराज बलवन्त सिंह बाबा कीनाराम में बड़ी श्रद्धा रखते थे; वे उनका अच्छी तरह आदर-सत्कार करते थे। बाबा कीनाराम ने काशी में ही अपने क्रमिकुण्ड मठ में ही एक सौ बयालीस साल की अवस्था में सम्वत् १८२६ वि. में शरीर त्याग दिया। वे उच्च कोटि के परमहंस अवधूत थे। उत्तरी भारत की सन्त साहित्य-परम्परा में उनका नाम अमर है।

रचना

बाबा कीनाराम की प्रसिद्ध रचनायें रामरसाल, रामगीता, रामचपेटा, राममंगल, पोथीविवेकसार आदि हैं।

वाणी

रामनाम-सत्संग सम साधन और न कोइ।
श्रुतिसिद्धान्त विचार यह जानै विरला कोइ॥
स्वाती जल सतगुरु वचन थल विशेष गुन होइ।
'रामकिना' गजकुंभमनि नाग सीस विष होइ॥
राम नाम सब कोइ कहै रामहिं लखै न कोइ।
'राम किना' जौ राम हित रूठि करै का कोइ॥
सत्य पुरुष को सत्य कहि सत्य नाम को लेखि।
रूप रेख नहिं संभवै कहिये कहा विशेषि॥
माया अगम अनन्त की पारन पावै कोइ।
सो जानै जाके कछूकाया परिचय होइ॥
अनुभव सोइ जानिये, जो नित रहै विचार।
'रामकिना' सत शब्द गहि, उतरि जाय भौ पार॥
चाह चमारी चूहड़ी, सब नीचन ते नीच।
तू तो पूरन ब्रह्म था, चाह न होती बीच॥
जिन्ह गाया तिन गाया नाहीं, अनगाया सो गाये माहीं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जिन्ह जाना तिन्ह जाना नाहीं, अनजाना सो जानेहि माहीं।
जिन्ह बूझा तिन्ह बूझा नाहीं, अनबूझा सो बूझेहि माही।
जिन्ह देखा तिन देखा नाहीं, अनदेखा सो देखे माहीं॥
जिन्ह लेखा तिन लेखा नाहीं, अनलेखा सो लेखेहि माहीं॥
जिन्ह समुझातिन समुझा नाहीं, अनसमुझा सो समुझे माहीं।
जिन्ह सुनिया तिन सुनिया नाहीं, अनसुनिया सो सुनिया माहीं॥
जिन्ह वोला तिन वोला नाहीं, अनबोला सो बोले माहीं।
जिन्ह गुनिया तिन गुनिया नाहीं, अनगुनिया सो गुनिया माहीं॥
जिन्ह पाया तिन पाया नाहीं, अनपाया सो पाया माहीं।
जिन्ह चाखा तिन चाखा नाहीं, अनचाखा सो चाखे माहीं॥
जिन्ह धाया तिन धाया नाहीं, अनधाया सो धायेहि माहीं।
जो बैठा सो बैठा नाहीं, अनबैठा सो बैठे माहीं॥
जो भीना सो भीना नाहीं, अनभीना सो भीनेहि माहीं॥

मैं जोगी मैं जुक्ति मुक्ति मैं आतमज्ञाता।
मैं तरुवर मैं मूल साख मैं फल रंगराता॥
महीं पच्छ महीं पत्र रहित मैं जरद श्याम अति॥
मैं अरक्त मैं श्वेत अंग-संग मैं मेरी गति॥
मैं अन्तर अन्तरहित मैं अभेद सब भेद मैं।
'राम किना' खोटो खरो, सहितखेद गतखेद मैं॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्त प्रीतमदास

'कहा रसखानि सुख सम्पति सुमार महं
कहा महोयीगी ह्वै लगाये अंग छारको।
कहा साधैं पंचानल, कहा सोये बीच जल,
कहा जीति लाये राज सिंधु वारपार को॥
जप बार-बार तप संयम बायार व्रत
तीरथ हजार अरे बूझत लबार को।
सोई है गँवार जिहि कीन्हों नहि प्यार,
नहीं सेयौ दरबार यार नन्द के कुमार को॥'

—भक्तकवि रसरवान

भगवान सम्पूर्ण प्रेममय हैं, जो सुख नन्दनन्दन के दरबार में मिलता है वह अन्यत्र परम दुर्लभ है। सम्पत्ति के सुमेरु की प्राप्ति हो जाय; जप और तप की साधना से बड़ी-से-बड़ी सिद्धि मिल जाय; असंख्य तीर्थों के सेवन का फल मिल जाय पर भगवदीय प्रेम की तुलना में सब कुछ निरर्थक और व्यर्थ है। जो प्राणी राम के रूप-सौन्दर्य का एक वार भी सच्चे हृदय से रसास्वादन कर लेता है वह जन्मजन्मान्तर के लिये जागतिक प्रपञ्च और विषयासक्ति से विमुक्त हो जाता है; भगवद्रसकी महिमा वर्णन से परे की वस्तु है; वह चिदानन्दमय और सहज दिव्य है। संत प्रीतमदास भगवद्रस के परम मर्मज्ञ थे। भगवान के पवित्रतम रूपरस सागर में सम्पूर्ण निमग्न होकर उनका जीवन सरस और सफल हो गया। गुजराती साहित्य में उनको अमित महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। नरसी मेहता की सरस वाणी से कृतार्थ गुजरात संत प्रीतमदास के ज्ञानमूलक साहित्य की सरसता से धन्य हो गया। प्रीतमदास गुजराती वाङ्मय के प्रमुख स्तम्भ शामल के समकालीन थे। उन्होंने गुजरात के हृदय-देश में सरसता पूर्ण आध्यात्मिक चेतना भर दी। प्रीतमदास विवेकपूर्ण वैराग्य के साकार रूप थे। प्रीतमदास उच्च कोटि के ज्ञानी भक्त थे, अपने आप को परम अकिञ्चन और साधारण प्राणी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मानते थे, उनका वैराग्य उच्च कोटि का था। अपने प्रेमियों और अनुयायियों में वे प्रीतम स्वामी के नाम से प्रसिद्धि थे।

संत प्रीतमदास का जन्म गुजरात के बावला ग्राम में सम्वत् १७७४ वि के लगभग बारोट (भाट) कुल में हुआ था। उनके पिता का नाम प्रभातसिंह और माता का नाम जयकुवरि बाई था। ऐसा कहा जाता है कि वे जन्म से ही अंधे थे। साधु सन्तों के प्रति बचपन से ही उनके मन में सहज अनुराग था। वे भगवद्सम्बन्धी बातों में बड़ी अभिरुचि प्रकट करते थे। पन्द्रह सोलह साल की ही अवस्था से वे सरस पदों की रचना करने लगे।

उनकी बाल्यावस्था में एक बार गांव में रामानन्दी सम्प्रदाय के साधुओं की जमात आयी; प्रीतमदास सहसा उनकी ओर आकृष्ट हो गये। वे जमात के महन्त भाईदासजी के पास जा पहुचे। उन्होंने मधुर और विनयपूर्ण वाणी में सन्त के चरण देश में निवेदन किया कि महाराज मुझे वह मार्ग बताइये जिस पर चल कर मैं परमात्मा का चिंतन कर सकूं, उनके भजन और कीर्तन में तंत्पर रहूँ। घरवाले मुझे पराये-से दीखते हैं, आप मुझे अपने से लगते हैं। उन्होंने महन्त के चरण पर मस्तक नत कर दिया। भाईदास बालक के सत्संग-प्रेम और भगवद् सम्बन्ध की बातों से आश्चर्यचकित हो गये। उन्होंने प्रीतम को मन्त्र-दीक्षा दे दी। वे प्रीतमदास के रूप में प्रसिद्ध हुए। सन्त मण्डली के साथ मृदु अवस्था में ही घर का त्याग कर वे चूड़ा रायपुर गये। कुछ दिनों तक महन्त का सत्संग कर वे नदियाड मण्डल के संदेसर ग्राम में चले आये। वीतराग संन्यासी की तरह भजन-कीर्तन करते हुए वे आजीवन संदेसर में रह गये। धीरे-धीरे उनकी ख्याति दूर-दूर तक बढ़ने लगी, लोग उनके दर्शन के लिये अधिकाधिक संख्या में संदेसर में एकत्र होने लगे। असंख्य जीवों को उन्होंने आत्मतृप्ति प्रदान की, ब्रह्मानन्द रस का निर्मल और पवित्र रसास्वादन कराया।

वेदान्त, पुराण, भागवत आदि में वर्णित भगवत् तत्त्व को उन्होंने अपनी सरस वाणी में निरूपित किया। उनके पदों में कृष्णभक्ति का विवेचन बड़ी सुंदर और मधुर शैली में हुआ है। उनकी उक्ति है कि जीवन का सौन्दर्य सद्भाव और सद्ज्ञान में सन्निहित है; प्रत्येक प्राणी सुन्दर भाव और निर्मल ज्ञान से परमात्मा के प्रेम की प्राप्ति कर सकता है। बिना हरि के भजन के संसाररूपी सरिता-प्रवाह को पार नहीं किया जा सकता है। वीर आत्मा ही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हरिकी भक्ति के पथ पर चल सकता है, कायरों के लिये भगवत्तत्त्व का अनुभव दुर्लभ और अगम है। संत प्रीतम दास की वाणी है :

'हरिभजन बिना, दुख दरिया संसार
नो पार न आवे।'

उनके पदों में भक्ति और वैराग्य की बातें भरी-पड़ी हैं। उन्होंने कहा कि भक्ति वही प्राणी कर सकता है जिसके धड़ पर सिर नहीं होता है, परमात्मा के लिये सिर कटाने को जो सदा प्रस्तुत रहता ह वही भक्ति का अधिकारी है : सन्त प्रीतमदास का कथन ह :

"भक्ति अेवी रे भाई अेवी,
तरस्याने पाणी रे जेवी।
भक्ति जुग मां करे नर सोई,
जाके धड़ पर शीश न होई।
भक्ति छे रे खांडा नी धार,
अेने साधे कोई साधन हार।"

भक्ति तो तलवार की धार है, इस पर वीर पुरुष ही चलने का अधिकारी है। सन्त प्रीतमदास ने समझाया कि भगवान के प्रेम का पथ सब से न्यारा है, प्रेम रूपी अमल आख में चढ़ने पर उतरता ही नहीं है। सन्त कवि प्रीतमदास की प्रेम-व्याख्या है :

'प्रेम नो पंथ छे न्यारो सर्व थी,
प्रेम नो पंथ छे न्यारो।
जे जाणशे ते शिर साटे माणशे
अेमां न थी उधारो।
प्रेम नो अमल आव्यो जेनी,
आँख माँ ते ऊतरे नहीं उतार्यो।'

सर्वस्व समर्पण करने पर ही भगवत्प्रेम-रस की प्राप्ति होती है– ऐसी उनकी दृढ़ मान्यता थी।

प्रीतमदास के पद गेय और ओजपूर्ण शैली में लिखे गये हैं। उनके पदों से सुविचार और ऊँची प्रेरणा प्राप्त होती है; उनकी रचनाओं का पाठ करने से जीवन विशुद्ध होता है। ग्राम्य भाषियों और साधारण जनता के समझने के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लिये उन्होंने गुजराती भाषा में भगवद्गीता, अध्यात्मरामायण और श्रीमद्-भागवत के एकादशस्कन्ध का सरल-सुबोध दान दिया। अनेक काव्यग्रन्थ रचे। उनकी सरस गीता अमित मधुर रचना है; पढ़ते ही मन में भक्ति की सरस तरंगिणी प्रवाहित हो जाती है। पढ़ने वाले की आखों से निरन्तर अश्रु प्रवाहित होता है। उन्होंने अनुभव पूर्ण भगवद्प्रेम का गान गाया; उनके मुख से निकले पद शिष्य लोग लिख लिया करते थे। गोपी-प्रेम की अनुभूति उनके पदों की प्राण-संजीवनी है। गुजरात के प्रसिद्ध सन्त रविसाहव की उनके चरणों में अपार श्रद्धा और भक्ति थी। महात्मा प्रीतम दास ने किसी नये पथका प्रवर्तन नहीं किया। जीवन के अनुभवपूर्ण सत्य के प्रेमज्ञान में वे निरन्तर रमण करते रहे।

प्रीतमदास रामानन्दी पंथ के त्यागी महात्मा थे। संदेसर में उनका मन्दिर सदा त्यागी संन्यासी और महात्माओं से भरा रहता था। भारत के कोन-कोने से और विशेष रूप से गंगा-यमुना की पवित्र भूमि के सन्तों का सत्संग उन्हें समय-समय पर मिलता रहता था इसलिये उनके सम्पर्क में हिंदी भाषा का उन्हें अच्छा ज्ञान था। ....सम्वत् १८५४ वि. की वैशाख कृष्ण द्वादशी को वे परमात्मा में लीन हो गये। वे ज्ञानी और रसिक महात्मा थे।

रचना

प्रीतमदास की प्रसिद्ध रचनायें सरसगीता, ज्ञानककहरा, अध्यात्म रामायण ब्रह्मलीला, ज्ञानप्रकाश आदि ह।

वाणी

भाई अमे बावा रे भाई बावा॥
हाथे माला, गोविन्द गुण गावा, भाई अमे बावा॥
अमे मांथे नाख्यो छे छेड़ो, हवे ना कोई अमने छेड़ो।
नहीं तो थाशे हरि साथे हेडो, भाई अमे बावा॥
ऊपर आभ ने हेठे धरती, हरि बिना बीजा नहीं वरती।
अमे मूकी सारी ने नरती, भाई अमे बावा॥
अमारे घरेणां मां गेरु, घर रहे वाने देवल देहेरुँ।
सुख सज्जा धरती ने वेलु, भाई अमे बावा॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कहे प्रीतम ममता मूकी, डग भरिअे, फूंकी फूंकी।
नव पड़ीअे चोराशी मां चूकी, भाई अमे वावा॥
हरिनो मारग छे शरानो, नहिं कायरनुं काम जोने।
परथम पहेलुं मस्तक मूकी वलती लेवुं नाम जोने॥
सुत वित दारा शीश समर्पे, ते पामे रस पीवा जोने।
सिंधु मध्ये मोती लेवा माहीं पड् या मरजीवा जोने॥
मरण आँगमे ते भरे मूठी दिलनी दुग्धा वामे जोने।
तीरे ऊभा जुये तमासो ते कोड़ी नव पामे जोने॥
प्रेमपंथ पावक नी ज्वाला भाली पाछा भागे जोने।
मोंही पड्या ते महासुख माणे, देखनारा दाझे जोने॥
माथा साटे मोंघी वस्तु, सौंपडवी नहिं सहेल जोने।
महापद पाम्या ते मरजीवा, मकी मननो मेल जोने॥
राम अमल मौं राता माता, पूरा प्रेमी परखे जोने।
प्रीतमना स्वामीनी लीला, ते रजनी दंन नरखे जोने॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महात्मा रामसखा

राम रहस के ते अधिकारी।
जिनको मन मरि गयउ और मिटि गई कल्पना सारी॥
चौदह भुवन एकरस दीखै, एक पुरुष इक नारी।
'केसी' बीज मन्त्र सोइ जानै, ध्यावै अवधबिहारी॥

—संत मञ्जुकेशी

निस्सन्देह वह प्राणी कितना पुण्यशील और भाग्यशाली है जिसका मन भ्रमर राघवेन्द्र विश्वविमोहन राम और उनकी प्राणप्रियतमा जनकनन्दिनी के चरणारविन्द-मकरन्द का आस्वादन कर विषयातीत हो उठता है।.. श्री अवधक्षेत्र की महिमा कितनी रसमयी और चिन्मय है! श्री अयोध्या के प्रमोदवन में भगवान सीताराम के सरस रूप-सौन्दर्य से समलंकृत और नित्य प्राणमय नृत्य राघवकुञ्ज और श्रावणकुञ्ज के दर्शन मात्र से ही परम रसिक रामसखा जी महाराज का भावलावण्य नयनों में थिरक उठता है; वे भगवान राम के लीलारस के सिद्ध भावस्वरूप थे। श्रीरामसखा जी महाराज ने विक्रम की उन्नीसवीं शती के आरम्भ में अयोध्या को अपनी सरस उपस्थिति से रस-वृन्दावन में परिणत कर दिया। वे विन्दुसम्प्रदायाचार्य अनन्त श्रीविभूषित संत रामप्रसाद जी महाराज के समकालीन थे; उनके पवित्र निवास से अयोध्या के कण-कण में रस की सरयू प्रवाहित हो उठी। यह कहना समीचीन है कि वे अयोध्या के श्रीभट्ट थे; जिस प्रकार वृन्दावन में महारसिक श्रीभट्ट ने प्रिया-प्रियतम का शास्त्र सम्मत शृंगार गाया उसी प्रकार संत रामसखा जी ने सख्य-भाव के स्तर से राम का सरस लीलायश गाया।

रामसखा जी महाराजने विक्रम की अठारहवीं शती के अन्तिम चरण में राजस्थान के जयपुर में एक कुलीन गौड़ ब्राह्मण वंश में शरीर धारण किया था। बचपन से ही उनके संस्कार असाधारण, अलौकिक और दिव्य थे; साधु-सन्तों और भगवान के भक्तों के प्रति उनके मन में बड़ा आदर-भाव था। वे बड़े

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मृदुल स्वभाव के थे। राम की सरस लीलाओं के स्मरणमात्र से ही वे आत्म-मुग्ध हो जाया करते थे। वे भगवान के जन्मजात सखा थे।

रामसखा जी का मन घर पर नहीं लगा। वे जयपुर की गलिता गादी की ओर आकृष्ट हुए। उन्होंने गलिता स्थान के आचार्यचरणको अपने भगवद्-भावों से प्रसन्न कर लिया; कभी-कभी रामलीला में उन्हें लक्ष्मणरूप में उतरना पड़ता था; एक बार लक्ष्मण के रूप में उन्होंने भगवान राम के प्रति सख्य का अद्भुत परिचय दिया। गलिता के आचार्य ने इस घटना से प्रसन्न होकर उन्हें रामसखा की उपाधि दी; वे उसी समय से भगवान श्रीरामभद्र के सखारूप से प्रसिद्ध हुए।

रामसखा ने तीर्थ-भ्रमण आरम्भ किया; वे दक्षिण में उड़पी पहुचे, उड़पी में माध्व सम्प्रदाय के प्रसिद्ध महात्मा वशिष्टतीर्थ महाराज के चरणों में नत होकर द्वैतमत के अनुसार उन्होंने राम की उपासना-पद्धति अपनायी। उनकी स्वीकृति है :

'माध्व भाष्य निज द्वैत मत, मिलनद्वार हनुमान।
रामसखे विधि सम्प्रदा, उड़पी गुरुस्थान॥'

उड़पी में गुरु की सेवा में उन्होंने बड़ी निष्ठा दिखायी; धीरे-धीरे उनके मन में श्रीअवध के प्रति अनुराग उत्पन्न होने लगा; उनको भगवान-राम ने प्रेरणा दी कि तुम मेरे अभिन्न सखा हो; तुम्हें इधर-उधर नहीं भटकना चाहिये; मेरी राजधानी तुम्हारी उपस्थिति से परम धन्य हो उठेगी। राम सखा ने सोचा कि जिन राघवेन्द्र ने समुद्रपार कर सीता जी को संकट से मुक्त किया उन्हीं की शरण में समस्त दुखभार का अन्त हो जायेगा। वे श्रीअवध चले आये और प्रमोद वन में निवास करने लगे। उनकी उक्ति है :

"विषय-भोग जग स्वप्नवत, समुझि परै मन माह।
'रामसखे' भजु राम को, वन प्रमोद द्रुम छाह॥"

उनकी उपस्थिति से राम की रूप-श्री प्रमोद वन में व्याप्त हो उठी; श्रीअवध की दिव्यता धन्य हो गयी। उनका निवास-स्थान नृत्यराघव-कुञ्ज के नाम से प्रसिद्ध हुआ; उनके दर्शन के लिये रात-दिन अयोध्या के बड़े-बड़े सिद्ध सन्तों की भीड़ लगी रहती थी; रामसखा जी महाराज ने अवध-निवास काल में नृत्यराघव-मिलन ग्रन्थ की रचना की, इस पवित्र ग्रन्थ में भगवान राम की सरस भक्ति का निरूपण उत्तमोत्तम ढंग से हुआ है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अवध में संत रामसखा जी महाराज का मन लग गया। उनके नयनों ने देखा कि सरयू सरिता के घाट मणिनिर्मित हैं; उनकी शोभा अद्‌भुत है; प्रमोद वनमें नित्यवसन्त रात-दिन दिव्य प्रकृति का शृंगार करता रहता है; जलकमल और स्थलकमलों पर अलिगण गूंज रहे हैं; कोकिल की स्वर-लहरी और मयूर की नृत्यछवि से समस्त वातावरण रसमय है; अयोध्या में स्वयं प्रकाश सीताराम इतने दिव्य हैं कि उसमें रवि और शशि की दीप्ति और चन्द्रिका का रंग ही नहीं चढ़ता है। सन्त रामसखा की वाणी ऐसे श्री अवध के सौन्दर्य स्तर से मुखरित हो उठी :

"काम रूप सब अवधनिवासी।
रघुपति सम छवि भोगविलासी॥
तह रघुवीर वेष नृप सोहहिं।
कोटिन कामन की छवि मोहहिं॥
द्वै भुज राम अखण्डित रूपा।
तैसहिं द्वै भुज सिया स्वरूपा॥
वय किशोर दोउ रहत सदाहीं।
करत सुराज्य अवध जग माहीं॥"

उन्होंने राम और जनकनन्दिनी की सरस झांकी से अपनी मधुरवाणी पवित्र की कि नित्यदम्पति सीताराम अशोक वन के नित्यनवीन कुञ्ज के एक मण्डप में कमल पर समासीन हैं; कमला-चन्द्रकला आदि उनकी छवि के सागर में आत्मविभोर हैं; राम अनेक रमणीय कुञ्जों में सीता के साथ रमणशील हैं। उनके पदकञ्ज में अनेक भ्रमर रमण कर रहे हैं; प्रभु ने रासविलास का वेष अपनाया है, अनेक सखी उनकी रासोचित सेवा में तल्लीन हैं। राम सखा की उक्ति है :

रासादिक बहु चरित प्रभु, करत महासुखकेतु।
रामसखे अति प्रेम सों, अवध जनन के हेतु॥

राम के इस राज्य में गुरु की अखण्ड कृपा से ही प्रवेश हो पाता है—ऐसी उनकी मान्यता थी। अवध में दर्शनार्थियों की भीड़ बढ़ती देख कर उन्होंने चित्रकूट में निवास किया। चित्रकूट में अनेकानेक सिद्धियां उनके चरणों की दासी हो गयीं। उन्होंने उस पवित्र भूमि में बारह साल तक भजन किया; चित्रकूट में भी प्रेमियों की भीड़ बढ़ने लगी; वे भजनानन्दी रससिद्ध महात्मा थे। उन्होंने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मैहर राज्य में नीलमती गंगा के तट पर कुटी बनायी और मानसिक ध्यान, पूजा और भगवद् भजन में लग गये।

महाराज ने कहा कि चित्रकट साक्षात् राम का स्वरूप है : रामसखा जी की उक्ति है :

'चित्रकूट रघुनाथ स्वरूपा।'

नृत्यराघव-मिलन ग्रन्थ में सन्त रामसखा की वाणी है :

'अवध नगर ते आइके, चित्रकूट की खोर।
रामसखे मन हरि लियो, सुन्दर युगल किशोर॥
बड़े बड़े नयना मारने, घूंघुर वारे बार।
रामसखे मन बस गयो, सुन्दर राजकुमार॥
रतन क्रीट कटि पीत पट, कर धनुही अरु तीर।
रामसखे मन बसत नित, वनमाली रघुवीर॥'

महात्मा रामसखा के ध्येय सखा रूप में भगवान राम थे; उनकी अपने सखा के प्रति बड़ी आदर-बुद्धि थी। वे अपनी प्रत्येक क्रिया से भगवान को प्रसन्न करने की चेष्टा करते थे; उनके किसी काम में तनिक भी असावधानी के लिये स्थान नहीं था। भगवान में उनकी प्रगाढ़ प्रीति थी; अनुपम सख्य था : उनकी वाणी है :

"प्रीति रीति अति कठिन है, कहिबे की कछुनाहिं।
रामसखे जा तन लगी, सो जाने जिय माहिं॥"

उन्होंने राम से कहा कि मैंने आप को अपने तन-मन दे दिये पर आप ने मेरी प्रीति की ओर देखा तक नहीं, आप की यह कितनी बड़ी अनरीति है! उन्होंने भगवान को उलाहना दी :

'तुम हमसे रूठे रहत, हम तुम्हरे आधीन।
रामसखे नहिं चाहिये, ऐसी तुम्हैं प्रवीन॥'

अवध-निवास-काल में महाराज रामसखा नित्य कनक भवन में भगवद्-सखा के आचरण के अनुरूप ही प्रभात काल में और संध्या को राघवेन्द्र सरकार और जगदम्बा जानकी का कुशल-समाचार लेने जाया करते थे। उनकी सख्य-निष्ठा उच्च कोटि की थी। वे कभी कनक-भवन-मन्दिर में प्रवेश नहीं करते थे; बाहर के प्रधान दरवाजे से ही लौट आया करते थे। उनमें इस बातका बड़ा अभिमान था कि मैं जगदीश्वर राम का मित्र हूँ। वे आठ कहार की

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पालकी पर ही कनक भवन जाया करते थे; यह सोच कर कि उनके सखाराम विश्वपति हैं, विश्व के हित में रात-दिन व्यस्त हैं, दर्शन न करने का नियम लिया था; द्वारपाल पालकी देखते ही सम्मुख खड़ा हो जाता था; महाराज पालकी से बाहर निकल कर पूछते थे कि सरकार सकुशल तो हैं; और जगदम्बा के चरणों में प्रणाम निवेदन कर अपने नृत्यराघव-कुञ्ज में चले आया करते थे; अवध-निवास-काल में एक दिन के लिये भी इस नियम में शिथिलता नहीं आने पायी।

उनका दृढ़ सिद्धान्त था कि जीव परमात्मा (राम) का नित्य सखा है। जगत में उसकी रति जब बढ़ जाती है तब वह अपने आराध्य प्रभु को भूल जाता है और शुभाशुभ कर्म में आबद्ध होकर अनेक देह धारण कर स्वर्ग-नरक में भ्रमण करता रहता है। परमात्मा में सख्य भाव की सिद्धि कर वह अनुपम भक्ति पा जाता है। महाराज का कथन है :

'जिय ईश्वर कर सखा निज, यामें नहिं सन्देह।
जग रति करि प्रभु को बिसरि, धरत अनेकन देह॥'

महाराज का श्रीराम के चरण में अटल विश्वास था; जगत के किसी भी पदार्थ के वे आश्रित नहीं थे। वे अनन्य रसिक और रामभक्त थे। उनकी उक्ति है :

'रामरास रस जे मतवारे।
तिनको लगत सकल मत खारे॥'

उन्होंने अपने राम को देही-देह-विभाग से परे देखा; वे नित्यसच्चिदानन्द रूप में उन्मत्त थे। उन्होंने राम का रूप सम्पूर्ण अनुरागमय अभिव्यक्त किया। उन्हें राम पूर्ण शृंगारमय दीख पड़े। उनकी सबसे बड़ी कामना यही थी कि सीता और रामचन्द्र उनके नयनों में सदा निवास करें; उनके हृदय में इन्हीं दोनों चन्द्रों का पूर्ण आधिपत्य रहे। उनकी दृढ़ मान्यता थी कि ज्ञान, वैराग्य और भक्ति ही रघुपति की प्राप्ति में सहायक हैं। वे निरन्तर राम के ही ध्यान और चिंतन में तन्मय रहते थे। सीताराम का रास ही उनका मननीय विषय था। अत्यन्त मधुर ढंग से उन्होंने रासतत्व का विवेचन किया है। रामसखा महाराज सख्य के माध्यम से राम के मधुरभाव के उपासक थे। उन्होंने अवध की सरस भगवदीय लीला में अप्रकट और प्रकट निकुञ्ज रस की दिव्य भूमिका प्रस्तुत की। महाराज की वाणी साक्षी है :

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'विपिन प्रमोद अवध निजधामा।
जहँ नहिं माया कर कहुँ नामा॥
तहँ चिन्तामनि भूमि सुहाई।
सो रसिकन बांटे लिखि पाई॥
अद्भुत रत्न पुलिन सरयू तट।
झरत तहाँ द्युति सुधा सोमवट॥
नटत राम तहँ नित्य बिहारी॥
लीन्हें संग सिया सुकुमारी॥
कोटिन सखी सखा नर्म घेरे।
लिये यन्त्र गावहिं प्रभु नेरे॥
रत्नागिरि तहँ करत उज्यारी।
कोटि चन्द्र द्युति तापर वारी॥
हरित पीत सित श्याम सुरंगा।
फूले लतन फूल बहुरंगा॥
चम्पक बकुल कदम्ब अशोका।
सोहत लतन माधुरी ओका।'

ऐसे मधुर वातावरण में जनक नन्दिनी के मन में राम के प्रति मान का उदय होता है; पर भगवान उन्हें मनाकर अपने अनुकूल कर लेते हैं। सहसा भगवान अन्तर्धान हो जाते हैं पर सीता उन्हें खोज लेती हैं। साथ ही साथ सखियों द्वारा उनके अन्वेषण का क्रम आरंभ होता है। बहिरंगा और अन्तरंगा भक्ति के आवेश में उनके द्वारा भगवान की उपासना होती है। वे राम के वियोग में मग्न होती हैं। शरद-ज्योत्सना में सरयू के कुंजों में वे उनको खोजती हैं। पूरे प्रसङ्गका वर्णन महाराज रामसखा की वाणी का अद्भुत अलंकार है:

तिन महँ सिया मान अति करहीं।
राम मनाइ अंक पुनि धरहीं॥
अन्तरध्यान होहिं क्षण में हरि।
ढूढ़ि लेहिं सिय तबहिं प्रेम करि॥
अन्तरध्यान रासमहँ प्यारो।
लहहिं सखी सुभक्ति करि चारो॥

\+ + +

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कबहुँ सखी पूजहिं मन लाई।
रामवेष कोउ सखी बनाई॥
क्रीट शीश धनुहीं कर धारहिं।
तन मन प्राण निरखि छवि वारहिं॥
चमर छत्र विजनादिक ढोरहिं।
करि प्रणाम हाँथन पुनि जोरहिं॥

बहिरंगा लीला के बाद अन्तरङ्ग लीला में वे प्रवेश करती हैं; मानसिक ध्यान और चिंतन में लीन होती हैं। उनकी विरह-दशा के निरूपण में रसिक सन्त रामसखा की भारती का कंठ कह उठता है:

छुटे केश दृग अंजन वहई।
उमड़ि उमड़ि आँसुन हिय दहई॥
कित गये राम बूझती डोलहिं।
प्रेम पुलकि बचनन मृदु बोलहिं॥
सुन सरयू तैं परम पियारी।
देखे तैं कहुँ अवधबिहारी॥
हे प्रमोदवन तैं प्रमोद कर।
तों मधि बसत मिलाय धनुषधर॥
कहहिं नाम तव विपिन अशोका॥
राम बताइ दूर करु शोका॥
कहुँ ढूढहिं कंचुकी परस्पर।
लुकिन रहेउ कहुँ राम रसिकवर॥

वे विरह में इतनी तन्मय चित्रित की गयी हैं कि अपने आप में राम की विभिन्न लीलाओं का आरोप कर रही हैं। वे कहती हैं कि विश्वामित्र के साथ जाकर मैंने ही ताड़का का वध किया था; सुबाहु को जलाया था और गौतम पत्नी अहल्या का उद्धार किया था शाप से। मैंने शंकर का धनुष तोड़ कर सीता के साथ गाँठ जोरी थी। मैं प्रमोद वन में निवास करने वाला रघुपति हूँ; नटवर वेषधारण कर रास विलास में मग्न रहता हूँ।... बहुत-सी सखियाँ प्रेमाभक्ति में विमुग्ध चित्रित की गयी हैं। रामसखा की वाणी है: सरयूतट पर गम्भीर रास रस का फल-कथन है:

रघुनन्दन तब तत्क्षण आये।
युवती सकल प्राण से पाये॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लिये ललित धनुहीं कर तीरा॥
जनु अद्भुत कोउ काम शरीरा॥
राम धनुष माधुर्य अपारा।
देखि काम निज धनुष विसारा॥

\+ + +

कोउ तिय हाथ पकरि मुख देखहि।
कोउ मुख चूमि सुफल जिय लेखहि॥
कोउ तिय दाबि चरण सुखदाई।
मेटत बिछुरन दुख हिय लाई॥

राम-मिलन में सन्त रामसखा ने पराभक्तितत्व का निरूपण किया है। रसमय रामनाम उनकी साधना का प्राण है। महाराज की स्वीकृति है :

'रामनाम यह रसमय नामा।
रसिक अनन्यन को सुखधामा॥
रामनाम कर जो गति पावहिं॥
ताकहुँ और इष्ट नहिं भावहिं॥'

संत रामसखा जी महाराज ने आजीवन राम की सरस भक्ति का प्रचार किया। भगवान की सरस झाँकी का चिंतन करते हुए उन्होंने साकेत धाम में प्रवेश किया। विक्रमीय उन्नीसवीं शती के प्रथम चरण की समाप्ति के लगभग उन्होंने शरीर का त्याग किया।

रचना

रामसखा महाराज ने 'नृत्यराघवमिलन' ग्रन्थ की रचना की। उन्होंने अनेक भावपूर्ण और भक्तिपरक सरस दोहे भी लिखे।

वाणी

निराकार साकार पुनि, निर्गुण-सगुण विचारि।
ये सब नाम जू राम के, ताकहुँ जपत पुरारि॥
रामनाम कर अर्थ यह, जानत रसिक उदार।
राम सखे जे रसमगन, डूबें रूप अपार॥
जुल्फैं छोड़े बदन पर, मारत राम सुजान।
रामसखे अब क्यों बनैं, जप-तप संयम ध्यान॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जिनके हिय पिघले नहीं, देखि रूप सुन तान।
रामसखे तजिये तुरत, वे नर महा परवान॥
काम क्रोध औ लोभ हूँ तजे होत कछु नाहिं।
राम सखे दृग राम के लगे न जो दृग माहिं॥
राम भजे दोऊ मिलें, भुक्ति मुक्ति जग माहिं।
राम सखे सो पेखिये, भुसुंडि बिभीषन पाहिं॥
मलयागिरि के निकट बसि, बाँस न लहत सुवास।
सुधरत नहिं ज्यों निरस नर, बसि संतन के पास॥
अरे शिकारी निरदयी, करिया नृपति किशोर।
क्यों तरसावत दरस बिनु राम सखे चित चोर।
वस्तु भेद समझे बिना निबहत नहीं सनेह।
गजमुक्तन तजि भीलनी, ल्यावत गुंजन गेह।
ए दोउ चन्दा बसो उर मेरे।
दशरथ सुत अरु जनक नन्दिनी,
अरुण कमल कर कमलन फेरे॥
बैठे सघन कुंज सरयू तट,
आसपास ललना गण घेरे।
चन्द्रवती सिर चमर डुलावत
चन्द्रकलां तन हँसि-हँसि हेरे॥
ललित भुजा द्वै अंग परस्पर,
झुकि रहे केस कपोलन नेरे।
'राम सखे' छवि कहि न परत तब
पान पीक मुख झुकि झुकि गेरे॥
श्री रामचन्द्र नख चन्द्र चारु अति, चरण कमल दोऊ भ्राजैं।
कमठ पीठ सम परम मनोहर, काग रंग रूचि राजैं॥
अरुण तरुण सम सुभग चरण तल, रेख वेष दोऊ सोहै।
रथ ध्वज अष्ठ कोन हल मूशल, श्री अम्बर मन मोहै॥
चमर छत्र नर कंज अष्ट दल, अंकुश मीनहि लेखो।
पवि स्वस्तिक सुंदर सिंहासन, मुकुट चक्र रवि पेखो॥
सर्प वाण यमदण्ड ऊर्ध्व शुभ, दक्षिण पद जयमाला।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बायें पद गोपद सरयू क्षिति, अर्ध त्रिकोण विशाला ॥
जीव आत्म तहँ विन्दु शक्ति युक्त, काम वान विधु राका।
जम्बू फल षटकोण अर्ध शशि, शंख गदा सुपताका ॥
त्रिवली वीन चन्द्रिका वंशी, सुधाकुण्ड धनु हंसा।
तूण सहित उनचास चिह्न ये, दुखदल करण विध्वंसा ॥
जे दक्षिणपद रेख कुंवर के, ते कुमारिके बायें।
राम सखे भव भूलि जात उठि सुमिरि प्रात के गाये ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्त दयाराम भाई

अलमलमलमेका प्राणिनां पातकानां
निरसनविषये वा कृष्ण कृष्णेति वाणी।
यदि भवति मुकुन्दे भक्तिरानन्दसान्द्रा,
करतलकलिता सा मोक्षसाम्राज्यलक्ष्मीः॥

प्राणियों के पापों का अन्त करने में 'कृष्ण, कृष्ण' ऐसा एक बार भी कहना पर्याप्त है; यदि भगवान मुकुन्द में आनन्दघनमयी प्रेमभक्ति हो जाय तो मोक्षसाम्राज्यलक्ष्मी ही हस्तगत हो जाय।

—मुकुन्दमाला

दयाराम भाई का नाम-स्मरण होते ही हृदय में श्रीराधाकृष्ण की सरस भक्ति प्रवाहित हो उठती है, रसना पर रसामृत की गंगा आलोड़ित हो उठती है, नयनों में श्रीवृन्दावन की केलि-माधुरी समा जाती है। दयाराम भाई परम भागवत सन्त थे, महान भगवद्रसिक थे। भक्ति-साहित्य के इतिहास में उनकी सरस वाणी का सिंदूर अमिट है, वे गुजराती साहित्य के कर्णधारों में से एक स्वीकार किये जा सकते हैं। जिस प्रकार मराठी भक्ति-साहित्य में नामदेव के अभिनव संस्करण के रूप में तुकाराम ने भगवच्चिंतन किया, पाण्डुरंग विट्ठल का गुणानुवाद गाया उसी प्रकार गुजराती भक्ति-साहित्य में नरसिंह मेहता के नवीन संस्करण के रूप में दयाराम भाई ने कृष्ण की लीला से अपनी वाणी सफल की, श्रीनाथ नन्दनन्दन का चरित्रांकन किया।

दयाराम भाई के जीवन काल में राजनीति के क्षेत्र में मुगल राजसत्ता अपने तीसरे पहर पर थी। प्लासी के युद्ध से बंगाल और बिहार तथा उत्तर प्रदेश में अंग्रेजी कम्पनी की शक्ति बढ़ रही थी, पानीपत के तीसरे ऐतिहासिक युद्ध के परिणामस्वरूप मराठा राजशक्ति की वृद्धिको बड़ा धक्का लगा, मराठे विविध राजसंघ में विभक्त हो गये तथा दिल्ली के पैर उखड़ गये। अवध के नवाब स्वतन्त्र बादशाह हो गये, निजाम ने हैदराबाद में अपनी स्वतन्त्र सत्ता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्थापित कर ली। ऐसी विकट और अशान्ति पूर्ण राजनैतिक स्थिति में भगवती नर्मदा के तट पर दयाराम भाई ने जन्म लिया। कृष्ण-भक्ति से भारतीय चेतना को पुष्पित और पल्लवित कर उन्होंने वल्लभकुल के चरणाश्रय से पुष्टि-मार्ग के इतिहास में गौरव पूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया। वे वल्लभाचार्य के मत के परम रसवेत्ता थे। वे कवि, भक्त और सन्त के अलौकिक समन्वय थे। उनके भक्ति पूर्ण गरबों—पदों का गान कर गुर्जर रमणी आत्मविभोर हो जाया करती हैं। नरसिंह मेहता ने गुर्जर काव्य-देवी के मन्दिर का द्वार खोला, प्रेमानन्द ने उनका सौन्दर्य-दर्शन कराया तो दयाराम भाई ने उनकी भक्ति प्रदान की। दयाराम भाई ने गुजराती लोक-जीवन को भागवत प्रेम और दिव्य विरह के मधुर आनन्द और सरस पीड़ा की अनुभूति से सम्पन्न किया। उनकी रसमयी स्थिति श्रीकृष्ण में थी।

दयाराम भाई के पूर्वज नागर ब्राह्मण थे। उनका कुल परम वैष्णव था। उसमें बड़े-बड़े विद्वानों और भक्तों ने समय-समय पर जन्म लिया था। उनके पूर्व पुरुष राघव भट्ट बड़े विख्यात थे। राघव भट्ट के वंशज प्रभुराज जी बड़े विद्वान और भक्त थे। उनकी पत्नी महालक्ष्मी अथवा राजकुँवर बाई थीं। प्रभु राम जी बड़े शान्त, सुशील और सात्विक स्वभाव के थे तथा राजकुँवर बाई अष्टाक्षर मन्त्र का जपकर शेषशायी नारायण का नित्य दर्शन करने जाया करती थीं। भगवानकी कृपा से भाद्रपद द्वादशी—वामनद्वादशी को सम्वत् १८३३ वि. में दयाराम भाई को सौभाग्यवती राजकुँवर ने जन्म दिया। उस समय राजकुँवर बाई अपने पिता के घर डमोई-दर्भावती में थीं। प्रभुराम नर्मदा के तट पर चाणोद ग्राम में रहते थे। दयाराम भाई के विकास पर माता-पिता के सच्चरित्र का बड़ा प्रभाव पड़ा था। उनकी देखरेख में दयाशंकर अथवा दयाराम भाई का पालन-पोषण हुआ। दयाराम भाई की बाल्यावस्था में उनके घर पर एक ज्योतिषी आये। ज्योतिषी ने उनकी हस्तरेखा देख कर माता-पिता को बतलाया कि आप के घर में बहुत बड़े भगवद्भक्त ने जन्म लिया है, वे असंख्य जीवों को भगवान श्रीकृष्ण की पदारविन्दभक्ति प्रदान कर आप के कुल का यशविस्तार करेंगे। उनकी कृपा से असंख्य प्राणी कलि के प्रकोप से मुक्त हो कर भक्ति के साम्राज्य में निवास करेंगे। उनके पिता की बड़ी इच्छा थी कि दयाराम भाई अधिकाधिक विद्या पढ़ें तथा पुष्टिमार्ग के सिद्धान्तों के अनुयायी बनें। दयाराम भाई ने पिता का स्वप्न सत्य में रूपान्तरित कर दिया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दयाराम भाई को भगवन्निष्ठा प्रदान करने में प्राकृतिक वातावरण की दिव्यता और पवित्रता का बहुत बड़ा योग स्वीकार किया जा सकता है। नर्मदा नदी के रम्य तट पर स्थित चाँणोद के निवास ने दयाराम भाई के जीवन में सात्विकता भर दी । शेषशायी भगवान के मन्दिर की सीढी पर बैठ कर वे नित्य नर्मदा के अप्रतिम सौन्दर्य का निरीक्षण किया करते थे। उन्हें इस वातावरण ने कविता प्रदान की, कवि हृदय से विभूषित किया। उल्लेख मिलता है :

'अति शुभ गुर्जर मधि दछिन प्रयागरुचिर,
महासरित श्रीनर्मदा अति शुचि उत्तर तीर ;
निकट निपट ह्वाँ चण्डीपुरी विप्रन को शुचि थान,
जिहिं राजत हे सदा श्री शेषशाइ भगवान
सो पुरी मध्य निवास कवि।'

'प्राचीन काव्य माल' के इस उल्लेख से दयाराम भाई के पवित्र जीवन पर विशेष प्रकाश पड़ता है।

वाल्यकाल में दयाराम भाई अपनी माता के साथ शेषशायी भगवान के मन्दिर में जाया करते थे। वे देखने में बड़े सुंदर और मृदुल तथा मधुर स्वभाव के थे। कभी-कभी पुजारी से कहा करते थे कि महाराज एक बार मुझसे भी भगवान की सेवा करा लीजिये। पुजारी का उनमें बड़ा स्नेह था। सेवा का अवसर पुजारी की कृपा से उन्हें मिलता रहता था। वे मंदिर से पान लेकर उछलते-कूदते घर आते थे। माता-पिता ऐसे भगवद्भक्त बालक को देखकर अपने अनुपम सौभाग्य की सराहना करते थे। इस प्रकार उनकी भगवन्निष्ठा धीरे-धीरे बढ़ती गयी। वे पद लिख कर प्रेम से भगवान को सुनाया करते थे। दयाराम भाई ने शेषशायी का स्तवन किया, उनकी भारती प्रस्फुटित हो उठी :

'प्रथम प्रणमुं श्री गुरुना पाय रे शेषशायी छोगाला।
श्री मद्वल्लभ विठ्ठल व्रजराय रे शेषशायी छोगाला॥
सदा शोभावे वैकुण्ठधामरे शेषशायी सुखसिंधु।
नित्य लीला नूतन अभिराम रे शेषशायी सुखसिंधु॥
म्होरुं मनोहर मंदिर भासेरे श्रीपति शेष शायी।
दर्शन थी पाप ताप दूर न्हासे रे श्रीपति शेषशायी॥
व्हालो आनन्द मंगल रूप रे, शांत रूप शेषशायी जी।
विभु अखिल भुवनना भूप रे शांत रूप शेषशायी जी॥'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दयाराम भाई ने भगवान शेष शायी की कृपा के फलस्वरूप नर्मदा तट को वैकुण्ठ के रूप में देखा। उन्होंने नर्मता की स्तुति की कि हे नर्मदा, मैं आप की शरण में हूँ। हे भवनन्दिनी, मुझे आप का दर्शन परम आनन्द देता है। आप पतित पावनी और अधम उद्धारिणी हैं। ब्रह्मा आपका पार नहीं पा सके। जो आप के निर्मल जल में स्नान करते हैं उन्हें सकल पदार्थ प्राप्त होते हैं। मैं आपका दास हूँ, प्रेम से स्तवन करता हूँ।

श्री कृष्ण की लीला-कथाओं में दयाराम भाई को बड़ा आनन्द मिलता था। विवाह की बात उठने पर उन्होंने मा से कहा कि मेरा सम्बन्ध श्रीकृष्ण से करना चाहिये। वे रात-दिन कृष्ण-प्रेम में निमग्नरहते थे। सुख-दुख में उन्हें भगवान कृष्ण की ही लीला का अनुभव होता था। पिता ने गंगा नाम की कन्या से उनका विवाह कर दिया। जब वे दस साल के बालक थे, गृहस्थी का भार उनके कोमल कंधों पर छोड़ कर प्रभुराम भट्ट स्वर्ग चले गये। घर में हाहाकार मच गया पर इस संकटमयी परिस्थिति में भी दयाराम का भगवद्-विश्वास अडिग रहा। उनकी दृढ़ धारणा थी:

'मूल कृष्ण इच्छा बिना, डोले नहीं इकपात।
अेही दृढ़ चित्त राखिये, लाख वात की बात॥
सुख-दुख लाभ अलाभ सब, सहज होय, मतरोय।
लिखि राख्यो नन्दलाल सो मेटि सके न कोय॥'

निस्सन्देह उनका बाल्यजीवन अद्भुत था। पूर्ण रूप से प्रभु के चरण कमल में उन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया था। भगवान कृष्ण के चिंतन और स्मरण में अपने समय का सदुपयोग करने लगे। माता राजकुंवर के उपदेशों से वे वैराग्यमय जीवन की ओर द्रुत गति से बढ़ने लगे। भक्त कवियों के पद और भजन गा कर प्रभु को रिझाते रहना ही उनके जीवन का परम ध्येय हो गया। माता ने उन्हें संसार की असारता का स्वरूप समझाया तथा भागवत चेतना प्रदान की। दयाराम भाई ने कृपा की लीलाओं का वर्णन करना आरम्भ किया और वैकुण्ठवास की पवित्र तथा निष्काम याचना की, भक्ति माँगी, निवेदन किया।

"दयो'दास भूतल भक्ति माँगे ने
छु दास माहेलो दास।
दर्शन देजो दिल मां रहेजो।
देजो वैकुण्ठ मा वास॥'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उनके मन में पत्नी के प्रति वैराग्य भाव बढ़ता गया। गृहस्थाश्रम में वैराग्य का वरण भगवान की भक्ति का भूषण कहा जाता है। वे संसार के प्रति अनासक्त हो उठे। कुछ दिनों के बाद उनकी माता का देहावसान हो गया। वे भगवद्भजन के लिये पूर्ण रूप से स्वतन्त्र हो गये। उनके जीवन पर इच्छा राम भट्ट का बड़ा प्रभाव पड़ा था। इच्छा राम भट्ट भगवद्भक्त थे। उनके समागम से दयाराम भाई के हृदय में कृष्ण भक्ति की बाढ़ आ गयी। ज्यों-ज्यों आयु बढ़ती गयी त्यों-त्यों उनके मन में श्रीकृष्ण की रसमयी भक्ति पुष्ट होती गयी। दयाराम भाई की चेतना एक नवयुवती की तरह कृष्ण की रस-केलि में आसक्त हो उठी। संत दयाराम भाई का यौवन-काल परम रसमय था। वे काव्य और संगीत के सहारे भागवत रस की अनुभूति अपने जीवन में उतार रहे थे। इच्छा राम भट्ट महान भगवदीय थे। दयाराम भाई को उन्होंने भागवत धर्म के प्रचार की प्रेरणा दी। वे कभी-कभी डाकोर में रणछोड़ जी के दर्शन के लिये आया करते थे। एक बार दयाराम भाई चाणोद से डभोई जा रहे थे। उस समय संयोग से इच्छा राम भट्ट शेषशायी भगवान के दर्शन के लिये चाणोद आये हुए थे। वे वैष्णवों की मण्डली में कथा कह रहे थे। संत दयाराम भाई कथा में उपस्थित थे। इच्छा राम भट्ट की कृपा-दृष्टि उन पर पड़ गयी। उन्होंने दयाराम भाई को भगवान का गुणानुवाद करने की आज्ञा दी। दयाराम भाई के कीर्तन और पद गान से महाभागवत इच्छा राम बहुत प्रसन्न हुए।

दयाराम भाई से उन्होंने एकान्त में कहा कि तुम तो साक्षात् नरसिंह मेहता के अवतार हो। भगवान ने तुम्हें अपनी रसमयी भक्ति के प्रचार के लिये ही धरती पर भेजा है। उनके सम्बन्ध में पद रच कर भागवत धर्म का विस्तार करो, तीर्थों में घूम-घूम कर सन्त-महात्माओं का सत्संग-लाभ करो। जीवन सफल हो जायेगा। इच्छाराम भट्ट की शिक्षा के अनुसार दयाराम भाई ने सम्पूर्ण भगवदीय आचारण अपनाया। वे मार्गशीर्ष और सावन मास में डाकोर जा कर रणछोड़ रायजी का दर्शन करते थे और इच्छाराम जी का सत्संग करते थे। उन्होंने एक पदमें अनुभव लिखा है, उनकी उक्ति है :

'राजरूपाला द्वारकाधीश रे धन्यजेणे नयणे निरख्या रे।
जेने तरसे छे वेदविधि ईश रे धन्य जेणे नयनो निरख्या रे॥'
चालो निरखिअे रणछोड़ रायरे ठाकोर डाकोर ना॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रणछोड़ राय के चरणों में सन्त दयाराम भाई ने निवेदन किया :

'दुर्लभ दर्शन रे श्री डाकोर नाथ तणुं।
जेने मली झाँकी रे तेनुं तो उग्र भाग्य धणुं ।।'

वे इच्छा राम जी के आदेश से तीर्थयात्रा के लिये निकल पड़े। इस समय उनकी अवस्था केवल अठारह साल की थी। भगवान की कृपाशक्ति के चरणों में अपने योगक्षेम का भार समर्पित कर वे निश्चित हो गये। उन्होंने श्रीनाथ द्वारा की यात्रा की, अपने आराध्य देव श्रीनाथ जी की दिव्य शृंगार मयी छवि देखने के लिये उनका मन परम आकुल था। उनकी वीणा के तार श्रीनाथ जी के शृंगार के पद गाने के लिये विकल हो उठे। श्रीनाथ जी के समक्ष उन्होंने जो निष्ठा प्रकट की वह पुष्टिसिद्धान्त साहित्य में एक सरस वैचित्र्य है। श्रीकृष्ण उनके परम प्रियतम प्राणाधार थे, हृदयेश्वर थे।

श्रीनाथद्वारा में उन्होंने महाराज श्री की कृपा से निवास कर भगवान के प्रेम का लोगों को आस्वादन कराया। वे तीन मास तक रह गये। नित्य नये पद सुनाकर श्रीनाथ जी का मनोरञ्जन किया करते थे। उन्होंने प्राणाधार मधुखेष धारी नटवर नन्दकुमार के शोभा-वर्णन से श्रीनाथद्वारा में भक्तिरस की सरिता प्रवाहित कर दी। संत कवि दयाराम भाई की भक्ति से प्रसन्न होकर ललित त्रिभङ्गी लाल श्रीनाथ जी ने उनको प्रत्यक्ष दर्शन दिया, दयाराम भाई की वाणी साक्षी है :

'श्री गोवरधनलाड़िलो रे, संगे श्यामा प्यारी।
युगल स्वरूप आ जोइने, ठरे आँषड़ी म्हारी ।।'

भगवान् की कृपा से ही जीव को उनका दर्शन होता है, उनके रूप-लावण्य की माधुरी का आनन्द प्राप्त होता है। भक्त की प्रत्येक बात में भगवान को सुख मिलता है और भगवान की प्रत्येक लीला से भक्त आनन्दित होता है। दोनों की चरित्र-लीला एक-दूसरे के सुख-सम्बर्धन के लिये होती है। एक बार दयाराम भाई ने श्रीनाथ जी को उलाहना दी, उपालंभ का पद सुनाया कि जो आप का भजन करता है उसे आप संताप देते है पर जो विमुख रहता है उसे आप सुख प्रदान करते हैं। भजन सुनाकर तथा भगवान को प्रणाम कर वे मन्दिर से बाहर चले आये। सेवक ने सेव्य के प्रति ऐसा भाव दिखलाया। श्रीनाथ जी की लीला का स्रोत उमड़ पड़ा। वे उलाहना सुन कर रूठ गये। राजभोग का

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समय था। महाराज श्री से भोग आने पर श्रीनाथ जी ने कहा कि आज मेरा मन अप्रसन्न है। चाणोद वाले नागर ब्राह्मण दयाराम भाई ने आज मुझे ऐसी खरी-खोटी सुनायी है जो सुनाने योग्य न थी। दयाराम ने कहा है कि पाण्डवों को संताप मिला और कौरवों ने सुख पाया; हरिश्चन्द्र को विश्वामित्र ने सताया पर उन्हें दण्ड नहीं दिया गया; शिशुपाल और अजामिल तथा गणिका आदि वैकुण्ठ गये पर परम भक्त हनुमान भूतल पर भ्रमण करते हैं, अघासुर ने सद्गति पायी पर दशरथ को गति न मिल सकी। श्रीनाथ जी ने महाराज श्री को बताया कि दयाराम भाई को मन्दिर से बाहर निकालने पर ही मैं राजभोग स्वीकार करूँगा। प्रभु की विचित्र गति का रहस्य निगमागम से परे है; उनकी लीला का पता मानवीय बुद्धि को किस तरह लग सकती है। महाराज श्री ने दयाराम भाई को मन्दिर से बाहर कर दिया। दयाराम भाई को तनिक भी दुख न हुआ। इसमें उन्होंने अपने आराध्य की प्रसन्नता का अनुभव किया। वे मन्दिर से थोड़ी दूर पर नदी के तट पर जाकर बैठ गये। अष्टाक्षर मन्त्र का जप करने लगे। 'श्रीकृष्णःशरणं मम' मन्त्र सारे वातावरण में परिव्याप्त हो उठा। उन्होंने अन्न-जल का त्याग कर दिया। भगवान का दर्शन न मिले-इससे बढ़ कर दूसरा अभाग्य है ही क्या? वे प्रभु के विरह में कातर होकर रोने लगे। नयनों से अश्रु-प्रवाह उमड़ने लगा। उन्होंने बड़े दैन्य और भक्ति से श्रीनाथ जी का स्तवन किया:

'शरण पडयो छुंरे श्रीहरि
न थी मारे अवर आश विश्वास।
श्री वल्लभवर ना रे लाड़िला
अनन्य आप तणे हुँ दास॥'

दूसरा पद गाया कि हे गिरिधर लाल मुझे अपना दर्शन दीजिये। वृन्दावन के कुंज में मुझे अपने चरण का दास्य प्रदान कीजिये। तीसरे पद में उन्होंने हृदय की सारी करुणा अंकित कर दी। उनके अश्रु की बाढ़ से विरह का परदा हट गया। अपने प्रणेश्वर श्रीनाथ जी को मन्दिर के बाहर से ही करुण स्वर में दयाराम भाई ने पद सुनाया, अपनी ओर आकृष्ट किया:

'हो श्रीनाथ जी मोपे रहे क्यों रिसाय,
मेरे पियु सुखदाय, हो श्रीनाथ जी,
दरस-परस की प्यासी तलफत अखियाँ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीमुख देहो देखाय हो, श्रीनाथ जी।
दोष समुझ के दूर रहत हो श्रीनाथ जी
किंकरी कहो कहाँ जाय, हो श्रीनाथ जी।
हाँ हाँ करि कर जुरी नक घस कहुँ
अंचरा पसार परूँ पाय हो श्रीनाथ जी।
कहा बड़ाई पैहो, समरथ प्रभु,
दीन दासी तरसाय, हो श्रीनाथ जी।
अबल आशपूरक दया प्रीतम
अब मोहि केहो अपनाय, हो श्रीनाथ जी॥'

तीन दिन तक भक्त भूखा रहे और भगवान भोजन स्वीकार करें—यह असम्भव बात थी प्रभु के कृपा-साम्राज्य में। राजभोग आने पर श्रीनाथ जी ने महाराज श्री से कहा कि मेरा भक्त तीन दिनों से मन्दिर के बाहर बिना अन्न-जल ग्रहण किये मेरा चिंतन कर रहा है, मैं तीन दिनों से भोग नहीं स्वीकार कर रहा हूँ। महाराज श्री आश्चर्य चकित हो गये, निवेदन किया कि प्रभु, आप की लीला कितनी अद्‌भुत है! आप के ही संकेत से दयारामभाईके लिये मंदिर के पट बन्द कर दिये गये थे; आप का चरित्र समझ में नहीं आ सकता है। श्री नाथ जी ने महाराज श्री को प्रेरणा दी कि मैं तो बालक था, मेरे कहने से आपने दयाराम भाई को बाहर क्यों निकाल दिया। आप को तो विवेक था, आपने क्यों नहीं विचार किया। मैंने तो यों ही कह दिया था। आप उन्हें शीघ्र बुलाकर प्रसन्न कीजिये। भोजन कराइये तब मैं राजभोग स्वीकार करूँगा। श्रीनाथजी की वैभवश्री भक्त के चरण देश में नत हो गयी। दयाराम भाई को यह जान कर बड़ा दु ख हुआ कि प्रभु मेरे कारण तीन दिन तक भूखे रह गये, कितना बड़ा अपराध हो गया प्रभु के प्रति। उनके हृदय को बड़ा धक्का लगा। वे मन्दिर में गये। महाराज श्री ने भोजन करने का आग्रह किया, दयाराम भाई ने कहा कि मेरे कारण प्रभु को तीन दिनों तक भूखा रहना पड़ा। महाराज श्री ने कहा कि जब तक आप प्रसाद नहीं ग्रहण करेंगे प्रभु भोग नहीं स्वीकार कर सकते। लोगों के समझाने-बुझाने पर उन्होंने थोड़ा-सा दूध ग्रहण कर लिया, प्रभु ने भक्त को प्रसन्न कर राजभोग स्वीकार किया। श्रीनाथद्वारा से विदा होते समय उन्हें महाराज श्री ने श्रीनाथ जी का उपरणा प्रदान किया जिसे वे प्रेमपूर्वक बहुत दिनों तक ओढ़ते रहे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दयाराम भाई श्रीनाथद्वारा से काँकरोली गये। काँकरोली से मथुरा, वृन्दावन, गोकुल आदि की यात्रा की। यमुना जी की बड़ी सुंदर स्तुति की। हृदय में युगलरूप की उपस्थिति का वरदान माँगा, कहा कि हे माता, मुझे एक बार अपना पुत्र कह कर स्वीकार कर लो। गिरिराज में उन्हें युगल-स्वरूप का प्रत्यक्ष दर्शन हुआ। वे चन्द्रसरोवर–आदि वृन्दावन गये। उन्होंने सम्पूर्ण व्रज मण्डल–चौरासी कोस की परिक्रमा की। व्रजरस की अनुभूति से अपनी काव्यमयी वाणी का शृंगार किया। उन्होंने तीर्थयात्रा में सात साल लगाये। द्वारका की भी यात्रा की थी। उन्होंने नन्दनन्दन की वंशी ध्वनि और कुंजकेलि की रमणीयता तथा पुष्टिमार्ग उपासना की सरस्वती, कालिन्दी और गंगा के परम पवित्र संगम पर स्नान कर अपना जीवन अलौकिक, दिव्य और भागवत बना लिया।

तीर्थयात्रा से लौटने पर दयाराम भाई ने बड़ौदा के गोस्वामी श्रीवल्लभ लाल जी महाराज से ब्रह्म-सम्बन्ध लिया। महाराज श्री ने उन्हें भगवान मदन मोहन जी की सेवा सौंपी। गुरु में उनकी बड़ी निष्ठा थी। गुरु-सेवा को उन्होंने अपने जीवन में बड़ी महत्ता दी। उन्होंने गुरु के सम्बन्ध में एक स्थल पर कहा है।

'महा मंगल रूप श्रीगुरु देव श्रीमहाप्रभो
जाके पद पद्मको प्रथम सिर नाइये।
नाम लेत उदय होत आनन्दकन्द,
पाप-ताप टरत छवि ध्याइये॥
ब्रह्मा शिव विष्णु पर ब्रह्म सो गुरु राइ
सकल तीरथ आदि अंघ्रि रज नाइये।
'दयो' कहे आचरज अधिक को दूजो नाहि
गुरु सेवा चिंतामनि इच्छित फल पाइये॥'

बाईस साल की अवस्था में संत दयाराम भाई ने डभोई को ही अपना स्थायी निवास स्थान चुना। डभोई में वैष्णवों की संख्या अधिक थी, उनके मध्य में भगवच्चर्चा करने में उनको बड़ी सुविधा होती थी। वे कभी-कभी बड़ौदा, चाणोद, अहमदाबाद, सूरत और भरुच तथा श्रीनाथद्वारा आदि स्थानों में भी जाया करते थे। वे आठों याम भगवान की सेवा का रसास्वादन करते रहते थे।

सन्त दयाराम भाई पुष्टिमार्गीय वैष्णव थे। पुष्टि-सिद्धान्त के अनुसार भगवद्भजन करते रहना ही उनके जीवन का परम ध्येय था। पुष्टिमार्ग के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सिद्धान्त संक्षेप में ये हैं कि 'जगत सत्य है। जगत, जीव, अन्तर्यामी अक्षर आदि का निमित्त और उपादान कारण शुद्ध निर्गुण ब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्ण ही एक हैं। जीव-अविद्या से कल्पित अहंताममतात्मक संसार मिथ्या है। जीव अणु ह, शुद्ध निर्गुण ब्रह्म का अंश है। व्यापक नहीं है। परब्रह्म पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण का धाम अक्षर ब्रह्म गणित आनन्द है। सर्वोपरि वेदादि शास्त्र प्रतिपादित परमोत्कृष्ट वस्तु श्रीकृष्ण हैं। एक श्रीकृष्ण की सेवा ही जीव का धर्म है। आत्म निवेदन और प्रभु की प्राप्ति के बिना कुछ और धर्म है ही नहीं। दयाराम भाई की इन सिद्धान्तों में पूरी-पूरी आस्था थी, इन्हीं के अनुसार उनका सम्पूर्ण आचरण था। भगवच्चिंतन को ही दयाराम भाई ने विश्वधर्म, स्वधर्म और परम धर्म स्वीकार किया। उन्होंने अष्टछाप के कवियों—सूरदास-नन्ददास तथा अन्य कृष्ण काव्यकार चन्द्रसखी, सुखरामदास, मीरावाई, नरसिंह मेहता और प्रेमानन्द, सामल तथा भालण आदि की रचनाओं से भवगच्चिंतन की काव्यमयी प्रेरणा प्राप्त की। जागतिक जीवन में भगवत्सम्बन्ध को ही उन्होंने वास्तविक सम्बन्ध स्वीकार किया। उन्होंने दिव्य प्रेम-साम्राज्य में केवल गोपीजनवल्लभ श्रीकृष्ण को ही स्वामी बताया। उनकी उक्ति है:

'एक वर्‌यो गोपीजन वल्लभ नहीं स्वामी बीजो,
नहीं स्वामी बीजो रे म्हारे नहीं स्वामी बीज़ो।
और कोईनुं काम म्हारे रीझो के खीजो,
श्रीकृष्ण करे ते प्रमाण, कारज वणसो के सीजो॥'

उनका समग्र जीवन श्रीकृष्ण के चरण पर समर्पित था। श्रीकृष्ण ही उनके परम प्रेमास्पद थे, संत दयाराम भाई की साधना गोपीप्रेमपरक थी। श्रीकृष्ण की प्रेमलक्षणा भक्ति ही उनकी पराभक्ति की दिव्य प्रतीक थी। दयाराम भाई ने भगवान के लीलारूप की व्याख्या में अपने 'सम्प्रदायसार' ग्रन्थ में कहा है, वैदिक सिद्धान्त की परिपुष्टि की है:

'ब्रह्म एक निजरमणहित, पृथक नाम वपु धारि।
क्रीड़त सब जग आप नित, निगमागम उच्चारि॥'

उन्होंने गुजराती साहित्य को श्री राधाकृष्ण की सरस विहार-लीला से समृद्ध किया है। उन्होंने राधारानी के मानिनी-स्वरूप का एक पद में अत्यन्त मौलिक चित्रण किया है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'गुजरिया तू क्यों न बोले, तेरो पियजी बोलावे तो बोल।
श्रीराधे तू क्यों न बोले, तेरो पियजी बोलावे तो बोल॥
देखन देरी तेरो वदन चन्द्र मोहियों कर लियो चितचोर।
मत कर हठ गोरी मन मोहन सों, हँस कर घूँघट खोल।
'दया' के प्रीतम जी के प्राण की प्यारी, कोई त्रिया नहीं तेरे तोल॥'

राधाकृष्ण के लीला-स्मरण में ही उनकी साधना का स्वरूप प्रतिष्ठित है।

उन्होंने अपने मन को सावधान किया कि तुम श्रीकृष्ण की ही शरण में रहो, संसार-सागर से तरने के लिये श्रीकृष्ण नाम की नौका का आश्रय ग्रहण करो। संसार में वही सुरक्षित है जिसका हाथ नन्दनन्दन ने पकड़ लिया है। दयाराम भाई का मन भगवान कृष्ण के भक्तिरस में पूर्ण मुग्ध और आसक्त था।

संत दयाराम भाई ने गुजराती साहित्य के भगवद्भक्तिपक्ष को अपनी रचनाओं से विशेष रूप से समलंकृत किया। उन्होंने शृंगाररस और उसके देवता श्रीकृष्ण का एकात्म बोध प्राप्त किया, दोनों की एंकरसता का अनुभव किया। पुष्टि सम्प्रदाय में ऐसी मान्यता प्रचलित है कि वे किसी गोपी के अवतार थे, प्रणय -कलह होने पर उन्हें विरह हुआ, कलियुग में श्रीकृष्ण का यश गाने के लिये उन्होंने जन्म लिया। संत दयाराम भाई की उक्ति ह कि श्रीकृष्ण से प्रेम हो गया। पूर्व प्रीति का अनुभव मेरे मन में फिर से जाग गया है। उन्होंने गोपीभाव में पूर्ण विभोर होकर श्रीकृष्ण क्को अपने प्रियतम के रूप में देखा। यह भी मान्यता है कि गोस्वामी विठ्ठलनाथ जी महाराज के शिष्य–अष्टछाप के नन्ददास के अवतार थे। भगवान ने उनको एक बार स्वयं बताया था कि तुम हमारे सखा नन्ददास के अवतार हो। दयाराम भाई का अमित कड़ा नियम था कि श्रीकृष्ण के अतिरिक्त मैं किसी दूसरे के सम्बन्ध में नहीं लिखूँगा। दयाराम भाई के काव्य का विभाजन भगवद् लीलात्मक, भगवद् गुणात्मक, सिद्धान्तात्मक तथा उपदेशपरक और आख्यानात्मक है। उनका काव्य स्नेह-शास्त्र है, भागवत प्रेम-साहित्य है। कवि का कथन है कि स्नेहशास्त्र में व्रज की गोपी ही परम मर्मज्ञा हैं। दयाराम भाई के गरबे गुजराती कंठ के शृंगारालंकार हैं, भागवतरस से ओतप्रोत हैं। सन्त दयाराम भाई का प्रत्येक कार्य श्रीकृष्ण की ही प्रसन्नता के लिये था, उन्हीं के लिये खाते-पीते, ओढ़ते-पहनते, सोते-जागते और रोते-हँसते थे। वे उच्च कोटि के भगवद्रसिक थे। उनके तन पर झीनी हरीकिनारी वाली अहमदावादी धोती, झीने मलमल की चौबन्दी और अंगरखे, लाल रंग

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

की नागरी पगड़ी का शृंगार अद्‌भुत और परम मनोमोहक दीख पड़ता था। एक बार वे बनठन कर कहीं जा रहे थे, किसी ने उनसे पूछा कि आप कहाँ जा रहे हैं, दयाराम भाई ने उत्तर दिया कि मैं अपने प्रियतम प्राणाधार श्रीकृष्ण से मिलने जा रहा हूँ।

सन्त दयाराम के जीवन की विभूति विनम्रता थी, वे मधुर और शान्त स्वभाव के प्राणी थे। एक बार डभोई में गायकवाड़ नरेश महाराजा फतहसिंह का आगमन हुआ। महाराज ने उनका दर्शन किया और पद गाने की प्रार्थना की। दयाराम भाई ने तानपूरे पर दो तीन पद गाये। उन्होंने नरसिंह मेहता का 'वृषभानुसुता राधिका रहित वाधिका' पद गाया। फतहसिंह ने कहा कि महाराज आप साक्षात् नरसिंह मेहता हैं। दयाराम भाई ने दैन्यपूर्वक विनम्रता से कहा कि मैं तो उनके चरणों की धूलि हूँ—यही मेरा परम सौभाग्य है।

दयाराम भाई बड़ी स्वाभिमानी प्रकृति के संत थे। श्रीकृष्ण में उनकी अव्यभिचारिणी रति थी। एक बार पेटलाद से एक नागर गृहस्थ उनसे मिलने आया। दयाराम भाई के सामने भगवतत्त्व की विवेचना करने लगा। वे शान्त होकर उसकी सारी बातें सुन रहे थे। वह शैव था। बात-ही-बात में वह शिव की स्तुति में बह कर श्रीकृष्ण की निंदा कर बैठा। दयाराम भाई से अपने प्रियतम की निंदा नहीं सही गयी। वे शीलपूर्वक घर में चले गये, बाहर न आये। नागर गृहस्थ को अपनी भूल का ध्यान आया, चला गया। दयाराम भाई आशुकवि थे। श्रीकृष्ण की भक्ति ही उनकी कविता की आधारशिला थी। उन्होंने आजीवन श्रीकृष्ण का शृंगार गाया। उन्होंने प्रेमरस की गंगा बहायी, अलौकिक प्रेम का दान दिया। नर्मदा का चिरन्तन कलख उनकी काव्य-गरिमा का अक्षय प्रतीक है।

उनका अन्तिम समय पूर्ण रसमय था, भगवद्‌मय था। दयाराम भाई के अन्तिम पन्द्रह दिनों के उद्‌गार अत्यन्त करुण और हृदयद्रावक हैं। उनके शिष्य वसन्त राय तानपूरा बजाते थे तथा रणछोड़दास गाते रहते थे। दयाराम भाई बड़े मनोयोग से उनके पदगान का रसास्वादन करते थे। एक बार अवस्था अधिक बिगड़ने पर वसन्तराय ने एक वैद्य बुलाया। दयाराम भाई ने वैद्य से कहा कि महाराज, मुझे ऐसी दवा दीजिये जिससे मरण-भय का रोग चला जाय। दुख -सुख तो सहना शरीर का धर्म ही है। दयाराम भाई ने तानपूरा लेकर स्वयं एक भजन गाया कि हे मन, अपने प्रियतम के देश में चलना चाहिये। गोलोक-प्राप्ति के आठ दिन पहले ही उन्होंने अपनी अन्त्येष्टि क्रिया की विधि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समझा दी। अन्त समय में तमूरे पर रणछोड़दास ने एक पद गाया कि हे मन' अन्त समय है, असावधान होकर सोना नहीं चाहिये। दयाराम भाई ने कहा कि भाई मैं तो सावधान था। शिष्य ने दूसरा पद गाया :

'मारा अंत समे अलबेला मुजने मूकशो मा।
दरसन दो नीरे दास ने मारा गुणनिधि गिरिधरलाल॥'

सम्वत् १९०९ वि. में माघ वदी पंचमी को प्रभात काल में कृष्ण का स्मरण कर वे गोलोक गये। अन्त समय में रमण रेती यमुना जी के जल और श्रीनाथ जी की गाय के गोबर का उनके लिये उपयोग किया गया। वे परम रसिक, महान भगवदीय और विलक्षण सन्त थे।

रचना

अद्‌भुत मञ्जरी, वृंदावनविलास, सारावली, रसिकवल्लभ आदि ग्रन्थ तथा अनेक सरस गरबों की दयाराम भाई ने रचना की।

वाणी

मोहन रट लागी श्री राधे-राधे।
प्रानप्यारी हे कीर्ति कुमारी, श्री रसरूप आगाधे॥
रोम रोम रमा रमि रही, लागी प्रेम समाधे।
मुंदे नैन, चैन बिनु बोले बचन आधे-आधे॥
गुन अनूप अकल गति ईस अबाधे।
सो हरि 'दया' प्रीतम पिय सों, क्यों न सरस रति साधे-साधे॥

हे जी वंशी वारे के नोकीले नैन।
भला वंशी वारे के नोकीले नैन॥
वीर मोहें तीर सों, भटु, मोहे तीर सों लगे,
मेरे प्यारे के नोकीले नैन।
वंशी वारे के नोकीले नैन॥
रैन दिवस मोहि कल न परत पल,
रैन द्योस हों विकल रहत हों,
हे जी भला पलक परत नहीं चैन।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हे जी वंशी वारे के नोकीले नैन।
हाँसी मन्द मानों मदन की फाँसी वे
हे जी सुधा बोरे सलोने बैन।
'दया' के प्रीतम विन रह्यो न परत वे
'दया' के प्रीतम विन रह्यो न परत पल
हे जी भला छिन-छिन सतावत मैन।
हे जी वंशी वारे के नोकीले नैन।

श्रीकृष्ण गोविंद गोपाल गोकुलेश,
गोपी जन वल्लभ, गोवरधन धरन धीर।
परब्रह्म पुरुषोत्तम प्राणनाथ पद्मनाभ
पद्मकान्त, हरत तन-पीर॥
भक्तवत्सल दीनवन्धु, दुष्ट निकन्दन
जगन्नाथ जगद्गुरु, बालकृष्ण वलवीर।
यशोदोत्संगलालित नन्दलाल, राधिकेश
'दया' विहरत श्री यमुना तीर।

श्रीगिरिधारी प्रानप्रिया राधा, नाम सो भागे भव-वाधा।
कृपा सागरी तु कल्यानी, वल्लभा वृन्दावन रानी॥
पिता वृषभानु कीरति माता, शेष शिव जननी सुखदाता।
दया करि 'दयो' शरन राखो, दास तिहारो श्रीमुख भाखो॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महात्मा रामचरण

प्राणी कर लो राम सनेही।
विनस जायगी एक पलक में या गंदी नरदेही॥
रातो मातो विषय स्वाद में परफूलित मन माहीं।
जीव तणा आया जमकिंकर पकड़ि ले गाया बाहीं॥
मूरख मगन भयो माया में मेरी करि करि माने।
अंतकाल में भई बिगाणी सूतौ जाय मसाने॥
राग रंग रूप नर नारी सब हुय जाहिंगे खाका।
'जन हरिराम' रहेगा अम्मर एक नाम अल्ला का॥

—रामसनेही हरिरामदासजी

उस प्राणी के अभाग्य का विवेचन नहीं किया जा सकता है जो, यह जान कर भी कि संसार असार है, इसके सम्बन्ध क्षणिक हैं, देह नश्वर है, सिर पर काल नाच रहा है, भगवान का भजन नहीं करता है। निस्सन्देह सर्वगुणातीत, सर्वगुणमय निर्गुण-सगुण और निगुर्ण सगुण से भी परे निरञ्जन तथा सर्व-जनरञ्जन सर्वलोकलोकेश्वर राम के पदारविंद-मकरन्द का रसास्वादन जन्म-जन्मान्तर के पुण्ययज्ञ का महाप्रसाद है। वह प्राणी धन्य है जो भगवान के ही चिंतन, ध्यान, मनन और स्मरण में आत्मविभोर रहता है। महात्मा रामचरण एक ऐसे ही उच्च कोटि के महात्मा थे; वे निरन्तर रामरस की असीम समाधि में आत्मलीन रहते थे। वे रामसनेही सम्प्रदाय के उच्चकोटि के सन्त-महात्माओं में परिगणित हैं। जो कार्य महाराष्ट्र में सन्त ज्ञानेश्वर, एकनाथ, रामदास और तुकाराम ने किया उसी का सम्पादन राजस्थान में महात्मा रामचरण के हाथ से सम्पन्न हो सका। रामसनेही-सम्प्रदाय वैष्णव पंथ है। मारवाड़ में रवेडापा, मालवा में उज्जैन और मेवाड़ में शाहपुरा इसके मुख्य केन्द्र हैं। रामचरण जी महाराज ने शाहपुरा को पवित्र किया था। शाहपुरा उनकी तपस्या से चिर गौरवान्वित है। रामसनेही साधु-सन्त राजस्थान और मध्य-भारत में अधिक पाये जाते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उस स्थान के लोगों का परम सौभाग्य है जिसके कण-कण सन्त-महात्माओं की उपस्थिति से प्रतिक्षण धन्य होते रहते हैं; वहाँ के लोग कितने पुण्यशाली होते हैं जहाँ सन्त जन्म लेते हैं। महाराज रामचरण का प्राकट्य राजस्थान में ढूंढाड़ मण्डल के सोड़ा नामक ग्राम में सं. १७७६ वि. की माघ शुक्ल चतुर्दशी को हुआ था। वे वीजावर्गीय वैश्य कुल में पैदा हुए थे। उनके पिता वकत राम जी बड़े गरीब थे। उनके संस्कार उच्च कोटि के थे। उनके सच्चरित्र ने रामचरण जी के जीवन-विकास को अमित प्रभावित किया। रामचरण जी का बचपन का नाम रामकृष्ण था। वे बड़े होनहार और प्रतिभासम्पन्न थे। साधु-सन्तों के प्रति उनके मन में स्वाभाविक प्रेम था; यद्यपि वे दूकान पर बैठे रहते थे तथापि उनका मन भगवान के ध्यान में निरन्तर लगा रहता था। रामनाम का उच्चारण सुनते ही वे प्रसन्नता से नाच उठते थे। एक दिन वे सो रहे थे, अचानक एक ब्राह्मण ने उनके चरण में वज्र का चिह्न देखा, वह आश्चर्यचकित हो गया कि ये तो महान संत हैं, इकतीस साल के हो जाने पर भी ये छिपे क्यों रह गये।.. रामकृष्ण की ममता राम में बढ़ती गयी, सांसारिक प्रपंच और विषय विकार से उनका मन ऊबने लगा।

एक दिन दोपहर को वे दूकान पर बैठे थे। अचानक उनकी आँख लग गयी। उन्होंने स्वप्न में देखा, "एक बहुत बड़ी नदी द्रुत गति से बह रही थी, उसमें मैं स्नान कर रहा था कि इतने में डूबने लगा; नदी के किनारे एक महात्मा खड़े थे, मैं चिल्लाया—'बचाओ, बचाओ।' महात्मा ने मुझे डूबने से बचा लिया।" आँख खुलने पर नदी और महात्मा दोनों अदृश्य हो गये। रामकृष्ण जी ने स्वप्न की गम्भीरता पर विचार किया कि यह संसार एक भयानक नदी के समान है, इसमें डूबते प्राणियों की रक्षा सन्त-महात्मा ही कर सकते हैं। उन्होंने दूकान को प्रणाम किया और स्वप्न में देखे हुए महात्मा की खोज में निकल पड़े। वनों में भटकते रहे, मठों को देखा पर उनको महात्मा न दीख पड़े। इस यात्रा में धीरे-धीरे उन्हें संसार की अनित्यता का बोध होने लगा: अन्तःकरण निर्मल हो गया, भगवान ही परमाश्रय हैं — यह बात उनके मन में बैठ गयी। परिस्थितियों से विकट संघर्ष करते हुए वे मेवाड़ के दाँतड़ा ग्राम में आ पहुँचे, वहाँ उन्हें कृपाराम जी सन्त का सत्संग प्राप्त हुआ था। उन्होंने संत के चरण में निवेदन किया कि महाराज, यह संसार मुझे काट खा रहा है, इसके विषय-सुख विष से भी कड़े हैं; इनमें शान्ति का सर्वथा अभाव है; मैं संसार के ताप से जल रहा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हूँ; मुझे मुक्ति का पथ बताइये। कृपाराम जी महाराज ने सोचा कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि रामकृष्ण अपने घर से चिढ़ कर भाग आये हैं, उन्होंने घर लौट जाने की सम्मति दी पर रामकृष्ण की दृढ़ निष्ठा और वैराग्य-प्रवृत्ति से वे मंत्रदीक्षा देने के लिये विवश हो गये। उन्होंने योग्यता की परख की और भगवत-तत्त्व का उपदेश दिया। रामकृष्ण का नाम संत की कृपा से रामचरण हो गया। महाराज कृपाराम ने सन्त रामचरण को रसोई का काम सौंपा। एक दिन वे भोजन बना रहे थे। चूल्हे में लकड़ी लगा रहे थे। एक लकड़ी में अनेक चींटियाँ थीं, आग के प्रकाश से वे लकड़ी में से निकल कर बिल की ओर भाग रही थीं। महात्मा रामचरण के हृदय में दया का स्त्रोत उमड़ पड़ा

'महाराज! संसार आपके सम्पर्क में भी मेरा पीछा नहीं छोड़ता है।' उन्होंने करुण स्वर से कृपाराम के सम्मुख आत्मोद्धार की प्रार्थना की। कृपाराम ने उनके मन का भाव समझ लिया। उन्होंने राममंत्र का उपदेश देकर एकान्त में जाकर भजन-साधन करने का आदेश दिया। रामचरण भीलवड़ी में आकर संयमपूर्वक भगवान राम का भजन करने लगे। उनकी ख्याति से आकृष्ट होकर अधिकाधिक संख्या में लोग उनका दर्शन करने के लिए आने लगे। शाहपुरा नरेश उनसे बहुत प्रभावित थे; वे उनसे कभी-कभी मिलने आया करते थे। उन्होंने महात्मा रामचरण से शाहपुरा में पधारने और निवास करने की प्रार्थना की। पहले तो सन्त रामचरण ने जाना अस्वीकार कर दिया पर बाद में राजा की श्रद्धा-भक्ति ने उनको विवश कर दिया। उन्होंने राजा से कहा कि मैं शाहपुरा में नदी के तट पर श्मशान में रहूँगा। सन्त रामचरण जी शाहपुरा के श्मशान में रहने लगे। उस स्थान पर उन्हें एक सिद्ध महात्मा की सेवा का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वे उनकी सेवा में लग गये। सन्त ने रामचरण महाराज की सेवा से प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया कि तुम्हारे हाथ से जगत का उद्धार होगा। तुम्हारे सम्प्रदाय की निर्मल कीर्ति सौ साल तक निरन्तर बढ़ती ही रहेगी। सन्त के स्वर्गवास के बाद रामचरण महाराज विकट तपस्या में लग गये। उन्होंने गूदड़-वेष धारण किया और पचीस साल तक तप करते रहे। तीन-तीन दिनों तक उनकी समाधि लगी रहती थी। समाधि-काल में उनके श्रीमुख से निकले पद शिष्य लोग लिख लिया करते थे। महाराज को जब इसका पता लगा तो उन्होंने पदसंग्रह नदी में फेंकवा दिया और प्रभु से क्षमा-प्रार्थना की कि मैं कुछ नहीं करता, सब कुछ (राम) आप करते हैं; यदि मुझमें करने का अभिमान हो जाय तो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यह मेरी बहुत बड़ी भूल है। मना करने पर भी शिष्यों ने अमूल्य पद लिखना बन्द न किया; रामचरण जी महाराज ने छत्तीस हज़ार से अधिक साखियों की रचना की। रामसनेही-पंथ में उनकी वाणी वेद के समान आदरणीय है।

रामचरण जी महाराज निर्गुण रामतत्व के उपासक थे। उनकी गुरुनिष्ठा उच्च कोटि की थी। गुरुतत्व की महिमा का बखान उनके पदों और साखियों में अधिकता से मिलता है। वे अपने शिष्यों को निर्गुण राम-महामन्त्र का उपदेश देते थे। निर्गुण-रामतत्व के सम्बन्ध में रामचरण महाराज की उक्ति है कि राम बड़े कृपालु हैं, वे जीव को अपनी भक्ति में प्रतिष्ठित कर समत्वयोग का दान देते हैं: उनकी वाणी है:

'शिव सनकादिक शेष लों रटत न पावै अंत।
रामचरण वंदन करै नमो निरञ्जन कंत॥'

रामचरण जी महाराज के राम चिदानन्दघन सुख-राशि हैं; निरालंब, निर्लेप और अकल तथा अन्तर्यामी हैं; वे लोक-लोकान्तर में परिव्याप्त चिन्मय परम प्रकाश हैं। संत रामचरण ने कहा:

'नमो राम रमतीत सकल
व्यापक घणनामी।
सब पोषै प्रतिपाल सबन
का सेवक–स्वामी।
करुणामय करतार कर्म
सब दूर निवारै।
भक्त वछलता विरद भक्त
तत्काल उधारै।
रामचरण वंदन करै सब
ईसन के ईस।
जगपालक तुम जगत गुरु
जगजीवन जगदीस।'

निर्गुण राम और गुरु में उन्होंने तनिक भी भेद नहीं माना। सारे संसार का पालन करने वाले जगद्गुरु जगदीश राम के चरण देश में महात्मा रामचरण ने सब कुछ समर्पित कर दिया। श्रीराम में उनका अडिग विश्वास था। उनकी उक्ति है:

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'राम राम सब कोइ कहै, ब्रह्मा विष्णु महेश।
रामचरण साचा गुरु, देवे यों उपदेश॥'

महात्मा रामचरण जी महाराज रामसनेही सम्प्रदाय के मूलाचार्य स्वीकार किये जाते हैं। उन्होंने बाह्याचार के स्थान पर मानसी उपासना-अन्तर्मुखी पूजा-पद्धति पर विशेष ज़ोर दिया। इस सम्प्रदाय में आचरण और यति-जीवन के नियम कड़े हैं; अत्यन्त संयत जीवन ही इस सम्प्रदाय के महात्माओं का ध्येय रहता आया है। रामचरण महाराज ने यति-धर्म-पालन को बड़ा महत्व दिया। उनकी अपने शिष्यों के प्रति सीख थी कि गुरु देव ही मुक्ति के साधन हैं। उनकी कृपा से जीव भवसागर के पार लग जाता है। उन्होंने अहिंसा को अपनाने की सीख दी। महाराज रामचरण ने कहा कि गुरु की सेवा करने से ही निर्गुण-निरञ्जन तत्व का अनुभव होता है; परम ज्योति का दर्शन प्राप्त होता है; गुरु में निष्ठा भाव करने से गोविंद मिलते ही हैं, इस उक्ति में संशय नहीं करना चाहिये,—ऐसा उनका दृढ़ मत था शिष्यों के प्रतिः उनकी उक्ति है:

'प्रथम कीजे गुरु की सेवा।
ता संग लहे निरंजन देवा॥'

'प्रथम गुरु सूं भाव बढ़ावे।
गुरु मिलिया गुविन्द कुं पावे॥'

रामचरण महाराज ने राम-नाम को ही जागीर माना, उनके शिष्यों में योगिराज रामजन जी महाराज असाधारण कोटि के संत थे।

रामचरण महाराज ने शाहपुरा में ही सं. १८५५ वि. की वैशाख कृष्ण पंचमी को शरीर त्याग दिया। ऐसा कहा जाता है कि महाराज का शरीर जब चिता पर उठा कर रखा जा रहा था तब उठाते समय शरीर में से रामनाम की ध्वनि हुई और उससे समस्त वातावरण आलोकित हो उठा। चिता में महाराज की माला और कौपीन को आगने तनिक भी स्पर्श नहीं किया। शाहपुरा में उनकी संगमरमर की समाधि है। प्रतिवर्ष फाल्गुन में उनकी समाधि पर बहुत बड़ा मेला लगता है। रंगपंचमी से ही संतों की मण्डली आने लगती है और रामनवमी को वे अपने-अपने स्थान के लिये चल पड़ते हैं, उत्सव का विशेष आयोजन रहता है और सन्तों को आदरपूर्वक विदा किया जाता है। महाराज रामचरण की समाधिस्थली का नाम राम-निवास है; इस स्थान पर सदा तीन-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चार सौ साधु-महात्मा रहा करते हैं। रामचरण जी महाराज साकार वैराग्य और तप थे।

रचना

रामचरण महाराज की प्रसिद्ध रचनाओं में 'नामप्रताप' और 'शब्द-प्रकाश' विशेष उल्लेख्य है।

वाणी

कहबो सुणबो देखबो चित की चितवन जाण।
'रामचरण' इनके परै अकहब्रह्म पीछाण॥
रामराम रसना रटौ, पालो शील सँतोष।
दया भाव क्षमा गहो, रहो सकल निर्दोष॥
मन खण्डे रामहि भजे तजे जगत गृह कूप।
'रामचरण' तब परसिये आतम शुद्ध स्वरूप॥

निशिवासर हरि, आगै नाचूं।
चरणकमल की सेवा जाचूं॥
स्वर्गलोक का सुख नहिं चाऊँ।
जन्म पायं हरिदास कहाऊँ॥
चार पदारथ मनां विसारूँ।
भक्ति बिना दूजो नहिं धारूँ॥
रिधि-सिधि-लक्ष्मी काम न मेरे।
सेवूं चरण शरण रहुँ तेरे॥
शिव सनकादिक नारद गावै।
सो साहिब मेरे मन भावै॥

रूंठा राम रिझाय मनाऊँ, निशिवासर गुण गाऊँ हो।
नटवा ज्यूँ नाटक कर मोहूँ, सिंधू राग सुणाऊँ हो॥
शील सँतोष दया आभूषण, क्षमा भाव बढ़ाऊँ हो।
सुरति-निरति साँई में राखूँ, आन दिशा नहिं जाऊँ हो॥
गर्व गुमान पाँव सें पेलूँ, आपो मान उड़ाऊँ हो।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

साहिब की सखियन सूँ कबहूँ, राग द्वेष नहिं लाऊँ हो ।।
पाँचूँ पकड़ पचीसूँ चूरूँ, त्रिगुण कूँ विसराऊँ हो ।
चौथो दाव चेत कर खेलूं, मौज मुक्ति की पाऊँ हो ।।
इस विधि करके राम रिझाऊँ, प्रेम प्रीति उपजाऊँ हो ।
अनंत जनम को अन्तर भागो, 'रामचरण' हरिभाऊँ हो ।।

आनँदघन सुखराशि चिदानँद कहिये स्वामी ।
निरालंब निरलेप अकल हरि अन्तरयामी ।।
वार पार मध्य नाहिं कौन विधि करिये सेवा ।
नहि निराकार आकार अजन्मा अविगत देवा ।
'रामचरण' वंदन करै अलह अखण्डित नूर ।
सुखम थूल खाली नहीं रह्यां सकल भरपूर ।।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महात्मा सरयूदास

बंदा कर ले बंदगी पाया नर-तन सार।
जो अब गाफिल रह गया, आयु बहे झख मार॥
आयु वहे झखमार, कृत्य नहिं नेक बनायो।
पाजी बेईमान कौन बिधि जग में आयो॥
कहत दीनदरवेश फँस्यो माया के फन्दा।
पाया नर-तन सार बंदगी कर ले बंदा॥

—संत दीनदरवेश

परम भागवत नरसी मेहता, महाज्ञानी भक्त अखा, और रसिक भक्त दयाराम भाई की सरस वाणी से स्निग्ध गुजरात की धरती ने असंख्य ज्ञानी, भक्त, योगी और सन्त-महात्माओं को अपनी वात्सल्यमयी गोद का समय-समय पर स्नेह-दान दिया है। इसी परम पवित्र भूमि में महात्मा सरयूदास ने अभी कुछ ही दिन पहले भगवद्भक्ति और कथा-कीर्तन से अगणित प्राणियों का जीवन चिर गौरवमय कर दिया। उन्होंने भौतिक विज्ञानप्रधान युग को धर्म और विश्वास से आश्चर्यचकित कर आत्मज्ञान और भगवद्भक्ति से सम्पन्न किया, यही उनके भागवत जीवन की ऐतिहासिकता है। उनका जीवन विनम्रता, सत्यवादिता और मित भाषणकारिता का प्रतीक था। वे जगत के सुख-दुख से परम निरपेक्ष रह कर निर्भयतापूर्वक भगवच्चिंतन किया करते थे। अपरिग्रह और जड़-चेतन—समस्त सृष्टि के प्रति समदृष्टि का उनमें आधिक्य था। परोपकार को महात्मा सरयूदास बहुत बड़ा पुण्य मानते थे। दीनहीन असहाय जनों की सेवा-सुश्रूषा के लिये वे लोगों को अधिकाधिक प्रोत्साहन देते रहते थे। वे आत्मानन्दी महात्मा थे, सदा अपने आप में दिव्य शांति का अनुभव करते थे।

महात्मा सरयूदास का जन्म अहमदाबाद जनपद के पाटडी ग्राम में सम्वत् १९०४ वि. की श्रावण कृष्ण अष्टमी को हुआ था। उनके पिता प्रभुदास और माता गंगा बहिन की आस्तिकता और भगवन्निष्ठा ने सरयूदास के बाल्य जीवन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

को सात्विकता और दिव्य गुणों से सम्पन्न कर दिया था। सरयूदास का परिवार परम पवित्र और भागवत था। सरयूदास के भाई का नाम गोविन्द था; काशी और जमुना नाम की दो बहिनें भी थीं। उनकी बाल्यावस्था मोशल में बीती, मोशल के वजा भगत और जोइताराम भगत के सम्पर्क में उन्होंने सत्संग और ईश्वरभक्ति का अपार आनन्द प्राप्त किया। उनके बचपन का नाम भोगीलाल था। उनके मामा ने उनको दूकान का कार्य सौंप दिया, वे उन्हें घर-गृहस्थी के कार्य में व्यस्त रखना चाहते थे। मामा को प्रसन्न रखने के लिये वे दूकान पर बैठे रहते थे पर मन अनवरत भगवान का चरण-चिंतन किया करता था। उनके समस्त संस्कार भक्तिमूलक थे। भगवान के प्रति अडिग विश्वास ही उनका एक मात्र धन था।

अल्पायु में ही उनका विवाह हो गया था। थोड़े ही समय के बाद पत्नी का देहावसान हो गया। उन्होंने इस घटना में प्रभु का मंगलमय विधान देख कर अपने आप को बन्धनमुक्त अनुभव किया। सगे-संबन्धियों ने दूसरे विवाह का प्रस्ताव रखा, महात्मा सरयूदास ने अस्वीकार कर दिया।... धीरे... धीरे उनकी वैराग्य-वृत्ति बढ़ने लगी। एक दिन ग्राम में चार-पांच संत आये। दोपहर का समय था। भिक्षा माँगने का समय समाप्त हो गया था। भोगीलाल की दृष्टि सन्तों पर पड़ गयी। उनके देखते सन्त भूखे ही रहते किस तरह? भोगीलाल ने घर में आटे की खोज की पर आटा केवल ढाई सेर था, इतने से काम चलने वाला नहीं था, वे स्वयं आटा पीसने बैठ गये और आनन्दपूर्वक पर्याप्त आटे से सन्तों के भोजन की व्यवस्था की। यह घटना संकेत करती है कि सन्त-सेवा में उनकी कितनी रुचि थी।

एक दिन वे अपने मामा की दूकान पर बैठे हुए थे। शाम का समय था। अचानक मन्दिर में घंटानाद सुन पड़ा। भगवान की आरती हो रही थी। वे समस्त बाह्यज्ञान से शून्य होकर आरती-दर्शन के लिये मन्दिर की ओर चल पड़े। दूकान में ताला लगाने तक की बात का स्मरण न रहा। दूसरे दिन मामा बिगड़ने लगे तो वे मौन और उदासीन हो गये। तनिक भी संतप्त न हुए।

भोगीलाल पाटड़ी में रहने लगे। ... एक समय पाटड़ी में दैवयोग से नगवाड़ा की ओर से महात्मा भगवानदास जी का आगमन हुआ। उनके साथ अनेक शिष्य थे। वे बड़ के नीचे धूनी रमा कर बैठ गये। भोगीलाल उनके सत्संग से प्रभावित हुए। भगवानदास के शिष्य आत्मा राम भोगीलाल के वैराग्य पूर्ण जीवन से

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने गुरु से भोगीलाल को शिष्यरूप में स्वीकार करने की प्रार्थना की। महात्मा भगवानदास ने भोगीलाल को गुरुमन्त्र प्रदान कर उनका नाम सरयूदास रखा। गाँववालों में कानाफूसी आरम्भ हो गयी कि इतनी कम अवस्था में भोगीलाल का संन्यास लेना कदापि उचित नहीं है। उन्होंने भोगीलाल को एक कमरे में तीन दिनों तक बन्द रखा पर इसका कुछ भी परिणाम न हुआ। महात्मा भगवानदास ने पाटड़ी छोड़ दिया। इधर बन्धनमुक्त होते ही महात्मा सरयूदास गुरु की खोज में चल पड़े। गुरु से भेंट होने पर वे उन्हीं के साथ पर्यटन करते-करते अहमदाबाद आये। इस पर्यटन-काल में उन्होंने गुरु की सेवा की और निश्चित मन से शास्त्रों का अध्ययन किया।

दरियापुर वाड़ी ग्राम में त्रिकमदास पटेल ने सरयूदास महाराज की सेवा में मुरलीधर मन्दिर समर्पित किया, महाराज तो स्वच्छन्द रूप से विचरते रहने वाले सन्त थे, यह समर्पण उनके लिये भार का विषय था पर भगवान की कृपा से मन्दिर में अन्नक्षेत्र की स्थापना हो गयी और सरयूदास महाराज का भार हलका हो गया। कुछ दिनों के पश्चात् महात्मा भगवानदास ब्रह्मलीन हो गये। मुरलीधर-मन्दिर में भगवद्विग्रह की सेवा का कार्य आत्माराम जी ने सम्हाला। महात्मा सरयूदास एकान्त-सेवन करने लगे। उनके जीवन का अधिकांश भगन्नाम-कीर्तन, कथा और सत्संग में ही बीतने लगा। कुछ दिनों तक अहमदाबाद में निवास कर वे पर्यटन के लिये निकल पड़े। वे पूर्ण रूप से संन्यासी हो गये; मा का देहावसान होने पर वे उनके अग्नि-संस्कार में सम्मिलित हुए थे, उनकी अन्त्येष्टि की थी; इसके अतिरिक्त वे किसी भी लौकिक कार्य में नहीं पड़े थे।

महात्मा सरयूदास आत्मानन्दी महात्मा थे। नश्वर शरीर का उनकी दृष्टि में कुछ भी महत्व नहीं था। समस्त जड़-चेतन में वे आत्मदर्शन करते थे। एक बार गुजरात में बड़ा भयंकर अकाल पड़ा। लाखों प्राणी भूख से मरने लगे। सब में अपने आप को देखने वाले महात्मा सरयूदास का हृदय दया से द्रवित हो उठा। वे अकाल के दिनों में नित्य पचीस मन अनाज का रोट बनवाने लगे। प्रत्येक अतिथि को एक सेर रोट और दाल देने की व्यवस्था थी। इस प्रकार उन्होंने भगवान की कृपा से असंख्य प्राणियों के प्राण बचाये। परोपकार और असहायों की सेवा में उनकी बड़ी रुचि थी।

जड़-चेतन सब में उनकी ईश्वर-भावना थी। उन्होंने किसी को भी शिष्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के रूप में स्वीकार नहीं किया। यदि कोई श्रद्धालु व्यक्ति माला और तिलक आदि से समलंकृत करना चाहता था तो स्पष्ट कह दिया करते थे कि भगवान मुरलीधर को समर्पित कर दो। बड़ी सावधानी से रास्ता चला करते थे कि कहीं ऐसा न हो कि पैर के तले कोई जीव दब जाय। यदि कोई वृक्ष का पत्ता लेने आता था तो उससे कह दिया करते थे कि वृक्ष में भगवान का निवास है, पत्ता तोड़ कर ले जाने के पहले वृक्ष से क्षमा-याचना करो।

वे नित्य शाम को मुरलीधर-मन्दिर में नियम पूर्वक श्रीमद्भागवत की कथा कहा करते थे, प्रातःकाल पारस भाग की कथा कहने का नियम था। उनकी कथा में अगणित व्यक्ति सम्मिलित होते थे। विशेष आग्रह पर उन्होंने स्त्रियों के लिये भी कथा में बैठने की व्यवस्था करा दी थी। अन्त्यजों को भी महाराज की कृपा से कथा-श्रवण की पूरी-पूरी सुविधा प्राप्त थी। महाराज का सम्पूर्ण जीवन ही साधनामय था; भक्ति का प्रचार ही उनकी साधना का स्वरूप था। महाराज ने गुजरात में भागवत धर्म का प्रचार किया।

महाराज में हिन्दू, सिख, पारसी, ईसाई सब-के-सब समान रूप से श्रद्धा रखते थे। ढोलकावाले डाह्याभाई मनोरभाई पटेल बड़े अकड़वाले व्यक्ति थे। वे किसी के भी समाने मस्तक नहीं नत करते थे। एक बार उन्होंने महाराज में श्रद्धा व्यक्त करते हुए पत्र लिखा और महाराज की कथा में गये। महाराज ने कहा, 'कृपानाथ, आप ने ही पत्र लिखा था।' सन्त की मीठी वाणी थी, सुनते ही पटेल महोदय महाराज के चरणों पर नत हो गये। उन्होंने महाराज के दर्शन से अपने आप को धन्य कर लिया।

महाराज विनम्रता की मूर्ति थे। एक बार वे रेल की तीसरी श्रेणी में बैठ कर डाकोर जा रहे थे। उनकी बगल में एक पठान बैठा हुआ था। सरयूदास महाराज को चिढ़ाने के लिये वह अपने पैर उनकी ओर रह-रह कर बढ़ाता और ठोकर मारता था। महाराज पूर्ण रूप से सावधान थे। उन्होंने स्वाभाविक श्रद्धा से पठान के पैर पकड़ कर कहा, 'भैया, आप को चोट अवश्य लगी है, मुझे दिखाओ, संकोच मत करो।' पठान महाराज के संस्पर्श से आनन्दमग्न हो उठा, वह अपनी भूल के लिये पश्चात्ताप करने लगा और कहा, 'महाराज, आप औलिया हैं। वह उनके पैरों पर गिर पड़ा और क्षमा-याचना की।'

महाराज में लोभ नाम की वस्तु ही न थी। उनके पूर्वाश्रम की बहिन जमुना बाई अहमदाबाद में एक गरीब घर में विवाहित थीं। महाराज के सत्संग

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

में एक धनी व्यक्ति त्रीकम भाई आया करते थे। उन्होंने महाराज से कहा कि बाई को प्रत्येक मास सौ रुपये सहायता रूप में देने का विचार है। महाराज उनके सामने तो मौन रहे पर जमुना बाई से उन्होंने कहा कि इस प्रकार की सहायता स्वीकार करना उचित नहीं है; घर पर नित्य दस सेर आटा पीस कर मेहनत मजदूरी से रोटी-शाक पर जीवन बिताना कहीं हितकर है; बाई ने महाराज की सीख पर आजीवन आचरण किया। इस प्रकार महाराज की उच्च कोटि की त्याग-वृत्ति का पता चलता है।

महाराज सरयूदास मुरलीधर-मन्दिर में नित्य भागवत की कथा कहते थे। एक दिन उनको कथा में आने में देर हो गयी। बात यह थी कि महाराज कथा में आने के पहले नित्य साबरमती नदी में स्नान करने जाया करते थे। उस दिन महाराज को नदी तट पर एक रोगी दीख पड़ा। महाराज उसकी सेवा में लग गये। कथा में जाने का ध्यान ही न रहा। विशेष विलम्ब हो चुका था, वे चल पड़े। रास्ते में अहमदाबाद के मुरलीधर-मन्दिर से निकल कर आने वाले श्रोताओं ने कहा, 'महाराज, आज तो आप की कथा परम अमृतमयी थी, ऐसी कथा आपने किसी दिन और पहले तो कही न थी।' महाराज आश्चर्यचकित हो गये, उन्होंने कहा, 'भैया, चिढ़ाओ मत, आज मुझसे देर हो गयी, मैं तो नदी के तीर पर रोगी की सेवा में लग गया।' श्रोताओं ने कहा कि 'महाराज, आप कहते क्या हैं? आप सत्यवादी महात्मा हैं। हमने आप के मुख से भगवद् कथामृत का अपूर्व ढंग से रसास्वादन किया है।' महाराज के नयनों से प्रेमाश्रु छलक पड़ा, उन्होंने कहा कि आप लोग धन्य हैं, आज भगवान ने आप लोगों को साक्षात् दर्शन दिया, मैं कितना अभागा हूँ, प्रभु को मेरे कारण इतना कष्ट उठाना पड़ा। महाराज आनन्दमग्न हो उठे भगवान की कृपा-वत्सलता पर।

महाराज लोक-प्रसिद्धि से बहुत दूर भागते थे। जन-सम्पर्क में उनका मन नहीं लगता था। एक समय की बात है। सात-आठ बजे रात के लगभग महाराज दूधेश्वर घाट पर काश्मीरी महादेव के मन्दिर में आकर नारायण जी महाराज की समाधि के निकट भगवान का स्मरण करने लगे। भीतर से एक साधु बाहर आये, उन्होंने आत्मानन्द जी महाराज से कहा कि समाधि पर कोई सन्त भजन कर रहे हैं। आत्मानन्द जी ने एक गुदड़ी दी; साधुपुरुष ने महाराज के पास रख दी पर महाराज ने उसका उपयोग न किया। दूसरे दिन सबेरे आत्मानन्द जी ने कहा कि आप भीतर क्यों न आये, आप ऐसे उच्चकोटि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के महात्मा का हम लोग तनिक भी स्वागत न कर सके। महाराज ने कहा कि आप की कृपा से एकान्त में बैठ कर प्रभु का स्मरण करता रहा, इससे बढ़ कर दूसरा स्वागत क्या हो सकता है।

महाराज बड़े सहनशील थे। एक समय दाहिने कान के नीचे गाँठ निकल आयी, शल्यचिकित्सा के लिये बम्बई से डाक्टर आया। महाराज ने क्लोरोफारम का उपयोग न होने दिया. उन्होंने आँख मूँद ली और शल्यक्रिया विधिपूर्वक सम्पन्न हुई।...इसके बाद कई एक गाँठों के निकलने से उनकी कमजोरी बढ़ती गयी। सम्वत् १९६८ वि. की कार्तिक कृष्ण तृतीया को महाराज सरयूदास ने महासमाधि ली, समस्त अहमदाबाद शोक-सागर में निमग्न हो गया। उनके शव को पालकी से श्मशान-भूमि में ले जाकर श्रद्धालुओं ने चन्दन काष्ठ की चिता पर दाह-संस्कार सम्पन्न किया। उस समय असंख्य व्यक्ति उपस्थित थे। सरयूदास जी उच्च कोटि के महात्मा थे, विरक्त संत थे।

रचना

सरयूदास के उपदेश और वचन ही अमरकृति हैं।

वाणी

मृत्यु और ईश्वर का बार-बार स्मरण रखना चाहिये। दूसरे का धन पत्थर के समान और परस्त्री को माता के समान समझना चाहिये।

सत्य, हितकारी और प्रिय वचन बोलना चाहिये। बिना पूछे कोई बात नहीं बोलनी चाहिये।

वैर का बदला वैर से नहीं—प्रेम से लेना चाहिये। परोपकार से बढ़ कर न तो कोई पुण्य है और दूसरे को दुख देने से बढ़ कर न तो कोई पाप है।

प्रेम करना सहज है, निभाना कठिन है।

दश इन्द्रियों और मन को वश में रखना चाहिये। अपने आप को तथा जगत को ब्रह्मरूप मानना चाहिये। परब्रह्म परमात्मा राधा-कृष्ण युगल स्वरूप के श्रवण, कीर्तन, भजन तथा ध्यान में रहना चाहिये; कलियुग में ईश्वर-प्राप्ति का यही मार्ग है।

दुख में धैर्य और सुख में प्रभु को धन्यवाद देना उत्तम भजन है।

'सब में मेरी आत्मा है'—सब में इस प्रकार का सर्वात्म भाव रखना चाहिये। आत्मा का नाता सत्य है, मिथ्या माया के बने पदार्थ का सम्बन्ध सच नहीं है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

योगिराज गम्भीरनाथ

आपा भांजिबा सतगुरु षोजिबा,
जोग पन्थ न करिबा हेला।
फिरि फिरि मनिषा जनम न पाइबा,
करि लै सिध पुरिस सू मेला॥

अहंकार तोड़ना चाहिये—नष्ट कर देना चाहिये। सत्गुरु की खोज करनी चाहिये। योगपंथ की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। बार-बार मानव योनि नहीं मिलती इसलिये सिद्ध पुरुष का सत्संग करना चाहिये।

—गोरखनाथ

योगिराज गम्भीरनाथ सिद्ध पुरुष थे। उन्होंने हठयोग, राजयोग और लययोग के क्षेत्र में आत्मसिद्धि प्राप्त की। नाथयोग-परम्परा में इधर सात-आठ सौ वर्षों में उनके ऐसे योगी का दर्शन नहीं हुआ था। निस्सन्देह महात्मा गम्भीर-नाथ पतञ्जलि और गोरखनाथ के समन्वय -संस्करण थे। ऋद्धियों और सिद्धियों ने उनके चरण-चिन्तन को अपना सौभाग्य -सिन्दूर समझा। वे शान्ति और गंभीरता के उज्ज्वलतम रूप थे। बड़े-बड़े सन्तों और महात्माओं ने उनके चरणमें अपनी श्रद्धा समर्पित कर आत्म मोक्ष का विधान प्राप्त किया। हिमालय से कन्या अन्तरीय तक के भूमि-भाग में बीसवीं शताब्दी में इतने बड़े योगी का दर्शन अन्यत्र दुर्लभ था। उन्होंने मानवता को योग -शक्ति से सम्पन्न किया। उन्होंने योग-ब्रह्म—शिव का आत्मसाक्षात्कार -लाभ किया। भारत के प्रायः समस्त तीर्थों को अपनी चरण-धूलि प्रदान कर योगिराज गम्भीरनाथ ने उनकी महिमा में विशेष अभिवृद्धि की। माना, योगिराज का प्राकट्य उस समय हुआ था जब भारत विदेशी शक्ति की अधीनता में था पर योगिराज गम्भीरनाथ के लिये तो भौतिक जगत की पराधीनता का कोई महत्व ही नहीं था, वे तो जागतिक प्रपंच से अतीत थे। वे रहस्यपूर्ण ढंग से आध्यात्मिक क्रान्ति का सृजन कर रहे थे; उनके योग-उदय काल में विदेशी शासन को निकाल बाहर करने के लिए

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बंगाल तथा अन्य प्रान्तों में सशस्त्र राजक्रान्ति की योजना कार्यरूप में परिणत हो रही थी, महात्मा गम्भीरनाथ ने राजनीतिक क्रान्तिकारियों की आध्यात्मिक पिपासा की तृप्ति की, अगणित बंगीय युवकों ने उनके पथ-प्रदर्शन में गम्भीर, अखण्ड और शाश्वत स्वतन्त्रता ज्योति—आत्मशान्ति का दर्शन किया।

महात्मा गम्भीरनाथ ने सिद्धयोगपीठ—गोरखनाथ की तपोभूमि गोरखपुर को अपनी तपस्या से अक्षय समृद्धि प्रदान की। वे निरन्तर योगस्थ थे। वे श्रीगीता की भागवत-घोषणा :—

'योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥'

—सम्पूर्ण योगियों में भी जो श्रद्धावान् योगी मेरे में लगे हुए अन्तरात्मा से मुझे ही निरन्तर भजता है वह मुझे परमश्रेष्ठ मान्य है'— में अटल विश्वास रखते थे। वे अन्तरात्मा में स्वस्थ थे। वे अपने समय के सर्वश्रेष्ठ योगी थे— धर्मतत्व के मर्मज्ञ और असाधारण आत्मज्ञ थे। उनके समकालीन महात्मा विजय कृष्ण गोस्वामी की मान्यता थी कि हिमालय के देश में—भारत देश में उनके ऐसा योगी कोई दूसरा नहीं है। विजय कृष्ण उनकी परम योगविभूति से बहुत प्रभावित थे। महात्मा गम्भीरनाथ की योग-साधना शैव दर्शन के सिद्धान्त की प्रतीक थी, वे शैव योगी होते हुए भी शुद्ध सच्चिदानन्द तत्व के निरपेक्ष और निष्पक्ष दृष्टा थे। उनका योग गोरखनाथ की योग-पद्धति का अनुगामी था। महात्मा गम्भीरनाथ ने गोरख की योग-साधना पद्धति का बीसवीं शताब्दी में पूर्ण प्रतिनिधित्व किया और आजीवन अपने साम्प्रदायिक—नाथयोग परम्परागत सिद्धान्त पर अडिग रह कर आत्मसाक्षात्कार प्राप्त किया। योग और ज्ञान का समन्वय किया।

महात्मा गम्भीरनाथ के पूर्वाश्रम के सम्बन्ध में कुछ भी निश्चित रूप से कहना या लिखना आसान नहीं है। उनका जन्म विक्रमीय उन्नीसवीं शताब्दी के चौथे चरण में काश्मीर राज्य के एक गाँव में समृद्ध परिवार में हुआ। उनकी शिक्षा-दीक्षा साधारण ढंग की थी। बचपन से ही उनके जीवन में योगाभ्यास के साम्राज्य में प्रवेश करने के पहले विषय-सुख की सुविधा उपलब्ध थी पर उनका ध्यान उसकी ओर तनिक भी नहीं था। पूर्वाश्रम के सम्बन्ध में पूछने पर वे कहा करते थे कि प्रपञ्च से क्या होगा। उनकी सांसारिक पदार्थों में तनिक भी आस्था नहीं थी। धन-परिवार आदि से वे स्वाभाविक रूप से विरक्त थे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जब वे युवावस्था में प्रवेश कर रहे थे, उन्हें सूचना मिली कि गाँव में एक योगी का आगमन हुआ है। योगी ने श्मशान में अपना निवास चुना था। वे योगी से श्मशान में मिलने गये। उन्होंने बड़ी श्रद्धा से कहा कि महाराज, घर पर मेरा मन नहीं लगता है। संसार के विषय-भोग मुझे काट खाते हैं। मैं योगाभ्यास करना चाहता हूँ।'

योगी नाथ-सम्प्रदाय के थे। उन्होंने गम्भीरनाथ से कहा, 'तुम, गोरखपुर जाकर गोरखनाथमठ के महन्त योगी बाबा गोपालनाथ जी महाराज से योग-दीक्षा लो। मैं तुम्हारी महत्वाकांक्षा से बहुत प्रसन्न हूँ। तुम उच्च कोटि के योगी होगे।'

गम्भीरनाथ योगी के आदेश से गोरखपुर के लिये चल पड़े। वे गोरखनाथ मठ में आये। लोग उन्हें देख कर आश्चर्य चकित हो गये। उनके पास पर्याप्त रूपये थे, उन्होंने अच्छे से अच्छा रेशमी कपड़ा पहन रखा था। वे देखने में बड़े सौम्य और सुंदर थे। महन्त गोपालनाथ से मिलने पर उनके चरणों में उन्होंने आत्मार्पण कर दिया। गोपालनाथ महाराज ने नाथ -सम्प्रदाय के योगमार्ग में दीक्षित कर लिया। राजकीय वेष का परित्याग कर गम्भीरनाथ ने कौपीन धारण कर योगसाधना के निष्कंटक राज्य में प्रवेश किया। गोपालनाथ जी महाराज ने उनकी शान्त मुद्रा से प्रसन्न होकर 'गम्भीरनाथ' नाम प्रदान किया, निस्सन्देह वे गम्भीरता के परम दिव्य सजीव समुद्र ही थे। बाबा गोपालनाथ की महती कृपा-दृष्टि पाकर मठ में निवास कर योगाभ्यास करने लगे। उनकी गुरुनिष्ठा उच्च कोटि की थी। वे गुरु की प्रत्येक आज्ञा का पालन करते थे। उन्होंने बड़ी तत्परता और तप से अपने आध्यात्मिक उत्तरदायित्व का निर्वाह किया। वे मौन रहा करते थे, सत्यचिंतन और मठके आवश्यक कार्यों के समीचीन सम्पादन में लगे रहते थे। बाबा गोपालनाथ ने धीरे-धीरे उनको मठ के उपास्य की पूजा-अर्चा में नियुक्त करना आरंभ किया, गम्भीरनाथ की उपस्थिति से गोरखनाथ मठ में शान्ति साकार हो उठी। उन्हें गुरु ने प्रसन्न होकर पुजारी का कार्य-भार सौंपा। इस प्रकार गम्भीरनाथ के तपोमय साधना-जीवन में कर्मयोग-भक्तियोग के उदय ने ज्ञानयोग—परम अन्तरस्थ ज्योति के दर्शन का पथ प्रशस्त कर दिया। बाबा गोपालनाथ की प्रसन्नता और कृपा से अभिभूत गम्भीरनाथ की प्रारम्भिक योग-साधना पर देवी-पाटन के योगी शिवनाथ का भी अमित प्रभाव था।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गम्भीरनाथ ने योग-साधना के लिये काशी की पैदल यात्रा की। वे वनमार्ग से विना भूख-प्यास की चिंता किये चले जा रहे थे। उनका प्रभु की कृपा पर दृढ़ विश्वास था। तीसरे दिन वे भूख से नितान्त परिश्रान्त हो गये पर शेष शारीरिक शक्ति पर निर्भर होकर वे पुनीत महातीर्थ की ओर बढ़ते जा रहे थे। रास्ते में उनकी एक परिचित ब्राह्मण से भेंट हुई। वह उन्हें देखते सारी स्थित समझ गया। निकटस्थ गाँव से दूध-चूरा लाकर भोजन करने का आग्रह किया, वह जानता था कि गम्भीरनाथ ने भोजन के सम्बन्ध में रास्ते में किसी से कुछ बातचीत न की होगी। गम्भीरनाथ ने भगवत्कृपा समझ कर भोजन कर लिया। काशी पहुँचने पर उन्होंने कुछ दिनों तक गंगा के एक निर्जन तटीय स्थान में रह कर योगाभ्यास आरम्भ किया। वे नित्य गंगा में स्नान कर भगवान विश्वनाथ का दर्शन करने जाया करते थे। भीड़ से बहुत दूर रहते थे, इसलिये भिक्षा माँगने नहीं जाते थे। उनकी त्यागमयी वृत्ति ने साधकों और जिज्ञासुओं को खींच लिया। योगी गम्भीरनाथ ने जन-सम्पर्क को साधना का बहुत बड़ा विघ्न समझा, उन्होंने काशी छोड़ दिया। वे प्रयाग आ गये। प्रयाग में गंगा-यमुना के पुनीत संगम की दिव्यता से सम्प्लावित झूसी तट की एक गुफा में रह कर वे तप करने लगे। दैवयोग से मुकुटनाथ नाम के एक नाथयोगी ने उनके भोजन तथा सेवा आदि की व्यवस्था की। बाबा गम्भीरनाथ अनवरत रात-दिन उस गुफा में योगाभ्यास करने लगे। इस प्रकार वे प्रयाग में तीन साल तक रह गये। उनका आध्यात्मिक स्तर उच्च तल पर पहुँच गया, उन्होंने महती योग-शक्ति प्राप्त की।

साधक को छः अवस्थाओं से निकलना पड़ता है, वे कुटीचक, बहूदक, हंस और परमहंस तुरीयातीत और अवधूत की स्थिति हैं। एक स्थान पर रह कर साधना करने वाले को कुटीचक विशेषण से अलंकृत किया जाता है। बहूदक अनेकों स्थानों में घूम-घूम कर तप और साधना करने वाले की संज्ञा है। हंस, परमहंस, तुरीयातीत और अवधूत की अवस्था में साधक जीवन्मुक्ति सद्ज्ञानप्राप्ति और आत्मसाक्षात्कार से समृद्ध होता है। योगिराज गम्भीरनाथ ने अभी तक कुटीचक-व्रत का अनुष्ठान किया। प्रयाग में तप करने के बाद उन्होंने बहूदक जीवन अपनाया। उन्होंने अकेला फिरने का संकल्प किया, महायोगी गोरखनाथ की उक्ति :—

'ग्यान सरीषा गुरु न मिलिया चित्त सरीषा चेला।
मन सरीखा मेलू न मिलिया तीथै गोरख फिरै अकेला॥'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

—ज्ञान के समान गुरु नहीं मिला, न चित्त के समान चेला मिला, इस-लिए गोरख अकेला फिरते हैं— उनकी स्मृति में जाग उठी। उन्होंने परिव्राजक जीवन में प्रवेश किया। उन्होंने पूरे छः साल तक परिव्राजक जीवन का रसास्वादन किया। वे प्रायः पैदल भ्रमण करते थे। उन्होंने कैलाश, मानसरोवर, अमरनाथ, द्वारका, गंगासागर तथा रामेश्वर आदि तीर्थों को अपनी उपस्थिति से धन्य किया। उन्होंने भगवती नर्मदा की परिक्रमा चार साल में पूरी की और अमर कण्टक पर अधिक समय तक रह गये। नर्मदा-परिक्रमा के समय उनके जीवन में एक विलक्षण घटना घटी थी जो उनकी अपार योगशक्ति और महती तपस्या की परिचायिका है। गम्भीरनाथ नर्मदा की परिक्रमा कर रहे थे। एक तटीय रम्य स्थान में उनका मन लग गया, वहाँ एक कुटी थी। गम्भीरनाथ ने उसी कुटी में निवास किया। पहले दिन उन्हें एक बहुत बड़ा साँप दीख पड़ा। वह उनका दर्शन कर अदृश्य हो गया। दूसरे और तीसरे दिन भी प्रभात काल में गम्भीरनाथ ने उसको देखा, उन्होंने इस ओर कुछ ध्यान न दिया, वे अपने गम्भीर चिंतन में तल्लीन थे। तीसरे दिन कुटी में रहने वाला एक ब्रह्मचारी जो कुछ दिनों के लिये बाहर था, आ गया। वह उस कुटी में बारह साल से निवास करता था। गम्भीरनाथ के आगमन से वह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने आप बीती सुनायी कि मैं इस कुटी में बारह साल से रहता हूँ। इसी के निकट एक बहुत बड़े महात्मा सर्प के वेष में रहते हैं। उन्हीं के दर्शन के लिये मैं ठहरा हूँ। महात्मा गम्भीरनाथ ने सर्प-दर्शन की बात कही; ब्रह्मचारी आश्चर्यचकित हो गया। उसने कहा कि महाराज, आप का तपोबल स्तुत्य है, जिस कार्य को मैं बारह साल में भी न कर सका, वह बिना किसी प्रयास के आप ने कर दिखाया, आप धन्य हैं कि सर्प-वेष में रहने वाले महात्मा ने तीनों दिन आप पर कृपादृष्टि की। गम्भीरनाथ ने नर्मदा-परिक्रमा समाप्त की।

सम्वत् १९३७ वि. में योगी गोपालनाथ ने शिवधाम प्राप्त किया। गम्भीरनाथ ने परिभ्रमण-काल में इस घटना को सुना। वे गुरु के प्रति आदर प्रकट करने के लिये गोरखपुर आये, तत्कालीन महन्त बलभद्रनाथ के विशेष आग्रह पर वे कुछ दिनों तक मठ में रह गये। उसके बाद वे बिहार प्रान्त के गया जनपद के कपिलधारा स्थान में आकर तप करने लगे।

गया की पहाड़ियों में चिरकाल से तपस्वी, योगी और सन्त जन अपना निवास बनाते आये हैं। गयानगर से थोड़ी दूर पर अत्यन्त शान्त, रमणीय और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निर्जन कपिल धारा स्थान में योगी गम्भीरनाथ ने तब तक तप करने का निश्चय किया जब तक अवधूत अवस्था की प्राप्ति न हो जाती। अक्कू नाम के एक व्यक्ति ने उनके चरणों में श्रद्धा समर्पित की और उनके भोजन आदि की व्यवस्था तथा सेवा का सहज अधिकार प्राप्त कर लिया। गम्भीरनाथ के पास कौपीन, एक कम्बल और खर्पर के सिवाय और कुछ भी न था। कुछ दिनों के बाद नृपतिनाथ नाम के एक श्रद्धालु योगसाधक ने अक्कू का कार्य हलका कर दिया। नृपतिनाथ ने योगी गम्भीरनाथ की सेवा में बड़ी तत्परता दिखायी। योगी गम्भीरनाथ की प्रसिद्धि बड़ी तेजी से बढ़ने लगी। वे सदा शान्त चित्त से ध्यानस्थ रहते थे, मौन उनकी वाणी का अलंकार था, संकेत उनके भावों का प्रहरी था, निर्जनतामयी योगसाधना ही उनकी जीवन-संगिनी थी, प्रकृति की कमनीय कान्ति से सम्पन्न कपिलधारा पहाड़ी की दिव्यता उनकी लीला की रंगभूमि थी। रात में दूसरी पहाड़ियों पर तप करने वाले सिद्ध महापुरुष और योगी जन उनका दर्शन करने तथा सत्संग प्राप्त करने आया करते थे। गया के एक धनी पण्डा माधव लाल ने उनके आशीर्वाद से एक गुफा का निर्माण कराया। योगी गम्भीरनाथ उसी गुफा में प्रवेश कर तप करने लगे। दर्शकों और मिलने वालों की भीड़ अपने आप कम होने लगी। गुफा में कोई दूसरा व्यक्ति नहीं प्रवेश कर सकता था। वे केवल एक पाव दूध नित्य लेते रहते थे। प्रत्येक मंगलवार को थोड़ी देर के लिये वे गुफा से बाहर आकर दर्शकों और भक्तों को अपने दर्शन से तृप्त करते थे। तीन वर्ष तक उन्होंने यही क्रम रखा। उसके बाद वे प्रत्येक पूर्णिमा और अमावास्याको गुफा के बाहर आते थे। बारह साल के कठिन योगाभ्यास के बाद उन्होंने इस नियम को भंग कर दिया। उसके बाद वे तीन मास तक गुफा से बाहर न आये। श्रद्धालुओं की विकलता बढ़ने पर उन्होंने दर्शन दिया। इस प्रकार कपिलधारा में उन्होंने अवधूत-अवस्था प्राप्त कर ली। उनकी पवित्र उपस्थिति से उस तपोभूमि में सत्य, शान्ति, अहिंसा और दिव्यता का साम्राज्य स्थापित हो गया।

कपिल धारा आश्रम में एक बार रात को कुछ चोर आये। उन्होंने आश्रम पर पत्थरों के टुकड़े बरसाये। योगिराज एक कम्बल ओढ़ कर कुटी के बाहर लेटे हुए थे। पत्थर के एक टुकड़े से उन्हें थोड़ी-सी चोट आ गयी। योगी नृपतिनाथ तथा दूसरे भक्तों ने चोरों का पीछा करना चाहा। गम्भीरनाथ ने चोरों से कहा कि साधुओं को तंग नहीं करना चाहिये। उन्होंने बड़े प्रेम और मधुरता से कहा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कि कुटी का दरवाजा खुला हुआ है, तुम भीतर जा कर जो कुछ भी आवश्यक समझो, ले लो। उनके आदेश से नृपतिनाथ ने दरवाजा खोल दिया। चोर आश्चर्य चकित हो गये। वे बाबा के चरण पर नत मस्तक हो गये, कहा कि महाराज, हम गरीब हैं, हमारे परिवार वाले कई दिनों से भूखे मर रहे हैं। बाबा ने कहा 'वत्स, मैं तुम्हारी विवशता समझता हूँ। तुम जब चाहो, कुटी से आकर भोजन ले जा सकते हो, तुम्हें कोई न रोकेगा।' चोरों ने अपनी आवश्यकता के अनुसार थोड़ा बहुत सामान ले लिया। बाबा की चरण-धूलि मस्तक पर चढ़ा कर चल पड़े। दूसरी बार आश्रम में आने पर उनके जीवन में बहुत बड़ा परिवर्तन देखा गया। वे चोर नहीं, सत्यवादी हो गये। बाबा गम्भीरनाथ के आशीर्वाद के रूप में उन्होंने चावल, कम्बल आदि सामग्री प्राप्त की। गम्भीरनाथ की करुणा ने उनकी कृतज्ञता को श्रद्धा और भक्ति में रूपान्तरित कर दिया। बाबा प्रेम, माधुर्य, अहिंसा और शान्ति के साकार-सजीव विग्रह थे।

बाबा गम्भीरनाथ सिद्ध महापुरुष थे पर वे सिद्धि और चमत्कारों के प्रयोग से बहुत दूर रहते थे। शान्ति को ही वे बहुत बड़े चमत्कार की वस्तु स्वीकार करते थे।

परिव्राजक-काल में महाराणा उदयपुर तथा महाराजा काश्मीर आदि ने बड़ी चेष्टा की कि योगीराज की चरण-धूलि राजप्रासाद में पड़ जाय पर ऐसा कभी सम्भव नहीं हो सका। बाबा के प्रसिद्ध सेवक माधव लाल पण्डा ने बड़ा प्रयत्न किया कि एक क्षण के लिये भी बाबा मेरे घर चलें पर बाबा गम्भीरनाथ अपने नियम पर अडिग रहे। एक बार उनका निजी सेवक बहुत बीमार पड़ गया। उसका भाई मुन्नी दौड़ता हुआ बाबा के पास आया, आँखों में अश्रु भर कर कहा कि महाराज अक्कू का अन्तिम समय है, उसे जीवन प्रदान कीजिये अथवा चलते समय उसे अपनी चरण-धुलि से आशीर्वाद दीजिये, वह आपके दर्शन के लिये विकल है। करुणासमुद्र परमशान्तिमय बाबा गम्भीरनाथ आसन से उठ बैठे। वे अक्कू के घर आये; शरीर ठन्डा हो रहा था, प्राण निकलने ही वाले थे कि बाबा का दर्शन करते ही अक्कू की चेतना लौट आयी। बाबा ने उसे प्राण दिया, स्वस्थ होने पर वह बाबा की सेवा में संलग्न हो गया। बाबा गम्भीरनाथ की महिमा अकथनीय है। जिस समय कपिलाश्रम में योगिराज गम्भीरनाथ तप कर रहे थे, उसी समय महात्मा विजय कृष्ण गोस्वामी आकाश-गंगा पहाड़ी पर अपने कुछ भक्तों के साथ साधना में तल्लीन थे। वे योगिराज की

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

योग-शक्ति से बहुत प्रभावित थे और उनके चरणों में अडिग श्रद्धा रखते थे। वे कभी-कभी योगिराज का दर्शन करने कपिल धारा आया करते थे और प्रायः आधीरात के समय पधार कर दो-एक घंटे उनके सम्पर्क में रह कर सत्संग और भजन की सात्विकता और मधुरता का आस्वादन करते थे। महात्मा गम्भीरनाथ आधी रात में सितार बजाकर भगवान का भजन गाया करते थे। उनकी संगीत-माधुरी और दिव्य वादन-कलासे हिंसक जीव जन्तु दिव्य प्रेमोन्माद में अहिंसक बन कर उनकी चरण-धूलि से अपने आप को परम तृप्त मानते थे। कभी-कभी कपिल धारा की पहाड़ी की चोटी पर गम्भीरनाथ के सितार और भजन से आकृष्ट होकर आधीरात में प्रेमोन्माद से विह्वल होकर महात्मा विजय कृष्ण गोस्वामी आया करते थे। एक दिन रात की निर्जनता में बाबा गम्भीरनाथ पहाड़ी पर सितार बजाते हुए घूम रहे थे, भगवान के चरणों में हृदय का मधुर संगीत समर्पित कर रहे थे। चारों ओर ज्योत्सना फैली हुई थी। महात्मा विजय कृष्ण गोस्वामी ने शिष्यों से कहा, 'अहा, कितना मधुर संगीत बाबा गम्भीरनाथ अपने आराध्य देव के चरणों में अर्पित कर रहे हैं। बाबा, साक्षात् प्रेमरूप हैं, ऐसे योगी का दर्शन भारत वर्ष में, इस समय दुर्लभ है। बाबा में सृष्टि स्थिति, प्रलय की शक्ति है। वे क्षणमात्र में संसार का सृजन और संहार कर सकते हैं। उन्होंने प्रेम का माधुर्य इस तपोभूमि के कण-कण में भर दिया है।'

सम्वत् १९५० वि. में वे कपिलधारा आश्रम से प्रयाग कुम्भ मेला में पधारे हुए थे। उनकी गम्भीर मुद्रा और शान्ति तथा तप-माधुरी ने दर्शकों का मन सहज में ही मुग्ध कर लिया। प्रत्येक समय उनके निवास-स्थान पर सन्तों और साधुओं की भीड़ लगी रहती थी। अपने शिष्यों के साथ महात्मा विजय कृष्ण उनका दर्शन करने आये थे। महात्मा विजय कृष्ण के शिष्य मनोरञ्जन ठाकुर ने कुम्भ की एक घटना का वर्णन किया है जिससे बाबा की तपस्या और शान्तिमयी त्याग-वृत्ति का पता चलता है। एक धनी-व्यक्ति ने योगिराज के हाथ से सौ कम्बलों का वितरण कराना चाहा। बाबा उस समय गम्भीर चिंतन में थे। थोड़ी देर के बाद उन्होंने आँख खोली, अपने सामने कम्बलों का ढेर देखा। उन्होंने हाथ से वितरण का संकेत किया और क्षण मात्र में सारे दीन-दुखियों, असहायों में वितरित कर दिये। कुम्भ से लोगों के विशेष आग्रह पर वे गोरखनाथ मठ के अध्यक्ष का उत्तरदायित्व स्वीकार कर गोरखपुर आये और जीवन के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्तिम क्षण तक उन्होंने अपना कार्य बड़ी सात्विकता और पवित्रता से सम्पादित किया। नाथ-सम्प्रदाय के तत्कालीन सर्वश्रेष्ठ योगी के रूप में उनकी ख्याति चारों ओर फैल गयी। वे जीवन्मुक्त अवस्था में पहुँच गये थे। साधु मण्डली में सिद्ध पुरुष के रूप में विख्यात थे। गोरखनाथ मठ में आगमन के बाद लोग उन्हें 'बूढ़ा महाराज' के विशेषण से समलंकृत कर उनके प्रति श्रद्धा और आदर प्रकट करते थे। उनके आगमन से ऐसा लगता था कि मानो गोरखनाथ की तपोभूमि में हठ, लय और राजयोग ने ही त्रिमूर्ति शिव के रूप में प्रवेश किया हो।

गोरखपुर में गोरखनाथ-मठ-निवास-काल में एक बार उन्होंने अद्भुत यौगिक चमत्कार दिखाया था। एक धनी परिवार की विधवा का एकलौता पुत्र लन्दन में बारिस्टरी का प्रमाणपत्र प्राप्त करने गया था। चार-माह तक उसके सम्बन्ध में माता को कोई समाचार नहीं मिला था। वह योगिराज गम्भीर नाथ के पास आयी। उस समय उनके पास स्थानीय राजविद्यालय के प्रधानाध्यापक रायसाहब अघोरनाथ अपने सहकर्मी अटल बिहारी गुप्त के साथ बठे हुए थे। विधवा ने निवेदन किया कि महाराज मेरा पुत्र लन्दन में है। उसके मित्र का तार आया है कि वह वहाँ नहीं है। हम लोगों की आँख का तारा है। आप विदेश में उसकी रक्षा कीजिये। महाराज ने कहा कि मैं तो एक साधारण-सा मनुष्य हूँ। मैं इस सम्बन्ध में क्या कर सकता हूँ। महिला उनके चरणों पर सिर रख कर फूट-फूट कर रोने लगी। उसकी ममता ने योगिराज के हृदय को द्रवित कर दिया। वे तो असम्भव को सम्भव और सम्भव को असम्भव करने वाले थे। बड़ी शान्ति के साथ वे एक कोठरी में चले गये। उन्होंने दरवाजा बन्द कर लिया। बुधवार था। आधे घंटे के बाद वे बाहर आये। लोगों ने देखा कि वे किसी गहरे चिंतन में थे। उन्होंने विधवा से कहा कि तुम्हारा लड़का स्वस्थ और सुरक्षित है।...वह सोमवार को पहुँच जायेगा।.....अगले बुधवार को एक नवजवान रायसाहब अघोर नाथ की कोठी पर उनको प्रणाम करने गया। दैवयोग से अटल बिहारी गुप्त उपस्थित थे। राय साहब ने कहा कि ये महाशय विधवा महोदया के पुत्र हैं जो पिछले बुधवार को योगिराज के पास गयी थी। विधवा का पुत्र यह नहीं समझ सका कि किस विषय में बात हो रही है। रायसाहब नवजवान को साथ लेकर बाबा का दर्शन करने गये। अटल बिहारी गुप्त भी साथ थे। नवजवान ने बाबा के चरण पर सिर रख कर प्रणाम किया। देखते ही आश्चर्य चकित हो गया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'आप कब आये' उसने बाबा को देखते ही तत्क्षण प्रश्न किया।

'तो क्या तुम बाबा को जानते हो,' राय साहब अघोरनाथ ने बारिस्टर से पूछा, वह उनका विद्यार्थी था।

नवजवान ने बाबा से कहा कि मैं बम्बई में उतरते ही इम्पीरियल मेल में सवार हुआ पर गाड़ी में आप को नहीं देखा। उसने राय साहब से कहा कि हमारे जहाज को बम्बई पहुँचने में एक दिनशेष रह गया था। मेरे कैबिन के सामने बाबा जी खड़े थे। भारतीय साधु को देख कर बातचीत करने की उत्सुकता हुई। मैंने अपने कैबिन के बाहर आकर बाबा से पाँच मिनट तक बात की। उसके बाद बाबा चले गये। न तो फिर मैंने उनको स्टीमर में देखा और न वे रेल गाड़ी में ही दीख पड़े। अटल बिहारी गुप्त के समय पूछने पर उसने कहा कि पिछले बुधवार की शाम की बात है। समय ठीक वही था जब बाबा ने आध घंटे के लिये कोठरी का दरवाजा बन्द कर लिया था। योगिराज बड़ी शान्ति से उसकी बातें सुन रहे थे। नवजवान को अपनी माता के बाबा से मिल कर समाचार पूछने का तनिक भी पता नहीं था और न वह यही जानता था कि अटल बिहारी और राय साहब के सामने कितनी महत्वपूर्ण घटना घट चुकी है। इस घटना का विवरण अटल बिहारी गुप्त महोदय ने अपनी बंगला पुस्तक 'मृत्यु और पुनर्जन्म के बाद' में विस्तार से दिया है। बाबा गम्भीरनाथ की साधना, न जानें, कितने यौगिक चमत्कारों से भरी पड़ी है।

सम्वत् १९७३ वि. की बात है। गोरखनाथ-मठ में एक बार वे अपने शिष्यों और भक्तों के साथ बात कर रहे थे। उस समय प्रथम महायुद्ध चल रहा था। एक भक्त ने बाबा से पूछा कि महाराज, यह युद्ध कब समाप्त होगा। बाबा ने गम्भीरता पूर्वक उतर दिया कि युद्ध दो एक साल में समाप्त हो जायेगा पर थोड़े समय के बाद एक विश्वव्यापी महायुद्ध का आरम्भ होगा जिसमें विश्व के सारे राष्ट्र किसीन-किसी रूप में भाग लेंगे। इस युद्ध का जगत की गति विधि पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ेगा। एक भक्त ने साहसपूर्वक पूछा कि भारत का क्या होगा।

बाबा गम्भीरनाथ ने कहा 'हिन्दुस्थान का भला ही होगा, अच्छा ही होगा!'

योगिराज की दोनो बातें सत्य हुईं। वे वाक्सिद्ध महायोगी थे। कथनी और करनी—दोनों में सर्वसमर्थ थे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

योगिराज परम कृपालु और उदार थे। एक बार वे गम्भीर चिन्तन की मुद्रा में गोरखनाथ मठ के ठीक सामने एक चौतरे पर बैठे हुए थे। उनके पास एक बंगाली शिक्षित शिष्य भी थे। थोड़ी देर में एक रूपवती महिला जो कीमती परिधान में थी, गाड़ी से उतर कर मन्दिर में गयी। भीतर जाकर उसने देवता के पदपद्म में श्रद्धा समर्पित की—प्रणाम किया। समाधि का दर्शन कर वह बाबा के पास आयी, उसने उनकी चरण-धूलि मस्तक पर चढ़ायी और गाड़ी में बठ कर चली गयी। देखने में वह बड़ी शिक्षित और सभ्य थी पर योगिराज के शिष्य को ऐसा लगा कि वह वेश्या है। वह यह देख कर आश्चर्यचकित हो गया कि समाधि-मन्दिर में एक वेश्या ने किस तरह प्रवेश किया। महाराज गम्भीरनाथने शिष्य के मन की बात समझ ली और बड़ी करुणा और मधुरता से पूर्ण वाणी में कहा कि हिन्दू होने के नाते उसे भी मन्दिर में जाकर देवता का दर्शन करने का पूरा-पूरा अधिकार है। वह देवता की पूजा कर सकती है। सन्त की दृष्टि में पापी और पुण्यात्मा में भेद नहीं रह जाता है, वे तो केवल कृपा करना जानते हैं, सब के साथ भागवत नियम का पालन करते हैं।.. वे योग-मानव थे। उन्होंने अनुभव कर लिया कि 'यही मन शिव है, यही मन शक्ति और पाँच तत्वों से निर्मित जीव है। शिव, शक्ति और जीव सब-के-सब एकाकार हैं। माया के संयोग से ही ब्रह्म मन के रूप में अभिव्यक्त होता है। मन से ही पंचभूतात्मक शरीर की सृष्टि होती है, मन को उन्मनावस्था में लीन करने से साधक सर्वज्ञ हो जाता है।' बाबा गम्भीरनाथ योग-रहस्य के सर्वमान्य मर्मज्ञ थे। बाबा गम्भीर-नाथ ने आदिनाथ —शिव द्वारा प्रवर्तित गोरखनाथ द्वारा प्रतिपादित योग की साधना की। माया के बन्धन से पूर्ण मुक्त सिद्ध पुरुष थे। गोरखनाथ ने अपनी साधना के सम्बन्ध में एक स्थल पर कहा है :—

'बाहरि न भीतरि, नेड़ा न दूर,
खोजत रहे ब्रह्मा अरु सूर।
सेत फटिक मनि हीरैं बीधा,
इहि परमारथ गोरख सीधा।'

परब्रह्म आत्मतत्व न बाहर है, न भीतर है; न निकट है, न दूर है। ब्रह्मा और सूर्य उसे खोजते ही रह गये पर उसका रहस्य न पा सके। श्वेत स्फटिक मणि को हीरे ने बेध लिया। ब्रह्म साक्षात्कार कर लिया, इसी परमार्थ के लिये गोरखनाथ ने साधना सिद्ध की। उनकी परम्परा पर चलने वाले

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

योगिराज गम्भीरनाथ ने इसी परमार्थ–योगतत्व के लिये सिद्धि के राज्य में आधिपत्य प्राप्त किया। उन्होंने नाथयोग के सिद्धान्त के अनुसार शिव और शक्ति की एकात्मकता का योगमाध्यम से अनुभव किया। वे अपने आप को सदा गोरखनाथ का अनुयायी बताया करते थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि महायोगी गोरखनाथ भगवान शिव के अवतार थे– अभिव्यक्त रूप थे। उनका योगाभ्यास गोरखनाथ की योगप्रक्रिया के आधारभूत था। योगिराज गम्भीरनाथ ने सदा कान में कुण्डल और वक्ष पर नाद धारण किया। उन्होंने योग के स्तर पर स्थित होकर दिव्य सत्य का साक्षात्कार किया। वैराग्य उनकी योग साधना का प्राण था। नाम-जप में उनकी बड़ी निष्ठा थी। महात्मा विजय कृष्ण गोस्वामी की उक्ति है कि मुझे भगवन्नाम-निष्ठा बाबा गम्भीरनाथ की कृपा से प्राप्त हुई। ज्ञान, शक्ति और ऐश्वर्य पर योगिराज गम्भीरनाथ का पूर्ण अधिकार था। वे ज्ञानी हठयोगी थे। योगिराज की श्रीमद्भगवद्गीता में अपूर्व श्रद्धा थी। वे मायातीत, त्रिगुणातीत और युक्तयोगी थे। वे सत्यान्वेषक थे। वे राम-लीला, कीर्तन, भजन आदि के लिये विशेष अवसरों पर अपने भक्तों और शिष्यों को प्रोत्साहित किया करते थे। गीता के सम्बन्ध में उनकी उक्ति थी कि यह सब युग के लिये सत्य ग्रन्थ है। सत्य के अन्वेषकों के लिये एक गीता ही बहुत है। यह सार्वजनिक तथा सनातन शास्त्र है। .... भगवच्चिंतन के विषय में उनकी उक्ति थी कि अहंता और ममता का परित्याग कर ईश्वर के चरणों पर समर्पित हो जाना चाहिये। वे योगक्षेम का वहन करते ही हैं। उनसे केवल सत्य और प्रेम की ही माँग करनी चाहिये। वे भगवन्नाम-साधना पर बड़ा जोर देते थे। 'भगवान के नाम से सब कुछ हो जायेगा।' यह उनकी घोषणा थी। कहा करते थे कि 'रूप बहुत है, स्वरूप एक ही है, सब परमात्मा स्वरूप है।' योगिराज कहा करते थे कि मुक्ति-प्राप्ति के लिये साधना और अधिकार की बड़ी आवश्यकता होती है। शिष्य के सद्प्रयत्न से ही यह सम्भव है। गुरु साधना और सिद्धि घोट कर पिला थोड़े ही देंगे।

सनातन धर्म के अनुरूप आचरण बनाने को वे बहुत महत्वपूर्ण मानते थे। उनकी उक्ति है कि सनातन धर्म शाश्वत, विश्वव्यापी, अपौरुषेय और आदिसत्य से परिव्याप्त है। जब कोई व्यक्ति उनसे उपदेश देने की प्रार्थना किया करता था तब वे बड़ी विनम्रता से कहा करते थे कि मैं वास्तव में कुछ भी नहीं जानता हूँ, मेरे पास कोई उपदेश नहीं है, मैं क्या शिक्षा दे सकता हूँ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विक्रमीय बीसवीं शताब्दी के सन्तसाहित्य में योग-सिद्धि के क्षेत्र में उनका महत्व असाधारण है। उन्होंने नाथ सम्प्रदाय के योग-सिद्धान्त का फिर से प्राकट्य किया। उनकी भगवन्नाम-साधना निर्गुण-सगुण वादी नाम-चिंतन परम्परा नहीं – योगसिद्धान्त-प्रतिपादित थी। उन्होंने योग के प्रकाश में सत्य और भगवन्नाम का साक्षात्कार किया, भारतीय सन्त साहित्य की प्रगति में यह उनकी ऐतिहासिक मौलिकता है। समस्त जगत के कार्यों को वे ईश्वर की लीला समझते थे। उनकी घोषणा है कि 'विचार ही तपस्या है।' वे बार-बार अहंकार के नाश की शिक्षा दिया करते थे, अपने भक्तों और शिष्यों को सावधान करते थे–"'मैं' नहीं रखना।" वे समाधि-योगी थे।

बाबा गम्भीरनाथ सदा ज्ञान में योगस्थ रहते थे। सत्य तत्व का चिंतन किया करते थे। वे सद्गुरु थे। उनकी उक्ति है कि जो शिष्य को बन्धन से मुक्त कर देते हैं वे ही सद्गुरु हैं।

जीवन के अन्तिम दिनों में उन्हें मोतियाबन्द का रोग हो गया था। वे उसे ठीक कराने के लिये कलकत्ता गये हुए थे। डाक्टर मानरड ने उस रोग को ठीक कर दिया। बाबा को देख कर मानरड ने कहा 'अरे, ये तो साक्षात् ईसा की ही तरह दीख पड़ते हैं।'

योगिराज ने गोरखपुर में सम्वत् १९७५ वि. की चैत कृष्ण त्रयोदशी को सवा नव बजे प्रातःकाल परम धाम की यात्रा की। गोरखनाथ मन्दिर के निकट ही उनका समाधि-मन्दिर है जो शाश्वत सत्य और शान्ति का दिव्य प्रतीक है, उसमें उनकी प्रतिमा प्रतिष्ठित है। नित्य नियम पूर्वक प्रतिमा की पूजा-आरती होती है। शिष्यों को वे कभी-कभी स्वप्न में दर्शन देकर उनका पथ-प्रदर्शन करते रहते हैं। योगिराज गम्भीरनाथ योग, ज्ञान, तपस्या और भक्ति के चिन्मय प्रतीक थे।

रचना

उनकी मौन योग-साधना और शांतिमय उपदेश ही अमर कृति के रूप में प्राप्त हैं।

वाणी

विश्वास रखना, विचार करना, सब तरफ अच्छा ही होगा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सद्गुरु वह है जो अपने आप में आत्मानुभूति प्राप्त कर लेता है और दूसरों को आत्मनिष्ठा से सम्पन्न करता है।

देव स्वरूप में भेद-दृष्टि नहीं रखनी चाहिये, रूप और नाम से वे भिन्न हैं पर उनमें एक ही तत्व का अधिवास है। विभिन्न धर्म-सम्प्रदायों द्वारा विभिन्न प्रकार से एक ही परमात्म तत्व की उपासना और विचार को कार्यान्वित किया जाता है।

भूत के चिन्तन और भविष्य की चिन्ता से दूर रहना चाहिये। अपने वर्तमान कर्तव्य का सत्यता से पालन करना ही श्रेयस्कर है और विश्वास, धैर्य और आशा के प्रकाश में आगे बढ़ते रहना चाहिये। स्मरण रहे कि ईश्वर अच्छी तरह जानते हैं कि तुम्हारा मंगल किस बात में है और वे उसी का विधान करते हैं।

सदा सत्य बोलना चाहिये। छल-प्रपंच से दूर रहना चाहिये। 'अहं' में नहीं चिपकना चाहिये। दूसरों को कभी बुरा-भला नहीं कहना चाहिये। समस्त धर्मों और मत-मतान्तर का आदर करना चाहिये। भिखारियों, दीन-दुखियों और असहायों को बड़े प्रेम से भिक्षा देनी चाहिये और विचार करना चाहिये कि इस प्रकार हम ईश्वर की पूजा कर रहे हैं।

विश्वास की शक्ति से असम्भव भी सम्भव होता है। ... रूप बहुत हैं, स्वरूप एक ही है। सब ही परमात्मा-स्वरूप हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महात्मा रामलिंगम

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन् महती विनष्टिः।
भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति॥

इस जीवन में यदि परब्रह्म को जान लिया, तब तो कुशल है, नहीं तो महान् विनाश है। बुद्धिमान पुरुष प्रत्येक प्राणी में परब्रह्म को विचार कर इस लोक से प्रयाण कर अमरत्व प्राप्त करते हैं।

—केन उपनिषद् २।५

महात्मा रामलिंगम ब्रह्ममयोगी थे, निर्गुण सगुण भगवदीय तत्व की समन्वयभूमि पर उन्होंने परमात्मा की— परम शिव की उपासना की, भक्ति की। उन्होंने अपने आप में आत्मा में परमानन्दमयी सनातन चिन्मय भागवती ज्योति की अनुभूति की; उन्होंने अपने श्वास-श्वास में, प्राण के स्वर-स्वर में अक्षर ब्रह्म का ही चिंतन किया। जिस समय दक्षिणेश्वर के शक्ति-मन्दिर में रामकृष्ण परमहंस भक्ति की भागीरथी प्रवाहित कर रहे थे, वृन्दावन में महात्मा ललित किशोरी जी प्रेम की कालिन्दी के तट पर लीलापति नन्दनन्दन की रूप-माधुरी का आस्वादन कर रहे थे, उसी समय दक्षिण भारत में योगी रामलिंगम परम शिव की ज्ञान-सरस्वती के विमल तट पर अमरता का आवाहन कर रहे थे। यही उनके चरित्र की ऐतिहासिकता है। महात्मा रामलिंगम भागवती कृपा के काव्यकार थे, वे दिव्य संगीत के स्रष्टा थे। उनकी वाणी में परमात्मा के स्तवन के रूप में साक्षात् सामवेद उतर आया। उन्होंने प्राणी मात्र को सावधान किया कि केवल अपना ही नहीं, समस्त लोक का हितचिंतन करना चाहिये, समष्टि के सुख में ही व्यष्टि का कल्याण समस्थित है।

दक्षिण भारत में चिदम्बरम् एक इतिहास प्रसिद्ध स्थान है, वह तीर्थक्षेत्र है। उसमें भगवान नटराज का प्रसिद्ध मन्दिर अवस्थित है। चिदम्बरम् के निकट मरुदरूर नामक स्थान में विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दी के चौथे चरण में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एक शिवभक्त परिवार रहता था। उसमें रामय्य पिल्ले और उनकी पत्नी चिन्न-मल शिव के बड़े भक्त थे। रामय्य पिल्ले का हृदय परम निर्मल था, वे तपोमय जीवन बिताते थे। उनका अधिकांश समय भगवच्चिंतन में ही लगता था। घरपर साधु-सन्तों के आगमन से वे और उनकी पत्नी-दोनों प्रसन्नता का अनुभव करते थे। एक दिन दोपहर के समय एक योगी का आगमन हुआ, योगीने चिन्नमल को खाने के लिये भभूत देकर आशीर्वाद प्रदान किया कि तुम पुत्रवती होगी। योगी की कृपा से रामय्य पिल्ले दम्पति ने सम्वत् १८८० वि. में एक पुत्र की प्राप्ति की। इस प्रकार रामलिंगम ने जन्म लिया। जब वे छः माह के थे, उनके पिता ने शिवलोक की यात्रा की। रामलिंगम का पालन-पोषण उनके बड़े भाई सभापति ने किया। पिता की मृत्यु के बाद सभापति मरुदरूर से मद्रास चले आये। नवसाल की अवस्था से ही रामलिंगम में वैराग्य का उदय होने लगा, वे संसार के नश्वर स्वरूप पर विचार करने लगे। उनका मन भगवान सुब्रह्मण्य में अनुरक्त हो गया। उन्होंने नव वर्ष की ही अवस्था में एक स्तोत्र रच कर अपने आराध्य के चरण में समर्पित किया। उन्होंने भगवान सन्मुखम् से निवेदन किया कि मैं आप के उन भक्तों का संग चाहता हूँ जिनकी आप के ही चरण में भक्ति है। रामलिंगम की प्रवृत्ति से सारे घर में आध्यात्मिक ज्योति फैल गयी, कण-कण में भक्तिमयी कविता का स्फुरण होने लगा।

विद्यालय में पढ़ने-लिखने में उनका मन बहुत कम लगता था। एक बार माता ने उनको बहुत समझाया। उन्होंने माता को पढ़ने का वचन दिया और एक दर्पण लेकर घर के कोठे पर चले गये। एक कमरे में एकान्त भाव से दर्पण के सामने बैठ कर स्तोत्रों और गीतों से अपने हृदयदेवता सन्मुखम् को रिझाने लगे। लोगों ने समझा कि वे अध्ययन कर रहे हैं। इस प्रकार अल्पावस्था में ही उनकी साधना का श्रीगणेश हुआ। धीरे-धीरे वे सन्तों के सम्पर्क में आने लगे। उनसे वेदान्त ज्ञान और ब्रह्म के सम्बन्ध में विचार करने लगे। वे मद्रास से तिरुवोर्र्जूर के मन्दिर में कभी-कभी भगवान शिव के दर्शन के लिये आया करते थे। वे मन्दिर में अपने मधुर काव्य की धारा बहाते रहते थे। इस समय उनकी आयु केवल सोलह साल की थी। एक दिन किसी विशेष उत्सव के अवसर पर मन्दिर में भगवान शिव की परिक्रमा कर रहे थे। उन्होंने अपने सामने एक अद्भुत योगी देखा, वे योगी के पैरों पर गिर पड़े। योगी ने उनको आश्वासन दिया कि मैं सदा तुम्हारे साथ हूँ। तुम भयभीत मत हो, अपने मधुर गीतों से तुम

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सदा मेरी पूजा करोगे। योगी ने रामलिंगमकी आँख में आँख मिला कर देखा और मन्त्र दीक्षा दी। बात-की-बात में योगी के अन्तर्धान हो जाने पर रामलिंगम को पूरा विश्वास हो गया कि साक्षात् तिरुवोर्रुजूर के अधिपति महादेव ने मुझको अपने दर्शन से कृतार्थ किया है। उनके रोम-रोम सिहर उठे। उन्होंने आत्मनिवेदनकी भाषा में कहा कि हे देव, मैं पूर्ण रूप से आप के शरणागत हूँ। आप मेरी रक्षा कीजिये, अपनी कृपा और भक्ति का दान दीजिये। वे नित्य नये-नये पद रच कर समर्पित करने लगे तथा दक्षिण भारत के प्रसिद्ध शैव सन्त माणिक वाशहर के ग्रन्थ तिरुवाचक का पाठ करते थे। इस प्रकार उनकी भक्ति नित्य प्रति बढ़ने लगी, लोग उनकी प्रसिद्धि से आकृष्ट होकर उनके अनुयायी बनने में गौरव समझने लगे।

एक दिन विचित्र घटना हुई। उन्हें आधीरात को बड़ी भूख लगी। वे भगवच्चिंतन में इतने तन्मय हो गये थे कि उन्हें भूख की सुधि ही न रह गयी। मन्दिर के पुजारी के वेष में साक्षात् भगवान ने दर्शन देकर उनको कृतार्थ किया—ऐसा उन्होंने अपनी एक रचना में कहा है। एक महात्मा के रूप में उनकी प्रसिद्धि बढ़ गयी।

माता, बहिन और भाई ने विवाह कर गृहस्थाश्रम स्वीकार करने के लिये बहुत आग्रह किया। उन्होंने माता की प्रसन्नता के लिये विवाह कर लिया तथा गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया। मा का देहान्त होने पर मद्रास से चिदम्बरम् चले आये। रास्ते में पांडीचेरी में भी उन्होंने बड़े-बड़े विद्वानों से भेंट की। उन्होंने चिदम्बरम् के अधिपति से कहा कि हे परमेश्वर, आप ने कृपापूर्वक मुझको आध्यात्मिकता की पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया है। मुझे पूर्ण तथा परम निर्मल ब्रह्म-ज्ञान प्रदान कीजिये। उन्होंने अन्य प्रसिद्ध मन्दिरों में जाकर अपने आराध्य देव का दर्शन किया। इस प्रकार उनकी प्रभु में अनन्यता बढ़ गयी। वे उन्हें छोड़ कर किसी दूसरे के सामने हाथ पसारना बहुत बड़ा पाप मानते थे। एक बार उनके एक सम्बन्धी ने उनके द्वारा अपने हित की बात पहुँचानी चाही, सम्बन्धी ने सोचा कि रामलिंगम के कहने से अमुक धनी व्यक्ति द्वारा मेरा काम अवश्य बन जायेगा। रामलिंगम ने निस्संकोच कहा कि मैं प्रभु को छोड़ कर किसी भी वस्तु के लिये दूसरे के सामने हाथ नहीं पसार सकता। यदि मेरे शरीर के टुकड़े-टुकड़े होने की भी सम्भावना उठ खड़ी होगी तो भी मैं किसी दूसरे की शरण में नहीं जा सकता। मेरे प्रभु सर्वसमर्थ हैं, सारे संसार के सृजन, पालन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और संहार के मूलाधार हैं। महात्मा रामलिंगम अपनी जन्मभूमि के निकट ही करनकुजी स्थान में रहने लगे। यहीं उनके भाई की मृत्यु हो गयी। इसी स्थान पर महात्मा रामलिंगम ने पानी से दीप जलाया था। बड़े-बड़े विद्वान इस घटना से उनके चरणों पर नत हो गये। उनके साधनामय जीवन का यह व्रत हो गया कि मैं समस्त संसार और प्राणीमात्र का हित करूँगा। उनकी भावुकता ने भक्ति का रूप धारण कर लिया। उन्होंने भगवान से निवेदन किया कि क्या मैं आप को भूल सकता हूँ। जिस क्षण मैं आप को भूल जाऊँगा उसी समय मेरे प्राण उड़ जायेंगे... क्या आप मुझे भूल जायेंगे? हे देव, तब मैं क्या करूँगा, कहाँ जाऊँगा मैं किससे बात करूँगा। हे भगवान, आप मुझ पर मेरी माता से भी अधिक कृपालु हैं, यदि आप भूल भी जायेंगे तो आप की विश्वव्यापी कृपा मुझे कभी नहीं भूलेगी। इसी विश्वास के बल पर मैं प्रसन्नता और सुख का अनुभव करता हूँ; मुझे आप मत भूलिये, मुझे आप अपनी दिव्य ज्योति–कृपा से कृतार्थ कीजिये, इसके लिये यही समय ठीक है।

एक दिन मेलकुपम कुटी में उन पर दिव्य ज्योति का अवतरण हुआ। इस घटना के स्मृतिरूप में एक दीप उस समय से जलता आ रहा है। उन्होंने पन्द्रह सौ छन्दों में दिव्य ज्योति–भागवती कृपा का अरुलपा के रूप में गान किया। अरुलपा उनकी अमर कृति है।

उनसे आध्यात्मिक ज्योति प्राप्त करने के लिये साधकों की संख्या तेजी से बढ़ने लगी। उनके उपदेशों पर वेदान्त का प्रत्यक्ष प्रभाव था। उन्होंने लोगों को दिनरात भगवान की उपासना में निमग्न रहने की सीख दी– भगवान की निरन्तर उपासना करना ही उनका सिद्धान्त था।.... उन्होंने लोगों से कहा कि समस्त सम्बन्धों का परित्याग कर केवल परमात्मा का भजन कीजिये। भगवान के पवित्र चरणों का ही सदा चिंतन कीजिये–अमरता का यही प्रशस्त पथ है।

उन्होंने अपने आध्यात्मिक कार्य को स्थायी रूप प्रदान किया। उन्होंने करनकुजी के निकट ही वदलूर नामक स्थान को अपना कार्यक्षेत्र चुना। उन्होंने उसका नाम उत्तर ज्ञान चिदम्बर रखा; समरस संघ की स्थापना की और दीन-दुखियों तथा असहायों को भोजन देने के लिये सत्यधर्मशाला बनवायी। एक भजनाश्रम का भी निर्माण कराया गया। उसमें सत्य-ज्योति–अरुल पेरूम ज्योति की पूजा होती है। उन्होंने व्यर्थ के वाद विवाद का परित्याग कर साधना-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मय जीवन बिताने की लोगों को प्रेरणा दी। उन्होंने कहा कि मैं सच कहता हूँ कि ऐसा करने से आप को परम पवित्र दिव्य ज्योति मिलेगी, दिव्य प्रेम प्राप्त होगा। भगवान पूर्णरूप से प्रेमस्वरूप हैं। उन्होंने भक्ति के माध्यम से भगवान से कहा कि हे देव, आप एक तथा अनेक रूप में व्याप्त हैं। आप की दिव्यता के पर्वत पर अमृत का स्त्रोत बहता रहता है, मैं इस पृथ्वी पर उसका आस्वादन करना चाहता हूँ। हे विराट् रूप वाले परमेश्वर; आप चिन्मय ज्ञान स्वरूप हैं, दरवाजा खोलिये। उन्होंने साधना के स्तर पर बताया कि शुद्ध सन्मार्ग–पवित्र आध्यात्मिक पथ वेदान्त, योगान्त, नादान्त, कालान्त से परे है। यह शाश्वत ज्योति का अविनश्वर–चिरन्तन पथ है।

दक्षिण भारत के ही नहीं–सम्पूर्ण भारत के सन्त साहित्य में उनको गौरव-पूर्ण स्थान प्राप्त है। उन्होंने सन्तविचार-धारा को समरस सन्मार्ग से समलंकृत किया; समरस सन्मार्ग सन्तमत की सनातन परम्परा है पर इसमें महात्मा राम लिंगम ने अपनी मौलिकता की छाप लगा दी। उन्होंने सहनशीलता और सदाचार को प्रधानता दी। उनके दिव्य काव्य में सत्य के शिव और सौन्दर्यरूप का दर्शन होता है – माधुर्य और भक्तिरस उनके काव्य के प्राणवान अंग हैं। उनकी रचना 'अरुलपा' उच्च विचारों की अक्षय निधि है, प्राणीमात्र के प्रति प्रेम का पवित्र साहित्य-प्रतीक है, इसमें भगवान की कृपा का अक्षर-अक्षर में दर्शन होता है।

महात्मा रामलिंगम संसार में रह कर भी जल में कमल के समान थे। जीवन के अन्तिम चरण में उन्होंने कड़ी-से-कड़ी तपस्या अपनायी। वे अधिकांश समय व्रत और उपवास में बिताते थे। सरलता, विनम्रता और सदाचारण की चिन्मय भूमि पर उन्होंने अपनी तपोसिद्धि की सत्यता चरितार्थ की। उनकी करनी-कथनी में अद्भुत समरसता थी। केवल दो वस्त्रों से शरीर ढकते थे; उनकी त्यागवृत्ति उच्च कोटि की थी। किसी ने उनको कभी विश्राम करते या सोते नहीं देखा। वे सावधान करते रहते थे कि मेरी पूजा मत कीजिये, परम पिता परमात्मा ही उपास्य हैं, आत्मा में उनकी अनुभूति कीजिये। आध्यात्मिकता की समभूमि पर चलते रहना ही सन्मार्ग है।

अन्तिम दिनों में वे एक झोपड़ी में रहा करते थे। दो साल पहले ही उन्होंने बतला दिया था कि मैं चौवन साल की अवस्था में इस शरीर से अदृश्य हो जाऊँगा। वे बहुधा मौन ही रहते थे। अन्तिम समय उपस्थित होने पर शिष्यों ने उनको आराम से सुला दिया। वे कहने लगे 'मैं कुछ समय के लिये अदृश्य हो रहा हूँ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यह शरीर जलाने अथवा समाधि के लिये नहीं मिल सकेगा। मैं शुद्ध निर्विकल्प समाधि में हूँ। मैं सिद्ध की तरह परिभ्रमण करूँगा, केवल भारत ही नहीं पाश्चात्य देशों में मुझे कार्य करने के लिये जाना पड़ेगा। मैं दिव्य शरीर धारण कर लौट आऊँगा। खिड़की और दरवाजे चारों ओर से बन्द कर दीजिये।' उनकी आज्ञा के अनुसार दरवाजे बन्द कर दिये गये, उनमें ताले लगा दिये गये। लोग बाहर खड़े होकर दरवाजों की ओर सावधानी से देख रहे थे। दरवाजों के खुलने पर कुटी में शून्य के सिवा और कुछ भी न दीख पड़ा। इस प्रकार सम्वत् १९३३ वि. के मकर मास की उन्नीसवीं तिथि को वे शरीर सहित अन्तर्धान हो गये। वे सिद्ध पुरुष थे। क्षण मात्र में लोगों का मन अध्यात्म की ओर आकृष्ट कर लेने की उनमें अद्भुत शक्ति थी। वे प्रायः अपने शिष्यों की दृष्टि से ओझल होकर कई दिनों तक अदृश्य रहा करते थे। उनमें हठयोग और राजयोग का समीचीन समन्वय था। मानवता के आध्यात्मिक उत्थान में उन्होंने जो योग दिया वह निस्सन्देह चिरस्मरणीय है। वे महात्मा, योगी, सन्त सब कुछ थे।

रचना

महात्मा रामलिंगम की प्रसिद्ध रचना 'अरुलपा' है जिसमें उन्होंने अगणित पदों में भगवान की कृपामयी ज्योति की महिमा गायी है।

वाणी

आभूषण पहनने के लिये नाक और कान छेदने वालो, यदि शरीर में इन छेदों की आवश्यकता होती तो ईश्वर ने आप को ऐसा ही बनाया होता। सोचिये, सोचिये।

जीव मात्र के प्रति दया—जीवकारुण्य से आप भगवत्कृपा प्राप्त करते हैं।

ईश्वरीय विधान-आत्म नियम का अनुसरण कीजिये, अपने मन को सदा भागवती चेतना में लगाये रखिये, उसे कभी दिव्य विचार-धारा से अलग मत होने दीजिये।

विश्वमात्र के प्रति दयाभाव ने ही मुझे इतने उच्च स्तर में पहुँचा दिया है। एक परमात्मा को सब में व्याप्त देखने और समझने पर ही मन में दयाभाव का उदय होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वामी दयानन्द सरस्वती

एतोन्विन्द्रं स्तवाम सखायः स्तोम्यं नरम्।
कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत्॥

हे मित्रो, आओ और स्तुति के योग्य ऐश्वर्यशाली परमेश्वर की स्तुति करें, वे समस्त विश्व के शासक हैं।

—सामवेद अ. ४ । खण्ड ४।७

स्वामी दयानन्द का नाम-स्मरण होते ही रोम-रोम में वेदामृत की असंख्य निर्झरिणी प्रवाहित हो उठती हैं। उन्होंने अखण्ड, एकरस, निर्विकल्प, सम्पूर्ण निर्गुण निराकार परम चेतनतत्व परमेश्वर की उपासना का मार्ग प्रशस्त कर विश्व को दिव्य चेतना से सम्पन्न किया। उन्होंने भारतीय अध्यात्म-चेतना का वैदिकीकरण किया। वे स्वराज्य, स्वदेश-भक्ति और स्वधर्माचरण के अग्रदूत थे। उन्होंने वेदगत दिव्य और भागवत सत्य के प्रकाश में जन-जीवनको अविद्या अन्धकार से बाहर निकलने के लिये सावधान किया। स्वामी दयानन्द महर्षि थे - विक्रमीय उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में अंग्रेजी कम्पनी-सरकार ने भारत का अधिकांश लाल रंग से रंग दिया था; डेलहौजी की आक्रमक नीति अपनी सफलता की पराकाष्ठा पर थी, विदेशी धर्म प्रचारक भारतीय सांस्कृतिक, धार्मिक और आध्यात्मिक चेतना की खिल्ली उड़ा कर गलत ढंग से अपने मत का प्रचार कर रहे थे। देश में अनेक मत जन्म ले रहे थे; लोग आदि वैदिक धर्म से विमुख हो रहे थे; सत्य और ज्ञान के प्रकाश का अभाव निरन्तर बढ़ता जा रहा था। ऐसे ऐतिहासिक समय में महर्षि दयानन्द ने वैदिक धर्म का प्रचार कर स्वदेश, स्वराज्य और स्वधर्म की प्रतिष्ठा अक्षुण्ण रखी। वे बहुत बड़े क्रांतिकारी थे। राष्ट्रीयता के महान संरक्षक थे। शंकराचार्य के वेद-अवतार थे। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने विदेशी शासन, संस्कृति और धर्म को चुनौती दी कि भारत जगद्गुरु है। महर्षि दयानन्द सम्वत् १९१४ वि. के स्वतन्त्रता-आन्दोलन और महात्मा गांधी द्वारा संचालित सत्याग्रह के मध्य के एक अविच्छिन्न,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अखण्ड और अडिग, अटल तथा अमर सूत्रधार थे। उन्होंने अभारतीय तत्वों के उन्मूलन के लिये अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया। बंगाल, बिहार, मद्रास, पंजाब, सिंध, काश्मीर-समस्त दक्षिण और उत्तर भारत ने ही नहीं— विश्व के एक बहुत बड़े भाग अफरीका योरप, अमेरीका आदि ने भी उनकी सत्य-ज्ञान-गरिमा के चरण देश पर मस्तक नत कर दिया। रामकृष्ण परमहंस और केशव-चन्द्र सेन के बंगाल ने उनके सन्देश से प्राण प्राप्त किया, विदेश से थियोसफी आन्दोलन के नेता आलकाट और ब्लेवटस्की ने भारत आकर उनके दर्शन से अपने आप को गौरवान्वित किया। स्वामी दयानन्द ने आत्मनिर्भरता और निर्भयता प्रदान की। उन्होंने कहा कि आत्मा नित्य और अविनाशी है, उसका नाश नहीं हो सकता है, इसलिये प्रत्येक प्राणी को आत्मोत्थान में लगना चाहिये। दयानन्द ने सत्य और एकता का बीजारोपण किया। उन्होंने प्राणीमात्र को सत्य-ज्योति और पवित्रता से समृद्ध बनाया। छल, दम्भ और पाखण्ड का उन्होंने खण्डन किया, सत्य, ज्ञान, आत्मतत्व और विद्या का मण्डन किया। उन्होंने वेदवाणी के माध्यम से कहा, ऋग्वेद का मन्त्र दोहराया।

'तत्सवितुर्वृणमिहे वयं देवस्य भोजनम्।
श्रेष्ठं सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि॥'

हे मनुष्यो! हम लोग सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त अतिशय उत्तम तथा पालनीय और भोग्य करने योग्य वस्तु धारण करने वाले, अविद्या आदि दोषों का नाश करनेवाले जगदीश्वर को स्वीकार करते हैं, वे ही उपास्य हैं। दयानन्द ने वेदज्ञान के द्वारा आध्यात्मिक क्रान्ति उपस्थित की, नया जीवन-दान किया। स्वामी दयानन्द ने गुजरात में दुर्गान्धिरा राज्य के निकटवर्ती मोरवी राज्य के टंकारा ग्राम में सम्वत् १८८१ वि. में एक अत्यन्त प्रतिष्ठित कुल में जन्म लिया था। उनके पिता अंबाशंकर सामवेदी औदीच्य ब्राह्मण थे। वे शिव के अनन्य भक्त थे। अपनी श्रद्धा और भक्ति के अनुरूप उन्होंने दयानंद का नाम मूल शंकर रखा। मूलशंकर बड़े मेधावी और प्रतिभाशाली थे। उन्होंने समृद्धि की गोद में अपना बचपन बिताया। उनके पिता की प्रसिद्धि दूर-दूर के गाँवों में थी। वे मोरवी राज्य में एक बड़े महत्वपूर्ण पद पर नियुक्त थे; ग्रामकर एकत्र कर राजा के खजाने में भेजा करते थे।

धीरे-धीरे जब मूलशंकर की आयु दस साल की हो गई, तब मा के आग्रह से उन्होंने शिवरात्रि-व्रत रखना आरम्भ किया। उन्होंने एक बार व्रत रखा था।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शिवमन्दिर गांव के बाहर था। वे अपने पिता तथा अन्य शिवभक्तों के साथ मन्दिर में रात-जागरण कर रहे थे। वे जागते रहे। लोगों को मीठी-सी झपकी आ गयी पर वे अडिग थे। आधीरात का समय था। भगवान शिव ने उन्हें अपनी कृपा-ज्योति प्रदान की। मूलशंकर ने देखा कि शिव जी की पिण्डी पर चढ़े अक्षत खाने के लिये चूहिया इधर-उधर फुदक रही है। उनकी अन्तरात्मा ने शिव के दर्शन का संकल्प किया। पाषण-प्रतिमा में प्रतिष्ठित शिव के चैतन्य स्वरूप को समझने के लिये उन्होंने अपने पिता को जगाया। पिता उनके प्रश्न का यथोचित समाधान न कर सके। मूलशंकर घर आये, उन्होंने मा से घटना बतायी और शिवतत्व को समझने का आशीर्वाद प्राप्त किया। पिता की आज्ञा से अपनी जमींदारी में काम सम्हालने चले गये। पर शिव-दर्शन की स्मृति बनी रही।

एक बार वे अपने परिवार में ही किसी विशेष अवसर के उपलक्ष्य में नृत्योत्सव में सम्मिलित हुए थे। थोड़ी ही देर में उन्हें अपनी चौदह साल की बहिन की बीमारी की सूचना मिली। बहिन को देखने गये। दो घण्टे के बाद उसने परलोक की यात्रा की। मृत्यु का रूप दयानन्द की आँखों में नाच उठा। संसार के नश्वर रूप के प्रति उनके मन में घृणा उत्पन्न हो गयी। कुछ ही दिनों के बाद उनके चाचा का भी देहावसान हो गया। दयानन्द बहुत क्षुब्ध हुए। उन्होंने लोगों से अमरता का उपाय पूछा। लोगों ने योगाभ्यास और वैराग्य की ओर संकेत किया। दयानंद ने गृह-त्याग का संकल्प किया। इस समय वे युवावस्था में प्रवेश कर रहे थे। उनकी आयु बीस सालकी थी। पिता ने बहुत समझाया-बुझाया। धीरे-धीरे विवाह की बात चलने लगी। मूलशंकर-दयानन्द ब्रह्मचर्यमय जीवन बिताना चाहते थे। उन्होंने विवाह रोकने की प्रार्थना की और एक दिन अवसर पाकर उन्होंने घर का परित्याग कर दिया और सद्ज्ञान-प्राप्ति के लिये पथप्रदर्शक की खोज में निकल पड़े।

उन दिनों शैलानगर में लाला भक्त नाम के एक योगी की बड़ी प्रसिद्धि थी। मूल शंकर योगी से मिलने चल पड़े। रास्ते में एक वैरागी से भेंट हुई। मूलशंकर के शरीर पर सोने के आभूषण देख कर वैरागी ने कहा कि आभूषणों के रहते योगाभ्यास कठिन है। मूलशंकरने स्वर्ण आभूषण वैरागी को दे दिये। लालाभक्त योगी से वे योग सीखने लगे। उनका मन शैलानगर में न लगा। मूलशंकर को पता चला कि अहमदाबाद के निकट किसी गाँव में अच्छे वैरागी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आये हुए हैं। वे अहमदाबाद की ओर चल पड़े। वैरागियों के साथ तीन मास रहे। वैरागियों के साथ एक राजमहिषी भी थी। उसने मूल शंकर को अपने रूप जाल में जकड़ना चाहा पर वे तो सावधान थे। उन दिनों अपने पूर्ण यौवन पर थे, रेशमी कपड़े पहनते थे, ठाट-वाट से रहते थे। उन दिनों उनकी प्रसिद्धि ब्रह्मचारी नाम से थी।

वे सिद्धपुर के योगी-समागम में सम्मिलित हुए। सिद्ध पुर मेले में उनकी एक परिचित व्यक्ति से भेंट हो गयी। उस व्यक्ति ने उनके पिता को सूचना दी। दयानन्द नीलकण्ठ महादेव के मन्दिर में ठहरे हुए थे। पिता उनको घर ले गये। सिपाहियों का कड़ा पहरा लगा दिया। दयानन्द को तो सत्यतत्व की जानकारी प्राप्त करनी थी। एक दिन शय्या का परित्याग कर वे सबेरे-सबेरे घरसे बाहर निकल पड़े। दिन भर घर के सामने ही एक वृक्ष पर बैठे रहे। किसी को पता न चल सका। शाम होते ही उन्होंने गाँव छोड़ दिया। अहमदाबाद होते हुए वे वड़ौदा आये। बड़ौदा में चैतन्य मठ के ब्रह्मानन्द स्वामी से वेदान्त के सम्बन्ध में विचार किया। जीव और ब्रह्म की एकता में विश्वास बढ़ाने लगे। चाणोद में कुछ दिनों तक निवास कर उन्होंने ज्वालानन्दपुरी तथा शिवानन्दगिरि से योग की क्रियायें सीखीं। योग-दीक्षा लेने पर उन्होंने अपना नाम दयानन्द रखा। वे दयानन्द सरस्वती के नाम से प्रसिद्ध हुए। चाणोद में उन्होंने पूर्णानन्द स्वामी से संन्यास-आश्रम की दीक्षा ली। व्यासाश्रम गये, योगानन्दसे योगाभ्यास सीखा। अहमदाबाद के पास दुग्धेश्वर मन्दिर में कुछ दिनों तक निवास कर स्वामी दयानन्द ने योगविद्या के गूढ़ तत्व सीखे। आबू पर्वत पर भी कुछ दिनों तक विचरण करते रहे।

उन्होंने भ्रमण और तप आरम्भ किया। वे सद्गुरु की खोज में तल्लीन थे। उन्होंने दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर भारत के कुछ तीर्थों में भी भ्रमण किया। संयोग से उन्हें मथुरा में सद्गुरु का दर्शन हुआ। वे प्रज्ञाचक्षु थे। उनका नाम विरजानन्द था। वे वेद के परम मर्मज्ञ और व्याकरण के पूर्ण पण्डित थे। ग्यारह साल के अथक परिभ्रमण के बाद उन्होंने गुरु की प्राप्ति की थी। इसके पहले वे उत्तराखण्ड में लम्बे अरसे तक तप कर चुके थे। इस समय दयानन्द छत्तीस साल के थे और विरजानन्द की अवस्था अस्सी साल की थी। उनके पास पहुँचते ही दयानन्द को पहला आदेश मिला कि यदि तुम मुझसे सद्विद्या प्राप्त करना चाहते हो, तुमने जिन ग्रन्थों के सहारे अध्ययन आरम्भ किया है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उन्हें यमुना में प्रवाहित कर दो। दयानन्द ने गुरु की आज्ञा का श्रद्धापूर्वक पालन किया। गुरु विरजानन्द ने नियम से उन्हें सद्शास्त्रों का अध्ययन कराया। गुरु के चरणों में स्वामी दयानन्द की अनन्य निष्ठा थी। विरजानन्द यमुना-जल से ही स्नान किया करते थे। गुरु की सेवा में उनके स्नान के लिये बारह घड़े जल दयानन्द नित्य लाते थे। एक दिन गुरु ने शिष्य को बड़ी कड़ी ताड़ना दी। बात यह थी कि स्वामी दयानन्द झाड़ू दे रहे थे। संयोग से थोड़ा-सा कूड़ा कहीं पड़ा रह गया और उस पर गुरु के पैर पड़ गये। गुरु ने पीटना आरम्भ किया। दयानन्द ने पीटे जाने के बाद गुरु का हाथ सहलाया और कहा कि मेरे वज्र शरीर पर डंडे लगाने से आप के कोमल हाथों को पीड़ा होती होगी। विरजानन्द बहुत प्रसन्न हुए और इस कड़ी परीक्षा में सफलता प्राप्त करने पर हृदय से आशीर्वाद दिया।

विरजानन्द का बड़ा कड़ा नियम था कि वे भूला पाठ नहीं पढ़ाया करते थे। उन्होंने दयानन्द को आदेश दिया था कि यदि भूला पाठ स्मरण में न आये तो मेरे पास आने की अपेक्षा यमुना में डूब कर प्राण देना उचित होगा। एक दिन स्वामी दयानन्द पाठ भूल गये। उसका स्मरण करने की उन्होंने बड़ी चेष्टा की पर असफल हुए। गुरु की आज्ञा के अनुसार निर्जन यमुना तट पर एक पेड़ के नीचे बैठ गये और निश्चय किया कि यदि पाठ नहीं याद कर पाऊँगा तो यमुना में प्राण-विसर्जन कर दूँगा। थोड़ी देर में झपकी आ गयी, एक व्यक्ति ने प्रकट होकर विस्मृत पाठ की व्याख्या की। दयानन्द ने गुरु को घटना बतायी, वे बहुत हर्षित हुए और उनकी गुरुनिष्ठा और तन्मयता की सराहना की। स्वामी दयानन्द गुरु के पास लगभग तीन साल रहे। अध्ययन समाप्त करने पर आध सेर लौंग गुरुदक्षिणा लेकर उपस्थित हुए। विरजानन्द ने प्रेम से कहा कि लौंग से गुरुदक्षिणा पूरी नहीं होगी। मेरी हार्दिक इच्छा है कि तुम संसार को वेद ज्ञान प्रदान करो। वैदिक धर्म के पुनरुत्थान से भारत ही नहीं, समस्त विश्व का कल्याण होगा। यही मेरे लिये उचित गुरुदक्षिणा है। दयानन्द ने गुरु के चरणों पर मस्तक नत कर वचन दिया 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' और गुरु के आशीर्वाद से वैदिक धर्म के प्रचार कार्य में लग गये। प्रभु के चरणों में आत्मा-पर्ण कर वे वैदिक संस्कृति के प्रचार के लिये निकल पड़े। हरिद्वार में कुम्भ मेला के अवसर पर उन्होंने आर्य धर्म-वेदधर्म के प्रचार का प्रण किया। वे हरिद्वार गये। 'पाखण्ड खण्डिनी पताका' के नीचे उन्होंने लोगों का आवाहन किया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लोगों ने उनके सन्देश का स्वागत किया। दयानन्द स्वामी ने विचार किया कि वैदिक धर्म के प्रचार के लिये मुझे पहले तपस्वी बनना चाहिये। तप करने लगे। तप के बाद उन्होंने वैदिक सिद्धान्त के प्रचार का बीड़ा उठाया। स्थान-स्थान पर और नगर-नगर में शास्त्रार्थ आरम्भ हो गये। जनता ने स्वामी दयानन्द के रूप में अपने आध्यात्मिक और सांस्कृतिक नेता का दर्शन किया। प्रयाग-काशी आदि स्थानों में घूम-घूम कर वे वेदसम्मत सद्ज्ञान और ईश्वर-भक्ति से लोगों को अपनी ओर आकृष्ट करने लगे। उनकी कृपा से घर-घर में वैदिक ऋचाओं का पाठ होने लगा। उन्होंने देश का भ्रमण आरम्भ किया। सं. १९३२ वि. में उन्होंने बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की। बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना के पहले राजकोट में वे उसका शिलान्यास-संस्कार सम्पन्न कर चुके थे। देश में वैदिक क्रान्ति की लहर-सी आ गयी। पूना में महादेव गोविन्द रानाडे ने स्वामीदयानन्द का बड़े स्वागत-सत्कार से अभिनन्दन किया। स्वामी दयानन्द ने आर्यसमाज की पताका के नीचे लोगों को एकत्र कर कहा कि सत्य विद्याका और उससे जो पदार्थ जाने जाते हैं उनका मूल परमेश्वर हैं।. . संसार का उपकार करना आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य है। केवल अपनी ही उन्नति से संतुष्ट नहीं रहना चाहिये, दूसरों की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये। उन्होंने पंजाब, बंगाल तथा समस्त भारत में आर्यसमाज की स्थापना का संकल्प कार्यान्वित किया।

बंगाल-भ्रमण काल में ब्राह्म समाज के प्रसिद्ध नेता देवेन्द्रनाथ ठाकुर और केशवचन्द्र सेन ने उनका भव्य स्वागत किया। केशवचन्द्र तो उनके विचारों से इतने प्रभावित हुए कि कहा कि यदि आप अंग्रेजी भाषा जानते होते तो आपको विदेश ले चलता, अच्छा प्रचार होता। स्वामी दयानन्द की स्वदेश, स्वधर्म और भारतीय संस्कृति तथा साहित्य में प्रगाढ़ रुचि थी। उन्होंने सेन महोदय को उत्तर दिया कि यदि आप संस्कृत जानते होते तो आप अपने देशवासियों का निस्सन्देह बड़ा कल्याण करते।

एक बार स्वामीजी से किसी व्यक्ति ने कहा कि आप अपने उपदेश में यह मत कहा कीजिये कि अमुक बात वेदसम्मत है, आप को कहना चाहिये कि मुझे ईश्वर ने साक्षात् यह बात बतायी है। स्वामीजी ने तत्काल समाधान किया कि म सत्य के प्रचार के लिये असत्य का सहारा कभी नहीं ले सकता।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सम्वत् १९३४ वि. में लार्ड लिटन ने दिल्ली में एक दरबार किया। देश के प्रमुख नेतागण उस समय दिल्ली में ही उपस्थित थे। सरसय्यद अहमद और केशवचन्द्र सेन भी थे। स्वामी दयानन्द दिल्ली गये। उन्होंने नेताओं को अपने निवास-स्थान पर आमंत्रित किया और उनसे वैदिक धर्म की पताका के नीचे एकत्र होकर देशकल्याण में लग जाने की याचना की। वे आजीवन वैदिक ज्ञान के प्रचार में लगे रहे। उन्होंने अमृतस्वरूप सच्चिदानन्द परमात्मा का चिंतन किया।

स्वामी दयानन्द ने राष्ट्र को जगाया, लोगों को जागृति का सन्देश दिया कि धर्म का अनुष्ठान करें, सद् शास्त्रों को पढ़े-पढ़ावें, सत्पुरुषों का संग करें और 'ओ३म' परमात्मा के नाम का विचार-पूर्वक जाप करें। आत्मा को परमात्मा के आज्ञानुसार समर्पित कर दें।....उन्होंने लोक-जीवन का वैदिकीकरण किया। वे आध्यात्मिक जागृति के भारतीय लूथर थे; जिस प्रकार लूथरने शाश्वत सत्य के सहारे बाइबिल के सिद्धान्तों का समर्थन किया उसी प्रकार स्वामी दयानन्द ने सनातन परम्परा-गत सत्य को वेद ज्ञान के अनुसार जीवन में उतारा। वे समन्वयवादी महात्मा थे, धर्म-दार्शनिक--महर्षि थे। स्वामी दयानन्द ने वेदाध्ययन पर बहुत जोर दिया। वेदों की अपौरुषेयता में उन्होंने अटल विश्वास प्रकट किया। वेदसम्मत आचरण की पवित्रता में स्वदेशभक्ति का बीजारोपण किया। ईश्वरोक्त सत्यविद्या से सम्पन्न ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद को ही संहिता की संज्ञा प्रदान की-- यह उनके चरित्र की असाधारण मौलिकता है। स्वामी दयानन्द ने कहा कि शास्त्र वह है जो सत्यविद्या के प्रतिपादन से पूर्ण है तथा जिससे मनुष्य को सत्य की शिक्षा मिलती है। उन्होंने स्वीकार किया कि सत्यविद्या की निधि एकमात्र वेद ही है।

स्वामी दयानन्द की ईश्वर-भक्ति सर्वथा वेदज्ञान पर ही निर्भर है। उन्होंने ईश्वरचिंतन के माध्यम से कहा कि जो ब्रह्म विमल, सुखकारक, पूर्ण काम सदा तृप्त और जगत में व्याप्त है वही सब वेदों से प्राप्य है। जिसके मन में इस ब्रह्म की प्रकटता अथवा यथार्थज्ञान है वही मनुष्य भगवान के आनन्द का भागी है। वही सदैव सबसे अधिक सुखी है। ऐसा मनुष्य धन्य है। जो नर इस संसार में अत्यन्त प्रेम, धर्म, विद्या, सत्संग, सुविचार, निर्वैरता, जितेन्द्रियता आदि शुभ गुणों तथा प्रत्यक्षादि प्रमाणों से परमेश्वर का आश्रय लेता है वही सौभाग्यशाली है, वह सत्य विद्या के द्वारा सम्पूर्ण दुखों से छूट कर परमानन्द

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परमेश्वर का नित्य संग—मोक्ष प्राप्त करता है। जन्ममरणरूपी दुखसागर को नहीं प्राप्त होता है। चेतन-अल्पज्ञ जीव का एकमात्र कर्तव्य परमानन्द की प्राप्ति ही है – इस सत्य को दयानन्द ने वेद के सद्ज्ञानप्रकाश में स्वीकार किया।

स्वामी दयानन्द ने धर्म के अभ्युत्थान से सामाजिक और सांस्कृतिक क्रान्ति का आध्यात्मीकरण किया। सत्य, शिव और सुन्दर के वैदिक स्वरूप की खोज की। उन्होंने कहा कि भारतवासियों के लिये एक भाषा, एक वेष तथा एक ही प्रकार के भाव की नितान्त आवश्यकता और अपेक्षा है। उन्होंने मानवता का पाठ पढ़ाया। स्त्री जाति की शिक्षा तथा दलित वर्ग के अभ्युत्थान की ओर विशेष ध्यान दिया। गुरुकुल स्थापित किये तथा गोरक्षा की महत्ता पर प्रकाश डाला।

अपने सत्सिद्धान्त के परित्याग के लिये उन्हें बड़े-बड़े प्रलोभन दिये गये पर वे कभी विचलित न हुए। उदयपुर के महाराणा ने अपने शिवमन्दिर का उनको महन्त बनाना चाहा और कहा कि मन्दिर में असंख्य सम्पत्ति है। स्वामी दयानन्द ने कहा कि मैं आपकी बात मानूँ या परमेश्वर की आज्ञा का पालन करूँ।

स्वामीजी बड़े उदार और दयालु थे। वे बड़े सहनशील थे। वैदिक धर्म के प्रचारकार्य में उन्हें बड़ी-बड़ी आपत्तियों का सामना करना पड़ा पर वे अपने पथ पर चलते रहे। अनूपशहर में एक विरोधी ने पान में विष खिला दिया। स्वामी जी ने गंगा-तट पर जाकर यौगिक क्रिया से विष का कोप शान्त किया। अनूपशहर के तहसीलदार ने अपराधी को कारागार में बन्द करा दिया। जब स्वामी जी को पता चला, वे बहुत दुखी हुए। तहसील दार उनसे मिलने आया। स्वामी जी ने कहा कि मैं बन्धन नहीं, मुक्ति देने आया हूँ। अपराधी कारागार से मुक्त हो गया।

उनमें ब्रह्मचर्य का अपार बल था। एक बार वे कुछ व्यक्तियों के साथ एक पगडन्डी पर टहल रहे थे। सामने एक बहुत बड़ा सांड़ आता दीख पड़ा। लोग पथ से हट गये। स्वामीजी चलते रहे। सांड़ रास्ते से दूसरी ओर हो गया। लोगों ने पूछा कि यदि सांड़ आक्रमण करता तो आप क्या करते? उन्होंने कहा कि मैं हाथ से पकड़ कर हटा देता। मथुरा निवास-काल में आर्थिक प्रलोभन देकर लोगों ने उनको पथ भ्रष्ट करने के लिये एक युवती वेश्या भेजी, वह देखने में बड़ी रूपवती थी, उसने समस्त अलंकार पहन लिये। स्वामी जी को देखते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ही लौट आयी। समझाने पर दूसरी बार गयी। उसके उद्धार का समय निकट था। वह स्वामी जी के चरणों पर गिर पड़ी, फूटफूट कर रोने लगी। उसने वेश्या-कर्म का त्याग कर दिया। स्वामी दयानन्द की कृपादृष्टिसे उसका जीवन बदल गया। स्वामी दयानन्द अपने समय की बहुत बड़ी आध्यात्मिक विभूति थे।

सम्वत् १९४० वि. में जोधपुर नरेश के आमन्त्रण पर वे जोधपुर गये। राजा उनको अपना गुरु मानते थे। बड़ा सम्मान और आदर करते थे। एक दिन स्वामी जी विना सूचना दिये ही दरबार में चले गये। उस समय राजा की रखेल नन्ही जान वेश्या उपस्थित थी। स्वामीजी ने राजा से कहा कि सिंह और कुतिया का संग अनुचित है। राजा लज्जित हुए। नन्हीं जान को पालकी पर चढ़ा कर भेज दिया। नन्हींजान स्वामी जी की जान लेने पर तुल गयी। उसने जगन्नाथ रसोइये को कुछ रुपये देकर स्वामीजी को भोजन में विष दिलवाया। स्वामी जी ने जगन्नाथ को बहुत से रुपये दिये और राज्य के बाहर जाने की सम्मति दी। वे चिकित्सा के लिये अजमेर ले आये गये। दशा विगड़ती गयी। वे सम्वत् १९४० वि. की दीपावली की ज्योतिमयी तिथि को परमात्मा में लीन हो गये। उन्होंने अन्त समय में कहा कि हे दयामय, हे सर्वशक्तिमान आपकी यही इच्छा है। यह इच्छा पूर्ण हो। अहा, अच्छी लीला की! दयानन्द ने वेद के आधार पर विश्व-धर्म दिया। वे आत्मविश्वास, परमेश्वर की भक्ति और लोककल्याण के समन्वय-प्रतीक थे। वे असाधारण महात्मा थे।

रचना

सत्यार्थ प्रकाश, संस्कारविधि, व्यवहारभानु, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, वेदांग प्रकाश, आर्याभिविनय आदि स्वामी दयानन्द की अमर कृति हैं।

वाणी

जो परमात्मा सब के आत्मा, सत्चिद् आनन्दस्वरूप, अनन्त, अज, न्यायकारी, निर्मल, सदादयालु, सर्वशक्तिमान और इष्ट देव हैं वे हमारी नित्य सहायता करें जिससे कठिन-से-कठिन कार्य-सम्पादन में हम सफल हों। ....हे कृपानिधे। यह काम आप ही सिद्ध करने वाले हो, हम आशा करते हैं कि आप हमारी कामना अवश्य सिद्ध करेंगे।

जिनके गुण, कर्म, स्वभाव और स्वरूप सत्य ही हैं, जो केवल चेतन हैं, अद्वितीय हैं, सर्वशक्तिमान, निराकार, सर्वव्यापक, अनादि, अनन्त, आदिसत्य,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अविनाशी, ज्ञानी, आनन्दी, शुद्ध, न्यायकारी, दयालु और अज हैं तथा जिनका कर्म जगत की उत्पत्ति, पालन और विनाश है तथा समस्त जीवों को पाप-पुण्य के अनुसार फल ठीक-ठीक पहुँचाना है, वे ही ईश्वर हैं।

अपने पूर्ण पुरुषार्थ के उपरान्त उत्तम कर्मों की सिद्धि के लिये परमेश्वर... की सहायता लेने का नाम प्रार्थना है। अभिमान का नाश, आत्मा में आर्द्रता, गुण-ग्रहण में पुरुषार्थ और अत्यन्त प्रीति प्रार्थना का फल है।

जिससे ईश्वर ही के आनन्द स्वरूप में अपने आत्मा को निमग्न करना होता है वह उपासना है।

जिससे सब बुरे कर्म और जन्म-मरणादि दुख-सागर से छूट कर सुखस्वरूप परमेश्वर को प्राप्त कर जीव आनन्दमग्न हो जाता है वही मुक्ति है।

जो सत्य का आचरण करता है वही ईश्वर को प्रिय है। सत्य सर्वश्रेष्ठ ज्ञान है।

वेद सभी सच्ची विद्याओं के भाण्डार हैं, वे ज्ञान की अनुपम निधि हैं। उनका स्वाध्याय करना-कराना सत्पुरुषों और आर्यों का कर्त्तव्य है। पुरुष-स्त्री, छोटे-बड़े सभी वेदाध्ययन के अधिकारी हैं।

परमेश्वर की नित्य प्रति प्रार्थना और उपासना सबको अनन्य चित्त होकर अवश्य करनी चाहिये; जो मनुष्य नित्य प्रेमभक्ति से ईश्वर की उपासना करते हैं, उन्हीं उपासकों को परम करुणामय अन्तर्यामी परमेश्वर मोक्षरूपी सुख प्रदान कर सदा के लिये आनन्द का भागी बनाते हैं।

हे न्यायाधीश प्रभो। आप अपनी कृपा से मुझको काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, शोक, आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष, विषय-तृष्णा, निष्ठुरता आदि दुर्गुणों से मुक्त कर श्रेष्ठ कार्य में ही स्थिर करें। मैं अति दीन होकर आपसे यही माँगता हूँ कि मैं आप और आपकी आज्ञा से भिन्न पदार्थ में कभी प्रीति न करूँ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रामकृष्ण परमहंस

'हमारे सद्गुरु रामकृष्ण परमहंस ने स्पष्ट घोषणा की कि समस्त धर्मों का मूलस्रोत एक ही है, अन्य आचार्यों ने अपने-अपने विचार और सिद्धान्त के अनुरूप अनेक मत-मतान्तरोंको जन्म दिया पर उन्नीसवीं शताब्दी के इन परम सन्त ने किसी भी धर्म या मत पर आक्षेप नहीं किया, उन्होंने अपने जीवन में अनुभव किया कि सब मत-मतान्तर एक ही शाश्वत ईश्वरीय धर्म के आवश्यक अंग हैं।'

—विवेकानन्द

परमहंस रामकृष्ण उन्नीसवीं शताब्दी की आध्यात्मिक चेतना के दिव्य दूत थे, उनके उपदेशों और साधना-पद्धति की मौलिकता ने आध्यात्मिक जगत के प्राणियों को आश्चर्यचकित कर दिया। उनकी शक्ति-भक्ति की सात्विक सरिता और दिव्य मृदुता ने ज्ञानी, योगी, वैरागी, संन्यासी, तान्त्रिक, शाक्त, शैव और वैष्णव—सबको समानरूप से प्रभावित किया। परम पूज्य परमहंस रामकृष्ण का स्मरण होते ही ज्ञानचक्षु तप की रजत पीठिका पर समाधिस्थ एक ऐसे सन्त, महासिद्ध, महात्मा का दर्शन कर लेता है जो पवित्रता की निष्कलंक प्रतीक शुभ्र ज्योत्सना की दिव्य मूर्ति है, जो संसार में भगीरथ की तरह सत्यशिव का सौन्दर्य उड़ेलने के लिये शक्ति-साक्षात् शिवमयी हैमवती की चरण धूलि की तरल कणिकामात्र मस्तक से स्पर्श कर कल्याणमन्दाकिनी धरती पर उतार लाना चाहता है। यह है पुण्यसलिला भगवती भागीरथी के तट पर स्थित दक्षिणेश्वर मन्दिर में शक्ति के महासाधक रामकृष्ण परमहंस का एक शब्द-चित्र। उन्नीसवीं शती में कम्पनी सरकार के पाप का घड़ा भर गया था, भारत देश उस समय गोरों के अत्याचार और उत्पात से त्रस्त था। ऐसे समय में स्वामी रामकृष्ण जैसे तेजस्वी संत ने जन्म लेकर एक बहुत बड़ी ऐतिहासिक आवश्यकता की पूर्ति की और ब्राह्म समाज के मायाजाल से बंगाल को मुक्त तो किया ही, अखिल भारत में हिमालय से कन्या अन्तरीप तक उन्होंने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

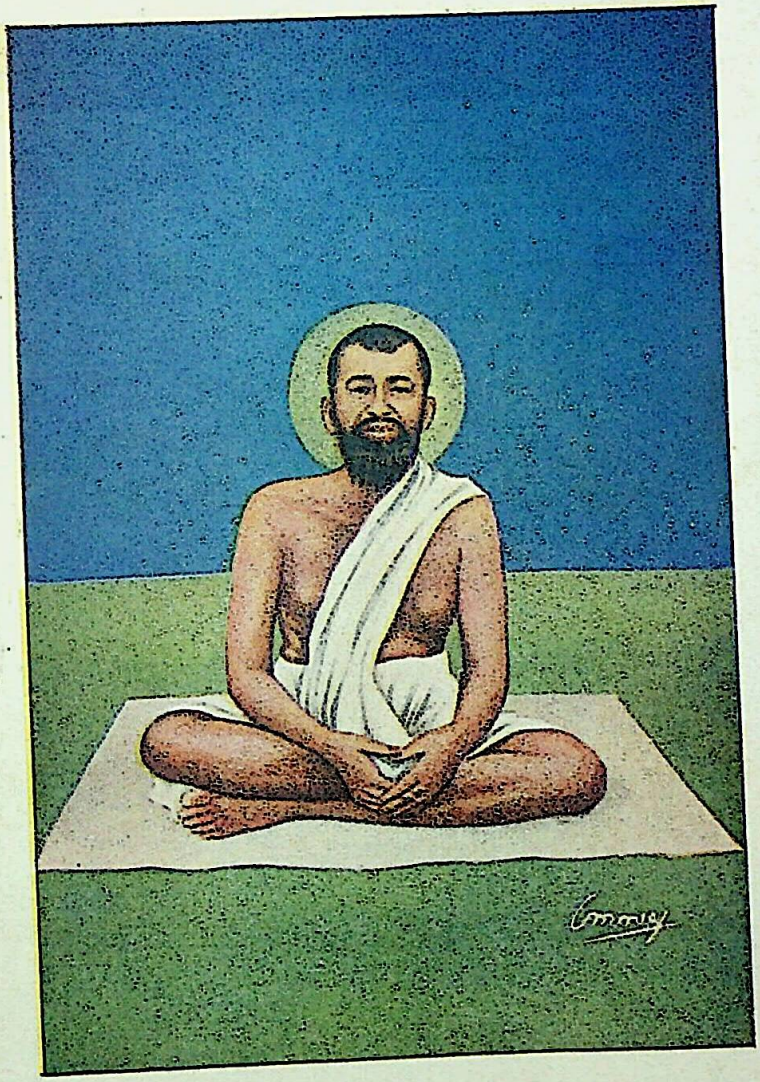

श्री रामकृष्ण परमहंस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आध्यात्मिक ज्योति में नव-जागरण का सन्देश भी दिया। देश ने करवट ली, भौतिकता अध्यात्म के चरणों पर नत हो गयी।

ईश्वर की शक्ति-रूप में उपासना करने वालों में परमहंस रामकृष्ण का स्थान सर्वोच्च है। वे महासाधक, अनुभूतिजन्य आत्मज्ञान के महापण्डित और महादार्शनिक थे। रामकृष्ण ने सनातन परम्परा की ओर ध्यान आकृष्ट किया, उस समय किसी विजेता के नहीं—संत के संदेश की आवश्यकता थी। प्राणीमात्र के प्रति सहानुभूति का भाव दिखाकर उन्होंने सिद्ध कर दिया कि 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना लोककल्याण का उत्तम साधन है। जीवमात्र एक ही ईश्वर के अंश हैं। उन्होंने संस्कृति और धर्म के आदर्शों के संरक्षण में अमूल्य योग दिया, उनका जीवन धर्माचरण की सजीव कथा कहा जा सकता है।

बंगाल प्रान्त के हुगली जिले में रेलकी सड़क से पचीस मील दूर कामारपूकूर में (१८ फरवरी सन् १८३६ ई.) सम्वत् १८९३ वि. में चरित्रनायक रामकृष्ण ने बालक गदाधर के रूप में जन्म लिया। उनके पिता खुदीराम चट्टोपाध्याय गरीब और निष्ठावान ब्राह्मण थे। विश्वसाहित्यकार रोम्यारोलां के शब्दों में रामकृष्ण परमहंस भारत के नर-नारियों की दो सहस्राब्दिव्यापी आध्यात्मिक तपस्या के चिरवांछित वरदान के रूप में प्रकट हुए। उनके पिता सनातन परम्पराओं और रूढ़िगत भावनाओं के उदार पोषक थे। भगवान के सीधे-सादे भक्त थे। इन बातों का गदाधर के चरित्र-विकास पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उनमें धर्मानुराग और सन्तसेवा के प्रति स्वाभिमान था। सात साल की ही अवस्था में उनके पिता चल बसे, सत्रह साल की अवस्था में अपने बड़े भाई रामकुमार के बुलाने पर वे कलकत्ता चले गये। थोड़े ही दिनों के बाद उन्हें अपने बड़े भाई के साथ रानी रासमणि के दक्षिणेश्वर मन्दिर में रहना पड़ा। उनका जीवन बदल गया, शक्ति के चरणों में उन्होंने अपना मस्तक नत कर आत्म जागरण का महामंत्र जगाया।

बड़े भाई की मृत्यु होने पर पूजा का भार उन्हीं के कन्धों पर आ पड़ा। वे शक्ति की भक्ति में इतने अनुरक्त हो उठे कि उन्हें लोग पागल तक कहने लगे। वे घंटों समाधि की ही अवस्था में काली के ध्यान में मग्न रहने लगे। जगद्धात्री का प्रत्यक्ष साक्षात्कार और दर्शन करने के लिये वे आकुल हो उठे। वे जगदीश्वरी से एकान्त में, नीरवता की निर्विकल्प समाधि में माता के दरवाजे पर धरना देकर कहते थे भगवती, तुम इस प्रस्तर प्रतिमा में हो भी या केवल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भक्तों की भावुकता और कवियों की कोरी कल्पना ने ही तुम्हारा सृजन किया है। एक दिन तो आधीरात में माता के दर्शन के लिये इतने व्याकुल हो उठे कि मंदिर की दीवार पर टंगी नंगी तलवार लेकर उन्होंने जीवन का अन्त ही कर डालना चाहा था पर तत्क्षण तेज का अगाध पारावर उमड़ता दीख पड़ा और उनके नयनों की गंगा-यमुना की लहरें उसमें समा गयीं, साधना का अन्त हो गया और युगदेवता ने देवी की कृपा से सिद्धि का वरण किया, वे स्वामी और परमहंस हो उठे। काली की प्रस्तर-प्रतिमा उनके लिये चिन्मयी, सजीव, और प्रेममयी मा हो गयी। वे मा के चरण-पायल की मधुर ध्वनि सुनने लगे। वे उनके लिये परब्रह्म थीं। उन्हें मा का नित्य प्रत्यक्ष दर्शन होने लगा।

दैवी शक्ति जगत के कण-कण में रात-दिन विचरण करती रहती है और अधिकारियों को अपनाने का अवसर ढूढ़ा करती है। सन्त राम कृष्ण परमहंसपर मा काली की पूर्ण कृपा हो गयी। उनको घंटों समाधिस्थ देख कर लोग कहा करते थे कि वे पागल हो गये। यह बात उनके गाँव कामारपुकूर में भी बिजली की तरह फैल गयी। रामकृष्ण की पत्नी साध्वी शारदामणि देवी दक्षिणेश्वर गयीं। परमहंस ने कहा कि मैं स्त्री मात्र को मा काली का रूप समझता हूँ। मेरी तुम्हारे प्रति यही भावना है। पर संसार की दृष्टि में मेरा तुमसे विवाह हुआ है, यदि तुम्हारी इच्छा मुझे संसार में ही रखने की है तो मैं प्रस्तुत हूँ। स्त्री-पुरुष का भेद तो शरीर से होता है, आत्मा की सत्ता में तो सब मा के ही रूप हैं। शारदा मणि ने केवल साथ रहने की इच्छा प्रकट की। रामकृष्ण ने आज्ञा दे दी और उनको उच्च कोटि के ब्रह्मज्ञान से शिक्षित किया। अपने त्यागमय दिव्य जीवन को उन्होंने पति के चरणोंपर अर्पित कर दिया। संत और सज्जन का संग दैवी कृपा के परिणामस्वरूप ही मिलता रहता है। एक दिन दक्षिणेश्वर मन्दिर के सामने की ओर भगवती गंगा के तट पर वे खड़े थे। बयार का आलोड़न धीरे-धीरे स्वच्छ जल का स्पर्श कर महाभाव में स्थित रामकृष्ण का अंग-प्रत्यंग शीतल कर रहा था।... प्रकृति शांत और नीरव थी। इतने में गंगा की सुदूर लहर पर एक नौका देखकर उनका मन नाच उठा, उन्होंने उस पर एक काषाय वेष धारिणी रमणी को बैठे देखा, उनके हृदय में आह्लाद ने करवट ली, सहसा हृत्तन्त्री के तार बज उठे। ऐसा लगता था कि सिद्धि साधक को धन्य करने आ रही है, गंगा ने तपस्वी शिव की जटा से उतर कर भगीरथ की तपस्या फलवती करने के लिये योगिनी का रूप धारण कर लिया

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है। परमहंस ने योगिनी की चरण-धूलि मस्तक पर चढ़ा ली। उसने उन्हें अभय दान दिया। वह तंत्र और भक्ति योग में पारंगत थी। उसने उन्हें शिष्य की तरह तंत्र और योग सिखाया। वह मन्दिर में ही रहने लगी।

रामकृष्ण के आध्यात्मिक विकास पर तोतापुरी नामक एक वेदान्ती ने भी काफी प्रभाव डाला था। रमते संन्यासी तोतापुरी रामकृष्ण के प्रेम से आकृष्ट होकर दक्षिणेश्वर में ग्यारह मास तक ठहर गये। आध्यात्मिकता के उच्च स्तरों में पहुँचा कर उनकी प्रकृति ने उनको परमहंस बना दिया। उन्होंने सत्य, शिव और सुंदर की झांकीका रसास्वादन कर लिया। ब्राह्मसमाजी केशवचन्द्रसेन और नरेन्द्रदत्त (स्वामी विवेकानंद) ने उनके सम्पर्क में आध्यात्मिक ज्योति पायी तथा भारत के नव जागरण में योग दिया।

रामकृष्ण परमहंस सदा माता से प्रार्थना किया करते थे कि मेरे मस्तिष्क से ऊँच-नीच के भेद-भाव का अन्त हो जाय, सब प्राणियों में आपकी चिन्मयी सत्ता परिव्याप्त है। यही उनके संतसम्मत जीवन का मूल सिद्धांत था। न उन्होंने किसी नये सम्प्रदाय की स्थापना की, न नया मत खड़ा किया। वे अपने जीवन के अन्तिम बीस सालों में प्रारंभिक जीवन के बीस वर्षों की अनुभूति वितरित करते रहे। इस काल में उन्होंने उत्तर भारत के विभिन्न तीर्थ-स्थानों—काशी, वृन्दावन, प्रयाग आदि की यात्रायें भी की थीं। उनके ज्ञान और सिद्धान्तों के प्रचार में स्वामी विवेकानन्द ने बड़ा योग दिया। रामकृष्ण ने सदा आत्मज्ञानका पक्ष लिया, वे आत्मा के समक्ष धन और भौतिक शक्ति का कुछ महत्व ही नहीं स्वीकार करते थे।

उन्नीसवीं शती के अन्तिम चरण में भारत को ही नहीं—अपितु विश्वमात्र को इसी तरह की आत्मज्योति की आवश्यकता थी। भारतीय संस्कृति ने रामकृष्ण परमहंस के रूप में विश्व को आत्मज्ञान का दान किया। परम्परावादियों और तार्किकों दोनों ने समान रूप से उनके उपदेशों में आस्था प्रकट की। समस्त देश ने उनको भारतीय संस्कृति के रक्षक के रूप में देखा। उनके प्रति सम्मान और आदर की भावना दिखायी। निस्सन्देह उन्होंने सब धर्मों की मूलभूत एकता का ईश्वर के रूप में साक्षात्कार कराया। वे समन्वयवाद के प्रतीक थे। यूरोप और भारत दोनों को उनका संदेश सुनना था और तदनुरूप आचरण बना कर आत्मज्ञान से तृप्त होना था। भारतीय क्षेत्र में उनका महत्व किसी यूरोपीय नाक्स, इगनाशियस लायला या वेसली से कम नहीं था। उन्होंने सारे मत-मतान्तरों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और सम्प्रदायों के अन्तर्देश में एक ही प्रभु की ज्योति की अनुभूति की। वे कहा करते थे कि जिस तरह एक ही चीनी से अनेक प्रकार के मिष्ठान्न वन जाते हैं उसी तरह परम मधुर भगवती के ही नाना रूपों की अनेकानेक देशों में समय-समय पर आराधना और उपासना होती रहती है। उनकी उत्कृष्ट साधना का स्वरूप मधुर भाव के राज्य में प्रवेश करना था। वे महाभाव में निमग्न रहते थे। उनका अटल विश्वास था कि जिस तरह दिग्दर्शक यन्त्र की सूची सदा उत्तर की ओर रहती है और उसके सहारे नाविक पथ भ्रष्ट नहीं होता है उसी प्रकार ईश्वरोन्मुख हृदय कभी भवसागर की उत्ताल तरंगों में नहीं पड़ सकता। पहले ईश्वर-प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिये, आत्मज्ञान के पश्चात् पवित्र आध्यात्मिक वातावरण में संसार मन की शांति को विकृत नहीं कर सकता। अपने आपको शक्ति स्वरूपिणी भागवती सत्ता के चरणों पर यंत्रवत् सौंप देना ही परम शांति का साधन है। वे कहा करते थे कि निष्काम सेवा से भगवत्प्राप्ति होने में कुछ भी संदेह नहीं रहता है। जिस तरह प्रतिमा में भगवन्निष्ठा की जाती है उसी तरह जीव में भी भगवान का निवास स्वयंसिद्ध है।

उनके आध्यात्मिक जीवन का चरित्रांकन संकेत करता है कि वे सत्य के देवदूत थे।..... उन्होंने जो कुछ भी कहा वह धर्म और शास्त्रसम्मत था। सन्तवाणी कभी सत्य, धर्म और शास्त्र के मूल सिद्धान्तों की न तो उपेक्षा करती है, न विरोध करती है। रामकृष्ण की वाणी सन्तवाणी थी।

वास्तव में वे परमहंसत्व के सजीव चित्र थे। उनको देखने पर नास्तिक-से-नास्तिक की बुद्धि ने भी अपने आप में विवेक उतारकर विवेकानन्द की संज्ञा से अपनी आत्मा का शुभ परिणय-संस्कार सम्पन्न किया। आस्तिकता का केसरिया बाना पहनकर अमेरीका और यूरोप को मार्टिन लूथर के इतिहास का स्मरण करा दिया। रामकृष्ण शक्ति के चरणों में आत्मसमर्पण कर आत्मज्ञान की भीख मांगते थे। उनके जीवनका अधिकांश समय समाधि में ही बीता। (पन्द्रह अगस्त १८९६ ई.) सम्वत् १९५३ वि. में उन्होंने दिव्य धाम की यात्रा की, महासमाधि में लीन हो गये। सेवाग्राम के सन्त महात्मा गांधी के शब्दोंमें—'उनका जीवन धर्म को व्यवहार-क्षेत्र में उतार कर मूर्त स्वरूप देने के प्रयास की एक अमर गाथा है।' कामारपुकूर की शस्य श्यामला स्वर्णमयी धरती का सौभाग्य सर्वदा और सर्वथा सराहनीय और स्तुत्य है कि उसने अपनी गोद में इतने बड़े सन्त को खेलाया। स्वामी रामकृष्ण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परमहंस का समग्र जीवन सच्चिदानन्द के ऐश्वर्य, माधुर्य और स्वारस्य का अप्रतिम प्रतीक था।

रचना

स्वामी राम कृष्ण के उपदेश और वचन संग्रहरूप में सुलभ हैं।

वाणी

पहले साधन करना चाहिये। इसके सिवा दूसरा मार्ग ही नहीं है, बिना साधन के सच्ची भक्ति प्राप्त ही नहीं हो सकती है।

जिस पुण्यात्मा को परमेश्वर की दिव्य मूर्ति का साक्षात् दर्शन हो जाता है उसकी वृत्ति बालक के समान सरल हो जाती है। जगत का स्वरूप निराला दीख पड़ने लगता है।

ईश्वर अनन्त हों या चाहे जितने बड़े हों– उनकी इच्छा होने से उनके भीतर की सार वस्तु मनुष्य के भीतर से आ सकती है और आती है।

भक्तिपथ आप का पथ है। यह बहुत अच्छा और सहज पथ है। अनन्त ईश्वर क्या जाने जा सकते हैं? उनको जानने की आवश्यकता ही क्या है? दुर्लभ मानव जन्म पाकर हमें इसी की आवश्यकता है कि उनके पादपद्म में किस तरह भक्ति हो।

सबसे पहले ईश्वर की प्राप्ति करनी चाहिये, ईश्वर ही साध्य हैं, इसके बाद दूसरे काम करने चाहिये।

जब तक ईश्वर का साक्षात्कार नहीं होता है तब तक इस बात का मानव को ज्ञान नहीं होता है कि वे भक्त के लिये विभिन्न रूप और भाव में व्यक्त होते हैं। ईश्वर शुद्ध आत्मावाले सच्चे भक्त के लिये अवतार लेते हैं।

ईश्वर के चरण-कमल में लीन होने वाला ही इस संसार में धन्य है, वह शूकर योनि में भले ही उत्पन्न हो पर उसका उद्धार अवश्य होता है।

काली मेरी माता हैं, वे जगत के आधार-आधेय हैं, निमित्त और उपादान कारण हैं। उनका रंग काला नहीं हैं, वे परम मनोहर हैं तथा मानव के ज्ञान के लिये अगम हैं। उनके साक्षात्कार के बाद पता चलता है कि निर्गुण-सगुण ब्रह्म वे ही हैं। उनकी कृपा-दृष्टि से मनुष्य संसार-सागर से पार हो जाता है। वे लीलावती हैं, समस्त संसार उनकी लीला है। वे लीलामात्र–इच्छामात्र से ही अपने भक्तों को संसार-बन्धन से मुक्त कर देती हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्त वामाक्षेपा

सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते ।।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तुते ।।

हे सर्वस्वरूपिणी सर्वेश्वरी सर्वशक्तिमयी दुर्गे, भय से हमारी रक्षा कीजिये, आपको नमस्कार है।

—दु. स. ११/२३

स्वर्णिम वंगभूमि शक्ति-उपासना और तान्त्रिक साधना की प्रधान पीठिका है। इस परम पवित्र भूमि में भक्ति और शक्ति के प्रेममय माधुर्य और दिव्य ज्ञानमय ऐश्वर्य की अभिव्यक्ति समय-समय पर अमित समीचीन ढंग से हो सकी है। सन्त रामप्रसाद की कालीउपासना और रामकृष्ण परमहंस की शक्ति साधना से चिरगौरवान्वित इस तपोमयी भूमि में प्रसिद्ध अघोरी सन्त वामाक्षेपा ने तारा देवी—महाकाली श्यामा की उपासना कर शाक्त जगत में जो नाम कमाया उसका मूल्यांकन लेखनी के वश की बात नहीं है। वामाक्षेपा सिद्ध महात्मा थे, जगत के कण-कण में—जड़ और चेतन में उन्होंने अपनी आराध्य जगज्जननी तारा की ही अभिव्यक्ति देखी, वे आजीवन देवी के ही अनन्त ऐश्वर्य, सौन्दर्य और माधुर्य के सागर में निमग्न रहे। संत वामाक्षेपा रामकृष्ण परमहंस के समकालीन थे, जिस समय दक्षिणेश्वर मन्दिर में रामकृष्ण काली के पदपद्म की आराधना में तल्लीन थे उस समय वे बंग भूमि में द्वारिका नदी के तट पर तारापीठ में भगवती तारा का मनोरञ्जन कर रहे थे। तारापुर बंगाल केवीर भूमि जनपद का एक प्रसिद्ध स्थान है। यह द्वारिका नदी के तीर पर अवस्थित है, यहीं तारादेवी के मन्दिर में बड़े-बड़े शाक्त सन्तों ने सिद्धि प्राप्त की थी। इसी वीरभूमि जनपद ने गीत गोविन्द के रचयिता परमकृष्ण-भक्त महाकवि जयदेव और नित्यानन्द अवधूत को जन्म दिया था। तारापीठ में ही वशिष्ठ ने प्राचीन काल में तारादेवी की आराधना कर सिद्धि प्राप्त की थी। तारापीठ में ही सती के नयन का तारा गिरा था, इसीलिये यह स्थान शाक्तों के लिये सिद्ध पीठ बन गया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मध्यकाल के अन्तिम चरण में तारापुर मुसलिम शासक के अधीन था, नाटोर राज्याधीश्वरी रानी भवानी ने तारापुर किसी दूसरे भूमिभाग के वदले में ले लिया था। नाटोर राज्य के शाक्त शासक राजा रामकृष्ण तारा देवी के वड़े भक्त थे। उन्होंने राज्य की ओर से तारादेवी के भोग आदि की व्यवस्था कर दी थी। वामाक्षेपा के गुरु मोक्षदानन्द और उनके गुरु आनन्दनाथ तारापीठ के कौलिक पद को सुशोभित कर चुके थे। अघोरी सन्त वामाक्षेपा तारादेवी के ही उपासक थे। अघोरी सन्तों में उन्हें गौरव पूर्ण स्थान प्राप्त है। वामाक्षेपा देखने में वाह्याकृति से वड़े भयंकर और भीषण लगते थे पर उनसे साहस पूर्वक मिलने के वाद उनके उदार और कोमल हृदय तथा शिष्टता और शील का पता लगता था। वे अपने आप को लोक संसर्ग से दूर रखने के लिये पागल की तरह आचरण करते थे। तारापुर के श्मशान में निरन्तर निवास कर उन्होंने तारा देवी की चरणभक्ति से जीवन में शिव का साक्षात्कार किया।

वामाक्षेपा ने तारापुर से थोड़ी दूर पर आटलाग्राम में सम्वत् १८९१ वि. में एक धार्मिक ब्राह्मण परिवार में जन्म लिया था। उनके पिता सर्वानन्द चट्टोपाध्याय बड़े सदाचारी और भगवद्भक्त थे। उनकी पत्नी भी बड़ी सुशील और सती साध्वी थीं। वामाक्षेपा के बचपन का नाम वामाचरण था और उनके छोटे भाई का नाम रामचन्द्र था। उनकी दो बहिनें थीं। बाल्यावस्था में वामाचरण काली की मूर्ति बनाकर खेल-ही-खेल में पूजा किया करते थे। भगवान के चरित्र—विशेष रूप से राम लीला में उनकी बड़ी रुचि थी। शैशवावस्था में ही पिता का परलोकवास हो जाने से उनकी शिक्षा-दीक्षा का उचित प्रबन्ध न हो सका। यौवन के प्रथम कक्ष में प्रवेश करते ही परिवार के भरण-पोषण का भार वामाचरण के कन्धों पर आ पड़ा, विवाह का समय उपस्थित देख कर माताने उनको काम-काज करने की प्रेरणा दी। वामाचरण निरुत्तर हो गये, वे तारादेवी के मन्दिर में गये, उन्होंने तारा माता से निवेदन किया; जगज्जननी की कृपा से उन्होंने काम-काज करने की प्रेरणा प्राप्त की। वामा ने घर जाकर अपनी मा से कहा कि मैं काम करूँगा। बाहर जाकर रुपया कमाऊँगा। माता ने ममता भरी दृष्टि से वामा को देखा, कहा, 'तू मेरा पागल लड़का है, मैं तुम्हें अपने प्राण से भी अधिक चाहती हूँ, तुम घर पर रह कर खेती करो।' वामा ने कहा 'मा, मैं ब्राह्मणकुमार हूँ, यद्यपि मेरी शिक्षा-दीक्षा नहीं के बराबर है, तो भी मैं ठाकुरमन्दिर में जाकर पुजारी का काम तो कर ही सकता हूँ।' मा ने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वीकृति दे दी। कुछ दिनों तक वे एक मन्दिर में ठाकुर की पूजा करते रहे पर बाद में उन्होंने मालिक से ठीक ठीक बात बता दी कि मैं अयोग्य हूँ, मुझसे भगवान की पूजा नहीं हो सकती है। वामा ने पुजारी का काम छोड़ दिया। इस समय उनकी अवस्था लगभग बारह साल की थी। वे अपनी बहिन के घर आकर रहने लगे पर उनका मन स्थिर न रह सका। उनके हृदय में वैराग्य और साधना की तरंगें उठ रही थीं। उन्होंने अल्पावस्था में घर का त्याग कर दिया, तारापीठ में चले आये। उस समय प्रधान कौलिक मोक्षदानन्द थे। उनके सम्पर्क में रह कर वामा शाक्त साधना में प्रवृत हुए, श्मशान-निवास उनके लिये परमानन्द-प्रद हो उठा, मोक्षदानन्द उनकी तपोमयी प्रवृत्ति से बहुत प्रसन्न रहते थे। वामा कभी-कभी अपनी विधवा माता को आश्वास्त करने के लिये घर आया करते थे पर यह आना दो एक घंटे के ही लिये होता था। थोड़े समय के बाद मोक्षदानन्द के तारापद में लीन होने पर अल्पावस्था में ही वामाक्षेपा प्रधान कौलिक पद पर प्रतिष्ठित हुए।

एक दिन वे द्वारिका नदी में स्नान कर रहे थे, नदी बाढ़ पर थी। चारों ओर पानी ही-पानी का राज्य था। नदी की दूसरी ओर उन्हें दूर से ही 'हरिनाम' की ध्वनि सुनायी पड़ी। वामा ने अपने स्वजनों को देखा कि वे शव-दाह के लिये नदी-तट पर उपस्थित हैं। वे तारा पीठ की ओर श्मशान में शवका दाह संस्कार न कर नदी की उसी ओर अन्त्येष्टि सम्पन्न करना चाहते थे, बाढ़ के कारण श्मशान भूमि में शव ले आना कठिन था। वामा समझ गये कि मेरी मा ने महा-प्रस्थान किया है। महायोगी वामा क्षेपा जिन्हें गांव वाले नितान्त क्षेपा—पागल कह कर पुकारते थे बाढ़ के वेग का सामना कर दूसरी ओर पहुँच गये। मातृ-वियोग ने वामाक्षेपा ऐसे महायोगी को भी विचलित कर दिया। उनके नयनों से अश्रुपात होने लगा। उन्होंने तारा देवी को सम्बोधन कर कहा जगज्जननी क्या आप के मन्दिर के निकट श्मशान में मेरी मा शरण न पायेंगी? अवश्य पायेंगी। वे लाश को लेकर नदी में कूद पड़े और बात-की बात में तारापीठ के निकट श्मशान में पहुँच कर उन्होंने बड़े समारोह से मातृशव का दाह-संस्कार किया।... ब्रह्मभोज-श्राद्ध दिवस के दो दिन पहले ही घर जाकर उन्होंने अपने छोटे भाई रामचन्द्र से कहा, 'आगे का मैदान साफ कर लो। सात आठ गांव के ब्राह्मणों को श्राद्ध-भोज के लिये निमिन्त्रित कर दो।' रामचन्द्र ने पागल भाई की बात पर ध्यान नहीं दिया। श्राद्ध के दिन दूर-दूर से खाद्य पदार्थ—दही-चूड़ा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आदि के भार आते देखर कर रामचन्द्र तथा गाँव के अन्य लोग आश्चर्य चकित हो गये। वहुत से निमंत्रित ब्राह्मण उपस्थित हो गये। तारा पीठ से स्वयं वामाक्षेपा भी आये हुए थे। थोड़ी देर में आकाश काले-काले मेघों से आच्छन्न हो उठा, वृष्टि होने ही वाली थी। सब लोग चिंतित हो उठे।

'दादा, जिस प्रकार आप ने समस्त प्रबन्ध किया उसी प्रकार वृष्टि भी रोक दीजिये।' रामचन्द्र ने वामा के चरण का स्पर्श किया।

वामा ने जगज्जननी तारा का ध्यान किया कि मा यदि ब्राह्मण विना भोजन किये ही चले जायेंगे तो मेरी जननी का श्राद्ध अधूरा रह जायेगा। तारा ने वागसिद्ध वामाक्षेपा की मनोकामना पूरी की। उनकी कृपा से आकाश निर्मल हो गया, वृष्टि की संभावना का अन्त हो गया। विधिपूर्वक श्राद्ध और ब्राह्मण-भोजन सम्पन्न होने पर वामाक्षेपा तारापीठ चले आये। उनकी सिद्धि ने उपस्थित जनता का मन मुग्ध कर लिया, वह वामा के चरण में नत हो गयी। उनका समस्त जीवन तारा के चरणों में समर्पित था, उन्होंने अपने आप को मा की गोद में सुरक्षित कर निर्भयता प्राप्त कर ली थी। वे वालक की भाँति वाह्यज्ञान से सर्वथा शून्य होकर मा की प्रेममयी-वात्सल्यमयी गोद में खेला करते थे, मा भोजन दिलाती तो खा लेते थे, कपड़ा पहनाती तो पहन लेते थे। वालक की तरह दो एक बार तारा के सामने उन्होंने मूत्र त्याग भी कर दिया; उनकी दृष्टि में यह आचरण सर्वथा दोषरहित था, वालक तो ऐसा किया ही करता है। नाटोर राज्य के तारापीठस्थ राजकर्मचारियों ने मन्दिर के भोग आदि की व्यवस्था अपने हाथ में ले ली, माता के मन्दिर को अपवित्र करते रहने का उन पर दोष लगाया। वामा का प्रसाद पाना वन्द हो गया। वे कई दिन तक निराहार रहे पर एक क्षण के लिये भी उन्होंने मा का नाम विस्मृत नहीं होने दिया। भूख और प्यास बढ़ने पर वे मा के नामामृत से तृप्त हो जाया करते थे। उनके मुख से निरन्तर 'तारा-तारा' का उच्चारण होता रहता था। अचानक एक दिन नाटोर राज्य का प्रधान कर्मचारी मन्दिर में उपस्थित हुआ, यद्यपि देवी की पूजा समाप्ति हो गयी थी तथापि उसने षोड़सोपचार विधि से भगवती की पूजा करायी और वामाक्षेपा को आदरपूर्वक भोजन कराया। कोई व्यक्ति प्रधान कर्मचारी की आज्ञा का विरोध न कर सका। शाम को उसने समस्त कर्मचारियों तथा पुजारी आदि को एकत्र कर कहा कि रानी मा ने स्वप्न देखा है; तारा देवी ने स्वप्न में आदेश दिया है कि मैं तीन-चार दिन से भूखी हूँ, मेरी पूजा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विधि पूर्वक नहीं हो रही है। मैं उन्हीं के आदेश से यहाँ उपस्थित हुआ हूँ। मैंने भी दो-तीन दिन से कुछ नहीं खाया है। यहाँ आने पर पता चला कि वामा चार दिनों से भूखे हैं, उन्हें मा का प्रसाद नहीं दिया गया है। हम लोग वामाक्षेपा के महत्व को नहीं समझ सकते हैं, वे असाधारण सिद्ध हैं, अघोरी सन्त हैं, तारा के परम प्रिय पात्र हैं। मा के भोग के पहले ही उन्हें प्रसाद दिया जायेगा। वामा को प्रसन्न कर प्रधान राजकर्मचारी नाटोर चला गया। वामाक्षेपा की प्रसिद्धि चारों ओर बढ़ने लगी। दूर-दूर से लोग उनकी पवित्र चरण-धूलि से धन्य होने के लिये आने लगे। वे अपनी साधना में लग गये। देवी का नाम ही उनके जीवन का आधार हो गया।

वे तारापीठ के निर्जन वातावरण में, श्मशान की नीरवता में, द्वारिका नदी की बालुका में लेट कर तथा कभी-कभी बैठ कर तारा का नाम-जप किया करते थे। मूक भाषा के माध्यम से अपनी आराध्या के चरणदेश में श्रद्धा समर्पित किया करते थे। वे कभी-कभी प्रसिद्ध बंगीय शाक्त संत रामप्रसाद के गीत गाया करते थे। प्राणों का कपाट खोल कर हृदय में जब तारा का आवाहन करते थे तब उनके रोम-रोम सिहर उठते थे, नयनों से अश्रु का प्रवाह उमड़ पड़ता था। वे मा–तारा की भक्ति प्राप्त करने के लिये सदा आतुर रहते थे। उनके मन में किसी भी प्रकार का विकार नहीं था। जीव-जड़ जंगम में वे मा की परिव्याप्ति की ही अनुभूति करते थे। रामप्रसाद और वामा दोनों एक श्रेणी के शाक्त थे पर अन्तर केवल इतना ही था कि रामप्रसाद गृहस्थ सन्त थे, वामाक्षेपा आजन्म ब्रह्मचारी थे।... वे मद्य का ग्रहण मद्य रूप में नहीं करते थे, वे मद्य को आदि-शक्ति विश्वेश्वरी तारा का साक्षात् चरणामृत समझ कर पीते थे, वे जागतिक ज्ञान बाह्य ज्ञान से नितान्त परे हो कर तारा से विश्वास और भक्ति की याचना करते थे। वे भक्त सन्त थे। तारा की कृपा से उन्होंने बड़े-बड़े अलौकिक कार्य सम्पन्न किये। तारापीठ के सन्निकट नदीतटीय पंचवटी वन में ही उन्होंने सिद्धि-प्राप्ति के लिये घोर तपस्या की और मा की कृपा से उनकी तपस्या सफल हो कर ही रही। अघोरी वामा अपने साथ एक कुत्ता भी रखते थे, उसका नाम उन्होंने कालू रखा था। उनका दृढ़ विश्वास था कि तारा के भक्ति-सागर में निमग्न होने पर बड़े-बड़े रत्नों–सिद्धियों की प्राप्ति होती ही है। वे तारापीठ के निकट शाल्मली वृक्ष के नीचे बैठ कर तारा का स्मरण करते थे, कभी वृक्ष और पक्षियों की ओर अंगुली से संकेत कर नाचने लगते थे, इस प्रकार वे सबेरे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

से शाम तक शाल्मली वृक्ष के नीचे बैठ कर माता तारा का ध्यान किया करते थे। शाल्मली के नीचे वशिष्ठ के योगासन पर बैठ कर कभी-कभी वामाक्षेपा ज्योत्सना भरी रातों में साधना किया करते थे। उनकी उपस्थिति ने तारापीठ की नीरव रमणीयता का सौन्दर्य बढ़ा दिया।

वामा उच्च कोटि के त्यागी थे। किसी भी वस्तु में उनकी ममता नहीं थी। वे अपरिग्रही महात्मा थे। वे सबको 'साला' कह कर पुकारा करते थे, उनके 'साला' शब्द में उनके हृदय की प्रेममयी व्यञ्जना का दर्शन होता है। एक बार एक सज्जन ने उनकी परीक्षा ली। उन्होंने वामा को रत्नालंकार समर्पित किया। वामा ने रत्नालंकार हाथ में लेकर फेंक दिया, हड्डियों की माला दिखला कर उन्होंने कहा कि मेरा रत्नालंकार तो यह है।

एक समय वसन्त कालीन दोपहरी में शाल्मली वृक्ष के नीचे वामाक्षेपा अपने सियार और कुत्ते के साथ विश्राम कर रहे थे। एक परिचित व्यक्ति आकर उनसे बात करने लगे।

'तान्त्रिक साधक की महिमा मैं कुछ भी नहीं जानता हूँ। मेरे घर के निकटस्थ घर में एक तान्त्रिक साधक आया था। उसे देखते ही मुझे घृणा हो गयी।' परिचित अन्तरंग व्यक्ति ने वामा के चरणों में निवेदन किया।

वामा ने कुछ देर तक सोचा, उसके बाद हो-हो कर हंसने लगे। उन्होंने कहा 'तुम तान्त्रिक की बात समझ ही किस तरह सकते हो? जिसे जगत घृणा की दृष्टि से देखता है, उसे मा तारा अपनी गोद में स्थान देती हैं। तुम ऐसे तान्त्रिक साधक को किस तरह जान सकते हो?' परिचित व्यक्ति को तान्त्रिक साधना का मर्म समझाया। आश्विन की नवरात्र में सारा बंगाल महाकाली की भक्ति में विभोर हो उठता है। एक बार आश्विनशारदीय सप्तमी तिथि को एक विद्यालय के अध्यापक तारा की पूजा देखने के लिये तारापुर में उपस्थित हुए। उन्होंने वामाक्षेपा का भी दर्शन किया। वे निटकवर्ती कनकपुर के विद्यालय में अध्यापन करते थे। वामा ने उनको बड़े आदर से अपने पास बैठाया। एक सज्जन ने कहा कि पण्डित जी कनकपुर में पढ़ाते हैं। वामा ने कहा कि मैं तो निरक्षर हूँ, मूर्ख हूँ। पण्डितजी ने कहा कि बाबा! आप तो पाशमुक्त हैं, शिव स्वरूप हैं। मुझे गुरुमन्त्र -जप का मर्म समझाइये।

वामा ने पण्डितजी की श्रद्धा और भक्ति से प्रसन्न होकर कहा कि तुम कलि के जीव हो। जप से सिद्धि मिलती है। निर्जन एकान्त स्थान में मा के नाम

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

का जप करो, सिद्धि अवश्य प्राप्त होगी। ऐसा कह कर वामाक्षेपा प्रेमोन्मत्त होकर नाचने लगे। दर्शकों ने उनकी चरण-धूलि से अपने आप को धन्य किया।

निस्सन्देह श्मशान में रहते-रहते अघोरी वामा अघोरस्वरूप शिव हो उठे। एक समय बड़ी विचित्र घटना हुई। कई दिनों से मूसलाधार वृष्टि हो रही थी। शाम को जगदम्बा की आरती समाप्त होने पर वामा अपनी कुटी में आये। घोर वृष्टि हो रही थी, वातावरण जन-समागम से सर्वथा शून्य था; आकाश मेघाच्छन्न था और धरती पर अन्धकार का भीषण साम्राज्य था; बिजली कड़क रही थी। वामा अपने कुत्ते कालू के साथ कुटी में थे; कुटी में उन्होंने बहुत-से नरमुण्ड एकत्र किये थे; इस भयावनी रात को वे और भी भयंकर रूप प्रदान करते थे। वामा जोर-जोर से जगदीश्वरी तारा का नाम लेकर नाच रहे थे। वे माता के नामामृत-पान से प्रमत थे। इधर कालू भौ-भौं भूक रहा था, वामा को काट रहा था। अघोरी वामा कुत्ते को स्नेह से थपथपा कर कहते जाते थे कि कालू मुझे मत काटो। उनके देह से रक्तपात हो रहा था पर वे अपनी मस्ती में मग्न थे। इसी समय एक परिचित व्यक्ति ने कुटिया में प्रवेश कर वामाक्षेपा की चरण-धूलि अपने मस्तक पर चढ़ायी। वामा ने उसे गाने का आदेश दिया, वह मत्त होकर शाक्त सन्त रामप्रसाद का गीत गाने लगा और वामाक्षेपा नाचने लगे। गान सुनकर वे प्रेम विभोर हो गये, उनके नयनों से अश्रु झड़ने लगे। इस प्रकार वामा ने अपने साधनामय जीवन का अधिकांश जगदम्बा के भक्तिपूर्ण आनन्द राज्य में बिताया। भारतीय सन्तसाहित्य की शक्ति-साधना के क्षेत्र में वे स्वर्णभूमि बंगाल की दिव्य देन थे।

वामा अन्तर्यामी सन्त थे। एक समय एक जमींदार तारादेवी के दर्शन के लिये आये हुए थे। वे नदी के तट पर बैठ कर आह्निक–संध्या आदि कर रहे थे। वामाक्षेपा जल में क्रीड़ा कर रहे थे। उन्होंने जमींदार पर जल के छींटे फेंके। जमींदार ने वामा को रोका और कहा कि आह्निक में विघ्न उपस्थित करना उचित नहीं है। वामा उनकी बात सुनकर हँसने लगे, कहा कि बहुत बड़े आह्निक करने वाले हो, शरीर से जप करते हो, मन मूर कम्पनी में जूते खरीद रहा है। जमींदार उनकी बात सुन कर आश्चर्य चकित हो गये। बात ठीक ही थी; जप करते समय वे सोच रहे थे कि तारापुर से कलकत्ता जाऊँगा, मूर कम्पनी में जूते खरीद कर घर जाऊँगा। वे वामा के चरण पर नतमस्तक हो गये; सन्त से अपने अपराध के लिये क्षमा-याचना की। वामा मौन हो गये।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वे माता की कृपा से सब कुछ साध्य समझते थे। एक समय हरिद्वार में एक व्यक्तिको देख कर एक महात्मा ने दीर्घ श्वास लिये। उन्होंने व्यक्ति से कहा कि एक सप्ताह में तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी। एक महात्मा काशी में रहते हैं, उनसे उपाय मिल सकता है। व्यक्ति ने काशी वाले महात्मा से मृत्यु से बचने का उपाय पूछा, महात्मा ने कहा कि मृत्यु से तुम्हें सन्त वामाक्षेपा बचा सकते हैं। वे तारापुर में रहते हैं। व्यक्ति तारापुर आया, उसके जीवन का अन्तिम दिन था। उसने वामा का चरण पकड़ कर कहा 'ठाकुर, मेरी रक्षा कीजिये।' वामा ध्यानमग्न थे। नेत्र खोलते ही उन्होंने देखा कि एक साँप दंशन के लिये व्यक्ति का पीछा कर रहा है। वामा के दृष्टिपात करते ही साँप भाग गया। वामाक्षेपा ने व्यक्ति से कहा 'आज आधी रात को साँप तुम्हें अवश्य काटेगा पर तुम एकाग्र मन से तारा का जप करो, प्राण-रक्षा अवश्य होगी।' वामा ने एक वृत्ति खींच दी, व्यक्ति ने उसमें प्रवेश किया और मा का नाम जपने लगा। साँप ने आधीरात को उसे काट लिया। वह संज्ञाहीन हो उठा। भक्तों ने देखा कि वामा एक स्त्री से कह रहे हैं कि मा उसके प्राण बचा लीजिये, स्त्री तो जगदम्बा ही थीं, तारा की कृपा से व्यक्ति ने चेतना प्राप्त की। इस प्रकार वामा ने मृत्यु के पंजे से उसे मुक्त कर लिया।

मातृ-शक्ति की उपासना ही उनके जीवन का मुख्य सिद्धान्त था। उनकी योगशिक्षा किसी गुरु के निकट नियमित रूप से नहीं हुई थी। उनकी साधना के मूलाधार भक्ति और विश्वास थे। वे कहा करते थे– 'जपात् सिद्धिः।' विश्वेश्वरी के नाम के जपने की ही उन्होंने सीख दी। वे 'सत्य' को ही कलि का धर्म मानते थे। उनकी दृष्टि में माया नाम के किसी पदार्थ का अस्तित्व ही नहीं था। उन्होंने माया को महामाया का स्वरूप बताया। जगदीश्वरी के चरण में निष्ठा ही उनकी भक्ति का स्वरूप है। उनकी तारा माता ही भगवद्भक्ति स्वरूपा महाशक्ति हैं। वे निवृत्ति अथवा योग मार्ग के सिद्ध सन्त थे। वे कहा करते थे कि केवल आर्त्त भाव से पुकार पर ही मा की प्राप्ति हो जाती है, वे कृपापूर्वक दर्शन देती हैं। मैं योग-याग कुछ भी नहीं जानता हूँ, केवल आर्त भाव से मा को पुकारना ही मेरा स्वधर्म है। वे कृपापूर्वक दर्शन देती ही हैं–यह नितान्त असंदिग्ध है।

उनकी साधना का स्वरूप एकमात्र जप ही था। अपने आपको मा के चरण देश में डाल देना ही तान्त्रिक साधना अथवा शक्ति-उपासना की चरम

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अवस्था है –ऐसा उनका दृढ़ मत था। इसी को वे निवृत्ति-पथ कहा करते थे। उनकी उक्ति है कि कर्म और भोग के शेष होने पर ही साधक निवृत्ति पथ में अग्रसर होता है। उनका दृढ़ विश्वास था कि तन्त्र के अनुसार काली-साधना करने पर ही ईश्वर-उपासना का अधिकार प्राप्त होता है। काली और ईश्वर में उनकी भेद दृष्टि नहीं थी। प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रत्येक साधक को ईश्वर-उपासना के पूर्व तांत्रिक साधना के मार्ग से चलना पड़ता है। उनकी उक्ति है कि वेद का कर्मकाण्ड ही तन्त्र है, वेद के समस्त क्रिया-कलाप तन्त्र हैं, महादेव इसके वक्ता हैं, भगवती इसके श्रोता हैं।

सन्त साहित्य की श्रीवृद्धि में वामाक्षेपा ने महान योग दिया। उन्होंने सात्विक, राजसिक और तामसिक–तीन श्रेणी की साधना बतायी। सात्विक को परम निवृत्ति का पथ कहा। बाह्य आचार तमाशा, नाच आदि में व्यस्त रहने को तामसिकता का रूप दिया। राजसिक भाव को तांत्रिक उपासना में परिगणित किया। गीता और योगवाशिष्ठ रामायण में वामा की बड़ी निष्ठा थी। सत्य को वे उपासना का सारतत्व कहा करते थे। उनकी सीख है कि सत्य की रक्षा में मन को सदा तत्पर रखना चाहिये। इससे मन पवित्र होता है, मन की पवित्रता से मा की कृपा प्राप्त होती है।

वामाक्षेपा तारापीठ के विशेष उत्सवों पर मग्न होकर मा के सामने नाचा करते थे। नाचते-नाचते कौपीन गिर पड़ता था, वे दिगम्बर हो जाते थे, कहा करते थे कि मेरी मा तारा और पिता चन्द्रचूड़ शंकर दोनों ही दिगम्बर हैं।

उन्होंने अपने महाप्रस्थान की सूचना कुछ दिनों पहले ही दे दी थी। महाप्रयाण के पूर्व उनमें विशेष भावान्तर देखा गया था, वे बाहर-भीतर दोनों ओर से कोमलता की प्रतीक हो उठे। सम्वत् १९६८ वि. में श्रावणमास में उन्होंने तारापद में महासमाधि ली। तारापीठ के निकट शाल्मली वृक्ष के नीचे उनके स्मारक स्वरूप एक मन्दिर अवस्थित है। वे परम अवधूत, महायोगी अघोरी सन्त थे।

वचन

वामाक्षेपा के वचनामृत ही उनकी अमरकृति हैं।

रचना

भक्त की साधना बड़ी गुप्त होती है। यह लोगों के देखने समझने की

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वस्तु नहीं है। गुरुजनों की उक्ति है: 'गोपयेत् मातृजाखत्' साधक की साधना गोप्य ही है, कोई नहीं जान पाता है।

मा–तारा का दर्शन बहुत ही सहज है। आर्तभाव से पुकारने पर वे दीख पड़ती हैं। भक्ति और विश्वास से ही मा की प्राप्ति होती है, अन्य किसी वस्तु से वे नहीं मिलती हैं। मैं तो योग-याग कुछ भी नहीं समझ पाता पर आर्तभाव से पुकारने पर मा मिल जाती हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता की ही तरह तन्त्र भी अपौरुषेय है, भगवान शिव के श्रीमुख से निःसृत है। यह केवल कलि के ही लिये नहीं, समस्त युगों के लिये है। ऐसा न होता तो वशिष्ठ देव किस प्रकार सिद्ध होते, यह तो इस युग की बात नहीं है!

तान्त्रिक साधक मा के आधार पर रहते हैं पर जो सात्विक भावापन्न नहीं हैं उन्हें मा अपनी गोद में नहीं रखती हैं। प्रवृत्ति और निवृत्ति-साधना के दो मार्ग हैं, जन्म-जन्मान्तर की विषय-भोग-इच्छा पर विजयी होने के बाद ही साधक निवृति-योग मार्ग पर आता है...उसे पतन का भय नहीं रहता है; कर्म और भोग के क्षय होने पर निवृत्ति पथ की यात्रा होती है।

काल की शक्ति काली है, तन्त्र के अनुसार काली की साधना न करने पर साधक ईश्वर-उपासना का अधिकारी नहीं हो सकता है।

चरित्र मनुष्य की अमूल्य सम्पत्ति है। चरित्र के नष्ट होने पर मनुष्यत्व नष्ट हो जाता है। उन्नति की आशा नहीं रह जाती है। साधना-क्षेत्र में एक अघोरी अवस्था है – अवधूत अथवा ब्रह्म-ज्ञान अवस्था या मृत अवस्था है। इस अवस्था में किसी प्रकार का विचार नहीं रह जाता है, यह साधना की चरमावस्था है; इस अवस्था में अहंता नहीं रह जाती है, 'तत्त्वमसि' की प्राप्ति हो जाती है; इस अवस्था वाले मनुष्य को सहज में ही नहीं पहचाना जा सकता है। उसे किसी बाह्य विषय का ज्ञान नहीं रह जाता है; देह सम्बन्ध मिट जाता है; जगत के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता है, मा के साथ सम्बन्ध रखकर अन्य सम्पर्क का त्याग कर देना पड़ता है। क्या यह अवस्था सहज है, बाबा!

कर्म से ज्ञान और ज्ञान से भक्ति और विश्वास की स्थिति है–भक्ति और विश्वास से निर्वाण –मुक्ति की प्राप्ति होती है। मैं तो मूर्ख हूँ, तत्व नहीं जानता हूँ और न जानना भी चाहता हूँ। मेरी तो केवल 'तारा-तारा' ही बोलते रहने की इच्छा है। निर्वाण क्या है, बाबा! मेरी तारा मा ही सब कुछ हैं।... ज्ञान-भक्ति और विश्वास सब कुछ तारा मा की ही कृपा से मिलते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महात्मा रूपकला

सीता लखन समेत प्रभु सोहत तुलसीदास ।
हरषत सुर बरषत सुमन सगुन सुमंगल बास ।।

—तुलसीदास

श्री अवध सौन्दर्य ब्रह्म राम की लीला भूमि है। उसके प्रत्येक कण में दिव्यता का मनोरम रमण है। भगवती सरयू के रमणीय तट से विचुम्बित अवध क्षेत्र में निवास करने का सौभाग्य दशरथनन्दन राम की ही कृपा से मिलता है। महात्मा रूपकला रामके परम कृपापात्र थे, उन्होंने सीताराम के चरण कमल में शरणागत होकर उनकी मधुर रति के रसास्वादन से असंख्य प्राणियों को जो परितृप्ति प्रदान की वह उनके चरित्र का एक सरस अंग स्वीकार किया जा सकता है। विक्रमीय बीसवीं शती का अवधक्षेत्र उनकी पवित्र उपस्थिति से वृन्दावन हो गया। चरणों में पायल बांधकर अपने प्रत्येक श्वास के कम्पन पर थिरक थिरककर सीता के कैंकर्य रस से प्रमत्त, राम के अनन्य उपासक के रूप में रूपकला ने जो दिव्य यश प्राप्त किया वह रामभक्तों की रसप्रियता-प्रेमोपासना अथवा मधुर रति के इतिहास की एक मौलिक घटना है। उन्होंने विहार और अवध को ही राम की सरस भक्ति से सम्पन्न नहीं किया, समस्त रामभक्ति विभूषित भूमि को उनके सरस लीला-चरित्र का परिज्ञान कराया। वे रसिक सन्त थे, प्रेमी महात्मा थे। उन्होंने गृहस्थाश्रम में गृहस्थ की तरह आचरण कर भगवान राम की कृपा प्राप्त की और संन्यासाश्रम में राम की लीलामाधुरी का अनुभव किया। भगवन्नाम-कीर्तन और भगवद्प्रेम के प्रचार में ही उन्होंने अपना समय सार्थक किया, वे परम रामभक्त थे।

महात्मा रूपकला का प्राकट्य विहार प्रान्त के छपरा जनपद से सात मील की दूरी पर मुबारकपुर ग्राम में हुआ था। उनके पितामह केवल कृष्ण जी अपने भ्राता से न पटने के कारण इलाहाबाद जनपद के आलमंगज उपनगर में रहने लग गये थे। वे नीलकोठी में प्रमुख कार्यकर्ता के पद पर नियुक्त थे। उनके पुत्र तपस्वी राम जो बड़े कोमल हृदय के भगवद्भक्त थे, रूपकला के पिता थे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रूपकला की माता का नाम शिवव्रती देवी था। रूपकला ने आलमगंज में सम्वत् १८९७ वि॰ श्रावण कृष्ण नवमी को जन्म लिया था। तपस्वी राम के ज्येष्ठ भ्राता तुलसी राम बहुत बड़े भगवद्भक्त थे। उनकी देख-रेख में रूपकला का पालन-पोषण हुआ। रूपकला के बचपन का नाम भगवान प्रसाद था। वे जब छोटे-से बालक थे तभी पत्थर के छोटे-छोटे टुकड़ों को एकत्र कर उनमें शालिग्राम की भावना करते थे तथा बड़ी श्रद्धा और प्रेम से उनका पूजन किया करते थे। इस प्रकार भगवान की लीला में उनकी बचपन से ही अनुरक्ति बढ़ने लगी। साधु-सन्तों को देख कर बड़े आनन्दित होते थे। माता-पिता के सात्विक जीवन का उनके चरित्र-विकास पर बड़ा प्रभाव पड़ा था। भगवान राम के प्रेम में वे बाल्यावस्था से ही उन्मत्त रहते थे। बचपन के आठ साल आलमगंज में ही उन्होंने पूरे किये तथा बड़े मनोयोग से शिक्षा प्राप्त की।

आठ साल की अवस्था में वे मातापिता के साथ अपने पैतृक निवास स्थान मुबारकपुर में चले आये। मुबारकपुर में दो सौ साल पहले एक सिद्ध फकीर मुबारक शाह रहते थे। उनकी उपस्थिति से आध्यात्मिक वातावरण बहुत अच्छा हो चला था। इसी पुंण्य भूमि में भगवानप्रसाद ने निवास कर भगवद्भक्ति कमायी। उनकी शिक्षा-दीक्षा का अच्छे-से-अच्छा प्रबन्ध कर दिया गया। धीरे-धीरे वे युवावस्था में प्रवेश करने लगे। मुबारक पुर में रामलीला का समारोह हुआ करता था। भगवान प्रसाद राम और सीता के स्वरूप के निकट खड़े होकर चमर डुलाया करते थे और घंटों युगलस्वरूप की मधुर और दिव्य झाँकी से अपने नेत्र तृप्त किया करते थे।

रूपकला बचपन से ही भगवान के नाम में दृढ़ विश्वास रखते थे। एक बार शिक्षण-काल में वे नदी में स्नान करने गये। साथ में दो मित्र और थे। स्नान करते समय उनके एक मित्र नन्दकुमार बाबू गंगा में डूब गये। रूपकला भगवान के नाम का स्मरण करने लगे। वे प्रभु से प्रार्थना करने लगे कि हे देव, यदि नन्दकुमार डूब जायेंगे तो मेरी हँसी नहीं होगी, आप के नाम की महिमा घट जायेगी। थोड़ी देर में बड़े जोर से एक लहर उठी और नन्दकुमार बाबू उनके पैरों के पास आ पड़े, इस प्रकार रूपकला के भगवद्विश्वास ने नन्दकुमार के प्राण की रक्षा की।

उच्च कक्षा के अध्ययन-काल में रूपकला ने 'तन-मन की स्वच्छता' नामक पुस्तक लिखी और उसको शिक्षा-निरीक्षक फैलेन महादेय के कर-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कमलों में समर्पित कर दिया। फैलेन उनकी प्रतिभा से बहुत प्रसन्न हुए और उनको उप-शिक्षा-निरीक्षक के पद पर नियुक्त करा दिया। नौकरी पाने के पूर्व ही वे गृहस्थाश्रम स्वीकार कर चुके थे। छपरा जनपद के रेपुरा गाँव के रहने वाले तथा कलकत्ता उच्च न्यायालय के मुख्तार ठाकुरप्रसाद की सौभाग्यवती कन्या से उनका विवाह हो गया। वे ससुराल के निकट ही एक महात्मा कान्हरदास से बहुत प्रभावित थे। उन्होंने कान्हरदास से गुरुमुख होने की इच्छा प्रकट की तो कान्हरदास ने सम्मति दी कि अपने कुलगुरु महात्मा रामचरणदास से ही दीक्षा लेना उचित है। महात्मा रामचरण दास छपरा से थोड़ी दूर पर परसा नामक स्थान में रहते थे। वे अच्छे सन्त थे। भगवान प्रसाद को गुरुमन्त्र प्रदान कर उन्होंने उनका नाम सीताराम शरण भगवान प्रसाद रखा। गुरुकी कृपा से उनका भगवत्प्रेम बढ़ने लगा।

थोड़े समय के बाद पिता और पत्नी की मृत्यु से उनका वैराग्य-भाव बढ़ गया। संसार की नश्वरता का ज्ञान हो गया तथा सीताराम की अभय पद-प्राप्ति के लिये उनका मन समुत्सुक हो उठा, उनके नयनों में दशरथनन्दन राम और जनकनन्दिनी सीता की छवि आलोड़ित हो उठी। उनपर भागवती कृपा का अवतरण होने लगा।

एक बार ऋण देने के लिये उनको कुछ रुपयों की आवश्यकता थी। उन्होंने बड़ी चेष्टा की पर रुपयों का प्रबन्ध न हो सका। उनके मन में दृढ़ विश्वास था कि भगवान की कृपा से प्रबन्ध हो ही जायेगा। वे उन पर भरोसा कर बैठ गये। अचानक एक व्यक्ति आया, उसने सबके सामने उनके हाथ में एक लिफाफा रख कर कहा कि इसे अपने पास ही रखिये, मैं थोड़ी देर में आकर ले जाऊँगा, वह व्यक्ति फिर न दीख पड़ा। रूपकला ने लिफाफा नहीं खोला। दो-तीन दिनों के बाद उसमें उतने ही रुपये थे जितने ऋण में देने थे। एक पैसे की भी भूल नहीं थी। रूपकला ने इसको प्रभु की कृपा मानकर स्वीकार कर लिया और ऋण की भरपायी कर दी। उन्होंने सोचा कि गृहस्थाश्रम में रहने से प्रभु को मेरे लिये चिन्ता करनी पड़ती है। उन्होंने अयोध्या जाने का संकल्प किया। इसी बीच में उनके जीवन पर एक अद्भुत घटना ने प्रभाव डाला। वे निरीक्षण-कार्य के लिये बिहटा रेलवे स्टेशन से थोड़ी दूर एक दिहात में गये हुए थे। उन दिनों शिक्षा-विभाग के संचालक क्राफट महोदय कलकत्ता से पटना आये हुए थे और शीघ्र ही कलकत्ता जाने वाले थे। दिहात में ही सीताराम

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शरण भगवान प्रसाद को शिक्षा-निरीक्षक मारटिन साहब का एक पत्र मिला जिसमें पटना जाकर संचालक महोदय से किसी आवश्यक विषय पर सम्मति लेने का आदेश दिया गया था। वे विहटा स्टेशन पर आये, गाड़ी जा चुकी थी। इधर पटना स्टेशन पर गाड़ी आने का समय हो चुका था, क्राफट महोदय इसी गाड़ी से कलकत्ता जाने वाले थे। भगवान प्रसाद को बड़ी चिंता हुई, वे विश्रामालय में बैठ गये। थोड़ी ही देर में उन्होंने आवश्यक कागजों के साथ अपने आपको पटना स्टेशन के प्रतीक्षालय में पाया, संचालक से बात की तथा कलकत्ता के लिये गाड़ी छूटने पर वे प्रतीक्षालय में चले आये और आश्चर्य की बात तो यह हुई कि थोड़ी-सी झपकी आने के बाद उन्होंने अपने आप को विहटा स्टेशन के प्रतीक्षालय में पाया। प्रभु की लीला उनकी समझ में न आ सकी। उन्हें नौकरी का मोह तनिक भी न रह गया। त्याग-पत्र देकर वे अवधधाम चले आये। जीविका-वृत्ति प्राप्त करने में एक साल शेष था पर उन्होंने पेन्सन की चिंता नहीं की, अयोध्या आने के बाद सरकार ने उनकी पेन्सन की स्वीकृति दे दी। इस प्रकार गृहस्थाश्रम का परित्याग कर वे अपने आराध्य सीताराम के लीलाक्षेत्र श्री अवध में आ गये।

अवध में आते ही उनके मन पर भगवान के प्रेम का मधुर रंग चढ़ गया। वे मन्दिर-मन्दिर में घूम-घूम कर अपने प्रियतम का दर्शन कर निहाल होने लगे तथा साधु-सन्तों के समागम से भगवान की लीला-कथा का रसास्वादन करने लगे। उनके आगमन से अवध सरस हो उठा, सरयू की निर्मल धारा को दिव्यता और सरसता बढ़ गयी। रामरसरंग मणि तथा पण्डित रामवल्लभाशरण आदि सन्तों से उनकी घनिष्ठता बढ़ने लगी। उनका जीवन सरस और पवित्र हो उठा।

'कान्ताभाव' की दीक्षा उन्होंने भागलपुर गुरहट्टा के महन्त श्री हंसकला जी से ली थी। रामानन्दी सम्प्रदाय के दीक्षागुरु रामचरण दास जी थे। महाराज हंसकला ने ही उनको रूपकला नाम प्रदान किया था। एक बार अयोध्या-निवास काल में वे रात को सोते-से उठ बैठे। लोगों ने कारण पूछा तो कहा, कि गुरुदेव का विमान जा रहा है, विदा लेने आये हुए थे। दूसरे दिन तार द्वारा पता लगा कि ठीक उसी समय हंसकला जी महाराज ने साकेत लोक के लिए महाप्रस्थान किया था। यह घटना रूपकला जी की अनन्य गुरुनिष्ठा की द्योतक है।

भगवान श्रीराम और सीता की प्रेम भक्ति-मधुररति का स्वानुभव ही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उनका जीवन-सिद्धांत था। यदि रूपकलाजी से कोई शिष्य रूप में स्वीकार करने का प्रस्ताव करता था तो उसे वे हनुमान गढ़ी के प्रसिद्ध महात्मा गोमतीदास अथवा जानकीघाट पर निवास करने वाले महात्मा पण्डित रामवल्लभाशरण जी के पास दीक्षित होने के लिये भेज दिया करते थे। सीताराम के पद-चिंतन के अतिरिक्त उनके लिये कोई और दूसरा कार्य ही नहीं था। वैशाखशुक्ल नवमी को वे जानकी जी की जयन्ती बड़ी धूमधाम से मनाते थे, उस दिन उनके प्रेमी तथा कृपापात्र जन दूर-दूर से आकर उत्सव में सम्मिलित होने का सौभाग्य प्राप्त करते थे। महात्मा रूपकला के उपास्य देव युगलस्वरूप सीताराम थे, अपने उपास्य के चरण-कैंकर्य में उन्होंने परमानन्द का अनुभव किया। सत्संग और सम्प्रदाय की मर्यादा में उनकी बड़ी निष्ठा थी। उनकी उक्ति है:

'तजि कुसंग, सत्संग नित, कीजिय सहित विवेक।
सम्प्रदाय निज की सदा, राखिय सादर टेक॥'

भगवान की प्रेमाभक्ति में व्रजगोपी प्रेम के अनुकरण स्वरूप वे पूर्ण आसक्त थे। श्री सीताराम-भक्ति के मधुर रति-क्षेत्र में उनकी उपमा व्रजरसिक स्वामी हरिदास और व्यासदास अथवा महात्मा ललित किशोरीसे दी जा सकती है। भगवान के भजन, नाम-कीर्तन और जानकी-जन्म महोत्सव को उन्होंने उपासना का प्रधान अंग स्वीकार किया। इन तीनों को उन्होंने साधन और साध्य दोनों माना। उन्होंने कहा कि हे सखि, जिसके उर में श्री जानकी के पदकमल का निवास है उसपर अनायास ही भगवान श्रीराम की कृपा हो जाती है। महात्मा रूपकला की श्री जानकी में सख्यभक्ति थी। उनकी रूप-माधुरी पर उन्होंने तन-मन, और प्राण निछावर कर दिये। उनकी वाणी में साकेत-धाम की महिमा का सुन्दर चित्रण मिलता है। उनकी एक स्थल पर उक्ति है कि रसस्वरूप आह्लादिनी आदि शक्ति जनकनन्दिनी की विहार-स्थली का नाम साकेत है। साकेत के मध्य में रमणीय विहार-स्थल है जो श्रीभवन अथवा कनक भवन कहलाता है। यह नित्यरस से परिपूर्ण और देश काल के बन्धन से परे है। मध्य भाग में एक आयताकार कुंज है जिसके दक्षिण भाग में रत्नसिंहासन अवस्थित है। उस पर सहस्त्रों सखियों से परिवेष्ठित सनातन अनादि ब्रह्म नित्य किशोर मूर्ति राम पराशक्ति सीता के साथ शोभित होते हैं। महात्मा रूपकला सदा दिव्य रस के चिंतन में लगे रहते थे, यही उनकी साधना का स्वरूप था। वे भगवान से अपने हृदय का विरह-निवेदन करते रहते थे। श्रीहनुमान

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जी में भी उनकी बड़ी श्रद्धा और भक्ति थी। श्रीमद्भगवद्गीता के बारहवें अध्याय की टीका में उन्होंने हनुमान का अत्यन्त मौलिक ढंग से चिंतन किया है:- हनुमान से उन्होंने सीताराम की भक्ति माँगी है; उनकी उक्ति है:

'पुनि-पुनि विनवों जोरि कर, मोहि कृपा करि देहु।
श्रीसिय, सियपियपदकमल, अविरल विमल सनेहु॥
पुनि गुरुकपि निजचरन रति, सियपद मम मन-गेह।
सियसेवा, दम्पति चरन, भक्ति सुसंगति देहु॥'

सीताराम की भक्ति को ही साधना के क्षेत्र में उन्होंने प्रधानता दी। उन्होंने कहा कि मैंने ज्ञान, वैराग्य, तप और योग को तिलाञ्जलि दे दी, केवल अपने परम प्रियतम की भक्ति हृदय में रख ली है। उनकी चितवन और बाकी झाँकी ही मेरी अक्षय निधि है। उनकी महत्वपूर्ण स्वीकृति है:

'प्राण तोर, मैं तोर, चित्त बुद्धि यश तोर सब।
एक तुही मोर, काह निवेदउँ तोहि पिय॥
जिय को फल, पिय, तवहि, जब आठ पहर तव नाम।
पिय तेरे सुमिरन बिना, जियवो कौने काम॥'

सन्त-साहित्य की उन्होंने भगवान की रसमयी भक्ति से श्रीवृद्धि की। सन्तों और महात्माओं की कृपा और सहायता से उन्होंने महात्मा नाभादास के भक्तमाल की टीका लिखी जो निस्सन्देह एक सफल कृति है। उनका सम्पूर्ण जीवन भक्तिमय था। वे सखी भावापन्न सन्त थे।

अन्त समय में सीता जी के अरुण चरण-कमल में उनकी अनुरक्ति इतनी बढ़ गयी कि वे कहा करते थे:

'सिया जी के अरुणारे दोउ तरवा।
इनसे लगन नहीं तो बिरथा दण्ड कमण्डल करवा॥'

अपने उपास्य का विरह सहना उनके लिये कठिन हो गया। वे विरहोन्माद में अपने प्रेमियों से मनोदशा का निरूपण किया करते थे:

'गंगा-जमुनवा के निरमल नीरवा,
पिय बिनु पियलो न जाय।'

सम्वत् १९८९ वि. की पौष शुक्ल द्वादशी को उन्होंने चालीस साल के अखण्ड अवध-वास के बाद साकेतधाम के लिये महाप्रस्थान किया। बिहार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रान्त के अमावा राज्य की अधीश्वरी रानी साहब ने उनको एक घड़ी दी थी। रूपकला ने उसका नाम रानी घड़ी रखा था। अन्त समय से थोड़ी देर पहले वह घड़ी बन्द हो गयी। उनकी आज्ञा से फिर चलायी गयी और आधे घण्टे के बाद लगभग तीन बजे रात को महात्मा रूपकला सदाके लिये युगल स्वरूप के चरणों में लीन हो गये। महाप्रयाण के समय रानी घड़ी फिर बन्द हो गयी। वे उच्च कोटि के रसिक थे, विरही और प्रेमी, विरक्त और भक्त दोनों थे। उन्होंने सौन्दर्य ब्रह्म राम के रसीकरण से उनकी आह्लादिनी शक्ति सीता की भक्ति प्राप्त की। अवंधक्षेत्र में रस राज्य स्थापित किया।

रचना

प्रेम गंग तरंग, प्रणयबतीसी, भक्तमाल की टीका, रामायण रस विन्दु मानस अष्टयाम आदि रूपकला की अमर कृति हैं।

वाणी

सुधि न लीन्हि पिय बिरहिन हिय की॥
सखि मोहि कत दिन तरसत बीते,
सुधि न लीन्हि पिय बिरहिन हिय की।
आह धुआँ मुख हिय बिरहागी,
ठाड़ि जरों जैसी बाती दिय की॥
अधिक दाह चित चातक कोकिल,
विरह अनल जिमि आहुति घिय की।
सब उर व्यापक अन्तर जामी
जानत हैं पिय रुचि तिय जिय की॥
साँचहु स्वप्नेहु कब लगि देखि हौं,
मधुर मनोहर छवि सिय पिय की।
क्षमानिधान विलोकि हैं निज दिसि,
करि हैं खोज न मेरे किय की॥
कृपानिधान दया सुख सागर,
मनि हैं, सखि, विनती लघु तिय की।
'रूपकला' विनवति हनुमत ही,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चन्द्रकला अरु गिरिवरधिय की ।।
एको उपाय न सूझत आली,
मोहि आसा केवल श्रीसिय की ।।
मनि मानस, स्वाती जलद, जल ससि अवध किसोर।
'रूपकला' फणि हंसिनी, चातक मीन चकोर ।।
धन्य धन्य जे ध्यावही, चरण चिह्न सियराम के ।।
धनि धनि जन जे पूजहि, साधुसंत श्रीधाम के ।।
श्री जानकि पद कंज सखि, करहि जासु उर ऐन।
विनु प्रयास तेहि पर द्रवहिं, रघुपति राजिव नैन ।।
खात पियत बीती निसा, अचवत भा भिनसार।
'रूपकला' धिकधिक तोहि, गर न लगायो यार ।।
दोष-कोष मोहि जानि पिय, जो कछु करहु सो थोर।
अस विचारि अपनावहु, समुझि आपनी ओर ।।
ज्ञान योग वैराग तप, दीन्हेउ सकल बहाइ।
बांकी चितवन पीय की, राख्यों हिय अटकाइ ।।
तन-मन-धन सब वारि, मन चितहिय अति प्रेम ते।
सम्मुख आँखिन चारि, चितइये राजिव नैन-छवि ।।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महात्मा विजय कृष्ण गोस्वामी

'सत्यव्रतं सत्यपरंत्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये।
सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः॥'

सत्य जिनका व्रत है, जो सत्य परायण, तीनों काल में सत्य, सत्यस्वरूप, संसार के उद्भवस्थान और अन्तर्यामी रूप से सत्य में निहित हैं तथा सत्य और ऋत जिनके नेत्र हैं उन सत्य के सत्य आप सत्यस्वरूप की हम शरण में हैं।

—श्रीमद्भागवत १०।२।२६.

महात्मा विजय कृष्ण गोस्वामी ने सत्यरसामृत, ब्रह्मानन्द के वितरण के लिये शरीर धारण किया था, उन्होंने आजीवन सत्य-ब्रह्म के शिव-मय दिव्य सौन्दर्य का चिंतन किया, असंख्य प्राणियों को अपने ब्रह्म-संगीत से मोहित कर लिया। निस्सन्देह उनकी उपस्थिति से केवल शस्यश्यामला, कोमल कान्तिमयी स्वर्णिम बंगभूमि ही नहीं, आसेतु हिमाचल की दिव्य गरिमा धन्य हो गयी। वे रामकृष्ण और विवेकानन्द के समकालीन थे; योगी गम्भीरनाथ की साधना और तपस्या से पवित्र उत्तरापथ में संचरण कर उन्होंने ब्रह्म के दिव्य गान से भारत की धरती के कण-कण पवित्र कर दिये। ब्राह्मसमाज के सिद्धान्तों को भारतीय शास्त्र मर्यादा और भागवत चेतना की कसौटी पर कस कर उन्होंने सांस्कृतिक और आध्यात्मिक संरक्षण तथा जागरण में महान सहयोग दिया। उन्होंने अपने समय की अध्यात्म-चेतना को भागवत रस से सम्पूर्ण संप्लावित कर दिया। महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के उपदेशामृत-पान से उनकी अन्तरात्मा ज्योतित हो उठी, महात्मा विजय कृष्ण गोस्वामी ने सत्य का साक्षात्कार किया। विजय कृष्ण गोस्वामी का जीवन भव-बन्धन से मोक्ष और राष्ट्रीय अभ्युत्थान अथवा निर्माण का प्रतीक था। उनके जीवन का अधिकांश बंगाल में ही बीता। वे महात्मा, भक्त और सन्त—सब के अद्भुत और असाधारण समन्वय थे।

महात्मा विजय कृष्ण गोस्वामी ने परम भागवत कुल में जन्म लिया था। उनके पूर्वज चैतन्य देव के समकालीन परम वैष्णव, अद्भुत ब्रह्मानन्दी कृष्ण-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भक्त अद्वैताचार्य महाशय थे जिन्होंने शान्तिपुर में जन्म लेकर, नवद्वीप धाम को अपनी सरस भगवद्भक्ति से गौरवान्वित कर महाप्रभु चैतन्य की रसमयी लीला का विस्तार किया था, उनके 'जीवे दया नामे रुचि' महा मन्त्र ने बंगाल को व्रज में परिवर्तित कर दिया था। विजय कृष्ण के शरीर में अद्वैताचार्य महाशय का पवित्र रक्त प्रवाहित था। अद्वैताचार्य महाशय की जीवन-कथा से उन्होंने अपार प्रेरणा प्राप्त की थी। वे ऐसे परम पवित्र कुल में भगवान की कृपा से जन्म प्राप्त कर अपने आप को अमित सौभाग्यशाली समझते थे। अपने पूर्वजों के प्रति उनके मन में अगाध श्रद्धा, असाधारण गौरवबुद्धि और पूज्य भावना थी। भगवद्भक्ति उनकी पैतृक सम्पत्ति थी।

बंगाल प्रान्त के नदिया जनपद में परम पवित्र भगवती भागीरथी के तट पर शान्तिपुर में उनका निवास स्थान था। विजयकृष्ण गोस्वामी के पिता आनन्द किशोर लब्धप्रतिष्ठ व्यक्ति थे। उनकी पत्नी का नाम स्वर्णमयी थी। दैवयोग से माता स्वर्णमयी अपने नैहर गयी हुई थीं। स्वर्णमयी का नैहर नदिया जनपद के शिकारपुर ग्राम के निकटवर्ती दहकूल ग्राम था। उन्होंने सम्वत् १८९८ वि. में झूलन पूर्णिमाको (सन् १८४१ ई २ अगस्त को) वियजय कृष्ण गोस्वामी को जन्म दिया। शान्तिपुर और दहकूल दोनों ग्रामों में प्रसन्नता और आनन्द की बाढ़ आ गयी, स्वजन और सगे सम्बन्धी नवजात के आगमन से हर्षित हो उठे। विजय कृष्ण के माता-पिता बड़े सात्विक स्वभाव के थे, उन्होंने अपने प्राणप्यारे पुत्र के सुचारु पालन-पोषण में अमित सावधानी का परिचय दिया। कभी विजय कृष्ण मामा के घर रहते थे तो कभी अपने घर शान्तिपुर में रहते थे। इस प्रकार उनकी शिक्षा का कोई निश्चित क्रम न था, कभी वे शान्तिपुर की पाठशाला में पढ़ने जाते थे तो कभी दहकूल के विद्यालय में शिक्षा पाते थे। बचपन से ही माता-पिता के सात्विक सम्पर्क के कारण साधु -सन्तों और देवी-देवता तथा भगवान में उनकी श्रद्धा बढ़ती गयी। वे अद्भुत प्रतिभाशाली और बुद्धिमान थे। यद्यपि देखने में बड़े चंचल थे पर स्वभाव कोमल और मधुर था। मन में दया का भाव था। घर में भगवान गोविंद देवकी पूजा होती थी। विजय कृष्ण बड़े प्रेम से अपने गृहदेवता गोविंद देव को साथ में खेलने के लिये बुलाया करते थे और जब यह देखते थे कि भगवान नहीं आते हैं तब उन पर क्रोध प्रकट करते थे। इस प्रकार बाल्यावस्था में ही उनमें भगवान के प्रति विश्वास और अगाध प्रेम की वृद्धि होने लगी। ग्राम पाठशाला का अध्ययन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समाप्त होने पर संस्कृत के अध्ययन के लिये वे कलकत्ता आये। . . उन्हें हिन्दू शास्त्रों के अध्ययन का सुंदर अवसर मिला। कलकत्ता के लब्ध प्रतिष्ठ विद्वानों के सम्पर्क में उन्होंने बहुत कुछ सीखा। उनकी देवेन्द्रनाथ महर्षि से घनिष्टता बढ़ गयी, उनके उपदेशों से उन्हें आत्मज्ञान का प्रकाश मिला। उन्होंने मेडिकल कालेज में प्रवेश किया। थोड़े समय के बाद उनका विवाह कर दिया गया। उनकी पत्नी का नाम योगमाया देवी था जो बड़ी सती साध्वी और उदात्त चरित्र की रमणी थीं। विजयकृष्ण गोस्वामी ने गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के वाद महर्षि देवेन्द्र नाथ के उपदेशों से प्रभावित होकर ब्राह्म धर्म की दीक्षा ले ली और मेडिकल कालेज की शिक्षा छोड़ दी। महर्षि देवेन्द्रनाथ के मुख से निकले उपदेशों ने उनके हृदय में भागवत माधुर्य भर दिया। महात्मा विजय कृष्ण गोस्वामी ने ब्राह्म समाज के लोगों में निर्मल भगवद् उपासना-पद्धति का प्रचार किया, ब्राह्म समाज के मूलमें लगे वैदेशिकता के कीड़ों का अन्त कर डाला। पहले उन्होंने पूर्व वंगीय जनपद ढाका, खुलना, नोआखाली और मैमनसिंह आदि में ब्राह्मसमाज का प्रचार किया, जनता को नवीन ज्ञान-प्रकाश में भागवत चेतना दी, ब्रह्म-उपासना की विधि समझायी; उसके बाद केशव चन्द्रसेन के साथ उत्तर-पश्चिम में प्रचार-यात्रा की। देश के कोने-कोने में ब्राह्म-समाज का प्रचार करना ही उनका जीवन-व्रत था। कुछ दिनों के बाद उन्होंने स्वतन्त्र रूप से प्रचार-कार्य किया।

वे कलकत्ता से शान्तिपुर आते-जाते रहते थे। उन दिनों उनके मन में भगवद्भक्ति बड़े वेग से बढ़ रही थी। एक बार वे शान्तिपुर आये हुए थे। उनके जीवन पर नवद्वीप के चैतन्यदास वावा ने बड़ा प्रभाव डाला। शान्तिपुर निवास-काल में महात्मा विजय कृष्ण गोस्वामी भगवान के भजन के लिये बड़े व्याकुल रहते थे, सदा भगवच्चिंतन में लगे रहना ही उनका दैनिक कार्यक्रम हो गया था। वे नित्य भागीरथी के तट पर वासन्ती ज्योत्सना में विचरण करते थे तथा उद्विग्न होकर अपने प्रेमास्पद की खोज करते थे। दिव्य प्राकृतिक सौन्दर्य की पवित्रता का नयनों में आलोड़न होते ही उन्हें अपने प्रियतम का स्मरण हो जाया करता था। एक दिन विजय कृष्ण गोस्वामी ने अपने मन की भावना शान्तिपुर-निवासी हरिमोहन प्रामाणिक के सम्मुख रखी, हरि मोहन ने उनके भगवद्प्रेम से विशेष प्रसन्न होकर उन्हें पढ़ने के लिये चैतन्य चरितामृत ग्रन्थ दिया। महात्मा विजय कृष्ण गोस्वामी के हाथ में चैतन्य चरितामृत ग्रन्थ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

का आना था कि उनके रोम-रोम में अखण्ड और अतर्क्य भगवन्निष्ठा जाग उठी। जीव मात्रके प्रति दया, भगवन्नाम में भक्ति और रुचि तथा अनन्याश्रय की भावना से उनके विरहदग्ध हृदय को बड़ी शान्ति मिली।... एक दिन विजय कृष्ण चैतन्य दास बाबा से मिलने गये, उनके साथ उनके बन्धु नीलकमल देव थे। उन्होंने बाबा से भगवद्भक्ति-लाभ का उपाय पूछा। चैतन्य दास बाबा के रोम-रोम सिहर उठे, उन्होंने बड़े प्रेम से विजय कृष्ण की ओर देख कर कहा कि भक्ति तो तुम्हारे ही घर की सम्पत्ति है, अद्वैताचार्य के वंशजों के रोम-रोम में भक्ति का निवास है। बाबा ने विजय कृष्ण से कहा कि यदि प्रेम-भक्ति के लाभ की मन में इच्छा है तो संसार के प्रति अनासक्त हो कर दीन हीन और अकिंचन अवस्था का वरण कर लेना चाहिये। मन में अहंकार की एक कणिका भी रहने पर भगवान की भक्ति नहीं मिल सकती है। विजय कृष्ण के मन पर चैतन्य दास बाबा के कथन का बड़ा प्रभाव पड़ा। उनके मन में भगवद्भक्ति-प्राप्ति की आकांक्षा जाग उठी। महात्मा विजय कृष्ण गोस्वामी ने भक्ति-व्रत ग्रहण किया। एक बार वे शान्तिपुर से नवद्वीप जा रहे थे। रास्ते में कृष्णनगर के नगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय के घर वे ठहर गये। उन्होंने नगेन्द्रनाथ से कहा कि मुझे चैतन्य दास बाबा ने भक्तिपरक उपदेश देकर कृतार्थ कर दिया। उन्होंने मुझे भोजन करने के लिये दिया, मेरे भोजन करने के उपरान्त वे स्वयं मेरे पत्तल पर भोजन करने आये, मैंने निवेदन किया कि मैं ब्रह्म ज्ञानी हूँ, मेरे पत्तल पर भोजन करना निषिद्ध है। चैतन्यदास बाबा ने कहा कि तुमने अद्वैत के वंश में जन्म लिया है, तुम परम भागवत हो। मैं उनके सम्पर्क से धन्य हो गया।

एक दिन वे शान्तिपुर में गंगातट पर रात में विचरण कर रहे थे। प्रकृति शान्त थी, चाँदनी रात थी, मन्द-मन्द समीर बह रहा था, वे भगवच्चिंतन में विमुग्ध हो उठे। उन्होंने निश्चय किया कि बिना भगवद्भक्ति और दिव्य प्रेम के ब्राह्म समाज का कल्याण नहीं हो सकता। दूसरे दिन सबेरा होते ही ब्राह्म-समाज में भक्तिरस भरने के लिये कलकत्ता चले गये। उन्होंने नवीन ब्राह्म समाज का जीवन सरस बना दिया। भक्तिविषयक उपदेश और रचना में लग गये, संगीतों की रचना की जो भक्तिरस से परम समृद्ध थे। पूर्व बंगाल की यात्रा की और घर घर में भक्ति चेतना का उदय संभव किया। उनकी यात्रा सफल हो गयी। उन्होंने ब्राह्म समाज के साधारण नियमों की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट किया कि सदा परमेश्वर की महिमा का चिंतन करते रहना

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चाहिये, उनमें भक्ति और श्रद्धा सुदृढ़ करनी चाहिये। निरन्तर परमात्मा के स्मरण और प्रार्थना में अपने समय का सदुपयोग करना चाहिए। ज्ञान, और कर्म के समन्वय से ब्रह्मानन्द की माधुरी का रसास्वादन करना चाहिये। महात्मा विजय कृष्ण गोस्वामी ने साधारण ब्राह्म समाज की स्थापना की और उसके प्रचार में तन-मन से लग गये। उन्होंने भक्ति साधना का व्रत लिया। वे निर्जन स्थान में तप करने के लिये आकुल हो उठे। योग-साधना के साम्राज्य में प्रवेश करना चाहते थे। वे तप करने के लिये गया आये। गया कि पहाड़ियों में उन्होंने परिभ्रमण कर सत्य तत्व के अनुसन्धान का व्रत लिया। उन दिनों सिद्धपुरुष परम योगी गम्भीर नाथ जी महाराज कपिलधारा पहाड़ी पर तप कर रहे थे। विजय कृष्ण गोस्वामी ने आकाशगंगा पहाड़ी को अपना तपोस्थान चुना। वे कभी-कभी आकाशगंगा से कपिल धारा पहाड़ी पर गम्भीर नाथ जी महाराज से यौगिक साधना के सम्बन्ध में विचार करने आया करते थे।

कभी-कभी रात को वे उन्मत्त की भाँति आकाशगंगा से उतर कर कपिल धारा पहाड़ी की ओर बाबा गम्भीर नाथ के सितार-वादन से मुग्ध होकर दौड़ पड़ते थे। कपिलधारा पहाड़ी की चोटी पर बैठ कर नीख आधीरात में बाबा गम्भीर नाथ सितार पर भजन गाया करते थे। विजय कृष्ण गोस्वामी झाड़ियों और काँटों को रौंदते हुए गम्भीरनाथ के पास पहुँच जाते थे। एक बार चाँदनी रात थी। आधीरात के समय गम्भीर नाथ जी सितार बजा कर भजन गा रहे थे। विजय कृष्ण गोस्वामी ने उन्मत्त होकर शिष्यों को जगाया और कहा, 'सुनो, कितना मधुर भजन बाबा गम्भीर नाथ भगवान के चरणों में समर्पित कर रहे हैं।' विजय कृष्ण गोस्वामी योगी गम्भीर नाथ से बहुत प्रभावित थे। वे उन्हें प्रेम की सजीव मूर्ति कहा करते थे। महात्मा विजय कृष्ण गोस्वामी ने गम्भीर नाथ जी से गुरुतत्व के सम्बन्ध में बात की। योगी ने संकेत किया कि तुम्हें गुरु की प्राप्ति होगी और उनके संकेतानुसार एक गुप्त संतने जो आत्मविज्ञापन से बहुत दूर रहते थे विजय कृष्ण को दीक्षित किया। आकाशगंगा-निवास-काल में उन्होंने गुरुतत्व का बोध प्राप्त किया। गया से विजय कृष्ण कलकत्ता आये। वे स्वामी रामकृष्ण परमहंस से मिलने दक्षिणेश्वर गये। उन्होंने गेरुआ वस्त्र-धारण कर लिया था, गृहस्थाश्रम का परित्याग कर दिया था। रामकृष्ण परमहंस से अध्यात्म पथमें निरन्तर बढ़ते रहने का उन्होंने आशीर्वाद प्राप्त किया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वे भगवद्भक्ति प्रचार में लग गये। उन्होंने 'साधारण ब्राह्म समाज' के प्रचारक के पद का त्याग कर दिया। उन्होंने भगवान से निवेदन किया कि हे प्रभु मेरी यही वासना है कि आप के श्रीचरण सदा मेरे हृदय में रहें, इससे मेरा मन शान्त होगा, दुख मिट जायेगा तथा अमूल्य धन की प्राप्ति होगी। मैंने यह सुना है कि विना पापी या पुण्यात्मा का विचार किये ही भव सागर से आप पार उतार देते हैं इसलिये मैंने आप की शरण ली है। उन्होंने मधुर कोमल-कान्त पदावली में आत्मनिवेदन किया:

'प्रेम गिरि कन्दरे योगी हइये रहिब,
आनन्द निर्झरवारि दुहाते पान करिव।
मिटाते विषय तृषा संसारेर कूप जले आर जाव ना,
हृदय करंग भरि शांन्ति वारि पान करिब।'

वरीसाल के अश्विनी कुमार दत्त, कृष्णनगर के नगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय तथा, मनोरञ्जन गुह ठाकुर और नवकुमार विश्वास आदि ने उनके सम्पर्क और पथ-प्रदर्शन से ब्रह्मानन्द का मर्म– रहस्य समझा।

गया से लौटने पर उन्हें पारिवारिक वियोग-दुख सहना पड़ा। वे अपने परिवार के साथ कभी कलकत्ता में रहते थे तो कभी शान्ति पुर चले जाते थे। पुत्र और कन्या के विवाह के उपरान्त उनकी पत्नी का देहावसान हो गया। गोस्वामी महोदय ने पत्नी के समाधि-मन्दिर की स्थापना की।

विजय कृष्ण गोस्वामी के जीवन में अनेक विलक्षण घटनाओं का उल्लेख मिलता है पर उनमें से एक तो अत्यन्त मार्मिक है। एक बार ब्राह्म समाज के प्रचार-कार्य के लिये वे लाहौर गये हुए थे। एक धर्मशाला में वे ठहरे हुए थे। उन्होंने सोचा कि संसार की दृष्टि में तो मैं उपदेष्टा हूँ पर मेरा जीवन पाप-चिंता के अधीन है। इसकी रक्षा करना अनावश्यक है। आधी रात का समय था। उन्होंने आत्महत्या का निश्चय किया। शय्या का परित्याग कर रात की नीरवता में वे भगवती रावी के तट पर गये। उन्होंने डूब कर तन-त्याग करना चाहा। वे रावी की गोद में अवस्थित होने वाले ही थे कि उन्हें एक महात्मा का दर्शन हुआ। महात्मा ने विजय कृष्ण गोस्वामी को समझाया कि तन का त्याग करने से पाप का नाश नहीं होता है। अभी तुम्हारे शरीर-नाश का समय नहीं है। ईश्वर सब कुछ पहले से निश्चित रखते हैं। विश्वेश्वर परमात्मा की लीला

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

का दर्शन करो, भला होगा। महात्मा इतना कह कर अन्तर्धान हो गये। विजय कृष्ण गोस्वामी ने आत्महत्या का विचार छोड़ दिया।

ब्राह्म समाज का प्रचार ही उनके जीवन का परम पवित्र कार्य था तथा भगवच्चिंतन ही सिद्धान्त था। उन्होंने न तो कोई नवीन सम्प्रदाय को ही जन्म दिया और न कोई नया मत ही चलाया। ईश्वर-प्रेम में रात-दिन उन्मत्त रहना ही उनके जीवन का ध्येय था। उन्होंने कहा कि भक्ति धर्म का प्राण है, जीवन है, जीव की शान्ति है; पापी की गति है– भक्तिशून्य धर्म का जीवन में कोई स्थान नहीं है। ब्राह्म धर्म का प्राण भक्ति है। ब्रह्म के चरण की उपासना परम शान्ति का दान करती है। एक बार उनसे केशव चन्द्रसेन ने कहा कि किसी नूतन मतका अवलम्बन करो। गोस्वामी महोदय ने विनम्रतापूर्वक कहा कि मैं नया-पुराना कुछ नहीं जानता हूँ। भगवल्लाभ के लिये मैंने ब्राह्म समाज में प्रवेश किया, मुझे प्रभु के सत्स्वरूप के दर्शन की आकांक्षा है। आशीर्वाद दीजिये। वे सत्य-तत्व के महान अन्वेषक थे। उन्होंने अनन्त, असीम, सच्चिदानन्द भगवान की भक्ति की, उपासना की। उन्होंने भगवान को सर्वव्यापी, निराकार और चैतन्य स्वरूप बताया। अलौकिक, अप्राकृत तथा सर्वथा दिव्य ब्रह्म तत्व का गान गाया। उन्होंने भगवान के श्रीचरणो में निवेदन किया, उनका एक गीत ह :

'ओहे जगदीश आमार आर केह नाइ
तोमा बिना ए संसारे।
आमार केवल पापे मति,
ओहे, कि हइबे गति बलहे आमारे।
आमि देखितेछि सब, एइ जे वैभव,
एक सकल नय नाथ आमारि कारण।
आमि तोमार कारणे, दयामय ए संसार अरण्ये,
ओह आसियाछि तोमाय पाइवार तबे।'

उन्होंने स्पष्ट कहा कि हे दीनबन्धु मैं और कुछ नहीं चाहता। मैं नराधम, अबोध और मूर्ख हूँ। हे दयालु, हे कंगालधन, आप बड़े दयालु हैं। यदि आप दयालु होकर ऐसा बोध न करायेंगे तो रक्षा किस तरह होगी। मेरे हृदय धन, मैं कुछ नहीं जानता हूँ, किस तरह बोल सकता हूँ। मेरी इच्छा है कि मेरे रोम-रोम में आप के नाम का गुंजार हो। आप मेरे प्राण की वस्तु हैं, मैं आप की शरण में हूँ। विजय कृष्ण गोस्वामी ने साधना के माध्यम से कहा कि हे प्रभु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आप मेरे हृदय के स्पर्शमणि हैं, आप का दर्शन मेरें नयनों का भूषण है, मेरे मुख की शोभा आप का नाम-संकीर्तन है। आप के चरण की सेवा मेरे हाथों का अलंकार है। आप का नामश्रवण ही मेरे कानों का आभूषण है। मैंने प्रेममणि-हार धारण कर लिया है तो अब कौन-सा भूषण बाकी ही रह गया। यह है महात्मा विजय कृष्ण गोस्वामी की साधना का स्वरूप। वे सदा भगवान से दर्शन देने की प्रार्थना किया करते थे। उनकी उक्ति है:

'वासना करेछि मने, देखिबे तोमाय,
तोमार करुणा बिना ना देखि उपाय हे।
पापे मलिन आमि दिवस यामिनी।
दया करि त्राण कर देखि दीन हीन हे।
दयामय नाम तोमार शुनिया श्रवणे
लयेछि शरण पिता देह दरशन हे।'

उन्होंने बताया कि ईश्वर-भक्ति तो प्राणीमात्र का अधिकार है। भक्ति में विचार नहीं है, वह साधनातीत है। अहैतुकी है। वे योगसाधना को बड़ा महत्व देते थे। जीवन के अन्तिम दिनों में उन्होंने अगणित शिष्यों को योग-साधना की शिक्षा दी। हरिद्वार, प्रयाग आदि के कुम्भ मेलों में सम्मिलित हुए। उन्होंने कुछ दिन वृन्दावन में भी निवास किया। वृन्दावन में उन्होंने ईश्वर भक्ति का प्रचार किया, वैष्णवों की उनमें श्रद्धा हो गयी। वे तीर्थभ्रमण को धर्म साधन का बहुत बड़ा अंग मानते थे।

उन्होंने जीवन का अन्तिम समय पुरी में बिताया। चैतन्य महाप्रभु के नीलाचल का दर्शन उन्हें आकृष्ट करने लगा। एक दिन कलकत्तानिवासी काल में वे पुरी का वर्णन सुन कर प्रेम विभोर हो गये। 'शचीनन्दन, शचीनन्दन' कह कर चैतन्य महाप्रभु के प्रेम में उन्मत्त हो गये। उन्होंने कहा कि मेरा कोई संगी-साथी नहीं है। मैं जगन्नाथ देव का दर्शन करने के लिये पुरी जाऊँगा। मेरे पूर्वज अद्वैताचार्य ने पुरी में चैतन्य देव की कृपा से जगन्नाथ का दर्शन कर अपना जीवन धन्य कर लिया था। मेरे पिताने शान्तिपुर से साष्टांग दण्डवत करते-करते पुरी की यात्रा की थी, उनके पद क्षत-विक्षत, और रक्ताभ हो गये, उनमें छाले पड़ गये पर वे निरस्त न हो सके। मैं लाठी लेकर पुरी जाऊँगा, मैं पैदल जाकर चैतन्यमहाप्रभु की लीला माधुरी से सम्पन्न जगन्नाथ क्षेत्र में अपना जीवन कृतार्थ करूँगा। मेरे इस पवित्र कर्म से अद्वैताचार्य की आत्मा को बड़ी शान्ति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मिलेगी। वे पुरी की ओर चल पड़े। उन्होंने कहा कि मैं अकेला जाऊँगा। मेरे साथ कोई नहीं जायेगा। विदा का दृश्य बड़ा ही करुण था। उन्होंने कहा कि आप लोग मुझे आशीर्वाद दें कि जगन्नाथ जी मुझे अपना लें। वे पचास शिष्यों के साथ पुरी में उपस्थित हुए। पुरी-प्रवेश के समय वे प्रेममग्न हो कर नृत्य करने लगे। उन्होंने समुद्र में स्नान कर भगवान जगन्नाथ का दर्शन किया। उन्होंने ज्योतिस्वरूप चिदानन्दघन जगदाधार की झाँकी देखी, प्रभु के पादपद्मों में निवेदन किया, उनका पद है:

'चिर दिन ज्वलिव कि हृदय अनले प्रभो।
कै विषय वासना, पापेर वेदना एखनोत घूचिल ना।
देउ दरशन, जुड़ाइ हे नयन, नाहि प्रयोजन अन्य कोनधन।
प्रभु तोमार चरण अमूल्य रतन, आमि शुनेछि हे।
दुखानले दग्ध हल रे जीवन, ओहे दीनानाथ लइलाम शरण।
दरिद्रेर दुख कर हे मोचन, दरिद्रेर दुख हारी हे।'

वे नित्य समुद्र-स्नान करने के लिये जाया करते थे। समुद्रतट के स्वर्णिम बालुका-कणों में लोट-लोट कर बड़े उल्लसित होते थे। पुरी में उन्होंने दरिद्र नारायण की सेवा का व्रत लिया था। देह क्षीण होने पर शिष्यों ने कलकत्ता चलने का प्रस्ताव किया तो कहा कि मेरे एक मात्र आश्रय जगन्नाथ देव हैं, मैं उन्हें छोड़ कर कहीं नहीं जा सकता। महाप्रसाद के साथ उन्हें किसी दुष्ट आत्मा ने विष खिला दिया। उनका शरीर रुग्ण हो चला। सम्वत् १९५६ वि. के ज्येष्ठ मास की कृष्ण द्वादशी को दस बजे दिन के लगभग उन्होंने ब्रह्मनिर्वाण प्राप्त किया। पुरी में नरेन्द्र सरोवर के उत्तर शिष्यों ने उन्हें समाधि प्रदान की। उनका जीवन भक्ति ज्ञान और कर्म का मधुर समन्वय था। वे अलौकिक प्राणी थे, अद्भुत महात्मा थे।

रचना

शिष्यों और ब्राह्म बन्धुओं को लिखे गये पत्र तथा दिये गये उपदेश में उनके विचार प्राप्य हैं। अनेक ब्रह्म-संगीत की रचना की।

वाणी

असत्य का परित्याग करो। कुसंस्कार का परित्याग कर सत्य के शरणापन्न हो जाओ। तभी सत्य का साक्षात्कार सम्भव है, मुख से जो बोलो और मन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

में जिसका विश्वास करो उसे कार्य में चरितार्थ करो, तभी वास्तविक स्वाभाविक जीवन का लाभ होगा।

स्वार्थपरता ही समस्त पापों का मूल है। साधारण औषध से इस रोग का निवारण नहीं होता है। संसार असार है, अनित्य है; साधु संग में इसका चिन्तन और आलोचन करते-करते इस रोग का निवारण होने पर वैराग्य का उदय होता है।

• हे प्रभु, आप ही सब कुछ हैं। जीवन में आप की कृपा कभी नहीं भूलूंगा। हे ठाकुर, आप सर्वस्व हैं। समस्त ब्रह्माण्ड आप की रचना है। आप की दया का परिचायक है। आप माता-पिता और भाई-बहिन-सब कुछ हैं। आप दाता, राजा और प्रजा हैं। सार, वस्तु और प्रयोजन हैं। इहलोक, स्वर्ग लोक, यमलोक, सत्य-लोक, जनलोक, तपोलोक, ब्रह्मलोक, पितृलोक, मातृलोक, वैकुण्ठ और गोलोक सब कुछ हैं। मैं कुछ नहीं हूँ। आप हमारे घर-बार हैं, दर्पण हैं। आप मधुर हैं, मधुर हैं, मधुर हैं। मधुर, मधुर, मधुर हैं।

भक्ति को कृपण के धन की तरह गुप्त रखना होगा। शास्त्रकार युवती के स्तनों के साथ उसकी तुलना किया करते हैं। बालिका खुले शरीर घूमती-फिरती है पर युवती होने पर स्तनों को वस्त्र से ढक लेती है। स्वामी के अतिरिक्त-पिता, माता, गुरु-कोई भी उन्हें देख नहीं पाता है। भक्ति का भी यही रूप है। उसे भी सावधानी से सभी के सामने गुप्त रखना चाहिये।...भक्ति गोपनीय है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्त ललित किशोरी

कदा नु वृन्दावनकुञ्जमण्डले
भ्रमम्भ्रमं हेमहरिन्मणिप्रभम्।
संस्मृत्य संस्मृत्य तदद्भुतं प्रियं
द्वयं द्वयं विस्मृतिमेतु मेऽखिलम्॥

वृन्दावन के निकुञ्जों में घूम-घूम कर स्वर्ण और हरितमणि के समान कान्ति वाले राधा-कृष्ण के अति अद्भुत और प्रिय युगल रूप का स्मरण कर मैं कब सब कुछ भूल जाऊँगा ?

—वृन्दावनशतक

सन्त ललित किशोरी भक्तिरस के सख्यभाव के परम मर्मज्ञ थे। उन्होंने जीवन के अन्तिम समय तक राधा रानी और नन्दनन्दन श्रीकृष्ण के सौन्दर्य, माधुर्य और सरस तथा चिन्मय प्रेम से समुज्ज्वल वृन्दावन के रमणीय भागवत केलि कुंज-मण्डल में निवास कर रसब्रह्म की उपासना की। उन्होंने निगमागम से परे अगम राधातत्व के अनुभव से अपना जीवन सफल कर लिया। ललित किशोरी और उनके सहोदर ललित माधुरी ने अपनी व्रजरस-अनुभूति से असंख्य प्राणियों को भवसागर से पार उतार दिया। दोनों में अगाध प्रेम था और दोनों के इष्ट राधाकृष्ण थे। ललित किशोरी की वाणी का सिन्दूर भागवत सौन्दर्य से अमर और चिन्मय हो उठा। रसिकवर कविहृदय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की महात्मा ललितकिशोरी के प्रति श्रद्धाञ्जलि है :

'प्रथम लखनऊ बसि श्रीवन सों नेह बढ़ायो।
तहँ श्री जुगल सरूप थापि मन्दिर बनवायो।
द्वापर को सुखरास रास कलिजुग में कीनी।
सोइ भजन आनन्द भाव सहचरि रंगभीनी।
लाखन पद ललित किसोरिका नाम प्रगटि बिरचे नये।
कुल अग्रवाल पावन करन कुंदन लाल प्रगट भये॥'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विक्रमीय बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में लखनऊ में राजनैतिक क्रान्ति उपस्थित थी। देश के कोने-कोने में अंग्रेजी शासन के प्रति विद्रोह की आग भड़क रही थी। लखनऊ के नवाबी महलों में षड़यन्त्र और पारस्परिक कलह का बोलबाला था। अंग्रेजी कम्पनी सरकार की कुदृष्टि लखनऊ की सुखशान्ति पर पड़ चुकी थी। ऐसी राजनैतिक स्थिति में नवाबी शक्ति के पतनकाल में महात्मा ललित किशोरी ने अपने जन्मस्थान लखनऊ का परित्याग कर वृन्दावन के लिये प्रस्थान किया। उनके साथ उनके भाई शाह फुन्दनलाल (ललित माधुरी) ने भी वृन्दावन जाकर सखी भाव से भगवान कृष्ण और उनकी प्राणप्रियतमा की उपासना आरम्भ की।

लखनऊ के जौहरियों में शाह गोविन्दलाल का नाम उन दिनों अमित प्रसिद्ध था। लखनऊ के नवाबों से भी उनकी अच्छी बनती थी। शाह कुन्दन लाल और फुन्दन लाल दोनों उन्हीं के सगे पुत्र थे। दोनों भाइयों की जोड़ी राम लक्ष्मण की जोड़ी थी। उनमें बड़ा प्रेम था। दोनों श्रीकृष्ण के भक्त थे। उनका मन घर गृहस्थी में नहीं लगता था। बड़े भाई कुन्दनलाल–महात्मा ललित किशोरीने व्रज में निवास कर राधाकृष्ण का भजन करने का संकल्प किया। शाह फुन्दनलाल–ललितमाधुरी ने उनसे साथ ले चलने का विनम्रतापूर्वक आग्रह किया। ललित किशोरी से कहा कि भैया, वृन्दावन तो परमानन्दमय है, उसमें नवल शरद-निशि, नव वसंत, नव राका, नव चन्द्रमा, नव मोर, पिक, कीर कोकिला, मलिन्द की छवि परम रमणीय है, शीतल मन्द सुगन्धित समीर सदा राधा-माधव रटता रहता है; उसमें नवल किशोर-किशोरी रास-रस-केलि करते रहते हैं। मुझे वृन्दावन ले चलिये। ललित किशोरी उनके अनुराग से परम प्रसन्न हुए और उन्हें भी अपने साथ लेते गये। महात्मा ललित किशोरी ने वृन्दावन के लिये प्रस्थान करते समय अपने मन को समझाया :

'मन पछितैहो भजन बिन कीने।
धन-दौलत कछु काम न आवै,
कमल-नयन गुन चित बिन दीने।
देखत को यह जगत संगाती,
तात-मात अपने सुखभीने।
'ललित किसोरी' दुंद मिटै ना,
आनन्द कन्द बिना हरि चीने।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उनके मन में निर्मल वैराग्य का उदय हो गया। वे सावधान हो गये। जागतिक मायामोह का अन्त हो गया। उन्होंने संसार को तिलाञ्जलि देकर भगवान की रस-केलि अपने अंक में भर ली। कुल की भौतिक मर्यादा का परित्याग कर वृन्दावन के रसराज्य में प्रवेश किया।

वृन्दावन में महात्मा ललित किशोरी के आगमन से नवीन प्राण आ गया। वे प्रभु की प्रेम-लीलाओं का गान करने लगे।उन्होंने राधारमणीय गोस्वामी राधागोविन्द जी से दीक्षा ली। उन्होंने संगमरमर का एक मन्दिर बनवाया, उसका नाम ललितनिकुंज रखा और उसमें भगवान राधारमण की मूर्ति स्थापना की। सखीभाव से भजन करने लगे। वे भगवान की वृन्दावन-लीला के प्रेम-संगीत में आत्मविभोर हो गये। वे परम प्रियतम प्राणाधार नन्दनन्दन से दर्शनयाचना करने लगे। उनके भजन का आदर्श भागवत में वर्णित गोपी-प्रेम था। वे उन्मत्त होकर गाया करते थे :

दुनिया के परपंचो में हम मजा कछू नहिं पाया जी।
भाई बंधु-पिता-माता, पति सब सों चित अकुलाया जी॥
छोड़-छाड़ घर, गाँव-नाँव, कुल, यही पंथ मन भायाजी।
'ललित किसोरी', आनन्दघन सों अब हठि नेह लगाया जी॥

महात्मा ललित किशोरी ने आजीवन व्रजरस का आस्वादन किया। वे सखीसम्प्रदाय के अनुयायी थे। इस में भगवान से सख्य भाव का सम्बन्ध स्थापित कर उपासना की जाती है। इस सम्प्रदाय की दृढ़ मान्यता है कि सखीभाव से उपासना किये बिना किसी को निकुञ्जसेवा का अधिकार नहीं मिलता है। ललित किशोरी ने सदा सखी भाव से सम्पन्न होकर यही कहा कि भगवती कलिन्दनन्दिनी के तट पर सघन कुंज के द्रुम पर बैठकर मैं कोकिल-सा कूकता रहूँ—सदा अपने प्रियतम का नाम लेता रहूँ; अपने प्रियतम के पदपंकज का मधुप होकर गूंजता रहूँ... सदा व्रजरज में ही निवास करूँ, उसका परित्याग कर क्षणमात्र के लिये भी कहीं बाहर न जाऊँ। उन्होंने अनुभव की वाणी में कहा:

'गौर-स्याम वदनारविंद पर जिसको वीर मचलते देखा।
नैन-बान, मुसक्यान संग फँस, फिर नहिं नैंक सँभलते देखा॥
'ललित किशोरी' जुगल इश्क में बहुतों का घर घलते देखा।
डूबो प्रेमसिंधु का कोई हमने नहीं उछलते देखा॥'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महात्मा ललित किशोरी भगवान श्यामसुंदर के प्रेमसिंधु में निमग्न रहते थे।

तत्कालीन रसिक सन्तों में महात्मा ललित किशोरी का नाम बड़े आदर से परिगणित होता है। उनके समकालीन नथुनी बाबा उच्च कोटि के रसमार्गी महात्मा थे। सखी सम्प्रदाय के सन्तों में दोनों को विशिष्ट स्थान प्राप्त है। नथुनी बाबा नाक में नथ पहना करते थे। वे एक टूटे-से मन्दिर के कुंज में रह कर भगवान का भजन करते थे। प्रत्येक छः मास के बाद कुंज का द्वार खुलता था और बड़े-बड़े सन्त और महात्मा उनका दर्शन कर अपने आपको धन्य मानते थे। एक बार दर्शन के अवसर पर सन्त ललित किशोरी भी अपने आराध्य राधा-रमण का प्रसाद लेकर उपस्थित थे। उनको देखते ही परकीयाप्रेमरस के उपासक नथुनी बाबा ने कहा कि सखी, प्रियतम को पाने के लिये कुछ भी उठा न रखना। ललित किशोरी जी ने तत्काल उत्तर दिया कि आप के पास इसी लिये तो आगमन हुआ है, मेरी अभिलाषा पूरी कीजियेगा। वे प्रेममोन्मत्त होकर गाने लगे :

'कोई दिलवर की डगर बताय दे रे।
लोचन कंज कुटिल भृकुटी कच कानन कथा सुनाय देरे॥
'ललित किसोरी' मेर बाकी चित की साँट मिलाय दे रे।
जाके रंग रंग्यो सब तन-मन, ताकी झलक दिखाय दे रे॥'

नथुनी बाबा पद सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। संत ललित किशोरीने उन्हें ललित कुंज में पधारने का आमन्त्रण दिया पर नथुनी बाबा ने कहा कि मेरे प्रियतम मुझे छोड़ते ही नहीं हैं। इस उत्तर से संत ललित किशोरी आनन्द मग्न हो उठे।

महात्मा ललित किशोरी ने कार्तिक शुक्ल द्वितीया, सम्वत् १९३० वि में निकुंज-प्रवेश किया। वे आदर्श रसिक और प्रेमी सन्त थे। निकुंजरस-माधुरी के परम मर्मज्ञ थे।

रचना

महात्मा ललित किशोरी ने रासविलास, अष्टयाम, समयप्रबन्ध सम्बन्धी अनेक मधुर पद रचे। वृहत्रसकलिका और लघुरसकलिका दो प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वाणी

लाभ कहा कंचन तन पाये।
भजे न मृदुल कमल दललोचन
दुख मोचन हरि हरखि न ध्याये॥
तन-मन-धन-अरपन न कीने
प्रान प्रानपति गुननि न गाये।
जोबन, धन, कलधौत धाम सब
मिथ्या आयु गँवाय गँवाये॥
गुरुजन-गरब, विभुख रंग राते,
डोलत सुख-सम्पति बिसराये।
'ललित किशोरी' मिटै ताप ना
बिन दृढ़ चिंतामनि उर लाये॥
साधो, ऐसेइ आयु सिरानी ।

लगत न लाज लजावत संतन, करतहिं दंभ छदंब विहानी॥
माला हाथ ललित तुलसी गर, अंग-अंग भगवत छाप सुहानी।
बाहिरपरम विराग भजन रत, अंतस मति पर-जुबति नसानी॥
मुख सों ग्यान ध्यान बरनत बहु, कानन रति नित विषय-कहानी।
'ललित किसोरी' कृपा करौ हरि, हरि संताप सुहृद सुखदानी।
लटकि-लटकि मन मोहन आवनि।
झूमि-झूमि पग धरत भूमिपर गति मातंग लजावनि॥
गोखुर-रेनु अंग-अंग मण्डित उपमा दृग सकुचावनि।
नवघन पै मनु झीन बदरिया सोभा रस बरसावनि॥
बिगसति मुख लों कांति दामिनी, दसनावलि दमकावनि।
बीच-बीच घनघोर माधुरी, मधुरी वेनु बजावनि॥
मुकतमाल उर लसी छबीली, मनु बगपांति सुहावनि।
बिंदु गुलाल गुपाल-कपोलन, इन्द्रबधू छवि-छावनि॥
रुनन-झुनन किंकिनि-धुनि मानों हंसनि की चुहचावनि।
बिलुलित अलक धूरि धूसर तन, गमन लोटि भुव आवनि॥
जंघिया लसनि कनक-कछनी पै, पटुका ऐंचि बँधावनि।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पीताम्बर फहरानि मुकुट छवि, नटवर बेस बनावनि।।
हलनि बुलाक अधर तिरछौंही, बीरी सुरंग रचावनि।
ललित किसोरी फूल-झरनियाँ मधुर-मधुर बतरावनि।।
अब तो तेरिय हाथ बिकानी।
मृदु बोलन मुसक्यान माधुरी, तन मन नैन समानी।।
लोक-लाज, कुल-कानि तजी सब, जामें तुव रुचि चीनी।
धरम-करम व्रत नेम सबै सों, तोई रंग-रस भीनी।।
तुव कारन यह भेष बनायो, प्रगट उघरि करि नाची।
नाऊँ कुनाऊँ धरौ किन कोऊ, हौ नाहिंन मति काँची।।
होनी होय सो होय भले ही, तन मन लगन लगी है।
'ललितकिसोरी' लाल तिहारे, मति अनुराग पगी है।।
बन-बन फिरना बिहतर हमको रतन-भवन नहिं भावे है।
लता तरे पड़ रहने में सुख नाहिन सेज सुहावै है।।
सोना कर धरि सीस भलाअति तकिया ख्याल न आवै है।
'ललित किसोरी' नाम हरी का जपि-जपि मन सचु पावै है।।
मैं तुव पदतर रेनु रसीली।
तेरी सखरि कौन करि सकै, प्रेममई मूरति गरबीली।।
कोटिहु प्रान वारनें करि कै उरिन न तोसौं प्रीति रंगीली।
अपनी प्रेम-छटा करुना करि, दीजै दान दयाल छबीली।।
का मुख करौं बड़ाई, राई 'ललित किसोरी' केलि हठीली।
प्रीति दसांस सतांस तिहारी, मोमें नाहिन नेह नसीली।।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्त साईं बाबा

आपा-पर सब दूरि करि, रामनाम रस लागि।
दादू औसर जात है, ज़ागि सकै तो जागि॥

—सन्त दादू

सन्त-चरित्र के चिंतन और स्मरण की अलौकिकता— दिव्यता भवसागर से पार उतरने की तरणी है। सन्त-चरण की एक धूलि-कणिका कोटि-कोटि गंगा से भी नहीं तौली जा सकती है। जिस प्राणी पर सन्त की कृपा-दृष्टि अनायास पड़ जाती है उसके जन्म-जन्मान्तर के पापों का क्षय हो जाता है, पुण्य की समृद्धि बढ़ जाती है। साईं बाबा एक ऐसे ही सन्त थे जिन्होंने अभी कुछ ही समय पहले पृथ्वी पर उतर कर अपनी अलौकिक चरित्रलीला, विमल चरण-धूलि-कणिका और दिव्य कृपा से असंख्य प्राणियों को परमात्मा का प्रकाश प्रदान किया। आत्मतत्व का साक्षात्कार कराया और अध्यात्म राज्य की स्थापना की। जिस समय भारत अपनी स्वाधीनता की पहली लड़ाई अंग्रेजी शक्ति के विरुद्ध लड़ रहा था ; विठूर, झाँसी, लखनऊ और दिल्ली तथा बरेली में स्वदेशी सैनिक-शक्ति स्वधर्म, स्वदेश और स्वराज्य के लिये नानासाहब, महारानी लक्ष्मीबाई, हजरत महल, बहादुरशाह और बखत खान की अध्यक्षता में अंग्रेजों को लोहे के चने चबवा रही थी, उस समय साईं बाबा का एक बहुत बड़े जनसमूह को सत्य, शान्ति और प्रेम का सन्देश देने के लिये, भगवद्भक्ति और आत्मज्ञान से सम्पन्न करने के लिये प्राकट्य हुआ। उन्होंने शुद्ध आध्यात्मिक शक्ति का विजय-केतन फहराया। सत्य, शान्ति और तप ही उनके अस्त्र-शस्त्र थे।

अपने अनुयायियों में वे दत्तात्रेय के अवतार के रूप में प्रसिद्ध हुए। वे सदा त्याग के उच्चाति-उच्च शिखर पर ही निवास करते थे। महादानी थे, दिन में जो कुछ भी मिलता था उसे साधु-सन्तों और असहाय तथा दीन-दुखियों की सेवा में लगा कर दूसरे दिन फिर महाभिक्षुक के रूप में दीख पड़ते थे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई सबके-सब उनमें श्रद्धा रखते थे और उनके चरणधूलि-कण से पवित्र होने में अपना सौभाग्य मानते थे। ऋद्धि-सिद्धि सदा उनके पैर चूमती थीं पर वे कभी उनकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते थे। सदा सहज समाधि में निमग्न रह कर परमात्मा का स्मरण करते रहना ही उनका जीवन बन गया था। काम, कामिनी और कांचन—तीनों पर उन्होंने पूर्ण विजय प्राप्त कर ली थी। वे सत्य तत्व के परम ज्ञाता थे, दार्शनिक संत थे। परम पवित्र भगवती गोदावरी नदी के तट पर, अहमदनगर जनपद के पथरी ग्राम में सम्वत् १९१३ वि. में एक ब्राह्मण कुल में संत साईंबाबा ने जन्म लिया था। दैवयोग से पालन-पोषण के लिये उनको एक फकीर के हाथ में सौंप दिया गया। बाल्यावस्था से ही वे बड़े विनम्र, कोमल और मधुर स्वभाव के थे। उन्हें देख कर लोग कह पड़ते थे कि भविष्य में ये बहुत बड़े महात्मा होंगे। सन्त का बचपन भी दिव्य और चमत्कारपूर्ण होता है। साईं बाबा के गुरु का नाम वेंकुसा कहा जाता है। बाल्यावस्था में वे अपने गुरु के साथ चावड़ी में निवास कर बड़ी श्रद्धा और भक्ति से उनकी सेवा करते थे। उनकी दृढ़ मान्यता थी कि गुरु में श्रद्धा और विश्वास रखने से समस्त पाप मिट जाते हैं। वे कहा करते थे कि ब्रह्म मेरा पिता है, माया मेरी माता है तथा जगत् ही मेरा ग्राम है। गुरु के समाधि लेने पर साईंने अज्ञात वास का निश्चय किया, उस समय उनकी अवस्था केवल सोलह साल की थी। उन दिनों शिरडी में देवदास नाम के एक साधु की बड़ी प्रसिद्धि थी। चाँदभाई के साथ बड़े आग्रह के बाद वे शिरडी आ कर महात्मा देवदास के साथ रहने लगे। साईं का रूप देख कर लोग उनकी ओर आकृष्ट हो गये। उनकी प्रसिद्धि सुन कर दूर-दूर से सन्त जन उनका दर्शन करने के लिये आने लगे। नित्य प्रति सत्संग होने लगा। शिरडी में सन्त साईं बाबा के निवास से भक्ति और ज्ञान तथा प्रेम की गंगा, सरस्वती और कालिन्दी का संगम उतर आया। वातावरण आध्यात्मिक दिव्यता से परिपूर्ण हो उठा। वे 'शिरडी के संत' के नाम से प्रसिद्ध हो चले।

शिरडी में साईंबाबा तप करने लगे। शिरडी-आगमन के सम्बन्ध में एक विशेष घटना का उल्लेख आवश्यक प्रतीत होता है। चावड़ी में गुरु के समाधिस्थ होने पर साईं बाबा ने अज्ञात-वास का व्रत लिया था। धूपकेड़ा ग्राम के पटेल चाँदभाई का घोड़ा दो माह से अदृश्य था, उसका कहीं भी पता नहीं लगता था। दैवयोग से चाँदभाई को साईं बाबा ने बतला दिया कि घोड़ा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अमुक स्थान पर मिलेगा। उनकी बात ठीक निकली; उन्होंने इसी प्रकार कुछ और चमत्कार दिखाये; चाँदभाई उनके चमत्कार से मुग्ध हो गये और उन्हें शिरडी ले आये। साईंबाबा शिरडी में एक मसजिद में रह कर भगवान का भजन करने लगे। मसजिद का नाम उन्होंने द्वारिकामाई रखा था, वे भिक्षा से भोजन का प्रबन्ध करते थे, भिक्षा माँगना तथा दिन भर मसजिद के सामने आम के वृक्ष के नीचे बैठ कर भगवान का भजन करना ही उनका काम था। वे दाढ़ी रखते थे, चीथड़े पहनते थे। त्यागवृत्ति से जीवन-निर्वाह करते थे। दिन-प्रतिदिन सत्संगियों और दर्शकों की भीड़ बढ़ती गयी। उनकी धूनी की राख पाते ही बीमार अच्छे हो जाते थे; असहाय और गरीबों की दरिद्रता दूर हो जाती थी। इस प्रकार उनका प्रताप चारों ओर बढ़ने लगा। शिरडी तथा अड़ोस पड़ोस के लोग उन्हें सनकी और पागल समझते थे पर साईं बाबा अबाध गति से अपनी आत्मसाधना और भगवद् भजन में तल्लीन रहते थे। एक दिन की विचित्र घटना से शिरडी वाले उनके चरणों पर नत होकर उनके सत्यसन्देश के दूत बन गये। दीपक जलाने के लिये तेल नहीं था। बाबा ने तेल माँगा तो शिरडी के निवासियों ने देना अस्वीकार कर दिया। साईं बाबा ने तेल के बदले पानी से चिराग जलाया और शिरडी के नागरिकों को आश्चर्य चकित होना पड़ा कि चिराग पानी के सहारे रात भर जलता रहा। दूसरे दिन प्रातःकाल मसजिद में बहुत बड़ी भीड़ एकत्र हो गयी। लोगों ने बाबा के चरण में मस्तक नत कर क्षमा-याचना की; कहा कि महाराज, हमें आप की शक्ति का तनिक भी पता नहीं था। आप सन्तशिरोमणि हैं, आप के प्रति अपराध कर हम लोगों ने महापाप किया है, हम आप के शरणागत हैं, हमें अपना लीजिये। बाबा मन्द-मन्द मुस-कराने लगे, उनके नयनों से शीतल कृपा की ज्योति निकलने लगी। बाबा ने अपने प्रेमियों और भक्तों को शिक्षा दी कि अपने-अपने धर्म के अनुकूल आचरण कर भगवान के भजन में निरंतर लगे रहना ही क्षणभंगुर संसार में जन्म लेने का पुण्यफल है। भागवत शास्त्र में बाबा की बड़ी अनुरक्ति थी, वे अपने बहुत-से अनुयायियों को भागवत तथा अन्य भक्तिपरक शास्त्र पढ़ने का समय-समय पर आदेश देते रहते थे। वे मसजिद में एकान्त में योगाभ्यास किया करते थे। उन्होंने बहुत दिनों तक देह से अलग रहने का अभ्यास किया। विशेष अवसरों पर साईं बाबा अपनी यौगिक सिद्धि से लोगों को आश्चर्यचकित कर दिया करते थे। बीमारों को 'हरि-हरि' उच्चारण का आदेश दिया करते थे और स्मरणीय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बात तो यह है कि ऐसा करने से बड़ी-से-बड़ी बीमारी चली जाती थी और 'हरि हरि' उच्चारण करने वाले पूर्ण रूप से स्वस्थ हो जाते थे।

जल तत्व पर साईं बाबा का पूरा-पूरा नियन्त्रण था। अपनी सिद्धि के बल से बड़ी-से-बड़ी जलवृष्टि को रोक देते थे। एक बार शिरडी में जोर की जल-वृष्टि होने लगी, हवा बड़े वेग से चलने लगी, और बिजली के कड़कने और चमकने से लोगों का धैर्य नौ-दो ग्यारह होने लगा। लोग थर-थर कांपने लगे। बाबा उस समय मसजिद में ही थे। लोगों ने सोचा कि बाबा के शरणागत होने पर ही प्राण की रक्षा हो सकेगी। वे पशुओं को साथ लेकर मसजिद में पहुँच गये। बाबा से प्रार्थना की 'महाराज, हमारे प्राणों की रक्षा कीजिये।' सन्त तो सहज ही कृपालु होते हैं। साईं बाबा से लोगों का दुख न देखा गया। वे मसजिद से बाहर आकर खड़े हो गये, आसमान की ओर देखने लगे। थोड़ी ही देर में बाबा की कृपा-दृष्टि से जल-वृष्टि बन्द हो गयी। लोग 'साईं बाबा की जय' बोलते अपने-अपने घर आये।

एक बार एक व्यक्ति के साथ शिरडी में एक डाक्टर आये। उस व्यक्ति ने डाक्टर महोदय को बाबा की महिमा बतायी और दर्शन के लिये चलने का आग्रह किया। डाक्टर ब्राह्मण थे, वे ब्राह्मणोचित आचार, विचार से रहते थे। उन्होंने बाबा के पास जाकर उनके पैरों पर पड़ना अस्वीकार कर दिया। उनको उस व्यक्ति ने बताया कि बाबा न तो किसी व्यक्ति को पैर पकड़ने का आदेश देते हैं और न उनकी ऐसी इच्छा ही है कि कोई पैर पकड़े। डाक्टर भगवान रामचन्द्र के भक्त थे। उस व्यक्ति के साथ वे साईं बाबा के दर्शन के लिये द्वारिका माई—मसजिद में गये। बाबा ने उनको भगवान राम के रूप में दर्शन दिया। डाक्टर महोदय ने साष्टांग दण्डवत प्रणाम किया और बाबा के उपदेशों से अपना समय सफल किया।

साकोरी के सन्त उपासनी महाराज पर साईं बाबा की बड़ी कृपा थी। ऐसा लगता है कि उपासनी महाराज ने साईं बाबा की सेवा के ही लिये जन्म लिया था और साईं बाबा ने पूर्ण अखण्ड अध्यात्म ज्ञान और भगवद् भक्ति से उपासनी महाराज को सम्पन्न करने के ही लिये शिरड़ी में तपस्या की थी। उपासनी महाराज ने शिरड़ी में आकर बाबा का दर्शन किया पर उनका मन एक मुसलिम सन्त के संरक्षण में रहने के लिये प्रस्तुत नहीं था। उन्होंने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बाबा से कहा कि मैं जाना चाहता हूँ, बाबा ने प्रसन्नतापूर्वक जाने की आज्ञा दे दी पर साथ-ही-साथ यह भी कहा कि तुम आठ दिनों के बाद चले आना। उपासनी महाराज लौट कर शिरडी नहीं जाना चाहते थे पर उनके मन को कोई आन्तरिक शक्ति नियत समय पर शिरडी पहुँच जाने के लिये प्रेरित कर रही थी। बाबा की योग-शक्ति ने उनको अपने चरणों में उपस्थित होने के लिये विवश किया। साईं बाबा ने उनके शिरडी पहुँचने पर आज्ञा दी कि तुम श्मशान भूमि के निकट खण्डोबा मन्दिर में निवास कर साधना करते रहो, आत्मसाक्षात्कार में चार साल का समय लगेगा, उसके बाद तुम सिद्ध महात्मा हो जाओगे। उपासनी महाराज ने गुरु की आज्ञा का पालन किया। वे शिरडी में खण्डोबा के जीर्ण-शीर्ण प्राचीन मन्दिर में निवास कर एकान्त में तप करने लगे और चार साल के बाद एक बहुत बड़े महात्मा के रूप में प्रसिद्ध हुए। साईंबाबा ने उन्हें आत्मसाक्षात्कार प्रदान किया।

उपासनी महाराज की खण्डोबा मन्दिर के निवास काल में कई बार साईं बाबा ने परीक्षा ली थी। उन्होंने उपासनी महाराज को बतलाया कि गुरु और ईश्वर दोनों अभेद हैं, अभिन्न हैं; गुरु के चरणों में श्रद्धा और विश्वास रखने पर ईश्वर की कृपा और भक्ति मिलती है।

एक बार खण्डोबा मन्दिर से उपासनी महाराज मसजिद–द्वारका माई में अपने गुरुदेव से मिलने गये। साईं बाबा चिलम पीते थे, उन्होंने उपासनी महाराज को चिलम पीने का आदेश दिया और पूछा कि क्या तुम्हारे पास मन्दिर में कोई जाता है? महाराज ने 'नहीं' उत्तर दिया। 'अच्छा, तो मैं एक दिन आऊँगा। क्या तुम मुझे चिलम पिलाओगे?' साईं ने कहा। उपासनी मन्दिर में चले गये। उन्होंने भोजन बनाया और थाली में रख कर अपने गुरुदेव को समर्पित करने के लिये द्वारिका माई की ओर चल पड़े। मन्दिर के निकट एक काला कुत्ता था। उपासनी महाराज ने सोचा था कि पहले गुरुदेव को भोजन दे आऊँ, उसके बाद कुत्ते को खिला दूँगा। पर रास्ते में उनका मन बदल गया। वे मन्दिर की ओर जाना चाहते थे पर कुत्ता अदृश्य हो गया।

बाबा ने कहा, 'तुम धूप में क्यों आ गये? मैं तो मन्दिर के सामने ही प्रतीक्षा करता था।

उपासनी महाराज को कुत्ते वाली बात का स्मरण हो आया, वे पछताने लगे। 'मैं कुत्ते के वेष में तुम्हारी परीक्षा ले रहा था।' बाबा ने समाधान किया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दूसरे दिन उपासनी महाराज ने मसजिद में बाबा के पास भोजन ले जाते समय मन्दिर के निकट एक शूद्र भिखारी को देखा पर पहचान न सके कि साईं बाबा उनकी परीक्षा के लिये उपस्थित हैं। बाबा ने बतलाया कि 'शूद्र के वेष में मैं ही प्रतीक्षा कर रहा था।' घट-घट में एक ही परमात्मा का निवास है, प्राणीमात्र में आत्मानुभूति ही परमात्मा की प्राप्ति का साधन है। उन्होंने कहा कि कण-कण में मेरी-आत्मा की ही चेतनसत्ता परिव्याप्त है। इसका अनुभव करना ही परमात्मा का भजन है। बाबा अपने शिष्यों और सत्संगियों से कहा करते थे कि जो मसजिद-द्वारिका माई की सीढ़ी पर पैर रख देता है वह मेरे ही समान है, मुझमें और उसमें कुछ भी भेद नहीं रह जाता है। मेरे पास आने वाले को जो दुख देता है वह मुझे ही दुख देता है, उन्हें जो सुख पहुँचाता है वह मुझे ही सुखदेता है।

साईं बाबा अपने अनुयायियों पर समान रूप से कृपा-दृष्टि रखते थे। विश्व-प्रेम और लोक-कल्याण की सीख देते थे। सत्यानुराग और लोक कल्याण उनके उपदेशों में भरे-पड़े हैं। उनके सिद्धान्त और भगवच्चिंतन की पद्धति अत्यन्त रहस्यपूर्ण है, उनके विचारों को समझना अमित कठिन है, उनकी कृपा से ही उनकी बातें समझ में आती हैं तो आ जाती हैं; उनके अनुयायियों ने उनकी प्रत्येक आज्ञा का पालन करने में तत्परता दिखायी। साईंबाबा अखण्ड जाग्रत, पूर्ण सावधान तथा अविकल रूप से प्रेम मग्न हो कर भगवान के भजन में लगे रहते थे। भगवन्नाम में उनकी बड़ी आस्था थी। सत्य-स्वरूप परमेश्वर के नाम में श्रद्धा अभिव्यक्त कर उन्होंने सन्तमत की सनातन परम्परा अक्षुण्ण रखी। 'ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म हो जाता है' इस वेदान्तप्रतिपाद्य सत्य को उन्होंने अपने जीवन में सम्पूर्ण रूप से चरितार्थ किया। उन्होंने सच्चिदानन्द की अनुभूति की। सदाचार पर साईंबाबा विशेष जोर देते थे, सदाचार को आत्म साधना अथवा भगवान की उपासना का वे बहुत बड़ा अंग स्वीकार करते थे।

मुसलमान उन्हें उच्च कोटि का औलिया और हिन्दू महान सन्त मानकर उनकी पूजा करते थे। वे कहा करते थे कि भिन्न भिन्न धर्मों के प्रति सदा समता का भाव रखना चाहिये। समस्त विश्व ही उनके शरीर के लिये एक मन्दिर था। वे भक्तों के दुख अपने-आप भोग लिया करते थे। भक्त और शिष्य उनसे दर्शन देने की प्रार्थना करते तो बाबा कहा करते थे कि मैं तो तुम्हारे ही दर्शन से ईश्वर की कृपा से कृतार्थ हो गया। बाबा को अन्नपूर्णा की सिद्धि थी। वे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वाक्सिद्ध महात्मा थे।

शिरडी में ही बाबा अन्तिम समय तक रहे। विजयादशमी उनके जीवन की अन्तिम तिथि थी। सम्वत् १९७५ वि. में अद्वैतावस्था में स्वरूपगत ब्रह्म का चिंतन करते हुए उन्होंने परम गति प्राप्त की। समाधिस्थ होने के बाद भी विशेष भक्तों को वे सदेह दर्शन देते रहते हैं और कुसमय में उनकी सहायता करते रहते हैं। साईं बाबा परदुःखभंजन थे। वे निरपेक्ष और निष्पक्ष सन्त थे। शिरडी में हजारों की संख्या में उनके अनुयायी और भक्त लोग प्रत्येक दशहरा और दीवाली को एकत्र होकर बाबा की समाधि पर श्रद्धाञ्जलि समर्पित करते हैं।

रचना

'साईं वाक्सुधा' में उनके अनेक उपदेश और वचन संग्रहीत हैं।

वाणी

रात-दिन ईश्वर का नाम लेते रहना ही सब से बड़ी साधना है। नाम रत्न को पाने वालों ने सदा उसे छिपा कर ही रखा।

बुद्धि से ईश्वर को पहचानना चाहिये। ईश्वर ही गरीबों के रक्षक हैं, उनके सिवा गरीबों का दूसरा कोई है ही नहीं।

जिस प्रकार ईश्वर रखते हैं उसी प्रकार रहना चाहिये। भले की भलाई भले के पास और बुरे की बुराई बुरे के पास रहती है।

एक बार सद्गुरु के हाथ में जीवन की डोरी सौंप देने पर चिंता की बात नहीं रह जाती है। सब कुछ ईश्वर ही ईश्वर है।

गरीबी-दैन्य बादशाही है। गरीबों के भाई भगवान हैं—ऐसा मेरा वचन है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पागल हरनाथ

नाहं विप्रो न च नरपतिर्नापि वैश्यो न शूद्रो
नाहं वर्णी न च गृहपतिर्नो वनस्थो यतिर्वा।
किन्तु प्रोद्यन्निखिल परमानन्दपूर्णामृताब्धे
र्गोपीभर्तुः पदकमलयोर्दासदासानुदासः॥

न मैं ब्राह्म हूँ, न क्षत्रिय हूँ, न वैश्य हूँ और न शूद्र ही हूँ, मैं न ब्रह्मचारी हूँ, न गृहस्थ हूँ, न वानप्रस्थ हूँ और न संन्यासी हूँ, किन्तु सम्पूर्ण परमानन्द मय अमृत के उमड़ते हुए महासागर रूप गोपीकान्त श्रीकृष्ण के चरण कमल के दास का दासानुदास हूँ। —सार्वभौम वासुदेवभट्टाचार्य

पागल हरनाथ प्रेमरसोन्मत्त सन्त थे, उन्होंने आजीवन भगवद्प्रेम-रसामृत के असीम सागर में निमग्न रहने में ही अपनी भक्ति –उपासना का सौभाग्य समझा। उनके रोम-रोम में भगवान के परम मधुर नाम का उच्चारण होता रहता था; उनका समग्र जीवन कृष्णमय था, वे अपने आराध्य राधा-गोविन्द का ही निरन्तर चिंतन किया करते थे, वे भगवद्रस और दिव्य प्रेम के एकीभूत रूप थे। उन्होंने असंख्य प्राणियों को भगवान के सरस प्रेम में परमोन्मत्त कर दिया। निस्सन्देह वे भक्तिसिद्ध अलौकिक प्राणी थे, भागवत पुरुष थे।

यद्यपि महात्मा हरनाथ ने विक्रमीय बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध को अपनी उपस्थिति से पवित्र किया था तो भी उनकी ऐतिहासिकता तीन सौ साल पहले से ही सुरक्षित है। महात्मा हरनाथ की जन्मभूमि बंगाल प्रान्त के बाकुड़ा जनपद का सोनमुखी गाँव है। इस स्थान में पहले जंगल था और उसमें बड़े-बड़े तपस्वियों ने तप तथा भगवद्भजन किया था। परम प्रसिद्ध वैष्णव सन्त मनोहर दास जी महाराज सम्वत् १६४९ वि. में सोनमुखी आये हुए थे। उस समय उन्होंने भविष्यवाणी की थी कि इस पवित्र स्थान पर तीन सौ साल के बाद एक ऐसे महात्मा का प्राकट्य होगा जो महाप्रेमलीलावतार होंगे–

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

साक्षात्प्रभु के प्रेमविग्रह-रूप में प्रकट होकर वे असंख्य प्राणियों को प्रेमरस का दान करेंगे। वे गौरांग चैतन्य महाप्रभु के अभिनव रूप होंगे और उनकी शेष लीला की अभिव्यक्ति से संसार का मन मुग्ध कर लेंगे। वे गृहस्थ वेष में रह कर भगवान के प्रेम का प्रचार करेंगे। सन्त मनोहर दास की रसमयी भविष्यवाणी के दिव्य प्रतीक महात्मा हरनाथ थे। महात्मा की पहिचान महात्मा और संत जन क्रिया करते हैं। अभी कुछ ही दिनों की बात है कि नैनीताल के एक जंगल में पदमपुरी सोमवारी बाबा, जो सिद्ध पुरुष थे, तप कर रहे थे। उन्होंने पागल हरनाथ के सम्बन्ध में कहा था कि बाह्य इन्द्रियों से, नेत्रों और बुद्धि आदि की सहायता से हरनाथ महाराज का स्वरूप नहीं समझा जा सकता है। बाहर से तो वे एक दाढ़ीवाले प्राणी के रूप में लोगों को भ्रमित कर देते हैं पर भीतर से उनकी महानता को समझना मेरे भी वश की बात नहीं है। स्वयं हरनाथ जी महाराज कहा करते थे कि मेरी बातें तो बिना सिर-पैर के होती हैं, उनकी एक पागल की उक्ति समझ कर भले ही उपेक्षा कर दीजिये, भले ही मेरे सम्बन्ध में विचार न कीजिये पर मुझे भूलिये नहीं। इसी प्रकार एक बार उन्होंने संकेत किया था कि मैं चराचर में परिव्याप्त हूँ, यह विश्व-ब्रह्माण्ड मेरा ही स्वरूप है। उनके कथन की निगूढ़ता अत्यन्त रहस्यमयी है, उनकी कृपा से ही यह समझ में आ सकती है।

महात्मा हरनाथ के जन्म और कर्म दोनों अलौकिक थे। बाकुड़ा जनपद का सोनमुखी ग्राम एक तीर्थ क्षेत्र है, उसी ग्राम में जयराम नाम के एक धनी व्यक्ति निवास करते थे। कलकत्ता में उनका छोटा मोटा काम भी होता था। जयराम वन्द्योपाध्याय बड़े आस्तिक प्राणी थे, इसी प्रकार उनकी पत्नी सुंदरी देवी भी बड़ी सती-साध्वी थीं। वे शिव, विष्णु और दुर्गा आदि में समान रूप से भक्तिनिष्ठ थीं। सम्वत् १९२२ वि. में आषाढ़ शुक्ल तृतीया को सौभाग्यवती सुन्दरी देवी ने अपने घर की एक गोशाले में ही हरनाथ को जन्म दिया। हरनाथ के प्रकट होते ही चारों ओर दिव्यता छा गयी, ऐश्वर्य और सौन्दर्य के प्रस्फुरण से कण-कण में प्रसन्नता की लहर दौड़ गयी। जयराम दम्पति ने दिव्य बालक के जन्मोत्सव में यथाशक्ति दान-पुण्य किये। उनके आरंभ के शुभ संस्कार सम्पन्न कराये गये।...सबसे बड़ी विलक्षण बात तो यह दीख पड़ी कि शैशवावस्था में जब कभी हरनाथ रोते थे तब लोगों के मुख से हरिनाम का कीर्तन सुनकर चुप हो जाते थे। इस प्रकार वे कभी-कभी अपनी दिव्य लीलाओं का

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परिचय कराते रहते थे। उनके प्राकट्य से घर की शोभा ही नहीं बढ़ गयी, सोनमुखी की ही दिव्यता की अभिवृद्धि नहीं हुई, सारे वातावरण में दिव्यता और भगवत्ता का साम्राज्य उतर आया।

हरनाथ की बाल्यावस्था में एक विचित्र घटना से असंख्य प्राणी आश्चर्य-चकित हो गये। सोनमुखी गाँव से पचीस मील की दूरी पर एक मेला लगता है उस स्थान पर भगवती दुर्गा का एक प्रसिद्ध मन्दिर है। उस समय हरनाथ की अवस्था दो साल की रही होगी। उनके माता-पिता मेले में उन्हें अपने साथ ले गये थे। मन्दिर के प्रांगण में एक किनारे हरनाथ खेल रहे थे। लोग मन्दिर से लगे एक छोटे से तालाब में स्नान कर रहे थे। दोपहर तक तालाब सूख गया। मन्दिर के प्रांगण में एक बहुत दिनों का सूखा नाला था। हरनाथ खेलते-खेलते उसमें खड़े हो गये। उनके चरणस्पर्श मात्र से ही नाले में स्वच्छ जल के अगणित स्रोत फूट पड़े। लोगों ने स्नान किया। हरनाथ के इस अलौकिक चरित्र से सब लोग विस्मित हो उठे। जयराम और उनकी सौभाग्यवती पत्नी ने ऐसे अनुपम दिव्य आत्मा को पाकर अपने भाग्य की सराहना की और देवी से हरनाथ के दीर्घायु होने की प्रार्थना की।

हरनाथ लगभग तीन साल के रहे होंगे कि उनके पिता जयराम ने परलोक-यात्रा की। उनकी माता सुंदरी देवी ने शिक्षण और पालन-पोषण का भार सम्हाला। पांच साल की अवस्था में हरनाथ को विद्यारम्भ कराया गया। विद्यारम्भ के पहले उनसे बेलपत्र से महादेव-शिव की पूजा करायी गयी तथा उन्हें भगवान श्याम सुंदर का दर्शन कराया गया। सौभाग्य से हरनाथ के अध्यापक महोदय श्री राधाकृष्ण के भक्त थे। उन्होंने हरनाथ को वर्णमाला का बोध कराना आरम्भ किया। हरनाथ ने कक्षा में बड़ी विनम्रता पूर्वक उठ कर कहा 'महाशय वर्णमाला का बोध कराने के पहले कृपापूर्वक मुझे सिखाइये कि मैं अपने परम प्रेमास्पद राधा गोविन्द के मधुर नाम का उच्चारण किस प्रकार करूँ? अध्यापक उनके प्रश्न से बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने हरनाथ तथा अन्य विद्यार्थियों के साथ राधा गोविन्द के मधुर नाम का उच्चारण करना आरम्भ किया। इस प्रकार पाठशाला में पहले ही दिन हरनाथ ने भगवन्नाम का मधुर प्रचार किया। एक दिन हरनाथ ने सब विद्यार्थियों से पाठशाला की दीवार पर कागज चिपका कर राधागोविन्द का नाम लिखने को कहा। थोड़े ही समय में पाठशाले की दीवार भगवन्नाम से अंकित हो गयी। अध्यापक ने समझ लिया कि हो-न-हो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यह कार्य हरनाथ के ही संकेत से किया गया है। उन्होंने हरनाथ को बुलाया हरनाथ ने बड़ी सरलता और मधुरता से उत्तर दिया कि महाशय, कागज तो गन्दे हो जायेंगे पर उन पर अंकित भगवान राधाकृष्ण के सरस नाम दिव्य रत्न की तरह सदा चमकते रहेंगे।' अध्यापक उनके उत्तर से बहुत प्रसन्न हुए और उनकी बुद्धि की सराहना की। छः साल की अवस्था से ही सोनमुखी गाँव के घर-घर में उन्होंने हरिभक्ति का प्रचार करना आरम्भ किया। स्वाभाविक रूप से उनके हृदय और रसना से भगवद्भक्ति की मधुरतम धारा प्रवाहित होने लगी और लोग उसमें स्नान कर अलौकिक आनन्द की अनुभूति करने लगे।

उनकी अलौकिक प्रवृति ने सोनमुखी गाँव का वातावरण दिव्य और भक्तिमय बना दिया। संसार के अनित्य सुखों के प्रति उनके मन में तनिक भी आसक्ति न रह गयी। अड़ोस-पड़ोस के गाँवों में घूम-घूम कर हरिभक्ति की शिक्षा देना ही उनका कार्य हो गया। धीरे-धीरे दीन-दुखियों और असहायों की सेवा में उनकी रुचि बढ़ने लगी। जब वे केवल बारह साल के थे, अड़ोस-पड़ोस के गावों में कीर्तन का प्रचार करने जाया करते थे। एक बार वे निकटस्थ गाँव में कीर्तन का प्रचार कर घर लौट रहे थे, रास्ते में एक झोपड़ी में उन्होंने एक बूढ़े आदमी की जो बीमार था स्वेच्छा से सेवा-सुश्रुषा की। बूढ़ा व्यक्ति उनकी कृपा से स्वस्थ हो गया। कुछ दिनों के बाद हरनाथ के बीमार पड़ने पर वह उनके घर आया और उसकी सेवा से वे अच्छे हो गये। इस प्रकार दूसरे के सुख-दुख से सुखी-दुखी होने की भावना उनके मन में सुदृढ़ होने लगी।

थोड़े समय के बाद सोनमुखी के ही रहने वाले कन्दर्प सुन्दर भट्टाचार्य की कन्या अखण्ड सौभाग्यवती कुसुम कुमारी देवी से उनका विवाह कर दिया गया। कुसुम कुमारी देवी के भक्तिमय जीवन ने महात्मा हरनाथ को अध्यात्म पथ में बढ़ने में असाधारण सहायता दी, उन्होंने आदर्श गृहस्थ और भगवद्भक्त बनने में बड़ा योग दिया। महात्मा हरनाथ के शिष्यों में दोनों के प्रति अगाध श्रद्धा और आदर का भाव पाया जाता है। दोनों पूज्य और उपास्य हैं।

हरनाथ को माध्यमिक परीक्षा में उत्तीर्ण होने के बाद विद्याध्यायन के लिये कछियाखोल आना पड़ा। प्रवेशिका-परीक्षा में सफल होने पर उन्होंने बर्दवान राजा कालेज–विद्यालय, कलकत्ता में नाम लिखाया। वे कक्षा में सदा मौन रहते थे, उन्हें देखने पर ऐसा लगता था कि उन्होंने सहज समाधि लगा ली हो। इस प्रकार अमित शान्तिपूर्ण वातावरण में उन्होंने विद्याध्ययन समाप्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किया। ऐसे तो वे साक्षात् विद्यानिधि ही थे, ईश्वर-प्रेम समस्त विद्याओं का मूलाधार है, फिर भी महापुरुष अपने चरित्र में दूसरों के आदर्शस्वरूप लोक-जीवन उपस्थित करते हैं।

महात्मा हरनाथ का शरीर यन्त्र की भाँति चलता रहता था पर उनका मन लोक-लोकान्तरों में परिभ्रमण करता रहता था। एक बार वे अपने कुछ मित्रों के साथ टहल रहे थे। उनका शरीर यन्त्रवत आगे बढ़ रहा था पर वे थे शरीर से बाहर ही। इस स्थिति में वे एक मसजिद में पहुँच गये। इब्राहिम नाम का एक व्यक्ति नमाज पढ़ रहा था। हरनाथ ने भगवद्प्रेम के आवेश में उसका आलिंगन किया। उनके नयनों से प्रेमाश्रु बहने लगा।

वे भगवान के सुमधुर नाम राधा-गोविंद को मन्त्रराज मानते थे। सदा इसी मधुर नाम-रस में मग्न रहते थे। एक बार उनकी पत्नी को साँप ने काट लिया। उस समय हरनाथ निद्राभिभूत थे। मांत्रिकों ने मन्त्र उच्चारण किये पर चेतना न लौट सकी। निद्रा में ही अचानक हरनाथ के मुख से 'राधा-गोविंद' का नाम निकल पड़ा। लोगों ने राधा गोविन्द कहना आरंभ किया, कुसुम कुमारी देवी स्वस्थ हो गयीं, उनकी चेतना लौट आयी। इस प्रकार महात्मा हरनाथ की अलौकिक प्रवृत्ति से लोग प्रभावित होने लगे और उनके प्रति पूज्य भाव रखने लगे।

हरनाथ भगवन्नाम-संकीर्तन में इतने तन्मय हो गये कि उनकी कालेज की शिक्षा अधूरी ही रह गयी। परिवार के पालन-पोषण का प्रश्न बहुत जटिल हो गया। एक दिन शाम को भगवन्नाम का प्रचार कर घर आये। उनके भाई शिवराम ने कहा कि बेकार रहने से काम नहीं चल सकता, जब तक कहीं अच्छी नौकरी नहीं मिल जाती, घर के दरवाजे बन्द हैं। हरनाथ को उनकी बात लग गयी। वे नौकरी के लिये चिंतित हो उठे। भगवान की कृपा से उन्हें सोनमुखी के निकट अयोध्या में अध्यापन का कार्य मिल गया और कुछ दिनों के बाद वे काश्मीर में किसी अच्छे पद पर नियुक्त हो गये। काश्मीर में तथा हिमालय के अन्य प्रदेशों में उन्होंने तपस्वियों और साधु महात्माओं से घूम-घूम कर कहा कि महाराज, केवल ज्ञान ही पर्याप्त नहीं है, भक्ति भगवान केमधुर नाम-कीर्तनसे प्राप्त होती है, भगवद्प्रेम ही जीवन का साफल्य है। इस प्रकार वे गृहस्थ वेष में रह कर भी साधु-सन्तों को भगवान के नामामृत का रसास्वादन कराते रहे। महाराजा काश्मीर उनका बड़ा सम्मान करते थे, वे उनके अनुयायी हो गये।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हरनाथ ने काश्मीर राज्य के धर्मार्थविभाग में कुछ समय तक काम किया। उसके बाद वे सोनमुखी लौट आये। काश्मीर-निवास-काल में वे देश के प्रसिद्ध तीर्थक्षेत्र वृन्दावन, प्रयाग, हरिद्वार, जगन्नाथपुरी और काशी आदि में विख्यात हो गये, उनकी प्रसिद्धि बढ़ गयी। अटल बिहारी नन्दी महात्मा हरनाथ के प्रधान शिष्यों में परिगणित होते हैं। वे हाथरस में रेलवे स्टेशन मास्टर थे। एक दिन दोपहर को एक अपरिचित व्यक्ति ने उनसे हाथरस से वृन्दावन का टिकट माँगा। नन्दी महोदय ने कहा कि वृन्दावन के लिये अब दूसरी गाड़ी कोई नहीं आने वाली है। अपरिचित ने कहा कि गाड़ी आ रही है। थोड़े समय के बाद ही एक स्पेशल गाड़ी आ पहुँची और नन्दीमहोदय के देखते-ही-देखते अपरिचित उसमें बैठ गये। नन्दी आश्चर्य चकित हो गये। अपरिचित के वेष में पागल हरनाथ ही थे। उन्होंने कहा 'नन्दी मैं तुमसे फिर मिलूंगा।' नन्दी महोदय ने हरनाथ ठाकुर को प्रणाम किया।

अटल बिहारी नन्दी का घर बंगाल के हुगली जनपद में था। एक बार हरनाथ ठाकुर उनके अतिथि थे। नन्दी की पत्नी शरिमा उनमें बड़ी निष्ठा रखती थी। शरिमाने सोचा कि ठाकुर ब्राह्मण हैं,हम लोग उनसे नीच वर्ण में हैं। इसलिये भोजन की व्यवस्था पड़ोस की ही एक विधवा ब्राह्मणी के घर में कर दी गयी। विधवा की एक कन्या थी, जो विवाहित थी। कन्या का पति चरित्रभ्रष्ट था, वह रेलवे में नौकर था।...जब ठाकुर ब्राह्मणीके घर भोजने करने गये तब उस कन्या का मन ठाकुर के दिव्य शरीर-सौन्दर्य पर मुग्ध हो गया। उसका भाव हरनाथ से अपवित्र सम्बन्ध स्थापित करने की ओर हो गया। उसने ठाकुर को भोजन कराया और बार-बार उन्हीं की ओर देखती रही। ठाकुर से शरिमा ने भोजन के सम्बन्ध में पूछा, हरनाथ ने कहा कि भोजन अमित पवित्र था पर उसमें प्रेम का अभाव था। उन्होंने आग्रह किया कि मा, मैं आप के हाथ का भोजन करूँगा, ब्राह्मणी के घर नहीं जाऊँगा। सीधी-सादी श्रद्धामयी शरिमा ने मन में विचार किया कि ठाकुर दो एक दिनके अतिथि हैं इसलिये उनके वर्ण की मर्यादा अक्षुण्ण रहे तो अच्छा है। उसने ठाकुर से दूसरे दिन भी विधवा ब्राह्मणी के ही घर भोजन करने का आग्रह किया, उसे पता ही नहीं था कि ठाकुर भगवान के प्रेम-साम्राज्य के नागरिक हैं, वर्णातीत हैं। ठाकुर ने स्वीकार कर लिया। ठाकुर भोजन करने गये। कन्याने किसी बहाने से अपनी मा और नौकर को बाहर भेज कर दरवाजा बन्द कर लिया

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उसके मन में काम-पिपासा जाग उठी। ठाकुर बन्द कमरे से अदृश्य हो गये कामवती कन्या ने उनके स्थान पर भगवान सदाशिव की एक संगमरमर की प्रतिमा देखी। वह अचेत हो गयी। मा के घर में आने पर उसने सारा रहस्य बताया। पागल हरनाथ ने इस घटना के सम्बन्ध में कहा कि उस कन्या की मा धन्य है जिसने उसको जन्म दिया, वह भगवान की परम भक्त है। ठाकुर महोदय की प्रेरणा से उस कन्या का पति चरित्रवान हो गया और उसने उसको स्वीकार कर लिया। दोनों सुखी हो गये। महात्मा हरनाथ सदा भगवत्प्रेम में विभोर रहते थे। एक बार काश्मीर-निवास काल में जब उनकी अवस्था इकतीस साल की थी, अचानक उनका शरीर अप्राकृत हो उठा। वे टांगे पर बैठ कर जम्मू से श्रीनगर लौट रहे थे। आधी रात का समय था। वे अचेत हो गये, उनका हृदय धड़कने लगा और थोड़े समय में शरीर निष्प्राण-सा दीख पड़ा। उनके साथी घबड़ा गये।...आधी रात बीतने पर मृत शरीर में से आवाज आयी 'हर, तुम जानते हो कि तुम मर गये।' प्रत्युत्तर हुआ 'देव मुझे ज्ञात है।' 'तो शरीर से बाहर आओ' शब्द सुनायी पड़े।..इसके बाद ही इनके शरीर में चेतना लौट आयी, काला शरीर बात-की-बात में दिव्य और अप्राकृत हो उठा। ठाकुर हरनाथ ने बताया कि चैतन्य महाप्रभु ने मुझे प्राण-दान दिया। सन्त-महात्मा का चरित्र नितान्त विलक्षण होता है। हरनाथने संवत् १९७१ वि. में नौकरी छोड़ दी, लोगों को भक्तिभावापन्न करना ही केवल उनका काम हो गया। चोला छोड़ने की अवधि तक वे भगवद्भक्ति के ही प्रचारमें लगे रहे।

उनके जीवन-काल में ही कई स्थानों पर उनके नाम से आश्रमों की स्थापना की गयी। कलकत्ता में हरनाथ तत्व-प्रचारिणी सभा स्थापित हुई तथा वृन्दावन में हरनाथ कुसुम कुंज का सूत्रपात हुआ। असंख्य प्राणियों ने उनके उपदेशामृत से अपना जीवन सफल किया।

सन्त कृपापूर्वक अधम से अधम प्राणी को भवसागर से तार दिया करते हैं, दूसरों का पाप से उद्धार उनकी जीवन-लीला का एक प्रसिद्ध अंग होता है। हरनाथ कटक के एक जंगल में परिभ्रमण कर रहे थे। शिष्यों ने उनको जंगल में जाने से रोका। जंगल में राम खान नामका एक डाकू रहता था। वह दिन-दहाड़े यात्रियों और पथिकों को लूट लिया करता था। उसके पाप पराकाष्टा पर थे। राम खान के उद्धार का समय निकट आ गया। महात्मा हरनाथ ने जंगल में प्रवेश किया। दैव योग से डाकू उनके सामने खड़ा हो गया। प्रेमयोगी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हरनाथ ने बड़े प्रेम से कहा कि भैया, तुम बड़े पुण्यात्मा हो, तुम्हारा दर्शन करते ही मेरे पाप-ताप का अन्त हो गया। सन्त की वाणी थी, राम खान का हृदय कठोरता का परित्याग कर अपने अधम कृत्यों के ताप से द्रवित हो उठा। वह सिसकने लगा। उसने निष्कपटता पूर्वक ठाकुर हरनाथ के चरणों पर गिर कर क्षमा माँगी और कहा कि महाराज, मुझे प्रकाश दीजिये। मैं महानीच हूँ, मुझे बताइये कि मैं क्या करूँ। हरनाथ ने उसका प्रेमालिंगन किया, उनकी कृपा से राम खान ने बहुत बड़े सन्त की प्रसिद्धि पायी। राम खान ने वृंदावन को अपना स्थायी निवास-स्थान बना लिया। पागल हरनाथ ठाकुर सदा चैतन्य समाधि की स्थिति में रहते थे। एक बार वे कटक में थे। उस समय एक योरपीय सज्जन का पुत्र जो इंगलैंड में था, बहुत बीमार था। तीन दिन पहले उनको सूचना मिली थी कि बीमारी असाध्य है, शल्यचिकित्सा होगी। ईश्वर पर भरोसा रखना चाहिये, सब कुछ ठीक होगा। योरपीय सज्जन को पता चला कि कटक में एक महात्मा आये हुए हैं, जो भूत, वर्तमान और भविष्य—सब का ज्ञान रखते हैं। वे उनकी खोज में निकल पड़े। ठाकुर उस समय एक चायपान में थे। योरपीय सज्जन से चाय-पान की समाप्ति पर उन्होंने बिना पूछे ही कहा कि आपरेशन ठीक ढंग से हो गया, आप के पुत्र का स्वास्थ्य ठीक है, टेली ग्राम लेकर बंगले पर चपरासी प्रतीक्षा कर रहा है। योरपीय सज्जन ने बंगले पर जाकर हरनाथ के कथन के अनुसार सब कुछ ठीक पाया।

'अमृतबाजार पत्रिका' के सम्पादक महात्मा शिशिर कुमार घोष हरनाथ ठाकुर के प्रमुख प्रशंसकों में से एक थे। 'अमृतबाजार पत्रिका' विश्व-व्यापी पत्र है। वे समय-समय पर 'अमृतबाजार पत्रिका' में उनके उपदेश तथा प्रवचन आदि प्रकाशित किया करते थे। एक बार अमेरीका के दो सज्जनों ने 'अमृतबाजार पत्रिका' में ठाकुर के सम्बन्ध में पढ़ कर उन्हें 'हरनाथ, विश्व' के पते से पत्र लिखा और सोचा कि यदि वे चैतन्य समाधि की स्थिति में रहते हैं तो हमारे पत्र की प्राप्ति अवश्य स्वीकार करेंगे। वे पागल हरनाथ ठाकुर का पत्र पाकर आश्चर्य चकित हो गये, पत्तोत्तर था :— "मुझे आप का पत्र यथासमय मिल गया। जिस समय आप पत्र लिख रहे थे, उस समय मैं आप के पास था।" इस प्रकार के अनेक उदाहरण उनके जीवन में मिलते हैं, वे रहस्य के प्रतीक थे।

महात्मा हरनाथ का सिद्धान्त यह था कि मनुष्य का जो भी मत हो—वह ठीक है। पर नाम राधाकृष्ण का ही लेना चाहिये, यह परम मधुर नाम

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। मन्दिर में ठाट-बाट से कभी नहीं जाना चाहिये, ऐसा करने पर मनुष्य का सारा समय अपनी ही चिंता और व्यवस्था में समाप्त हो जाता है, भगवान के सामने दीन भाव से जाना चाहिये, भगवान को भक्त का दैन्य बड़ा प्रिय होता है, वे क्षणमात्र में अपना कर सर्वसमर्थ बना देते हैं। अत्यन्त मधुर हरिनाम को अपने कंठ का हार बना लेना चाहिये। भगवान राधागोविन्द के मधुरतम नाम-जपको ही उन्होंने भगवच्चिंतन का स्वरूप स्थिर किया। भगवान श्रीकृष्ण की प्राप्ति को ही उन्होंने जीवन का उद्देश्य बताया। उन्होंने कहा कि सांसारिक दुःखों से भयभीत नहीं होना चाहिये, जिस प्रकार बच्चा भयभीत होकर माता की गोद का आश्रय लेता है, उसी प्रकार सांसारिक दुख आने पर भगवान के नाम की शरण में चले जाना चाहिये। जिस प्रकार एक बच्चा सदा अपनी मा का ही चिंतन करता रहता है, केवल मा की ओर ही उसका ध्यान रहता है उसी प्रकार हमें श्रीकृष्ण की ही ओर देखना चाहिये। भगवान के नाम से सारे दुख चले जाते हैं, परमानन्द की प्राप्ति होती है, इसलिये एक क्षण के लिये भी कृष्ण का नाम नहीं भूलना चाहिये।

साधना के सम्बन्ध में उन्होंने कहा कि काम और आराम करते समय, जागते और सोते समय भगवन्नाम का ही जप करना चाहिये। नाम लेते समय यही ध्यान रखना चाहिये कि यह क्रिया पूरे मन से हो रही है। नाम-जप से प्रेम का उदय होता है और प्रेमोदय से श्रीकृष्ण मिलते हैं। भगवान के किसी भी नाम का उच्चारण किया जा सकता है, भगवन्नाम में बड़ी शक्ति होती है, आप देखेंगे कि हरनाथ के नाम में कितनी शक्ति है? इसका पता मेरे अन्तर्धान होने के बाद चलेगा। मैं एक बार गौरांग चैतन्य के रूप में प्रकट हुआ था। आप जिस रूप में मेरा स्मरण करेंगे उसी रूप में मैं आप के साथ रहूँगा। निस्सन्देह पागल हरनाथ ठाकुर का प्राकट्य और अप्रकट होना दोनों रहस्य-पूर्ण हैं।

बीसवीं शती के सन्त-साहित्य में पागल हरनाथ ठाकुर को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। वे रसिक और प्रेमी सन्त थे। भगवान के दिव्य प्रेम के प्रचार के लिये ही धरती पर उन्होंने शरीर धारण किया था। सहस्रों प्राणी—बंगाली, बिहारी, उड़िया और विदेशी लोग उनके शिष्य हैं; आन्ध्र, गुजरात और मद्रास का बहुत बड़ा जनसमूह उनके चरणकमलों का उपासक है। सन्त हरनाथ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ने अपने अनुयायियों और भक्तों को बतलाया कि एक क्षण के लिये भी मन से परमात्मा का नाम नहीं भूलना चाहिये। वे ही सब के मूल हैं। आनन्द के परम आधार हैं। बिना उनके कोई सुखी ही नहीं हो सकता है।

सम्वत् १९८४ वि. (सन् १९२७ ई., २५ मार्च) को वे सोनमुखी में ही थे। उनके सीने में मीठा-मीठा शूल होने लगा। वे तन्मयता से अपने आराध्य देव राधागोविंद के नाम का जप करते थे। दो-तीन घन्टे रात बीतने पर वे अपने प्रेमास्पद श्रीकृष्ण के लीलाधाम में चले गये। सोनमुखी में ही उनके उद्यान वाले अनन्त कुण्ड में नश्वर शरीर का दाह-संस्कार सम्पन्न हुआ। इस प्रकार आजीवन भगवन्नाम का मधुर रसास्वादन करते हुए उन्होंने प्राणियों को सरस आध्यात्मिक चेतना से समृद्ध किया। उनका जीवन धन्य था।

रचना

उनके उपदेश ही अमर रचना के रूप में संरक्षित हैं।

वाणी

भगवान के किसी भी नाम का जप कीजिये पर यह आवश्यक है कि उससे आप का हृदय द्रवित हो जाय। नाम-जप से भगवत्प्रेम की उत्पत्ति होती है। तपस्या और साधना से भगवन्नाम में विश्वास होता है। भगवान से भगवन्नाम कहीं अधिक शक्तिशाली और महत्वपूर्ण है।

पापी ही वास्तविक–क्रियात्मक शिक्षक अथवा उपदेशक हैं। वे अपने उपदेश नहीं, आचरण से मानवता की सेवा करते हैं, उनसे घृणा नहीं करनी चाहिये। पुण्यात्मा नहीं, पापी के ही लिये भगवान अवतार लेते हैं।

कृष्ण को प्राप्त करने का एक मात्र साधन उनका नाम ही है। देखिये, यदि आप ऐसे मनुष्य के सम्बन्ध में सोचिये जिसे आप नहीं जानते हैं पर उसका नाम ज्ञात है, तो कोई-न-कोई व्यक्ति जो उसे जानता है या उसका सगा है, ठीक समय पर उसके सम्बन्ध में आप को प्रत्येक सूचना दे सकता है और आप को उसके पास ले जा सकता है या उसके पास तक पहुँचने में आप का सही-सही पथप्रदर्शन कर सकता है। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति कृष्ण को जो आसानी से पकड़ में नहीं आते हैं, प्राप्त करना चाहता है तो उसे निरन्तर उनके नाम का

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्मरण और चिंतन करना चाहिये। किसी महात्मा या व्रजाङ्गना के द्वारा जिन्हें कृष्ण की पूरी-पूरी जानकारी है, कृष्ण को प्राप्त करने का रहस्य ज्ञात हो जायेगा।

अत्यन्त मधुर हरिनाम को अपने गले का हार बना लीजिये..। मनुष्य की आँखों में धूल झोकने के लिये हरिनाम का चोला न पहनिये।..श्री कृष्ण की प्राप्ति ही जीवन का परम उद्देश्य बना लीजिए।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संत वारिस अली शाह

आली पिया के दरस की, मिटै न मन की आस।
रैन दिनाँ रोवत फिरूँ, लगी प्रेम की फाँस॥
लगी प्रेम की फाँस, श्वास-उश्वास सँभारे।
मैं उन की हुइ रोय, पीव नहिं हुए हमारे॥
कहत 'दीनदरवेश', आस नहिं मोह जिया की।
मिटै न मन की प्यास, आस मोहि दरस पिया की॥

—संत दीनदरवेश

सन्त की अमृतमयी कृपा-मन्दाकिनी में स्नान करने पर जन्म-जन्म के पापों का नाश तो हो ही जाता है, साथ-ही-साथ पवित्र अन्तःकरण में निर्मल भगवद् रस का सागर उमड़ पड़ता है और आत्मा परमात्मा के प्रेम में सहज रमणशील हो उठता है; दिव्य प्रेमोन्माद भगवत् साक्षात्कार की ओर ले जाता है। लगभग डेढ़ सौ साल पहले की बात है; परमात्मा के दिव्योन्माद में सराबोर मस्त सूफी सन्त वारिस अली शाह ने जिस प्रेमरस की सरिता बहायी उससे उत्तरी भारत की सन्त साहित्य-परम्परा के विकास में असाधारण योग मिला। जिस समय पृथ्वीपर उनका आगमन हुआ उस समय भारत में राजनैतिक विशृंखलता अपनी चरम सीमा पर थी; केन्द्रीय राजसत्ता कमज़ोर हो गयी थी; महामुगलों के वंशधर के हाथ से अंग्रेजी कम्पनी के प्रतिनिधि शासन छीनने का कुचक्र रच रहे थे, मराठे और राजपूत अपनी शक्ति-स्थापना में प्रयत्नशील थे; लखनऊ के नवाबों पर विलासिता का इलजाम लगाकर अंग्रेजी प्रभुता के ठेकेदार अवध पर अधिकार करने के सपने देख रहे थे। सन्तोष की बात यह थी कि इस राजनैतिक उथल-पुथल की पहाड़ी जमीन पर सन्तमत का मीठा झरना कलकल स्वरलहरी से बहता आ रहा था। संत जन राम-रहीम के पवित्र नाम-उच्चारण से समाज की कल्याण-साधना में संलग्न थे। ऐसे सन्तों में प्रसिद्ध सूफी सन्त वारिस अली शाह को एक अमित महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। दयानिधि वारिस अली शाह ने अपनी पवित्र प्रेममयी वाणी का दान कर कलिकाल से संत्रस्त असंख्य जीवों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

की रक्षा की; उनको सत्पथ पर लगाया। सन्त मत के प्रपात के उद्गम पर उनकी उपस्थिति का ऐतिहासिक महत्व भी अमित है। उनकी दृष्टि में हिन्दू-मुसलमान हीं नहीं, समस्त प्राणी एक ही प्रेममय परमात्मा की सन्तान हैं।

उत्तर भारत के अवध क्षेत्र के बाराबंकी जनपद के प्राचीन और ऐतिहासिक ग्राम देवा में प्रसिद्ध और पवित्र सैयद कुल में सम्वत् १९७९ वि. में सन्त वारिस अली शाह ने जन्म लिया। उनके पिता कुरबान अली बड़े ही शिक्षित, शिष्ट और उच्च विचारों के महापुरुष थे। उनकी शिक्षा बगदाद नगर में हुई थी। उन्होंने अपने पुत्र को बड़े प्रेम से पालना आरंभ किया पर अचानक काल ने उन पर आक्रमण कर दिया। वारिस अली अभी केवल तीन ही साल के थे, उनके पिता कुरबान अली चल बसे। और दैव का विधान ऐसा था कि मां ने भी उसी साल उनको छोड़ कर मृत्यु का आलिंगन कर लिया। उच्च कोटि के सन्तों के जीवन में ऐसी घटनायें होती रहती हैं; यदि परमात्मा की ओर से ऐसे विधान न हों तो वे सन्तरूप में अभिव्यक्त ही नहीं हो सकते हैं। दिव्य विभूतियों के प्रत्येक कार्य दिव्य और अलौकिक होते हैं। वारिस अली ने बचपन में पाँच साल से सात साल तक की अवधि में सम्पूर्ण कुरान कण्ठ कर डाला; कितनी विलक्षण बात है यह। आध्यात्मिक बातों में उनका मन बहुत लगता था। अन्य बातों और विषयों में उनकी लेशमात्र भी रुचि नहीं थी। सांसारिकता तो उनका स्पर्श नहीं कर सकी थी। वे सदा एकान्त में बैठ कर कुछ-न-कुछ सोचते रहते थे। एक दिन तो लोग उन्हें न पाकर बहुत चिन्तित हो उठे। खोज होने लगी। वे निकटस्थ ही एक सघन जंगल में बैठ कर एकान्त में मनन कर रहे थे। लोग उन्हें इतनी अल्प अवस्था में ऐसी स्थिति में देख कर आश्चर्यचकित हो गये। .... उन दिनों उनके निकट के सम्बन्धी खादिम अली शाह ने जो उच्च कोटि के सूफी थे उनकी शिक्षा-दीक्षा का भार सम्हाला। वारिस अलीशाह जब ग्यारह साल के हुए, उन्हें सूफी मत में विधिपूर्वक दीक्षित कर लिया गया। चौदह साल की अवस्था में वे परमात्मा के प्रेम में पूर्ण रूप से रंग उठे; धीरे-धीरे उनके प्रेम-प्रवचन सुनने के लिये अनुयायियों की संख्या बढ़ने लगी। उन्होंने अपनी सम्पत्ति का अधिकांश दरिद्रनारायण की सेवा में दान कर शेष अपने सम्बन्धियों में वितरित कर दिया; पुस्तकालय भी सम्बन्धी को दे दिया और पन्द्रह साल की अवस्था में विदेश-भ्रमण के लिये निकल पड़े। उनका जीवन पहले से ही तप से परिपूर्ण था, तीन दिनों के बाद

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एक बार भोजन किया करते थे। उन्होंने मक्का की तीर्थयात्रा की, वे बारह साल तक अरब, सीरिया, फिलस्तीन, मेसोपोटामिया, फारस, तुर्की, रूस, जर्मनी आदि में भ्रमण करते रहे। इस यात्राकाल में उन्होंने दस बार हज किया। विदेशों में एक पवित्र हृदय के दरवेश के नाते उन्हें अमित सम्मान मिला। जर्मनी के सबसे बड़े तत्कालीन महापुरुष बिस्मार्क ने उनकी बड़ी आव-भगत की। असंख्य लोग उनके शिष्य और अनुयायी हो गये।

घर वापस आने पर लोग उन्हें पहिचान न सके। सन्त वारिस अली शाह ने देखा कि उनका घर नष्टप्राय सा हो गया है; संसार की निर्ममता पर उन्हें तनिक भी आश्चर्य न हुआ। किसी ने उनका स्वागत-सत्कार भी नहीं किया। इस समय भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम चल रहा था। वारिस अली शाह देवा से सम्वत् १९१४ वि. में लखनऊ आये; उन्होंने फिर विश्व-भ्रमण आरम्भ किया। सम्वत् १९५६ वि. में शिष्यों की विशेष प्रार्थना से वे देवा आये और आजीवन सूफी सिद्धान्तों की व्याख्या करते हुए अपनी जन्म-भूमि में ही रह गये।

शाह साहब ने आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रत निबाहा; सदा परमात्मा के सरस और प्रेममय चिन्तन में आत्मविभोर रहते थे। वे उच्चकोटि के मितभाषी थे। विशेष आवश्यकता के समय दूसरों के हित के लिये कुछ मीठे वचन कभी-कभी बोल दिया करते थे। वे बाहर-भीतर समान थे, उनकी कथनी-करनी एक-सी थी। देखने में बड़े सुन्दर थे पर सदा आँखें नीची कर प्रभुका चिंतन किया करते थे। भूमि पर ही शयन करते थे; तकिया नहीं लगाते थे। रात में बहुत कम सोते थे, किसी ने उनको कभी सोते देखा ही नहीं था। उनका सम्पूर्ण जीवन संयमित था। शाह साहब ने पन्द्रह से चालीस साल की अवस्था तक सदा सात दिनों के बाद एक बार भोजन किया करते थे। उनका अन्तःकरण ईश्वरीय प्रेम से परिपूर्ण था, वे इसी दिव्य प्रेम की व्याप्ति समस्त प्राणीमात्र में देखना चाहते थे, प्रेम के रंग में विश्व को रंग देना ही उनका सिद्धान्त था, वे कहा करते थे कि भागवत प्रेम ही साध्य है। शाह साहब सूफी मत के कादरी और चिस्ती सिद्धान्त के पोषक थे। उन्होंने संसार को दिव्य प्रेम का दान किया। शाह साहब ने कहा कि ईश्वर सर्वत्र हैं; काबा, मसजिद, मन्दिर और गिर्जाघरों में एक ही ईश्वर व्याप्त हैं। उनका एक क्षण के लिये भी विस्मरण नहीं होना चाहिये, वे प्रेम के अधीन हैं, प्रेम में ही उनका निवास है। उन्होंने ईश्वर में अक्षुण्ण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विश्वास रखने की सीख दी, पूर्ण समर्पण का मार्ग बताया। उन्होंने कहा कि ईश्वर में पूर्ण विश्वास हो जाने पर संसार के किसी भी पदार्थ की प्राप्ति की चिंता नहीं रह जाती है।

शाह वारिस अली की इस्लाम धर्म में सुदृढ़ आस्था थी। उन्होंने मक्का की भारत से सात बार यात्रा की थी और सबसे बड़े आश्चर्य की बात तो यह है कि सात बार में तीन बार वे भारत से मक्का तक पैदल गये थे।

सन्त वारिस अलीशाह प्रेमधर्मी दरवेश थे। उनका विश्वास था कि परमात्मा के प्रति प्रेम उनसे एकात्मबोध है। उन्होंने भागवत प्रेम के माध्यम से आत्मसाक्षात्कार किया। उनका जीवन परमात्मा के प्रेम के चरणदेश में पूर्ण शरणागत था। उनकी धारणा थी कि भागवत प्रेम की प्राप्ति अपने प्रयत्न से कदापि सम्भव नहीं है; यह तो सहज है और आध्यात्मिक विकास का फल है। शाह साहब ने एक बार कहा था कि परमात्मा का सिंहासन केवल आसमान में ही नहीं है, उसका अन्वेषण अपने हृदय में करना चाहिये।

शाह साहब के पास भागवत प्रेम को छोड़ कर अपनी कहलाने वाली वस्तु कुछ भी नहीं थी। उन्होंने अपनी सम्पत्ति का वितरण गरीब और असहायों में कर दिया था। वे अपने शिष्यों को बहुत मानते और चाहते थे। उनकी उक्ति है कि मेरे शिष्य मेरे पुत्र के समान हैं, उन्हें भाई-भाई की तरह रहना चाहिये। सत्तर साल की अवस्था में सम्वत् १९६२ (वि. १७ अप्रैल सन् १९०५ ई.) में उन्होंने देवा में ही परमात्मैक्य प्राप्त किया, देवा में उनकी समाधि असंख्य प्राणियों की श्रद्धा की प्रतीक है। निस्सन्देह शाह वारिस अली भागवत प्रेम की सजीव प्रतिमा थे। अपने समय की दिव्य प्रेममयी आध्यात्मिक शक्ति थे।

रचना

सन्त वारिस अली शाह के वचन ही उनकी अमर कृति के रूप में सुरक्षित हैं।

वचन

परमात्मा का प्रेम आत्मप्रयत्न से साध्य नहीं है, यह तो आध्यात्मिक विकास का फल है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रेम नियम की अपेक्षा नहीं रखता है। प्रेम दूरी का विचार नहीं करता है। यदि तुम मुझसे प्रेम करते हो तो हजार मील दूर रहने पर भी मैं तुम्हारे पास हूँ।

परमात्मा से कुछ भी नहीं मांगो, चाहे तुम भूख से ही क्यों न मरते हो। प्रभु जानते है कि तुम्हारी क्या आवश्यकता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वामी विवेकानन्द

यतोवाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न विभेति कुतश्चनेति।

मन के सहित वाणी आदि समस्त इन्द्रियाँ जहाँ से उसे न पाकर लौट आती हैं, उस ब्रह्म के आनन्द को जानने वाला महापुरुष किसी से भी भय नहीं करता है।

—तैत्तिरीयोपनिषद् २।९।१.

स्वामी विवेकानन्द अपने समय के विश्व की बहुत बड़ी आध्यात्मिक शक्तियों में से एक थे; उन्होंने वेदान्तसंवेद्य ब्रह्म की विश्वव्यापी अनुभूति के माध्यम से भारतीय संस्कृति के आध्यात्मिक स्वरूप का अपने समकालीन विश्व को परिचय दिया। दक्षिणेश्वर के शक्ति-ब्रह्मोपासक परमहंस रामकृष्ण की चरण-कृपा की ज्योति के विस्तार से उन्होंने अविद्या-अन्धकार का नाश कर आत्मगत सत्य की चेतनता से मानवता का कल्याण किया। उनका प्राकट्य बहुत बड़ी ऐतिहासिक आवश्यकता की पूर्ति का प्रतीक था। वास्तव में वे अपने आप के स्वामी थे, महात्मा थे।

विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दी तथा बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में भारत में पूर्ण रूप से अंग्रेजी राजसत्ता-प्रभुता की स्थापना हो चुकी थी। देश में विदेशी मिशनरियों का धर्मप्रचार-कार्य सावेग आगे बढ़ रहा था। भारतीय संस्कृति और धर्म की विदेशी मिशनरी द्वारा खिल्ली उड़ायी जा रही थी। ऐसे समय में राजा राममोहन राय की देखरेख में ब्राह्म समाज की स्थापना हुई, महर्षि देवेन्द्र नाथ ठाकुर और केशव चन्द्र सेन ने परमात्मा की उपासना की एकता-सिद्धि के लिये अथक परिश्रम किया; बंगाल से ब्राह्मसमाज के संरक्षण में शुद्ध आत्मज्ञान और भगवद्रस का उदय आरम्भ हुआ। दक्षिणेश्वर के काली मन्दिर में परमहंस रामकृष्ण ने घोषणा की कि परमात्मा की उपासना का जीव मात्र को अधिकार है। वातावरण में यह उपदेश परिव्याप्त हो उठा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कि मुख बन्द कर हृदय खोलना चाहिये, प्राणीमात्र की उन्नति में सचेष्ट रहना चाहिये। इसी समय स्वामी दयानन्द के शुद्ध वैदिक धर्म सम्बन्धी उद्घोष ने लोगों को सचेत कर दिया। थियोसफी आन्दोलन के सूत्रपात ने भी आध्यात्मिक जागरण के मार्ग में महत्वपूर्ण योग दिया। स्वामी विवेकानन्द ने इस अलौकिक और दिव्य आध्यात्मिक प्रकाश में अपने गुरुदेव की कृपा से पाश्चात्य देशों—अमेरीका तथा यूरोप के, जापान और चीन के निवासियों को अपने उपदेश के द्वारा समझाया कि भारत महान देश है, उसकी आध्यात्मिक शक्ति की तुलना में विश्व का कोई देश नहीं ठहर सकता है। स्वामी विवेकानन्द ने ब्रह्मविद्या का प्रचार किया और विदेशी चिंतन-पद्धति पर भारतीय अध्यात्मज्ञान की विजय स्थापित की।

स्वामी विवेकानन्द ने कहा कि प्रत्येक स्त्री-पुरुष सभी को ईश्वर के ही समान देखो। तुम किसी की सहायता नहीं कर सकते, तुम्हें केवल सेवा करने का अधिकार है। प्रभु की सन्तान की —यदि भाग्यवान हो— तो स्वयं प्रभु की सेवा करो। ईश्वर के अनुग्रह से यदि उनकी किसी सन्तान की सेवा करोगे तो धन्य हो जाओगे।.... सेवा तुम्हारे लिये पूजा के तुल्य है।

बंगाल प्रान्त के शिमला जनपद में एक परम आस्तिक भागवत कायस्थ कुल में स्वामी विवेकानन्द जी का प्राकट्य हुआ था। उनके पूर्वजों की भगवान शिव में महती निष्ठा थी। अपने अड़ोस-पड़ोस में उनके पूर्वज बड़े सम्मानित समझे जाते थे। सम्वत् १९२० वि. (सन् १८६३ ई. की १२ जनवरी को प्रातःकाल) मकर संक्रान्ति में धरती पर विवेकानन्द का संसार में आत्म-ज्योति फैलाने के लिये अवतरण हुआ। उनके घर में तथा अड़ोस-पड़ोस के लोग आनन्द-सागर में मग्न हो गये। उनके पिता विश्वनाथ और माता भुवनेश्वरी देवी ने शिव की कृपा से ऐसे अद्भुत बालक की प्राप्ति की थी। उनकी माता तो साक्षात् अन्नपूर्णा ही थीं, शील-स्वभाव की विनम्रता और मधुरता से वे अपने परिवार की लक्ष्मी थीं, उनकी देख-रेख में बालक नरेन्द्रदत्त—विवेकानन्द का पालन-पोषण होने लगा। बचपन में उनके कई एक अद्भुत चरित्र देखकर लोग आश्चर्यचकित हो गये। रोते समय यदि किसी के मुख से वे भगवान शिव के नाम का उच्चारण सुनते थे तो अनायास ही रोना बन्द कर खिलखिलाने लगते थे। दरवाजे पर साधु सन्तों के आगमन से वे हर्षित हो उठते थे। एक दिन दरवाजे पर एक साधु का आगमन हुआ, भिक्षा मांगने पर नरेन्द्रने एक कपड़ा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दे दिया। लोगों ने पूछा तब निर्भय होकर कह दिया कि साधु ने भिक्षा माँगी और मैंने कपड़ा दिया। इस प्रकार बचपन में ही उन्होंने आध्यात्मिक जीवन का पाठ पढ़ना आरंभ कर दिया। माता भुवनेश्वरी देवी उन्हें रामायण पढ़ कर सुनाया करती थीं। रामनाम के प्रति नरेन्द्र का आकर्षण बढ़ने लगा। उन्होंने सीताराम की मिट्टी की प्रतिमा बाजार से खरीदी और उसकी फूल, चन्दन आदि से पूजा करते थे। इधर ठीक इसी समय दक्षिणेश्वर के मन्दिर में स्वामी रामकृष्ण परमहंस नरेन्द्र को विवेकानन्द की आकृति देने के लिये तप कर रहे थे, भगवती शक्ति से कृपा-याचना कर रहे थे। जिस प्रकार भगवान कृष्ण के जीवन में अर्जुन और महात्मा बुद्ध के जीवन में आनन्द का महत्वपूर्ण योग था उसी प्रकार स्वामी रामकृष्ण परमहंस के अध्यात्म-जीवन के प्रमुख स्तम्भ स्वामी विवेकानन्द जी महाराज थे। दोनों अभिन्न आत्मा थे।

जब नरेन्द्र छः साल के थे तब उनको पाठशाला में अध्ययन के लिये भेजा गया। धीरे-धीरे उनकी शिक्षा का क्रम बढ़ने लगा और उन्होंने युवावस्था में प्रवेश किया। उच्चशिक्षा के साथ-ही-साथ उनकी अभिरूचि ब्राह्म समाज में भी बढ़ने लगी, ब्राह्म समाज उन दिनों अध्यात्म ज्ञान का केन्द्र समझा जाता था। नरेन्द्र अपने शिक्षा-काल में प्रायः कहा करते थे कि किसी बात को ठीक इसी लिये नहीं मानना चाहिये कि वह पुस्तक में लिखित है या किसी ने कही है, उसका सत्यज्ञान स्वयं प्राप्त करना चाहिये। यही साधना का स्वरूप है, अनुभूति है। नरेन्द्र की युवावस्था पर उनकी प्रारम्भिक आध्यात्मिक रूचि, पारिवारिक वातावरण और शिक्षा-दीक्षा तथा स्वामी रामकृष्ण परमहंस के सम्पर्क का विशेष प्रभाव स्वीकार किया जा सकता है। जिस सीमा तक पारिवारिक वातावरण का सम्बन्ध है उसमें उनके पिता का बहुत बड़ा हाथ था। पाश्चात्य रीति-खाजों और शिक्षा-दीक्षा से भी प्रभावित थे। उनके सम्पर्क में नरेन्द्रदत्त ने पाश्चात्य दर्शन का अध्ययन आरम्भ किया, ब्राह्म समाज के बड़े-बड़े नेताओं से भी ब्रह्म-विद्या पर उनका वादाविवाद चलता रहता था, ब्राह्म समाज की मान्यता के अनुसार निर्गुण-निराकार ब्रह्म की कोरी और नीरस उपासना में उनका मन बहुत दिनों तक न लग सका। वे तो भगवान की कृपा-ज्योति और मधुर उपासना—सरस भक्ति पाने के लिये विकल हो उठे। स्वामी रामकृष्ण परमहंस उनकी इस प्रकार की आवश्यकता की पूर्ति के चिन्मय भागवत प्रतीक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

थे। नरेन्द्रदत्तने बड़ी श्रद्धा और भक्ति से रामकृष्ण परमहंस के दर्शन के लिये दक्षिणेश्वर मन्दिर में जाना आरम्भ किया। रामकृष्ण परमहंस ने उनको मधुरस्नेह का दान दिया।

दक्षिणेश्वर में अपने गुरु के प्रथम दर्शन और स्पर्श से ही नरेन्द्र रामकृष्ण परमहंस के हो गये। जब वे पहले पहल स्वामी रामकृष्ण से मिलने दक्षिणेश्वर में गये, रामकृष्ण उन्हें देखते ही आश्चर्यचकित हो गये कि कलकत्ता ऐसे विषय-भोग प्रधान नगर से इस तरह के भी व्यक्ति का आगमन हो सकता है! नरेन्द्र का मुख दिव्यता से चमक रहा था, ब्रह्मचर्य के ऐश्वर्य से वे पूर्ण सम्पन्न थे। परमहंस रामकृष्ण ने उनका स्पर्श किया, आशीर्वाद दिया। नरेन्द्र से एक गीत गाने का आग्रह किया, बाल योगी नरेन्द्र ने संगीत गाया:

'हे मेरे मन इस दुनिया से दूर
अपने परम धाम को चलो
तुम यहाँ एक अपरिचित की
तरह क्यों घूम रहे हो।'

रामकृष्ण गीत का रसास्वादन कर समाधिस्थ हो गये। नरेन्द्र आशीर्वाद लेकर चले गये। नरेन्द्र को उन्होंने अपने प्रेम में आबद्ध कर लिया।

एक बार तो परमहंस देव नरेन्द्र के लिये बहुत विकल हो गये। नरेन्द्र बहुत दिनों से उनके पास नहीं आये थे। कलकत्ता के दो व्यक्ति परमहंस देव के दर्शन के लिये दक्षिणेश्वर आये। रामकृष्ण ने उनसे कहा कि नरेन्द्र क्यों नहीं आया, अच्छा, बता देना कि मैंने बुलाया है। संयोग से दोनों व्यक्ति रामदयालु, और बाबूराम मठ में ही रात को रह गये। परमहंस देव ने आधीरात के बाद कई बार उठ-उठ कर उन दोनों से कहा कि तुम मेरे नरेन्द्र से अवश्य कह देना कि मैंने बुलाया है। इस घटना से नरेन्द्र के प्रति तत्कालीन अध्यात्म देवता रामकृष्ण परमहंस के स्नेहपूर्ण, स्निग्ध आकर्षण का पता चलता है। नरेन्द्र उनके अपने थे। वे माता काली के सम्मुख निवेदन किया करते थे कि 'मैं बिना नरेन्द्र को देखे जीवित नहीं रह सकता। मैं रोता रहा फिर भी नरेन्द्र नहीं आया, मुझे उसके बिना कितना दुख सहना पड़ रहा है पर उसे चिंता ही नहीं है।' रामकृष्ण देव ने उनको वेदान्त के पथ पर ही ले चलना उचित समझा। नरेन्द्र ने उनसे अद्वैत ज्ञान की दीक्षा प्राप्त की और गुरुदेव की आज्ञा से वेदान्त-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दर्शन की जानकारी प्राप्त करने के लिये उन्होंने अष्टावक्र संहिता तथा अन्य वेदान्तपरक ग्रन्थों का अध्ययन किया। गुरु की कृपा से उन्होंने ज्ञान मार्ग का आश्रय ग्रहण किया। उन्होंने प्रत्येक पदार्थ में ब्रह्म और ब्रह्म में प्रत्येक पदार्थ का दर्शन किया। ब्राह्म समाज के आध्यात्मिक चिंतन से परिष्कृत मस्तिष्क ने अद्वैत ज्ञान का गूढ़ रहस्य सहज में ही समझ लिया। परमहंस देव में नरेन्द्रदत्त की श्रद्धा उत्तरोत्तर बढ़ती गयी।

नरेन्द्र की रामकृष्ण ने एक बार कड़ी परीक्षा ली। नरेन्द्र दक्षिणेश्वर मन्दिर में उनका दर्शन करने आया करते थे पर परमहंस देव उनसे कुछ भी बात नहीं करते थे। नरेन्द्र को कई बार आते देख कर उन्होंने पूछा कि मैं तुमसे इतना खिंचा-खिंचा-सा रहता हूँ फिर भी तुम क्यों आते रहते हो ? नरेन्द्र ने कहा कि क्या आप यह समझते हैं कि मैं आप को केवल सुनने के लिये आता हूँ ? मैं आपसे प्रेम करता हूँ, आपको देखने आता हूँ। दक्षिणेश्वर आते रहने का एकमात्र कारण यही है। रामकृष्ण इस उत्तर से बहुत प्रसन्न हुए और कहा कि मैं तो तुम्हारी परीक्षा ले रहा था।

एक बार फिर परीक्षा ली। उन्होंने कहा कि मैं देवी की कृपा से तुम्हें सिद्धि और शक्ति से सम्पन्न करना चाहता हूँ। नरेन्द्र ने रामकृष्ण देव के चरणों में विनम्रतापूर्वक निवेदन किया कि मुझे उनकी तनिक भी आवश्यकता नहीं है, मैं तो पहले भगवद् प्राप्ति चाहता हूँ, उसके बाद निश्चय हो सकेगा कि मुझे शक्ति और सिद्धि की कितनी आवश्यकता है। रामकृष्ण उनके उत्तर से विमुग्ध हो गये।

नरेन्द्र के पिता कभी-कभी उन्हें दक्षिणेश्वर जाने से रोक देते थे, उन्हें आशंका थी कि कहीं नरेन्द्र पर गृहत्याग और संन्यास का रंग न चढ़ जाय। ऐसी स्थिति में नरेन्द्र कहा करते थे कि तुम लोग नहीं समझते हो और न मैं ही समझ पाता हूँ कि मैं दक्षिणेश्वर क्यों जाता हूँ पर मेरी समझ में इतनी बात अवश्य आती है कि मैं बूढ़े संन्यासी रामकृष्ण से प्रेम करता हूँ और उनके दर्शन के लिये मुझे जाना ही पड़ता है। यदि किसी कारण वश नरेन्द्र परमहंस रामकृष्ण से मिलने नहीं जा पाते थे तो वे स्वयं उनसे कलकत्ता मिलने चले आया करते थे। गुरु और शिष्य के सम्बन्ध का असाधारण निर्वाह हुआ।

नरेन्द्र जिस साल बी. ए. में थे उसी साल उनके पिता का देहावसान हो गया। अभी परीक्षा-फल भी नहीं प्रकाशित हुआ था। समस्त परिवार के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भरण-पोषण तथा अपनी शिक्षा का भार उन्हीं के कन्धों पर आ पड़ा। आर्थिक स्थिति चिंताजनक थी। बी. ए. में उत्तीर्ण होने के बाद उन्होंने कानून पढ़ना आरम्भ किया पर यह क्रम अधिक दिनों तक नहीं चल सका। अर्थाभाव में उन्होंने पढ़ना छोड़ दिया और नौकरी खोजने लगे। वे हाथ में आवेदन-पत्र लेकर कड़ी-से-कड़ी धूप में कलकत्ता की सड़कों पर एक कार्यालय से दूसरे कार्यालय का चक्कर काटने लगे; माया उनकी परीक्षा ले रही थी; मृत्यु की काली परिछायीं उनके पीछे-पीछे घूम रही थी पर वे ईश्वर-विश्वास में अटल रहे कि प्रभु उन्हें जीविका का सहारा प्रदान करेंगे ही। उन्हें नौकरी न मिली, उनके मन में शंका उठ खड़ी हुई ईश्वर के अस्तित्व के सम्बन्ध में लोगों ने कहना आरम्भ किया कि नरेन्द्र तो नास्तिक हो गये। इस समाचार से रामकृष्ण परमहंस बड़े उदास हो गये पर उन्होंने समाचार देनेवालों से कहा कि ऐसा असम्भव है, मा काली मुझे सान्त्वना दे रही हैं कि नरेन्द्र पर कभी नास्तिकता का रंग ही नहीं चढ़ सकता है।

एक दिन तो विचित्र घटना हुई। नौकरी की खोज में भूख और चिंता से व्यथित होकर नरेन्द्र घर लौट रहे थे। रास्ते में बड़े जोर की जलवृष्टि हुई। वे सड़क पर अचेत होकर गिर पड़े। उन्होंने अनुभव किया कि किसी अदृश्य शक्ति ने मेरा स्पर्श किया। वे स्वस्थ हो गये। थकावट और चिंता का अंत हो गया। उन्होंने गृहत्याग का संकल्प कर लिया। घर आये। उनके घर पर उसी रात को रामकृष्ण परमहंस उन्हें देखने आये और अपने साथ ही नरेन्द्र को दक्षिणेश्वर लेते गये। दक्षिणेश्वर पहुँचने पर रामकृष्ण ने उनसे स्नेहपूर्वक कहा कि मैं जानता हूँ कि मा के कार्य-सम्पादन के लिये पृथ्वी पर तुम्हारा आगमन हुआ है, तुम संसार के होकर बहुत दिनों तक नहीं रह सकते पर जब तक मैं जीवित हूँ तुम्हें अभी संसार में रहना ही होगा—ऐसा कह कर परमहंस रामकृष्ण फूट-फूट कर रोने लगे। दूसरे दिन नरेन्द्र घर लौट आये।

एक बार नरेन्द्र ने सोचा कि मेरे गुरु देव सर्वसमर्थ हैं, शक्ति के बहुत बड़े उपासक हैं, यदि वे काली से निवेदन कर देंगे तो मेरा अर्थसंकट समाप्त हो जायेगा। नरेन्द्र दक्षिणेश्वर गये। उन्होंने गुरुदेव के सम्मुख अपनी बात रखी। रामकृष्ण परमहंस ने कहा कि तुम मा काली से स्वयं कहो। वे तुम्हारा कल्याण करेंगी। रात में नरेन्द्र ने भगवती की प्रतिमा के सामने उपस्थित होकर कहा कि मुझे विवेक, त्याग, ज्ञान और भक्ति प्रदान कीजिये। मैं आपका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनवरत दर्शन करता रहूँ। मा की कृपा-ज्योति उनमें उतर आयी। उन्होंने परिवार की सुख-समृद्धि की याचना की ओर ध्यान ही न दिया। गुरुदेव ने उन्हें दूसरी-तीसरी बार भी भेजा पर उन्होंने मा से त्याग, ज्ञान और भक्ति ही माँगी। मा की प्रतिमा के चैतन्य स्वरूप में उनका दृढ़ विश्वास हो गया। रामकृष्ण देव उनसे कहा करते थे कि किसी बात को इसी लिये मत स्वीकार कर लो कि उसे मैं कहता हूँ। उसे स्वयं समझो, जीवन का ध्येय अनुभवगम्य है। रामकृष्ण ने नरेन्द्र में अपनी सारी चेतना भर दी। एक दिन स्वप्न में परमहंस ने उनसे कहा 'मेरे साथ आओ, तुम्हें राधा गोपी का दर्शन होगा।' नरेन्द्र उनके पीछे-पीछे चलने लगे और यह देख कर आश्चर्य में पड़ गये कि स्वयं गुरुदेव ही राधा में परिणत हो गये। ब्राह्म समाज के रंग मंच पर निर्गुण ब्रह्म के गीत गानेवाले नरेन्द्र ने राधाप्रेम पर गीत गाना आरम्भ किया। वे दार्शनिक से भक्त बन गये।

नरेन्द्र के पिता के देहावसान पर रामकृष्ण अपने शिष्यों और भक्तों से कहा करते थे कि कितना अच्छा हो कि तुम में से कुछ लोग उसकी सहायता करते। लोगों के चले जाने पर नरेन्द्र गुरुदेव से कहा करते थे कि लोगों से आपने ऐसा क्यों कहा। रामकृष्ण का उत्तर होता था कि मैं तुम्हारे लिये दरवाजे-दरवाजे पर भीख माँग सकता हूँ। जब नरेन्द्र के विवाह की बात चलने लगी, परमहंस रामकृष्ण, काली से प्रार्थना किया करते थे कि मा, नरेन्द्र का विवाह-सम्बन्ध विच्छिन्न कर दो, मेरे नरेन्द्र को संसार के विषयभोग में मत जकड़ो, मा। ऐसा ही हुआ। रामकृष्ण ने नरेन्द्र को तपस्या और त्याग के पथ का पथिक बना दिया। संसारासक्त होने से बचा लिया। उन्होंने गुरुदेव से साधना का तत्वज्ञान प्राप्त किया। दक्षिणेश्वर में नरेन्द्र ने अपने गुरुदेव के सान्निध्य-सुख का छः साल तक रसास्वादन किया। तपस्या और साधना में लगे रहे। रामकृष्ण परमहंस अन्तर्ज्योति और सिद्धि थे तो नरेन्द्र उनके व्याख्याकार थे। नरेन्द्र ने उनको ईश्वर नहीं, ईश्वर के मानव-रूप में देखा। सम्वत् १९४२ वि. में परमहंस देव के बीमार पड़ने पर उन्होंने उनकी पूरी-पूरी सेवा की। गुरु ने प्रसन्न होकर राममन्त्र प्रदान किया। यह नरेन्द्र के लिये महामन्त्र था। सम्वत् १९४३ वि. में रामकृष्ण देव ने महासमाधि ली। काशीपुर से उनके शरीर को अन्तिम क्रिया के लिये बड़नगर पहुँचाया गया। गुरुदेव के महानिर्वाण के बाद नरेन्द्र बड़नगर मठ के अध्यक्ष चुने गये। अपने गुरुदेव के आध्यात्मिक संदेश के प्रचार के लिये नरेन्द्र तथा अन्य भक्तों और शिष्यों ने संन्यास का व्रत लिया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बड़नगर मठ आध्यात्मिक साधना का प्रतीक बन गया। ज्ञान, भक्ति और दर्शन का केन्द्र हो उठा। रामकृष्ण की महासमाधि के बाद विवेकानन्द तथा उनके गुरु भाइयों ने तीर्थ-यात्रा की। केवल रामकृष्णानन्द बड़नगर मठ में रह गये। स्वामी विवेकानन्द (नरेन्द्र दत्त) पहले बनारस गये। बनारस में उन्होंने द्वारकादास के आश्रम में निवास किया, स्वामी भास्करानन्द का सत्संग प्रात किया। बड़नगर मठ लौट आये। बड़नगर से अयोध्या, लखनऊ, और आगरा होते हुए वे वृन्दावन गये। वृन्दावन में कुछ दिन तक रसिक सन्तों का सत्संग प्राप्त कर वे हरिद्वार और ऋषीकेश की ओर बढ़ गये। हिमालय की शीतल, शान्त गोद में उनके तपोमय जीवन का आरंभ हुआ। वे पतित पावनी भागीरथी के कल-कल प्रवाह की रमणीय छवि से आत्मविभोर हो गये। उन्होंने बद्रीनारायण और केदारनाथ की यात्रा का संकल्प किया पर न जा सके और बड़नगर मठ की ओर उतर पड़े। कुछ दिनों तक मठ में रह कर उन्होंने शास्त्रों का अध्ययन किया। बड़नगर से वे एलाहाबाद और एलाहाबाद से गाजीपुर गये। गाजीपुर में प्रसिद्ध संत पयहारी बाबा से उनकी भेंट हुई। उनके सत्संग से स्वामी विवेकानन्द बहुत प्रभावित हुए। गाजीपुर से स्वामी जी बड़नगर लौट आये। उन्होंने हिमालय की गोद में बैठ कर तप करने का निश्चय किया। वे बड़नगर से बनारस और अयोध्या होते हुए ऋषिकेश पहुँच गये और प्रकृति की दिव्यतम रमणस्थली—तपोभूमि—ऋषिकेश में तप और साधना करने लगे।

स्वामी जी ने राजस्थान का परिभ्रमण आरम्भ किया। अलवर राज्य के दीवान ने उनको अपने निवासस्थान पर आमन्त्रित किया। तत्कालीन अलवर-नरेश शिव मंगल सिंह भी उपस्थित थे। स्वामी जी आत्मज्ञानी थे, घट-घट में ब्रह्म का दर्शन करने वाले थे। उन्हें परमात्मा को छोड़कर और किसी का भय नहीं था। अलवर नरेश ने कहा कि स्वामी जी मैं मूर्ति-पूजा में विश्वास नहीं रखता। दीवान के कमरे में अलवर नरेश का एक चित्र टंगा हुआ था। स्वामी जी ने दीवान से कहा कि इस चित्र पर थूक दो। दीवान ने उत्तर दिया कि यह चित्र हमारे महाराजा का है, मैं ऐसा नहीं कर सकता, वे मेरे पूज्य और आदरणीय हैं। स्वामी जी ने अन्य उपस्थित लोगों से भी कहा तो उन्होंने भी उत्तर दिया। अलवर नरेश, दीवान तथा अन्य लोग आश्चर्यचकित हो गये। स्वामी जी ने महाराजा से कहा कि एक तरीके से आप इस चित्र में नहीं है, यह कागज मात्र है, दूसरे तरीके से आप इसमें अवस्थित हैं, दीवान और जनता के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मन में इस चित्र के प्रति श्रद्धा है। यही बात प्रतिमा में इष्ट के विषय में समझनी चाहिये। अलवर नरेश उनके पैरों पर गिर पड़े। उनके शिष्य हो गये। अलवर से अजमेर आये। आबू पहाड़ी पर खेतड़ी नरेश ने उनका दर्शन किया। खेतड़ी नरेश के साथ वे खेतड़ी आये। महाराजा ने उनके सत्संग से प्रभावित होकर उनको अपना गुरु बना लिया। खेतड़ी से वे अहमदाबाद आये। स्वामी जी ने गुजरात और दक्षिण भारत का भ्रमण किया, तीर्थस्थानों की यात्रा की, रामेश्वरम्, मदुरा तथा कन्याकुमारी आदि में भ्रमण कर अद्वैत ज्ञान का प्रचार किया। सिन्धु नदी के तट पर एक बूढ़े व्यक्ति को उन्होंने ऋग्वेद की ऋचाओं का पाठ करते देखा :

आयाहि वरदे देवि त्र्यक्षरे ब्रह्मवादिनि
गायत्रि छन्दसां मातर्ब्रह्मयोनि नमोस्तुते।

इस प्रकार दिन-प्रति-दिन उनमें यौगिक तथा आध्यात्मिक शक्ति का विकास होता गया। अपने परिव्राजक जीवन में एक वार कुछ भिक्षा न मिलने पर भूख से परिश्रान्त होकर एक सघन वन में आ गये। शाम का समय था। उन्होंने अपनी ओर एक सिंह को आते हुए देखा। उन्होंने विचार किया कि मैं भूखा हूँ, सिंह भी भूखा है। मेरा शरीर भगवत्प्राप्ति में अभी तक सफल नहीं हो सका, इसको रखना व्यर्थ है। यदि यह सिंह का ग्रास बन जाये तो यही इसका सबसे बड़ा सदुपयोग है। पर आश्चर्य की बात तो यह हुई कि सिंह उनकी ओर नहीं आ सका। स्वामी जी ने जंगल में ही रात बितायी। उन्होंने मद्रास और हैदराबाद का भ्रमण किया। पुत्रोत्सव के उपलक्ष में महाराजा खेतड़ी के विशेष आग्रह पर खेतड़ी गये। महाराजा की विशेष प्रार्थना से अमेरीका के शिकागो नगर में होने वाले धर्म सम्मेलन में भारत का प्रतिनिधित्व करने के लिये वे अमेरीका गये। अमेरीका जाने के अवसर पर ही उन्होंने खेतड़ी नरेश के कहने से 'विवेकानन्द' की संज्ञा अपनायी थी। चीन और जापान होते हुए वे अमेरीका पहुँचे। गेरुआ वस्त्र में दिव्य संन्यासी ने अमेरीका की विषय भोग-प्रधान भूमि पर चरण रखे, ऐसा लगता था मानों भौतिकता को स्वाहा कर देने के लिये साक्षात् अग्नि देवता प्रकट हो गये। सम्वत् १९५० वि. (सन् १८९३ ई. में ग्यारह सितम्बर को दस बजे दिन) में उन्होंने शिकागो के धर्मसम्मेलन में प्रवेश किया। देश-देश के धर्मप्रतिनिधि उनके दिव्य सौन्दर्य को देख कर मुग्ध हो गये। जिस समय उन्होंने उपस्थित जनता को 'बहन और भाइयों' के रूप

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

में सम्बोधन किया उस समय अमेरिका का मस्तक भारतीय संस्कृति और आध्यात्मिक ज्योति के मूर्तिमान रूप स्वामी विवेकानन्द के चरणों पर श्रद्धा और भक्ति से, प्रेम और आदर से विनत हो गया। उनके जयनाद से समस्त वातावरण आनन्द सागर में सम्प्लावित हो उठा। उन्होंने अमेरिका में सिंहनाद किया कि हिन्दू धर्म विश्व धर्म है, समस्त संसार को उसने सहिष्णुता, सत्य, शान्ति और प्रेम का पाठ पढ़ाया है। उन्होंने हिन्दू धर्म और बौद्ध धर्म के समन्वय पर प्रकाश डाला और कहा कि दोनों एक दूसरे की अपेक्षा रखते हैं। हिन्दू धर्म समस्त धर्मों के स्वतन्त्र विकास को मान्यता प्रदान करता है। अमेरीका में स्वामी जी का धूम-धाम से स्वागत हुआ, बड़े-बड़े नगरों में उनके प्रवचन हुए। उन्होंने सात्विकता और ईश्वर भक्ति का प्रचार किया। अमेरीका से उन्होंने योरप की यात्रा की। इंग्लैंड आदि देशों में स्वामी विवेकानन्द का विशेष स्वागत हुआ। लोगों ने साक्षात् बुद्ध और महात्मा ईसा के रूप में उनका दर्शन किया। विदेश-परिभ्रमण के बाद अपना अध्यात्मसन्देश सुनाने के लिये तथा ऋषियों द्वारा अनुभूत ब्रह्मज्ञान—वेदान्त धर्म की गौरवगाथा गाने के लिये वे भारत लौट आये। देश ने उनका बड़ी श्रद्धा से स्वागत किया। मद्रास और बंगाल प्रान्त में उनके प्रवचन आरम्भ हो गये। रामनाद के राजा ने उनकी शोभायात्रा की गाड़ी अपने हाथ से खींची। स्वामी जी ने रामेश्वर और मीनाक्षी का दर्शन किया। बंगाल आये। उनके कार्यक्रम बढ़ने लगे। देश विवेकानन्द के जयनाद से मुखरित हो उठा। स्वामी जी ने मद्रास और बंगाल का भ्रमण समाप्त कर स्वास्थ्य-लाभ और विश्राम की दृष्टि से अलमोड़ा की ओर प्रस्थान किया। अलमोड़ा से उन्होंने काश्मीर और पंजाब में अध्यात्म ज्ञान के प्रचार का संकल्प किया। लाहौर में स्वामी रामतीर्थ से उनकी भेंट हुई। उस समय स्वामी रामतीर्थ ने संन्यास नहीं लिया था। उनका नाम तीर्थराम था, वे स्थानीय कालेज में गणित के प्राध्यापक थे। स्वामी विवेकानन्द जब लाहौर से चलने लगे तब रामतीर्थ ने उनको उपहाररूप में एक सोने की घड़ी दी। विवेकानन्द ने बड़े प्रेम से घड़ी स्वीकार कर ली और उसको रामतीर्थ की जेब में रखते हुए कहा कि मित्र, मैं इस घड़ी को इसी जेब में पहना करूँगा। दोनों एक-दूसरे के प्रेम से प्रभावित हुए। स्वामी विवेकानंद विश्राम करने के लिये देहरादून आये। राजा खेतड़ी की विशेष प्रार्थना पर वे राजस्थान गये। इस यात्रा में वे अलवर भी गये। अलवर में जिस समय बड़े-बड़े धनी और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रतिष्ठित लोग उनके स्वागत के लिये रेलवे स्टेशन पर खड़े थे, गाड़ी से उतरते ही उन्होंने अपने परिचित रामसनेही को देखा, वह गरीब था। जब पहली बार स्वामी जी अलवर आये थे, वह उनका शिष्य हो गया था। स्वामी जी उसका नाम ले कर जोर-जोर से पुकारने लगे और बिना किसी दूसरे प्रतिष्ठित व्यक्ति की चिंता किये ही वे भीड़ से बाहर निकल कर उसके पास पहुँच गये और कुशल-समाचार पूछने लगे। खेतड़ी में वे कुछ दिनों तक ठहर गये। वे नित्य नियमपूर्वक घोड़े पर सवारी कर प्राकृतिक दृश्यों के अवलोकन के लिये भ्रमण करने जाया करते थे। लोग अद्भुत राजसंन्यासी को देख कर आश्चर्यचकित हो गये। कुछ दिनों के बाद वे अलमोड़ा आ गये। अलमोड़ा से वे कलकत्ता गये। बेलूर (आलमबाग) मठ में उनका कार्य बढ़ गया। स्वामी जी के आग्रह और निमन्त्रण पर मिस मारगरेट नोबुल–सिस्टर निवेदिता ने भारत आकर स्वामी जी के सिद्धान्तों के प्रकाशमें तथा भारतीय और पाश्चात्य विचारधारा की समन्वय-भूमि पर शिक्षा आदि के प्रचार का कार्य आरंभ किया।

स्वामी विवेकानन्द एक बार अलमोड़ा में थे। बंगाल के स्वदेशभक्त सन्त महात्मा अश्विनी कुमार दत्त उनसे मिलने गये। अलमोड़ा पहुँचने पर उन्होंने सुना कि यहाँ एक साधु रहते हैं जो घोड़सवारी करते हैं, अंग्रेजी बोलते हैं और राजकीय ठाट से रहते हैं। अश्विनी कुमार ने जब साधु के बारे में पता लगाया तो एक रास्ता चलने वाले ने उनसे कहा कि आपका अभिप्राय घोड़सवारी करने वाले संन्यासी से तो नहीं है! इतने में स्वामी विवेकानन्द टहल कर आ गये। वे घोड़े पर सवार थे। उनके आश्रम से एक अंग्रेज शिष्य निकला, घोड़े की लगाम थाम ली। विवेकानन्द भीतर चले गये। अश्विनी कुमार ने अंग्रेज से पूछा कि क्या नरेन्द्र हैं। अंग्रेज शिष्य ने कहा कि नरेन्द्र तो मर गये, यहाँ विवेकानन्द रहते हैं? स्वामी विवेकानन्द ने भीतर से ही कहा कि तुमने क्या कह डाला! स्वामी जी ने आदरपूर्वक अश्विनी कुमार का आलिंगन किया और कहा कि आप का नरेन्द्र यहाँ है। दोनों का मिलन-सुख अपूर्व था।

अलमोड़ा से स्वामी विवेकानन्द काश्मीर गये। अमरनाथ की यात्रा की। सिस्टर निवेदिता उनके साथ थी। स्वामी जी ने अमरनाथ -शिवलिंग का दर्शन तथा स्तवन किया। बंगाल के शाक्त संत रामप्रसाद के गीत-गान से उन्होंने पवित्र वातावरण को धन्य कर दिया। वे काश्मीर से कलकत्ता आये। शिष्यों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तथा गुरुभाइयों द्वारा 'उद्‌बोधन' पत्रिका के संचालन से वे बहुत प्रसन्न हुए। कलकत्ता से वे वैद्यनाथ धाम गये।

उन्होंने दूसरी बार अमेरीका और योरप की यात्रा की। सिस्टर निवेदिता साथ थी। पाश्चात्य जगत की भौतिकता के प्रांगण में वे निर्भय होकर आध्यात्मिकता का प्रचार करते रहे। भारत लौटने पर पहले वे मायावती आश्रम गये और उसके बाद बेलूर मठ में निवास किया। लोग देश के कोने-कोने से उनका आशीर्वाद प्राप्त करने के लिये आने लगे। बेलूर मठ-निवास काल में उनका स्वास्थ्य धीरे-धीरे गिरने लगा। इसी समय जापान के एक प्रभावशाली व्यक्ति ओकारा का बेलूर मठ में आगमन हुआ। ओकारा के अनुरोध से स्वामीजी बौद्ध गया और बनारस गये। यह उनकी अन्तिम यात्रा थी। बनारस से वे बेलूर लौट आये। एक बार स्वामी जी ने कहा–'ब्रह्म, ब्रह्म सर्वत्र है। इसी समय है। यहाँ है। हस्तामलकवत् वह देखा जा सकता है, जाना जा सकता है।' उन्होंने कहा कि जो पुरुष आत्मसाक्षात्कार कर लेता है वह महान शक्ति का केन्द्र बन जाता है। उसकी इच्छा शक्ति मात्र से उसके निकट आने वाले लोग आध्यात्मिक ज्योति से सम्पन्न हो जाते हैं। यही कृपा है।

स्वामी विवेकानन्द ने आजीवन अद्वैत भगवत्तत्व का प्रचार किया। वे अपनी साधना की सीमा में अपने लिये परम भगवद्‌भक्त थे, शिष्यों, प्रेमियों और अनुयायियों के लिये महान आत्मज्ञानी सन्त थे, वे निस्सन्देह स्वामी थे, आत्मतत्व के योगी थे। उन्होंने अपने वेदान्तपरक सिद्धान्त के प्रचार के लिये सत्य को बहुत बड़ा अवलम्ब स्वीकार किया। उन्होंने कहा कि साहस पूर्वक सत्य बोलो। सत्य सनातन है। सभी आत्माओं की प्रकृति सत्य ही है। सत्य प्रकाश प्रदान करता है, स्फूर्ति और चेतनता का दान करता है, सत्य को ऐसा होना ही चाहिये। स्वामी जी ने बतलाया कि अद्वैतवाद की शिक्षा से यह ज्ञान होता है कि दूसरों की हिंसा करते हुए तुम अपनी ही हिंसा करते हो क्यों कि वे तुम्हारे ही स्वरूप हैं।... राजा के रूप में तुम्हीं प्रासाद में लाखों का भोग कर रहे हो, रास्ते के भिखारी के रूप में तुम्हीं अपना दुखमय जीवन बिता रहे हो। अज्ञानी और ज्ञानी दोनों में तुम्हीं हो। दुर्बल और सबल तुम्हीं हो। इस तत्व का ज्ञान प्राप्त कर तुम्हें सब के प्रति सहानुभूति रखनी चाहिये। स्वामी जी ने भगवच्चिंतन के माध्यम से कहा कि सत्य परम चिन्मय है, वही ब्रह्म है, भगवान है। स्वामी जी ने साधना के सम्बन्ध में कहा कि ज्ञान की प्राप्ति के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लिये साधना ही सर्वोत्तम मार्ग है। विवेकानन्द जी उच्च कोटि के निष्काम भगवत्प्रेमी थे। गोपी प्रेम को उन्होंने प्रेम का सर्वोत्तम स्तर स्वीकार किया। उनकी उक्ति है, 'गोपी-प्रेम उपलब्ध करना बड़ा कठिन है। जिन्होंने इस गोपी प्रेम का वर्णन किया, वे और कोई नहीं—आजन्म शुद्ध व्यासतनय शुकदेव हैं। हृदय में स्वार्थपरता के रहते भगवत्प्रेम की प्राप्ति असम्भव है। कांचन, नाम, यश और क्षुद्र तथा मिथ्या संसार के प्रति आसक्ति छोड़ने पर ही गोपी-प्रेम समझ में आता है। यह इतना शुद्ध है कि बिना सब कुछ छोड़े इसको समझने की चेष्टा करना ही अनुचित है। आत्मा पूर्ण रूप से पवित्र होना चाहिये। कृष्ण-अवतार का मुख्य उद्देश्य गोपी-प्रेम की शिक्षा है। दर्शन शास्त्रशिरोमणि गीता भी उस प्रेमोन्मत्तता की समता नहीं कर सकती है। गीता में साधक को धीरे-धीरे चरम लक्ष्य मुक्ति के साधन का उपदेश दिया गया है। गोपी प्रेम में ईश्वर-रसास्वाद की उन्मत्तता—घोर प्रेमोन्मत्तता विद्यमान है।...आत्मा कृष्ण वर्ण में रंग जाती है।' विक्रमीय उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी के सन्तों में स्वामी विवेकानन्द को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। उन्होंने अपने गुरुदेव की कृपा के बल पर सन्त जगत में महती क्रान्ति उपस्थित की—वह औपनिषद क्रान्ति थी, वेदान्तगत परम शान्ति की उदयगिरिकन्दरा थी। स्वामी विवेकानन्द की सरस उक्ति है:

'स्थापकायच धर्मस्य स्वधर्मस्वरूपिणे।
अवतारवरिष्ठाय रामकृष्णाय ते नमः।।'

स्वधर्म के प्रतिष्ठाता और स्वधर्म स्वरूप अवतार श्रेष्ठ सद्गुरु राम-कृष्ण देव को प्रणाम है। इस प्रणति में स्वामी विवेकानन्द ने आत्मधर्म का प्राण भर दिया। विवेकानन्द ने सन्तजगत को बताया कि 'जो कुछ भी आप के पास आता है वह आनन्दमय अनन्त प्रभु का भिन्न-भिन्न रूप है। प्रभु ही हमारे माता-पिता तथा बन्धु हैं। हमारी आत्मा ही हमारे साथ खेल कर रही है। भगवान को पिता कहने की अपेक्षा एक और उच्चतर भाव है, साधक उन्हें माता कहते हैं। इससे भी एक पवित्रतर भाव है उन्हें प्रिय सखा कहना। उसकी अपेक्षा एक और श्रेष्ठ भाव है उन्हें अपना प्रेमास्पद कहना। प्रेम और प्रेमास्पद में कुछ भेद न देखना ही सर्वोच्च भाव है। स्वामी विवेकानन्द ने आत्म प्रेम को भागवत रूप प्रदान किया। जीवन के अन्तिम दिनों में उनकी व्यस्तता बढ़ती गयी। स्वास्थ्य की तनिक भी चिंता किये बिना वे काम में लगे रहे। ब्रह्म-निर्वाण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के कुछ दिनों पहले लोगों ने प्रश्न किया कि क्या आप जानते हैं कि आप कौन थे ? स्वामी जी ने गम्भीरतापूर्वक कहा, 'हाँ मैं जानता हूँ।' किसी ने पूछने का साहस ही नहीं किया। उनके दर्शन के लिये विश्व के प्रत्येक भाग से शिष्य-गण उपस्थित होने लगे।

महाप्रस्थान के तीन दिन पहले ही गंगा तट के एक रमणीय स्थान की ओर संकेत करते हुए उन्होंने स्वामी प्रेमानन्द को बताया था कि मेरा अन्तिम संस्कार यहीं किया जाना चाहिये और उनकी इच्छा के पूर्तिस्वरूप उसी स्थान पर उनकी अमर समाधि मृत्यु को चुनौती देती हुई स्थित है। उन्हें मृत्यु के आगमन का पता चल गया। उनका अन्तिम दिन पूर्ण साधनामय था। प्रातः काल के ग्यारह बजे दिन तक वे एकान्त चिंतन करते रहे। उनकी आज्ञा से मठ में कालीपूजा सम्पन्न हुई। उन्होंने बड़े ध्यान से यजुर्वेद संहिता के निम्न-लिखित मन्त्र का श्रवण किया : 'सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्यनक्षत्रा-रायप्सरसो भेकुरयो नाम। सन इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट्ताम्य स्वाहा॥'

शाम को अपने कमरे में वे गंगा की स्वच्छ लहरियों की ओर मुख कर चिंतन करने लगे। रात में नव बजने के कुछ ही मिनटों के बाद वे परमात्मा में लीन हो गये। इस प्रकार (चार जुलाई सन् १९०२ ई. को) सम्वत् १९५९ वि. में उन्होंने महाप्रस्थान किया। वे उनतालीस साल पाँच माह चौबीस दिन तक पृथ्वी पर जीवित रहे। वे कहा करते थे कि मैं जीवन के चालीस साल नहीं देख सकूंगा। स्वामी विवेकानंन्द विवेक और आनन्द, आत्मा और प्रेम के योगरूप थे।

रचना

प्रेमयोग, व्यावहारिक जीवन में वेदान्त, आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग भक्तियोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग आदि विवेकानंद की प्रसिद्ध रचनायें हैं।

वाणी

इस संसार में मनुष्य धन, स्त्री और मान के पीछे दौड़ते रहते हैं। कभी-कभी उन्हें ऐसी ठोकर लगती है कि उनकी आँख खुल जाती है। उन्हें संसार के यथार्थ रूप का पता चल जाता है। इस संसार में कोई भी मनुष्य ईश्वर को छोड़ कर अन्य किसी वस्तु से यथार्थ प्रेम नहीं कर सकता है। उसे पता लग जाता है कि मनुष्य-प्रेम पोला–निःसार है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जब तक हम मनुष्य हैं तब तक मनुष्य रूप में ही हमें ईश्वर की आराधना और पूजा करनी होगी। बातें चाहे जैसी करो, प्रयत्न चाहे जैसा करो, तुम परमात्मा को मनुष्य के अतिरिक्त अन्य किसी रूप में देख ही नहीं सकते।

ईश्वर सर्वव्यापी हैं, वे प्रत्येक प्राणी में अपने आप को व्यक्त करते हैं। मनुष्य के लिये तो वे मनुष्य के ही रूप में दीख सकते और पहचाने जा सकते हैं। जब उनका प्रकाश उनकी व्यापकता—आत्मा मनुष्य के दिव्य मुखपर चमकती है तभी और केवल तभी मनुष्य उन्हें समझ पाता है।

अच्छा-बुरा कुछ न देखो, सभी वस्तु और कार्य की उत्पत्ति आत्मा से होती है। यही विचार करो। आत्मा सब में है। यही कहो कि जगत नाम की कोई वस्तु नहीं है। बाह्य दृष्टि बन्द करो और उन्हीं प्रभु को स्वर्ग-नरक सभी स्थानों में देखो। जीवन और मृत्यु—सब में उन्हीं की उपलब्धि करो।

प्रत्येक मनुष्य के भाव में विभिन्नता है। मनुष्य का जन्म भावों की विभिन्नता में ही होता है। मनुष्य भाव की विभिन्नता का कभी भी अतिक्रमण नहीं कर पाता है। समस्त संसार किसी समय एक धर्मावलम्बी नहीं हो सकता। इसका कारण भावों की विभिन्नता है। ईश्वर करे, जगत कभी भी एक धर्मावलम्बी न हो। यदि कभी ऐसा हो जाय तो संसार का सामञ्जस्य नष्ट होकर विशृंखलता आ जायेगी।

प्रत्येक मनुष्य में आस्तिक -बुद्धि होती ही है। कुछ उसे समझते हैं और कुछ उसके ज्ञान से विमुख रहते हैं। जो चेतन एक शरीर में है, वही समस्त संसार में है। उस चेतन की उत्पत्ति या नाश नहीं होता है। एक शरीर में जो चेतन है वह जीवात्मा है और जो सर्वव्यापक ह, वह परत्मात्मा हैं, दोनों अच्युत हैं।

दूसरों के दोष देखने में आप जितना समय लगाते हैं उतना अपने दोष सुधारने में लगाइये। आप अपना चरित्र सुधारेंगे, अपना आचरण पवित्र बनायेंगे तो संसार आप ही सुधर जायेगा। ....आप स्वयं पवित्र बनने के उद्योग में लगिये, यही कर्म का रहस्य है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महात्मा गांधी

एकला चलो रे।
यदि तोर डाक सुने केउ न आसे तबे एकला चलो रे॥
एकला चलो, एकला चलो, एकला चलो रे॥
यदि केउ कथा न कय, ओरे ओ ओ अभागा।
यदि सबाई थाके मुख फिराये, सबाई करे भय।
तबे परान खुले।
ओ तुई मुखे फुटे तोर मनेर कथा एकला बोलो रे॥
यदि सबाई फिरे जाय, ओरे, ओरे ओ अभागा।
यदि गहन पथे जाबार काले केउ फिरे न चाय—
तबे पथेर काँटा,
ओ तुई रक्तमाखा चरन तले एकला दलो रे॥
यदि आलो न घरे, ओरे, ओरे ओ अभागा।
यदि झड़ बादले आंधार राते दुआर देय धरे—
तबे वज्रानले,
आपन बुकेर पांजर ज्वालिये निये एकला जलो रे॥

—महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर।

महात्मा गांधी सत्य-पुरुष थे, महामानव थे, उन्होंने राम-भक्ति के बल पर स्वराज्य-साधना की, सत्याग्रह-संचालन किया। वे असाधारण तपस्वी और परम भागवत सन्त थे; परम वैष्णव थे; सत्य-योगी थे। उन्होंने मानव की शारीरिक-मानसिक पराधीनता का नाश कर भौतिक जगत में आध्यात्मिक क्रान्ति उपस्थित की। महात्मा गांधी के जीवन-चरित्र को समझना आसान काम नहीं है। बहुत दिनों तक उनके साथ रहने वाले हेनरी पोलक महोदय ने एक बार कहा था, 'तुम नहीं कह सकते कि गांधी यह वस्तु हैं, वह वस्तु हैं। विश्वास के साथ तो तुम इतना ही कह सकते हो कि वे यहाँ हैं, वहाँ हैं। प्रत्येक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्थान पर उनका प्रभाव शासन करता है, उनका अधिकार राज्य करता है, उनका व्यक्तित्व प्रत्येक स्थान पर फैल गया है और ऐसा तो होना ही चाहिये, यह बात सभी महा पुरुषों के लिये सत्य है कि वे परिभाषा के परे और अगम्य हैं।' महात्मा गांधी असाधारण व्यक्तित्व से सम्पन्न थे। उनके जन्म-काल में देश पूरा पराधीन हो चुका था, बीसवीं शती का भारत बुद्धकालीन भारत की ही तरह राजनैतिक तथा सामाजिक विषमताओं से उत्पीड़ित था, महात्मा गांधी ने इसका मूल कारण विदेशी सत्ता का अधिकार—आधिपत्य समझा और उनके मन में यह बात बैठ गयी कि जब तक विदेशी राजत्व का उन्मूलन नहीं कर दिया जाता है, भारत आराम और शान्ति से नहीं रह सकता है।

महात्मा गांधी वैष्णवजन थे, विश्व मात्र के दुख से दुखी थे, वे हरिजन थे, उन्होंने हरिजन को भगवद्भजन का अधिकार दिया। जो साधारण मानव वेष में रह कर, काम कर, सोकर, जाग कर और चल कर असाधारण मानवता का परिचय देता है वही महामानव है। शताब्दियों के बाद ऐसे महामानव का जन्म धरती पर होता है। गांधी जी बीसवीं शती के महामानव थे। महात्मा गांधी ने आत्मदान दिया, उन्होंने विश्व को स्वात्मगत देखा, अपना समझा, अहिंसा और सत्य के परिणय-उत्सव में मानवता का सिन्दूर जब उनकी अंगुलियों पर थिरकने लगा तब विश्वमात्र ने उनके संस्कृत स्वरूप का दर्शन किया। गांधी जी का सम्पूर्ण जीवन भगवद्प्रार्थनामय था। वे विश्वासी भक्त, भक्त ज्ञानी और ज्ञानी कर्मी थे। गांधी जी ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी सब-कुछ एक ही साथ थे।

गुजरात के काठियावाड़ के पोरबन्दर नगर में एक प्रतिष्ठित वैश्य परिवार में सम्वत् १९२६ वि. (सन् १८६९ ई. २ अक्टूबर) में गांधी जी का जन्म हुआ था। यह धौत नगर ओमन सागर की उत्ताल तरंगों का निरन्तर स्वच्छतम स्पर्श पाता रहता था। गांधी जी के पितामह उत्तमचन्द और पिता काबा गांधी पोरबन्दर राज्य के दीवान पद पर प्रतिष्ठित होते आये थे। काबा गांधी की तृतीय पत्नी पुतली बाई गांधी जी की माता थीं। वे बड़ी धर्मनिष्ठ और भगवद्-भक्त थीं। गांधी जी—मोहनदास करमचन्द उनके साथ बचपन में हवेली—विष्णु मन्दिर में भगवान का दर्शन करने जाया करते थे। माता ने उनमें भगवान की भक्ति का बीजारोपण किया। गांधी जी में धार्मिक भाव उनकी माता ने भरे थे, सत्य, दया और सदाचार की प्राप्ति उन्होंने माता की ही कृपा से की। जब

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वे सात साल के थे, उनके पिता सपरिवार पोरबन्दर से राजकोट चले आये, राजकोट में दीवान के पद पर उनकी नियुक्ति हुई। गांधी जी की प्रारम्भिक प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था राजकोट में की गयी। वे सीधे-सादे स्वभाव के थे। बारह साल की अवस्था में उच्च शिक्षा के लिये उन्होंने अलफ्रेड विद्यालय में प्रवेश किया। तेरह साल की अवस्था में पोरबन्दर के एक व्यापारी गोकुलदास मकनजी की कन्या कस्तूरबा से उनका विवाह सम्पन्न हुआ।

अध्ययन-काल में एक बार श्रवण कुमार नाटक पढ़ा। श्रवण कुमार की मातृ-पितृ-भक्ति से वे बहुत प्रभावित हुए, उनके मन ने तत्काल ही निश्चय किया कि मुझे अपने जीवन को श्रवण कुमार के आदर्श चरित्र से सम्पन्न करना चाहिये। एक बार वे हरिश्चन्द्र नाटक देख रहे थे, सत्य के लिये तथा धर्म के नाम पर हरिश्चन्द्र को अनेक कष्ट झेलते देख कर वे अचानक कह उठे, 'सब लोग हरिश्चन्द्र की ही तरह सत्यवादी क्यों नहीं हो जाते?' गांधी जी अपने समय का सदुपयोग बड़ी सावधानी से करते थे। साधारण खेल-कूद आदि में उनकी तनिक भी रुचि नहीं थी; सत्य-प्राप्ति ही उनके जीवन का धीरे-धीरे ध्येय बनता गयी।

जब गांधीजी केवल सोलह साल के थे, उनके पिता ने तिरसठ वर्ष की आयु में परलोक की यात्रा की। उन्नीस साल की अवस्था में गांधी जी जूनागढ़ के एक वकील के साथ बारिस्ट्री का प्रमाणपत्र प्राप्त करने के लिये इंगलैंड गये। वे शाकाहारी थे, उन्हें लन्दन का वातावरण विचित्र-सा दीख पड़ा, उन्होंने एक शाकाहारी समाज से सम्बन्ध स्थापित किया। लन्दन-निवास-काल में उन्हें अपनी बुद्धि-विकास का अच्छा अवसर मिला। उनका दो थियोसफीस्टों से सम्पर्क हुआ, उन्होंने लन्दन में ही पहले पहल भगवद्गीता पढ़ी, भगवान की श्रीवाणी से उनका ध्येय उनके लिये और भी स्पष्ट हो गया, उन्हें अरनल्ड कृत 'लाइट आफ एसिया'—बुद्धचरित महाकाव्य पढ़ने का भी अवसर मिला। मैडम बलेवटस्की और डाक्टर एनीबीसेंट के सत्संग ने भी उनके बौद्धिक विकास पर बड़ा प्रभाव डाला। वे इंगलैंड में लगभग तीन साल रहे, बारिस्ट्री का प्रमाणपत्र ले कर गांधी जी भारत लौट आये। गांधी जी ने पहले बम्बई में बारिस्ट्री आरम्भ की। वे छः माह के बाद राजकोट चले आये। इस समय उनकी अवस्था लगभग बाईस साल की थी। राजकोट में उनकी मासिक आय तीन सौ रुपये के लगभग थी। इस प्रकार सत्य और अच्छी नीयत से वे पैसा कमा कर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपनी गृहस्थी का कर्तव्य पूरा करने लगे। ऐसा दैवी नियम है कि जिन्हें ईश्वर अपने कार्य-सम्पादन के लिये संसार में भेजते हैं उन्हें ऐसी परिस्थिति और स्थान में रख देते हैं कि कार्य करने में भागवत प्रेरणा प्राप्त हो। ईश्वर की कृपा से दादा अब्दुल्ला और कम्पनी के कार्य के लिये गांधी जी को अफ्रीका जाने का निमन्त्रण मिला। गांधी जी ने 'सत्य का प्रयोग' अफ्रीका में ही आरम्भ किया। उनकी ईश्वर-भक्ति उस महादेश में निखर उठी। वे सीधे-सादे वेष में अफ्रीका गये; एक बात स्मरणीय है कि वे अपने साथ तुलसी की माला भी ले गये जिसे उनकी माता ने दी थी। अफ्रीका उनके भगवद्विश्वास से धन्य हो गया। नैटाल अथवा डरबन नगर का महत्व उनकी तपोमयी उपस्थिति से बढ़ गया।

वे डरबन की कचहरी में थे। मजिस्ट्रेट ने उनसे पगड़ी उतारने के लिये कहा, गांधी जी के आत्म-सम्मान ने ऐसा करना अस्वीकार कर दिया, वे मजिस्ट्रेट के कमरे से बाहर आ गये। असत्य के विरोध का यह शुभ क्षण था। महात्मा गांधी ने असत्य का सामना किया अपने अन्तस्थ सत्य-बल पर।

गांधी जी डरबन से प्रीटोरिया जा रहे थे। उनके पास प्रथम श्रेणी का टिकट था पर उनका सबसे बड़ा दोष यह था कि वे काले थे और भारत–पराधीन देश के नागरिक थे। मारिट्जवर्ग स्टेशन पर उनसे एक रेलवे अधिकारी ने उतर कर वैन में जाने को कहा। गांधी जी ने अस्वीकार किया। उन्हें डब्बे से बाहर उतार दिया गया। गाड़ी निकल गयी। गांधी जी गम्भीर हो उठे। भयानक शीत की रात थी, चारों ओर सघन अन्धकार था। वे प्रतीक्षालय की ओर बढ़े पर उसमें एक गोरा विश्राम कर रहा था। गांधी जी ने सोचा कि मुझे भारत लौट जाना चाहिये या संघर्ष का सामना करना चाहिये। अन्तरात्मा ने कहा कि असत्य का विरोध ही मानवता की सब से बड़ी सेवा है, गलत को सही रास्ते पर लाना ही परोपकार है, सदाचार ही धर्म है। उन्होंने ईश्वर का आश्रय लिया। महात्मा गांधी की उक्ति है कि उसी दिन मेरी सक्रिय अहिंसा ने जन्म लिया। वे तीन साल तक अफ्रीका में रहे। जन-सेवा के व्रत से उन्होंने लोगों का मन मुग्ध कर लिया। उन्होंने अफ्रीका में सपरिवार रहने का निश्चय किया। कस्तूरबा को लेने के लिये उन्हें भारत आना पड़ा। बम्बई, पूना आदि नगरों में उच्च चोटी के भारतीय नेताओं से मिल कर उन्होंने दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों की दुर्दशा का परिचय दिया। नेताओं ने उनके कार्य की प्रशंसा की। वे कस्तूरबा को लेकर दक्षिण अफ्रीका आ गये। इस बार उनके जीवन ने तपोमय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संघर्ष का वरण किया, उन्होंने सरकार को भारतीयों की स्थिति सुधारने के लिये विवश किया। उनके जयनाद से दक्षिण अफ्रीका के धरती-गगन गूंज उठे। अफ्रीका से विदा होते समय उन्होंने उपहार में प्राप्त समस्त वस्तुओं को जनता की सेवा के लिये बैंक में रखने का संकल्प किया। कस्तूरबा ने एक सोने का हार रखना चाहा। गांधी जी ने लौटाने का आग्रह किया। कस्तूरबा ने कहा कि आपने जनता की सेवा की और आपकी सेवा मैंने की, इसलिये उपहार की वस्तु में मेरा भी अधिकार है। गांधी जी अपने निश्चय पर अटल रहे। कस्तूरबा ने हार लौटा दिया। नैटाल के भारतीयों ने गांधीजी को प्रेमामृत में स्नान कराया। गांधीजीने भारत में कुछ दिन निवास कर अफ्रीका के लिये फिर प्रस्थान किया। वे नैटाल से १९६० वि. में प्रीटोरिया आये।

जोहान्स बर्ग में पोलक ने गांधी जी से भेंट की। उन्होंने अंग्रेजी साहित्यकार रसकिन की प्रसिद्ध पुस्तक 'अन्टू दी लास्ट'–'सर्वोदय' गांधीजी को पढ़ने के लिये दी, पुस्तक ने गांधीजी के विचारों पर बड़ा प्रभाव डाला। वे इसे पढ़ने के बाद इस परिणाम पर पहुँच सके कि व्यष्टि का हित समष्टि का हित है। वकील और नापित दोनों के श्रम का मूल्य समान है, दोनों को अपनी जीविका कमाने का अधिकार है।

सम्वत् १९६३ वि. में गांधी जी लन्दन गये। दादा भाई नौरोजी से उनकी भेंट हुई। भारत में वंग-भंग-आन्दोलन जोर पकड़ रहा था, वन्दे-मातरम्–संगीत की प्रसिद्धि बढ़ रही थी। सम्वत् १९७१ वि. में दक्षिण अफ्रिका के ब्रिटिश शासक स्मट्स और गांधीजी में अस्थायी समझौता हो गया। गांधीजी ने अफ्रिका का सत्याग्रह स्थगित कर दिया। महात्मा गांधी के सत्तरवें जन्म-दिवस पर जेनरल स्मट्स ने श्रद्धा समर्पित करते हुए स्वीकार किया था कि 'इतने महान आत्मा का विरोधी होना मेरे लिये बड़े सौभाग्य की बात थी। गांधी जी जब जेल में थे तब उन्होंने मेरे पहनने के लिये पादत्राण बनाये थे, जेल से छूटने पर उन्होंने पादत्राण मुझे भेंट किये थे, मैंने उनको बहुत समय तक पहना।' गांधी जी ने जो कुछ सत्य समझा उसी का सम्पादन किया, वे भोग-विषय, स्वार्थ और प्रसिद्धि तथा प्रचार से बहुत दूर रह कर सीधा-सादा भगवद्मय जीवन बिताने को ही परम श्रेयस्कर मानते थे। उनके शरीर को बन्धन में डाला जा सकता था, वे कारागार में शरीर से रह सकते थे पर उनकी आत्मा अजेय थी, उसे वश में करना नितान्त कठिन-सा काम था।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सम्वत् १९७१ वि. में गांधी जी अफ्रिकासे इंगलैंड गये। लन्दन में उनकी गोखले से भेंट हुई। एक साल के बाद भारत लौटने पर गांधी जी ने कहा कि अब भारत में ही रहने का विचार है, मैं आजीवन अपनी मातृभूमि की सेवा में लगा रहूँगा। वे शान्ति निकेतन गये। इसी समय उन्हें गोखले की मृत्यु का समाचार मिला। गांधी जी ने उनका मृत्यु-शोक वर्ष भर मनाया और उनकी आत्मा को सम्मानित करने के लिये तथा शान्तिप्रदान करने के लिये वे नंगे पाँव यात्रा करते थे। उन्होंने दक्षिण भारत की यात्रा की, जनता उनके दर्शन से धन्य हो उठी। महात्मा गांधी ने स्वराज्य का मन्त्र जगाना आरंभ किया। गांधीजी ने अहमदाबाद के जनपद में अपना सत्याग्रह आश्रम स्थापित किया। उन्होंने देश की परिस्थिति समझने के लिये दौरा किया। वे बिहार प्रान्त के चम्पारन जनपद में गये। चम्पारन में उन दिनों नील की खेती होती थी, किसानों पर निलहे गोरों का अत्याचार बढ़ रहा था। गांधी जी ने अपने अहिंसक सत्याग्रह की भूमिका सम्वत् १९७३ वि. में चम्पारन में ही प्रस्तुत की। चम्पारन-काण्ड से ब्रिटिश शासन सशंकित हो गया। गांधी जी ने समस्त देश को सावधान किया कि मुझे प्रसिद्धि नहीं चाहिये, मुझे सम्मान की आवश्यकता नहीं है, मेरी केवल यही कामना है कि मेरा सत्याग्रह-सिद्धान्त लोग अपने जीवन में उतार लें। स्वराज्य की प्राप्ति सत्य से होगी, भगवान की कृपा से होगी। बाल गंगाधर तिलक, एनी बीसेंट और गांधी के नेतृत्व में देश ने घरेलू राज्य होमरूल की माँग की।

सम्वत् १९७६ वि. में गांधी जी ने दासता के विरुद्ध आवाज उठायी। महात्मा गांधी ने अहिंसात्मक आन्दोलन का सूत्रपात किया, असहयोग की हवा बह चली, देश के कोने-कोने में 'महात्मा गांधी की जय' ने विद्रोह की आग सुलगा दी। गांधी जी ने कहा कि बिना दुःख की आग में पवित्र हुए कोई देश कभी उन्नत नहीं हो सका है।.... मृत्यु से ही जीवन आता है। क्या भारत बिना दुख की आग में पवित्र हुए ही दासता से मुक्त हो सकता है? अहिंसा केवल ऋषियों-मुनियों की ही वस्तु नहीं है, उसे प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में उतार सकता है। 'एक साल में स्वराज्य मिल जायेगा' लोग इस कथन में दृढ़ विश्वास करने लगे। गांधीजी ने असत्य, अत्याचार और दासता से युद्ध करने के लिये भारत को विद्रोह-साहित्य दिया जो अहिंसा के मन्त्र से नितान्त अभिमन्त्रित था। जनता का विश्वास गांधीजी में बढ़ने लगा। प्रत्येक मन्दिर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और मसजिद में जाकर उन्होंने स्वतन्त्रता का आवाहन किया। उन्होंने सिर के बाल कटा दिये, खद्दर का एक झोला ले लिया और पहननेके लिये एक हाथ चौड़े खद्दर का परिधान था। इस प्रकार वे जनता के मध्य में एक नंगे फकीर के रूप में घूमने लगे। जब बिहार प्रान्त का दौरा कर रहे थे, एक बुढ़िया मूसलाधार-वृष्टि में उनका दर्शन करने आयी। उसकी आयु एक सौ पांच साल की थी। बुढ़िया ने कहा कि मैंने दो-दो मन्दिर बनवाये हैं। उनमें भगवान राम और कृष्ण की स्थापना की है।...मृत्यु आ रही है। मेरा विश्वास है कि बिना गांधी जी को देखे मैं मर नहीं सकती। इस प्रकार असंख्य प्राणी गांधी जी के प्रेम में उन्मत्त हो गये। लोग उनका दर्शन कर अपने आप को धन्य मानने लगे। यह उनके तपोमय आध्यात्मिक जीवन का प्रभाव था। गांधी जी ने सविनय अवज्ञा-आन्दोलन को कार्यरूप देने के लिये गुजरात के सूरत जनपद का बारडोली स्थान चुना। वे स्वराज्य-आन्दोलन के नेतृत्व का भार अपने कन्धों पर रख कर मातृभूमि को विदेशी दासता से मुक्त करने के लिये कटिबद्ध हो गये। उन्होंने असहयोग करने के लिये सत्य, अहिंसा और चरखा को अपने अस्त्र-शस्त्र का रूप प्रदान किया। गांधीजी ने कहा कि 'सत्याग्रह ऐसा उपाय है जिसमें सत्याग्रही के ही कष्ट उठाने की बात रहती है। विरोधी पक्ष को कष्ट देने का हेतु रहता ही नहीं है।....सत्याग्रही झूठी प्रतिष्ठा के फेर में नहीं रहता है।.....जब विपक्षी अपने सहयोग का सर्वथा दुरुपयोग करता जान पड़े, उसके द्वारा निर्दोष को पीड़ा पहुँचती दीख पड़े तब असहयोग उचित और आवश्यक हो ही जाता है।

सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के लिये सरदार वल्लभभाई की देख-रेख में बारडोली की जनता प्रस्तुत थी पर इसी बीच में चौरीचौरा काण्ड से गांधी जी ने आन्दोलन रोक दिया। इधर खिलाफत-आन्दोलन भी ठन्डा पड़ गया था। गांधी जी ने कहा कि 'चौरी-चौरा की घटना सिद्ध करती है कि देश में सविनय-अवज्ञा के वातावरण का अभी अभाव है। सत्य और अहिंसा का अभी आधिपत्य नहीं स्थापित हो सका है। गांधी जी ने घोषणा की कि "मैं ईश्वर का दर्शन—साक्षात्कार करना चाहता हूँ— सामने-सामने देखना चाहता हूँ। ईश्वर सत्य हैं। ईश्वर को जानने के लिये अहिंसा ही मेरा साधन है। मैं भारत की स्वाधीनता-प्राप्ति के लिये जी रहा हूँ और उसी के लिये मर जाऊँगा। भारत की स्वतन्त्रता सत्य का अंग है। केवल स्वतन्त्र भारत ही सत्स्वरूप परमात्मा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

की उपासना कर सकता है। . . . मेरा जीवन ईश्वर-विश्वासी और प्रार्थना-मय है। यदि मेरे शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो जायँ, तो भी मेरा विश्वास है कि मुझे ईश्वर यह स्वीकार करने की शक्ति देंगे कि वे हैं।" देश का दौरा करने के बाद वे इस निश्चय पर पहुँचे कि सारे धर्म सत्य हैं। वे मेरे लिये उतने ही प्रिय हैं जितना हिन्दू धर्म प्रिय है। सम्वत् १९८५ वि. में वे साबरमती आश्रम में निवास कर मौन के अभय राज्य में सत्य की साधना करने लगे। महात्मा गांधी ने बड़े विवेक और सावधानी से काम लिया। उन्हें सदा इसी बात का ध्यान रहता था कि ऐसा न हो कोई कदम गलत उठ जाय। . . . . गांधी जी ने उत्तर प्रदेश का दौरा आरम्भ किया। उन्होंने वृन्दावन, गोवर्धन आदि स्थानों का भी निरीक्षण किया। वे गोवर्धन में गायों की दुखस्था देख कर बहुत चिंतित हुए। उन्होंने कहा कि गोवर्धन के ब्राह्मणों की दशा अत्यन्त चिन्तनीय है। वे मंगन-से दीख पड़ते हैं। प्राचीन काल में व्रज के ब्राह्मणों ने भगवान कृष्ण का सहवास प्राप्त किया था, उन्होंने प्रत्यक्ष भगवान का दर्शन किया था और लोगों को भगवद्दर्शन का रहस्य बताया था। वे धर्मज्ञ थे। अध्यात्मज्ञान-दान के बदले में लोग उनकी जीविका की व्यवस्था करने में गौरव का अनुभव करते थे। वे मानवता के सच्चे सेवक थे। गोवर्धन में आज उनका सर्वथा अभाव दीख पड़ता है।' गांधी जी ने अपने परिभ्रमण से लोगों को सद्ज्ञान और ईश्वर-विश्वास तथा सद्धर्म के मर्म से समुत्थित—जागृत किया। पाप और अत्याचार की शक्ति को पराजित करने के लिये सचेत किया।

गांधी जीने १९८७ वि. (२६ जनवरी, १९३० ई. को) पूर्ण स्वराज्य की मांग की। गांधीजी ने अठहत्तर साथियों के साथ दाण्डी-यात्रा आरंभ की नमक-कानून के विरोध में। यह उनकी स्वराज्य-प्राप्ति के लिये एक पवित्र तीर्थ-यात्रा थी। उन्होंने कहा कि जब तक मुझे स्वराज्य की प्राप्ति नहीं होगी मैं आश्रम में नहीं आ सकता। उनके पीछे-पीछे लाखों व्यक्ति चल रहे थे। वे नियम से नित्य दस मील पैदल चल कर दाण्डी की ओर बढ़ रहे थे, उन्होंने कहा कि अमरनाथ और बद्रीनाथ की ही यात्रा की तरह दाण्डी-यात्रा मेरे लिये पवित्र और महत्वपूर्ण है। समुद्रतट पर दाण्डी एक ग्राम था, आश्रम से दो सौ मील की दूरी पर था। दाण्डी पहुँचने पर नंगे फकीर ने समुद्र में अपने अनुयायियों के साथ स्नान किया। बाहर निकल कर हाथ में नमक का एक टुकड़ा लिया। घोषणा की कि प्रत्येक भारत वासी अपनी सुविधा के अनुसार नमक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बनाकर उसे काम में ला सकता है। उन्होंने निकटवर्ती गांवों में घूम-घूम कर नमक-कानून के विरोध के लिये जनता को प्रोत्साहित किया। गांधी जी पकड़ लिये गये। अधिकारियों को जनता का भय था। उन्होंने आधी रात को गांधीजी को पकड़ा। कुछ दिनों के बाद भारत के तत्कालीन वाइसराय ने गांधी जी और उनके अनुयायियों को मुक्त कर दिया। कारागार से बाहर आने पर गोलमेज परिषद में सम्मिलित होने के लिये गांधी जी ने लन्दन जाना स्वीकार कर लिया। लन्दन में भारतीय संत का दर्शन कर लोगों को विश्वास हो गया कि गांधी के रूप में साक्षात् ईसा का ही आगमन हुआ है। घर-घर में प्रसन्नता की लहर दौड़ गयी। नंगे फकीरके रूप में लंगोटी धारण कर बादशाह जार्ज पांचवें से बकिंघम राजमहल में मिलने गये। बादशाह ने कहा कि आप उस समय बहुत अच्छे थे जब चौदह साल पहले अफ्रिका-आगमन के अवसर पर मुझ से भेंट की थी। गांधीजी मौन थे। सम्राट ने कहा कि राजपुत्र के भारत गमन के अवसर पर आप ने उनके स्वागत का विरोध क्यों किया? महात्मा गांधी ने बड़ी-निर्भीकता से उत्तर दिया कि मैंने राजपुत्र नहीं – ब्रिटिश शासन के प्रतिनिधि के स्वागत का विरोध किया था। सम्राट ने कहा कि भारत में राज्य के विरोध में किसी भी प्रकार का विद्रोह फलने-फूलने नहीं दिया जा सकता है, राज्य चलाने के लिये उसे कुचलना ही पड़ेगा। महात्मा गांधी ने उत्तर दिया कि सम्राट को इस सम्बन्ध में बात-चीत चलाने की आशा मुझसे नहीं रखनी चाहिये।

गांधी जी की लोकप्रियता इंगलैंड में बढ़ती गयी। इंगलैंड-निवास काल में एक व्यक्ति ने कहलवाया कि मुझे गठिया है, इस लिये मैं नहीं मिल सकता। गांधी जीं स्वयं मिलने गये। सेंट एन्ड्रूज अस्पताल में एक अन्धा आदमी था। उसने गांधी जी से मिलने की उत्सुकता प्रकट की। दो दिन बाद अस्पताल के लोग सवेरे-सवेरे नये अतिथि-गांधीजी के आगमन से आश्चर्यचकित हो गये। अन्धे व्यक्ति ने उनसे बात की।

गोलमेज परिषद समाप्त हो गयी। गांधी जी इटली गये। मुसोलिनी ने उनके प्रति यथेष्ट समान प्रदर्शित किया। मुसोलिनी ने पूछा कि आप मेरी फासिस्ट नीति के सम्बन्ध में क्या विचार रखते हैं? महात्मा जी ने कहा कि आप ताश का महल बना रहे हैं।... गांधी जी भारत आये। वे वर्धा आश्रम में रहने लगे। हरिजन और दरिद्रनारायण की सेवा का व्रत लिया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उन्होंने हरिजनों के लिये रुपया एकत्र करना आरम्भ किया। एक समय एक दिहाती लड़की ने गांधी के हाथों में फूल का गुच्छा रखा। महत्मा जी ने कहा 'अंगूठी क्यों नहीं देती ?' लड़की ने हरिजन-सहायता के लिये अंगूठी उतारी। महात्मा जी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा 'ठीक है, ठीक है, इसे अपने ही पास रखो। माता-पिता पूछेंगे।' लड़की उदास हो गयी। महात्मा जी ने उसका मन रखने के लिये हरिजन-सहायता-कोष में उसकी अंगूठी स्वीकार कर ली।.....महात्मा जी दक्षिण भारत का दौड़ा कर रहे थे। सम्वत् १९८१ वि. में बड़े जोर का भूकम्प आया। बिहार का अधिकांश ध्वस्त हो गया। महात्मा जी भूकम्पपीड़ितों की सहायता करने के लिये बिहार गये। उन्होंने सन्देश दिया कि ईश्वर को डरने वाले और उनके द्वारा सृजित प्राणियों की सेवा करनेवाले ही पत्रिव आत्मा हैं। उन्होंने आसाम और उड़ीसा के दौरे का कार्यक्रम समाप्त कर दिया।.... उन्होंने कांग्रेस में सक्रिय भाग लेना बन्द कर दिया और ग्रामोत्थान तथा उद्योग-धन्धों के विकास की ओर ध्यान दिया। वर्धा आकर वे रचनात्मक कार्य में लग गये। वे....वर्धा की मगन बाड़ी से उसी जनपद के सेगाँव में आकर ग्रामीणों के मध्य में झोपड़ी बना कर रहने लगे तथा दीन-दुखियों, असहायों और बीमारों की सेवा में लग गये। इस प्रकार क्रियात्मक रूप से वे ग्रामोन्नयन में प्रवृत हुए। व्यक्तिगत उदाहरणों के द्वारा उन्होंने ग्रामीणों को प्राकृतिक चिकित्सा आदि की शिक्षा दी।..एक समय सरदार पटेल, राजेन्द्र प्रसाद और जवाहर लाल उनसे मिलने सेगांव-आश्रम गये। गांधी जी किसी रोगी की चिकित्सा में इस तरह व्यस्त थे कि उन्होंने उनकी ओर ध्यान ही नहीं दिया। सरदार पटेल ने कहा कि यदि आप के पास समय न हो तो हम लोग जा सकते हैं। गांधी जी ने मुसकराते हुए कहा कि रोगियों की संख्या बढ़ जाने पर उन्हें सम्हालना कठिन हो जाता है। पण्डित जवाहरलाल ने कहा कि क्या यह प्रयत्न बादशाह कैनूट द्वारा समुद्र की लहरों को रोकने के समान नहीं है ? महात्मा जी ने हँस कर उत्तर दिया कि यही कारण है कि हम लोगों ने तुम्हें बादशाह कैनूट के पद पर प्रतिष्ठित कर दिया है कि तुम और लोगों की अपेक्षा इस कार्य को ठीक ढंग से कर सको।

हिटलर ने योरप में युद्धघोषणा की। ब्रिटेन ने बिना भारतीयों कीसम्मति के ही भारत को अपने युद्धप्रयत्न का अंग घोषित किया। गांधी जी ने विज्ञप्ति प्रकाशित की कि स्मरण रहे कि यदि सविनय अवज्ञा आरम्भ होती है तो इसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पहले की अपेक्षा कहीं अधिक अहिंसक और विनियमित रूप प्रदान करना होगा, दुनिया के युद्ध में तत्पर देशों को दिखलाना होगा कि भारत ऐसा महादेश अपनी स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिये अहिंसक संग्राम लड़ सकता है।

ब्रिटिश सरकार अपने युद्ध-प्रयत्न में भारत का शोषण करने लगी। महात्माजी ने वाक् स्वतन्त्रता और लेखनी के स्वत्व पर जोर दिया। उन्होंने व्यक्तिगत सत्याग्रह चलाया। विनोबा भावे पहले सत्याग्रही थे। उनके पकड़े जाने पर जवाहर लाल का क्रम था पर सरकार ने उनको पहले ही कारागार में डाल दिया।.... गांधी जी ने कुछ दिनों तक बारडोली में सरदार पटेल के आश्रम में विश्राम किया। इसी समय चांगकाई सेक सपत्नीक भारत आये। कलकत्ता में गांधी जी से मिल कर उन्होंने आशीर्वाद प्राप्त किया। उनको धनुष तकली पर काम करते देख कर मैडम च्यांग ने गांधी जी से कहा कि इसे मुझे सिखाना होगा। गांधी जी ने बड़ी प्रसन्नता से कहा कि 'तुम सेवाग्राम आओ, चांगकाई शेक तुम्हें अपना राजदूत बनाकर मेरे आश्रम में भेज दें और मैं तुम्हें अपनी पुत्री के रूप में स्वीकार कर लूंगा।'

जापान ने रंगून पर अधिकार कर लिया। वह भारत के समुद्रतट पर आना ही चाहता था कि महात्मा जी ने घोषणा की कि 'हमें डट कर अहिंसात्मक ढंग से सामना करना होगा।' सम्वत् १९९९ वि. के वैशाख मास में इंगलैंड के प्रधान मन्त्री चर्चिल ने क्रिप्स-मिशन भेजा। गांधी जी इस मिशन से तनिक भी प्रभावित नहीं हुए। क्रिप्स असफल होकर इंगलैंड लौट गये। अमेरीकी पत्रकार लुई फिशर ने सेवाग्राम में गांधी जी से भेंट की। युद्ध की गतिविधि पर उनसे बातें कीं। गांधी जी ने कांग्रेस की अहिंसक विरोध-पद्धति पर प्रकाश डाला।

गांधी जी ने बम्बई में 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव रखा और सरकार को भारत छोड़ कर चले जाने की खुली चुनौती दी। गांधी जी पकड़ लिये गये। वे कस्तूरबा और महादेव के साथ पूना के आगाखान-महल में भेज दिये गये। कांग्रेस कार्यसमिति के सदस्य अहमदनगर के किले में बन्द कर दिये गये। भारतीय जनता ने स्वतन्त्रता घोषित कर दी, विद्रोह की भीषण आग प्रज्वलित हो उठी।

आगाखान-महल में एक सप्ताह के निवास के बाद गांधी जी के निजी सचिव महादेव देसाई ने परलोक की यात्रा की। गांधीजी इस असामयिक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

घटना से बहुत दुखी हुए। उनके 'महादेव-महादेव' करुण उद्‌गार ने महल को प्रकम्पित कर दिया। उन्होंने अपने हाथ से उनके शव को स्नान कराया, उस पर चन्दन छिड़क कर श्वेत वस्त्र में आवेष्टित कर दिया। फूल रखे। कहा, 'महादेव मैं समझता था कि यह तुम मेरे लिये करोगे। पर मुझे ही करना पड़ रहा है।' थोड़ी देर में शव को बाहर ले जाने के लिये सरकारी लारी आयी। तपस्वी गांधी ने कहा कि यह असम्भव है, मैं अपने पुत्र का शव अपरिचितों को नहीं दे सकता। यदि अन्त्येष्टि-क्रिया के लिये अधिकारी मुझे बाहर नहीं जाने देंगे तो मैं महादेव भाई का दाहसंस्कार इसी महल में करूँगा। अधिकारियों को नत होना पड़ा। एक हाथ में दण्डा और दूसरे में आग लेकर महात्मा जी महल के बाहर निकल पड़े और अत्यन्त करुण और निर्जन तथा नीरव वातावरण में अपने हाथ से उन्होंने महादेव देसाई की अन्त्येष्टि सम्पन्न की। ठीक छः माह के बाद (२२ फरवरी सन् १९४३ ई.) कस्तूरबा ने स्वर्ग प्राप्त किया। गांधी जी के हृदय को कस्तूरबा की मृत्यु से बड़ा धक्का लगा। वे जलती लाश के सामने कड़ी धूप में छः घण्टे तक दण्डे के सहारे खड़े रह गये। शाम होते ही एक पेड़ के नीचे बैठ कर महात्मा जी ने कहा कि कस्तूरबा के बिना मेरा जीवन शून्य हो गया, उसका कोई अर्थ ही नहीं है।

सम्वत् २००१ वि. में सरकारने गांधीजी को मुक्त कर दिया। वे पूना के निकट पंचगिनी की पहाड़ी पर विश्राम करने चले गये। इधर समझौते का प्रयत्न चलता रहा।... जापान की पराजय के बाद युद्ध समाप्त हो गया। इंगलैंड में चर्चिल का मन्त्रि-मण्डल समाप्त हो गया। चुनाव में मजदूर दल की विजय के परिणाम स्वरूप मजदूर सरकार स्थापित हुई। सरकार ने भारत छोड़ने की घोषणा कर दी और समझौते के कदम आगे बढ़ाये। बंगाल के पूर्वी भाग की बहुसंख्यक जनता उन्मत्त हो उठी। उसने अल्पसंख्यकों पर मन माना अत्याचार किया, नोआखाली आदि जनपदों में दानवता ने अबला के वक्षस्थलों, शिशुओं के मस्तकों और बुढ्ढों के कटि-प्रदेश को रक्त से रंग दिया, मानवता सिहर उठी, इतिहास सहम उठा। महात्मा जी ने बंगाल की यात्रा की। गांधी जी ने जाते समय दिल्ली में घोषणा की कि मैं नहीं जानता हूँ कि कब लौटना होगा। ईश्वर मानवजाति के उद्धार के लिये पूर्वी बंगाल में मेरी उपस्थिति आवश्यक समझते हैं। बंगाल की तरह बिहार प्रतिहिंसा की भावना से उन्मत्त हो उठा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गांधी जी ने पूर्व बंगाल में प्रवेश किया। उनकी उपस्थिति से अल्पसंख्यकों का प्राण हरा हो गया। चारों ओर रामनाम की ध्वनि से वातावरण ने निर्भयता और आश्वासन का अनुभव किया। वे सतहत्तर साल की अवस्था में भी अठारह घंटे परिश्रम करते थे, किसी न किसी ध्वस्त क्षेत्र में पैदल चल कर या नाव से यात्रा कर वे लोगों को सत्य का बल प्रदान करते थे। मन्दिरों में उनके आगमन से घंटियों का बजना आरम्भ हो गया। महात्मा जी ने उत्पीड़ित व्यक्तियों से कहा कि मैं आप लोगों के मध्य में रहने आया हूँ, जब तक पूर्ण शान्ति नहीं स्थापित हो जायेगी, मैं इस प्रदेश को नहीं छोड़ सकता। वे हाथ में एक लम्बा-सा बाँस का डण्डा लेकर यात्रा कर रहे थे। चाँदपुर के निकट भटियालपुर ग्राम में गांधी जी ने एक परिवार में पहुँचकर उसके मन्दिर में कुलदेवता राधा-कृष्ण की पुनर्प्रतिष्ठा की।..., शिरण्डी ग्राम में पहुँच कर उन्होंने अनशन करने वाली कुमारी अमतुस सलाम को उपवास करने से रोका, गांधीजी के आदेश से उन्होंने उपवास-भंग कर दिया। गांधी जी ने कहा कि पूरा-पक्का मुसलमान तो वह है जिसके हाथ और वाणी से मानवता सुरक्षित रहती है। गांधी पूर्व बंगाल से बिहार गये। अंग्रेजी सरकार ने सम्वत् २००४ वि. में (१५ अगस्त, सन् १९४७ ई. को) भारत छोड़ दिया। देश दो राष्ट्रों में विभक्त हो गया। पाकिस्तान का निर्माण हुआ। गांधीजी का सम्पूर्ण जीवन स्वराज्य–रामराज्य की स्थापना के प्रयत्न का प्रतीक कहा जा सकता है। उन्होंने आजीवन स्वराज्य-आत्मराज्य के लिये संघर्ष किया। उन्होंने मानवीय चेतना को सत्य–ईश्वर से परिव्याप्त किया। सत्य, शान्ति, अहिंसा और प्रेम की ज्योति में उन्होंने लोक-कल्याण का विधान किया।

गांधीजी ने अपने स्वराज्य-सिद्धान्त की परिपुष्टि में घोषणा की कि तात्विक दृष्टि से सत्य और अहिंसा द्वारा प्राप्त पूर्ण स्वराज्य का अर्थ है राष्ट्र के प्रत्येक अंग की स्वतन्त्रता। गांधीवाद ईश्वर की प्रार्थना को मानव का सबसे बड़ा सहारा समझता है, उसका विश्वास है कि प्रार्थना का आश्रय प्राप्त करने पर जीव बड़े-से-बड़े माया-जाल और संकट से मुक्ति पा जाता है। गांधीवाद कर्म-संन्यास नहीं, कर्म योग का प्रतिपादन करता है। समस्त कर्मों को भगवान के चरणों पर—अदृश्य सत्ता की यज्ञ वेदी पर समर्पित करने को सबसे बड़ा पुण्य मानता है। बापू ने–गांधी जी ने विश्व को जो दर्शन दिया वह पूर्ण सत्य है, अखण्ड, दिव्य और सनातन है, उससे आत्मोन्नति होती है, अनात्मा का

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अस्तित्व मिटता है। बीसवीं शताब्दी के भारत में परम भागवत महात्मा गांधीने सत्य नारायण का राम रूप में आवाहन किया, उनकी समझ में यह बात अच्छी तरह आ गयी कि बिना राम की सहायता के देश में स्वराज्य या राम राज्य की स्थापना ही नहीं की जा सकती है। उन्होंने अपने युग की मानवता से स्पष्ट शब्दों में कहा कि बिना रामराज्य के अवतरण के जनता सुखी, शान्त और संतुष्ट नहीं हो सकती है। जनता-जनार्दन की सेवा को उन्होंने बड़ा महत्व प्रदान किया। उनके रामराज्य का प्रधान अंग जन-सेवा में निहित है। गौतम बुद्ध अपने समय के सबसे बड़े मानव थे। महात्मा गांधी अपने समय के सबसे बड़े आदमी थे। दोनों असत्य और मृत्यु पर विजयी थे। एक ने शान्ति प्राप्ति के लिये वैराग्य अपनाया, दूसरे ने जनसेवा अपनायी। गांधी जी अमीर-गरीब सबके प्रिय थे। रवीन्द्रनाथ की यह वाणी उनके लिये अमर है :

'गांधी महाराज तोमार शिष्य
कोउ बा धनी, कोउ वा निःस्व।'

गांधी-साहित्य लोककल्याण को ही स्वराज्य मानता है। आत्मा की सत्यस्थिति ही सर्वोदय है – गांधीजी की ऐसी मान्यता थी।

गांधीजी अपने भगवद्विश्वास-रामभक्ति में हिमालय थे। गांधी जी ने कहा कि मेरी बुद्धि और हृदय ने बहुत पहले ही अनुभव कर लिया कि भगवान का सर्वोतम नाम सत्य है। मैं 'राम' नाम से सत्य पहिचानता हूँ। गांधी जी भगवद्गीता और रामचरित मानस में बड़ी श्रद्धा रखते थे। उन्होंने स्वीकार किया कि मेरे लिये तो गीता ही संसार के सब धर्म ग्रन्थों की कुंजी हो गयी। उनमें जो रहस्य भरे हुए हैं, उन सब को मेरे लिये खोल कर रख देती है।

सन्त-साहित्य के क्षेत्र में महात्मा गांधी को कबीर का अभिनव संस्करण स्वीकार किया जा सकता है। गांधीजी ने कहा कि ईश्वर जीवन हैं, सत्य हैं, प्रकाश हैं, प्रेम हैं, परम मंगल हैं। उनके सन्तमत ने घोषणा की कि हम ओठों से असत्य, कड़ुवे वचन न निकालें, ईश्वर का नाम जपें, ईश्वर की लीला देखें सत्य के दर्शन के ये ही उपाय हैं।... साधु-जीवन से ही आत्मशांति की प्राप्ति सम्भव है। गांधी जी समन्वयवादी थे, उन्होंने अखण्ड, आनादि, नित्य सत्य की उपासना की। जापान के एक व्यक्ति द्वारा उपहार रूप में दिया गया मिट्टी का खिलौना उनके लिये एक नवीन संसार ही था। उस खिलौने के तीन बन्दर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उनके शिक्षा-गुरु थे। आँख बन्द रखने वाले बन्दर ने यह शिक्षा दी कि किसी की बुराई मत देखो। न देखने योग्य वस्तु मत देखो, जो कुछ भी देखो, पवित्र भावना से देखो। कान बन्द रखने वाले बन्दर का यह संकेत था कि किसी की निंदा न सुनो। अच्छी बातें और भगवान का गुण गान सुनो। तीसरे बन्दर का यह संकेत था कि जो कुछ भी बोलो, सत्य और प्रिय बोलो। गांधीजी ने इन बातों को अपने जीवन में उतारा।

अपने जीवन के अन्तिम समय में गांधी जी दिल्ली में थे। उनकी उक्ति थी कि आकाश से गोले भी क्यों न बरसाये जायें और कैसा भी उपद्रव क्यों न हो, ईश्वर भजन के समय हमारी शान्ति भंग नहीं होनी चाहिये। मृत्यु उपस्थित होने पर गांधी जी ने इस सत्य कथन को अपने जीवन में चरितार्थ किया। सम्वत् २००५ वि. (सन् १९४८ ई. की तीस जनवरी) में उन्होंने महा प्रयाण किया। गांधी जी ने अन्तिम दिन कहा 'अपने आवश्यक पत्रों का उत्तर आज मुझे दे देना चाहिये। कल मैं रहूँ या न रहूँ।' चार बजे सायंकाल बिड़ला भवन में सरदार पटेल उनसे मिलने आये। पांच बजे के लगभग गांधी जी प्रार्थना-सभा में जा रहे थे, वे अपनी पौत्रियों—मनु और आभा के कन्धों पर हाथ रख कर प्रार्थना करने जा रहे थे, नाथूराम बिनायक गोडसे के रूप में मृत्यु ने चरण-धूलि लेने के बहाने विनत होकर गोली चलायी। गांधीजी के कपड़े खून से भीज गये। उन्होंने सदा के लिये आँख मूंदते समय 'हे राम' उच्चारण किया। हाहाकार मच गया। थोड़ी देर के बाद जवाहर लाल आये। वे एक बच्चे की तरह सिसक-सिसक कर रोने लगे। उन्होंने विश्व को महात्मा गांधी की महाप्रयाण-सूचना दी, ' प्रकाश हमारे जीवन से निकल गया, नहीं नहीं, यह गलत बात है, वह प्रकाश जो इस देश में प्रदीप्त हो उठा था, साधारण प्रकाश नहीं था। यह प्रकाश तो सहस्रों वर्ष तक चमकता रहेगा और विश्व उसका दर्शन करता रहेगा। वह प्रकाश तो शाश्वत सत्य का प्रतीक था।' गांधीजी के महा प्रस्थान से समस्त प्रकृति रो उठी। देश-देश के केतनों ने नत होकर अभिवादन किया, भारत की महान आत्मा के प्रति आदर प्रकट किया। दूसरे दिन अत्यन्त राजकीय ढंग से भारतीय जनता ने जवाहर लाल की स्वाधीन सरकार के संरक्षण में उनकी अन्त्येष्टि क्रिया विधिपूर्वक सम्पन्न की। अन्तिम संस्कार में दिल्ली ने अपना खजाना खोल दिया। बापू का दाह-संस्कार समस्त भारत ने किया। दिल्ली की सड़कें चलते-फिरते स्मारक हैं, कालिन्दी की नीली लहरें हमारी वेदना की

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गवाह हैं। दिल्ली में यमुना के तट पर स्थित उनकी महासमाधि असंख्य समय तक मृत्यु को चुनौती देती-सी खड़ी रहेगी।

महात्मा गांधी का सबसे बड़ा धर्म भगवद्भजन था। जीवन के अन्तिम श्वास में भी वे अपने राम को नहीं भूल सके। वे अमर हैं।

रचना

आत्मकथा, गीतामाता आदि उनकी अमर कृति हैं।'हरिजन' पत्र में उनके समय-समय के उद्गार भरे-पड़े हैं। वीसवीं शती के साहित्य के प्राणाधार थे।

वाणी

ईश्वर से सांसारिक सुख या दूसरी स्वार्थसिद्धि की वस्तु मांगना प्रार्थना नहीं है। प्रार्थना दुःख से व्याकुल आत्मा का गम्भीर नाद है। जब किसी महान पीड़ा से व्यक्ति या जाति व्याकुल हो उठती है तब उस पीड़ा का शुद्ध ज्ञान ही प्रार्थना है।

सत्य की आराधना भक्ति है और भक्ति सिर हथेली पर लेकर चलने का सौदा है– हरि का मार्ग है। उसमें कायरता को स्थान नहीं है। पराजय नाम की कोई वस्तु नहीं है। वह तो मर कर जीने का मन्त्र है।

सत्य के पुजारी का रस अनन्त होता है। सत्य नारायण की झाँकी के लिये वह अपने आप को कभी बूढ़ा नहीं मानता है। जो प्रत्येक काम ईश्वर (सत्य) के ही प्रीत्यर्थ करता है, सर्वत्र सत्य का ही दर्शन करता है उसके लिये बुढ़ापा विघ्न रूप नहीं होता है। सत्यार्थी अपने ध्येय के अन्वेषण के लिये अजर है, अमर है।

हमारा शरीर महामन्दिर है। हम उसमें बाहर से कोई मैल न भरें।..... ईश्वर के साथ युक्त होने का नाम योग है।

यदि ईश्वर नहीं हैं, हम भी नहीं हो सकते। इस लिये हम सब एक आवाज से–अनेक और अनन्त नामों से पुकारते हैं। वे एक हैं, अनेक हैं, अणु से छोटे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और हिमालय से भी बड़े हैं। समुद्र के एक विन्दु में भी समा जा सकते हैं, और इतने भारी हैं कि सात समुद्र मिल कर भी उन्हें सहन नहीं कर सकते।.... ईश्वर का अस्तित्व मानने के लिये श्रद्धा की आवश्यकता है। मेरी श्रद्धा बुद्धि से इतनी अधिक आगे दौड़ती है कि समस्त संसार का विरोध होने पर भी मैं यही कहूँगा कि ईश्वर हैं, वे हैं ही।

जो व्यक्ति राम-नाम जप कर अपनी आत्मा को पवित्र बना लेता है है वह बाहरी अपवित्रताका सहन नहीं कर सकता है। यदि लाखों-करोड़ों लोग सच्चे हृदय से राम-नाम जपें, विश्व में राम-राज्य स्थापित हो जाय।

अहिंसा के विना सत्य की खोज असम्भव है। अहिंसा और सत्य ऐसे ओतप्रोत हैं जैसे सिक्के के दोनों रूख या चिकनी चकती के दो पहलू ओतप्रोत हैं।.... उसमें क्या उलटा है, क्या सीधा है? तथापि अहिंसा साधन और सत्य साध्य मानना चाहिये।

हिन्दू धर्म की प्रतिष्ठा सत्य और अहिंसा पर निर्भर है और इसी कारण हिन्दू धर्म किसी धर्म का विरोधी नहीं हो सकता है। हिन्दू धर्मी की नित्य प्रदक्षिणा यह होनी चाहिये कि जगत के सर्वप्रतिष्ठित धर्मों की उन्नति हो और उसके द्वारा सारे संसार की।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महायोगी अरविन्द

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्॥

वह ब्रह्म ज्योतियों की भी ज्योति और माया से अति परे कहा जाता है तथा वह बोधस्वरूप और जानने के योग्य है तथा तत्वज्ञान से प्राप्त होने वाला और सबके हृदय में स्थित है।

—श्रीमद्भगवद्गीता १३।१७

अरविंद महायोगी थे। वे हठयोगी, राजयोगी और लययोगी—सब कुछ एक ही साथ थे। विक्रमीय बीसवीं शती के अध्यात्म-चिन्तकों में यौगिक साधना के क्षेत्र में वे अग्रगण्य थे। महर्षि रमण ने आत्मवाद का आश्रय लिया, महात्मा गांधी ने सत्य के रामरूप का चिंतन किया तो अरविंद ने अन्तरात्मा के शाश्वत प्रकाश में, भागवत ज्योति में जागतिक अन्धकार का विनाश कर चराचर को अपने दिव्यीकरण-सिद्धान्त के संरक्षण में आत्मयोग प्रदान किया।

उन्होंने दिव्य क्रान्ति उपस्थित की। उन्होंने भारत को आत्मचेतना दी। राजनैतिक दासता—पराधीनता की हथकड़ी-बेड़ी में जकड़े असंख्य प्राणियों को दिव्य जीवन प्रदान किया। उन्होंने स्वराज्य का दिव्यीकरण किया। उन्होंने कहा कि आत्मा अनश्वर है, उसकी शक्ति अपार और अचिन्त्य है, उस पर बाह्य शत्रु का वश नहीं चल सकता है। अरविंद आत्मदार्शनिक थे, उनके आत्मदर्शन का राजप्रासाद भगवद् भक्ति और शास्त्र के सद्सिद्धान्त की नींव पर स्थित स्वीकार किया जा सकता है। उन्होंने अपनी योगसाधना की सिद्धि भगवद्भक्ति—भागवती शक्ति के अवतरण में प्रतिष्ठित की। उनके योग का लक्ष्य केवल देहात्म भाव से ऊपर उठना और आत्मा अथवा परमात्मानुभूति ही नहीं था, वे तो मन, बुद्धि, प्राण और जीवन में परमात्म-ज्योति भर कर जड़ और पार्थिव प्रकृति को दिव्यता, चेतनता—अपार्थिवता प्रदान करना चाहते थे, रूपान्तर अथवा दिव्यीकरण उपस्थित करना चाहते थे। उन्होंने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जीवन को सच्चिदानन्द परमात्मा की समस्त दिव्य शक्ति से सम्पन्न करने की चेष्टा की। वे इस मौलिक, अद्‌भुत, अपूर्व और अमित पवित्र कार्य में अधिकाधिक सफल रहे। उन्होंने परमात्मा की पूर्णता की अनुभूति से विश्व की अध्यात्म-चेतना प्राणान्वित की। वे विदेशी और स्वदेशी भाषाओं संस्कृत, बंगाली, ग्रीक, इटाली, फ्रेंच, अंग्रेजी आदि के पण्डित थे। उन्होंने पूर्व और पश्चिम की आध्यात्मिक विचारधाराओं का यौगिक स्तर से समन्वय किया। उन्होंने जीवन-क्रान्ति का दान किया। वे एकता, प्रेम, अमरता, चेतनता के शाश्वत गायक थे, परमात्म-तत्व के विशेषज्ञ थे।

महायोगी अरविंद का जीवन-चरित्र लिखना कठिन काम है, उनका आचरण साधना के क्षेत्र में समग्ररूप से अन्तर्मुखी था। बाह्य आचरण का अंकन तो हो सकता है पर भीतरी प्रवृत्तियों को चित्रित करना भगवान और अरविंद की कृपा से ही सम्भव है। अरविंद की एक स्थल पर उक्ति है : 'अपने विगत जीवन की घटनाओं के संबन्ध में—उन्हें सच्चा स्वरूप प्रदान करते हुए तथा अर्थ देते हुए केवल मैं ही बोल सकता हूँ। मेरे जीवन के सम्बन्ध में कुछ भी न तुम जानते हो, न कोई और जानता है, यह उपरितल पर नहीं रहा है कि मनुष्य इसे देख सके।' अरविंद का जीवन-चरित्र रहस्यपूर्ण है।

महायोगी अरविंद ने कलकत्ते के एक सुशिक्षित बंगाली परिवार में सम्वत् १९२९ वि. (सन् १८७२ ई., १५ अगस्त) में जन्म लिया था। उनके पिता सिविल सर्जन थे। वे अंग्रेजी शिक्षा-दीक्षा से बहुत प्रभावित थे। सात साल तक अरविंद देश में रहे। उसके बाद उनके पिता ने अरविंद की शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध इंगलैंड में किया। वे अपने बड़े भाई के साथ इंगलैंड भेजे गये। मानचेस्टर के एक अंग्रेज परिवार में उनका पालन-पोषण हुआ। पिता ने अंग्रेज परिवार को अच्छी तरह सावधान कर दिया था कि अरविंद के जीवन के किसी भी अंग पर भारतीय वातावरण का रंग न चढ़ने पाये। अरविंद ने प्राथमिक शिक्षा सेंट पाल विद्यालय लन्दन में प्राप्त की। वे बड़े प्रतिभाशाली छात्र थे। अठारह साल की अवस्था में उत्तम श्रेणी की छात्र-वृत्ति प्राप्त कर कैम्ब्रिज के किंग्स विद्यालय में प्रवेश किया। उन्होंने आई. सी. एस. की परीक्षा दी, उत्तीर्ण हुए पर घोड़सवारी में असफल हो गये। वे भगवान की कृपा से योगी बनने वाले थे, आई. सी. एस का पद उनका स्पर्श ही किस प्रकार करता? अरविंद ने इंगलैंड-निवास काल में स्वदेश प्रेम का सपना देखा। उन्होंने युवा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वस्था में ही लन्दन में कमल-कटार-'लूटश एण्ड डैगर' संस्था की स्थापना की। उनके मन में क्रान्तिपूर्ण विचारों का उदय होने लग गया था। उन्हें अनुभव हो रहा था कि जगत में एक बहुत बड़ी क्रान्ति उपस्थित होने वाली है और उसमें उनका भाग लेना दैव निर्दिष्ट है। इगलैंड निवासकाल में उन्होंने कई एक विदेशी भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया। उनमें एक आध्यात्मिक प्रवृत्ति विशेष रूप से कार्यशील थी। इंगलैंड में बड़ौदा नरेश सयाजी राव गायकवाड़ से उनका परिचय हुआ। बड़ौदा नरेश उनकी प्रतिभा और योग्यता से प्रभावित हुए। इक्कीस साल की अवस्था में अरविंद भारत आये।

अरविंद ने बड़ौदा राज्य के भूमि-व्यवस्था-विभाग में कार्य करना आरम्भ किया, महाराजा बड़ौदा के व्यक्तिगत कार्य-सम्पादन में भी सहायता देने लगे। बड़ौदा कालेज के उप-प्रधान आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। उन्होंने बड़ौदा-निवास-काल में संस्कृत और बंगला का अध्ययन किया। वे हंसस्वरूप स्वामी तथा सद्गुरु ब्रह्मानन्द के सम्पर्क में आये। सम्वत् १९६२ वि. में वंग-भंग-आन्दोलन छिड़ने पर उन्होंने बड़ौदा छोड़ दिया। वे कलकत्ता आये, स्वदेशी आन्दोलन तथा क्रान्तिपूर्ण योजनाओं में सक्रिय भाग लिया। बंगाल नेशनल कालेज के प्रधानाचार्य नियुक्त हुए। स्वदेशी-आन्दोलन को अरविंद ने आध्यात्मिक रूप प्रदान करना चाहा। स्वदेशी-आन्दोलन उनके राजनैतिक जीवन का पहला अध्याय था। स्वराज्य की माँग को उन्होंने बल दिया। सम्वत् १९६७ वि. तक वे राजनीति में सक्रिय भाग लेते रहे। उन्होंने क्रान्तिपूर्ण आन्दोलन चलाने के लिये 'वन्दे मातरम्' पत्र का सम्पादन किया। उन्होंने अंग्रेजी में 'कर्मयोगी' और बंगला में 'धर्म' नामक साप्ताहिक पत्र निकाले। कई बार उन्हें कारागार भोगना पड़ा। पर वे अपने पवित्र उद्देश्य की पूर्ति में लगे रहे। यह कहना नितान्त समीचीन है कि विक्रमीय बीसवीं शताब्दी में अरविन्द ने पहले पहल राजनैतिक आन्दोलन को अध्यात्म से सम्पन्न किया। उन्होंने राजनीति में अध्यात्मका शिलान्यास किया और महात्मा गांधी ने राजप्रासाद प्रस्तुत किया। धीरे-धीरे अरविन्द की चिर जागृत अध्यात्मचेतना ने राजनीतिक प्रवृत्ति से आगे प्रगति की। वे एकान्त सेवन और योगमय-जीवन का वरण करने के लिये उत्सुक हो उठे। उन्होंने १९६७ वि. में सक्रिय राजनीति से हाथ खींच लिया और आत्मयोग की ओर अग्रसर हुए, अलीपुर षडयन्त्र में वे काल-कोठरी में बन्द कर दिये गये। इस समय भगवान की कृपा से जेल के अधि-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कारियों ने उन्हें नित्य कालकोठरी के सामने घण्टे-आध घण्टे टहलने की अनुमति दे दी। वे पेड़ के नीचे टहला करते थे। एक दिन उनके नयनों ने पेड़ के स्थान पर साक्षात् वासुदेव कृष्ण की उपस्थिति का दर्शन किया। कारागार में, कैदियों में, कण-कण में भीतर-बाहर उन्हें श्रीकृष्ण ही दीख पड़ने लगे। न्यायालय में भी उन्हें अपने प्रेमास्पद का दर्शन हुआ। वे योगसाधना के लिये निकल पड़े। उन्होंने पाण्डीचेरी को अपनी योग-साधना और तप का क्षेत्र चुना। पाण्डीचेरी में योग-साधना में प्रवेश करने के पहले भी वे योगाभ्यास किया करते थे। उन्होंने पहले बिना किसी गुरु की ही सहायता के योग-साधना अपनायी। पाण्डीचेरी आगमन के दो साल पहले वे मराठी योगी विष्णु भास्कर के सम्पर्क में आये और उनके पथ-दर्शन ने उन्हें पूर्ण भगवद्विश्वास प्रदान किया। पाण्डीचेरी आश्रम मे माता-फ्रेंच योगिनी के आगमन ने उनकी आध्यात्मिक साधना को बड़ा बल दिया। दोनों एक दूसरे के दिव्य आध्यात्मिक सम्पर्क से बहुत प्रभावित हुए। अरविंद ने अपनी योग-साधना में श्रीमद्भगवद्गीता तथा उपनिषदों का असाधारण महत्व स्वीकार किया है। पाण्डीचेरी का योगाश्रम उनकी साधना और आध्यात्मिक साहित्य-निर्माण का भौम प्रतीक है। उन्होंने चार साल तक कठिन योगाभ्यास किया, एकान्त ही उनका साथी था। उन्होंने 'आर्य' नामक तत्वज्ञानविषयक पत्र निकाला। धीरे-धीरे पाण्डीचेरी आश्रम में साधकों और अनुयायियों की संख्या बढ़ने लगी। भगवत्सम्बंध और आत्मानुभव प्राप्त करने के लिये उन्होंने महान प्रयत्न किया। वे जड़ जीवन में परमात्मा की चेतनसत्ता उतारने में तत्पर हुए—आत्मशक्ति, आत्मज्योति और आत्मानन्द का आवाहन ही उनकी साधना की सिद्धि का प्रतीक हो उठा। वे मन, बुद्धि, प्राण और शरीर के दिव्यीकरण में लग गये। उन्होंने अपने सम्पर्क में आनेवाले साधकों को आत्मध्यान की सीख दी। योगी अरविंद के निवास से पाण्डीचेरी का वातावरण तपोमय, शान्त और परम पवित्र हो चला। अरविंद आध्यात्मिक क्रान्ति के स्रष्टा थे। अरविंद की आश्रम के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण स्वीकृति है—यह आश्रम दूसरे आश्रमों के समान नहीं है। यहां कोई भी संन्यासी नहीं है। सन्यासी बन कर यहां कोई रहता भी नहीं है। यहाँ का सारा लक्ष्य ही दूसरी तरह का है। अरविंद के तपोमय जीवन ने स्वीकार किया कि आश्रम का लक्ष्य मोक्ष-प्राप्ति नहीं है, इसमें रहने वाले साधक अपने आप भौतिक चेतना और योगशक्ति के समन्वय-पथ पर ले

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चलने का अभ्यास करते हैं। धीरे-धीरे अनुयायियों की संख्या बढ़ गयी और आध्यात्मिक जीवन के पवित्र सौन्दर्य से सम्पन्न आश्रम योग-साधना का महत्वपूर्ण केन्द्र बन गया।

पाण्डीचेरी-आश्रम में श्रीमाता की उपस्थिति ने अरविंद के आध्यात्मिक कार्य को असाधारण ढंग से आगे बढ़ाया। उनका महत्व स्वीकार करते हुए अरविंद ने उनके सहयोग पर प्रकाश डाला है कि श्रीमाता और मैं—दोनों एक हैं, अभिन्न हैं। आश्रम में वे ही सब कुछ हैं। निस्सन्देह दोनों का सम्पर्क अध्यात्म के दिव्यतम तत्व और चिन्मय शक्ति का समन्वय-प्रतीक कहा जा सकता है। श्रीमाता अध्यात्म की देवी हैं; अरविंद अध्यात्म के शिव थे।

अरविन्द की साधना-पद्धति में उच्चतम अध्यात्म यह है कि जीवन पूर्णरूप से भागवत हो जाय, भगवद्ज्योति से भर जाय। संसार के प्रति किसी भी प्रकार की आसक्ति साधना में बाधक सिद्ध होती है, जीवमात्र—सचराचर के प्रति मन में निरन्तर सेवा— दयाभाव रख कर भगवद्चिंतन और आत्मबोध की ओर बढ़ते रहना ही जीवन का श्रेय है। साधक का सम्पूर्ण प्रेम भगवान में केन्द्रित हो जाय, साधक जीवन का यही सबसे बड़ा और अन्तिम लक्ष्य है। अरविंद ने स्वीकार किया कि चित्त की शुद्धि और भगवत्-शक्ति का अवतरण दोनों का काम एक साथ चलता है। दिन-प्रति-दिन अधिकाधिक स्थिरता और दृढ़ता के साथ दोनों एक दूसरे का आलिंगन करते हैं—साधना का यही सामान्य क्रम है। अरविन्द ने योगाभ्यास को साधना का अभिप्राय बताया। उन्होंने कहा कि साधना का फल पाने के लिये तथा निम्न प्रकृति पर विजय पाने के लिये अपनी संकल्प-शक्ति को एकाग्र करना ही तपस्या है। भगवान की पूजा करना, उनसे प्रेम करना, उन्हें आत्म समर्पण करना, पाने की अभीप्सा करना, उनका नाम जपना, प्रार्थना करना आराधना है। समाधिस्थ होकर चेतना एकाग्र करना ध्यान है। अरविन्द ने तपस्या, आराधना और ध्यान—साधना के अंगों को पाण्डीचेरी आश्रम के तपोमय जीवन में पूर्ण रूप से चरितार्थ कर दिया।

अपने सिद्धान्त और लक्ष्य की व्याख्या में अरविंद ने एक स्थल पर कहा है कि हमारा लक्ष्य है परम सत्ता भगवान की प्राप्ति, उनकी चैतन्य शक्ति द्वारा प्रत्येक बात का अनुभव करना और व्यावहारिक प्रयोग में उसे नीचे उतारना, जिससे इस महाशक्ति के स्पर्श से समस्त आधार शुद्ध होकर दिव्य बन जाय। ऐसा होने पर ही जड़ जगत में गुप्त चैतन्य-प्रस्फुटन किया जा सकता है और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सदा के लिये इसमें स्वर्ग की स्थापना की जा सकती है। अरविन्द ने विश्व को परमसत्ता-भगवत्ता का विश्वास दिलाया कि भगवान शुद्ध और असीम सत्ता हैं, वे स्वयं सम्पूर्ण रूप से अपने अधिकार में हैं, सत् हैं..... भागवत ज्ञान सत्य का ज्ञान होता है, भागवत इच्छाशक्ति सत्य की शक्ति होती है... भगवान की अनन्तता विश्वगत नहीं– विश्वातीत है। जीव द्वारा भगवच्चैतन्य की क्रमशः प्राप्ति को ही अरविन्द ने दिव्यीकरण-संज्ञा प्रदान की। अरविंद ने स्पष्ट कहा कि योग का उद्देश्य है भगवान की सत्ता और चेतना में प्रवेश करना, उनके द्वारा अधिकृत होना, भगवान के लिये भगवान से प्रेम करना, अपनी प्रकृति में भगवान की प्रकृति के साथ समस्वर होना। संकल्प, कर्म तथा जीवन में भगवान का यन्त्र बनना।

अरविंद परम आस्तिक मानव थे। उनकी आस्तिकता ने श्रीभगवद्गीता तथा औपनिषद ब्रह्म-दर्शन के प्रकाश में परा तत्व और अपरा प्रकृति का समन्वय किया। अरविंद ने कहा कि भगवान पुरुषोत्तम में अपने समस्त जीवन को ऊपर उठा ले जाना, उन्हीं में निवास करना, उनके साथ एक हो जाना, उनकी चेतना में अपनी चेतना को एक कर देना.... अपने विचार और इन्द्रियों को सम्पूर्ण रूप से भागवत ज्ञान द्वारा अनुप्राणित करना ...उन्हीं के प्रेमानन्द में अपनी वासना को खो देना ही मनुष्य की पूर्णता है, गीता ने इसी को गुह्यतम रहस्य कहा है। अरविंद के चिंतन के अनुसार गीता मानव कर्म नहीं–दिव्य कर्म का प्रतिपादन करती है।..... आध्यात्मिक कर्मों का सबसे महान दिव्य सत्य जो आज तक मानव जाति के लिये प्रकट किया गया है अथवा कर्मयोग की पूर्णतम पद्धति जो अतीत में मनुष्य को विदित थी–भगवद्गीता में उपलब्ध है।

मनुष्य के पार्थिक जीवन के दिव्यीकरण की इच्छा के साथ मिलने के लिये विज्ञान का नीचे उतरना ही अरविंद के योगाभ्यास का लक्ष्य स्वीकार किया जा सकता है–और उनका यही लक्ष्य था ही। योगविद्या अरविन्द की अमूल्य देन है, उन्होंने अत्यन्त मौलिक ढंग से योग-समन्वय पर प्रकाश डाला। अरविंद की योग विद्या का दूसरा नाम 'पूर्णयोग' है। उन्होंने 'पूर्णयोग' को कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग और आत्मसिद्धि का आधार-प्रतीक माना। अरविंद ने कहा कि पूर्ण योग का परम शास्त्र वह सनातन वेद है जो प्रत्येक विचारशील मनुष्य के हृदय में गुप्त रूप से निहित है। योग का अर्थ है परमात्मा के साथ संयोग–विश्व के परे जो परमतत्व है उसके साथ संयोग या

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विश्वात्मा के साथ संयोग या व्यष्टि गत जो आत्मा है उसके साथ संयोग–तीनों के साथ संयोग। अथवा इसका अर्थ एक ऐसी चेतना की प्राप्ति है जिसमें पुरुष अपने शुद्ध अहंकार, व्यष्टिगत मन, बुद्धि, प्राण और शरीर से बंधा नहीं रहता है–परमात्मा के साथ–विश्वात्म चैतन्य के साथ या किसी अन्तःस्थित गूढ़ातिगूढ़ चैतन्य में एकत्व को प्राप्त होता है जिसमें वह अपने स्वरूप को जान लेता है; अन्तःस्थित आत्मा को तथा जीवन के वास्तविक तत्व को पहिचान लेता है।

योगी अरविंद ने दिव्यीकरण-माध्यम से अपरा प्रकृति के रूपान्तरण का सन्देश दिया। उन्होंने मनुष्य में विज्ञान सत्ता–अतिमानस के आविर्भाव की ओर संकेत किया और बतलाया कि बिना इसके मानव जीवन का दिव्यीकरण–दिव्य रूपान्तर सम्भव नहीं है। अरविंद की दिव्यीकरण-परम्परा की स्वीकृति है कि भागवत रूप और मानवरूप में भगवान का अवतार होता है। भगवान मानव-प्रकृति को ओढ़ लेते हैं, उसकी सारी बाह्य सीमाओं को अपना लेते हैं। उसे अपने दिव्य जन्म और दिव्य कर्म का पात्र बना लेते हैं। भगवान के आने का आन्तरिक फल उन लोगों को प्राप्त होता है जो भगवान की इस क्रिया से दिव्य जन्म और दिव्य कर्म के वास्तविक मर्म को जान लेते हैं और अपनी चेतना में भगवन्मय होकर सदा भगवदाश्रित होकर रहते हैं और अपने ज्ञान की तप-शक्ति से पवित्र होकर, अपरा प्रकृति से मुक्त होकर भगवत्स्वरूप और स्वभाव को प्राप्त होते हैं। अरविंद ने पूर्ण भगवदाश्रय की शिक्षा दी। उन्होंने बतलाया कि दिव्य कर्म आत्मा से उद्भूत होते हैं और केवल आत्मा के ही प्रकाश में पहिचाने जा सकते हैं।

अरविंद आध्यात्मिक क्रान्ति के सफल स्रष्टा थे। उनकी आध्यात्मिक क्रान्ति के मूल में भगवदाश्रय, दिव्यीकरण और पूर्ण योग का निवास है, इन्हीं तीनों के सहारे उन्होंने अपरा प्रकृति को पूर्ण भागवत चैतन्य से–चेतना से भर देने का—रूपान्तरित कर देने का बीड़ा उठाया था। उन्होंने कर्म को दिव्य रूप प्रदान करने की चेष्टा की, विश्व के समस्त संघर्षों में भगवान की दिव्यलीला की अनुभूति का वर देना ही उनके योग का लक्ष्य था।

महायोगी अरविंद मानवता के अमर दिव्य दूत थे, उन्होंनें विश्व को शाश्वत आत्मचैतन्य–सम्पूर्णदिव्य ज्ञान और भागवत प्रेम प्रदान किया। उन्होंने अपने जन्म-दिवस पन्द्रह अगस्त को भारतीय राष्ट्र का स्वराज्य दर्शन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किया; पन्द्रह अगस्त उनके जन्म और कर्म की दिव्यता की अमर तिथि है। महासमाधि के तीनसाल पहले पन्द्रह अगस्त की शुभतिथि को उनके कर्म की दिव्यता की मानवता ने सहज अनुभूति की। अरविन्द ने उद्‌गार प्रकट किया, "मेरी जन्मतिथि होने के नाते मेरे तथा मेरे अनुयायियों के लिये पन्द्रह अगस्त स्मरणीय रहता आया है और स्वतन्त्र भारत की जन्मतिथि होने के नाते अब मेरे लिये उसका महत्व और भी बढ़ गया है।'

अरविंद के प्रति हृदय में श्रद्धा-जागृति एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बात है। मानव का यह परम सौभाग्य कहा जा सकता है कि उसकी श्रद्धा महायोगी अरविंद के चरण में समर्पित हो जाय। पाण्डीचेरी आश्रम की श्रीमाता जी की उक्ति है कि कितना सुंदर होता है वह दिन जब मनुष्य अपनी श्रद्धा-भक्ति श्री अरविंद को समर्पित कर पाता है। अरविंद योग-मानव थे, योगमय थे, वे भगवत्चेतना के विशिष्टतम योगरूप थे—श्रद्धा और भक्ति की भाषा में ऐसा कहना समीचीन ही लगता है। अरविंद का योग अमर है, अरविंद की भागवत चेतना अविनश्वर है।

सम्वत् २००७ वि. में (सन् १९५० ई. में ५ दिसम्बर को आधीरात के बाद लगभग डेढ़ बजे) अरविन्द महासमाधि में योगस्थ हो गये। उनका शरीर विकृत नहीं हुआ। एक सो ग्यारह घण्टे के बाद नव दिसम्बर को हजारों की उपस्थिति में उनकी अन्त्येष्टि-क्रिया साधारण विधि से सम्पन्न हुई। वे अध्यात्म-साम्राज्य के योगी सम्राट थे। जीवन के अन्तिम दिनों में उन्होंने अपनी महती काव्यकृति सावित्री समाप्त कर दी। पाण्डीचेरी आश्रम में स्तिथ उनकी महासमाधि पर अंकित शब्द हैं—हमारे देवता की भौम समाधि, हम आपको अपनी अनन्त कृतज्ञता अर्पित करते हैं।...आप के सामने, जिन्होंने हमारे लिये इतना किया, जिन्होंने हमारे लिये कर्म, संघर्ष, तपस्या और आशा तथा सहनशीलता का निर्वाह किया, जिन्होंने हमारे लिये समस्त संकल्प-सम्पादन, प्रयत्न, प्रस्तुति और समस्त उपलब्धि का व्रतअनुष्ठान किया, हम नतमस्तक होते हैं और विनम्र निवेदन करते हैं कि एक क्षण के लिये भी हम आपकी अनुगृहीति का विस्मरण न करें।' पाण्डीचेरी आश्रम की परम अधिष्ठात्री शक्ति श्रीमाता की यह श्रद्धाञ्जलि समस्त भारत और विश्व की विश्वात्मा महायोगी अरविन्द के प्रति प्रणति की प्रतीक है। भगवान करें यह वाणी शाश्वत, दिव्य, और अमिट, अक्षर तथा सर्वदा और सर्वदा आनन्दमयी हो।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रचना

दिव्य जीवन, इस जगत की पहेली, योगसमन्वय, योग प्रदीप, सावित्री, माता, गीताप्रबन्ध आदि अरविन्द की अमर कृति हैं।

वाणी

सदात्मा के दो रूप हैं—एक आत्मा और दूसरा अन्तरात्मा अथवा हृत्पुरुष जिसे हम चैतन्यपुरुष भी कहते हैं। सदात्मा की अनुभूति इनमें से किसी एक रूप में अथवा इन दोनों ही रूपों में हो सकती है। इन दोनों अनुभूतियों में अन्तर यही है कि आत्मा सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त प्रतीत होता है और अन्तरात्मा व्यक्ति विशेष के मन, प्राण और शरीर को धारण करने वाले व्यष्टि पुरुष के रूप में प्रतीत होता है।

विज्ञान सच्चिदानन्द और अपरा सृष्टि के मध्य में है। इस विज्ञान में ही भगवच्चैतन्य का स्वसंकल्पात्मक सत्य निहित है और इसलिये सत्सृष्टि के लिये यह आवश्यक है।

सच्चिदानन्द की अनुभूति मन, प्राण और शरीर के सम्बन्ध से अवश्य ही हो सकती है पर यह अनुभूति एक प्रकार की अविचल स्थिति है जिसकी प्राप्ति अपरा प्रकृति को धारण तो करती है पर उसे दिव्य स्वरूप नहीं प्राप्त कराती। अपरा प्रकृति को रूपान्तरित कर दिव्य बनाने की शक्ति केवल विज्ञान में ही है।

राधा अनन्य भगवत्प्रेम की प्रतिमा हैं—ऐसा अनन्य भगवत्प्रेम—जो प्रेम के ऊर्ध्वतम आध्यात्मिक सत्ता से लेकर शरीर तक सर्वांग में परिपूर्ण और अखण्ड हो; जिसमें निरपेक्ष आत्मदान और पूर्ण समर्पण हो और शरीर तथा अत्यन्त जड़ प्रकृति में परमानंद भर जाय।

सब प्रकार की आसक्ति साधना में बाधक है। सबके कल्याण की कामना, सब के लिए अन्तरात्मा की दया का होना तो ठीक है पर किसी प्रकार की प्राणगत आसक्ति नहीं होनी चाहिये।

साधक का प्रेम भगवान के लिये होना चाहिये। जब यह भगवत्प्रेम पूर्ण होता है तभी वह दूसरों से भी यथार्थ रूप से प्रेम कर सकता है।

आत्मसमर्पण किसी विशिष्ट कर्म के करने पर निर्भर नहीं है, उस भाव पर निर्भर है जिससे कोई भी कर्म किया जाता है, वह कर्म, चाहे, किसी भी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रकार का हो। जो कर्म श्री भगवान को समर्पित करने के लिये कुशलता और सावधानी के साथ, वासना तथा अहंकार से रहित होकर, समबुद्धि से तथा इष्टानिष्ठ उपपत्ति में स्थिर शान्ति के साथ भगवान के लिये ही किया जाता है... वैयक्तिक लाभ या पुरस्कार या फल के लिये नहीं—इस बुद्धि से किया जाता है कि कर्ममात्र ही भागवत शक्ति है—वही कर्म के द्वारा आत्मसर्पण का साधन होता है।

शरणागति पूर्ण और वास्तविक होनी चाहिये, शेष सब कुछ ठीक-ठीक होता रहेगा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वामी रामतीर्थ

'स्वामी रामतीर्थ के जीवन में हमें भारतवर्ष की आध्यात्मिकता के सर्वोच्च सिद्धान्तों की झलक दीख पड़ती है और उनकी आत्मा में सार्वभौम आत्मा परमात्मा का प्रतिविम्ब था जिन्हें वे अनुभव कर रहे थे।'

—लाला हरदयाल

स्वामी रामकृष्ण परमहंस की ही तरह एक अल्हड़, निर्भीक सन्त न पञ्जाव प्रान्त के गुजरान वाला जिले के मुरालीवाला नामक गांव में (२२ अक्टूबर सन् १८७३ ई.) सम्वत् १९३० वि. में जन्म लिया था। उनके वचपन का नाम तीर्थराम था और संन्यास का नाम रामतीर्थ था। संन्यास-आश्रम में पैर रख कर वे दुनिया से उलटे हो गये, उनका नाम उलटा हो गया, नाम बदल गया। यदि विचारपूर्ण दृष्टि से उनके जीवन का अध्ययन किया जाय तो ऐसा लगता है कि वे प्रसिद्ध मध्यकालीन वेदान्ती महात्मा मधुसूदन सरस्वती के अभिनव संस्करण थे। जिस तरह मधुसुदन ने आत्मदर्शन के गहरे तत्व की छान-बीन कर भगवान के सगुण रूप के सौन्दर्य पर चकित होकर 'कृष्णात् परं किमपि तत्वमहं न जाने' की घोषणा कर दी उसी तरह स्वामी रामतीर्थ ऐसे आत्मतत्ववेत्ता सागर की ओर बहने वाली भगवती राबी के पवित्र तट पर टहलते समय आकाश में काली-काली घनघोर घटा देख कर समाधिस्थ हो उठे : 'हे कृष्ण, हे घनश्याम, श्याम रंग का बादल आप ही का रूप है, यह मुझे आकुल कर रहा है।' अचानक उनके 'गोलू यार' —भगवान कृष्ण ने उन्हें स्नान करते समय दर्शन दिया तथा परस्पर गाढ़ालिंगन के बाद अदृश्य हो गये। आत्मतत्व में परमात्मतत्व का दर्शन उनके सरीखे सन्त ही किया करते हैं। रामकृष्ण के बाद मस्त सन्तों में उन्हीं का नाम लिया जाता है। वे महान् साधक, ईश्वर भक्त और तपस्वी थे। आत्मा को विश्वात्मा में मिलाने में ही उन्होंने अपनी साधना की परम प्राप्ति की, सिद्धि पायी।

स्वामी रामतीर्थ की बाल्यावस्था में ही ज्योतिषियों ने घोषणा कर दी थी कि यह बालक सांसारिक सुख-दुख को लात मार कर परमानन्द के सागर में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तैरेगा। उनके पिता गोसाईं हीरानन्द स्वभाव के सीधे-सादे पर प्रकृति के क्रोधी थे। वे उन्हें अपने कठोर नियन्त्रण में रखते थे। कभी-कभी उनके साथ वे मन्दिरों में भी जाया करते थे और भगवान की पूजा-आरती देखकर उनका मन श्रद्धा और भक्ति से नाचने लगता था। नयनों में अश्रु कण आ जाते थे।.. वजीराबाद के पण्डित रामचन्द्र की कन्या से दस साल की ही अवस्था में उनका विवाह कर दिया गया। चौदह साल की अवस्था में गुजरानवाला हाई स्कूल से प्रथम श्रेणी में प्रवेशिका की परीक्षा पास कर पिता की असम्मति होने पर भी लाहौर के मिशन कालेज में भरती हो गये। उनका शिक्षाकाल कठोर-से-कठोर अग्नि-परीक्षा का समय था। घर से एक पैसे की भी सहायता न मिलती थी। तपोमय जीवन के फलस्वरूप वे सम्वत् १९५२ वि. में गणित में एम. ए. हो गये। स्यालकोट में साधारण अध्यापक के पद पर काम करने लगे और बाद में लाहौर के फोरमैन क्रिश्चियन कालेज में गणित के अध्यापक-पद पर उनकी नियुक्ति हो गयी।... उनके हृदय में प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति बड़ा अनुराग था। वे उससे आध्यात्मिक प्रगति के लिये असाधारण प्रेरणा पाते थे। उनके चरित्र-विकास पर एक अपढ़ देहाती भगत धन्नाराम का बड़ा प्रभाव पड़ा था। गणित के अध्यापक के पद पर काम करते-करते भी वे मन-ही-मन मौन, एकान्त ध्यान, चिंतन, गीता पाठ आदि का अभ्यास कर अपने आराध्य भगवान कृष्ण की पूजा किया करते थे। कभी-कभी तो उनकी भावुकता इस सीमा तक बढ़ जाती थी कि गणित का सिद्धान्त भूल कर वे विद्यार्थियों को 'कृष्ण-कृष्ण' पढ़ाने लगते थे। श्यामपट पर उनका चित्र उतारने लगते थे।

उन्होंने लाहौर में ही अपने निवास-स्थान पर एक अद्वैतामृतवर्षिणी सभा की स्थापना की। उसमें साधु-सन्त ही सम्मिलित होते थे। स्वामी राम तीर्थ की आत्मसाधना ने शीघ्र ही उन्हें वैराग्य और भक्ति के आंगन में ला-खड़ा किया। कृष्ण-चिंतन ने आत्मदर्शन की जिज्ञासा का रूप ले लिया। विवेकानन्द का उन्होंने लाहौर में दर्शन किया, उनके भाषण का रामतीर्थ के जीवन पर इतना प्रभाव पड़ा कि वे वेदान्त और संन्यास में अधिकाधिक रुचि रखने लगे। उन्होंने जागतिक बन्धन तोड़ दिये, पूर्ण रूप से आत्मा के आनन्दमय सरस राज्य में स्वतन्त्र हो गये। सच्चिदानन्द परमात्मा की स्वरूप-निष्ठा ने उनके मन पर पूरा-पूरा आधिपत्य स्थापित कर लिया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सनातन धर्म सभा के प्रसिद्ध उपदेशक दीनदयाल शर्मा के साथ उन्होंने, व्रज प्रयाग और काशी की यात्रा भी की। उन्होंने हरिद्वार आदि स्थानों में पर्यटन किया और गंगोत्तरी की विकट यात्रा का भी संकल्प किया। काँटों और झाड़ियों से विद्ध शरीर से खून भले ही निकले पर पहाड़ पर चढ़ने का निश्चय छोड़ना तो असम्भव ही था। उन्होंने एक स्थल पर गंगा को अपना शरीर अर्पण करना चाहा पर भगवती हिमकन्या ने उन्हें फूल की तरह एक चट्टान पर उछाल दिया। उनका ज्ञानचक्षु खुल गया। अद्वैतानुभूति की सिद्धि हो गयी। 'तत्त्वमसि' के पूर्ण प्रकाश ने उनका आलिंगन कर लिया। इस यात्रा से लौटने पर उनके सांसारिक बंधन और भी शिथिल हो गये। ओरियंटल कालेज में केवल दो घण्टे पढ़ाने लगे। लाहौर से अलिफ नाम का एक आध्यात्मिक विचार-धारा का पत्र भी उन्होंने निकाला। धीरे-धीरे निवृत्ति के पथ पर अग्रसर होकर उन्होंने संन्यास ले लिया। हिमालय प्रदेश की फिर यात्रा की। अचानक मार्ग में ही धर्मपत्नी आदि का साथ छोड़ कर टेहरी पड़ाव से नंगे पैर-नंगे सिर चल पड़े। गंगा के पवित्र तट पर निर्जनता और नीरवता को साक्षी बना कर विधि-पूर्वक यज्ञोपवीत उतार कर अठ्ठाइस साल की अवस्था में तीर्थराम से रामतीर्थ हो गये।

स्वामी रामतीर्थ ने विवेकानन्द और दयानन्द सरस्वती की तरह समग्र देश को आध्यात्मिक जागरण का सन्देश दिया। देश और विदेश में भारतीय संस्कृति के धार्मिक और आध्यात्मिक स्वरूप का इतिहास समझाकर अपने जीवन का उद्देश्य सार्थक और सफल कर लिया। हिमालय के अंचल से मैदान में उतर कर उन्होंने मथुरा, फैजाबाद, लखनऊ, आदि की यात्रा कर वेदान्त पर महत्वपूर्ण भाषण दिया। उसके बाद टेहरी नरेश कीर्तिशाह की सहायता से वे विश्वधर्म-सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिये जापान गये। पर किसी भी तरह का तत्सम्बन्धी आयोजन न देख कर उन्होंने कहा, 'वाह, वाह, यह भी खूब रहा। राम तो स्वयं ही एक जीता-जागता विश्व-धर्म-सम्मेलन है। वह तो अपना सम्मेलन करेगा ही चाहे टोकियो करे या न करे।.....उसके बाद प्रशान्त महासागर को पार कर वे शीघ्र ही सेनफ्रांसिस्को में उतर पड़े। सेनफ्रांसिस्को में पहुँचने पर वे जहाज के डेक पर बार-बार आने जाने लगे। यात्री अपने सामान लेकर उतर पड़े पर राम निश्चिन्त होकर आने जाने में ही समलग्न थे। उनके दर्शन और स्पर्श में बड़ा आकर्षण था, जो देखता था वही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उनके वश में हो जाता था। उनकी मुसकान और सौन्दर्यगरिमा बड़ी मनोमोहक थी। एक अमेरीकी ने रामतीर्थ से पूछा कि आपका सामान कहाँ है। स्वामीजी ने कहा कि मेरे शरीर पर जो कुछ भी है वही मेरा सामान है। मैं अपने पास रूपया-पैसा कुछ भी नहीं रखता। प्यास लगने पर कोई पानी पिला देता है तो भूख लगने पर कोई रोटी खिला देता है। अमेरीकी उनकी बात से आश्चर्य चकित हो गया, पूछा कि क्या अमेरीका में भी ऐसा परिचित है। स्वामी राम ने शीतल मुसकान बिखेरते हुए तथा उसके कन्धे का अपने कोमल हाथ से स्पर्श करते हुए कहा कि हाँ, है, अवश्य है और वह परिचित व्यक्ति तुम हो। अमेरीकी उसी क्षण से उनका ही हो गया। उस अमेरीकी ने स्वामी रामतीर्थ के सम्बन्ध में एक स्थल पर उद्‌गार प्रकट किया है कि स्वामी जी, हिमालय की गुफाओं से उदय होने वाले ज्ञान-सूर्य के समान हैं, न उनको अग्नि जला सकती है, न अस्त्र-शस्त्र काट सकते हैं। आनन्द के अश्रु सदा उनके नेत्रों से झलकते रहते हैं। उनकी उपस्थिति मात्र से हमें नव जीवन मिलता है। वे दो साल तक अमेरीका में रहे। जनता ने ईसा मसीह की ही तरह उनकी पूजा की। समाचार-पत्रों ने उनका फोटो छाप कर बड़ा प्रचार किया कि अमेरीका में जीवित ईसा मसीह ही उतर पड़े हैं। अमेरीका के तत्कालीन राष्ट्रपति ने भारतीय संन्यासी के चरणों पर नत होकर अपना जीवन धन्य कर लिया। अनेक नास्तिक और जड़-वादी बात-की-बात में आस्तिक बन गये।

अमेरीका में स्वामी रामतीर्थ की निजी मन्त्री मिसटायलर थीं। स्वामी राम को न्यूयार्क जाना था। टायलर उन्हें 'ग्रेट पैसफिक रेल रोड' के व्यवस्थापक के पास ले गयीं और न्यूयार्क के लिये रियायती टिकट देने की प्रार्थना की। व्यवस्थापक राम को देखते ही उनके रूप-लावण्य से आकृष्ट हो गया और कहा कि मैं स्वामी जी को 'पुलमैन' कार यों ही दे देता हूँ। स्वामी जी की मुसकान में जादू है।

अमेरीका -निवास काल में एक बार उनसे एक अभिनेत्री मिलने आयी। उसने शरीर पर कीमती-से-कीमती कपड़े पहने थे, इत्र की सुगन्ध चारों ओर फैल रही थी, वह देखने में बड़ी सुंदरी थी। उसने स्वामी राम से एकान्त में मिलने की प्रार्थना की, स्वीकृति मिल गयी। उसने करूण स्वर से उनके पैरों पर गिर कर कहा कि महाराज मैं संसार के पाप-ताप से जल रही हूँ, मुझे अपने हृदय से बड़ी घृणा है, मेरा उद्धार कीजिये। स्वामी राम ने उसको सान्त्वना दी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अमेरीका में स्वामी राम का जीवन पूर्ण तपोमय था। जब वे शास्ता स्प्रिंगस में ठहरे हुए थे तब एक साधारण मजदूर की तरह कड़ा-से-कड़ा श्रम करते थे। पर्वत पर से लकड़ी काट कर अपने आतिथेय के घर में एकत्र करते थे। स्वामी रामतीर्थ ने अमेरीका, जापान तथा मिश्र आदि देशों की जनता को सत्य, शान्ति और प्रेम का सन्देश दिया, उन्हें आत्मचेतना प्रदान की। विदेश से भारत लौटकर उन्होंने स्वदेशभक्ति और सद्ज्ञान के आलोक में अपना सन्देश भारतीयों को सुना कर विदेशी आधिपत्य और सरकार को चुनौती दी। उन्होंने अपनी अल्हड़ मस्ती में घूम-घूम कर वेदान्त की सरस भाषा में कहा 'मैं ही भारत वर्ष हूँ, मैं ही भारत हूँ। यह भारत भूमि ही मेरा शरीर है। कुमारी अन्तरीप मेरा चरण है। हिमालय मेरा मुकुट है। कटितट में कोपीन की तरह विंध्याचल की मेखला है। पूर्वी और पश्चिमी घाट मेरी दो भुजाये हैं। जब मैं चलता हूँ तो अनुभव करता हूँ कि सारा भारत ही चल रहा है। बोलता हूँ तो ऐसा लगता है कि सारा भारत ही बोल रहा है। मैं भारत हूँ, शिव हूँ, शंकर हूँ। यही देशभक्ति की सबसे ऊँची भूमिका है। यही व्यावहारिक वेदान्त है।' स्वामी रामतीर्थ का यह कथन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उन्होंने देश को प्रोत्साहन दिया कि भारतीयो, अपनी दिवंगत आत्माओंको सुख पहुँचाने के लिये जिस प्रकार श्राद्ध करते हैं उसी तरह भारत माता को स्वतन्त्र करने के लिये अपने स्वार्थों की बलि दे दीजिये।

जीवन के अन्तिम दिनों में वे सिमलसू में टेहरी नरेश के चन्द्रभवन में रहते थे। वे नित्य गंगा-स्नान को जाया करते थे। सम्वत् १९६३ वि की दीपावली को उन्होंने गंगा को अपना शरीर सौंप दिया। बादशाहों के बादशाह रामतीर्थ आचार्य शंकर की ही तरह तैंतीस साल की अवस्था में आत्मलीन हो गये। वे महान सन्त थे।

रचना

उन्होंने भावावेश में समय-समय पर वेदान्तपरक पद लिखे। अगणित उपदेश दिये। रामतीर्थ प्रतिष्ठान लखनऊ से उनके उपदेश आदि प्रकाशित हैं।

वाणी

सत्य की प्राप्ति के लिये, धर्म के रास्ते पर चलने के लिये सारे अनुराग त्याग दीजिये। सांसारिक कामनाओं और आसक्तियों से ऊपर उठिये। यदि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लौकिक आसक्तियों और स्वार्थमयी इच्छाओं से आप अपने को स्वतंत्र-मुक्त कर लीजिये तो फिर सत्य-प्राप्ति की बात ही क्या है ? आप स्वयं इसी क्षण सत्य हैं।

इस क्षुद्र अहं को अनन्त सागर में डुबो दीजिये और प्रभु-प्रसाद से आप जीवन, प्रकाश और प्रेम में सच्चिदानन्द से एकता के अनुभव में जाग उठेंगे। तत्क्षण ही आप के भीतर से सुखदायक और वीरतापूर्ण कार्यों के रूप में परम कल्याणमय प्रवाह फूट निकलेगा यही विद्या है; यही पुण्य है। यही है ईश्वर-प्रेरित जीवन और यही है आप का जन्मसिद्ध अधिकार।

परमेश्वर की दृष्टि में सब समान हैं; परमेश्वर ने सबको बनाया है। यदि हम परमेश्वर को प्रसन्न करना चाहते हैं तो हमें प्राणीमात्र से प्रेम करना चाहिये।

अपने सत्स्वरूप, अपने ईश्वरत्व में स्थित रहिये। दूसरों की निंदा तथा दूसरों पर दोषारोपण करने वालों पर दया कीजिये। अपने को अपमानित और पददलित कभी मत समझिये। अपने ऐश्वर्य की प्रतीति कीजिये, अपने दिव्य स्वरूप में निष्ठा रखिये, अन्यथा सब अज्ञान है, सब कुछ अंधकार है। आप के अन्तःकारण का अज्ञान ही आप के लिये संसार को नरक बना देता है। इस अन्धकार को दूर करने के लिये आप ज्ञान के अतिरिक्त जो कुछ भी करेंगे उससे काम नहीं सरेगा।

मृत्यु यह नहीं पूछती है कि आप के पास क्या है पर यह पूछती है कि आप हैं क्या ? जीवन का प्रश्न यह नहीं है कि मेरे पास क्या है अपितु यह है कि मैं हूँ क्या ?

सत्य ही भलाई है। सत्य का अनुसरण ही भलाई करना है। सत्य आप को दृढ़ और स्वतन्त्र बनाता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्त उड़िया बाबा

सर्वभूतेषु यः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥

जो समस्त प्राणियों में अपना भगवत्स्वरूप देखता है और सब प्राणियों को अपने भगवत्स्वरूप में देखता है वही उत्तम भागवत है।

—श्रीमद्भागवत ११।२।४५.

उड़िया बाबा उन महात्माओं में से एक थे जो बाह्य जगत के हलचलों से तनिक भी अशान्त या उद्विग्न न होकर आत्मगत सत्य के सौन्दर्य, अन्तर्जगत की शान्ति और परमात्मा की शक्ति के सहारे—कृपा के आश्रय-प्रकाश में शाश्वत और अनन्त जीवन की यात्रा पूरी करते रहते हैं। उड़िया बाबा ने आत्मा के रस और परमात्मा के आनन्द की समन्वय-भूमि पर स्वरूप का साक्षात्कार किया, वे निस्सन्देह उच्चकोटि के सिद्ध सन्त थे। उन्होंने अपने दिव्य जीवन में तप, भक्ति और ज्ञान तीनों का महत्व समान रूप से स्वीकार किया। वे आत्मानन्दी भगवद् रसिक सन्त थे। उन्होंने विक्रमीय सम्वत् की बीसवीं शताब्दी के वृन्दावन का अपनी उपस्थिति से तथा भक्ति और सिद्धि से अधिकाधिक शृंगार कर अगणित प्राणियों को दिव्य आत्मज्ञान प्रकाश में भगवद्रस का आस्वादन कराया—यह उनकी महत्ता अथवा ऐतिहासिकता है। उड़िया बाबा ने बीसवीं शताब्दी के भारत को कर्म, भक्ति और ज्ञान तीनों की आवश्यकता का ज्ञान कराया और उपदेश दिया कि जीवन का संयत क्रम तीनों के समन्वय से ही संतुलनात्मक कहा जा सकता है। उन्होंने कहा कि जीव संसार में भगवद्प्रेम की प्राप्ति के लिये आता है, प्रेम उसका स्वाभाविक अथवा सहज धर्म है, वह बिना प्रेम किये रह ही नहीं सकता है। प्रेमस्वरूप परमात्मा का साक्षात्कार ही भजन का लाभ है—यह उनका जगत के प्रति सन्देश था। संत उड़िया का प्राकट्य परम पवित्र भागवत कुल में हुआ था। लगभग पांच सौ साल पहले की बात है। चैतन्य महाप्रभु के अनन्य प्रेमी और भगवद्भक्ति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के रसिक महाराजा गजपति प्रताप रुद्र उड़ीसा प्रान्त के एकच्छत्र अधिपति थे। उनके कुल गुरु काशीमिश्र परम भागवत थे। काशी मिश्र का परिवार उड़ीसा प्रान्त में परम पवित्र स्वीकार किया जाता था। इस परिवार के लोग सदा नंगेपाव रहते थे और बैलगाड़ी का यात्रा में उपयोग नहीं करते थे। काशी मिश्र के वैष्णव कुल पर कुछ दिनों के बाद शाक्त मत का रंग चढ़ गया। इसी वंश में अभी सौ साल पहले वैद्यनाथ मिश्र का जन्म हुआ। वे बड़े धर्मनिष्ठ और महान भगवद्भक्त थे। उनकी पत्नी लक्ष्मी देवी बड़ी सती-साध्वीं थीं। दोनों की उपस्थिति से घर में भगवद्भक्ति लहलहा उठी। सम्वत् १९३२ वि. के भादों मास में कृष्णाष्टमी को भगवान कृष्ण का जन्मोत्सव मिश्र दम्पति धूमधाम से मना रहे थे, उसी परम पवित्र शुभ अवसर पर लक्ष्मीदेवी ने एक पुत्र को जन्म दिया; उत्सव के सौन्दर्य में पुत्र-प्राप्ति से दिव्य अभिवृद्धि हो उठी। सन्त उड़िया बाबा के प्राकट्य की यही ऐतिहासिकता है। तीन ही दिनों के बाद उड़िया बाबा की माता भक्तिमती लक्ष्मीदेवी ने स्वर्ग-यात्रा की। पिता वैद्यनाथ मिश्र ने पुत्र का नाम आर्तत्राण मिश्र रखा। उनके छोटे भाई प्रभाकर मिश्र की पत्नी ने आर्तत्राण (उड़िया बाबा) का बड़े प्रेम से माता के ही समान पालन-पोषण किया तथा वात्सल्यरस का आस्वादन किया। आर्तत्राण मिश्र का बाल-सौन्दर्य विलक्षण था, वे देखने में तपस्वी-से लगते थे, प्रायः उनकी आँखें बन्द रहती थीं, स्वभाव गम्भीर और शान्त था। लोग उनको देखते ही मुग्ध हो जाते थे और उनके स्पर्शमात्र से ब्रह्मानन्द का अनुभव करते थे। उनका बचपन नितान्त दिव्य था।

जब वे चार साल, चार मास और चार दिन के हुए, उनका उपनयन संस्कार सम्पन्न हुआ। वे बड़े प्रतिभाशाली थे। एक गणक ने घर ही पर उन्हें शिक्षा देना आरम्भ किया। वे उड़िया भाषा, संस्कृत और गणित में पारंगत हो गये। बारह साल की अवस्था में शिक्षा-प्राप्ति के लिये वे बालेश्वर होते हुए मयूरभंज आये। मयूरभंज में एक संस्कृत पाठशाला थी। उसके आचार्य पद्मनाभाचार्य वैद्यनाथ मिश्र के पूर्व परिचित थे। आर्तत्राण मिश्र (उड़िया बाबा) ने पाठशाला में प्रवेश तो किया पर उनके मन में यह आशंका बनी रहती थी कि ऐसा न हो कि आचार्य महोदय मेरे पिता को सूचित कर दें। उन्हें मयूरभंज छोड़ना पड़ा। वे बाल्याबेड़ा चले आये। राजाकृष्णचन्द्र के विद्यालय में उन्होंने अध्ययन आरम्भ किया और काव्यतीर्थ की योग्यता शीघ्र ही प्राप्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कर ली। वाल्याबेड़ा की एक घटना से उनका जीवन बदल गया, उन्होंने वैराग्य के साम्राज्य में प्रवेश किया। राजा कृष्णचन्द्र वैष्णव थे। उनके आराध्य भगवान गोपीनाथ थे। गोपीनाथ के मन्दिर में प्रत्येक वर्ष कार्तिक शुक्ल नवमी से पूर्णिमा तक उत्सव हुआ करता था। जिस समय आर्तत्राण वाल्याबेड़ा में उपस्थित थे उस समय उत्सव में सम्मिलित होने के लिये कलकत्ते से बाल-संगीत नाम की एक मण्डली का आगमन हुआ था। मण्डली भगवान कृष्ण की लीला कर रही थी, ब्रह्मा द्वारा गोप-वत्साहरण का प्रसंग प्रस्तुत किया जा रहा था। आर्तत्राण मिश्र तल्लीन होकर ब्रह्मामोह की लीला देख रहे थे। उनके रोम-रोम में दिव्यता का सागर लहरा उठा, वे बाह्य ज्ञान से शून्य हो गये। जन्म-जन्म के दिव्य संस्कार जाग उठे, भगवत्सम्बन्ध का परिज्ञान हो गया। वे अपने निवास-स्थान पर आये। तीन दिन-तीन रात तक वे भगवल्लीला-चिंतन में लीन रहे। सात्विक भावों के राज्य में विचरते रहे। प्रकृतिस्थ होने पर हृदय ने वैराग्य के अभय पद की खोज की। सत्यान्वेषण और आत्मसाक्षात्कार के लिये वे कटिबद्ध हो गये। अध्ययन समाप्त कर वे घर आये। अदृश्य दिव्य शक्तियों में दिन-प्रति-दिन उनका विश्वास बढ़ता गया। साधु-सन्तों की सेवा और लोकहित तथा शुभ कर्मों की ओर उनका ध्यान आकृष्ट हो गया। जागतिक सुख की नश्वरता तथा सम्बन्ध की अनित्यता उन्हें अपने माया-जाल से न पकड़ सकी। जब वे केवल उन्नीस साल के थे, उड़ीसा प्रान्त में भीषण अकाल पड़ा। लोगों को भूखे मरते देख कर आर्तत्राण मिश्र—उड़िया बाबा का हृदय हाहाकार कर उठा। उन्होंने सोचा कि लोगों को इस भयंकर दुख से मुक्त करने का उपाय केवल एक है कि भगवती कामाख्या के मन्दिर में मन्त्रानुष्ठान किया जाय, इससे देवी प्रसन्न होंगी और लोगों का दुख दूर होगा। वे घर से एक धोती, लोटा और ग्यारह रूपये लेकर (गोहाटी) कामाख्या देवी के मन्दिर के लिये चल पड़े। उन्होंने देवी के दरवाजे पर मन्त्रानुष्ठान किया। इस प्रकार उनके कोमल हृदय में लोकहित की भावना जाग उठी। देवी ने स्वप्न में दर्शन दिया। इसी समय उन्हें पूर्णगिरि नामक एक महात्मा का सत्संग-लाभ हुआ। उनसे उन्होंने शंकराचार्यकृत विवेकचूड़ामणि की व्याख्या सुनी। वेदान्तवेद्य ब्रह्मानन्द रस में उनका मन मग्न हो गया। कुछ दिनों तक मयूरभंज में ठहर कर वे काशी चले आये। मणिकर्णिका घाट के सन्निकट एक छोटी-सी गुफा में निवास कर वे भगवद् भजन और तप करने लगे। वैराग्य का रसास्वादन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ही उनके तप का प्रधान अंग बन गया। अन्नपूर्णा और विश्वनाथ का दर्शन करना ही उनके जीवन का आधार हो गया। उनकी भाषा लोग समझ नहीं पाते थे। उन्होंने अयाचक वृत्ति से तप करना आरंभ किया। तीन दिन-तीन रात तक बिना अन्न जल के ही रह गये, चौथे दिन स्नान करने निकले तो एक स्त्री ने पंचामृत-पान कराया, उसके बाद उन्होंने विश्वनाथ का दर्शन किया। काशी से वे वैद्यनाथ धाम आये, उन्होंने सरस्वती सिद्ध करने का संकल्प किया; बाद में विचार किया कि सरस्वती के सिद्ध होने का फल है तो पाण्डित्य की वृद्धि ही, मैंने तो तत्वज्ञान के लिये, परमात्मा की प्राप्ति के लिये तप का व्रत लिया है। वे आत्मान्वेषण में लग गये। सांसारिक सम्बन्ध और विषय में उनकी अनासक्ति बढ़ती गयी; ज्यों-ज्यों मन में वैराग्य का उदय होता गया, त्यों-त्यों संसार का नश्वर रूप सामने प्रकट होता गया।

वे गुरु की खोज में लग गये। वैद्यनाथ धाम से घर आये पर अधिक दिनों तक ठहर न सके। घर से वे पुरी आये। पुरी में गोवर्धन मठ के शंकराचार्य मधुसूदन तीर्थ से दीक्षा ली, आर्तत्राण से उनका नाम चेतनानन्द हो गया। सिद्ध गुरु की खोज में उन्होंने बड़पेटा की यात्रा की। बड़पेटा में कालियकान्त का मन्दिर है, नगर के बाहर शिवालय है, इस पवित्र नगर में मन्दिर के ब्रह्मचारी महन्त की सेवा की। महन्त के देहावसान के बाद उन्हें मन्दिर का उत्तराधिकार प्राप्त हुआ। उन्हें वाक्सिद्धि प्राप्त हो गयी। लोग दूर-दूर से उनका दर्शन करने आते थे, नैष्ठिक ब्रह्मचर्य से परिदीप्त मुखमण्डल की आभा से मुग्ध होकर असंख्य प्राणी उनके चरणों में नत होने लगे। पर चेतनानन्द-उड़िया बाबा के लिये मान-सम्मान कण्टक के समान खटकने लगे। महन्त के शिष्य के लौटने पर उन्होंने अपने पद का उत्तरदायित्व उसके कन्धों पर रख दिया, केवल पन्द्रह रुपये लेकर सिद्ध गुरु की खोज में निकल पड़े। सारे भारत की तीर्थयात्रा का निश्चय किया पर दैवयोग से वे पुरी आये। इस समय उनकी अवस्था बत्तीस साल की थी। उन्होंने गोवर्धन मठ के शंकराचार्य से संन्यास-दीक्षा लेने का निश्चय किया। गोवर्धन मठाधीश्वर ने उन्हें संन्यास की दीक्षा दी और चेतनानन्द से उनका नाम पूर्णानन्द तीर्थ रख दिया। धीरे-धीरे एक संन्यासी के रूप में पूर्णानन्द तीर्थ की ख्याति बढ़ने लगी, वे उड़िया बाबा के नाम से प्रसिद्ध हुए। उड़िया बाबा के पूर्वाश्रम की यही ऐतिहासिकता है।

पुरी से उन्होंने पूर्ण तपोमय जीवन में प्रवेश करने के लिये यात्रा आरम्भ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

की। उन्होंने आत्मज्ञान और सच्चिदानन्द के रसास्वादन के लिये अखण्ड त्याग का वरण कर लिया। पुरी से काशी के लिये प्रस्थान करते समय उड़िया बाबा ने संन्यास का दण्ड समुद्र में फेंक दिया। रेल गाड़ी से काशी की यात्रा की। रास्ते में एक घटनाने उनके संन्यस्त जीवन में विशेष रूपान्तर प्रस्तुत किया। रेल गाड़ी सावेग काशी की ओर बढ़ रही थी। रात का समय था। उड़िया बाबा की आँख लग गयी। वे गाड़ी बदल न सके। काशी के बदले छपरा पहुँच गये। टिकट-निरीक्षक ने उन्हें गाड़ी से उतार दिया। छपरा में उड़िया बाबा ने घाघरा में स्नान किया और पैदल चलने का व्रत लिया, संकल्प किया कि वाहन पर कभी नहीं बैठूँगा। काशी पहुँचने पर उन्होंने चार मील की दूरी पर कुछ सन्तों के सम्पर्क में चारमास के निवास का व्रत निबाहा, सामान नाम की उनके पास कोई वस्तु नहीं थी, केवल कम्बल लपेटे एक गुफा में पड़े रहते थे। गंगा तट पर विचरण करते-करते वे प्रयाग गये, प्रयाग में कुछ समय तक रह कर आगे बढ़ने का निश्चय किया।... फतहपुर पहुँचने पर शाम हो गयी थी। आसमान लाल हो गया था। सूर्य अस्त हो चुके थे। भगवती भागीरथी का जल सरस कलख उत्पन्न कर रहा था। उन्होंने शाश्वत शान्ति की प्राप्ति के लिये गंगामाता की गोद में ही निवास करने का विचार किया, प्राण समर्पित करने का निश्चय किया। चादर और तूम्बा अलग रख कर गंगा की स्वच्छ गोद में आत्मार्पण करने ही वाले थे कि उनका अन्तरदेश दिव्य ज्योति से भर उठा, रोम-रोम में सच्चिदानन्द की रमणीयता समा गयी। एक रहस्यमयी चेतना ने उनके मन पर प्रभाव डाला कि इस प्रकार प्राण समर्पित करने से तत्व का साक्षात्कार नहीं हो सकता है। थोड़ी दूर पर गंगा-तट पर ही एक शिवालय था। उड़िया बाबा ने शिवालय में प्रवेश किया। उन्हें उसमें दो परमहंसों का सत्संग प्राप्त हुआ; गंगा माता और भगवान शिव की कृपा-ज्योति में उन्हें आत्मज्ञान मिल गया, सच्चिदानन्द का ज्ञान हो गया। उन्हें सत्स्वरूप आत्मा की सत्ता में परमात्मा के अभय पद का दर्शन हुआ।... उन्होंने यात्रा का क्रम अक्षुण्ण रखा, कानपुर और बिठूर होते हुए बरुआ घाट आये, ज्ञानाश्रम नामक एक संन्यासी से सत्संग हुआ। ... फरूखाबाद से आगे बढ़ने पर शाम हो गयी थी, नहर के किनारे-किनारे उड़िया बाबा गंगातट की यात्रा पूरी कर रहे थे। चारों ओर चाँदनी फैली हुई थी, निर्जनता का एकच्छत्र साम्राज्य फैला हुआ था। भूख से शरीर शिथिल था। दो लड़के दीख पड़े।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उन्होंने उड़िया बाबा को अपने घर से रोटी और केले का शाक लाकर भोजन कराया। उड़िया स्वामी ने मोहनपुर तथा कासगंज होते हुए रामघाट और अनूप शहर के बीच के गंगा तटीय प्रदेश को अपनी तपस्या का स्थान चुना। वे दस साल तप करते रहे। दिन में जंगलों और झाड़ियों में छिप कर भगवान का भजन किया करते थे। प्रेमियों तथा भक्तों की संख्या बढ़ती गयी। हरिबाबा से उनका सम्पर्क हुआ। महात्मा हीरादास से सत्संग हुआ। ब्रह्मसाक्षात्कार हुआ, उनकी अन्तर्मुखी वृत्ति बढ़ने लगी।.... उन्होंने गंगातट का वास नहीं छोड़ा। वे ऋषिकेश और लक्ष्मण झूला गये। इस प्रकार जीवन का एक बहुत बड़ा भाग उन्होंने भागीरथी के तट पर विचरण करते-करते तपोमय बना डाला। तप और आत्मज्ञान से समृद्ध होने पर हृदय भगवान के भक्तिराज्य में प्रवेश करने के लिये समुत्सुक हो उठा। एक बार उत्तराखण्डनिवास-काल में उन्होंने विचित्र स्वप्न देखा कि वे गंगा तट पर एक रेती में विश्राम कर रहे हैं। दोपहर का समय है। भिक्षा मांगने एक नगर में गये। वह नगर परम दिव्य है, उसमें रजत गृह हैं तथा दरवाजे सोने के हैं; एक दरवाजे पर उनके 'नारायण' शब्द-उच्चारण से एक देवांगना सोने की थाली में भिक्षा लेकर उपस्थित होती है, भोजन करने के लिये भीतर प्रवेश करने की प्रार्थना करती है, वे बाहर से ही भिक्षा लेकर आगे बढ़ते हैं। प्रत्येक द्वार पर उन्होंने दिव्यांगना का दर्शन करने पर रोना आरम्भ किया है। आँख खुलने पर उन्होंने देखा कि गुदड़ी रोते-रोते भीग गयी है। उन्होंने प्रभु की माया को नमस्कार किया, सदा के लिये विदा ली और उत्तराखण्ड से नन्दनन्दन के भक्ति-साम्राज्य-वृन्दावन में प्रवेश किया। वेदान्तवेद्य रस-ब्रह्म श्रीकृष्ण के व्रजरस की अनभूति में अद्वैतानन्द का दर्शन करने के लिये उन्होंने तप और ज्ञान के प्रकाश में विश्वास और श्रद्धापूर्वक भक्ति का प्रश्रय लिया, यही उनके वृन्दावन-आगमन की मौलिकता अथवा अलौकिकता है। वृन्दावन में संत रामकृष्णदास से उनकी भेंट हुई। भक्तों और शिष्यों ने उड़िया बाबा के व्रज-निवास को अपना परम सौभाग्य समझा। समय-समय पर हरिबाबा उनसे मिलने आया करते थे। दोनों का योग रस और ज्ञान का समन्वय-प्रतीक था। उड़िया बाबा का आश्रम भगवन्नाम-संकीर्तन और भगवान की लीला-माधुरी से सम्पन्न हो उठा। रसिकों और भक्तों की भीड़ सदा लगी रहती थी। उड़िया बाबा की इस उपासना और ज्ञान-ज्योति से वृन्दावन के कण-कण में नवीन प्राण आ गया। उन्होंने व्रज से प्रयाग, काशी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और अयोध्या तथा कर्णवास की यात्रा की। उसके बाद व्रज चले आये। व्रज में उनकी कृपा और भक्तों के परिश्रम से 'श्रीकृष्णाश्रम' की स्थापना हुई। उड़िया बाबा की उपस्थिति से रातदिन कृष्णाश्रम में भक्तिरस मूर्तिमान होकर निवास करने लगा, भगवद्कथा, संकीर्तन और रास-लीला से सारा वातावरण पवित्र हो उठा।

सन्त उड़िया बाबा शांकर मत के संन्यासी थे पर किसी अन्य सम्प्रदाय या सिद्धान्त के प्रति उनके मन में रंचमात्र भी द्वेष न था। वे सत्यतत्व के रसिक थे। सत्य का रसीकरण ही उनका जीवन-सिद्धान्त था। आजीवन तप, उपासना और ज्ञान के सहारे उन्होंने सत्य के अनन्त रस का साक्षात्कार किया। सत्य की प्राप्ति में ही उन्होंने भगवद्प्राप्ति स्वीकार की; सत्य-दर्शन ही उनके भगवच्चिंतन का स्वरूप स्वीकार किया जा सकता है। भगवन्नाम में उनकी असाधारण निष्ठा थी, अटल विश्वास था। उन्होंने निष्पक्ष होकर सत्य के भगवत्स्वरूप का प्रतिपादन किया। भगवान की प्राप्ति का एक मात्र उपाय सत्य ही है— ऐसी उनकी दृढ़ मान्यता ही नहीं जानकारी भी थी। उन्होंने साधना के क्षेत्र में कहा कि जीव निर्बल है, भगवान सर्वसमर्थ हैं, सबल हैं, उनके प्रश्रय और भक्ति से ही जीव की निर्बलता का अन्त होता है। इसी लिये उन्हीं का प्रश्रय ग्रहण करना चाहिये। उन्होंने सावधान किया कि केवल भगवान को ही चाहना निष्काम भक्ति है, भगवान से अन्य वस्तु चाहना सकाम भक्ति है। भोगों की चाह सकामता है, भगवान की चाह निष्कामता है। उन्होंने बताया कि मन का स्वाभाविक धर्म उपासना है, वह बिना उपासना किये रह ही नहीं सकता है। यदि वह भगवान में नहीं लगता है तो कहीं-न-कहीं सांसारिक वस्तु और सम्बन्ध में आसक्त रहता ही है। किसी एक की उपासना में तो वह रहता ही है, इसलिए उचित यही है कि उसे भगवान की उपासना में लगा दिया जाय॥ उड़िया बाबा ने सत्संग को साधनामय जीवन में बड़ा महत्व दिया। उन्होंने कहा कि सत्संग करने से भगवान में प्रेम बढ़ता है, भक्ति बढ़ती है, रुचि भगवद्मयी हो जाती है। बीसवीं सदी के सन्त-साहित्य में उड़िया बाबा का परम पवित्र दिव्य गौरव अक्षुण्ण है। उन्होंने रस-भक्ति मार्ग और ज्ञानमार्ग वेदान्तमार्ग का तप के रंगमंच पर सरस समन्वय किया; सन्तमत के क्षेत्र में यह उनका बहुत बड़ा कार्य है। उन्होंने अपने उपदेशों और प्रवचनों में संसार की अनित्यता समझायी। भगवद्भक्ति को ही श्रेयस्कर घोषित किया और कहा कि भक्ति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उन्होंने उड़िया बाबा को अपने घर से रोटी और केले का शाक लाकर भोजन कराया। उड़िया स्वामी ने मोहनपुर तथा कासगंज होते हुए रामघाट और अनूप शहर के बीच के गंगा तटीय प्रदेश को अपनी तपस्या का स्थान चुना। वे दस साल तप करते रहे। दिन में जंगलों और झाड़ियों में छिप कर भगवान का भजन किया करते थे। प्रेमियों तथा भक्तों की संख्या बढ़ती गयी। हरिबाबा से उनका सम्पर्क हुआ। महात्मा हीरादास से सत्संग हुआ। ब्रह्मसाक्षात्कार हुआ, उनकी अन्तर्मुखी वृत्ति बढ़ने लगी।.... उन्होंने गंगातट का वास नहीं छोड़ा। वे ऋषिकेश और लक्ष्मण झूला गये। इस प्रकार जीवन का एक बहुत बड़ा भाग उन्होंने भागीरथी के तट पर विचरण करते-करते तपोमय बना डाला। तप और आत्मज्ञान से समृद्ध होने पर हृदय भगवान के भक्तिराज्य में प्रवेश करने के लिये समुत्सुक हो उठा। एक बार उत्तराखण्डनिवास-काल में उन्होंने विचित्र स्वप्न देखा कि वे गंगा तट पर एक रेती में विश्राम कर रहे हैं। दोपहर का समय है। भिक्षा मांगने एक नगर में गये। वह नगर परम दिव्य है, उसमें रजत गृह हैं तथा दरवाजे सोने के हैं; एक दरवाजे पर उनके 'नारायण' शब्द-उच्चारण से एक देवांगना सोने की थाली में भिक्षा लेकर उपस्थित होती है, भोजन करने के लिये भीतर प्रवेश करने की प्रार्थना करती है, वे बाहर से ही भिक्षा लेकर आगे बढ़ते हैं। प्रत्येक द्वार पर उन्होंने दिव्यांगना का दर्शन करने पर रोना आरम्भ किया है। आँख खुलने पर उन्होंने देखा कि गुदड़ी रोते-रोते भीग गयी है। उन्होंने प्रभु की माया को नमस्कार किया, सदा के लिये विदा ली और उत्तराखण्ड से नन्दनन्दन के भक्ति-साम्राज्य-वृन्दावन में प्रवेश किया। वेदान्तवेद्य रस-ब्रह्म श्रीकृष्ण के व्रजरस की अनभूति में अद्वैतानन्द का दर्शन करने के लिये उन्होंने तप और ज्ञान के प्रकाश में विश्वास और श्रद्धापूर्वक भक्ति का प्रश्रय लिया, यही उनके वृन्दावन-आगमन की मौलिकता अथवा अलौकिकता है। वृन्दावन में संत रामकृष्णदास से उनकी भेंट हुई। भक्तों और शिष्यों ने उड़िया बाबा के व्रज-निवास को अपना परम सौभाग्य समझा। समय-समय पर हरिबाबा उनसे मिलने आया करते थे। दोनों का योग रस और ज्ञान का समन्वय-प्रतीक था। उड़िया बाबा का आश्रम भगवन्नाम-संकीर्तन और भगवान की लीला-माधुरी से सम्पन्न हो उठा। रसिकों और भक्तों की भीड़ सदा लगी रहती थी। उड़िया बाबा की इस उपासना और ज्ञान-ज्योति से वृन्दावन के कण-कण में नवीन प्राण आ गया। उन्होंने व्रज से प्रयाग, काशी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और अयोध्या तथा कर्णवास की यात्रा की। उसके बाद व्रज चले आये। व्रज में उनकी कृपा और भक्तों के परिश्रम से 'श्रीकृष्णाश्रम' की स्थापना हुई। उड़िया बाबा की उपस्थिति से रातदिन कृष्णाश्रम में भक्तिरस मूर्तिमान होकर निवास करने लगा, भगवद्कथा, संकीर्तन और रास-लीला से सारा वातावरण पवित्र हो उठा।

सन्त उड़िया बाबा शांकर मत के संन्यासी थे पर किसी अन्य सम्प्रदाय या सिद्धान्त के प्रति उनके मन में रंचमात्र भी द्वेष न था। वे सत्यतत्व के रसिक थे। सत्य का रसीकरण ही उनका जीवन-सिद्धान्त था। आजीवन तप, उपासना और ज्ञान के सहारे उन्होंने सत्य के अनन्त रस का साक्षात्कार किया। सत्य की प्राप्ति में ही उन्होंने भगवद्प्राप्ति स्वीकार की; सत्य-दर्शन ही उनके भगवच्चिंतन का स्वरूप स्वीकार किया जा सकता है। भगवन्नाम में उनकी असाधारण निष्ठा थी, अटल विश्वास था। उन्होंने निष्पक्ष होकर सत्य के भगवत्स्वरूप का प्रतिपादन किया। भगवान की प्राप्ति का एक मात्र उपाय सत्य ही है— ऐसी उनकी दृढ़ मान्यता ही नहीं जानकारी भी थी। उन्होंने साधना के क्षेत्र में कहा कि जीव निर्बल है, भगवान सर्वसमर्थ हैं, सबल हैं, उनके प्रश्रय और भक्ति से ही जीव की निर्बलता का अन्त होता है। इसी लिये उन्हीं का प्रश्रय ग्रहण करना चाहिये। उन्होंने सावधान किया कि केवल भगवान को ही चाहना निष्काम भक्ति है, भगवान से अन्य वस्तु चाहना सकाम भक्ति है। भोगों की चाह सकामता है, भगवान की चाह निष्कामता है। उन्होंने बताया कि मन का स्वाभाविक धर्म उपासना है, वह बिना उपासना किये रह ही नहीं सकता है। यदि वह भगवान में नहीं लगता है तो कहीं-न-कहीं सांसारिक वस्तु और सम्बन्ध में आसक्त रहता ही है। किसी एक की उपासना में तो वह रहता ही है; इसलिए उचित यही है कि उसे भगवान की उपासना में लगा दिया जाय॥ उड़िया बाबा ने सत्संग को साधनामय जीवन में बड़ा महत्व दिया। उन्होंने कहा कि सत्संग करने से भगवान में प्रेम बढ़ता है, भक्ति बढ़ती है, रुचि भगवद्मयी हो जाती है। बीसवीं सदी के सन्त-साहित्य में उड़िया बाबा का परम पवित्र दिव्य गौरव अक्षुण्ण है। उन्होंने रस-भक्ति मार्ग और ज्ञानमार्ग वेदान्तमार्ग का तप के रंगमंच पर सरस समन्वय किया; सन्तमत के क्षेत्र में यह उनका बहुत बड़ा कार्य है। उन्होंने अपने उपदेशों और प्रवचनों में संसार की अनित्यता समझायी। भगवद्भक्ति को ही श्रेयस्कर घोषित किया और कहा कि भक्ति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

से अच्छा और कोई मार्ग नहीं है, जिसका हृदय कोमल है वही भक्ति का अधिकारी है, कठोर हृदय वाले तार्किक व्यक्ति के लिये ज्ञान मार्ग ही उपादेय है। भगवान वाञ्छाकल्पतरु हैं। भगवान भक्त के पीछे प्रेमवश घूमते रहते हैं, भक्त की इच्छा के अधीनं रहते हैं—यह निष्काम भक्ति की महिमा है।

सन्त उड़िया बाबा बड़े क्षमाशील, दयालु और उदार थे। सिद्धियाँ उनके चरणों की दासी थीं। कभी-कभी हरिबाबा उनसे मिलने आया करते थे। हरिबाबा के ही नाते माता आनन्दमयी से भी उड़िया बाबा की भेंट होती रहती थी। सम्वत् २००४ वि. की बात है। हरिबाबा ने होली का रंगोत्सव बड़ी धूम-धाम से मनाने का निश्चय किया। अनूपशहर वाले बाँध पर आनन्दमयी भी उत्सव में सम्मिलित होने के लिये पहुँच गयी थीं। पर उड़िया बाबा स्वास्थ्य अच्छा न होने के कारण नहीं जा सके। हरिबाबा और आनन्दमयीने उन्हें ले जाने के लिये मोटर से वृन्दावन की यात्रा की। हरिबाबा ने उड़िया बाबा से कहा कि मैं आप को मोटर से उत्सव में ले चलूंगा। सन्त उड़िया मौन थे। उनका सवारी पर बैठने का नियम नहीं था। उड़िया महाराज ने प्रेम के सम्मुख रुग्णावस्था में भी नियम तोड़ दिया। वे रात को चुपके से बिना हरिबाबा या अन्य किसी को बताये ही मोटर से उत्सव स्थल पर पहुँच गये। धूमधाम से सन्त उड़िया की उपस्थिति में रंगोत्सव सम्पन्न हुआ।

उत्सव से लौटने पर अस्वस्थ दशा में ही उड़िया महाराज ने रासलीला मण्डली के साथ पंजाब-भ्रमण की योजना बनायी। सवारी का नियम टूट चुका था इसलिये यात्रा सुगमता से पूरी हो सकी। स्थान-स्थान पर परम पवित्र रासलीला के द्वारा महाराज ने कृष्णभक्ति का प्रचार किया। वे लीलारसिक सन्त थे। वृन्दावन लौटने पर उनका स्वास्थ्य नित्यप्रति गिरता ही गया। सन्त उड़िया का चैतन्य महाप्रभु की जीवनलीला के प्रति बड़ा अनुराग था। हरिबाबा के सान्निध्य में बड़ी धूमधाम से उड़िया महाराज के पंजाब से लौटने पर चैतन्य महाप्रभु का जन्मोत्सव मनाया गया।

सन्त उड़िया बाबा ने सम्वत् २००४ वि. की चैतकृष्ण चतुर्दशी को महाप्रस्थान किया। उनके ब्रह्मलीन होने की घटना अमित करुणापूर्ण है। आश्रम में बहुत दिनों से एक अर्द्ध विक्षिप्त अहीर रहता था। वह बाबा से चिढ़ा-चिढ़ा-सा रहता था। अन्तिम दिन सोमवार को प्रभात में बाबा ने गीता के कुछ श्लोकों की व्याख्या की। दोपहर को स्नान के बाद अपने शिष्य प्रबोधा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नन्द से कहा कि सामने वृक्ष पर गृद्ध बैठा है। ऐसा लगता है कि इस स्थान पर श्मशान बनेगा। सन्त की वाणी का रहस्य सन्त ही जानते हैं। बाबाने कथा-मण्डप में प्रवेश किया। रामायण का गान हो रहा था। उड़िया बाबा समाधिस्थ थे। थोड़ी ही देर में अर्द्ध–विक्षिप्त अहीर ठाकुरदास उस स्थल पर आ पहुँचा। उसके हाथ में गड़ासा था। किसे पता था कि वह बाबा के कालरूप में उपस्थित हुआ है ? उसने अचानक बाबा के सिर पर गड़ासे से प्रहार किया। बाबा के प्राण निकल गये। यमुना के जल में उन्हें समाधि दी गयी। इस प्रकार सन्त उड़िया के नश्वर शरीर ने अपना अवसान देखा। उड़िया बाबा की साधुता उच्च कोटि की थी। उन्होंने अपने जीवन का प्रत्येक क्षण सत्य के प्रकाश में बिताया, उनका प्रत्येक आचरण सत्य और शास्त्रसम्मत धर्म से प्राणान्वित था, वे असाधारण महात्मा थे।

रचना

उनके अनेकानेक उपदेशों की मुद्रित पुस्तकों के रूप में प्राप्ति होती है। सन्त उड़िया के उपदेश और वचन आदि उनकी अमर कीर्ति के रूप में आरक्षित हैं।

वाणी

महात्मा के दर्शन से पाप टल जाते हैं। यह तो साधारण फल है। मुख्य फल तो यह है कि महात्मा का दर्शन करके दर्शक महात्मा हो जाता है।

दरिद्र वही है जो विषयासक्त है और धनी वही है जिसे दुनिया की किसी भी वस्तु की इच्छा नहीं है। संसार के वस्तुओं की इच्छा छोड़ कर सब कुछ सहनेवाला ही महात्मा है–महापुरुष है।

सत्य ही भगवान है। सत्य रूप भगवान की प्राप्ति सत्यरूप साधन से ही होती है। नित्य ही सत्य है और निःस्वार्थता ही नित्यता और अहिंसा है। स्वार्थ अनित्य होता है और वही हिंसा भी है। इसका साधन एक ही है और उसी से दैवी सम्पत्ति आ जाती है–वह यह है कि ऐसा भाषण करे कि किसी का चित्त न दुखे।

भजन न करने से विषयों की प्राप्ति होगी। विषय अनित्य हैं इसलिये नाश होने पर उनके कारण दुःख होगा। हम अवगुणी हैं, दीन और दुखी हैं– ऐसी भावना दूर करने के लिये भजन की आवश्यकता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भगवान कल्पवृक्ष हैं। जो जिस इच्छा से उनके पास जाता है उसे वही मिलता है। जीव की स्वाभाविक चाह है कि मैं सदा सुखी रहूँ—वह जितना ही अधर्म से डरेगा उतना ही भगवत्सुख बढ़ेगा।

भक्तों के लिये प्रारब्ध नाम की कोई वस्तु नहीं है। वह तो ज्ञानियों के लिये है। जिनका भगवन्नाम से सम्बन्ध हो गया उनका प्रारब्ध क्या कर सकता है?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महर्षि रमण

इहैव सन्तोऽथ विद्मस्तद्वयं न चेदवेदिर्महती विनष्टिः।
ये तद्विदुरमृतास्ते भवन्त्यथे तरे दुःख मेवापियन्ति॥

हम इस शरीर में रहते हुए ही यदि उसे (आत्मा) जान लेते हैं तो कृतार्थ हो गये। यदि उसे नहीं जाना तो बड़ी हानि है। जो उसे जान लेते हैं वे अमृत हो जाते हैं, यह दूसरे लोग तो दुःख को ही प्राप्त होते हैं।

—बृहदारण्यक उपनिषद् ।४।४।१४

महर्षि रमण औपनिषद आत्मयोगी थे, आत्मज्ञ थे। वे अरुणाचल के दिव्य रूप थे। वे समस्त जगत के थे और समस्त जगत की आत्मचेतना—परम सत्ता उनमें अभिव्यक्त थी, परिव्याप्त थी। उन्होंने माया-मोह के अन्धकार से आतंकित और जड़-विज्ञान से उत्पीड़ित शरीरी को—प्राणी को आत्मदान दिया। वे श्रद्धा और भक्ति के अरुणाचल थे, दिव्य आत्मगत सिन्दूर थे। रमण महर्षि ने आजीवन असंग-अखण्ड आत्मारमण का रसास्वादन किया। सुन्दरानन्द स्वामी के शब्दों में रमण मुनिवर जीवन्मुक्त और स्वात्मनिष्ठा-धुरीण थे। दक्षिण भारत के एकान्त अरुणाचल प्रदेश में असंख्य शिष्यों और प्राणियों ने उनके चरण पर नतमस्तक होकर अमित श्रद्धा प्रकट की। वे परम सिद्ध और भुक्ति-मुक्ति प्रदाता थे। योगिराज थे। वे शान्ति की मौन भाषा थे, शाश्वत और अविनश्वर आत्म-प्रतीक थे। उन्होंने अपने तपोमय जीवन में सिद्ध किया कि मौन की भाषा—शान्तिमयी वाणी में जो सक्रियता और शक्ति है वह भाषणप्रवचन में कदापि नहीं है। उनका आत्मदर्शन सर्वदर्शन है, उन्होंने कहा कि शरीर और आत्मा के मध्य में 'अहम्' एक गाँठ है।.. रमणाश्रम सांसारिकता के मरुस्थल का मरूद्यान है। उसमें प्रवेश करने पर प्राण शीतल, शान्त और तृप्त हो जाता है। महामहोपाध्याय महाकवि लक्ष्मण सूरि की वाणी की प्रणति है — वन्दना है महर्षि के प्रति :

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वन्देऽरुणगिरिशिखरे द्वितीयमरुणाचलेशमिव भान्तम्
आनन्दतुन्दिलं श्रीरमण-महर्षीन्द्र योगीन्द्रम् ॥

उनके स्तवन और महिमा-चिंतन में समस्त विश्व की श्रद्धा आत्मा के स्तर पर सफल हो उठी। रमण महर्षि ने आत्मा की स्थिति स्वीकार की। उन्होंने कहा कि इस बात का विचार मत करो कि तुम मरने के बाद क्या होगे, समझना तो यह है कि तुम इस समय क्या हो। परमात्मा और आत्मा एक ही वस्तु तत्व के दो नाम हैं– रमण महर्षि ने इस तथ्य की परिपुष्टि की। रमण महर्षि की आत्मसाधना ने घोषणा की कि आत्मदर्शन और जीवन दोनों पर्याय हैं। वे रहस्यमयी चेतन शान्ति में सदा आत्मविभोर रहते थे। शाश्वत चिन्मय शान्ति ही उनकी परमात्मानुभूति–परमसत्ता की प्राप्ति की मूलभूमि स्वीकार की जाती है। वे लोक गुरु, सच्चिदानन्दमूर्ति, परम ज्योतिमयविज्ञानी महात्मा थे।

महर्षि रमण ने अरुणाचल की पौराणिक ऐतिहासिकता को प्राणान्वित किया। स्कन्द पुराण में वर्णित अरुणाचल–पृथ्वी का हृदय तथा समस्त तीर्थों का शिरोमणि स्वीकार किया गया है। महर्षि के श्वास-श्वास इसी चिन्मय अरुणाचल की पवित्र गोद में स्वस्थ थे। महर्षि की आत्मोपासना ने समस्त विश्व की चेतना को झंकृत किया, समस्त जगत के कर्मों में उन्होंने आत्मारमण-आत्मविलास की अनुभूति की। विक्रमीय बीसवीं शताब्दी की आध्यात्मिक विभूतियों में उनकी परिगणना बड़े सौभाग्य और महत्व की बात है। उन्होंने अपनी खोज की, वे शरीर नहीं–शरीरी थे, आत्मा के मानव रूप के मौलिक भाष्यकार अथवा व्याख्याकार थे, उन्होंने लोकजीवन को आत्मप्रकाश दिया। दक्षिण भारत के तमिल देश के मदुरा जनपद के तिरुचुषि ग्राम में एक साधारण पर अत्यन्त धर्मनिष्ठ ब्राह्मण परिवार में सम्वत् १९३६ वि. (सन् १८७९ ई., ३० दिसम्बर को एक बजे रात में) में महर्षि रमण का प्राकट्य हुआ था। उनके पवित्र जन्म से धरती पर आत्मा का पूर्ण प्रकाश उतर आया। उनके पिता सुन्दर अय्यर ने वेंकटरमण को मदुरा में लाकर पालन-पोषण किया। वे मदुरा में वकालत करते थे। महर्षि रमण–वेंकटरमण के बड़े भाई का नाम नांग स्वामी था। उनकी माता अपगम्माल बड़ी सती-साध्वी थीं। वेंकटरमण अपनी माता के साथ मन्दिर में देव-दर्शन करने जाया करते थे। बाल्यावस्था में उनकी शिक्षा का प्रबन्ध तिरुचुषि की पाठशाला में था, उसके बाद दिंडुक्कल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

में उन्होंने पाँचवीं कक्षा तक अध्ययन किया। मदुरा के स्मट्स माध्यमिक विद्यालय तथा एक अमेरीकी मिशन विद्यालय में उच्च शिक्षा की व्यवस्था की गयी। पढने-लिखने में उनका मन कम लगता था। वे शिक्षा के प्रति प्रायः उदासीन रहा करते थे। वेंकटरमण किसी गम्भीर चिन्तन में लीन रहते थे। वे देखने में बड़े सुन्दर और सौम्य तथा सुशील थे। लोग उन्हें देख कर मुग्ध हो जाते थे। वेंकटरमण ने बचपन में तिरसठ तमिल सन्तों (नायनारों) का जीवन-चरित्र पढ़ा। वे बहुत प्रभावित हुए। देव-मन्दिर में दर्शन करते समय भगवान से वर मांगा करते थे कि प्रभु, मेरा जीवन भी इन्हीं सन्तों के जीवन की तरह बना दीजिये। उनमें बचपन में ही वैराग्य की प्रवृति बढ़ने लगी। संसार के नश्वर रूप में उनकी तनिक भी आसक्ति नहीं रह गयी। उन्होंने आत्मोदय की स्वर्णिम किरणों की झाँकी देखी। 'पेरियपुराणम्' के पाठ से उनका जीवन ही बदल गया, तमिल सन्तों की चरित्र-माला उन्होंने अपने गले में डाली। जब वे केवल पन्द्रह साल के थे, एक दिन उनके घर पर एक अतिथि का आगमन हुआ। 'आप का आगमन कहाँ से हुआ है?' वेंकटरमण ने सम्मान प्रकट किया। 'अरुणाचल से', अतिथि के मुख से शब्द निकले ही थे कि वे किसी पूर्वजन्म के संस्कार के फलस्वरूप एक दिव्य चेतना से सम्पन्न हो उठे, उनके रोम-रोम विलक्षण आनन्द से सिहर उठे, श्वास वेग से चलने लगे। लोग उनकी दशा देख कर आश्चर्य चकित हो गये। अरुणाचलेश्वर शिव से उनका अविच्छिन्न शाश्वत आत्मसम्बन्ध था, इस बात की सत्यता इस घटना से प्रमाणित हो जाती है।

उन्होंने सत्तरह साल की अवस्था में मृत्यु के स्वरूप पर विचार किया और अमरता की—आत्म सत्ता की अनुभूति प्राप्त की। एक दिन वे अपने चाचा के घर की ऊपरी छत पर थे। पूर्ण स्वस्थ थे। अचानक उन्हें ऐसा लगा कि मृत्यु आ रही है। वे आतंकित हो उठे। गम्भीरतापूर्वक सोचने लगे कि मृत्यु शरीर की होती है या इसमें रहने वाले 'अहं' की। उन्होंने इस विषय में प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करना चाहा। वे छत पर उतान लेट गये, उन्होंने आराम से हाथ—पैर फैला दिये, शरीर के अंगों को शिथिल कर दिया। सोचने लगे-लोग थोड़ी देर के बाद मेरा मृत शरीर श्मशान ले जायेंगे। उसे जला कर राख कर देंगे; तो क्या शरीर के जल जाने पर इसमें निवास करने वाला 'मैं' भी जल जायेगा?' अन्तरात्मा ने उत्तर दिया 'नहीं, नहीं ऐसा कभी नहीं हो सकता।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मृत्यु शरीर को मार सकती है, 'अहं–मैं–आत्मा' अविनश्वर है, अमर है, मृत्यु की सीमा से बाहर है।' वे सावधान हो गये, मन-ही-मन सोचने लगे 'शरीर मर रहा है, मृत्यु आ रही है, वह मुझे दीख पड़ रही है–इसे देखने वाला 'मैं' निस्सन्देह अमर हैं।' अज्ञान-अन्धकार का नाश हो गया, अविद्या का अन्त हो गया। वेंकटरमण ने आत्मपरिचय प्राप्त किया। वे उठ बैठे। उन्होंने मृत्यु पर विजय पायी, शरीर में जकड़े आत्मा का मुक्ति-विधान मिल गया। वे सचेत हो गये इस महान घटना से। संसार के प्रति उदासीनता बढ़ने लगी। लोगों ने उनमें परिवर्तन देखा। पढ़ने-लिखने में उनकी तनिक भी रुचि नहीं रह गयी। वे अपनी खोज–आत्मान्वेषण के लिये विकल हो उठे। वे नियम-पूर्वक मन्दिर में जाकर शिवनटराज और मीनाक्षी से कृपा-याचना करने लगे, आत्माकी खोज के लिये सहायता मांगने लगे। उनका अन्तर क्षेत्र प्रकाशित हो उठा, वे आत्मा के उपासक बन गये।

गृहत्याग का समय आगया। अवस्था केवल सत्तरह साल की थी। एक दिन उन्हें अरुणाचल का स्मरण हो आया। उन्होंने अपने बड़े भाई नाग-स्वामी से कहा कि आज विद्यालय में विशेष कक्षा का आयोजन है, मुझे जाना है। नागस्वामी ने कहा कि पेटी में पांच रुपये हैं, उन्हें लेते जाओ, मेरी फीस जमा कर दो। वेंकटरमण ने सोचा कि साक्षात् अरुणाचलेश्वर ही मेरे मार्ग-व्यय की व्यवस्था कर रहे हैं, उन्होंने आवश्यकता के अनुसार तीन रुपये ले लिये और घर तथा संसार से अन्तिम विदा ली। जाते समय उन्होंने पत्र लिख दिया कि 'मैं परम पिता की खोज में' उन्हीं की आज्ञा से निकल चुका हूँ। यह शरीर सत्कार्य में ही प्रवेश कर रहा है। इस सम्बन्ध में कोई व्यर्थ की माथा-पच्ची न करे। न दुख माने।' पत्र पर नाम नहीं लिखा, नाम के प्रति वैराग्य हो गया, वे आत्मानुसंधान के लिये अनाम रूप से निकल पड़े। वे घर से सीधे रेलवे स्टेशन गये। गाड़ी विलम्ब से आयी। तिरुवण्णामलै पहुँचने के लिये निकटतम स्टेशन तिण्डिवनम था। सबेरा होते-होते गाड़ी विष्णुपुरम् पहुँची। अरुणाचल का पता लगाने के लिये वे नगर में गये। केवल दस पैसे पास थे। टिकट कटा कर अगले स्टेशन तक ही जा सके। शेष मार्ग पैदल चल कर पूरा किया। सूर्य अरुणाचल की ओर जा रहे थे। वे अरयणिनल्लूर पहुँचे। मन्दिर में देवदर्शन के लिये गये। उन्हें अद्भुत प्रकाश दीख पड़ा। उसे मूर्ति समझ कर वे गर्भ-गृह में गये।... इस प्रकार उन्होंने भागवती कृपा की ज्योति का दर्शन किया,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मन में विश्वास हो गया कि भगवान अरुणाचलेश्वर पद-पद पर सहायता कर रहे हैं। मन्दिर का पट बन्द होने वाला था। वे मन्दिर के बाहर आते ही ध्यानस्थ हो गये। उन्होंने पुजारी से भोजन माँगा। पुजारी ने अस्वीकार कर दिया। वे मन्दिर से लोगों के साथ किपूर गाँव आये।.. अन्न-जल के अभाव में भूख उन्हें जोरों से सता रही थी। एक परिवार की भागवत दम्पति ने दूसरे दिन उन्हें मिष्ठान्न खिलाया। उन्होंने चार रुपये में अपने कान की सोने की वाली गिरवी रखी। इस प्रकार वे १९५३ वि की भाद्र कृष्ण नवमीको प्रभातकाल में तिरुवण्णमलै पहुँच गये। रेल से उतरते ही वे सीधे भगवान अरुणाचलेश्वर के मन्दिर में उपस्थिति-निवेदन करने गये। उन्होंने परम ज्योति के सम्मुख श्रद्धा और भक्ति से नतमस्तक होकर कहा कि प्रभु, मेरी लाज आपके हाथ में है, मैं आप के पदपद्म में पूर्णरूप से आत्मार्पण करता हूँ। परमदेव, मुझे आत्मदान दीजिये। वे अपने परम पिता का दर्शन कर मन्दिर के बाहर आये। अयंकुलम तालाब पर जाकर उन्होंने शेष सामान तथा पैसे आदि फेंक दिये, कपड़े उतार कर कौपीन धारण कर लिया। वे पूरे अवधूत बन गये। वृष्टि हुई, ऐसा लगता था मानों प्रभु ने उनके स्नान के लिये जल के रूप में दया बरसायी। वे हजार खम्भेवाले मण्डप में जाकर जप करने लगे। बालयोगी ने मौनव्रत लिया। बाहर एकान्त की सुविधा न प्राप्त कर कुछ दिनों के बाद वे भूगर्भगृह —पाताल लिंग स्थान में प्रवेश कर जप और तप करने लगे। लोग आश्चर्य-चकित हो गये। वह स्थान अंधेरा था, प्रकाश नाममात्र को भी नहीं था, कीड़े-मकोड़े अधिक थे उस भूगर्भगृह में। वे आत्मध्यान में इस प्रकार तल्लीन हो गये कि शरीर की सुधि ही न रह गयी। लोगों में 'ब्राह्मणस्वामी' के नाम से प्रसिद्ध हो गये। दूर-दूर से दर्शन करने वालों की भीड़ आने लगी। अनुकूलता की दृष्टि से जगह बदलते रहने परभीसाधु-सन्त उनका पता लगा कर मिलते रहते थे। कुछ दिनों तक वे कार्तिकेय मन्दिर में रहे, तत्पश्चात् उसी से सटी एक फुलवारी में तप किया, मंगेपिल्लैयार मन्दिर में भी रहे। उद्दण्डि नायनार नामक एक साधु ने उनकी बड़ी सेवा की। अड़ोस-पड़ोस के जनपदों में नये बाल संन्यासी की प्रसिद्धि बढ़ने लगी। वे नितान्त मौन और आत्मस्थ थे। एक दिन मदुरा के एक मठ में तिरुवण्णामलै के तंविरानजी ने बालयोगी रमण के पूर्वाश्रम की महिमा पर भाषण दिया। उस भाषण में रमण के परिवार का एक बालक उपस्थित था। भाषण सुनने के बाद उसके मन में यह बात बैठ गयी कि बालयोगी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हमारे वेंकटरमण ही हैं। लड़के ने घर जाकर यह भेद प्रकट किया। रमण के चाचा नैलिपेप्यैयर अरुणाचल गये। उस समय रमण महर्षि एक अमराई में थे। उनसे मिलना आसान नहीं था। किसी प्रकार उन्होंने मिलने की आज्ञा प्राप्त की। उन्होंने देखा कि रमण का शरीर धूलधूसरित है, जटा बढ़ी हुई है, नाखून बढ़ कर टेढ़े हो गये हैं। उन्होंने मन-ही-मन अपने सौभाग्य की सराहना की कि हमारे कुल के एक बालक ने इस प्रकार आध्यात्मिक प्रसिद्धि प्राप्त की है। उन्होंने घर लौट चलने का आग्रह किया पर बालयोगी मौन रहे। मौन ही उनका उत्तर था। उनके चाचा घर लौट गये।

माता अपगम्माल अपने बड़े पुत्र नागस्वामी को लेकर रमण को देखने आयीं। उन्होंने अपने प्राणप्यारे पुत्र को देखा, वे एक पत्थर पर लेटे हुए थे, शरीर काला पड़ गया था, नेत्रों में दिव्य ज्योति थी; माता की ममता जाग उठी। उन्होंने घर चलने का आग्रह किया। संन्यासी पुत्र ने मौन का वरण किया। स्वामी रमण ने विशेष आग्रह करने पर लिखा: विधाता प्राणियों के भाग्य का उनके प्रारब्ध के अनुसार निपटारा करते हैं। जो नहीं होना है वह नहीं होगा। सबसे उत्तम मार्ग मौन है। माता चली गयीं; वे कभी-कभी उन्हें देखने आया करती थीं। और कुछ दिनों के बाद वे रमणाश्रम में ही रह कर उन्हें वात्सल्य का रसास्वादन कराती रहीं, रमण मौन ही रहते थे।

अरुणाचल आने के बाद रमण महर्षि फिर कहीं न गये। उन्होंने उस पवित्र दिव्य स्थान में चौव्वन साल तक निवास किया। विश्व के कोने-कोने से लोग आकर उनकी चरण-धूलि से अपने आपको कृतार्थ मानने लगे। महर्षि रमण ने अरुणाचल की महिमा गायी कि इस पर्वत का ऐसा प्रभाव है कि उसका स्मरण करने से ही प्रत्येक व्यक्ति को किसी दिशा या स्थान से ही मुक्ति प्राप्त हो जाती है। इस पर्वत रूपी लिंग में समस्त जगत व्याप्त है। यह पार्वती की तपस्या-भूमि है। सत्ययुग में यह अग्नि के स्तम्भ के रूप में था, त्रेता में लालमणि के समान था और द्वापर में सुवर्ण था तथा कलि में पाषाण है। रमण की उपस्थिति ने अरुणाचल की महिमा बढ़ा दी। उन्होंने विरुपाक्ष गुफा और आम्र गुहा में भी तपस्या की। विरुपाक्ष गुफा में निवास करते समय महर्षि ने 'अक्षरमण मालै' की रचना की। उनके शिष्य और भक्त 'अक्षरमण मालै' गीत गा-गा कर गाँवों में भिक्षा मांगा करते थे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रमण महर्षि का आश्रम-जीवन परम तपोमय था। आश्रम के बन्दर गिलहरी तथा अन्य जीव उनके अनन्य साथी थे, दो सफेद मोर और एक काला कुत्ता करुप्पन तथा गाय लक्ष्मी आदि उनके प्रेमभाजन थे। कुछ दिनों के बाद माता अषगम्माल भी आश्रम में ही आकर रहने लगीं।

संस्कृत के उद्भट विद्वान काव्यकंठ गणपति शास्त्री उनसे मिलने आये। वे तपोरूप संन्यासी को देखकर विनत हो गये। उन्होंने निवेदन किया कि देव मैंने वेदान्त शास्त्र का अध्ययन किया, बड़े-बड़े ग्रन्थ देखे। मुझे पता न लगा तप के रूप का। मुझे तप का रूप समझाइये। रमण महर्षि घर छोड़ने के बाद से ही मौन थे। मौन-व्रत का पालन करते ग्यारह साल हो गये थे। सम्वत् १९६४ वि. में गणपति मुनि उनसे मिलने आये थे। महर्षि ने पन्द्रह मिनट तक उनकी ओर एकटक देखा, उन्हें सद्शिष्य की श्रद्धा मिल गयी और शिष्य ने गुरु की कृपा-ज्योति प्राप्त कर ली। महर्षि ने मौनव्रत भंग किया ठीक ग्यारह साल के बाद। उन्होंने कहा 'निरन्तर आत्मानुसन्धान में मन का तत्पर रहना ही तप है, इसी प्रकार मन्त्र जप करते समय मन्त्र-नाद के अनुसन्धान में मन का लगा रहना तप है।' काव्यकंठ गणपति शास्त्री का पूरा-पूरा समाधान हो गया। वे सद्गुरु के चरणों पर विनत हो गये, उनकी वाणी ने वन्दना की :

'वन्दे श्रीरमणर्षेरचार्यास्य पदाब्जम्।
यो मेऽदर्शयदीशं भान्तं ध्वान्तमतीत्य ॥'

गणपति शास्त्री ने उनके पूर्वाश्रम के नाम का पता लगाने पर महर्षि के शिष्यों और अनुयायियों से कहा कि महर्षि के लिये हम लोग 'भगवान रमण महर्षि' विशेषण का उपयोग करेंगे। अरुणाचल के प्रसिद्ध योगी महर्षि रमण के नाम से प्रसिद्ध हुए।

महर्षि रमण को सिद्धियों और चमत्कारोंसे बड़ी घृणा थी। वे कहा करते थे कि चराचर में एक ही चेतन सत्ता का निवास है, फिर सिद्धि दिखायी किसके प्रति जाय। उनकी साधना का स्वरूप आत्मान्वेषण था, केवल आत्मा की खोज के लिये ही उन्होंने जगत से विरक्त होकर तप किया। वे कहा करते थे कि सर्वोत्तम और परमशक्तिमयी भाषा मौन ही है, मौन शान्ति का भूषण है। उपदेश तो नितान्त मौन रह कर ही दिया जा सकता है। अरुणाचल उनके तपोमय जीवन का दिव्य तथा परम ज्योतिमय प्रतीक है। रमणाश्रम में देश-विदेश के अध्यात्म पथ के जिज्ञासु और पिपासु आ-आ कर अपनी जिज्ञासा और पिपासा की तृप्ति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करने लगे। महर्षि की दृष्टि पड़ते ही, मौन-भाषा का प्रवाह उमड़ते ही उनकी सारी शंकाओं और प्रश्नों का समाधान हो जाया करता था। रमणाश्रम से आध्यात्मिक लाभ उठाने वालों में काव्यकंठ गणपति शास्त्री, कपालि शास्त्री, शुद्धानन्द भारती, शेषाद्रि स्वामी, योगी रंगनाथन, हम्फ्रीस, पाल ब्रान्टन आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उन लोगों ने अपनी श्रद्धा महर्षि के चरणों में समर्पित कर अनन्य भक्ति और आदर का परिचय दिया। महर्षि के दर्शन के लिये दूर-दूर से आने वाले यात्रियों की भीड़ सी लगी रहती थी। जनता ने महर्षि के रूप में दक्षिणामूर्ति भगवान का स्मरण किया; मौन रमण महर्षि की साधना का प्राण था तो शान्ति उनकी आत्मोपासना की सखी थी। वे वास्तविक आत्मज्ञ थे।

महर्षि मौन से ही प्रश्नों का उत्तर दे दिया करते थे। यदि बोलना पडता था तो विचित्र ढंग से समाधान किया करते थे। एक समय किसी जिज्ञासु ने जिज्ञासा प्रकट की कि मनुष्यों में समता स्थापित होनी चाहिये। महर्षि रमण ने तत्काल कहा कि सब को सो जाना चाहिये, निद्रा में समता है। एक समय महर्षि ने कहा कि विवेकानन्द ने परमहंस रामकृष्ण से प्रश्न किया था कि क्या आपने परमात्मा को देखा है, मैं प्रश्न करता हूँ कि परमात्मा को किसने नहीं देखा है?

एक बार महात्मा गांधी के दाहिने हाथ राजेन्द्रप्रसाद रमणाश्रम गये। उन्होंने महर्षि रमण का दर्शन किया, कहा मुझे महात्मा जी ने आप के पास भेजा है, क्या आप उनके लिये सन्देश देंगे। महर्षि ने गम्भीर शान्ति से कहा—कि सन्देश की क्या बात है, हृदय तो हृदय की बात कहता ही है; जो शक्ति यहाँ कार्य कर रही है वही वहां भी कार्यशील है। एक समय एक मुसलिम दल महर्षि से मिलने गया। दल के कुछ लोगों ने महर्षि रमण से पूछा कि जीवन का ध्येय क्या है। महर्षि आत्मदर्शी थे, जो आत्मा उनमें व्याप्त थी वही सर्वत्र थी। उन्होंने तत्काल उत्तर दिया कि जीवन का ध्येय इस्लाम है। परमात्मा के चरणों में आत्मसमर्पण ही इस्लाम है। इस्लाम ही सलाम-शान्ति प्रदान कर सकता है। महर्षि की साधनागत उदारता ने लोगों को आश्चर्य चकित कर दिया। रमण महर्षि सदा मन से परे आत्मा के चिंतन में लीन रहतेथे। एक बार एक व्यक्ति द्वारा उनके प्रति साधारण-सा अपराध—अपचार हो गया। वह व्यक्ति बड़ा दुखी हुआ। एक मित्र की सम्मति से वह महर्षि के पास आया। पश्चाताप

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तथा क्षमा-याचना करते हुए उसने आदरपूर्वक महर्षि रमण की तीन बार प्रदक्षिणा की, निवेदन किया कि आप मन से मेरे अपचार की बात निकाल दीजिये। मुझसे बड़ी भूल हो गयी, क्षमा कर दीजिये। महर्षि ने कृपा भरी दष्टि से उसकी ओर देख कर प्रेम से कहा कि मेरे पास तो मन है ही नहीं, फिर अपचार की बात ठहर ही किस तरह सकती है ? व्यक्ति ने उनकी चरण-धूलि मस्तक पर चढ़ा ली और वन्दना की।

महर्षि शरीर-भाव से सर्वथा शून्य थे। एक समय, जब वे स्कन्दाश्रम में रहते थे, योगी रंगनाथ के साथ टहलते हुए पहाड़ी की ओर निकल गये। वन में प्रवेश करते ही पैर के तलवे में कांटे चुभने लगे तथा पत्थर के टुकड़े गड़ने लगे। वे तेजी से आगे बढ़ रहे थे, पैरों में चोट लगती थी। रक्त बह रहा था। योगी रंगनाथन पीछे रह जाते थे। रंगनाथन से यह दृश्य देखा न गया, उन्होंने महर्षि को रोका, पैर से कांटे निकाले। महर्षि ने कहा कि कांटे तो रास्ते में चुभेंगे ही, तुम कब तक निकालते रहोगे। उनके कथन से योगी रंगनाथन मौन हो गये। महर्षि द्रुत गति से आगे बढ़े गये। आत्मचिंतन के समक्ष शरीर-चिंता को तनिक भी महत्व न दिया, वे तो परम विरक्त थे।

एक बार स्कन्दाश्रम में योगी रंगनाथन महर्षि का दर्शन करने गये थे। दस दिन पहले एक विचित्र घटना घटी थी। महर्षि के सामने माता अषगम्माल ने कहा कि मैंने देखा कि रमण का शरीर एक लिंग के रूप में परिणत होता था, तिरुचुषि मन्दिर के शिवलिंग के ही समान मुझे रमण का शरीर दीख पड़ा। दस बजे दिन का समय था, पहले तो मैंने विश्वास ही नहीं किया पर फिर देखने पर वही स्थिति बनी रही। मैं भयभीत हो उठी कि रमण हम लोगों का साथ छोड़ रहे हैं पर धीरे-धीरे लिंग के स्थान पर उनका शरीर प्रकट हो गया। मेरे जी में जी आया। योगी रंगनाथन महर्षि की ओर देखने लगे, महर्षि ने मुसकरा दिया, ऐसा करके उन्होंने माता के कथन का अनुमोदन किया। यह उनकी दिव्य साधना की एक असाधारण घटना है।

सम्वत् १९६५ वि. की बात है। काव्यकंठ गणपति शास्त्री मद्रास के पास तिरुवोट्रियूर के गणेश मन्दिर में तप कर रहे थे। उनके मन में एक प्रश्न उठा, वे सोचने लगे कि यदि महर्षि पास होते तो कितना अच्छा होता; इतने में महर्षि दीख पड़े, गणपति शास्त्री ने साष्टांग दण्डवत प्रणाम किया। महर्षि ने उनके सिर पर हाथ रखा, उनके स्पर्श से वे धन्य हो गये। महर्षि ने इक्कीस साल के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बाद इसी प्रकार की एक घटना-वर्णन करते हुए कहा था कि कुछ दिन पहले एक समय मैं नीचे लेटा हुआ था, समाधि की दशा नहीं थी, ऐसा लगा कि शरीर ऊपर की ओर उठाया जा रहा है। दृश्य जगत लुप्त हो गया, मेरी चारों ओर सघन उज्ज्वल ज्योति दीख पड़ी, थोड़ी देर के बाद दृश्य जगत फिर भासने लगा। मुझे उस समय ऐसा लगा कि मैं तिरुवोट्रियूर के गणेश-मन्दिर में हूँ, मैंने कुछ भाषण किया जिसका स्मरण नहीं है। उसके बाद अरुणाचल पर विरुपाक्ष गुफा में आ गया। इस घटना का साम्य गणपति शास्त्री वाली घटना से है। यह घटना उनकी परमोच्च सिद्धि-अवस्था का परिचय कराती है।

महर्षि रमण उच्च कोटि के अपरिग्रही महात्मा थे। सम्वत् १९९९ वि. की बात है। रमणाश्रम की स्थापना के बीस साल बाद की घटना है, उस समय आश्रम आवश्यक उपयोगी वस्तुओं से सम्पन्न था पर महर्षि तो त्याग के हिमालय पर थे। एक समय उनके पास केवल एक ही लंगोटी थी। स्नान करने के बाद बदलने के लिये दूसरी लंगोटी नहीं थी। उनकी लंगोटी फटी हुई थी। वे लोगों पर नहीं प्रकट करना चाहते थे, यदि लोगों को पता चल जाता तो वे दूसरी लंगोटी रखने का आग्रह करते। महर्षि ने इसी भय से किसी से सूई-डोरे की भी माँग नहीं की। फटी लंगोटी पहनने योग्य नहीं थी। यदि उसे पहनते तो लोगों को रहस्य का पता चल जाता। वे जंगल में गये। उन्होंने एक मोटा-सा कांटा लिया, उसके अग्रभाग में एक दूसरे कांटे की नोक से उन्होंने छेद किया, लंगोटी में से डोरा निकाल कर मोटे कांटे वाले छेद में डाल दिया, इस प्रकार अद्‌भुत ढंग से सूई डोरा बना कर उन्होंने फटी लंगोटी सी डाली। इस घटना का वर्णन कुछ दिनों के बाद महर्षि ने स्वयं अपने ही मुख से शिष्यों के सामने किया था। कितना असाधारण था उनका जीवन!

वे करुणा-सागर थे। समस्त प्राणी के प्रति उनके हृदय में दया थी। एक समय एक घायल काग उड़ता हुआ आश्रम में गिर पड़ा। महर्षि ने उसको सहलाया, चोट बहुत बड़ी थी। महर्षि ने पट्टी बाँधी, उसे आश्रम में एक सुरक्षित स्थान पर रखवा दिया। तीन दिन के बाद देखने गये, हाथ में लिया ही था कि उसके प्राण निकल गये, मृत शरीर महर्षि के हाथ में रह गया। कितना सौभाग्य शाली था वह, महर्षि के हाथ से सद्‌गति मिली उसे। उसके जन्म-जन्मान्तर के पुण्य प्रगट हो गये, असहाय पक्षी धन्य हो गया। महर्षि ने उसकी अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न की और समाधि बनवायी। समाधि पर कौवे की आकृति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

का एक पत्थर लगाया गया जो महर्षि की करुणा का अमर प्रतीक है; रमणाश्रम में ऐसी समाधि के दर्शन से असंख्य प्राणी चिरकाल तक मुग्ध होते रहेंगे।

महर्षि रमण का सिद्धान्त आत्मानुसंधान था। उन्होंने आत्मानुभूति प्राप्त की। उन्होंने कहा कि अपने आप को जानो, आत्मज्ञान ही परमोच्च ज्ञान है, सत्यका ज्ञान है। उन्होंने वचन नहीं, अपने जीवन से शिक्षा दी। उनकी भाषा का अलंकार मौन था, उनकी साधना का प्राण आत्मज्ञान था। उन्होंने ज्ञान-कृपाण से अविद्यारूपी शत्रु का अन्त कर दिया। उन्होंने आत्मा की खोज में प्रवृत लोगों का पथप्रदर्शन किया। यह पूछने पर कि मर कर क्या होंगे, उन्होंने कहा कि तुम क्यों जानना चाहते हो कि तुम मर कर क्या होगे जब तुम्हें यही नहीं ज्ञात है कि मरने के पहले तुम क्या हो? रमण महर्षि ने आत्मजिज्ञासा का पथ प्रशस्त किया। आत्मज्ञान की प्राप्ति के बाद कुछ भी जानने के लिये नहीं रह जाता है, आत्मा पूर्ण है, परमानन्दमय है—ऐसा उनका मत था। वे आत्मार्पित थे। उन्होंने कहा, 'उपदेश सार' में उनकी वाणी है :

'भावशून्य सद्भाव सुस्थितिः।
भावना बलाद् भक्तिरुत्तमा॥
बन्धमुक्त्यतीतं परं सुखम्।
विन्दतीह जीवस्तु दैविकः॥'

महर्षि ने कहा कि आत्मा में संस्थित होने पर ही आत्म दर्शन सहज और सुलभ होता है। इस जीवन के पीछे शाश्वत, निराकार आत्मा है, उसी की खोज करनी चाहिये। ईश्वर को जानने के पहले अपने आप को जानना चाहिये। आत्मा से भिन्न ईश्वर की स्थिति ही नहीं है। ईश्वर आत्माभिव्यक्ति हैं। संसार आत्मा को न जानने के कारण ही दुखी है। पारमार्थिक सत्ता ही सत्य है। चेतनता आत्मचैतन्य का ही नाम है। उन्होंने साधना के क्षेत्र में तन्मय निष्ठा को महत्व दिया कि आत्मस्थिति ही आत्मज्ञान है। उन्होंने आत्मस्थ—स्वरूपस्थ होने की सीख दी। मन दो नहीं हैं—अच्छा और बुरा। वासना के अनुरूप अच्छे और बुरे मन का स्वरूप हमारे सामने आ जाता है। महर्षि ने घोषणा की कि आत्मसिद्धि ही सबसे बड़ी सिद्धि है। आत्मविचार मन्त्र-जप से कहीं आगे की स्थिति है। दुख का कारण बाहर नहीं है, यहतो अपने भीतर है, दुख की उत्पत्ति अहंकार से होती है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्त–साहित्य में रमण को अमित गौरव पूर्ण स्थान प्राप्त है। उनका जीवन वेदान्त-सिद्धान्त का चेतन-प्रतीक था। ऐसे तो सब पूजनीय हैं पर विक्रमीय उन्नीसवीं और वीसवीं शती के सन्तत्रयी में रामकृष्ण परमहंस, अरविन्द और रमण के नाम बड़ी श्रद्धा से परिगणित किये जा सकते हैं। वे पूर्ण जीवन्मुक्त थे। वे लोगों को नेत्र-दीक्षा दिया करते थे, जिनकी ओर कृपा भरी दृष्टि डाल देते थे वे कृतार्थ और धन्य हो जाते थे। वे मौन-गुरु थे। ऐसा लगता था मानों शाश्वत मौन शिव दक्षिणामूर्ति ने ही रमण के विग्रह में अरुणाचल पर तप किया।

वे आत्मलीन होने तक रमणाश्रम में ही रहे। सम्वत् १९५७ वि. में उन के बड़े भाई नागस्वामी का शरीर छूट गया, उसके बाद उनके चाचा नल्लियप्पैय्यर का भी स्वर्ग-वास हो गया। नागस्वामी की पत्नी का भी देहावसान हो गया। सम्वत् १७३ वि. में माता अषगम्माल आश्रम में ही आकर रहने लगीं। छः साल के बाद उनका देहान्त हो गया। महर्षि ने स्कन्दाश्रम से थोड़ी दूर पर पहाड़ी की तलहटी में माता की समाधि बनवायी। वे छः माह तक नित्य समाधि का दर्शन करने आया करते थे। एक दिन महर्षि समाधि के निकट बैठ गये, उठे नहीं, वहीं रहने लगे। उसी स्थान पर रमणाश्रम का निर्माण हुआ।

समस्त विश्व में महर्षि रमण के अनुयायी बहुत बड़ी संख्या में पाये जाते हैं उनके सम्पर्क में विशेष रूप से आने वाले काव्यकंठ गणपति शास्त्री ने 'रमण गीता' की रचना की, टी. वी. कपाली शास्त्री ने 'सद्दर्शनभाष्य' और 'महर्षि के साथ सम्भाषण' पुस्तकें रचीं, शुद्धानन्द भारती ने 'रमण विजय' लिखी तथा पालब्रान्टन ने 'गुप्त भारत की खोज', 'रहस्य-पथ' और अरुणाचल-संदेश' नामक पुस्तकें रचीं।

महर्षि शान्ति के समुद्र थे। वे तमिल साहित्य के बहुत बड़े जानकार थे, कवि थे। वे अंग्रेजी, संस्कृत, तेलुगु और मलयालम् आदि भाषायें अच्छी तरह जानते थे। महर्षि ने औपनिषद ब्रह्म की अनुभूति की। दक्षिण भारत का कैलास–अरुणाचल उनकी दिव्य उपस्थिति और आत्मज्योति से धन्य हो उठा।

महर्षि रमण ने सम्वत् २००७ वि. में (सन् १९५० ई. १४ अप्रैल) आत्मलीन हो गये। उनके महाप्रयाण के अवसर पर उपस्थित भक्त मण्डली महर्षि रचित अरुणाचल स्तोत्र का पाठ कर रही थी। महर्षि रमण चिन्मय आत्मा के मानवप्रतीक थे। वे आत्मज्ञानी सन्त थे, ब्रह्मयोगी और महात्मा थे। अरुणाचल उनकी अमरता का स्मारक है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रचना

महर्षि रमण के अनेक उपदेश विभिन्न भाषाओं में पुस्तक रूप में प्रकाशित हो चुके हैं। उपदेश सार, अरुणाचलाष्टक, अक्षरमणमालै आदि की रचना की।

वाणी

ईश्वर का दर्शन करने के लिये ईश्वर होना पड़ता है। ईश्वर से भिन्न कोई सर्वत्र नहीं है जिसमें उनका व्याप्त होना अवशेष हो। केवल वे ही सत् हैं।

जब तक अज्ञान रहता है तभी तक पुनर्जन्म का अस्तित्व बना रहता है। वास्तव में पुनर्जन्म है ही नहीं। न वह पहले था, न अभी है, न आगे होगा। यही सत्य है।

मन की कल्पना और अपने प्रयत्न द्वारा जो साधा जाय वह ध्यान है और दोनों के बिना जो साधा जाय वह समाधि है।

ज्ञानी जब जगत को देखता है तब वह जगदाधार रूपी अपनी आत्मा को भी उसमें देखता है! अज्ञानी जगत को देखते या न देखते समय अपने सत्स्वरूप से अनजान रहता है।

आत्मा में व्याप्त शाश्वत, अखण्ड और स्वाभाविक दशा ज्ञान है। आत्मा को प्राप्त करने के लिये आत्मा पर प्रेम रखना चाहिये। वास्तव में ईश्वर ही आत्मा है, आत्मा पर प्रेम ही ईश्वर से प्रेम है। यही भक्ति है। इस तरह ज्ञान और भक्ति एक ही हैं।

आत्मा ही ईश्वर है। 'मैं हूं' यही ईश्वर है। यदि ईश्वर आत्मा से भिन्न हों तो वे आत्मरहित ईश्वर होंगे। यह अज्ञान की बात है।

आत्म विचार ही मुक्तिदायक है। दूसरी समस्त सिद्धि माया-शक्ति के मिथ्या दृश्य हैं। केवल आत्म सिद्धि की सफलता ही नित्य सिद्धि है। दीख कर अदृश्य होने वाले माया के कार्य सिद्धि हो ही नहीं सकते।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गुरु प्रत्येक व्यक्ति में शाश्वत और अमर ज्योति के रूप में स्वस्थ हैं। गुरु को शरीरी–व्यक्ति के रूप में नहीं देखना चाहिये। वे और कुछ नहीं, शिष्य के वास्तविक आत्मा हैं। आत्मानुभूति के पश्चात् गुरु और शिष्य का भेद समाप्त हो जाता है।

विश्व का शासन-नियन्त्रण एक परमात्मा करते हैं, उसका ध्यान रखना उन्हीं का कार्य है; जिन्होंने जगत को जीवन प्रदान किया है वे जानते हैं कि उसका ध्यान किस प्रकार रखा जाय। संसार क। भार तुम्हारे ऊपर नहीं, उनके कन्धों पर है।

तुम भविष्य की क्यों चिन्ता करते रहते हो? तुम तो अपना वर्त्तमान ही नहीं जानते हो; वर्तमान को सम्हालो; भविष्य अपने आप ठीक हो जायेगा।

बस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्त सच्चल

मुहमद चिनगी पेम कै सुनि महि गगन डेराइ।
धनि बिरही औ धनि हिया तहँ अस अगिनि समाइ॥

—पद्मावत

प्रेम की दिव्यता का वर्णन उच्च कोटि का प्रेमी ही अपनी प्रेमानुभूति के प्रकाश में थोड़ा-बहुत कर सकता है; प्रेम की पवित्रतम स्थिति यह है कि इसमें प्रेमी, प्रियतम—प्रेमास्पद और प्रेम तीनों स्वरूपभूत अथवा एकाकार हो जाते हैं, इस प्रकार की स्थिति में रहनेवाला प्राणी धन्य है। सिन्ध के विख्यात सन्त दयामय सच्चल उच्च कोटि के प्रेमी थे, अपने प्रेमास्पद के रूप-सौन्दर्य-माधुर्य के मद से वे नितान्त मस्त रहते थे। सूफी प्रेमसाधना की उच्च भूमिका में रमण करना उनका सहज स्वभाव बन गया था। परमात्मा—अल्लाह का प्रेम ही उनका जीवन-सर्वस्व था। लोगों को भागवत प्रेम का रसास्वादन कराने के लिये ही उन्होंने कृपापूर्वक पृथ्वी पर जन्म लिया था। उनका पथ प्रेम—सत्य का पथ था। उन्होंने निस्संकोच कहा कि भीतर-बाहर, हृदय में—सब जगह वे ही प्रभु प्रेमास्पद हैं; मुझमें, तुममें और उसमें वे ही बोलते हैं।

निस्सन्देह सिन्ध प्रान्त ने अनेक सिद्ध सूफी संतों को जन्म दिया है। सत्रहवीं शताब्दी के सूफी सन्त कवि शाह लतीफ ने सिन्ध में भावगत प्रेम की मन्दाकिनी प्रवाहित की थी। इसी तरह प्रसिद्ध सूफी कवि बेदिल के पुत्र बेकस ने अपनी प्रेम काव्य-धारा से असंख्य प्राणियों को संतृप्त करने का पवित्र पुण्य कमाया। सिन्ध के प्रेम-साहित्य की परम्परा की अविच्छिन्न कड़ी सन्त सच्चल थे जिनकी संगीतमयी अमृत वाणी का सिन्दूर चिरन्तन और सनातन है। सूफी सन्त सच्चल की वाणी ने घोषणा की:

"जागो और खोजो, तुम
प्रियतम को अपने भीतर पाओगे।"

वे वास्तव में फकीर थे, उन्होंने परमात्मा के प्रेमराज्य की प्राप्ति के लिये दैन्य का वरण किया था। वे कहा करते थे कि तुम मुझे फकीर के वेष में देखते हो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पर जब तुम मेरी आन्तरिक सत्ता समझोगे तब जानोगे कि मैं भिखारी नहीं, राजाधिराज हूँ। दरवेश सच्चल ने दिव्य जीवन—भागवत जीवन को ही परम श्रेयस्कर समझा। वे प्रेम की दिव्योन्मादि-स्थिति-मस्ती में सदा झूमते रहते थे।

फकीर सच्चल का जन्म सिन्ध प्रान्त के खैरपुर राज्य के दारजन गाँव में सम्वत् १७९६ वि. में हुआ था। दारजन में अब भी उनका स्मारक है। उनका बचपन का नाम अब्दुल वहब था। उनकी अल्पावस्था में ही उनके पिता का देहान्त हो गया। वे अपने चाचा पीर अब्दुल हक के संरक्षण में शिक्षा प्राप्त करने लगे। अब्दुल हक सूफी विचारधारा के पवित्र व्यक्ति थे। वे सूफी साधना की चिश्ती पद्धति से प्रभावित थे। बारहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध सूफी सन्त ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती के नाम से यह परम्परा प्रसिद्ध थी। यह स्वाभाविक था कि अब्दुल हक के पवित्र प्रेममय जीवन का अब्दुल वहब—सच्चल पर प्रभाव पड़ता।

एक दिन दारजन में उस समय के सिद्ध सूफी सन्त शाह लतीफ का आगमन हुआ, वे सच्चल के पितामह से मिलने आये थे। सच्चल की अवस्था इस समय केवल सात साल की थी। शाह लतीफ उन्हें देख कर प्रसन्न हो गये और कहा कि मेरे बच्चे तुम सत्य का रहस्योद्घाटन करोगे। जब सच्चल पढ़ने के लिये विद्यालय में भेजे गये तो उन्होंने 'अलीफ' के उच्चारण के बाद दूसरा अक्षर 'बे' कहना अस्वीकार कर दिया। उन्होंने कहा कि 'अलीफ' अल्लाह का प्रतीक है, अल्लाह अद्वितीय हैं,उनके बाद दूसरे अक्षर का उच्चारण नितान्त अवैध और मर्यादा के विरुद्ध है। ऐसा करना उनके अस्तित्व को अस्वीकार करना है। सच्चल की प्रतिभा असाधारण थी।

सच्चल फकीर के चरित्र-विकास पर चिश्ती परम्परा के सूफी सन्त फकीर मुकमलुद्दीन का बड़ा प्रभाव पड़ा था। वे जिस समय सिन्ध का परिभ्रमण कर रहे थे, सच्चल फकीर अपने चाचा की आज्ञा से उनसे मिलने गये। फकीर एक कमज़ोर घोड़ी की पीठ पर थे, सच्चल फकीर को उन्होंने घोड़ी प्रेम-उपहार रूप में प्रदान की और आध्यात्मिक पथ में बढ़ने का आशीष दिया।

यद्यपि अरबी और फारसी का सच्चल ने अच्छी तरह अध्ययन किया था, तथापि अल्लाह का प्रेम ही उनके जीवन का सर्वश्रेष्ठ ध्येय था। वे कहा करते थे कि जीवन में ज्ञान और प्रेम को बड़ा महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। प्रेम

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

की ज्योति सच्चे व्यक्ति में ही पैदा होती है। उनके लिये प्रेम ही उपास्य था, वे वचन-भाषण नहीं, शान्ति-मौन को बहुत बड़ी शक्ति स्वीकार करते थे।

उनकी साधना का प्राण संगीत था। सच्चल फकीर के रोम-रोम में संगीत समाया हुआ था। एक समय की बात है, वे बीमार थे, बीमारी असाध्य थी। कुछ नवयुवतियाँ उनका दर्शन करने आयीं, वे संगीत में निपुण थीं। उन्होंने गीत गाये, गीत के माधुर्य से सच्चल का स्वास्थ्य लौट आया, उनकी बीमारी अच्छी हो गयी। सच्चल स्वयं उच्च कोटि के प्रेम-गायक थे। वे अपने सरस पदों को मस्ती में झूम-झूम कर गाया करते थे। अपने प्रेमभरे मधुर पद-गान से उन्होंने असंख्य प्राणियों को परमात्मा का प्रेमी बना दिया। सच्चल फकीर का एक गीत है :

"साकी, मुझे अंगूरी शराब की
आवश्यकता नहीं है।
मुझे (समस्त जीवों से) अभिन्नता
की शराब चाहिये और भिन्नता की
भावना से मुझे मुक्ति चाहिये।"

सच्चल फकीर ने अपने बाल्यकाल के संरक्षक और शिक्षक—मुरशिद अब्दुल हक से सत्य-प्रेम और आत्मज्ञान की शिक्षा पायी थी। अब्दुल हक ने सीख दी थी कि सच्ची शिक्षा का संबन्ध तो हृदय से है। अब्दुल हक स्वयं एक उन्मुक्त आत्मा थे, सच्चल फकीर उनका बड़ा आदर करते थे। सच्चल फकीर बड़ी सादगी से रहते थे और साधारण भोजन करते थे। अल्लाह का नाम ही उनके लिये मधुमय पेय था। उनकी वाणी है :

"मेरे मुरशिद ने एक दिन मुझसे कहा :

संसार के लोगों का सम्बन्ध त्याग दो, अल्लाह का नाम स्मरण करो और शेष भूल जाओ।"

वे मरुस्थलीय वातावरण में अपने समय का अधिकांश शान्तिपूर्ण भगवच्चिंतन में लगाते थे। वे कहा करते थे कि समस्त रूपों में (अल्लाह) एक के ही सौन्दर्य का दर्शन करो, और कुछ देखना पाप है। वे परमात्मा की सत्य और सौन्दर्य-रूप में उपासना करते थे। वे प्रेम के सौन्दर्य राज्य में संगीत के माध्यम से प्रवेश करते थे। सच्चल फकीर प्रसिद्ध सूफी सन्त फरीद अल-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दीन अत्तार की विचार-धारा से बहुत प्रभावित थे। वे ग्यारहवीं शताब्दी में थे, उनकी अच्छे सूफी सन्तों में गणना है। सच्चल फकीर उनको इस्लामी जगत का महान सन्त मानते थे। उन्होंने परमात्मा के पथ पर चलने के प्रेममय गीत गाये।

सच्चल फकीर एकान्त और मौन को अपनी प्रेममयी भगवत्साधना का प्राण मानते थे। वे प्रायः दरवाजा बन्द कर अधिक समय तक परमात्मा का चिंतन किया करते थे। वे रात-रात भर जागते रह जाते थे और उनकी आँखों में प्रेमाश्रु निरन्तर उमड़ता रहता था। उनके चेहरे पर दिव्य सौन्दर्य अंकित हो उठता था, जब वे एकतारा लेकर प्रेम-संगीत गाने लगते थे और उनके सुन्दर केश हवा में लहराने लगते थे, तब असंख्य प्राणी भगवत्प्रेम में निमग्न होकर उनके चरण देश में आत्मार्पण कर देते थे। वे मस्ती में गाया करते थे कि अपनी विषय-कामना का त्याग करो, अपने आप को मिटा देने की चिता सजाओ, अपने आप को उसी पर चढ़ कर जला दो। यह 'फना' का सिद्धान्त है। अपने आपको मिटा देने पर ही प्रियतम की सम्पूर्ण प्राप्ति होती है। उनका पद है :

"जिन्हें तुम खोजते हो
वे प्रियतम हृदय में ही हैं।
तुम्हारे हृदय के उपवन में
ज्योत्स्ना थिरक रही है
प्रियतम का दर्शन करो।
प्रियतम ने सौन्दर्य के सात
घूंघट ओढ़ लिये हैं
मैंने उनको अपने आप में देखा है।
मैंने उनको हरी-हरी घास
की पत्तियों पर पहिचाना है
अपने भीतर मैंने उनसे भेंट की।"

सच्चल फकीर के नयनों में प्रियतम का सौन्दर्य सदा पवित्र रमण करता रहता था, चारों ओर कण-कण में उन्हें अपने प्रियतम का ही रमणीय चित्र दीख पड़ता था।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सच्चल फकीर की प्रेममयी वाणी में भगवत्सौन्दर्य विशेष रूप से निरवर सका है। उन्होंने अपने प्रियतम अल्लाह के सम्बन्ध में कहा है कि वे मुझसे–एक ग़रीब फकीर से– मेरे अंगने में मिलने आये, मैं धन्य हो गया, मेरा हृदय प्रेम से आपूर्ण हो गया। मैंने उनके पास बार-बार सन्देशवाहक भेजे, यही सन्देश था कि आप कब आयेंगे। और वे आ ही गये। वे मुझे उस लोक में लेने के लिये आये जिसमें शाश्वत प्रकाश आलोकित रहता है। सच्चल फकीर ने प्रियतम परमात्मा का पता बताया :

"विनयसम्पन्न पवित्र अन्तःकरण
तथा निर्मल और प्रबुद्ध मन में
प्रियतम का दर्शन करो।
तुम इधर-उधर क्यों भटकते हो ?
तुम्हारे हृदय में एक सौन्दर्यपूर्ण
रमणीय उपवन है जो।
स्वच्छ है और उसमें बुलबुल
गाती है : प्रियतम का दर्शन करो।
तुम भीषण समुद्र में
दूर-दूर तक क्यों भ्रमण
करते हो, तुम्हारे परम
सनातन अन्तःकरण में
ही परमात्मा हैं,
प्रियतम का दर्शन करो।"

सच्चे सूफी की तरह दरवेश सच्चल ने प्रियतम परमात्मा को भीतर बाहर और हृदय में – सर्वत्र देखा। उन्होंने कहा कि मुझ में, तुममें, उसमें सबमें उन्हीं एक की सत्ता कार्यशील है और उनका प्रत्येक कार्य यज्ञ है।

सच्चल फकीर ने जीवमात्र के प्रति मैत्री, एकता और अभिन्नता की सीख दी। वे जाति, वर्ग, मतमतान्तर से अतीत–निरपेक्ष होने पर बहुत ज़ोर देते थे। एक ही सत्य सब में समान रूप से परिव्याप्त है, उसी की अनुभूति जीवन में उतारनी चाहिये। वे रहस्यवादी थे। वे अपने जीवन को सदा पूर्ण प्रेममय देखना चाहते थे। उन्होंने सनातन भागवत प्रेम की सीख दी कि मैं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपने आपको किसी विशेष धार्मिक सिद्धान्त में नहीं जकड़ना चाहता हूँ और न उसे स्वीकार ही करता हूँ। मुल्ला लोगों ने उनके प्रति विद्रोह किया। सच्चल फकीर ने समझाया :

"मैं आप लोगों में से प्रत्येक से
कहता हूँ कि आप पहले
अपने आप को जानिये।
इसके उपरान्त प्रेम के पथ पर
चलिये। मेरे मुरशिद ने
मुझे इस प्रेम-पथ पर चलना
सिखाया है।"

मुल्ला लोगों ने खैरपुर राज्य के मीर–शासक से उनकी शिकायत की। मीर सच्चल का मित्र और शिष्य था। मुल्लाओं की शिकायत निष्फल हो गयी। सच्चल फकीर की उक्ति है :

"प्रेम का न्याय देखो,
इससे समस्त मत-मतान्तरों से
मुक्ति मिल जाती है।"

गुरुग्रन्थ साहब और सन्त नानक के प्रति उनके मन में बड़ी श्रद्धा थी।

सच्चल फकीर सरमद–ईश्वरोन्मत्त कहे जाते थे। समकालीन सूफी कवि बेदिल ने मनसूर से उनकी उपमा दी है। सरमद सच्चल का वचन है :

"मेरे पाप और भूल को
मत देखो, प्रियतम मुझ
पर दया करो। मैं–पापी
और सेवक–दरवाजे पर खड़ा हूँ।
मैं अपवित्र और दोषों से पूर्ण हूँ,
हे दयामय! घूंघट उठा कर तुम
मुझसे कृपापूर्वक बात करो;
जिससे मैं तुम्हारा सुन्दर
मुख देख सकूँ।"

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उन्होंने किसी को कभी अपना शिष्य नहीं कहा। वे सबको समानरूप से प्यार करते थे; उनकी वाणी है :

"एक दिन मैं बाजार गया
मैंने लड़कों के हाथ में
एक बुलबुल देखी;
उन्होंने उसको लाल डोरे
से बांध रखा था।
मैं बुलबुल के पास गया,
मैंने उससे पूछा 'हे प्रेम-पक्षी!
'गीतों की रानी, तुमने इस बन्धन के
लिये रमणीय उपवन क्यों छोड़ दिया?'
बुलबुल ने मुसकरा कर कहा:
'क्या तुम नहीं जानते हो
कि जो प्रेम-पथ पर चलता है
उसे लाल धागा धारण करना चाहिये
और प्रियतम को सर्वस्व समर्पित
कर देना चाहिये।"

वे कहा करते थे कि यदि प्रियतम की खोज है तो वे हृदय-मन्दिर में ही निवास करते हैं। सच्चल फकीर अद्‌भुत प्रेमी थे।

सन्त सच्चल ने आजीवन दिव्य प्रेम का ही गान गाया। उन्होंने सम्वत् १८८९ वि. में रमजान की चौदहवीं तिथि को असार संसार का त्याग कर प्रेमलोक की यात्रा की। इस समय उनकी अवस्था नब्बे साल की थी। दारजन में उनकी समाधि मानवता को दिव्य भागवत प्रेम का सन्देश देती हुई खड़ी है जिसके दर्शन मात्र से रोम-रोम में परमानन्द का मधुर सागर उमड़ पड़ता है। सच्चल फकीर पहुँचे हुए सन्त थे। सिन्ध की पवित्र भूमि धन्य है जिसने सच्चल फकीर का संस्पर्श पाया।

रचना

समय-समय पर निकले पदबद्ध प्रेमोद्‌गार ही उनकी अमरकृति के रूप में सुरक्षित हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वाणी

मैं घर हीन हूँ, प्रत्येक स्थान और चित्र में मैं ही अभिव्यक्त हूँ। मेरे आलोकपूर्ण घर में अन्धकार नहीं है। सच्चल का नाम मिट गया, चारों ओर केवल एक प्रियतम ही समस्थित हैं।

सर्वत्र प्रियतम का ही चित्र है, वे ही सर्वश्रेष्ठ छवि हैं। वे सौन्दर्य देखने के लिये जगत में आते हैं– दिव्य नाटक के सौन्दर्य-दर्शन के लिये आते हैं। वे परम कलाकार हैं, अपनी ही सृष्टि का चित्र देखने आते हैं।

उससे प्रेम करना सीखो जो कहता है कि मैं तुम्हारा शत्रु हूँ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्त हरिहर बाबा

पुरुषारथ स्वारथ सकल परमारथ परिनाम।
सुलभ सिद्धि सब साहिबी सुमिरत सीताराम॥

—गोस्वामी तुलसीदास

राम-नाम का स्मरण करने से निस्सन्देह सद्गति मिल जाती है, संसार-सागर से पार उतरने का सहज साधन एक मात्र राम-नाम है। राम-नाम में प्रीति-वृद्धि समस्त मुक्ति की प्रतीक है। सन्त हरिहर बाबा राम नाम के परम रसिक महात्मा थे। जीवन के अन्तिम काल तक मुक्तिक्षेत्र काशी में भगवती भागीरथी में नाव पर निवास कर उन्होंने अपनी अविचल राम-नाम-निष्ठा का जो रसास्वादन कराया वह सन्त जगत के लिये एक मौलिक देन है। हरिहर बाबा राम के बहुत बड़े उपासक थे। उनकी कृपा से असंख्य प्राणियों ने आध्यात्मिक शान्ति प्राप्त की।

हरिहर बाबा का जन्म बिहार प्रान्त के छपरा जनपद में जाफरपुर गाँव में लगभग डेढ़ सौ साल पहले एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण-कुल में हुआ था। उनका बचपन का नाम सेनापति तिवारी था। उनके माता-पिता बड़े पवित्र विचार के थे। दैवयोग से सेनापति की अल्पावस्था में ही माता-पिता ने परलोक की यात्रा की।... सेनापति का मन सहसा भगवान की ओर लग गया। कुछ समय तक सोनपुर और भागलपुर में विद्याध्ययन किया। इसी समय उनके एक भाई हरिहर का देहान्त हो गया। इस घटना ने सेनापति के जीवन की गति-विधि बदल दी। वे हरिहर की याद लेकर भगवान राम के पवित्र-धाम अयोध्या में चले आये। भगवती सरयू का पवित्रदर्शन कर वे निहाल हो गये। उन्होंने भगवान राम की पवित्र लीलाभूमि की श्रद्धापूर्वक वन्दना की। सरयू के पवित्र तटपर रह कर उन्होंने कठिन तपस्या का जीवन अपनाया, कठोर-से-कठोर उपवास-व्रत में संलग्न होकर वे परमात्मा के चिंतन में निमग्न हो गये। अल्पाहार से ही संतोष कर लेने का उन्होंने स्वभाव बना

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लिया।...काशी-दर्शन की उनकी बड़ी इच्छा थी। वे तप करने के लिये विश्वनाथ की नगरी काशी में आ गये। काशी आने पर भगवती गंगा में ही नाव पर निवास करने का उन्होंने नियम लिया और आजीवन उन्होंने इस नियम का अपने जीवन में पालन किया। उनकी काशी और गंगा के प्रति भक्ति असाधारण कोटि की थी। काशी में वे नगवा से अस्सी घाट के बीच में गंगाजी में रहते थे। कभी कभी तुलसीघाट और संकटमोचन आदि पर आया करते थे। काशी में वे हरिहर भैया के नाम से प्रसिद्ध हुए। काशी-निवास-काल में वे वीतरागानन्द नाम के एक महत्मा के सम्पर्क में आये। उनके चरण में हरिहर बाबा की बड़ी निष्ठा थी। महात्मा वीतरागानन्द की उनपर बड़ी कृपा थी।

हरिहर बाबा शौच आदि के लिये गंगा के उस पार जाया करते थे। कड़ी से कड़ी गरमी, भयानक शीत और अपार जलवृष्टि का सामना कर वे अपने नियम का आजीवन पालन करते रहे। कभी-कभी तो नाव के अभाव में वे तैर कर गंगा के उस पार जाते थे। निस्सन्देह वे असाधारण हठयोगी थे। वे परमहंस थे। उन्होंने परमात्मा के अनन्याश्रय का वरण किया, संसार के पदार्थ और प्राणियों में उनकी तनिक भी ममता न रह गयी।

एक दिन वे एक घटना से क्षुब्ध होकर नगवा से अस्सी घाट पर चले आये। काशी विश्वविद्यालय का एक छात्र जूता पहन कर उनकी नाव—हरिहर-आश्रम पर चला आया। हरिहर बाबा के शिष्यों ने उसको समझाया कि सन्त के सान्निध्य में ऐसा आचरण अपराध माना जाता है। छात्र ने इस पर ध्यान नहीं दिया और अपने अनेक साथियों के साथ उसने बड़ा उत्पात किया। बाबा ने नगवा छोड़ दिया, उनके संकेत पर नाव अस्सी घाट की ओर चल पड़ी। उन दिनों विश्वविद्यालय के संस्थापक महामना मदनमोहन मालवीय काशी में नहीं थे। काशी आने पर वे विश्वविद्यालय के प्राध्यापकों को साथ लेकर बाबा से संतापराध के लिये क्षमा मांगने गये। उन्होंने एक पैर पर खड़े होकर क्षमा मांगी और विनम्रता पूर्वक नगवा लौट चलने का आग्रह किया। हरिहर बाबा अपने नियम के बड़े कड़े थे। वे अस्सी घाट पर ही रह गये और मालवीय जी के विशेष अनुरोध पर उन्होंने कृपापूर्वक आज्ञा दी कि तुलसीघाट का जीर्णोद्धार करा दिया जाय। मालवीय जी ने इसे अपना परम सौभाग्य माना।... हरिहर बाबा ने नश्वर शरीर छोड़ने की अवधि तक अस्सी पर ही गंगा जी में नाव पर निवास किया। रामायण-पाठ और राम-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नाम की मधुर कीर्तन-ध्वनि से काशी नगरी धन्य हो उठी। भक्ति, मुक्ति, विरक्ति और शक्ति सन्त हरिहर बाबा के आश्रम में—नाव पर निवास करने लगीं।

सन्त का जीवन दिव्य घटनाओं से प्रायः सम्पन्न होता है; वे चमत्कार और प्रदर्शन से दूर रहते हैं। सन्त हरिहर बाबा के जीवन में अनेक दिव्य घटनाओं का होना पाया जाता है। एक समय की बात है; उनके तलवे में नागफनी का कांटा गड़ गया; वे शान्त रहे पर जब उन्होंने सुना कि महाराज वीतरागानन्द को भी नागफनी ने अमित कष्ट दिया है तो वे कह पड़े कि नागफनी सब को कष्ट देती है इसलिये उसे नष्ट ही हो जाना चाहिये। लोगों के देखते-ही-देखते गंगा के दोनों तटों पर नागफनी का अस्तित्व तक समाप्त हो गया। वे वाग्सिद्ध महात्मा थे; एक शब्द भी व्यर्थ कभी नहीं बोलते थे।

राम-नाम में उनकी बड़ी निष्ठा थी। एक समय की बात है कि वे शौच आदि से निवृत होने के लिये नाव से उस पार जा रहे थे। गंगा का जल बाढ़ पर था; धारा वेगवती थी। नाव डूबने लगी, केवट ने बड़ा श्रम किया पर फल कुछ भी न निकला। बाबा ने केवट को यत्न करने से मना किया। उनके आदेश से लोग राम-नाम जपने लगे। बात-की-बात में उनकी राम-नाम-निष्ठा से नाव डूबने से बच गयी। राम-नाम के प्रताप से जल में शिला तैरती है, काठ की नाव डूबने से बच गयी, यह कोई आश्चर्य की घटना थोड़े ही है। राम-नाम से क्या नहीं हो सकता है।

बाबा चराचर में आत्मदर्शन करते थे। वे अद्वैत-वेदान्ती भक्त थे। एक समय की बात है; काशीनरेश का हाथी पागल होकर उत्पात करने लगा। उसने गंगा पार की, रामनगर में बड़ा उपद्रव किया। लोग प्राण बचाकर इधर-उधर भागने लगे। हाथी उन्मत्त अवस्था में बाबा के सामने आया। सन्त हरिहर उस समय शान्तिपूर्वक राम-नाम का चिन्तन कर रहे थे। हाथी पर उन्होंने कृपा-दृष्टि की। वह स्वस्थ हो चला। उसने बाबा का आदरपूर्वक अभिवादन किया और शान्त होकर चला गया। ऐसी अनेक घटनायें बाबा के जीवन में घटती रहती थीं।

सन्त हरिहर बाबा परम सन्त थे। राम-नाम-संकीर्तन-ध्वनि ही उनके श्वासों की अधिष्ठात्री शक्ति थी। तपस्या के तो वे साकार विग्रह ही थे। काशी में इधर सौ सालों में इतने बड़े तपस्वी सन्त हरिहर बाबा ही थे। निस्सन्देह वे अरुणाचल के रमण महर्षि के उत्तरी दिव्य संस्करण थे। रमण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महर्षि आत्मयोगी थे तो हरिहर बाबा परमात्मा के संयोगी थे। दोनों-के-दोनों वेदान्ती सन्त और भक्त के मौलिक समन्वय थे। सन्त हरिहर कहा कहते थे कि राम का नाम ही परमामृत तत्व है। संन्यासी को साधारण जीवन बिताना चाहिये और कथनी-करनी में समान रहना चाहिये। धन, ऐश्वर्य, मद और मान को वे आध्यात्मिक साधना के पथ में बड़ा बाधक मानते थे। वे काशीवास, गंगाजल-सेवन, सत्संग और भगवान विश्वनाथ की आराधना की ही सदा सीख देते थे। वे शैव और वैष्णव के समन्वय थे। बाबा का दृढ़ विश्वास था कि मुक्ति की मूलभूमि संन्यास है।

सन्त हरिहर की साधना की प्राणभूमि शान्ति थी। वे सदा गूढ़ चिंतन में निमग्न होकर आत्मगत शाश्वत शान्ति की खोज करते रहते थे। वे उपासना और साधना से परे उपास्य और सिद्ध थे। वे गोस्वामी तुलसीदास के तपरूप थे। उन्होंने दिगम्बर वेष में गंगा में खड़े होकर सूर्य से नेत्र मिलाकर लम्बे समय तक तपस्या की। राम और शिव के अभिन्न स्वरूप में उनकी बुद्धि परम स्वस्थ और स्थिर थी।

जीवन के अन्तिम दिनों में वे केवल गंगाजल का ही पान करते थे। हरिहर आश्रम—नाव की छत पर अद्‌भुत शान्ति में वे रामनाम का रसास्वादन करते रहते थे। उनके दर्शन से दिव्य शान्ति मिलती थी। सम्वत् २००९ वि. में आषाढ़ शुक्ल पंचमी शुक्रवार को साढ़े ग्यारह बजे रात में उन्होंने नश्वर शरीर का परित्याग कर परम धाम की यात्रा की। वे निष्काम भक्त और आत्मज्ञानी सन्त थे।

रचना

समय-समय पर उनके मुख से निकले वचन ही उनकी कृति हैं।

वाणी

यदि काशी और गंगा जी के बदले स्वर्ग भी मिले तो वह त्याज्य है।

संन्यासी को कथनी के अनुरूप आचरण करना चाहिये।

अध्यात्म-पथ के पथिकों को विघ्न-बाधाओं से नहीं घबड़ाना चाहिये।

प्राणीमात्र को काशी-वास, गंगाजल-सेवन, सत्संग और भगवान शिव—परमात्मा का भजन करना चाहिये।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महात्मा चन्द्रशेखर भारती

नास्ति निर्वासनान्मौनात्परं सुखकृदुत्तमम् ।
विज्ञातात्मस्वरूपस्य स्वानन्दरसपायिनः ॥

आत्मस्वरूप को जान लेने वाले और स्वानदन्दरस का पान करने वाले के लिये वासना रहित मौन से बढ़ कर उत्तम सुखदायक और कुछ भी नहीं है।

—विवेकचूड़ामणि। ५२८

लोक कल्याण के लिये निरन्तर परमात्मा का आत्माभिव्यञ्जन होता रहता है। परमात्मा की आत्मविभूति उतर कर सदा अगणित प्राणियों को स्वरूपरस का अनायास आस्वादन कराती रहती है। सन्त चन्द्रशेखर भारती परमात्मा की आत्मविभूति थे। आदि शंकराचार्य की अद्वैत सन्त-परम्परा की अविच्छिन्न शृंखला की एक दृढ़ कड़ी थे। उन्होंने असंख्य प्राणियों को आत्मरस की शीतल ज्योत्सना से परितृप्त किया।

सन्त चन्द्रशेखर भारती ने सम्वत् १९४८ वि. में कार्तिक कृष्ण अमावस्या को शृंगेरी में जन्म लिया था। उनके माता-पिता लक्ष्मी अम्बा और गोपाल शास्त्री बड़े धर्मनिष्ठ और सदाचारव्रती थे। गोपाल शास्त्री उच्च कोटि के विद्वान थे। गोपाल के चौदह पुत्र थे पर उनमें से केवल एक नृसिंह ही बच रहे। शृंगेरी मठ के अधिकारी श्रीकान्त शास्त्री ने नृसिंह के पालन-पोषण का भार सम्हाला। नृसिंह को माध्यमिक विद्यालय में पढ़ने के लिये भेजा गया।

जब नृसिंह केवल बारह साल के ही थे, उन पर जगद्गुरु शंकराचार्य सच्चिदानन्द शिव अभिनव नृसिंह भारती की कृपादृष्टि पड़ी। शंकराचार्य के वे कृपापात्र बन गये, उनकी आज्ञा से नृसिंह ने सद्विद्यासंजीवनी पाठशाला में प्रवेश किया। आचार्य के आदेश से उन्होंने बंगलोर पाठशाला के मीमांसा-विभाग में अध्ययन आरंभ किया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शंकराचार्य नृसिंह को बहुत मानते थे। उनकी तीव्र इच्छा थी कि वे नृसिंह को अपना उत्तराधिकारी घोषित करें। सम्वत् १९६९ वि. में शंकराचार्य का स्वास्थ्य गिरने लगा। उन्होंने नृसिंह को लाने के लिये बंगलोर आदमी भेजा। नृसिंह के पहुँचने के पहले ही वे आत्मलीन हो गये। दक्षिण भारत के पवित्र शृंगेरी मठ के शंकराचार्य-पद पर नृसिंह की चन्द्रशेखर भारती के नाम से प्रतिष्ठा हुई। जगद्गुरु शंकराचार्य की उपाधि से सम्पन्न होना उनके जीवन का एक अमित महत्वपूर्ण अध्याय था।

अपने गुरु—पूर्ववर्ती शंकराचार्य के चरण-देश में उनकी अमित निष्ठा और श्रद्धा थी। तीन साल की अवधि में गुरु की आत्मतुष्टि के लिये उन्होंने सम्पूर्ण वेदान्त शास्त्र का अध्ययन समाप्त कर लिया। वे सत्य के साक्षात्कार में लग गये। कठोर तप का आचरण अपनाया। आत्मचिंतन और परमात्मा के ध्यान में वे अपने समय के अधिकांश का सदुपयोग करने लगे। . . सम्वत् १९७६ वि. में पिता और १९७९ वि. में माता ने परलोक-गमन किया। ममता के बन्धन-राज्य से मुक्त होकर सन्त चन्द्रशेखर भारती आत्मान्वेषण में लग गये।

उन्होंने दक्षिण भारत के पवित्र क्षेत्रों की यात्रा आरम्भ की। रामेश्वर, मदुरा, त्रिवेन्द्रम् और कालड़ी आदि में उन्होंने अद्वैत मत का प्रचार किया।

महात्मा चन्द्रशेखर भारती में दूसरे के मन की बात जान लेने की अद्भुत क्षमता थी। एक दिन वे तीर्थ प्रसाद का वितरण कर रहे थे। एक व्यक्ति की उनसे उसी समय मिलने की बड़ी इच्छा थी। व्यक्ति के साथी ने उससे कहा कि इस समय मिलना ठीक नहीं है। चार बजे शाम को मिलना अच्छा रहेगा। व्यक्ति दर्शनार्थियों में खड़ा होकर प्रसाद लेने लगा। सन्त भारती ने कहा कि आप आन्ध्र के अमुक ग्राम से आ रहे हैं। अच्छा, हम लोग चार बजे शाम को बात करेंगे। व्यक्ति उनके मुख से ऐसी बात सुन कर आश्चर्यचकित हो गया कि भारती कभी आन्ध्र गये ही नहीं, उनको किस तरह मेरे ग्राम का पता चला और चार बजे शाम को मिलने की बात तो और भी आश्चर्यजनक थी।

एक दिन एक व्यक्ति ने उनसे मद्रास जाने की आज्ञा माँगी। वह उनमें बड़ी श्रद्धा रखता था। सन्त भारती के पूछने पर कहा कि मद्रास में बहुत आवश्यक कार्य है। भारती ने कहा कि आवश्यक कार्य तो बीच में ही है। वह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उनके आदेश से मद्रास के लिये चल पड़ा। पर बीच में ही अरकोनम जंकशन पर उसका पैर गाड़ी और प्लेटफारम के बीच में फिसल गया और प्राण जाने तक की आशंका थी पर मित्रों की सहायता से बच गया। अब वह सन्त भारती के कहने का आशय समझ सका। मद्रास से शीघ्र ही शृंगेरी लौट आया। कुछ भी काम न कर सका। सन्त भारती ने कहा कि मैं समझता हूँ कि प्रातःकाल विशेष असुविधा नहीं हुई होगी।

एक दिन वे चरणामृत-वितरण कर रहे थे। एक महिला व्यग्र थी, शान्ति भंग कर रही थी, उसकी लड़की की सोने की माला खो गयी थी। किसी ने कहा कि अशान्ति मत फैलाओ, प्रसाद लेकर घर चले जाओ। महिला ने ऐसा ही करना चाहा, सन्त भारती ने उसको प्रसाद नहीं दिया और अलग खड़ी रहने का संकेत किया। इसे अपना अभाग्य समझ कर वह बड़ी दुखी हुई। कुछ ही क्षणों के बाद एक बूढ़ी स्त्री प्रसाद लेने आयी। सन्त भारती ने धीरे से कहा कि माला दे दो। बुढ़िया ने कहा कि मेरे पास नहीं है। सन्त ने कहा कि अपने पाप मत बढ़ाओ। दूसरी महिलाओं ने बुढ़िया के पास से माला निकाल कर पहली महिला को दे दी। सन्त भारती ने उसको प्रसाद दिया और उनकी कृपा से वह प्रसन्नतापूर्वक घर गयी।

उनकी उपदेश अथवा शिक्षा देने की पद्धति अद्‌भुत और मौलिक थी। वे प्रायः मौन रहते थे, बहुत कम बोलते थे पर उनके दो-चार शब्दों में ही इतनी शक्ति रहती थी कि सुननेवाले कभी भूलते ही नहीं थे। सन्त भारती वादविवाद से बहुत दूर रहते थे। वे सार्वजनिक धर्मोपदेश को महत्व नहीं देते थे। व्यष्टि की शिक्षा-दीक्षा में उनकी आस्था थी। वे कहा करते थे कि सार्वजनिक भाषण से तनिक भी लाभ नहीं होता है। वे कहा करते थे लोगों को ब्रह्मतत्व की व्याख्या समझाना नितान्त व्यर्थ है जब वे असत्य भाषण और असत्य आचरण तक नहीं छोड़ पाते हैं। एक समय की बात है; उन्होंने एक पण्डित से पूछा कि आप अमुक ग्रन्थ का भाष्य तो कर रहे हैं न। पण्डित जी ने कहा कि आप की कृपा और आशीर्वाद से यह कार्य सुचारु रूप से चल रहा है। सन्त भारती ने दैनिक उपासना के सम्बन्ध में पूछा तो पण्डित जी ने कहा कि मैं एक बड़े नगर में रहता हूँ, उसमें उपलें नहीं मिलती हैं इसलिये अग्नि सुरक्षित रख कर उपासना करने की सुविधा ही नहीं मिलती है। सन्त भारती ने कहा कि बड़े नगर में गाय के दूध से आप चाय और काफी तो पी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लेते हैं पर गाय उपलें नहीं दे सकती हैं। पण्डित जी लज्जा से नत हो गये।

अद्वैतमार्गी होते हुए भी वे द्वैत सिद्धान्त के पूर्ण मर्मज्ञ थे। भगवान के श्रीविग्रह में उनकी अनुपम निष्ठा थी। एक समय की बात है कि एक ब्राह्मण भक्त ने सन्त भारती को अपनी पूजा की पेटिका दिखायी, वह ऐसा करके उनका आशीर्वाद पाना चाहता था। पेटिका में कई एक भगवद्विग्रह थे। उनमें एक शालिग्राम-विग्रह भी था। सन्त भारती ने विष्णु-अंश वाले उस विग्रह की ओर संकेत कर कहा कि आश्चर्य है कि भगवान सात साल से भूखे हैं। ब्राह्मण उनकी बात से चकित हो गया। उसने विनम्रता से कहा कि पिता जी के देहान्त के बाद मैं आजतक इस पेटी के सभी विग्रहों की पूजा-अर्चा करता आ रहा हूँ। भारती ने कहा कि यह बात ठीक है पर शालिग्राम-विग्रह विशेष विष्णु-विग्रह है। इस विग्रह को नित्य क्षीर-अभिषेक और पायस निवेदन कराना चाहिये। ब्राह्मण को अब भारती की बात का महत्व समझ में आया। उसने कहा कि मेरे पिता का देहान्त ठीक सात साल पहले हो गया था, तबसे मैं इस पेटी के सभी विग्रहों को समान रूप से नैवेद्य आदि अर्पित कर देता था। भारती ने कहा कि शालिग्राम-विग्रह की यथाविधि पूजा भविष्य में करते रहना चाहिये। इस घटना से पता चलता है कि सन्त भारती की भगवान की प्रतिमा में कितनी निष्ठा थी।

चन्द्रशेखर भारती की दृढ़ मान्यता थी कि धर्मका दरवाजा सब के लिये समान रूप से खुला हुआ है। यथाशक्ति प्रत्येक व्यक्ति धर्म का अनुगमन कर ब्रह्म तत्व का साक्षात्कार-लाभ कर सकता है। सन्त भारती आत्मज्ञ थे, वे चराचर में अपनी ही आत्माभिव्यक्ति का दर्शन करते थे। एक समय की बात है। सन्त भारती शृंगेरी के शारदा-मन्दिर में पूजा करने जा रहे थे। दक्षिण द्वार के प्रवेशमार्ग पर एक गाय बैठी थी। मन्दिर में प्रवेश करना कठिन था। सन्त भारती गाय के सम्मुख बैठ गये और पूजा की सारी सामग्री से उसी की पूजा करने लगे। पूजा समाप्त होने पर गाय खड़ी हो गयी। भारती ने उसकी प्रदक्षिणा की, उसने मन्दिर में जाने का रास्ता दे दिया। सन्त भारती के लिये गाय भगवती की सजीव प्रतिमा थी। इसी तरह एक दिन चन्द्रशेखर भारती मठ में ही चन्द्रमौलीश्वर लिङ्ग का अभिषेक कर रहे थे।...अचानक एक भुजङ्ग दीख पड़ा। वह उठा कर खड़ा हो गया। सन्त भारती ने प्याले में दूध लेकर उसको अपने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हाथ से पिलाया। दूध पीने के बाद साँप न लिंग की ओर देखा और सन्त भारती का अभिवादन कर चला गया। ये घटनायें अकाट्य प्रमाण हैं कि सन्त भारती जीवमात्र में आत्मदर्शन करते थे। निस्सन्देह उनका समस्त जीवन अद्भुत घटनाओं का प्रतीक था। सन्त भारती की सीख थी कि सदा ईश्वर को स्मरण करना चाहिये। नित्य उपासना करनी चाहिये। धन आदि की प्राप्ति के पीछे समय नहीं नष्ट करना चाहिये। मन में अनासक्ति और निरपेक्षता का भाव बढ़ाना चाहिये। भारती आत्मशान्ति पर बड़ा जोर देते थे। वे समस्त विकारों से अतीत होकर आत्मानन्द के सागर में अपने आप निमग्न रहते थे। वे प्रपंचातीत रह कर भी जगत् के प्राणियों के कल्याण की छोटी-से-छोटी बात का ध्यान रखते थे। एक समय मठ का अधिकारी एक तार लेकर उनके पास आया। पूछने पर कहा कि ख का तार आया है, उसका भाई क बीमार है, वह रोग मुक्त होने के लिये आप की कृपा चाहता है। भारती ने कहा कि तार ख का नहीं, क का है, ख बीमार है। तार पढ़ने पर अधिकारी को अपनी भूल का पता चला।

सन्त भारती चमत्कार और प्रदर्शन से बहुत दूर रहते थे। सच्चे और उत्साही भक्तों और शिष्यों से ही वे मिलते थे। एक बार वे मौन थे। एक भक्त उनके पास बैठे थे। जगद्गुरु ने मौन तोड़ कर कहा कि आप यहाँ इसलिये बैठे हैं कि मैं आप से बोलूं। बोलना क्रिया है। क्रिया के पीछे कर्म रहता है। बोलने का कार्य ब्रह्म और जगत् को लेकर सम्भव है। ब्रह्म वाणी द्वारा कहा जा सकता नहीं है, और वेदान्त-सिद्धान्त के अनुसार जगत् अनिर्वचनीय है। उसका भी कथन में आना सम्भव नहीं है। इतना कह कर सन्त भारती फिर मौन हो गये। उन्होंने आत्मा को विश्वात्मा–परमात्मा में अभिन्न कर दिया।

सम्वत् २०११ वि. की बात है। आश्विन अमावस्या रविवार को प्रातः काल वे तुंग सरिता में स्नान करने गये। एक शिष्य उनके पीछे-पीछे गया। शिष्य ने कहा कि आगे अथाह जल है। सन्त भारती ने कहा कि मुझे ज्ञात है। थोड़ी देर में उनका शरीर डूब गया। शिष्य ने बचाने की चेष्टा की पर उसका शरीर भी नदी में बह गया। शिष्य तो बच गया पर सन्त भारती ने जल-समाधि ले ली। चन्द्रशेखर भारती बीसवीं शताब्दी के महान् सन्तों में से एक थे, वे वास्तव में जगद्गुरु थे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रचना

उनके उपदेश ही अमर कृति के रूप में सुरक्षित हैं।

वाणी

धर्म के पथ पर सब लोग चल सकते हैं। वह बहुत लम्बा चौड़ा है। इस पथ पर बहुत आगे बढ़ने पर ब्रह्मसाक्षात्कार सहज हो जाता है।

ईश्वर का सदा स्मरण करना चाहिये। नित्य उपासना करनी चाहिये। धन के पीछे नहीं दौड़ना चाहिये। अपने आप में तृप्त और तुष्ट रह कर अनासक्ति का भाव बढ़ाना चाहिये।

क्या धर्म-शिक्षा की आवश्यकता है। लोग जानते ही हैं कि असत्य नहीं बोलना चाहिये और न किसी को दुख देना चाहिये। बिना सिखाये ही लोग इसका आचरण करते हैं। जो वे अच्छा समझते हैं वही उनको करने देना चाहिये।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सहायक पुस्तक-सूची

हिन्दी

१. हिंदी संतकाव्य-संग्रह (श्रीगणेशप्रसाद द्विवेदी; हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद)
२. उत्तरी भारत की संत-परम्परा (श्री परशुराम चतुर्वेदी; भारती-भण्डार, प्रयाग)
३. संतकाव्य (श्री परशुराम चतुर्वेदी; किताबमहल, इलाहाबाद)
४. भक्तमाल सटीक (सीतारामशरण भगवानप्रसाद 'रूपकला'; नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ)
५. गोरखबानी (सं. श्रीपीताम्बरदत्त बड़थ्वाल; साहित्य सम्मेलन, प्रयाग)
६. संत-सुधासार (सं. श्रीवियोगी हरि; सस्ता साहित्यमण्डल, दिल्ली)
७. एकनाथ-तुलसीदास (श्री जगमोहनलाल चतुर्वेदी; एकनाथ-संशोधन-मन्दिर, पैठण, औरंगाबाद)
८. श्री एकनाथ-चरित्र (मूललेखक : श्री लक्ष्मण रामचन्द्र पांगारकर, अनुवादक : पं. लक्ष्मणनारायण गर्दे, गीता प्रेस, गोरखपुर)
९. संत सिंगाजी (सिंगाजी-साहित्यशोधक-मण्डल, खण्डवा)
१०. रमणमहर्षि (रमणाश्रम, तिरुवण्णमलै)
११. भागवतसम्प्रदाय (ले. श्री बलदेव उपाध्याय; नागरी प्रचारिणी-सभा, काशी)
१२. हिंदी साहित्य का इतिहास (पं. रामचन्द्र शुक्ल; नागरी प्रचारिणी-सभा, काशी)
१३. अष्टछाप-परिचय (श्री प्रभुदयाल मीतल, अग्रवाल प्रेस, मथुरा)
१४. संतवानी संग्रह १-२ भाग (बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद)
१५. दासबोध (समर्थ रामदास; चित्रशाला प्रेस, पूना)
१६. नाथसम्प्रदाय (पं. हजारीप्रसाद द्विवेदी; हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद)
१७. ज्ञानेश्वर-चरित्र (मूललेखक : लक्ष्मण रामचन्द्र पांगारकर, अनु० पं. लक्ष्मण नारायण गर्दे; गीता प्रेस, गोरखपुर)
१८. कबीर-ग्रन्थावली (सं. श्री श्यामसुन्दरदास; नागरी प्रचारिणी-सभा, काशी)
१९. कविता-कौमुदी (पं. रामनरेश त्रिपाठी; हिंदी मन्दिर, प्रयाग)
२०. महात्मा वसवेश्वर के वचन (श्री एम. एन. शिवप्पा और ब्रदर्स, चिक्पेट चौक, बंगलौर)
२१. आन्ध्र देश के कबीर—श्रीवेमना (श्री वाराणसि राममूर्ति 'रेणु'; हिंदी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२२. तीर्थंकर वर्द्धमान (श्री चन्द रामपुरिया; हमीरमल पूनमचन्द रामपुरिया, सुजानगढ़, बीकानेर)
२३. शंकराचार्य (श्री बलदेव उपाध्याय; हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद)
२४. ज्ञानेश्वरी (हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस)
२५. चैतन्यचरितावली (गीता प्रेस, गोरखपुर)
२६. बृहद् भागवतामृतम् (सनातन गोस्वामी; रतनलाल बेरीवाला, वृन्दावन)
२७. उज्ज्वल नीलमणि (रूप गोस्वामी; निर्णय सागर प्रेस, बम्बई)
२८. हरिभक्तिरसामृतसिंधु (रूप गोस्वामी; अच्युत ग्रन्थमाला कार्यालय, बनारस)
२९. गोपालचम्पू (देवकीनन्दन प्रेस, वृन्दावन)
३०. ललितमाधव (रूप गोस्वामी; मंजूषा प्रिं. वर्क्स, ढाका)
३१. विदग्ध माधव (रूप गोस्वामी; निर्णय सागर प्रेस, बम्बई)
३२. लघुभागवतामृतम् (रूप गोस्वामी; वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई)
३३. वल्लभाचार्य जी की वार्ता (लल्लूभाई छगनभाई देसाई, गांधी रोड, अहमदाबाद)
३४. चौरासी वैष्णवन की वार्ता
३५. दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता } (वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई)
३६. चरनदास की बानी (बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद)
३७. भक्तिसागरादि (स्वामी चरणदास, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई)
३८. श्रीशुकसम्प्रदाय-प्रकाश (रूपमाधुरीशरण, सरसकुञ्ज, युगलघाट, वृन्दावन)
३९. रूपकला-संस्मरण (रघुनाथ प्रसादसिंह; सखीमठ, छपरा)
४०. स्वामी राम-जीवनकथा (सरदार पूरनसिंह, रामतीर्थ प्रतिष्ठान, लखनऊ)
४१. स्वामी रामदास काठिया बाबा (श्रीसन्तदास बाबाजी, इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद)
४२. रूपकला-प्रकाश (रघुवंश भूषण शरण, प्रेमभक्तिसत्संग कार्यालय, रूपकलाघाट, अयोध्या)
४३. हिंदी काव्य में निर्गुण-सम्प्रदाय (श्री पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, अवध पब्लीशिंग हाउस, लखनऊ)
४४. तुलसी-ग्रन्थावली (सं० लाला भगवानदीन, श्री ब्रजरत्नदास, पं० रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी-सभा काशी)
४५. सुन्दर-ग्रन्थावली (पुरोहित हरिनारायण जी शर्मा; राजस्थान रिसर्च-सोसाइटी, कलकत्ता)
४६. भारत के निर्माता (पं० कृष्णवल्लभ द्विवेदी; हिंदी विश्वभारती कार्यालय, चारबाग, लखनऊ)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

४७. तुकाराम-चरित्र (मूललेखक : लक्ष्मण रामचन्द्र पांगारकर, अनु० पं० लक्ष्मण नारायण गर्दे; गीता प्रेस, गोरखपुर)
४८. दरियासागर (बैलवेडियर प्रेस, प्रयाग)
४९. चैतन्यदेव (सुंदरानन्द विद्याविनोद; गौड़ीय मिशन, बागबाजार, कलकत्ता)
५०. रमण-वाणी (रमणाश्रम. तिरुवण्णामल्लै)
५१. सन्त-अंक [कल्याण] (गीता प्रेस, गोरखपुर)
५२. भक्तचरितांक [कल्याण] (गीता प्रेस, गोरखपुर)
५३. संतवाणी-अंक [कल्याण] (गीता प्रेस, गोरखपुर)

बंगला

१. महात्मा विजयकृष्ण गोस्वामीर जीवनवृतान्त (ले० श्री बंकविहारी कर; 'सन्देश' कार्यालय, सुकिया स्ट्रीट, कलकत्ता)
२. वामाक्षेपा (ले० योगीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय; बागची एण्ड कं०, मसजिद बाड़ी स्ट्रीट, कलकत्ता)
३. महाजन-पदावली [चण्डीदास व विद्यापति] (प्रमथनाथ जी चट्टोपाध्याय अक्षय प्रेस, कलकत्ता)
४. महात्मा तैलंग स्वामीर जीवनचरित व तत्वोपदेश (ले. उमाचरणजी मुखोपाध्याय; आर्ट यूनियन प्रिं. वर्क्स, हातीबागान, कलकत्ता)

गुजराती

१. श्रीहरिरायजी [जीवन अने बोध] (जेठालाल गोवर्धनदास शाह: शुद्धाद्वैत संस्थान, अहमदाबाद)
२. साहित्य-प्रवेशिका (श्री हिम्मतलाल गणेश जी अंजारिया, सस्तुं साहित्य-वर्धक कार्यालय, अहमदाबाद)
३. श्रीभजन-सागर [पहेलो तथा बीजो भाग] (सस्ता साहित्य वर्धक कार्यालय, अहमदाबाद)
४. महात्मा सरयूदास (सस्ता साहित्य-वर्धक, कार्यालय, बम्बई)
५. भक्त कवि दयाराम भाईनुं आन्तर जीवन अथवा दिव्य अक्षर देह (ले. श्री मूलचन्द तुलसीदास तेलीवाला, जेठालाल गोवर्धनदास शाह; नारायणदास परमानन्ददास शाह, डभोईवाला, बम्बइ ४)

मराठी

१. संतचरित्रमाला (लक्ष्मण रामचन्द्र पांगारकर, मुमुक्षु कचेरी, बुधवार पेठ, पूना)
२. मोरोपन्त : चरित्र आणि काव्यविवेचन (लक्ष्मण रामचन्द्र पांगारकर, कर्नाटक पब्लिशिंग हाउस, चीराबाजार, बम्बई २)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३. समर्थ रामदास (ज. स. करन्दीकर: समर्थ सेवा-मण्डल, सज्जनगढ़, सातारा)

अंग्रेजी

१. लल्ल वाक्यानि (सं. जार्ज ग्रियर्सन और बारनट; दि रायल एसियाटिक सोसयटी, ७४, ग्रासवेनर स्ट्रीट, लन्दन डब्लू १)

२. अरली हिस्ट्री आफ दि वैष्णव फेथ एण्ड मूवमेंट इन बंगाल (सुशील कुमार जी दे; जेनरल प्रिंटर्स एण्ड पब्लीशर्स लि., कलकत्ता)

३. स्टोरीज आफ इण्डियन सेन्टस् [ट्रान्सलेशन आफ भक्तविजय बाई महीपति] बाई: डाक्टर जस्टिन ई एबाट एण्ड पं. एन. आर. गोडबोले; आफिस आफ दि पोएट सेन्टस् आफ महाराष्ट्र, ६२७ सदाशिव, पूना)

४. मथुरा (बाई. ग्राउज)

५. महात्मा रामलिंगम् एण्ड हिज रिवीलेशन्स (शुद्धानन्द भारती; भारत शान्ति निलयम्, पाण्डोचेरी)

६. बसवेश्वर एण्ड हिज कानटेम्प्रेरीज (ए. आर. जयराम;)

७. सेन्टस् एण्ड सेजज आफ इण्डिया (प्रीतम सिंह जी; न्यू बुक सोसाइटी आफ इण्डिया, करोल बाग, लखनऊ)

८. सेन्ट आफ साकोरी (आनन्दसागर प्रेस, बम्बई २)

९. योगिराज गम्भीरनाथ (ए. के. बनरजी; गोरखनाथ टेम्पुल, गोरखपुर)

१०. दि लाइफ आफ स्वामी विवेकानन्द (अद्वैत आश्रम, मायावती, अलमोड़ा)

११. श्री हरनाथ: हिज प्ले एण्ड परीसेप्टस् (विठ्ठलदास नाथ भाई मेहता, खखर बिल्डिंग, सी. पी. टैंक रोड, बाम्बे ४)

१२. दि लाइफ एण्ड मेसेज आफ भगवान श्री कुसुम हरनाथ: (श्री कुसुम हरनाथ सोसाइटी, पेरम्बूर, मद्रास)

१३. महात्मा (तेन्दूलकर; टाइम्स आफ इण्डिया प्रेस, बम्बई)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आवश्यक अनुक्रमणिका

अंगवधू–५३०
अंगिरा–३०
अंगुत्तर–४५
अंगुलिमाल–४२
अंबाशंकर–८२५
अकबर–२७१, २७८,
३३४, ३९३
४४१, ४८९, ५२५
अकबरसिंह–७५५
अकाबाई–५८३
अक्कमहादेवी–१०६
अक्कू–८०९
अक्षयबोध–६५५
अक्षरमणमालै–९६०
अखा–५६९
अग्निभूति–५६
अग्रदास–५०४
अग्रहार–२६७
अघोरनाथ–८१२
अचलदास–१९२
अच्युतपक्षाचार्य–११५
अजातशत्रु–४१
अजोधन पाकपत्तन–२६०
अटलविहारीगुप्त–८१२
अटलविहारीनन्दी–८८६
अटलराय–६९६
अड़ैल–२७०
अणुभाष्य–२७६
अत्रि–१०, ३०
अथर्ववेद भाष्य–१३४
अद्भुत मञ्जरी–७८९
अद्वयानन्द–६५५
अद्वैतरत्नरक्षण–३७७
अद्वैतसिद्धि–३७७
अद्वैताचार्य–२९०, ८५९
अध्यात्म रामायण–१०३
अनंगवज्र–९३
अनगुण्डी–१३२
अनन्तसंहिता–२८८
अनन्तानन्द–१३६
अनुपम (वल्लभ)–४८६
अनुभवबिन्दु–५७४
अनुभूति प्रकाश–१३४
अनूपिया–३८
अनेकार्थमञ्जरी–४५८
अनोमा–३८
अर्जुनदेव–६९०
अठीलपुर–६९२
अपरोक्षानुभूति–६५
अप्पयदीक्षित–३७१
अब्दुलहक–९७०
अभिधम्म–४५
अमरसार–६११
अमरसुखनिधान–२२६
अम्बपाली–४३
अरबिंद–९२९
अरुणाचलसन्देश–९६६
अरुणाचलाष्टक–९६७

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अरुलपा–८२३
अलंकारशेखर–१२०
अल्लामाप्रभु–१०६
अविनाशीमुनि–३५१
अशोक–३३, ४७
अश्वघोष–३३
अश्वजित–४०
अश्वत्थामा–६९४
अविश्वनीकुमारदत्त–८६३, ५०७
अषगम्माल–९५६
अष्टछाप–३३७
अष्टांगयोग वर्णन–६३९
असंग–३३
असादीवार–२६४
अहिल्याबाई–६४१
आकाशगंगा–८१०
आचारांग–५८
आटलाग्राम–८४१
आण्डालरंगनायकी–७२
आत्मबोध–६५, ९४
आनन्द–४२
आनन्दकिशोर–८५८
आनन्दगिरि–६१
आनन्दतीर्थ–११५
आनन्दमयी–९५२
आनन्दलहरी–६५
आनन्दलहरी–५२०
आन्तरी गाँव–४३९
आन्योर–३३६
आसोध–६८६
आपे गाँव–१५२
आमुक्तमाल्यदम्–७५
आरुणि–६८
आर्याभिविनय–८३२
आर्याम्मा–६१
आलन्दी–५१८
आलन्दीगाँव–१५२
आलवन्दार–७७
आले–१५४
आवश्यकदसवैकालिक–५८
इंगलेश्वर–१०४
इच्छाराम भट्ट–७८६
इर्त्सिग–३३
इन्द्रभूति–५६
इल्लमागारु–२६७
'इस जगत की पहेली'–९३७
ईश्वरपुरी–२९१
ईश्वरमुनि–७७
उज्ज्वलनीलमणि–३२६
उड़ियाबाबा–९४५
उड़ीपी–११४, २९७
उपदेश सार–९६७
उत्कलमाला–२५४
उत्तराध्यपन–५८
उद्धव–५१४
उद्धव गोस्वामी–५७८
उपदेश साहस्त्री–६५
उपदेशामृत–४९३

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उपबर्हण–१०
उपाधिखण्डन–११८
उमापुर–६३०
उरुवेला–३८
उलूकेश्वर–११
उववाइय–५८
ऊदाबाई–३९०
ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका–८३२
ऋजुबालिका–५६
ऋषभदेव–५२
ऋषिपत्तन–३९
एकनाथ–५०९
एकशरण सम्प्रदाय–२४८
एदिलाबाद–६५१
ओंकारनाथ–६२
ओड़छा–४०२
औरंगजेब–५४९
कटवा–२९५
कटारुपल्लि–२०६
कथावत्थु–४५
कथासारामृत–६८२
कनकाबाई–५८९
कनुभट्ट–२३२, २८७
कन्थक–३७
कन्हाड़–१४२
कन्हैयाभागवत–७४४
कपिलमुनि–२२
कपिलवस्तु–३३
कपूर–४१२
कबीर–४७, १३९, १८३, २२५, २४९, ६८५.
कमलजनयन–३७१
कमला–९१
कमला–४५३
कमलाकान्त भट्टाचार्य–७०९
कमलाल्य–७४२
कमाल–१८७
कमाली–१८७
कमिजड़ा–७१४
करतारपुर–२६०, ३५१
करनकुजी–८२१
करुणाष्टक–५८५
कर्ण–६८९
कल्याणराय–५५८
कल्याण सिंह–४९७
कल्याणस्वामी–५८३
कवितावली–३६७
काकरवडा–२६७
काठियाबाबा (रामदास)–७२६
कादरसाहब–७१३
कान्तिमती–८१
कान्हजी–५८९
कान्हरदास–८५८
कान्हाबाई–४४१
कापिलतन्त्र–२८८
काबा गांधी–९१३
कामारपूकूर–८३५

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कायोत्सर्ग–५८
कालचरित्र–६११
कालटी (कालडी)–६०
कालिन्दी–२४८
कालूचन्द–२५७
कालूराम–७५७
काशीमिश्र–२९७
काशीमिश्र–९४६
किराहार–२४२
किसा गौतमी–४३
कीनाराम–६६९, ७५४
कीर्तनघोष–२५४
कील्हदास–५०४
कड़ा–५४९
कुंजोदेवी–६३४
कुंवरबाई–२१५
कुण्डनपुर–५२
कुतुबुद्दीन–११२
कुमारदेव–३०७
कुमारहट्ट–२९३
कुमारिलभट्ट–६३
कुम्भ (महाराणा)–१९२
कुम्भनदास–२७१, ३३१
कुरल–४७
कुलोत्तुंग–८३
कुशलवाख्यान–६४७
कुशीनगर–४३
कुसुम कुमारी–८८४
कुसुमवर–२४५
कूडलसंगमेश्वर–१०५
कूरेश–८३
कृपाराम–७९२
कृमिकुण्ड–७६०
कृष्णकर्णामृत–१७२, २९७
कृष्ण गीतावली–३४३, ३६७
कृष्णचन्द्र–७०६
कृष्णदामोदर–२१४
कृष्णदास–२७०, ४२०
कृष्णदास कविराज–२८८
कृष्णदास पंयहारी–५०४
कृष्णदेवराय–७५, २६८
कृष्णपन्त देवकुले–१५४
कृष्णपाद–९१
कृष्णलीलामृत–२९१
कृष्णलीलास्तव–३१८
कृष्णविजय–६४७
कृष्णस्तवराज–६८
कृष्णाश्रम–२६६
केन्दुली–१२०
केलिगोपालनाटक–२४४
केलिमाला–२८५
केशवचन्द्रसेन–८२९
केशवभट्टसोमयाजी–८१
केशवभारती–२९५
कोटवा–६२३
कोटाल पाड़ा–३७१
कोठीवाल–१११

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कोलाहल–७७
कोशलमल्लिका–४१
कौण्डिन्य–४०
कौलावत–१४५
कौशाम्बी–५६
खंभालिया–७१६
खजूरी ग्राम–४७८
खन्धक–४५
खादिम अलीशाह–८९३
खानपुर बोहना–६६७
खोमनेर–५५९
खुदीराम चट्टोपाध्याय–८३५
खुद्दकनिकाय–४५
खेड़ापा–७९१
गंगा (एकनाथ की कन्या)–५१३
गंगाधर–२७९
गंगाबहिन–७९८
गंगाबाई–६८०
गजपति प्रतापरुद्र–२८६
गजवनी (गजपुर) ९३
गर्जसिंह–१३९
गणपतिशास्त्री–९६१
गदाधर भट्ट–४९४
गदाधर भट्टाचार्य–३७१
गन्धर्वसेन–९८
गम्भीरनाथ–८०४
गरीबदास (दादू के पुत्र)–५२४
गरीबदास–६८४
गहिनीनाथ–१५३, ६५२
गांधीजी–९१२
गागरोनगढ़–१९३
गाना–३५७
गिरिजा–५१३
गिरिधरजी–३४२
गिरिधरजी–६७३
गिरिधरपन्त–५७८
गिरिराजकुमारी–६९६
गीतगोविन्द–११९, २२२
गीताप्रबन्ध–९३७
गीतावली–३६७
गूढ़ार्थ दीपिका–३७७
गुप्त भारत की खोज–९६६
गुरुग्रन्थसाहब–११३
गुरुदासपुर–१४७,२५८
गुरुपरम्परा–७०
गुरुप्रताप–५५५
गुलालसाहब–६६२
गोकुलनाथ–३४२, ४७२, ५५९
गोडसे–९२६
गोणाई–१४३
गोदावरी (एकनाथ की कन्या)–५१३
गोपालचम्पू–४८०
गोपालनाथ–८०६
गोपाल भट्ट–३०१

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गोपीचन्द–९१
गोपीनाथ–२७०
गोपीप्रेम प्रकाश–६७७
गोरक्षकल्प–९४
गोरक्ष गीता–९४
गोरक्षपिष्टिका–९४
गोरक्ष शतक–९४
गोरक्षशास्त्र–९४
गोरक्ष संहिता–९४
गोरक्षसहस्रनाम–९४
गोरखगणेशगोष्ठी–९४
गोरखटीला–९३
गोरखनाथ–९७, १५५
गोराकुम्हार–१४६
गोविंद साहब–६७०
गोविन्द–८१
गोविन्द (चैतन्य का सेवक)–३००
गोविन्ददामोदरस्तोत्र–१७२
गोविन्ददास–२७८, ४३८
गोविन्द पन्त–१५२
गोविन्द बोवा–६४६
गोविन्द भगवत्पाद–६२
गोविन्दमरार–७४४
गोविन्द राजपेरुमल–८३
गोविन्दराय–५५८
गोविन्दविरुदावली–४९३
गोविन्दसाहब–७३३
गोविन्दसेठ–१४४
गोसाईंचरित्र–३५६
गौड़पादतरंगिणी–२८८
गौतम–३०
ग्रन्थचिंतामणि–७१७
घनानन्द–६७४
घुरबिनिया–१७६
चंचला–२२१
चक्रपाणि–५१०
चक्रराज–६८
चणोतर–४२१
चण्डकौशिक–५७
चण्डीदास–२३१, २८७
चण्डीवर–२४५
चतुःश्लोकी भागवत–५१२
चतुर्भुजदास–३३५, ४७३
चन्दना–५७
चन्द्रगिरि–८८
चन्द्रदास–६१६
चन्द्रद्वीप–२८९
चन्द्रभूषणसिंह–६९८
चन्द्रशेखर–३११
चन्द्रशेखरभारती–९८१
चन्द्रसेन–९३
चम्पारण्य–२६७
चम्बा–३५४
चरणदास–६३३, ६५७
चरणाट–४३०
चांगदेव–१५६
चांगदेवपासठी–१५८
चाँदकाजी–२९५
चाँदभाई–८७५

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चाणोद–७७८
चावड़ी–८७५
चित्रकूट–३५९
चित्रादेवी–२७९
चिदम्बर–६३
चिदम्बरम्–८१८
चिद्विलासयति–६०
चिन्तामणि–१६४
चिन्नमल–८१९
चिरञ्जीवपद–५२०
चीघड़ (श्रीधर)–१९५
चुन्दकर्मकार–४४
चूड़ामणिचैत्य–३८
चूड़ारायपुर–७६३
चेटक–५२
चैतन्य चन्द्रोदय–२८८
चैतन्य चरित–२८८
चैतन्य चरितामृत–२८८
चैतन्यदास बाबा–८६०
चैतन्य भागवत–२८८
चैतन्य मङ्गल–२८८
चैतन्य महाप्रभु–११९, २४९, २८६
चैतन्याश्रम–१५२
चैत्ररथ वन–२८
चोखामेला–१५५
चौबीसत्थो–५८
चौरंगीनाथ–९३
च्यवन–३०
छटना–२३२
छन्दक–३७
छीतस्वामी–२७२,४६०
छुड़ानीगाँव–६८५
जंमिय–५६
जगजीवनसाहब–६२१,६२९
जगदीशमिश्र–२४९
जगद्बन्धु–२८८
जगन्नाथमिश्र–२८९
जगाई-मधाई–२९४
जड़भरत–१८
जनक–२८
जन्मेजय–३०
जपुजी–२६३
जम्बुकेश्वर–१३२
जयकुँवरि–२१४
जयदेव–११९
जयन्ती (निम्बार्क की माता)–६८
जयश्री (जायस)–८८
जानकीमंगल–३६७
जिवबादादा–६५२
जीवगोस्वामी–३०९, ३९७,४८५
जीवाराम–४४९
जूठीबाई–२१७
जेतवन–४३
जैमिनीयन्यायमालाविस्तर–१३४
जैसलमेर–५६३
जोइतराम भगत–७९९

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जोधाजी–३८९
ज्ञातधर्मकथासूत्र–५८
ज्ञातृखण्ड–५५
ज्ञानककहरा–७६५
ज्ञानतिलक–९४
ज्ञानदीपक–६११
ज्ञानदीपबोध–९४
ज्ञानप्रकाश–६२६; ७६५
ज्ञानप्रकाशशतक–९४
ज्ञानबोध–५५५
ज्ञानमूल–६११
ज्ञानरत्न–६११
ज्ञानशतक–९४
ज्ञानसमुद्र–५४७
ज्ञानस्वरोदय–६११,६३९
ज्ञानामृतयोग–९४
ज्ञानेश्वर–८८; १५१, १९९,२०८
ज्ञानेश्वरी–१५१
ज्वालानन्दपुरी–८२७
ज्वालामुखी–७२८
टंकारा–८२५
टहलड़ी–५४२
टिकइतराय–६१४
टेकदास–६०९
टोड़े–१९६
डाकोर–५६३
डेहरा–६३४,६५७
तकी (शेख)–१८७
तक्षक–२५,३०
तणछा–७१३
तत्वदीपनिबन्ध–२७६
तथागत–४३
तलवण्डी–२५७
तलाजागाँव–२१४
तानसेन–२७८; २८२; ३४१; ३९३; ४४१
तारादेवी–३८०
तारापीठ–८४०
तिपिटक–४५
तिरुकुदूर–८१
तिरुपति–८२
तिरुप्पावै–७६
तिरुम्मल–२६८
तिरुम्मलदीक्षित–६०
तिरुवल्लुवर–४७
तिरुवल्लुवर-मालिका–५०
तिरुवाचक–८२०
तीर्थावली–१४९
तुकाराम–५८०; ५८७
तुकाविप्र–६४६
तुम्बरु–११,२७
तुलसीदास–३३८, ३५५, ३९४,४५२, ५०६
तुलुब–११६
तृप्ता–२५७
तेरढ़ोकी–१४६
तेलपा–६११
तैलंगस्वामी–६००
तोतापुरी–८३७

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

त्यागराज–७४०
त्रिकमदास पटेल–८००
त्रिशला–५२
त्र्यम्बक बोवा–६४६
त्र्यम्बकेश्वर–५१२
थराड़–७१६
दंशी–६११
दक्षिणेश्वर–८३५
दत्त–५८३
दत्तमण्डल–२०६
दयानन्द–६०४, ८२४
दयाबाई–६३६
दयाबोध–९४
दयाराम भाई–७७७
दरबलोत–२६०
दरियानामा–६११
दरियासागर–६११
दरियासाहब–६०७
दशश्लोकी–६५
दशोपनिषद्दीपिका–१३४
दसरत्न–५५५
दसवैकालिक–५८
दसवैकालिक चूलिका–५८
दसाश्रुत–५८
दाँतड़ा–७९२
दाण्डी–९१९
दादू–५२२
दादोजी पन्त–६७९
दानकेलिमानिका–३२८
दानलीला–४५५
दामाजीपन्त–५१०
दामासेठ–२४३
दामोदर–१६६,२४८
दासबोध–५८५
दासोपन्त–५१७
दिव्य जीवन –९३७
दिव्यनामावली–७४७
दिव्यप्रबन्धम्–७९
दीघनिकाय–४५
दीधीतिन्याय–२९१
दीनदखेश–७९८
दीपालपुर–११०
दुरितगौरी–२१५
दुर्गसंगमनी–४८८
दुर्गाभक्तिचिंतामणि–७११
दुर्योधन–२५
दूदाजी–३८९
दूलनदास–६२८
देवगढ़–५११
देवगिरि–१५१
देवजित–२५२
देवदत्त–४१
देवदह–३५
देवदास–७२८,८७५
देवनाथ–५५१
देवमहाकवि–३३८
देवराय–१३२
देवल–७६०
देवा–८९३

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देवीपाटन–८०६
देवीपुराण–२८८
देवेन्द्रनाथ महर्षि–८६०
देहूग्राम–५८८
दोहावली–३६७
दोहावली (दूलनदास की)–६३१
द्यौसा–५२५
द्वारका–६४, २१९
द्वारिका–३९९
धन्ना–१४०
धर्म्म संगनी–४५
धरकन्धा–६०९
धरणीधर–२२२
धरनीदास–६१३
धरमदास–१८९,२२५
धर्मचक्र–४०
धर्मजहाज–६३९
धर्मेगाँव–६२९
धातुकथा–४५
धूपकेड़ा–८७५
धोमनगाँव–१४७
धौरहराग्राम–४९६
ध्रुव–११
ध्रुवक्षेत्र–६८
नकुलठाकुर–२३५
नगपुरजलालपुर–७३३
नगेन्द्रनाथ–८६१
नजीर–७१९
नथुनीबाबा–८७१
नदिया–२८७
नन्दगाँव–३१५
नन्ददास–३५९,४४८
नन्दीबर्धन–५५
नन्नुरा–२३२
नन्हीजान–८३२
नम्मेले–८३
नरनारायण–२४४
नरसम्मा–२०७
नरसीब्राह्मणी गाँव–१४२
नरसीमेहता–२१३
नरहरिठाकुर–२८८
नरहरियानन्द–१४०
नरहरियानन्द (नरहरिदास)–३५७
नरहरिसोनार–१५५
नलकूबर–१४
नवगाँव–२४५
नवलदास–४०३, ६३०
नवहद्द–३२१
नागरीदास–६७२
नागलाम्बिका–१०५
नागानिरंकारी–६८९
नागार्जुन–३३
नाटकचन्द्रिका–३२८
नाड़ीज्ञान प्रदीपिका–९४
नाथमुनि–७७
नादिरशाह–६३६
नानक–१८९, २५६, ६९०

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नानकी–३५०
नानकानासाहब–२५७
नाभादास–३५९,५०३
नामदेव–१४२, ५९१
नामप्रताप–७९६
नारद–९, २७,३१, ६८
नारायण–५२९
नारायणभट्ट–६६४
नारायणेन्द्रतीर्थ–२७५
नालन्दा–३४
नासिक–६४
निकुंज विलास–६७७
निजामुद्दीन औलिया–११०
नित्यानन्द–२८७, ४८७
निबन्धप्रकाश टीका–४३७
निम्बापुर–६८
निम्बार्क–६८
निरञ्जन–१२०
निर्भयज्ञान–६११
निर्भयराम–७१५
निर्युक्ति–५८
निवृतिनाथ–८८, १५२
निवेदिता–९०७
नीतिशतक–१०१
नीमा–१८४
नीमाड़–४७७
नीरू–१८४
नीलसखी–४१
नीलागिरि–४१
नीलाचल–२८६
नीलाम्बिका–१०५
नीवी–१६६
नृत्यराघवमिलन–७६८
नृपतिबोध–९४
नृसिंहधर–६०१
नृसिंहाश्रमस्वामी–३८०
नेरञ्जना–३९
नेल्लूर–२०६
नेवासे–१५४
नैगडीह–७५६
नैपाल–८७
नैमिषारण्य–६८
नौकाचरित–७४७
पंचदशी–१३०
पंचमात्रा–९४
पंचमान–५८५
पंचरत्न–७४५
पंचवटी–५७९
पंचीकरण प्रयोग–५८५
पंचेन्द्रियचरित–५४७
पञ्चीकरण–६५
पठ्ठान–४५
पण्ढरपुर–१४४,१९९,२६९
पतंजलि–८७
पतबौंसी–२४८
पथरी ग्राम–८७५
पदकल्पतरु–२३६
पद्मनाभ–३०७
पद्मनाभतीर्थ–११७

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पद्मपाद–६०
पद्माचार्य–६२
पद्मावती–१२१
पद्मावती (रामानन्द की शिष्या)–१४०
पद्मावती (व्यासदास की माता)–४०२
पद्मावली–३०३
पन्द्रहतिथि–९४
पन्हालगढ़–६४२
पयहारीबाबा–९०४
परमानन्द–५४१
परमानन्ददास–२७०, ४१०
परमानन्दसागर–४१७
परशुरामदास–६१४
परशुराममिश्र–२५७
पराशर–३०, ८३,१२१
परासोली–३३१
परिवार–४५
परीक्षित्–२५, ३०
पलकनिधि–६५१
पलटूदास–७३३
पलटूप्रसाद–७३३
पांचरात्र–१३
पागलहरनाथ–८८१
पाञ्चरात्र–११६
पाण्डुरंगनाइक–६४७
पाण्डूक–५३
पामपुरग्राम–१६०
पामूर–२११
पारायणविधिप्रकाश–६७७
पाराशरस्पर्श–१३४
पारिजातहरण—२५४
पार्वती-मंगल–३६७
पालब्रान्टन–९६६
पाली–६९६
पावा–४४,५६
पिंगला–९३
पिण्ड–५८
पिप्पलीवन–४५
पिल्लन्–८३
पीपल्या–४७९
पीपा–१३६,१९२
पीरनशाह–६०८
पुग्गलपञ्जति –४५
पुण्डलीक–२६९
पुण्यसदन–१३६
पुतलीबाई–९१३
पुन–पुन-क्षेत्र–२९३
पुरुषविलास–५५५
पुरुषोत्तमजी–५६०
पुरुषोत्तम सरस्वती–३७७
पुलहऋषि–१९
पूंछरी–४६२
पूरण–९३
पूरनमलखत्री–२६९
पूर्णप्रज्ञ–११५
पूर्णप्रज्ञदर्शन–११८

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पूर्ण–३९
पूर्णाक्षरी–६५५
पूर्णानन्दस्वामी–८२७
पूर्व मीमांसा–२९६
पृथु देवसिंह–६०८
पेरिआलवार–७५
पेरियनीम्ब–८२
पेरियपुराणम्–९५७
पैठण–१५२
पोथीविवेकसार–७५९
प्रकाशानन्द–२८७
प्रकृति चाण्डालकन्या–४३
प्रजावती–३५
प्रणय बतीसी–८५६
प्रतापरुद्रदेव–१३२
प्रतापदित्य–३७१
प्रतिक्रमण–५८
प्रतीचि–१८४
प्रत्यख्यान–५८
प्रपञ्चसार–६५
प्रबोधसुधाकर–६४
प्रभास–१४५
प्रभुदास–७९८
प्रमोदन पुरन्दर–३७१
प्रसेनजित–४१
प्रस्थानभेद–३७७
प्रह्लाद–११
प्रह्लाद–१८४
प्रागदास–५४२
प्राणसंकली–९४
प्रियदर्शना–५५
प्रियादास–३५६,५०३
प्रीतमदास–७१५, ७६२
प्रेमगंगतरंग–८५६
प्रेम प्रकाश–६१९
प्रेममूल–६११
फकरूद्दीन–३२१
फतेहाबाद–३०७
फरीद–११०,२६०
फाहियान–३३
फीफराड–४८०
फैलेन–८५२
बंकटरमन–७४५
बकुलचन्द्र घोषाल–७०५
बजा भगत–७९९
बड़गीत–२४७
बड़नगर–२१७, ५२४
बड़वानी–४७८
बदरिकाश्रम–६४
बदरी–६३
बनीठनी–६७५
बन्धुकाग्राम–२४८
बरपेटा–२४८
बखैरामायण–३६७
बलदेव–१०५
बलभद्रभट्टाचार्य–२९९
बलवन्तसिंह–७६०
बस्ती–३५७
बहलोललोदी–२८६

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बहादुरसिंह–६७४
बाकला (चन्द्रद्वीप)–४८६
बाजिन्द–६१३
बाजीराव पेशवा–६४१
बादग्राम–३७९
बान्धव गढ़–२००
बापारावल–९४
बाबर–२१३, २६०, ३४९
बाबूजी नाइक–६४७
बारठ –३५२
बारामती–६४२
बाला २५९
बाल्याबेड़ा–९४७
बिजलीखान–१८९
बिजापुर–५१३
बिज्जल–१०४
बिलारी–६८
बिसोबाखेचर–१४६
बीजक–१९०, २२८, ६११,
बीजाराम–७५६
बीरबल–४२३
बुक्काराम–१३०,१३९
बुड्ढन–५२४
बुद्ध–३३
बुलाकीराम–६६३
बुल्लासाहब–६६३
बृहत्रसकलिका–८७१
बृहद्भागवतामृत–३१८
बृहन्नारदपुराण–२८८
बेंकुसा–८७५
बेकस–९६९
बेदिल–९६९
बोलपुर–२३२
बोलोजी–५८९
ब्रह्मगिरि–४७९,५१३
ब्रह्मगीता–१३४
ब्रह्मज्ञानसागर–६३९
ब्रह्मलीला–७६५
ब्रह्मवाणी–७०२
ब्रह्मविवेक–६११
ब्रह्मवैवर्त पुराण–१२५
ब्रह्मसूत्र–१२, ६२, ७९
ब्रह्मसूत्रानुव्याख्यान–११८
ब्रह्मानन्द–९३२
ब्रह्मानन्दस्वामी–५७२, ८२७
भक्तमाल–३५६, ५०६, ६८२
भक्तलीलामृत–५०९, ६८२
भक्तविजय–५०४,७४७
भक्तिपदार्थवर्णन–६३९
भक्तिरत्नाकर–२५४
भक्तिरसामृतसिन्धु–२९९
भक्तिरसायन–३७७
भक्तिसागर–६३९
भक्तिसार–६७७
भक्तिसिद्धान्त–४९३
भक्तिसूत्र–१५

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भक्तिहंस–४३७
भक्तिहेत–६११
भक्तिहेतु–४३७
भगवतरसिक–४९४
भगवन्तराय–६९४
भगवान आचार्य–३००
भगवानदास–३३१
भगीरथस्वामी–६०२
भद्रजित–४०
भरत–राजर्षि–१८
भर्तृहरि–९३, ९७, २५९
भविष्यपुराण–२८८
भागवत–३०
भाणसाहब–७१३
भानुदास–५१०
भामगढ़–४७८
भारती–६३
भारतीकृष्णतीर्थ–१३३
भावप्रकाश–५६६
भावार्थदीपिका–१५८
भावार्थ रामायण–५२०
भाष्याचार्य–७७
भिट्टिदेव–८३
भीखा साहब–६६७
भीलवड़ी–७९३
भुरकुड़ा–६६३
भुवनेश्वरी–१३१
भुवनेश्वरी–८९८
भैंसावा–४७९
भोगनाथ–१३१
भोजदेव–१२०
भोजराज–३९०
भ्रमरगीत–४५८
भ्रमविनाश–६३१
मंगलकोटि–२३६
मंगलगीत–६३१
मंगला–९१
मक्का–१११,२६०
मगनानन्दस्वामी–६९४
मगहर–१८७, २४९
मच्छिन्द्रगोरखबोध–९४
मज्झिम–४५
मणिग्रीव–१४
मण्डनमिश्र–६३
मत्स्येन्द्रनाथ–८८
मदनगोपालदास–४४४
मदनटेर–३१३
मदनमेहता–२१७
मदालसाचरित्र–६४८
मदीना–१११,२६०
मधाईपुर–३२१
मधुमंगल–२६९
मधुकर शाह–४०२
मधुवय्या–१०६
मधुसूदनतीर्थ–९४८
मधुसूदन विद्यावाचस्पति–४८७
मधुसूदनसरस्वती–३७०
मध्वमन्त्ररत्नाकर–११८
मध्वाचार्य–११४,२९७
मनरंगीर–४७९

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मनाचे श्लोक–५८५
मनीषापञ्चक–६५
मनुवांचौकी–६११
मनोरथमञ्जरी–६७७
मनोरमा–७४९
मनोहरदास–८८१
मन्त्रभागवत–६४७
मयनामती–९३
मरदाना–२५९
मरीचि–१०
मलूकदास–५४९
महदनुभवेश्वरी–६५५
महाकाश्यप–४४
महादजी सिंधिया–६५२
महादेव देसाई–९२२
महानाम–४०
महापुरुष–२४५
महाप्रलय–६२६
महाराणा प्रताप–३५२
महार्थमञ्जरी–९४
महालंग–९२
महावाक्यरत्नावलि–६०५
महावीरस्वामी–५२
महीपति–११९, ५०४, ६७९
महेन्द्रकन्दलि–२४६
मॉझीगॉव–६१४
माणिकगौरी–२१५
माणिक पाशहर–८२०
माता–९३७
मात्राशास्त्र–३५४
मादलाम्बिका–१०४
मादिराजा–१०४
माधवदेव–२४८
माधवयतीन्द्र–२६८
माधवलाल–८१०
माधवाचार्य–६०
माधवेन्द्रपुरी २८७
मानपंचक–५८५
मानमञ्जरी–४५८
मानरङ–८१६
मानस अष्टयाम–८५६
मानसिंह–३३२
मायण–१३१
मायावती–३४
मायावादखण्डन–११८
मारटिन साहब–८५३
मार्कण्डेय ऋषि–५१२
मार्कण्डेय पुराण–२८८
मालाधरवसु–३०७
माहिष्मती–६३
माहुली क्षेत्र–५८०
मिरजापुर–६११
मिस टायलर–९४२
मीरकासिम–६०९
मीराबाई–७२, ३८८
मुइनुद्दीन चिश्ती–९७०
मुकमलुद्दीन–९७०
मुकुन्ददेव–३७३
मुकुन्दसंजय–२९१

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुक्ताबाई–१४६
मुबारकपुर–८५०
मुरलीधर–६३४
मुरारसाहब–७१६,
मुरारस्वामी–५५१
मुहम्मदतुगलक–१३२
मुहम्मदफारुक–७२०
मुहम्मद शाह–६३६
मूगचिन्तल–२०६
मूलगोसाईंचरित–३५६
मूलभागवत–१२; १५
मूलरामायण–१२,१५
मृगावती–५७
मेढ़ियग्राम–५८
मेलाराम–७४९
मेड़ता–३८९
मेवात–६३३
मैरोल बोवा–६४६
मोक्षदानन्द–८४१
मोरोपन्त–३५६, ५१४, ६४१
मौद्गलायन–४०
यजुर्वेदभाष्य–१३४
यतिराज–८२
यदुनाथ–९४
यदुसेठ–१४२
यमक–४५
यमेश्वर टोटा–३१२
यशोदा–५५
यशोधरा–३५, ४१
यादवप्रकाश–८१
यादवानन्द–३७१
यामुनाचार्य–७७
यारी साहब–५४०
युगलमानचरित्र–४२६
युधिष्ठिर–१३, २५
योगचिंतामणि–९४
योगप्रदीप–९३७
योगबीज–९४
योगमार्तण्ड–९४
योगवासिष्ठ–१५८
योगशास्त्र–९४
योगसमन्वय–९३७
योगसम्प्रदायाविष्कृति–८८
योगसिद्धासनपद्धति–९४
योगानन्द–१४०
रंगधरमेहता–२१५
रखुभाई–५८९
रघुनाथ–२९१
रघुनाथदास–२८३
रघुनाथभट्ट–३०१
रघुवरदास–३५६
रच्चू–१७६
रज्जब–५२२; ५३२
रणछोड़दास–७८८
रतनखान–५५५
रतनसिंह–३८९
रत्नाकरविद्यावाचस्पति–३०७

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रत्नावली–३५८
रत्नावली–६१९
रमगगीता–९६६
रमगमहर्षि–९५५
रमगाविजय–९६६
रमाबाई–६४२
रमैनी–१९०
रविसाहब–७१३
रसिक रत्नावली–६७७
रसिक वल्लभ–७८९
रहस्यपथ–९६६
रहियो–५७०
रहिरास–२६४
रहीमखानखाना–३६१; ५२५
रूगण–२१
रांझा–९३
राग़रत्नमालिका–७४७
रागशबद–६७०
राघवचैतन्य–३७०
राघवदास–२७२; ५४०
राघवभट्ट–७७८
राघवानन्द–१३७
राजगृह–३८
राजपुर गाँव–२७९
राजसिंह–५५७
राजाई–१४५
राजानक भास्कर–१६४
राजापुर–३५७
राधा (जयदेव की माता)–१२०
राधाविनोद–१२४
राधाविलास–६४८
राधाष्टक–७०
राधासुधानिधि–३८६
रानीभवानी–८४१
रामकुमार–८३५
रामकृष्णपरमहंस–८२४, ५९९
रामकेलिग्राम–२९८, ४८६
रामखान–८८७
रामगढ़–७५५
रामगीता–७६०
रामग्राम–३८,४५
रामचपेटा–७६०
रामचरण–७९१
रामचरणदास–८५९
रामचरित मानस–३५५
रामजीयन्त–६४२
रामजोशी–६४३
रामतीर्थ–९०६
रामदेव–१५१
रामनगर–९७९
रामपुर–४४९
रामप्रासाद–७०४
रामबड़वे–६४६
रामबोला–३५७
रामब्रह्म–७४२
रामभद्राचल–५०४
राममंगल–७६०

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रामभगलम–७४४
रामभिश्र–७८
रामय्यपिल्ले–८१९
रामराग–६७०
रामराम–२४७
रामरसरंगमणि–८५३
रामरसाल–७६०
रामलला नेहछु–३६७
रामलिंगम्–८१८
रामवल्लभाशरण–८५३
रामविजय नाटक–२५२
रामसखा–७६७
रामसबद–६७०
रामसिंह–६२८
रामसहस्रपदी–२२२
रामस्नेही–५५४
रामाज्ञाप्रश्न–३६७
रामानन्द–१५२, १९९, १७५, २०२, ६१६
रामानन्दराय–२९७
रामानन्दस्वामी–१३६
रामानुज–७९, १०३
रामानुजाचार्य–२५०
रामायणरस बिन्दु–८५६
रामावत्सम्प्रदाय–१४०
रामी–२३४
रामीरामदास–५७६
रामेश्वरभट्ट–५९१
रायबुलार–३५०
रावमाण्डलीक–२१३
रासपंचाध्यायी–४५८
रासमणि–८३५
राहुल–३७
रुक्मिणी–१५२, ५१०
रुक्मिणी विलास–६४८
रुक्मिणी स्वयम्वर–५२०
रुक्मिणीहरण–२५४
रूप–२८७, २९८, ३२०
रूपकला–८५०
रूपमञ्जरी–४५७
रूपसिंह–६७३
रेणुका–३४०
रेवतीदेवी–३२१
रैदास–१३६, १९४, १७५,३८९,३९६
रोम्यारोलां–८३५
लंग–९२
लक्ष्मणझूला–६९७
लक्ष्मणभट्ट–२६७
लक्ष्मणसूरि–९५५
लक्ष्मणसेन–११९,१२२
लक्ष्मी–२९१
लक्ष्मीगौरी–२१४
लक्ष्मीचन्द्र–२५९, ३५०
लक्ष्मीदेवी–२६९
लक्ष्मीदेवी–९४६
लक्ष्मीबाई–६४३
लघुभागवतामृत–३२६
लघुरसकलिका–८७१

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लघुशंकरविजय–६०
लम्बिका–२०७
ललितकिशोरी–८६८
ललितमाधव–२९९
ललितमाधुरी–६७२, ८६९
ललितात्रिशतीभाष्य–६५
लल्लवाक्यानि–१६३
लल्लेश्वरी–१५९
लहरतारा–१८४
लहिणा–२६३
लालदास–५५२
लालाभक्त–८२६
लीलामाला–२५४
लीलाशुक–१६८
लुम्बिनी–३४
लोई–१८६
लोदीराम–५२३
लोनाचमारी–७२७
वंशीधर मेहता–२१३
वकतराम–७९२
वजीरखान–३५१
वज्रयान–२३७
वटभ्रवा–२४५
वदलूर–८२१
वनखण्डी–७४९
वनजनप्रशंसा–६७७
वन्धनाका–५८
वरदराज–८१
वर्द्धमान–५३
वलीमुहम्मद–७२०
वल्लभदिग्विजय–९४
वल्लभभट्ट–४८८
वल्लभलाल–७८५
वल्लभाचार्य (नवद्वीपवाले)–२९१
वल्लभाचार्य–२६७, ३३१
वल्लुवर–४८
वशिष्ट–३०
वषनाजी–५३६
वसन्तपुर–५४
वसन्तराम–२१५
वसन्तराम–७८८
वसवेश्वर–१०३
वसुबन्धु–३३
वाकला–३७१
वाक्यपदीय–१०१
वाक्यसुधा–६५
वाघोलीग्राम–५९१
वाजिदअलीशाह–७२३
वाणिज्यग्राम–५७
वामनपण्डित–५६७
वामाक्षेपा–८४०
वायुभूति–५६
वारकरीसम्प्रदाय–१४७
वाराणसी अवस्थी–१३६
वारिसअलीशाह–८९३
वारिसेन–५६
वाल्मीकि–१२, ३५६, ५०६
वाल्मीकिरामायण–१२

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वाष्प–४०
वाशुली–२३२
विक्रम–९८
विक्रमसिंह–३९३
विजना–६००
विजयकृष्णगोस्वामी–७३१, ८१०,८५८
विजयडिण्डिम–६०
विजयनगर–२६८
विज्ञप्ति–४३२
विट्ठलदास–५५१
विट्ठलनाथ–२७०, ३३१, ३३८, ४२९, ४५१
विट्ठलपन्त–१५२
विठोबा–६०६
विदग्धमाधव–२९९
विद्यापति–२३६
विधारण्य–१३०
विद्यावती–६४१
विद्याशंकरतीर्थ–१३२
विद्यासुंदर–७११
विद्वन्मण्डन–४३७
विनय–४५
विनयपत्रिका–३६७
विनोदानन्द–६१६
विनोबाभावे–९२२
विभंग–४५
विमलसंतवाणी–७१७
विरजानन्द–८२७
विरहमञ्जरी–४५८
विलासराय–७२०
विल्वमंगल–१६४, २८७, ३४४
विवेकचूड़ामणि–६५
विवेकमार्तण्ड–९४
विवेकसार–६११
विवेकानन्द–८९७
विशिष्टाद्वैतवाद–२५०
विश्वनाथ–८९८
विश्वम्भर (चैतन्य)–२८९
विश्वरूप–२८९
विश्वसारतन्त्र–२८८
विश्वेश्वरसरस्वती–३७२
विष्णुचित्–२६८
विष्णुचित्त–७२
विष्णुप्रिया–२९३
विष्णुसहस्रनाम (भाष्य)–६५
विष्णुस्वामी–२६८
विहारचन्द्रिका–६७७
वीतरागानन्द–९७८
वीरभूमि–२३२
वीरमजी–३८९
वीरसिंह–२००,३७२
वीरसिंह बघेल–१८९
वृन्दावन–४०५
वृन्दावनदास–२८८
वृन्दावनदास चाचा–३८९
वृन्दावनविलास–७८९
वेंकटारमनअय्यर–७४२

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वेणीमाधवदास–३५६
वेणवन–४१
वेल्मुनि–३५२
वेदवती–११४
वेदविचार–५४७
वेदांगप्रकाश–८३२
वेदान्तकल्पलतिका–३७७
वेदान्ततत्वबोध–७०
वेदान्तदीप–८४
वेदान्तपारिजात सौरभ–७०
वेदार्थ संग्रह–८४
वेमना–२०५
वैकुण्ठ गद्य–८४
वैदूर्य पत्तन–६८
वैद्यनाथ मिश्र–९४६
वैराग्य शतक–१०१
वैराग्य संदीपिनी–३६७
वैशाली–४३, ५२
वैष्णवतोषिणी–३१८
वैष्णवामृत–२५४
व्यवहारभानु–८३२
व्यास–१२, २६, ३४, ११६
व्यासदास–२७८, ४०१
व्यासमिश्र–३८०
व्योमस्तम्भ पर्वत–२६७
व्रजचरित्र–६३९
व्रजयात्रा–६७७
व्रजविदेही (काठियाबाबा)–७३१
शंकरदिग्वजय–६०, १३४
शंकरविजय–६०
शंकराभ्युदय–६०
शंकराचार्य–६०,८६,११४
शचीदेवी–२८९
शतश्लोकी–६५
शब्द–१९०
शब्दप्रकाश–६१९,७९६
शब्दावली–६३१
शमीकऋषि–३०
शरणागतिगद्य–८४
शरिमा–८८६
शर्मोजी–७४३
शान्ता–७४२
शान्तिपुर–२९६, ८५९
शामलदास–२१८
शामलशाह सेठ–२१९
शारदामणि–८३६
शालग्राम–८३
शालग्राम-क्षेत्र–१९
शाहपुरा–७९१
शाहलतीफ–९७०
शिक्षापत्र–५६७
शिक्षाष्टक–३०३
शिमला–८९८
शिरडी–८७५
शिवगुरु–६१
शिवनारायण–७५४
शिवपुराण–१३
शिवमंगलसिंह–६९४
शिवाजी–५८०, ५९४

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शिवानन्दगिरि–८२७
शिवाराम–७५५
शिशिरकुमार घोष–८८८
शीलनिधि–१३
शीलराम–२४९
शुकदेव–२५
शुद्धोदन–३४, ४१
शुकदेव–१३
शुकदेव–६३४
शुक्लध्वज–२५२
शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी–२९४
शूकरताल–६३५
शूलभञ्जन–५१२
शृंगाररस मण्डन–४३७
शृंगार शतक–१०१
शृंगेरी–६४
शेखावटी–५४२
शेडखी–७१४
शेषसनातन–३६०
शैलानगर–८२६
शैलानी कुण्ड–७३९
शोलापुर–६४३
श्यामपुर–४५३
श्यामसर–४५३
श्रावस्ती–४२, ५८
श्रीकान्त–२९९
श्रीकान्त–३१०
श्रीखण्डिया–५१७
श्रीचन्द्र–२५९, ३४९
श्रीधर–६०२
श्रीधरकन्दलि–२४९
श्रीनाथद्वारा–५५९
श्रीनाथसूत्र–९४
श्रीभाष्य–८३
श्रीमती–१३
श्रीमती–१३१
श्रीमाता–९३६
श्रीरंग–२९७
श्रीरंगम्–८२
श्रीवास–२९५
श्रीशैल–१०४
श्रीसम्प्रदाय–८३
श्रेणिक–५६
षट्सन्दर्भ–४९३
षोडशग्रन्थ–२७६
संकर्षणकुण्ड–३३६
संक्षेप शंकर विजय–६०
संगम–५४
संगमनाथ–१०४
संजय–५४
संतोषदास–६८६
संदेसर–७६३
संयुत–४५
सच्चल–९६९
सज्जनगढ़–५८०
सच्चिदानन्द–२५४
सतसई–६११
सतारा–१४२
सत्यसंधा–२४५

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सत्यार्थप्रकाश–८३२
सदानन्द–६१७
सद्दूपाण्डेय–२७२
सनक–१०
सनत्कुमार–१०
सनत्सुजातीय–६५
सनन्दन–१०
सनातन गोस्वामी–२८७, ३०६
सनातन (नवद्वीपवाले)–२९३
सन्तलीलामृत–६८२
सप्तग्राम–३२१
समजीर–५४
समर्थरामदास–३५३, ५७५
समुद्रगुप्त–३३
समेसीगाँव–६२८
संस्कारविधि–८३२
सरदहा–६२१
सरयूदास–७९८
सरसगीता–७६५
सरिदन्तर–११७
सर्वज्ञ–३०७
सर्वदानन्द–३२१
सर्ववेदान्तसिद्धान्तसारसंग्रह–६५
सहजयोग–५४७
सहजप्रकाश–६६०
सहजयान–२३७
सहजसम्प्रदाय–२३१
सहजानन्द–५४७
सहजोबाई–६३४, ६५७
सांगा–१८०,३९०
सांगानेर–५३३
सांभर–५२५
सांवली–५६३
साईंबाबा–८७४
साकलेशमादरस–१०६
साकोरी–८७७
साखी–१९०
सात्वतसंहिता–१३
साधारण सिद्धान्त–२८५
साधुबेला–७४८
सामदेवी (पिंगला)–९८
सामायिक–५८
सायण–१३०
सायर–७१५
सारंगधर मेहता–२१७
सारनाथ–३४
सारिपुत्र–४०
सार्वभौम भट्टाचार्य–२४९, २८७
सालसराय–२५९
सालिवाहन–९३
सावंतवाडी–६५०
सावजी–५८९
सावित्री–९३७
सावित्रीगीत–६४८

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

साहित्य लहरी–३४७, ४५३
सिंगाजी–४७७
सिंधोपन्त–१५२
सिंहल–८७
सिंहाद्रि–५१२
सिकन्दरलोदी–१८६, २८६
सिद्धपुर–८२७
सिद्धान्तविन्दु–३७७
सिद्धान्तसंहिता–६५५
सिद्धरामेश्वर–१०६
सिद्धसिद्धान्त पद्धति–९४
सिद्धार्थ–३५
सिद्धार्थ–५२
सिमलसू–९४३
सिराजुद्दौला–७०७
सिष्पादर्शन–९४
सीकरी–३३४
सीता–१९४
सीहनन्द–४४९
सुंदरदास–५२६,५४०
सुंदरदास–५४८
सुंदरविलास–५४७
सुखसमाधि–५४७
सुखानन्द–१४०
सुखानन्द६३५
सुगत–४३
सुजाता–३९
सुदेव–१२१
सुबोधिनी–२७६
सुब्रह्मण्य–११६
सुमेरु–५३
सुमोखन–४०२
सुरभीकुण्ड–४१४
सुरसुरानन्द–१४०
सुरेश्वराचार्य–६३
सुलक्खनी–२५९
सुशीला–१३६
सुशीला–४०२
सूकरक्षेत्र–२९८, ३५७
सूत्त–४५
सूत्तविभंग–४५
सूत्रकृतांग–५८
सूरजसेन–१९६
सूरदास–२७०, ३३८
सूरसागर–३४७
सूरसारावलि–३४७
सूर्यनारायण–५१०
सूर्यवती–२४७
सूर्याजीपन्त–५७६
सेन–१३६,१९९
सेवाकुंज–३८१, ६३५
सैदपुर–२६०
सैय्यद अली हमदानी–१५९
सोनमुखी–८८१
सोनानी–३९
सोनोपन्त–१६८
सोपानदेव–१५२

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सोमगिरि–२६८
सोमदेव–३५१
सोमनाथ–३५१
सोमवारी बाबा–८८२
सोहिरोबानाथ–६५०
सोहिला–२६४
सौदल गांव–६४२
स्कन्दपुराण–२८८
स्कन्धसूत्र–५८
स्मट्स–९१६
स्यालकोट–९३
स्वप्नप्रबोध–५४७
स्वर्गमयी–८५९
स्वातीतिरुनाल–७४४
स्वात्मप्रकाशिका–६६
स्वात्मबोध–५२०
हंसकला–८५३
हंसदूत–३२८
हंसस्वरूपस्वामी–९३२
हठसंहिता–९४
हनुमान–३५९
हनुमानबाहुक–३६६
हरि (एकनाथ का पुत्र)–५१३
हरिक्षेत्र–१८
हरिजीवनदास–५६२
हरिदास–२७८
हरिदास–२९४
हरिदासबोवा–६४६
हरिदेव–२४८
हरिद्वार–६४
हरिनामामृत व्याकरण–४९३
हरिनारायण–३१२
हरियाठ–१५८
हरिबाबा–९५०
हरिभक्तिरसामृत सिन्धु–३२६
हरिभक्तिविलास–३१८
हरिराम–३७१
हरिराम–३४०, ५५७
हरिवंश–१२५
हरिसिंह–१३९
हरिहर–१३०
हरिहरबाबा–९७७
हर्ष–३३
हस्तामलकभाष्य–६५
हाजीपुर–२९९
हाम्पी–१३०
हितचौरासी–२८६
हितहरिवंश–२७८, ३७९, ४०३
हिरखबोध–६८७
हुसेनशाह–२८७, ३२२
हुलसी–३५७
हिरण्यवती–४४
हीर–९३
हीरानन्द–९४०
हुमायूं–२१३, ३७८
हेनरी पोलक–९१२
हेमसरस्वती–२५२
होलियाग्राम–६०१
ह्वेनसांग–३३

★

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

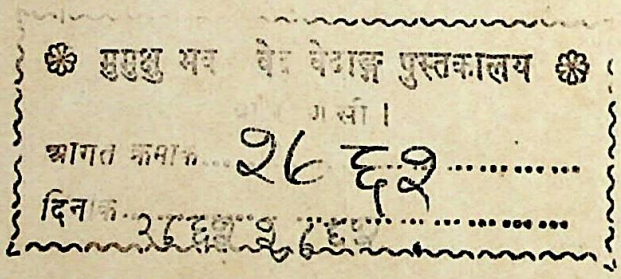

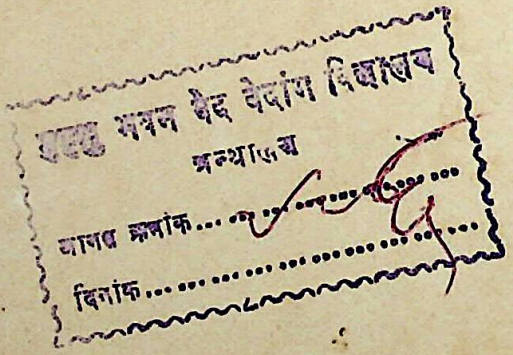

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

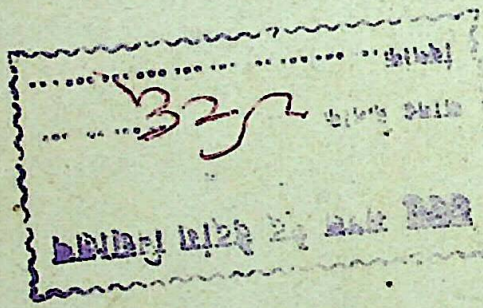

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri